तुलसी शब्द-कोश

आचार्य बच्चूलाल अवस्थी

तुलसी शब्द कोश—भाषा विज्ञान, व्याकरण और तुलसी-साहित्य के अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपादेय अपूर्व उपलब्धि है। सम्पूर्ण तुलसी-वाङ्मय में प्रयुक्त शब्दों और शब्दरूपों के सार्थक अभिज्ञान में समर्थ यह कोश विद्वान् कोशकार की दीर्घसाधना और अध्यवसाय को प्रमाणित करता है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और उर्दू-फ़ारसी की शब्द-सम्पदा का जैसा विलक्षण एवं सार्थक प्रयोग महाकवि तुलसीदास ने किया है, और एक ही शब्द के विभिन्न रूपों के द्वारा जो अर्थभेद अपनाया है उसे यह कोश विवृत करता है। लम्बे अर्से से अनुभूत आवश्यकता की पूर्ति के रूप में यह कोश इस क्षेत्र में नव्य प्रयोग है कि इसका स्वरूप प्रायः रूपात्मक अथवा आकृतिमूलक है। किञ्चित् रूप-परिवर्तन से ध्वनित एक ही शब्द के विभिन्न अर्थों के अन्तर को जानना पाठक के लिए निःसन्देह महत्त्वपूर्ण है।

मूल्य ७५०.०० (दो भाग)

तुलसी शब्द-कोश

प्रथम भाग

आचार्य बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान'
आचार्य कुलोपाध्याय, कालिदास अकादमी
उज्जैन (म०प्र०)

बुक्स एन बुक्स
दिल्ली-110009

© लेखक

प्रथम संस्करण—1991

प्रकाशक :
बुक्स एन' बुक्स
77, टैगोर पार्क
दिल्ली-110009

मुद्रक :
संगीता प्रिंटर्स
मौजपुर, दिल्ली-53

समर्पण

पितामहचरण

श्री बैजनाथ अवस्थी

को

जिनकी लोरियों ने तुलसी के राम

का दर्शन कराया

उपक्रम

मति कीरति गति भूति भलाई।
जो जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई।।
सो जानिअ सतसंग प्रभाऊ।
लोकहुं वेद न आन उपाऊ।।

यह सत्सङ्ग घर में भी, ईश्वर के अनुग्रह से, सुलभ रहा। मेरे पितामह, श्री बैजनाथ अवस्थी, कैथी लिपि जानते थे। वे देवनागरी लिपि का मुद्रित रूप कथञ्चित् बाँच लेते थे—अर्थ अज्ञात रहे तो बाँचना भी असम्भव था। मेरे पिता बद्री प्रसाद अवस्थी कैथी से अपरिचित थे परन्तु नागरी अक्षर पहचानते थे। माता जुगराता देवी इस दृष्टि से निरक्षर थीं। इस घर के ग्रन्थागार में छोटे-बड़े चार-छह ग्रन्थ थे—(१) रामचरितमानस जिसे 'रामायन' कहा जाता था, (२) विनयपत्रिका 'बिनै' नाम से विदित थी, (३) कवितावली, (४) हनुमानबाहुक, (५) हनुमान चालीसा और (६) प्रेमरतन। स्नान करके पिता एवं पितामह हनुमान चालीसा पढ़ते थे और सुभीता निकालकर प्रतिदिन 'रामायन' का वाचन हुआ करता था। प्राय: 'बाबा' पढ़ते थे और 'बप्पा' बैठे सुना करते थे तो कभी-कभी मैं भी बैठ जाता था। विनयपत्रिका और कवितावली का गायन बाबाजी रात में करते थे तथा हनुमानबाहुक का पाठ कभी-कभार होता था।

'प्रेमरतन' ही ऐसी पुस्तिका थी जिसके रचयिता तुलसीदास न थे प्रत्युत राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द की पितामही 'रतन कुँवरि' ने उसकी रचना की थी—कुरुक्षेत्र में विरहिणी गोपियों से कृष्ण के पुनर्मिलन की कथा थी जिसे पढ़ते हुए बाबा अश्रुधारा बहाते हुए आनन्दलीन हो जाया करते थे।

मैं पाँचवें वर्ष में चल रहा था कि एक दिन अचानक मानस पाठ रुकने पर मैंने 'भ' अक्षर पर उँगली रख कहा कि यह 'म' है, पिताजी ने दोनों में अन्तर बताया और मैंने 'भ' के सहारे 'म' भी जान लिया। इस प्रकार क्रमरहित वर्णमाला के ज्ञान के साथ ही मैं 'रामायन' बाँचने लगा। हनुमानचालीसा धाराप्रवाह पढ़ने लगा। मेरे

लिए ये ही दो 'प्राइमर' पाठ्य-पुस्तकें बनीं। बाबा मुझे यदा-कदा अर्थ भी बताते थे जिससे तुलसी-साहित्य में प्रयुक्त शब्दों का अनेकत्र अर्थज्ञान हो गया। यही इस कोश की पीठिका है जो कौमार अवस्था में बनी थी और अब एक स्वरूप ले सकी।

प्राय: पन्द्रह वर्ष पूर्व श्रीमान् डा० भगीरथ मिश्र की व्यावसायिक प्रेरणा प्राप्त कर मैंने 'तुलसीकोश' का निर्माण किया था। मेरे हस्तलेख के रूप में यह रखा रहा। गत वर्ष हरिसिंह सेंगर के सौजन्य से श्री मधुकर जी मिले और प्रकाशनार्थ ग्रन्थ की अपेक्षा व्यक्त की। वर्तमान स्थिति में इन्हीं के अनुग्रह से यह उपयोक्ताओं तक पहुंच रहा है।

लेखक का प्रयास रहा है कि जितने प्रकार के शब्द एवं शब्दों के रूप तुलसी-साहित्य में आये हैं उन सबका सार्थक परिचय इस कोश द्वारा हो जाय। उदाहरणार्थ—'करउ' तथा 'करहु' या 'करउँ' तथा 'करहुं' में रूप के साथ अर्थ में भी अन्तर है जिसका स्पष्ट निर्देश अपेक्षित माना गया है। इस प्रकार इसमें 'लेक्सिकन' के स्थान पर एक प्रकार से 'मार्फीम' को महत्त्व मिला है जो कोशविज्ञान के क्षेत्र में नया प्रयोग है। इसीलिए 'तुलसीकोश' नाम रखा गया है। एक और उदाहरण लिया जा सकता है—राम, रामु, रामहि, रामहिं में रूपान्तर के साथ अर्थान्तर पाया जाता है। 'कृपा' मूल नाम है जिससे 'कृपां' रूप बनता है और 'कृपा से' का अर्थ देता है। 'हृदयँ' = 'हृदय से' या 'हृदय में'। यह कोशदृष्टि अपनाने से यथापेक्ष अर्थ समझने में सुविधा होती है। क्रियापदों में विशेष द्रष्टव्य है—

करइ	=	वह करता है।
करहिं	=	वे करते हैं।
करसि	=	तू करता है।
करहु	=	तुम करते हो।
करउँ	=	मैं करता हूं।
करहुं	=	हम करते हैं।

इस 'पदकोश' के निर्माण में समस्त आचार्य-परम्परा का योग है जिसमें रह कर मैंने संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं और उनके व्याकरणों को सीखा। इनके अतिरिक्त उर्दू-भाषा से भी कुछ सहायता मिली जिसे बाल्यावस्था में 'पहली जबान' के रूप में जाना था। गोस्वामी जी ने उर्दू के शब्दों का सार्थक प्रयोग किया है जिसे 'कबुली' शीर्षक पर देखा जा सकता है। अनेक शब्द ऐसे हैं जो एक ही स्थान पर अनेक (सन्दिग्ध-प्राय) अर्थ देते हैं जिनका एक ही अर्थ दिया गया है। इसका कारण है कि अनावश्यक विस्तार की उपेक्षा की गयी है। जैसे—'भरनी' शब्द के अनेक अर्थों में एक ही मान्य किया गया है। सभी अर्थों की अपेक्षा हो तो 'मानस-पीयूष' आदि का अवलोकन करना चाहिए।

संक्षिप्त व्युत्पत्ति देकर अर्थ का स्पष्टीकरण चाहा गया है। व्युत्पत्तिगत पूर्णता के लिए 'तुलसी निरुक्ति कोश' की प्रतीक्षा करनी चाहिए। इसी प्रकार दार्शनिक शब्दों का सम्पूर्ण अर्थवृत्त नहीं लिया गया है। ईश्वर के अनुग्रह से यदि 'तुलसी-दर्शन-कोश' भी बनाया जा सका तो यत्किञ्चित् ऋणमुक्ति हो सकेगी।

यों तो इस प्रकार के संकलनात्मक कार्य की भूमिका अनपेक्षित ही है तथापि कुछ आत्म-निवेदन का ब्याज तो इससे मिल ही जाता है। इस सन्दर्भ में सम्मान्य श्री त्रिलोचन शास्त्री का मुझे स्मरण सदा आता है। उन्होंने अनायास बिना किसी प्रसङ्ग के एक अर्धाली का अर्धांश पढ़ा—

'जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं।'

शास्त्री जी ने ही अनुपपत्ति का विवरण दिया कि निषेध के साथ आने वाला 'सकल' यदि सर्वपर्याय है तो 'सब दुःखों के न होने' का आशय 'कुछ दुःखों का होना' होगा जो वाक्य का तात्पर्य नहीं है, अतः 'सकल' को 'शकल' मानकर अर्थ करना चाहिए। 'शकल' का 'खण्ड' अर्थ है, अतः जरा-सा भी दुःख नहीं है, ऐसा अभिप्राय बनता है। अवधी में शकार के लिए सकार ही चलता है, अतः कोई अनुपपत्ति नहीं है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन की चिन्ता मैंने छोड़ दी थी परन्तु मेरे मित्र डा० हरिसिंह सेंगर को चिन्ता थी। उन्होंने 'बुक्स ऐन्ड बुक्स' के व्यवस्थापक श्री मधुकर जी से मिलकर प्रकाशन की व्यवस्था की, एतदर्थ मैं उनको अपनी शुभाशंसाओं से अभिषिक्त करता हूं। सबसे बड़ा आभार श्री मधुकर जी का है जिन्होंने व्यवसाय-बुद्धि से ऊपर उठकर तत्परता के साथ शीघ्र प्रकाशित किया।

इस ग्रन्थ में जो अच्छाइयाँ हैं उनके यशोभागी जन्म तथा विद्या की वंश-परम्परा के पुरुष हैं और त्रुटियों का भार मुझ पर मानकर—

'छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई।'

विद्वज्जनों का वशंवद
बच्चूलाल अवस्थी

कालिदास अकादमी
उज्जैन (म०प्र०)
श्रावणी २०४७

संकेत

चिन्ह	पूर्णरूप	विवरण
अ०	अपभ्रंशभाषा	
आ०	आख्यात	ऐसे क्रियापद जिनमें लिङ्गभेद नहीं होता, पुरुषभेद होता है।
उए०	उत्तम पुरुष एकवचन	
उब०	उत्तम पुरुष बहुवचन	
ए०	एक वचन	
कए०	कर्ता-कर्म एकवचन	यह उकारान्त अथवा ओकारान्त शब्दरूपों में देखा जाता है, जिनका मूल प्रातिपदिक अकारान्त या आकारान्त होता है।
कवा०	कर्मवाच्य	
कवि०	कवितावली	
कृ०	कृष्ण गीतावली	
क्रियाति०	क्रियातिपत्ति	या ऐसे क्रियापद हैं जिनमें क्रिया की पूर्ति. किसी कारणवश नहीं हो पाती। ये क्रियापद भूतकाल या भविष्यकाल में होते हैं। इनमें लिङ्गभेद और पुरुषभेद दोनों मिलते हैं। दे० होति तथा जनतेउँ आदि।
क्रि०वि०	क्रिया विशेषण	
गी०	गीतावली	
छं०	छन्द	

जा०मं०	जानकी मङ्गल	
दो०	दोहावली	
पा०मं०	पार्वती मङ्गल	
पुं०	पुंलिङ्ग	
पूकृ०	पूर्वकालिक कृदन्त	
प्रए०	प्रथम पुरुष एकवचन	अन्य पुरुष एकवचन
प्रब०	प्रथम पुरुष बहुवचन	अन्य पुरुष बहुवचन
प्रा०	प्राकृतभाषा	
फ़ा०	फ़ारसी	
ब०	बहुवचन	
बर०	बरवै रामायण	

अ

अँकरे : वि० पुं० (आँकड़े=अंक गणना में आने वाले) खरे, उत्तम। 'अँकरे किये खोटेउ'—कवि० ७.१२७

अँकोर : सं० स्त्री० (सं० उत्कोच>प्रा० अक्कोड़ा) घूस, रिश्वत, प्रलोभन। 'दै अँकोर राखे जुग रुचिर भोर' गी० ७.३.३

अँखियनु : अँखियाँ+सं०ब०—आँखों के। 'अँखियनु बीच' बर, ३०

अँखियाँ : अँखिया+बहु०। आँखें। 'ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देत बुझाइ' बर० ३६

अँखिया : 'आँख' का रूपा०। स्नेहपूर्ण आँख। 'सोभा सुधा पियें करि अंखिया दोनी।' गी० २.२२.२

अँग : अंग। मा० २.३१५

अँगइ : पूकृ अङ्गीकार करके, शरीर पर झेल कर। 'अंगइ अनट अपमान' दो० ४६६

अँगना : सं० पुं० (सं० अङ्गन) आंगन, आजिर गी० १.८.३

अँगनाई : सं० स्त्री० (सं० अङ्गनवेदी>प्रा० अंगणेई) आँगन का भूभाग। मा० ७.७६.४

अँगनैया : अँगनाई (सं० अङ्गनवेदिका>प्रा० अंगणेइया) गी० १.६.३

अँगरी : सं० स्त्री० (सं अङ्गिका=कञ्चुक>प्रा० अंगिया>सं० अंगडी) कवच, अङ्गत्राण। मा० २.१६१.५

अँगवनिहारे : वि० पुं बहु०। अङ्गों पर झेलने वाले। सूल कुलिस असि अँगवनिहारे—मा० २.२५.४

अँगार : अंगार। मा० ६.५३

अँगारू : अंगार+कए०। अंगार। 'पाके छत जनु लाग अंगारू।' मा० २.१६१.५

अँगुरिन : अँगुलियों से। 'अंगुरिन खांडि अकास'—पर २८

अँगुरियन्ह : अंगुलियों में। रा० न० १५

अँगुरियां : सं० स्त्री० बहु० (सं० अङ्गुरिका:>प्रा० अंगुरियाओ>अ० अंगुरियाइं) अंगुलियाँ। गी० १.३२.१

अँगुली : अंगुलि। दो० ५२७

अँगुष्ठ : सं०पुं० (सं० अङ्गुष्ठ) अंगूठा। गी० ७.१७.४

अँचइ : पूकृ० (सं० आचम्य) आचमन करके, मुख आदि धोकर। 'अँचइ पान सब काहूं पाए।' मा० १.३५५.२

अँचइअ : आ० भावा० (दे० अँचव)। आचमन कीजिए, पीजिए। 'अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी।' मा० २.११५.१

अँचई : भूकृ स्त्री०। पी डाली। 'लाज अँचई घोरि'—दिन० १५८.६

अँचव अँचवइ : अचवँ (प्रक्षालन करना, पीना) पीता है। जो अँचवै। जल 'स्वाति को।' दो० ३०६

अँचवहु : 'अँचव'+म०व०। तुम पियो। 'सोभा सुधा अँचवहु।' गी० २.२३.२

अँचवायउ : भूकृ पुं० कए०। आचमन कराया, पिलाया। पामं १३५

अँजोरि : पूकृ०। अँजलि में भर कर, समेट कर। हथिया कर। 'सुकृत सिला···दंभ लेत अँजोरि।' दिन० १५८.४

अँजोरी : सं० स्त्री०। प्रकाश। 'खद्योत अँजोरी।' मा० ३.११.२

अँतावरि : सं० स्त्री० (सं० अन्त्रावलि>प्रा० अंतावलि) आंतों की लड़ी। 'गल अँतावरि मेल हीं।' मा० ६.८१ छं०

अँथइहि : आ० प्रए० भ०। अस्त होगा। 'उदित सदा अँथइहि कबहूंना मा० २.२०९.२

अँथयउ : भूकृ० पुं० कए। अस्त हो गया। रबि अँथयउ, मा० २.१५४.३

अँदेसा : सं० पुं० (फ़ा० अन्देश:) चिन्ता, सोचा। मा० १.१४.१०

अँदेसो : 'अंदेसा'+कए। एकमात्र चिन्ता। गी० २.८७.४

अँधियारा, रा, अंधियार : सं० पुं० (सं० अन्धकार>प्रा० अंधयार) अंधेरा। मा० १.१५९.८, बर० ३९

अँधिआरी : (१) सं० स्त्री०=अंधिआर। 'अगर धूप बह जनु अंधआरी।' मा० १.१९५.५ (२) वि० स्त्री० (सं० अन्धकारी>प्रा० अंधियारी), अन्धेरी, काली, अन्धा बना देने वाली। 'मानहुँ कालराति अँधिआरी।' मा० २.८३.५

अँधिआरें : क्रि० वि०। अन्धेरे में। 'अवध प्रबेसु कीन्ह अंधिआरें मा० २.१४७.५

अँधियारो : वि० पु० कए। अन्धकार से ढका हुआ। 'लागत जग अँधियारो।' गी० २.६६.१

अँबराई : (१) सं० स्त्री० (सं० आम्रराजी>प्रा० अंबराई) आमों का बगीचा, उद्यान, उपवन। मा० १.२१४.५
(२) पूकृ०। अम्बर=आकाश के समान शून्य में फैलाव करके, बातों का वात्याजक्र गढ़ कर। 'तुलसीदास जनि बकहि मधुप सठ हठ निसिदिन अंबराई।' कृ० ५१

अँबारी : सं० स्त्री (सं० आवारिका) आवरण, हाथी की झूल आदि। 'कलित करिवरन्ह परीं अँबारी।' मा० 1.३००.१ (२) मकान का छज्जा आदि। 'चारु बजारु विचित्र अँबारी।' मा० १.२१३.२

अ : निषेधार्थक (सं०) अव्यय जो समास के पूर्व पद में आता है—अचपल, अग्यान आदि।

अंक : सं० पुं० (सं०) (१) चिन्ह, छाप। 'राम पद अंक' मा० २.१२३.६
(२) गोद। 'प्रीति समेत अंक बैठावा' मा० ६.४६.७ (३) बाहुपाश, भुजबन्ध। 'तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता'। मा० २.१६४.४ (४) रेखा, लेख, लिपि 'बिधि के लिखे अंक निज भाला।' मा० ६.२६.१

अंकमाल : सं० स्त्री० (सं० अंकमाला)। अँकवार, बाहुबन्धन, आलिङ्गन। 'सब अंकमाल देत हैं।' कवि० ५.२६

अंका : अँक।

अंकित : भूकृ० वि० (सं०) (१) लिखित। 'राम नाम जस अंकित' मा० १.१०.५ (२) छापयुक्त, मुद्रित। 'प्रभुपद अंकित अवनि बिसेषी।' मा० २.३०८.४

अंकुर : सं० पुं०(सं०) अंखुआ,, बीज जमने पर निकलने वाली नोक। 'अच्छत अँकुर लोचन लाजा।' मा० १.३४६.५

अंकुरे : भूकृ० बहु० पुं० (सं० अंकुरित>प्रा० अंकुरिय) उगे, जमे, प्रकट हुए। 'कपट भू भट अंकुरे।' मा० ६.८४ छं०

अंकुरेउ : भूकृ पुं० फए०। अँखुआया, उगा। 'उर अँकुरेउ गरब तरु भारी।' मा० १.१२६.४

अंकुस : सं०पुं० (सं० अंकुश) हाथी चलाने आदि का उपकरण-विशेष। मा० १.२५६ (२) सामुद्रिक रेखा विशेष। 'रेखा कुलिस ध्वज अंकुस सोहे।' मा० १.१६६.३

अंग : सं० पुं० (सं०) (१) पक्ष, अंश। 'सूझ न एकउ अंग उपाऊ।' मा० १.८.६ (२) शरीर। 'भव अंग भूति मसान की।' १.१ छं० (३) देह का

अवयव । 'अंग-अंग पर वारिअहिं ।' मा० १.२२० (४) सहायक । 'रडरे अंग जोगु जग को है ।' मा० २.२८५.५ (५) योग के आठ अङ्ग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि (६) राजनीति के सात अङ्ग—स्वामी, अमात्य, सुहृद, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना । 'सकल अंग संपन्न सुराऊ। मा० २.२३५.८

अंगद : सं० पुं० (सं०) (१) वाली का पुत्र वानर विशेष । मा० ४.११ (२) बाहु भूषण विशेष । 'पहुंची अंगद···।' गी० १.४३.२

अंगन : सं० पुं० (सं०) आंगन, मैदान, रणक्षेत्र । मा० ६.८१ छं०

अंगना : सं० स्त्री० (सं०) सुन्दर अङ्गों वाली स्त्री कवि ७.१५१

अंगनि, न्हि : 'अंग'+संब० । अंगों (में, पर, ने, से आदि) । 'भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे ।' मा० ७.१२ छं० २ 'विभूषन उधम अंगनि पाई ।" कवि० २.१

अंगा : अंग । मा० ५.१६.४

अंगार, रा : सं० पुं० (सं० अङ्गार) आग का गोला । मा० ५.१२

अंगीकारा : सं० पुं० (सं० अङ्गीकार) । स्वीकार (अपना अङ्ग बना लेना) । 'तासु साप करि अंगीकारा ।' मा० १.८६.४

अंगु, गू : 'अंग'+कए । शरीर मात्र । 'सूखहिं अधर जाइ सबु अंगू ।' मा० २.४०.१

अंगुल : सं० पुं० (सं०) अँगुली की चौड़ाई की नाप । मा० ७.७६

अंगुलि : सं० । स्त्री० (सं०) । कर शाखा । मा० १.११७.३

अंगुलित्रान : सं०पुं० (सं० अङ्गुलित्राण) हस्तकवच (दस्ताने जैसा अँगुलियों का वर्ग) । गी० ७.१७.८

अंघ्रि : सं० पुं० (सं०) चरण । मा० ७.१४.६

अंचल : सं० पुं० (सं०) परिधान का छोर जो गले से नीचे कटि से ऊपर रहता है=ओढ़नी का दामन । मा० १.३११ छं०

अचलु : कए । 'चरन नाइ सिर अंचलु रोपा ।' मा० ६.६ ४

अंजन : सं० पुं० (सं०) कज्जल (दृष्टि रोग निवारण की औषधि) दीप्त करने वाला साधन । 'गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन ।' मा० १.२.१ ('निरञ्जन आदि पदों में 'बाहरी प्रकाशक से निरपेक्ष तथा निर्मल' का अर्थ रहता है ।)

अंजना : सं० स्त्री० (सं०) । हनुमान् की माता । विन० २६ १

अंजलि : सं० स्त्री० (सं०) । करपुट, हाथों से की हुई पात्र जैसे आकृति । मा० १.३

अंजि : पूकृ । आंज कर, अंजन लगाकर । मा० १.१

अंजुलि : अंजालि। मा० १.१६१.७

अंड : सं० पुं० (सं०) (१) पक्षी आदि का गोलाकार प्रसव (२) ब्राह्मण (जो अण्डाकार होता है)। 'अंड अनेक अमल जसु छावा।' मा० २.१५६.१

अंडकटाह : कढ़ाई का आकार का ब्राह्मण का अर्ध भाग। मा० ७.८० ख

अंडकोस : सं० पुं० (सं० अण्डकोश) ब्राह्मण का भीतरी भाग।' अंडकोस समेत गिरि कानन।' मा० ५.२१.६

अंडजराया : अण्डजों=पक्षियों के राजा=गरुड। मा० ७.८०.३

अंडन्हि : अंड+सं० ब०। अण्डों (में)। 'अंडण्हि कमठ हृदय जेहि भांति।' मा० २.७.८

अंत : सं० पुं० (सं०) (१) अवसान, समाप्ति। 'उधराहिं अन्त न होइ निबाहू।' मा० १.७.६ (२) परिणाम। 'सुनत बात मृदु अन्त कठोरी।' मा० २.२२.३

अंतःकरण : बोध के आन्तरिक साधन=अन्तरिन्द्रिय। इनकी संख्या चार है— (१) संकल्प-विकल्प का साधन=मन (२) अभिमसरूप अहंकार (३) निश्चयात्मक बोधकारिणी बुद्धि और (४) इन तीनों का अधिष्ठान चित्त। 'बुधि मन चित अहंकार।' विन० २०३.५

अंतक : सं० पु० (सं०) अन्त करने वाला=यमराज, मृत्यु। विन० ४६.२

अंतकाल : अन्त का समय=मृत्यु समय। मा० ४.६

अंतर : वि०+सं० पुं० (सं०) (१) भेद। 'तुम्हहि रघुपतिहि अंतर केता।' मा० ६.६.६ (२) भीतर। 'सब के उर अंतर बसहु।' मा० २.२५७ (३) भीतरी, आन्तरिक। 'अंतरसाखी' मा० ६.१०८.१४ (४) बीच में। 'उभय अंतर एक नारि सोही।' गी० २.१६.२

अंतरगत : वि० (सं० अन्तर्गत)। भीतर स्थित। 'जलचर बृन्द जाल अंतरगत।' विन० ६२.६

अंतरगति : सं० स्त्री० (सं० अन्तर्गति) अन्तःकरण की दशा, मनोभाव। गी० ५.१६.३

अंतरजामिनि : वि० स्त्री० (सं० अन्तर्यामिनी) जीवों के भीतर व्याप्त रहकर नियन्त्रित करने वाली प्रेरक शक्ति। गी० १.७२.२

अंतरजामी : वि० पुं० (सं० अन्तर्यामिन्)। ब्रह्म का तुरीय रूप जो सभी जीवों में व्याप्त एवं सूक्ष्म है। प्राणिनामन्तर्मयति इत्यन्तर्यामी—सभी प्राणियों की वही प्रेरक शक्ति है। 'अन्तराविश्यभूतानि यो विभर्त्यात्मकेतुभिः। अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्।' अन्तर्यामी साक्षात् परमेश्वर है जो प्राणियों के भीतर आवेश लेकर अपने संकेतों से उनको प्रेरित करता है। रामानुज-दर्शन में इसी की उपासना को सर्वोपरि बताया गया है। मा० १.५१.५

अंतरधान : सं०पुं० (सं० अन्तर्धान) अदृश्य होना। मा० १.७७.७

अंतरसाखी : सं० स्त्री० (सं० अन्त:साक्षी) आन्तरिक प्रमाण। 'प्रगट कीन्हि चह अंतरसाखी।' मा० ६.१०८.१४

अंतरहित : वि० (सं० अन्तर्हित) अदृश्य, अन्तर्धान को प्राप्त। 'अस कहि अंतरहित प्रभु भयऊ।' मा० १.१३३.२

अंतरू : 'अंतर'+कए। एकमात्र भेद। 'ईस अनीसहि अंतरू तैसें।' मा० १.७०.२

अंतर्धान : अंतरधान। मा० ७.१३

अंतहुं : अन्त में भी, अन्तत:, अन्ततोगत्वा। 'हठ कीन्हें अंतहुं उर दाहू।' मा० १.२४९.५

अंतावरी : सं० स्त्री० बहु० (सं० अन्त्रावली:) आंतों की लड़ियाँ, आँतें। 'अंतावरीं गहि उड़त गीध।' मा० ३.२०.६०

अंतु : 'अंत'+कए। विनाश। 'कुल अंतु किए अंत हानि।' कवि० ६.२२

अंध : सं०+वि० (सं०) (१) दृष्टिहीन। 'तापस अंध साप सुधि आई।' मा० २.१५५.४ (२) विवेक-हीन। 'मदन अंध ब्याकुल सब लोका। मा० १.८५.५ (३) अँधेरा। 'मोह अंध रवि बचन बहावै।' वैरा० २२

अंधउ : अंधा भी, अंधे भी। 'अंधउ बाधिर न अस कहहिं।' मा० ६.२१

अंधकारु : सं० पुं० (सं०)+क ए अँधेरा। 'अंधकारु बरु रबिहि नसावै।' मा० ७.१२२.१८

अंधनि : 'अंध'+सं०ब०। अन्धों (ने)। 'अंधनि लहे हैं बिलोचन तारे।' गी० १.६०.५

अंधहि : अन्धे को। 'अंधहि लोचन लाहु' मा० १.३५०.७

अंब, बा : सं० स्त्री० (सं० अम्बा) (१) माता। मा० १.३१.१४ (२) दुर्गा। 'बानि बिनायकु अंब रबि।' रा० प्र० १.१.१

अंबक : सं० पुं० (सं०) (१) नेत्र। 'नव अंबुज अंबक छबि नीकी।' मा० १.१४७.३ (२) पिता। 'अनुकूल अंबक अंब ज्यों निज डिंब हित सनमानि कै।' गी० ३.१७.३

अंबर : सं० पुं० (सं०) (१) वस्त्र। 'अंबर पीत सुर मन मोहई।' मा० ६.१२ छं० २ (२) आकाश। 'अबर अमर हरषिता' कृ० २०

अंबरीष (स) : एक पौराणिक राजा जो भगवद्भक्त थे। भगवान् न क्रुद्ध दुर्वासा से उनकी रक्षा करने हेतु अपना चक्र सुदर्शन दुर्वासा के पीछे लगा दिया था। ('जथा चक्र अयँ रिषि दुरबासा') 'सुधि करि अंबरीष दुरबासा।' मा० २.२६५.४

अंबरीस : अंबरीस (प्रा०) । विन० ६८.५
अंबा : अंब । मा० २.६०.७
अंबिका : सं० स्त्री० (सं०) दुर्गामाता, पार्वती । मा० १.६७.२
अंबु : सं० पुं० (सं०) जल । मा० २.५७.२
अंबुचर : जलजन्तु । हनु० ३४
अंबुज : सं० पुं० (सं०) कमल । मा० १.१०६.७
अंबुद : सं० पुं० (सं०) । मेघ । गी० १.७.३
अंबुधर : जलधर । मेघ । 'नव अंबुधर वर गात ।' मा० ७.१२ छं २
अंबुधि : सं० पुं० (सं०) समुद्र । मा०१.८५.२
अंबुनिधि : अंबुधि । मा० २.२८३.३
अंबुपति : जलाधीश=वरुण । मा० ६.१५.६
अंभोज : सं० पुं० (सं०) । कमल । मा० १.३१८ छं०
अंभोद : सं० पुं० (सं०) । मेघ । विन० ५६.८
अंभोधि : सं० पुं० (सं०) । समुद्र । विन० २५.१
अंभोरुह : सं० पुं० (सं०) । कमल । गी० १.५४.२
अंस : (१) सं० पुं० (सं०) कन्धा ।
(2) भाग । 'ईस अंस भव'—मा० १.२८.८
(३) ईश्वर के गुणरूप चित् (जीव) और अचित् (प्रकृति) । 'ईस्वर अंस जीव अबिनासी ।' मा० ७.११७.२ (४) विष्णु आदि जो परब्रह्म के कलावतार हैं—मा० १.१४४.६
अंसनि : 'अंस'+सं०ब० । कन्धों (पर) । 'अंसनि धनु, सर कर कमलनि ।' गी० १.५५.३
अंसन्ह : अंसनि । अंशों । 'अंसन्ह सहित देह धरि ताता ।' मा० १.१५२.२
अंसिक : वि० (सं० आंशिक) । (१) अंश से उत्पन्न । 'सुर अंसिक'—मा० ६.११४.८ (२) अंशमात्र, अल्प । निज अंसिक सुख लागि—कृ० ३१
अइसिहुं : ऐसी भी । 'अइसिहुँ मति उर बिहर न तोरा ।' मा० ६.२२.२
अइसे : वि० पुं० बहु० । ऐसे । 'अइसे मनुज अनेक ।' मा०६.३१
अइसेउ : ऐसे भी । 'अइसेउ एक तिन्हहि जे खाहीं ।' मा० ६.४.६
अइहहिं : आ० भ० प्र० ए० । आएँगे । 'अइहहिं रघुबीरा ।' मा० ५.१६.४
अउर : अवर । अन्य । 'नहिं जानउँ कछु अउर कबारू ।' मा० २.१००.७
अकंटक : वि० (सं०) कण्टक=शत्रु या बाधा से रहित । निष्कण्टक । प्रतिरोध रहित । 'जोगी अकंटक भए ।' मा० १.८७.छं०
अंकपन : सं० पुं० (सं०) एक राक्षस (युद्ध में कम्प रहित) । मा० १.१८०

अकथ : वि० (सं० अकथ्य) अकथनीय, अनिर्वचनीय (जो कहा न जा सके)। मा० १.२.१३

अकथनीय : अकथ। मा० १.६०.१

अकनि : पूकृ० (सं० आकर्ण्य>प्रा० आकण्णि अ>अ० आकाण्णि) सुन कर। 'अवनिय अकानि रामु पगु धारे।' मा० २.४४.१

अकरुन : वि० (सं० अकरुण) करुणारहित, निर्दय। मा० १.२७५.६

अकल : वि० (सं०) कलारहित, अखण्ड, निर्विकार। 'अज अकल अनीह अभेद।' मा० १.५०

अकलंकता : सं० स्त्री० (सं०) निष्कलंकता, निर्दोषता। 'अकलंकता कि कामी लहई।' मा० १.२६७.३

अकलंका : वि० (सं० अकलंक) कलंकरहित, निर्दोष। 'सबहि भाँति संकरु अकलंका।' मा० १७.२.४

अकस : सं० पुं०। ईर्ष्या, होड़, अमर्ष। 'बंदि बोले बिरद अकस उपजाइ कै।' गी० १.८४.७

अकसु : क ए। एतेमान अकसु कीबे को आपु आहि को। कवि० ७.१००

अकसर : वि० (सं० एकसर) एकाकी, अकेला। 'अकसर आयहु तात। मा० ३.२४

अकाज, जा : सं० पुं० (सं० अकार्य>प्रा० अकज्ज) कार्य बिगड़ना, प्रयोजन की हानि। 'पर अकाज भर सहसबाहु से।' मा० १.४.३

अकाजु : क ए। अद्वितीय प्रयोजन हानि। 'पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं।' मा० १.४.७

अकाजेउ : भूकृपुं कए। अकाज=मृत्यु को प्राप्त हुआ। 'मानहुं राजु अकाजेउ आजू।' मा० २.२४७.६

अकाथ : वि० (सं० अकृतार्थ—प्रा० अकअत्थ) निस्प्रयोजन, निरर्थक। 'तनु······कत खोवत अकाथ।' वि० ८४.१

अकाम : (१) वि० (सं०) कामना रहित। मा० १.७६.२ (२) सं० पुं० (सं०)। वासना-रहित मन:स्थिति। 'अवहै अनल अकाम बनाई।' मा० ७.१७१.१३

अकामा : अकाम। मा० ३.४५.७

अकामिन् : वि० (सं०) कामनाहीन। मा० ३.४.छं०

अकारन : क्रि० वि०+वि० (सं० अकारण)। बिना कारण के ही। 'अकारन को ही।' मा० १.२६७.२

अकाल : सं० पु० (सं०) ऋतु के विपरीत समय। वह ऋतु जिसमें वस्तु विशेष पैदा न होती हो। 'जिमि अकाल के कुसुम भवानी।' मा० ३.२४.८

अकास : सं० पुं० (सं० आकाश) मा० १.१७४.४

अकासबानी : सं० स्त्री० (सं० आकाशवाणी) अदृश्य दैवी वाणी। मा० १.१७३.५

अकासा : अकास।

आकिंचन : वि० (सं०) दरिद्र (जिसके पास कुछ न हो)। मा० १.१६१.३

अकुंठा : वि० (सं०) कुण्ठारहित, छलना रहित, निर्व्याज, निश्छल। 'रघुपति भगति अकुंठा।' मा० ६.२६.८

अकुल : वि० (सं०) कुलहीन, अकुलीन। मा० १.७९.६

अकुला : (सं०) आकुलायते>प्रा० आकुलाइ

अकुलाइ, ई : विकल होना, तिलमिलाना आ० प्रए०। विकल होता— होती— है। 'देखि-देखि अकुलाइ।' मा० २.७६

अकुलाइ, ई : पूकृ०। आकुल होकर। 'गहे चरन अकुलाइ।' मा० २.७१ 'केवट चरन गहे अकुलाई।' मा० २.१०२.४

अकुलाति : व कृ स्त्री०। विकल होती। 'मति अकुलाति।' विन० २२१।३

अकुलान, ना : भूकृ पुं०। व्याकुल हुआ। मा० २.९९.४

अकुलानि, नी : स्त्री। व्याकुल हुई। 'बिपुल वियोग प्रजा अकुलानी।' मा० २.५१.६

अकुलाने : ब०। व्याकुल हुए। 'दरस लागि लोचन अकुलाने।' मा०.१.१२९.७

अकुलान्यो : अकुलान कए। व्याकुल हुआ। गी० ३.८.२

अकुलाहिं, हीं : आ० प्र०। व्याकुल होते हैं। 'पुनि-पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं।' मा० १.१३५.२

अकुलीन : अकुल। जो उत्तम कुल का न हो+कुलहीन। पा० मं० ५५

अकेल, ला : वि० पुं० (सं० एकल<प्रा० एक्कल) एकाकी। 'रिपु तेजसी अकेल अपि।' मा० १.१७०

अकेलि, ली : स्त्री०। एकाराकिनी। 'बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतु।' मा० १.५३.८

अकेलें : क्रि० वि० (सं० एकलेन<प्रा० एक्कलेण<अ० एक्कलें) एकाकी स्थिति में। 'को तुम्ह कस बन फिरहु अकेलें।' मा० १.१५९ ३

अकोबिद : वि०। शास्त्रज्ञान-रहित, अकुशल। मा० १.११५.१

अखंड : वि० (सं०) अविच्छिन्न, निर्विघ्न, एकतान। 'लागि समाधि अखंड अपारा।' मा० १.५८.८

अखंडल : सं० पुं० (सं० आखण्डल)। इन्द्र। पा० म० ११४

अखंडा : अखंड। मा० ७.६३.१

अखंडित : वि० (सं०)=अखंड। मा० ७.४९.७

अक्षय : वि० (सं० अक्षय>प्रा० अक्खय) अविनाशी।

अखयबटु : प्रयाग तीर्थ का वटवृक्ष विशेष जिसको 'अक्षयवट' कहते हैं। मा० २.१०६.७

अखारा : सं० पुं० (सं० अक्षवाट<प्रा० अक्खाड) मल्लयुद्ध का स्थान विशेष, मनोरंजन का सामूहिक स्थान या पंडाल। 'तहं दसकंधर केर अखारा।' मा० ६.१३.४

अखारेन्ह : अखाड़ों में, कुश्ती के स्थानों में। मा० ५.३.छं०

अखिल : वि० (सं०) सम्पूर्ण, अशेष, सकल (खिल=शेष)। मा० ।१।१६१

अखिलविग्रह : जिसका शरीर (विग्रह) सब कुछ हो; विश्वरूप; विराट; परमेश्वर (जिसके चित् और अचित् शरीर रूप हैं)। विन० १०.७

अखिलेश्वर : सं० पुं० (सं० अखिलेश्वर)। सर्वेश्वर, चराचर विश्व का स्वामी। मा० १.४८.२

अखेटकी : सं० स्त्री० (सं० आखेटिकी) आखेट कर्म मृगया। 'अटत गहनगन अहन आखेटकी।' कवि० ७.९६

अग : वि० (सं०)। स्थावर, वृक्ष-पर्वत आदि अचर पदार्थ, जड़ प्रकृति। 'अग जगमय सब रहित बिरागी।' मा० १.१८५.७

अगति : गतिहीनता, निर्गति, गतिरोध। गी० २.८२.३

अगनित : वि० (सं० अगणित)। असंख्य, अमित। मा० १.९३.छं०

अगम : वि० (सं० अगम्य>प्रा० आगम्य)। पहुंच से परे। 'उभय अगम जुग सुगम नामते।' मा० १.२३.५

अगमनो : वि० पुं० कए। अग्रगामी, प्राथमिक, सामने आया हुआ। गी० ५.१५.३

अगमु : 'अगम'+कए। 'अगमु न कछु' मा० १.३४२.५

अगर, अगरु : सं० पुं० (सं० अगरु, अगुरु)। सुगन्धित काष्ठ विशेष जिसका धूप के समान उपयोग होता है। मा० १.१९५.५; १.१०.६

अगलगे : वि०पुं० (सं० अग्नि लग्न या अग्रलग्न)>प्रा० अग्गि लग्ग या अग्ग लग्ग) दाहयुक्त तथा आगे-आगे विषयों में संलग्न।' 'अवन-नयन-मग अगलगे, सब थल पतितायो।' विन० २.७६.५

अगवान, ना : सं० पुं०—आगे जाकर बरात आदि का स्वागत करने वाले।' मा० १.९५.२; ९६.१

अगवान्ह : सम्ब व० अगवानों (ने)। 'अगवानन्ह जब दीखि बराता।' मा० १.३०५.७

अगवानी : सं० स्त्री०। आगे जाकर स्वागत करने की क्रिया। 'नियरानि नगर बरात हरषी लेन अगवानी गए।' जा० मं० १३५

अगस्ति : सं० पुं० (सं०)। एक ऋषि जो पौराणिक परम्परा में प्रथम दक्षिण यात्रा के लिये प्रसिद्ध हैं। समुद्र पीने के लिये भी वे विख्यात हैं। मा० ३.१२.९

अगह : वि० (सं० अग्रह) अग्राह्य, अज्ञेय, पकड़ से बाहर। 'नृपगति अगह, गिरा जाति न गही है।' मी० १.८७.२

अगहु : 'अगह'+कए। एकमात्र अग्राह्य=अज्ञेय। 'सब विधि अगहु अगाध दुराऊ।' मा० २.४७.७

अगहुड़, अगहुंड़ : वि०+क्रि० वि० आगे की ओर, आगे गति लेने वाला। 'भय बस अगहुड़ परइ न पाऊ।' मा० २.२५.१ 'मन अगहुंड़, तन पुलक सिथिल भयो।' गी० २.६६.३

अगाऊ : वि०+क्रि० वि०। आगे, अग्रगामी। 'उलटि बिबादन आइ अगाऊ।' कृ० १२

अगाध : वि० (सं०) अथाह; जिसमें अवगाहन न किया जा सके। मा० १.२३.१

अगाधा : अगाध। मा० १.३७.२

अगाधु, धू : एक। 'सुमति भूमि थल हृदय अगाधू।' मा० १.३६.३

अगार : सं० पुं० (सं० आगार) घर, भण्डार। गी० १.७१.२

अगारु : कए। एकमात्र भण्डार। 'अपकार को अगारु जग।' कवि० ७.६८

अगारे : अगार+बहु०। 'सील सुधा के अगारे।' गी० १.६४.३

अगिनि : सं० पुं० (सं० अग्नि<प्रा० अग्गिणी) (१) आग। मा० १.६४.८ (२) आग्नेय दिशा के दिगपाल=अग्निदेव। मा० १.१८२.१०

अगिले : वि० पुं० (सं अग्रिम—प्रा० अग्गिल्ल) आगामी, प्रथम, आगे होने वाले। विन० २४.४

अगुआई : क्रि० वि०। अग्रभाग में, अगुआ (अग्रगामी) के रूप में। 'कियउ निषादनाथु अगुआई।' मा० २.२०३.१

अगुन : (१) सं० पुं०। गुणाभाव, अवगुण। 'खल अघ अगुन, साधु गुन गाहा।' मा० १.६.१ (२) वि०। उत्तम गुण, कौशल आदि से रहित। 'अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पितां बनवास।' मा० ६.३१क (३) गुणरहित=निर्गुण। वैष्णव दर्शन में माया गुणों से रहित (कल्याण गुणों से युक्त) ब्रह्म। 'अगुन अनुपम गुन निधान सोए मा० १.१९.२ ब्रह्म के सर्वथा निर्गुण स्वरूप को वैष्णव मत में अमान्य किया जाता है—दे मा० ७.१११

अगेह : वि० (सं०) गृहहीन। मा० १.७९.६

अगेहा : अगेह। मा० १.१६१.४

अगोचर : वि० (सं०) जो इन्द्रियां (गो) की गति (चर) से परे हो; अतीन्द्रिय, अप्रमेय। 'मन बुद्धिबर बानी अगोचर प्रकट कवि कैसें करें।' मा० १.३२२.छं०

अग्य : वि० (सं० अज्ञ) अग्यानी, मूढ़। मा० १.५१.२

अग्यता : सं० स्त्री० (सं अज्ञता) मूढता। मा० ७.३४.६

अग्याँ : आज्ञा से। 'पितु अग्याँ अघ अजसु न भयऊ।' मा० २.१७४.८

अग्या : सं० स्त्री० (सं० आज्ञा) आदेश।' मा० १.७७.४

अग्याता : वि०+क्रि० वि० (सं० अज्ञात) अनजान, अनजाने। 'अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता।' मा० १.२८५.६

अग्यान, ना : (१) सं० पुं० (सं० अज्ञान) अविद्या। वैष्णव दर्शन में सात्विक माया विद्या है जबकि तमोगुणी माया आवरण है जो ज्ञान को आच्छादित करती है; रजोगुणी माया विक्षेप शक्ति है जिससे देहादि में आत्मा का अभिमान होता है। बाद वाली दोनों अविद्या अथवा अज्ञान हैं। (२) वि०। ज्ञानरहित, अज्ञ, मूढ़। मा० ४.२

अग्यानी : वि० पुं० (सं० अज्ञानिन्) अज्ञ, ज्ञानहीन। मा० १.११७.१

अग्यानु, नू : 'अज्ञान'+कए। अद्वितीय अज्ञान। 'निज अग्यानु राम पर आना।' मा० १.५४.१

अग्र : वि०+क्रि० वि० (सं०) अग्रगामी, आगे, अगुआ। 'चली अग्र करि प्रिय सखि सोई।' मा० १.२२९.८

अग्रगण्य : वि० (सं०) प्रथम गणना के योग्य। मा० ५ श्लो० ३

अग्रणी : वि० (सं०) आगे चलने तथा ले चलने वाला, नायक, मुखिया। विन० २७.३

अघ : सं० पुं० (सं०) पाप। मा० १.४.५

अघट : वि० (सं०)। जो घटित न हो सके, अपूर्व, अद्भुत। विन० २५.८

अघटित : वि० (१) (सं०) जो घटित न हो सके, असंभव। (२) (सं० अघट्टित) अविचल, अटल। 'काल करम गति अघटित जानी।' मा० २.१६५.६

अघरूप : साक्षात् पाप, मूर्त पातक, अति पातकी। मा० १.१७६

अघहारी : वि० (सं०) पापों को हरने वाला, पापनाशक। मा० २।२९८।३

अघाइ, ई : पूर्व० कृ० (सं० आघ्राय>प्रा० अग्घाइअ>अ० अग्घाइ) तृप्त होकर, पूर्णतया, पूरम्पार, सर्वात्मना। 'सो पछिताइ अघाइ उर।' मा० २.६३ 'जनम लाभ कई अवधि अघाई।' मा० २.५२.८

अघाउं, ऊं : आ० उए (सं० आजिघ्रामि>प्रा० अग्घामि>अ० अग्घाउँ) तृप्त होऊँ, तृप्त हो सकता हूं। 'नहिं अघाउँ थोरें जल।' मा० ६.५७.७

अघाउंगो : आ० भवि० पुं उए। तृप्त होऊँगा। गी० ५.३०.३

अघात, ता : (१) वकृ० पुं०। तृप्त होता-ते। 'नहिं अघात अवनामृत जानी।' मा० ५.४९.३ (२) सं० पुं० (सं० आघात)। प्रहार, चोट। 'बुंद अघात सहहिं गिरि कैसें।' मा० ४.१४.४

अघाति, ती : वकृ स्त्री०। तृप्त होती। 'जासु कृपाँ नहिं कृपा अघाती।' मा० १.२८.३

अघानी : भूकृ० स्त्री० । तृप्त हुई । 'प्रजा प्रमोद अघानी ।' गी० १.४.६
अघाने : भूकृ पुं० (बहु०) । तृप्त हुए । 'भाव भगति आनन्द अघाने ।' मा० २.१०८.१
अघानो : भूकृ कए । तृप्त हुआ । 'लखइ अघानो भूख ज्यों ।' दो० ४४३
अघारी : वि (सं अघारि) पाप के शत्रु, पापनाशक । मा० ३.१३.५
अघाहिं, हीं : आ० (१) प्रब । अघाते हैं । 'नहिं अघाहिं अनुराग भाग अरि भागिनि ।' जा० मं० १५० (२) उब । हम अघाते हैं । 'नहिं पेट अघाहीं ।' मा० २.२५१.५
अघाहूं : आ०—आशीर्वाद—प्रब । तृप्त हों । 'राम भगत अब अमिअँ अघाहूं ।' मा० २.२०६.६
अघी : वि० (सं०) पापी । कवि० ७.५
अघौघ : सं० पुं० (सं०) पाप-प्रवाह, पातक समूह । गी० ७.१६.५
अचंचल : वि० (सं०) अचल, स्थिर । मा० १.२३०.४
अचंभव : सं० पुं०+वि० (१) सं० असंभव (२) सं० अत्यद्भुत>प्रा० अच्चब्भुअ) विस्मयजनक । मा० ६.७१.८
अचइ : अँचइ । पान करके । विन० २४.४
अचगरि, री : सं० स्त्री० (सं० अत्यकरि:>अतिशय अकार्य>प्रा० अच्चगरी) अतिशय अनुचित आचरण, धृष्टता, दुर्व्यवहार । 'जौं लरिका कछु अचगरि करहीं ।' मा० १.२७७.३
अचर : वि० (सं०) स्थावर, अचल—वृक्ष, पर्वत आदि । 'चर अरु अचर नाग नर देवा ।' मा० १.१०७.८
अचरज : सं० पुं० (सं० आश्चर्य>प्रा० अच्छरिज्ज) विस्मय, विस्मयजनक अद्भुत कार्य । 'कीन्ह जो अचरज राम ।' मा० १.११०
अचरजु : कए । अद्वितीय विस्मय । 'सुनि सबकें मन अचरजु आवा ।' मा० १.१२७.४
अचल : (१) सं० पुं० (सं०) । पर्वत । 'बटु बिस्वासु अचल निज धरमा ।' मा० १.२.११
(२) वि० । अविचल । पद, निष्ठा, संकल्प आदि से विचलित न होने वाला । 'बिस्व भार भर अचल छमा सी ।' मा० १.३१.१० (३) नित्य, शाश्वत वैष्णव तथा शैवमत में जग (प्रपञ्च भी नित्य है) । 'बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी ।' मा० २.२८२.६
अचलु : कए । पर्वत । 'अचलु ल्यायौ चलि कै ।' कवि० ६.५५
अचवँ : अचवँइ—(सं० आचामति>प्रा० आचमइ>अ० आचवँइ—पीना, मुखादि का प्रक्षालन करना) ।

अचवँत : वकृ पुं० । आचमन करता-करते; पीता-पीते । 'जो अचवँत नृप मातहिं तेई ।' मा० २.२३१.७

अचवांइ : पूकृ० । आचमन कराकर, मुख आदि धुलाकर । 'अचवांइ दीन्हे पान ।' मा० १.९९.छं०

अचानक : क्रि० वि० । सहसा, अकस्मात् । कवि० २.२५

अचार, रा : सं० पुं० (सं० आचार) (१) आचरण (२) शास्त्रानुसार कर्म (आचार: परमोधर्मः) । मा० १.१८३. छं० ।

अचारु, रू : कए । 'दुहुं कुलगुरु सब कीन्ह अचारू ।' मा० १.३२३.८

अचिरिजु : अचरजु । अद्भुत् । 'नहिं अचिरिजु जुग जुग चलि आई ।' मा० २.१९५.१

अचेत, ता : वि० (सं० अचेतस्) । (१) अविकसित चेतना वाला । 'तब अति रहेउँ अचेत ।' मा० १.३० (२) मूढ । 'डाटेंहि नवहिं अचेत ।' रा० प्र० ५.५.६ (३) सं० पुं० । जड़ता, चैतन्यहीनता । 'असुभ अरिष्ट अचेत ।' रा० प्र० ३.३.४

अचेतु : कए । कवि० ७.८२

अच्छ : सं० पुं० (सं० अक्ष) रावण का एक पुत्र । मा० ६.३६.५

अच्छत : सं० पुं० (सं० अक्षत) । अखण्डित चावल जो पूजा के लिए हाथ से भूसी निकालकर बनाए जाते हैं । मा० १.२९६.८

अच्छम : वि० (सं० अक्षम) असमर्थ, अशक्त, निर्बल । दो० ७४

अच्छय : अखय । क्षयरहित, पूर्ण । 'अच्छय अकलंक सरद चंद चंदिनी ।' गी० २.४३.४

अच्छर : सं० पुं० (सं० अक्षर) । स्वर अथवा स्वर सहित व्यञ्जन । मा० १.१४३

अच्छु : 'अच्छ,+क ए । अक्षकुमार=रावण पुत्र। कवि ६.२२

अच्युत : वि०+सं० पुं० (सं०) । पद, पथ आदि आदि से विचलित न होने वाला, निर्विकार=परमेश्वर । विन० १०.६

अछत : वकृ पुं० (सं० सत्>प्रा० अच्छंत) रहता हुआ, रहते हुए । 'अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी ।' मा० १.२३.७

अछधारि : सं० स्त्री० (सं० अक्षधारि) । अक्षकुमार की सेना । कवि० ५.२८

अछोभा : वि० पुं० (सं० अक्षोभ्य) । क्षोभ में आने वाला, भावावेश में न डाला जा सकने वाला, गम्भीर । 'बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा ।' मा० १.२७४.८

अज : (१) सं० पुं० (सं०) । बकरा । मा० ५.३ छं ३

(२) ब्रह्मा । मा० १.९१.७

(३) वि० । अजन्मा । 'अज सच्चिदानन्द परधामा ।' मा० १.१३.३

अजगर : सं० पुं० (सं० अजं गिलतीति अजगरः) बकरा या उसके बराबर जन्तु को निगल जाने वाला सर्पजातीय जन्तुविशेष । मा० ७.१०७.७

अजय : वि० पुं० (सं० अजय्यः=जेतुं न शक्यः) जो जीता न जा सके । मा० १.१७०.५

अजर : वि० (सं०) जराहीन (प्रायः देव वाचक) । जिसे क्षय या बुढ़ापा न आता हो—'अजर अमर सो जीति न जाई ।' मा० १.८२.७

अजस : सं० पुं० (सं० अयशस्) । अकीर्ति । कुख्याति । मा० २.१२

अजसी : वि० (सं० अयशस्विन्) कुख्यात । मा० ६.३१.२

अजसु : 'अजस'+कए । एक मात्र अकीर्ति । 'अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ ।' मा० २.४५.१

अजहुं, हूं : आज भी, अब भी । मा० १.५०.८

अजा : (१) सं० स्त्री० (सं०) । बकरी । 'होत अजा-सुर बारिधि बाढ़े ।' कवि० २.५ (२) वि० स्त्री० । अजन्मा । 'अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि मा० १.९८.३

अजायक : वि० । जो याचक न हों=पूर्ण तृप्त । मा० ७.१२.१

अजाति : वि० (सं०) (१) जातिहीन=अकुलीन (२) जन्महीन (जाति=जन्म) । अजन्मा । पा० मं० ५५

अजादि : ब्रह्मा इत्यादि देव वर्ग । मा० १.५४

अजान : वि० पुं० (सं० अज्ञ>प्रा० अजाण) जिसे उस विषय की जानकारी न हो । 'पूछत जानि अजान जिमि ।' मा० १।२६९

अजानि : पूकृ० । न जानकर विना जाने । 'जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने ।' विन० १६०.३

अजामिल : एक पौराणिक ब्राह्मण पात्र जो दासी-संसर्ग से पतित हो गया था और पुत्र 'नारायण' को मरते समय पुकारने से तर गया था । कवि० २.५

अजामिलु : कए । 'अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ ।' मा० १.२६.७

अजित : वि० (सं०) जिसे कोई जीत न सका हो, अपराजित, सर्वोपरि । 'निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ।' मा० ४.२६.१२

अजिन : सं० पुं० (सं०) चर्म, मृग चर्म । मा० २.२११

अजिर : सं० पुं० (सं०) आँगन । मा० १.१०५.६ (२) क्षेत्र, मैदान—जैसे, 'रन-अजिर' मा० १.२२१.४

अजीता : अजित । 'सबदरसी अनबद्य अजीता ।' मा० ७.७२.५

अजीरन : वि०+सं० पु० (सं० अजीर्ण) पेट में न पचा हुआ अन्न; अपच । 'असन अजीरन को समुझि तिलक तज्यो ।' गी० २.३३.२

अजे : वि० पुं० (सं० अजेय) जो जीता न जा सके । 'रघुबीर महारनधीर अजे ।' मा० ७.१४.१७

अजै : अजय । 'अतिसै प्रबल अजै ।' विन० ८९.४

अजोध्या : अवध । मा० ७.२७.२ इक्ष्वाकु के पुत्र विकुक्षि का उपनाम 'अयोध्या' था, उन्होंने पुरी बसाई थी अतः 'अयोध्या' नाम पड़ा—दे० हरिवंशपर्व ।

अटक : सं० स्त्री० । गतिरोध, रोकटोक, बाधा । 'को करै अटक कपि कटक अमरषा ।' कवि० ६.७

अटक, अटकइ : <सं० आटंकते—टकि बन्धने । बंधना, संलग्न होना । आ० प्रए । अटकता है, लगता है, लग जाय । 'जब मति यहि सरूप अटकै' विन० ६३.९

अटत : कृपुं० (सं० अटत्—अटगतौ) चलता, चलते । खोज में भ्रमण करते । 'अटत गहन बन अहन अखेटकी ।' कवि० ७.९६ विशेषतः पैदल तथा खोज (या साध्य पाने) हेतु यात्रा का अर्थ आता है—भिक्षाटन, तीर्थाटन आदि । 'सुतीरथ अटत ।' विन० १२९.३

अटन : सं० पुं० (सं०) पर्यटन, भ्रमण । 'अटन पयादे ।' मा० २.३११.३

अटनि : अट्टों=अटालों पर । गी० १.५.१

अटनु : 'अटन'+कए । पैदल भ्रमण । 'अटनु रामगिरि बन तापस थल ।' मा० २.२८०.७

अटन्ह=अटनि । अटालों । 'प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि ।' मा० १.३४७.४

अटपटि : वि० स्त्री० । दुर्बोध, विसंगत, विचित्र । 'अटपटि बानी ।' मा० १.१३४.६

अटपटे : वि० पुं (बहु०) । विचित्र, व्यङ्ग्ययुक्ता । 'प्रेम लपेटे अटपटे ।' मा० २.१००

अटल : वि० (सं०—टल वैक्लव्ये) अविकल, अविचल । कवि० ६.४७

अटवी : सं० स्त्री० (सं०) वन । विन० ५२.७

अटारिन्ह : अटारियों (पर) । मा० १.३०१.४

अटारीं : (१) सं० स्त्री० बहु० (सं० अट्टालिकाः) अटारियाँ, छतें, छतों पर बनी शालायें । 'जातरूप मनि रचित अटारीं ।' मा० ७.२७.३ (२) अटाली पर । 'निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं ।' मा० ५.२५.६

अट्टहास : सं० पुं० (सं०) ठहाका लगाकर हँसने की क्रिया । मा० ६.४०.४

अठकठ : वि० (सं० अष्ट-काष्ट>प्रा० अट्ठ-कट्ठ) आठ काठों से बना, अनमेल, अस्थायी । 'बाँस पुरान साज सब अठकठ ।' विन० १८९.२ जिस प्रकार कई

प्रकार की लकड़ियों से जोड़ गाँठ कर बनाया खटोला टिकाऊ नहीं होता, उसी प्रकार पाँच महाभूतों और तीन अन्तःकरणों से रचा हुआ शरीर अस्थायी है।

अठारह : संख्या (सं० अष्ठादश <प्रा० अट्ठारह) । मा० ५.५५.३

अढ़ाई : (सं० अर्ध तृतीय >प्रा० अड्ढाइज्ज) वह संख्या जिस में दो पूरे और तीसरे का आधा हो। मा० २.२७८.६

अढ़ुक : सं०पुं०। ठोकर। 'फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागें अढ़ुक पहार।' दो० ५६०

अढ़ुकि : पूकृ०। लड़खड़ाकर, ठोकर खाकर। 'अढ़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे।' मा० २.१४३.६

अतनु : वि० (सं०) शरीर-रहित=अनङ्ग। 'रति अति दुखित अतनु पति जानी।' मा० १.२४७.५

अतर्क्य : वि० (सं०) तर्कशक्ति से अज्ञेय; बुद्धि की युक्तियों से परे; अतीन्द्रिय। 'राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी।' १.१२१.४

अति : अव्यय (सं०) अतिशय, अधिक, अत्यन्त। 'रति अति दुखित अतनु पति जानी।' मा० १.२४७.५ ऐसे स्थलों में प्रायः अर्थ की अतिक्रान्त दशा का आशय रहता है।

अति उकुति : सं० स्त्री० (सं० अत्युक्ति)। एक काव्यालंकार जिसमें शौर्य तथा उदारता आदि का अद्भुत रूप से वर्णन किया जाता है। मा० ६.२.१-४

अतिकल्प : वि० (सं०) (१) कल्पनातीत, अप्रमेय (2) कल्पातीति=युग, कल्प आदि कालसीमाओं से परे=कालातीत। विन० ५४.६

अतिकाय : वि०+सं०पुं० (सं)। (1) बड़े डील डौल वाला (2) एक राक्षस-यूथप का नाम। मा० १.१८०

अतिकाया : अतिकाय। मा० ६.४६.१०

अतिकाल : वि० (सं०—अतिक्रान्तः कालम्) कालातीत, कालजयी, काल से परे। विन० ११.७

अतिथि : सं (सं०) वह अभ्यागत जिसके आने की तिथि पूर्व निश्चित न हो। मा० १.३२.८

अतिबल : वि० (सं०) अतिशय बली। मा० १.१८०.३

अतिबलो : कए। गी० ५.४२.१

अतिरोषी : अत्यन्त क्रोधी। मा० १.१७१.६

अतिसय अतिसै : क्रि०वि० (सं० अतिशय) अत्यन्त। मा० १.१८.७, विन० ८६.४

अतीत : वि० (सं०) अतिक्रान्त, परे। 'गिराज्ञान गोऽतीतम्।' मा० ७.१०८.३

अतीति : वि० स्त्री० (सं० अतीता)। बीती। 'बड़ि बय बृथहि अतीति।' विन० २३४.२

अतीवा : क्रि०वि० (सं० अतीव) सादृश्यातीत, अतिशय, सर्वथा। 'भरतगति अकथ अतीवा।' मा० २.२३८.५

अतुल : वि० (सं० अतुल, अतुल्य) अपरिमित, अनुपम। मा० १.१५३.६

अतुलबल : अपरिमित तथा असदृश बल वाला। मा० १.१७८ ख

अतुलित : वि० (सं०) बिना तौल का, अमित; तुलना रहित, अद्वितीय। मा० १.१८८.३

अतुलित बल : अतुल बल। मा० ६.११२.६०

अत्यंत : वि०+क्रि०वि० (सं०) अन्त का अतिक्रमण किए हुए, अन्तहीन, असीम, अतिशय, नितान्त। 'बाक्य-ग्यान अत्यन्त निपुन।' विन० १२३.२

अत्रि : सं०पुं० (सं०) एक ऋषि का नाम। मा० ३.३.४

अथरबनी : सं० पुं० (सं० अथर्वणि) (१) अथर्व-वेद का पारंगत=मन्त्रकुशल (२) पुरोहित। 'आपु बसिष्ठ अथरबनी।' गी० १.६.१०

अथर्बन : सं०पुं० (सं० अथर्वन्) चतुर्थ वेद। विन० १५५.२

अथवँ अथवँइ : (सं० असामेति>प्रा० अत्थमइ>अ० अत्थवँइ—अस्त होना) आ० प्रए। अस्त होता है, अस्त हो जाय। 'जौं बिनु अवसर अथवँ दिनेसू।' मा० २.३०५.७

अथवत : वकृ पुं०। अस्त होता। दो० ३१६

अथवा : अव्यय (सं०)। या (विकल्प)। मा० ७.१२८

अथाईं : 'अथाई'+बहु०। अथाइयाँ, सभाशालाएँ। 'हाट बाट घर गली' अथाईं।' मा० २.११.३

अथाई : सं० स्त्री० (सं० आस्थायिका>प्रा० अत्थाइआ>अ० अत्थाई)। सभा भवन, दरबार। विन० ६२.७

अदन : वि०। खाने वाला। 'बिष अदन सिव।' कवि० ७.१५२

अद्भुत : अद्भुत। मा० १.१४३.२

अदभ्र : वि० (सं०) अविरल, अनल्प, व्यापक, महान्। 'अगुन अदभ्र गिरा गोतीता।' मा० ७.७२.५

अदर्भ : वि० (सं०) बन्धनरहित, असीम=अदभ्र। विन० ५४.७

अदाग : वि० (फ़ा० दाग) कलंकरहित, निष्पाप। वैरा० ४४

अदाया : निर्दयता। मा० ६.१६.३

अदिति : सं० स्त्री० (सं०) देवमाता। मा० १.३१.१४

अदिनु : सं० पुं० कए। संकट का दिन, विपत्ति काल, दुर्भाग्य। 'अदिनु मोर नहिं दूषन काहूं।' मा० २.१८१.७

अदूषन : वि० (सं० अदूषण) दोषरहित। शुद्ध गी० ७.१६.७

अदृश्य : वि० (सं० अदृश्य) लुप्त, अन्तर्हित। मा० १.१८९

अदेय : वि० (सं०) जो दिया जा न सके, जो देने योग्य न हो। मा० १.१४९.८

अदोषा : वि० (सं० अदोष) दोषरहित। निष्कलुष। 'राम पेम बिधु अचल अदोषा।' मा० २.३२५.६

अद्भुत : सं० पुं०+वि० (सं० न भूतमिति अद्भुतम्) अभूतपूर्व, अपूर्व, आश्चर्यजनक (२) नौ रसों में से एक रस जिसका स्थाई भाव विस्मय होता है। मा० १.१९२.छं०

अद्रि : सं० पुं० (सं०)। पर्वत। विन० ४३.४

अद्वितीय : वि० (सं०) जिससे दूसरा कोई न हो=द्वितीय रहित; अद्वैत, अनुपम। विन० ५३.३

अद्वैत : वि०+सं० पुं० (सं०) द्वैतरहित, अद्वितीय, अभेद, अखण्ड, अनेकत्व रहित, एकमात्र सत्ता=ब्रह्म०। मा० ७.१३.छं०६

अध : अव्यय (सं० अधस्) नीचे। 'अध अर्ध बानरु।' कवि० ५.१७१

अधगति : सं० स्त्री० (सं० अधोगति) तीन प्रकार की जीव-गतियाँ दर्शनों में बताई गई हैं—(१) अर्ध गति=सात्त्विक देवयोनियाँ (२) मध्यगति=राजस मनुष्य योनि (3) अधोगति=तमोगुणी पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, वृक्षादि योनियाँ। 'रहु अधमाधम अधगति पाई।' मा० ७.१०७.८

अधगो : सं० पुं (अधः=नीचे+गो=इन्द्रिय)। पायु, मलत्यागेन्द्रिय। मा० ६.१५.८

अधजरति : वि० स्त्री० (१) (सं० अर्धजरती) अर्धवद्धा। (२) (सं० अर्ध ज्वलंती) अधजली होती हुई। 'निकसि चिता तें अधजरति मानहुं पती परानि। दो० २५३

अधन : वि० (सं०) निर्धन। मा० १.१६१.४

अधबिच : क्रि० वि० (सं० अर्ध-वर्त्म>अ० अद्धविच्च) आधे मार्ग में, बीचो-बीच में। गी० ७.३.५

अधम : वि० (सं०) नीच, निम्न कोटि का, अधोगत। मा० १.१८.२

अधमउ : अधम भी। अधमउ मुकुट होई श्रुति गावा। मा० ३.१३.६

अधमाई : सं० स्त्री० (सं० अधमता) नीचता। 'सहि सम अधिक न अध अधमाई।' मा० २.२११.२

अधमाधम : अधमों में भी अधम, अत्यन्त नीच जो नीचवर्ग में भी नीच माना जाता हो। मा० ७.१०७.८

अधमारे : वि० पुं० (सं० अर्धमारित>प्रा० अद्धमारिय) जिन के मार डाले जाने में कमी रह गई हो। मा० ५.१८.६

अधर : (१) वि० (सं०) निम्न, नीच, अवर। 'तीय अधरबुद्धि शनि।' २.१६ (२) सं० पुं०। ओठ। मा० १.१३६.२

अधराधर : (अधर+अधर) नीचे का ओठ। 'अधराधर पल्लव खोलन की।' कवि० १.५

अधर्म : सं० पुं० (सं०) धर्म विरुद्ध आचरण, पाप। मा० ७.६६ ख

अधार, रा : सं० पुं० (सं० आधार) आश्रय, सहारा। मा० १.२२.७

अधारु : कए०। अद्वितीय आधार। 'एक नाम अधारु सदा जन को।' कवि० ७.८७

अधिक : वि० (सं०)। प्रचुर, अत्यन्त, अतिशय।

अधिका : अधिक। मा० ३.४२.८

अधिका, अधिकाई : (सं० अधिकायते—अधिक होना) आ० प्रए अधिक होता है, बढ़ता है। 'नित नूतन अधिकाई।' मा० १.६४

अधिकाईं : अधिकता के कारण। 'टाप न बूड़ बेग अधिकाईं।' मा० १.२६६.७

अधिकाई : (१) भू० कृ० स्त्री। बढ़ गई। 'पुरु खरभरु सोमा अधिकाई।' मा० १.६५.१ (२) सं० स्त्री०। अधिकता, प्रचुरता। 'लहहिं सकल सोभा अधिकाई।' मा० १.११.२ (३) अधिकता से। 'तपइ अवाँ इव उर अधिकाई।' मा० १.५८.४ (४)=अधिकाई। बढ़ता है। 'जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।' मा० १.१८०.२

अधिकाति : व०कृ० स्त्री०। बढ़ती, परिवृहित होती। मा० १.३५६

अधिकान, ना : भू० कृ०पुं०। बढ़ गया।' उर अनन्दु अधिकान।' मा० २.५१

अधिकानि, नी : स्त्री०। बढ़ी। गी० १.४.८

अधिकाने : भू० कृ० पुं० बहु०। बढ़ गए। 'चिर जीवन लोमस तें अधिकाने।' कवि० ७.४३

अधिकार : सं० पुं० (सं०)। योग्यता, पात्रता, पद तथा पदानुकूल स्वामित्त्व। मा० १.६०.७

अधिकारी : वि० पुं० (सं०)। पात्र, विषय विशेष की योग्यता वाला। 'राम भगति अधिकारी' मा० १.३०.४ (२) पद का स्वामी। 'अगिनि काल जम सब अधिकारी।' मा० १.१८२.१०

अधिकु : क्रि० वि०+कए। अतिशय के साथ। 'अधिकु अधिकु गरुआइ।' मा० १.२५०

अधिकौहैं : क्रि० वि० प्रचुरता से, अधिक रूप में। गी० ७.४.४

अधिप : वि० पुं० (सं०) स्वामी। मा० २ श्लो०

अधिभूत : वि० (सं०) भूत=प्राणियों से सम्बन्धित, पाञ्चभौतिक सृष्टि सम्बन्धी। सर्प, व्याघ्र आदि तथा मनुष्यादि से प्राप्त। दे० अधिभौतिक। 'अधिभूत बेदन बिषम होति भतनाथ।' कवि० ७.१६६

अधिभौतिक : (दो आधिभूत) वि० (सं० आधिभौतिक)। प्राणियों तथा भूत-प्रेत आदि से मिलने वाला। 'अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे।' वि० ८.३

संख्या में तीन प्रकार के दुःख गिनाये गये हैं—(१) आध्यात्मिक (2) आधिदैविक तथा (३) आधिभौतिका दे० भिविधार्ति।

अधिवास : सं० पुं० (सं०)। अधिष्ठान, पूर्ण आधार। 'सर्वभूताधिवासं।' मा० ७.१०८.१४

अधीन : वि० (सं०) आश्रित, वशीभूत। मा० २.२६३.५

अधीना : अधीन। मा० १.१५१.६

अधीर : वि० (सं०) धैर्यहीन। मा० २.१६१

अधीरा : अधीर। मा० २.७०.२

आधीश : वि० पुं० (सं०) ईश्वर, स्वामी। मा० ५ श्लो० ३

अनंग : अनंग। मा० १.१०८.७

अन : (१) अव्यय (सं० न>प्रा० अण)। दे० अनइच्छित आदि।

(२) वि० सं० अन्य>प्रा० अण्ण) अपर, इतर। 'चातक बतियां ना रुचीं अनजल सींचे रूख।' दो० ३१०

अनंग : सं० पुं० (सं० अनङ्ग—अनङ्ग रहित) कामदेव। मा० ७.११.८

अनंगा : अनंग। मा० १.२८५.४

अनंगु : अनंग+कए०। 'होइहि नामु अनंगु।' मा० १.८७

अनंत, ता : (१) वि० (सं० अनन्त) अन्तहीन, असीम, अप्रमेय+असंख्य, अपरिमेय। 'राम अनन्त आनंत गुन।' मा० १.३३

(२) सं० पुं०। शेषनाग तथा शेषावतार=लक्ष्मण। 'क्रोधवंत तब भयउ अनंता।' मा० ६.५४.४

अनंद, दा : सं० पुं० (सं० आनन्द) आह्लाद। मा० १.४०.८

अनंदित : वि० (सं० आनन्दित) आह्लादित, सुखी। 'खगमृग बृंद आनंदित रहहीं।' मा० ३.१४.३

अनंदु, दू : आनंद+कए०। एकमात्र आनन्द, अद्वितीय आह्लाद। 'उर अनंदु अधिकान।' मा० २।५१

अनंदे : भू० कृ० वि० पुं० बहु० (सं० आनन्दित>प्रा० आणंदिय) सुखी हुए। 'तब मयना हिमवंतु अनंदे।' मा० १.९९ १

अन-अहिबातु : अहिवात के विपरीत=विधवात्व। मा० २.२५.७

अनइच्छित : अनचाहा, अनचाहे,। मा० ७.११९.४

अनइस : वि० (१) (सं० आन्याहृश>अ० अण्णाइस) अन्य जैसा= प्रतिकूल (२) (सं० अनीहृश>अणइस) विपरीता अशुभ, अनचाहा। 'करत नीक फलु अनइस पावा।' मा० २.१६३.६

अनख : सं० (सं० अनक्ष ?) आंख न देना, उपेक्षा, अवज्ञा, अनादर, अवज्ञापूर्वक अमर्ष। 'कस सहि जात अनख तोहि पाहीं।' मा० ३.३०.१५ 'भायँ कुमायँ अनख आलस हूं।' मा० १.२८.१

अनखानि : अनख करने की क्रिया। गी० १.२१.२

अनखैहैं : आ० प्र०। अनख मानेंगे, अमर्ष करेंगे। 'खल अनखैहैं तुम्हैं सज्जन न गामिहैं।' कवि० ७.७१

अनखौंही : वि० स्त्री०—अनख भरी हुई। 'रोष माखे लखनु अकनि अनखौंहीं बातैं।' कवि १.१६

अनगनी : वि० स्त्री० (सं० अगणिता) असंख्य। 'नर-नारी रचना अनगनी।' गी० १.५.१

अनघ : वि० (सं०) अघारहित, निष्कलुष, निर्विकार। मा० १.२२.६

अनचह्यो : भू० कृ० वि० पुं० कए०। अनचाहा, अनाहृत। 'दूहाँ भलो अनचह्यो हौं।' विन २६०.४

अनजानत : वकृ० वि०+क्रि०वि० (सं० अजानत्>प्रा० अणजाणंत)। (१) बिना जानते हुए—'अनजानत हरि लायो।' गी० ६.२.३ (२) न जानते हुए—'छमिअ चूक अनजानत केरी।' मा० १.२८२.४

अनट : सं० पुं० (१) (सं अनर्थ>प्रा० अणट्ट) प्रयोजन-हानि। कार्य-हानि, उलझन, अयोग्य स्थिति। 'मिटिहि अनट अवरेब।' मा० २.२६.९ (२) सं० अनाट्य>प्रा० अणट्ट) नाट्य में संग्राम, मेला आदि अभिनेय (नाट्य) नहीं होते। रस भङ्ग की सभी बातें अनाट्य होती हैं जिनके आ जाने से सामाजिक को नीरसता ही मिलती है। अत: ऐसी दशा 'अनट' है जो कणेशकर हो। दो० ४६६

अनत : क्रि० वि० अव्यय (सं० अन्यत:>प्रा० अण्णत्तो) अन्य ओर। (२) (सं० अन्यत्र>प्रा० अण्णत्त) अन्य स्थान पर। 'सुनत बचन फिरि अनत निहारे।' मा० १.२७०.२

अनन्य : वि० (सं०) एक के अतिरिक्त किसी के प्रति निष्ठा-हीन+सबके प्रति एक की ही निष्ठा लेकर व्यवहार करने वाला। 'सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूपरासि भगवंत॥' मा० ४.३

अनन्यगति : वि० (सं०—नास्ति अन्यागतिर्यस्यस:) एक को छोड़ अन्य आश्रय न मानने वाला। 'सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ।' मा० ४.३.८

अनपायनी : वि० स्त्री० (सं० अनपायिनी)। अपाय=विकार+क्षय से रहित। अविचल, दृढ़, अपरिवर्तनीय। 'अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही।' मा० ४.२५.८

अनबध : अनवध। निर्दोष। 'अज अनबध अकाम अभोगी।' मा० १.९०.३

अनबन : वि०। अकृत्रिम, प्राकृतिक, विविध। 'कंद मूल जल थल रूह अगनित अनबन भाँति।' गी० २.४७.३

अनबिचारमनीय : वि० (सं० अविचार-रमणीय) असत्। आपातरमणीय जिसकी मनोरमता तभी तक है जब तक विवेक नहीं आता। 'अनबिचार-रमणीय सदा संसार भयंकर भारी।' विन० १२१.४

अनभएं—क्रि० वि०—न होने की स्थिति में, बिना हुए। 'नृप जागेउ अनभएँ बिहाना।' मा० १.१७२.२

अनभल : वि०+सं०। अशुभ, अयोग्य, अभद्र। 'अनभल देखि न जाइ तुम्हारा'—मा० २.१६.७

अनभले : अनभल+बहु०। दो० ३४५

अनभलो : अनभल+कए। दो० ३६८।

अनभाई : वि० स्त्री०। अनचाही, अरुचिकर, भावहीन। विन० १९५.३

अनभाए : वि० पुं० बहु०। भावहीन, अनचाहे, अरुचिकर। गी० २.८८.४

अनमनि : वि० स्त्री० (सं० अन्यमनस्का>प्रा० अण्णमणी) अनेकाग्र, उद्विग्न। 'का अनमनि हंसि कह हंसि रानी।' मा० २.१३.५

अनमायो : भू० कृ० कए। जो अटा नहीं, भीतर समाया नहीं। 'क्यों कहौं प्रेम अमित अनमायो।।' गी० ५.२१.६

अनमिल : वि० (सं० अमिल>प्रा० अणमिल)। बेमेल। 'अनमिल आखर'—मा० १.१५.६

अनमोल : अमोल। कवि० २.१३

अनय : सं० पुं० (सं०)। अनीति, अन्याय, सिद्धान्त या मर्यादा के विपरीत आचरण। दो० ५१५

अनयन : वि० (सं०) नेत्रहीन। मा० १.२२९.२

अनयासा : वि०+क्रि० वि० (सं० अनायास) बिना प्रयास के। मा० १.२५.२

अनरथ : सं० पुं० (सं० अनर्थ) प्रयोजन हानि, कार्य हानि, क्षति, संकट, बाधा। 'लखन लखेउ भा अनरथ आजू।' मा० २.७३.७

अनरथु : अनरथ+क ए। मा० २.१५७.५

अनरस : सं० पुं० (सं० अन्य रस+अन्नरस) अन्न के स्वाद तथा अन्य सभी रस। 'तौ नवरस, षटरस, रस, अनरस ह्वै जाते सब सीठे।' विन० १६९.१

अनरसत : वकृ पुं० । अरस=रसहीन होता-होते । खिन्न होता-होते । खीझता-ते । 'हंसे हंसत, अनरसे अनरसत ।' गी० १.१६.२

अनरसनि : नीरस होने की क्रिया । खीझना । गी० १.२१.२

अनरसे : भू० कृ० पुं० बहु० (१) अप्रसन्न, शिथिल, अस्वस्थ । 'आजु अनरसे हैं मोर के, पय पियत न नीके ।' गी० १.१२.१ (२) अप्रसन्न होने पर । 'हंसे हंसत, अनरखे अनरसत ।' गी० १.१६.२

अनर्थ : (दे, अनरथ) । हनु० १२

अनल : सं० पुं० (सं०) अग्नि । मा० १.५.८

अनलु : अनल+क ए । मा० १.३२३

अनवध : वि० (सं०—न+अवद्य=अनवद्य) अनिन्द्य । अमन्द, उत्तम, निर्दोष निर्विकार । मा० ३.११.१२

अनवरत : वि०+क्रि० वि० (सं०) निरन्तर, अविच्छिन्न, अखण्ड, शाश्वत । विन० १०.७

अनवसर : सं० पुं० (सं०) असमय, अवसर का अभाव, प्रतिकूल अवसर । गी० ५.३८.३

अनसमुझें : क्रि० वि० । बिना समझे-बूझे, बिना विचारे ही । 'अनसमुझें अनुसोचनो ।' दो० ४८६

अनहित : सं० पुं०+वि० (सं० अहित) (१) अनभला । 'अनहित तारे प्रिया केइं कीन्हा ।' मा० २.२६.१ (२) शत्रु, अनिष्टकारी । 'हित अनहित मध्यम भ्रम फन्दा ।' मा० २.६२.५ (३) अहितकर 'हित अनहित नहिं कोइ'— मा० १.३

अनाज : सं० पुं० (सं० अन्नाद्य>प्रा० अन्नज्ज) खाद्य अन्न । दो० ४५३

अनाजू : अनाज+कए । मा० २.२७८.७

अनाथ, था : वि० (सं०) (१) प्रार्थनीय आश्रय से रहित, दीन हीन । मा० १.१४६.३ (२) जिसका कोई स्वामी न हो=स्वयं प्रभु । बर० ३५

अनाथनि : अनाथ+सब । अनाथो (को) । 'नाथ अनाथनि पाहि हरे ।' मा० ७.१४.८

अनाथा : अनाथ । मा० २.७१.३

अनादर : सं० पुं० (सं०) । उपेक्षा, असम्मान, अपमान । विन० १७६.१

अनादि : वि० (सं०) आदिहीन, अज्ञातजन्मा या अजन्मा । 'अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि ।' मा० १.६८.३

अनादी : अनादि । मा० १.१०८.५

अनाम, मा : वि० (सं० अनामन्) । नामरहित, शब्द शक्ति से परे । मा० १.१३.३

अनामय : वि० (सं०) आमय=रोग, दोष, विकार से रहित। अजरामर, निष्पाप। मा० १.२२.२

अनायास : क्रि० वि० (सं०) बिना किसी प्रयास के ही। 'अनायास उधरी तेहिं काला।' मा० २.२६७.४

अनारंभ : वि० (सं०) आदिहीन+उत्पत्तिहीन। अजन्मा। 'अनारंभ अनिकेत अमानी।' मा० ७.४६.६ न्यायदर्शन आरम्भवादी है जो ईश्वर को कर्त्ता मानकर, उसके द्वारा परमाणुओं से प्रपञ्च की सृष्टि को मान्य करता है। इसके विपरीत वैष्णव दर्शन में ईश्वर को अविकृत परिणाम लेने वाला मानकर उपादान तथा निमित्त कारणों के रूप में मान्य किया गया है; वह बाहर से सामग्री लेकर आरम्भ नहीं करता।

अनिंदिता : वि० स्त्री० (सं०) अनवद्या, वाह्य तथा आभ्यन्तर कलुषों से रहित, सर्वथा निर्दोष। मा० ७.२४.६

अनिकेत : वि० (सं०) गृहरहित, आश्रयहीन, स्वाधिष्ठान, स्वाश्रति, निकेत= गृह+सूचक से रहित, अज्ञेय। 'अनारंभ अनिकेत अमानी।' मा० ७.४६.६

अनिप : सं० पुं० (सं० अनीकप) सेनानायक। मा० ६.४६.१०

अनिमादिक : अणिमा इत्यादि आठ योगसिद्धियां—अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा। प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्ट सिद्धयः॥ (१) अणिमा =सूक्ष्म होने की शक्ति। (२) महिमा=महान् हो जाने की शक्ति। (३) लघिमा=हलका होने की शक्ति। (४) गरिमा=भारी होने की शक्ति। (५) प्राप्ति=जहाँ चाहें, जाने की शक्ति। (६) प्राकाम्य=अभीष्ट वस्तु सुलभ करने की शक्ति। (७) ईशित्व=सब पर प्रभुता की शक्ति। (८) वशित्व=सबको वशीभूत करने की शक्ति। 'होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएं।' मा० १.२२.४

अनियत : आनियत। वकृ पुं० क वा। लाया जाता। 'महिमा समुचित डर अनियत।' विन० १८३.३

अनिर्बाच्य : वि० (सं० अनिर्वाच्य=अनिर्वचनीय) वाणी द्वारा जिसका निर्वचन= विवेचन असम्भव हो, अकथ्य, अप्रमेय। 'पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा।' मा० ५.८.२

अनिल : सं० पुं० (सं०) वायु। मा० १.७.१२

अनिश : क्रि०वि० (सं०) निरन्तर सदैव, अविराम। मा० ५.२ श्लो० १

अनी : सं० स्त्री (सं० अनीक>प्रा० अणीअ) सेना। मा० २.१२६ छं०

अनीकाका : सं० पुं० (सं० अनीक)=अनी। 'कलुष अनीक दलन रनधीरा।' मा० २.१०५.६

अनीति : सं० स्त्री० (सं०) नीतिविरुद्ध आचरण, मर्यादा-रहित व्यवहार। मा० १.१८३

अनीती : अनीति। 'मिटइ भगति पथु होइ अनीती।' मा० १.५६.८

अनीस : सं० पुं०+वि० (सं अनीश) ईश्वर से भिन्न=जीव जो सर्व शक्तिमान नहीं है। 'ईस अनीसहि अंतरु तैसें।' मा० १.७०.२

अनीह : वि० (सं०) ईह=इच्छा से रहित, निष्काम, निरपेक्ष, उदासीन। मा० १.१३.३

अनु : **अव्यय** (१) संस्कृत का उपसर्ग—'अनुकूल' आदि में (२) 'अन्यथा' के अर्थ में अपभ्रंश का स्वतन्त्र प्रयोग। 'देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं।' मा० २.३०.४

अनुकथन : सं० पुं० (सं०) अनुकीर्तन, प्रश्नोत्तर में विचार विनिमय, शास्त्रीय निर्णय हेतु वाद-विवाद, निश्चय बोध हेतु तर्क-वितर्क। 'मुनि अनुकथन परसपर होई।' मा० १.४१.३

अनुकूल (अनुकूला) : वि० (सं०) (१) अपने पक्ष में आने वाला। मा० १.१५.७ (२) ओर, प्रति (जनक)। 'चली बिपति बारियी अनुकूला।' मा० २.३४.४ (३) दर्शनों में 'उत्पादक' अर्थ भी होता है जो उक्त उद्धारण में व्यङ्ग्य है।

अनुकूले : भू० कृ० पुं० (बहु०)। अनुकूल किए हुए। 'नित नूतन सुख लगि अनुकूले।' मा० १.३०४.८

अनुकूलो : अनुकूल+कए। 'गोसाइँ सुसाइँ सदा अनुकूलो।' हनु० ३६

अनुग : वि० पुं० (सं०) अनुगामी, अनुचर। 'राम अनुग जगु जान।' मा० २.२२९

अनुगंता : अनुग। (सं०)। विन० ३८.३

अनुगनि : अनुग+सं० बं०। अनुगों, अनुचरों। 'उतरि अनुज अनुगनि समेत।' गी० ६.२१.५

अनुगामी : वि० (सं० अनुगामिन्)। अनुग, अनुसरणकारी। मा० १.१७.६

अनुग्रहं : अनुग्रहपूर्वक। अनुग्रह से। 'राम अनुग्रहं सगुन सुभ।' रा० प्र० ६.५.६

अनुग्रह : सं० पुं० (सं०)। कृपा, अनुकम्पा। मा० २.३.७

अनुग्रहु : अनुग्रह+कए। 'कृपा अनुग्रह अंगु अधाई।' मा० २.३००.५ 'कृपा' से प्रभु के सामर्थ्य की व्यञ्जना होती है जबकि 'अनुग्रह' से भक्त को ग्रहण करने—अपना अङ्ग बना लेने का अर्थ आता है।

अनुचर : वि०पुं० (सं०) पीछे चलने वाला, अनुगामी, परिचारक। मा० १.२७८.१

अनुचरन्ह : अनुचर+कए। अनुचरों (ने)। 'मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा।' मा० ७.५६.४

अनुचरीं : वि० स्त्री० बहु०। अनुचरियाँ, पीछे चलने वाली परिचारिकाएं, दासियां। 'तव अनुचरीं करउं, पन मोरा।' मा० ५.९.५

अनुचित : वि० (सं०) उचित का विलोम, अनर्हं अयोग्य। मा० १.६२.१

अनुचितु : अनुचित+कए०। एकमात्र=प्रथम अनुचित आचरण। 'अनुचितु छमब जानि लरिकाई।' मा० २.४५.६

अनुज : सं० पुं० (सं०—अनु पश्चात् जमः)। छोटा भाई।

अनुजन्ह : अनुज+स०बं०। अनुजों (के प्रति)। 'आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई।' मा० १.२०५.६

अनुजहि : अनुज को। मा० १.२२५.३

अनुजा : सं० स्त्री (सं०)। छोटी बहन। मा० ७.१०२ छं०

अनुदिन, अनुदिनु : क्रि० वि० (सं० अनुदिनम्) प्रतिदिन। मा० २.२०५.२ जा०मा०

अनुपम : वि० (सं०)। उपमा रहित, अप्रतिम, अद्वितीय। मा० १.३६

अनुबाद, दा : सं० पुं० (सं० अनुवाद) अनुकथन, पुनर्वचन, व्याख्याओं द्वारा वस्तुनिरूपण, प्रमाणीकरण। 'सुनत फिरउं हरिगुन अनुबादा।' मा० ७.११०.१२ दर्शनों में चार प्रकार के 'अनुवाद' बताए गए हैं—(१) यथार्थ कीर्तन (२) स्तुतिपरक कथन (३) गुण विवेचन और (४) अर्थवाद=अतिशयोक्तिपरक कथन।

अनुभयउ : भू० कृ० पुं० कए। अनुभव किया, भोगा। 'मोहिसम यहु अनुभयउ न दूजें।' मा० २.३.६

अनुभूये—अनुभव किये, भोगे। 'नये-नये नेह अनुभये देह गेह बसि।' विन० २६४.२

अनुभव : सं० पुं० (सं०) बोध—प्रत्यक्ष अनुमिति तथा शाब्द प्रत्यय। 'उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।' मा० ३.३९.५ (२) आत्म साक्षात्कार, स्वसंवेदन, स्वानुभूति। 'अनुभव-गम्य भजहिं जेहि संता। मा० ३.१३.१२

अनुभव, अनुभवइ : (स० अनुभवति>प्रा० अणुहवइ) आ० प्रए। अनुभव करता है, स्वसंवेदा बनाता है—'सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख।' विन० १६७.४

अनुभवगम्य : वि० (सं०) स्वसंवेदनमात्र से ज्ञातव्य, साक्षिमास्य=जिसे दूसरे को इन्द्रियगम्य नहीं बना सकते, स्वयं ही जान सकते हैं, स्वानुभूति के अतिरिक्त अन्य प्रमाणों से प्रमेय न होने वाला, अप्रमेय, अनिर्वचनीय। मा० ७.१११.४१

अनुभवति : वकृ० स्त्री। स्वयम् अनुभूति में जाती स्वसंवेदा बनाती। 'उर अनुभवति न कहि सक सोऊ।' मा० २.४२

अनुभवहिं, हीं : आ० प्रब०। अनुभव करते हैं, स्वानुभूति में जाते हैं, स्वसंवेदा बनाते हैं। 'बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं। मा० २.१०८.४

अनुभवहि : आ० मए। तू अनुभव कर, साक्षात् जान ले। 'तुलसी तू अनुभवहि अब राम बिमुख की रीति।' दो० ७३

अनुभवे : अनुभये । मानसिक रूप से जाने । 'बंचक विषय बिबिध तनु धरि अनुभवे सुने अरु दीठे ।' विन० १७६.२

अनुभवं : अनुभवइ ।

अनुभाऊ : सं० पुं० (सं० अनुभाव)+कए० । (१) प्रभाव (२) आंतरिक मनःस्थिति (भाव) के सूचक व्यापार जो चार प्रकार के हैं—कायिक, वाचिक, सात्त्विक और आहार्य । 'बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ ।' मा० २८६.३

अनुभौ : अनुभव । गी० १.६६.३

अनुमान : सं० पुं० (सं०) ज्ञात वस्तु के आधार पर अज्ञात वस्तु का बोध । 'सती हृदयं अनुमान किय ।' मा० १.५७ (२) क्रि० वि० । मात्रा या प्रमाण के अनुसार । 'बल अनुमान सदा हित करई ।' मा० ४.१.५

अनुमाना : (१) अनुमान । (क) अनुरूप, अनुसार । 'कहहि स्वमति अनुमाना ।' मा० १.२१.४ (ख) समान । 'मुख नासिका नयन अरु काना । गिरि कंदरा खोह अनुमाना ।' मा० ६.१६.६ (ग) तर्क । 'करत कोटि बिधि उर अनुमाना ।' मा० २.२६६.६ (२) भू० कृ० पुं० अनुमान किया । 'इहां संभु अस मन अनुमाना ।' मा० १.५२.५

अनुमानि : पूकृ० । अनुमान करके । मा० १.११८.१

अनुमानी : (१) अनुमानि । मा० १.१०७.५ (२) वि० पुं० (सं० अनुमानिन) । अनुमान करने वाला=नैयायिक । 'तरकि न सकहिं सकलु अनुमानी ।' मा० १.३४१.७

अनुमाने : भूकृ० पुं० (बहु०) । अनुमान से ज्ञात किये । मा० १.६६.३

अनुमोदन : सं० पु० (सं०) समर्थन, सहर्ष सहमति । 'कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं ।' मा० ७.१२६.६

अनुराग : (१) सं० पुं० (सं०) स्नेह, मन को तन्मय करने वाला प्रेम । मा० १.११ (२) आ०-आज्ञा-मए । तू अनुराग कर । 'जागि त्यागि मूढ़ताऽनुराग श्रीहरे ।' विन० ७४.१

अनुराग, अनुरागइ : (अनुरक्त होना) आ० प्रए० । अनुरक्त होता है । 'सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ ।' पा० मं० ६७

अनुरागउँ, ऊँ : आ० कए । अनुराग करूं, अनुरक्त होता हूं । 'राम पद अनुरागऊँ ।' मा० ४.१० छं०

अनुरागहिं हीं : आ० उब । अनुराग करते हैं । अनुरक्त हों । 'तव चरन हम अनुरागहीं ।' मा० ७.१३ छ

अनुरागहु, हू : आ०म०ब० अनुराग करो । 'राम पद अनुरागहू ।' मा० ३.३६ छं०

अनुरागा (१) अनुराग। मा० ११.१ (२) भू० कृ० पुं०। अनुरक्त हुआ। 'सिय मनु राम चरन अनुरागा।' मा० २.७८.५

अनुरागिहै : आ० प्रए+मए। अनुराग करेगा। 'मन राम नाम सों सुभाय अनुरागिहै।' विन० ७०.१

अनुरागीं : भूकृ० स्त्री० बहु०। अनुरक्त हुईं। मा० १.२४७.२

अनुरागी : (१) वि० पुं० (सं० अनुरागिन्) अनुराग युक्त। 'तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी।' मा० १.११२.८ (२) भू० कृ० स्त्री० अनुरक्त हुई। मा० २.१६६.२

अनुरागु, गू : (१) अनुराग+कए। अनन्य प्रेम। मा० १.१७७ (२) आ० आज्ञा—मए। तू अनुराग कर। 'अब नाथहि अनुरागु जागु जड़।' विन० १९८.४

अनुरागें : अनुराग से स्नेहपूर्वक। 'विनय कीन्हि तिन्ह अति अनुरागें।' मा० १.३०६.२

अनुरागे : भू० कृ०पुं० बहु०। अनुरक्त हुए। 'अस कहि अपर भूप अनुरागे।' मा० १.२४६.७

अनुरागेउँ : आ० भू० कृ० +उए। मैं अनुरक्त हुआ।' 'सुनि प्रभु बचन बहुत अनुरागेउँ।' मा० ७.८४.३

अनुरागेउ : भू०कृ० पुं० कए अनुरक्त हुआ। 'देखि मनोहर मूरति मनु अनुरागेउ।' जा० मं० ४६

अनुरागै : अनुरागइ। विन० १३६.११

अनुरागौं : अनुरागउँ। 'परिहरि पायं काहि अनुरागौं।' विन० १७७.१

अनुराग्यो : अनुरागे। अनुराग युक्त। 'निरन्तर रहत विषय अनुराग्यो।' विन० १७०.१

अनुरूप (पा) : वि०+क्रि०वि० (सं०) अनुसार, समान, प्रतिरूप। 'मति अनुरूप राम गुन गावउँ।' मा० १.१२.९

अनुरोधू : सं० पुं० (सं० अनुरोध)+कए० विनीत आग्रह। 'राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू।' मा० २.५५.४

अनुलेपन : सं० पुं० (सं०) चन्दन आदि का लेप। गी० ७.१६.४

अनुसंधाना : सं० पुं० (सं० अनुसंधान) अपेक्षा, आशा। 'हृदयं न कछु फल अनुसंधाना।' मा० १.१५६.१

अनुसर, अनुसरइ, ई : (सं० अनुसरति>प्रा० अणुसरइ—पीछे चलना, अनुसरण करना) आ० प्रए। अनुसरण करता है—करे। 'जिमि पुरुषहि अनुसार परिछाहीं।' मा० २.१४१.६ 'सोइ-सोइ तब आयसु अनुसरई।' मा० १.१६८.६

अनुसरऊँ : आ० उए। अनुसरण करूं (करता था)।' तहं-तहं राम भजन अनुसरऊँ।' मा० ७.११०.१

अनुसरहीं : आ० प्रब०। अनुसरण करते हैं, अनुसार आचरण करते हैं। 'फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं।' मा० १.३.१०

अनुसरहु, हू : आ० मब०। अनुसरण (पालन) करो। 'सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू।' मा० २.१७६.६

अनुसरहुगे : आ० भ० पुं० मब०। अनुसार आचरण करोगे। विन० २११.२

अनुसरिए, ये : आ० क० बा०। अनुसरण किया जाता है। 'जाते बिपति जाल निसदिन दुःख तेहि पथ अनुसरिए।' बिन० १८६.२

अनुसरु : आ०—आज्ञा-मए। तू अनुसरण कर। 'सिर प्रनाम सेवा कर अनुसरु।' विन० २०५.३

अनुसरे : भू० कृ० पुं० बहु०। अनुसरण करके आये। 'अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे।' मा० ६.११०.१२

अनुसरेहू : आ० भ०+प्रे० मब०। तुम अनुसरण (पालन) करना। 'धर्म अनुसरेहू।' मा० ७.२०.२

अनुसरें : अनुसरहिं। गी० १.७१.२

अनुसार : सं०+क्रि० वि० (सं०)। अनुरूप, अनुकूल। 'निज विचार अनुसार।' मा० १.२३

अनुसारा : अनुसार। 'समुझि परी कुछ मति अनुसारा। मा० १.३१.१

अनुसारी : (१) वि० पुं० (सं० अनुसादिन्) अनुरूप। 'देसकाल अवसर अनुसारी—बोले बचन।' मा० २.४५.५ (२) भूकृस्त्रीण चलाई, छेड़ी। 'तातें कछुक बात अनुसारी।' मा० २.१६.८

अनुसासन : सं० पुं० (सं० अनुसासन) (१) आदेश, संदेश। 'सिव अनुसासन सुनि सब आए।' मा० १.९३.५ (२) विधि-विधान, नियम। 'कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।' मा० ३.९७.२

अनुसुइया : (सं० अनसूया)। अत्रि की पत्नी (असूया=ईर्ष्या से रहित)। मा० ३.५.१

अनुसृत्य : पूकृ (सं०)। अनुसरण करके, मानकर। विन० ५०.५

अनुसोचनो : सं० पुं० कए (सं० अशोचनम्)। अशोचनीय बात पर बार-बार शोक करना, व्यर्थ उधेड़ बुन करना। 'अनसमुझें अनुसोचनो।' दो० ४८६

अनुहर अनुहरइ,ई : (सं० अनुहरति>प्रा० अणुहरइ—सदृश प्रतीत होना, अनुरूप होना) आ० प्रए। समान या अनुरूप लगता है। 'सहज टेढ़, अनुहरइ न तोही।' मा० १.२७७.८

अनुहरत : वकृ पुं० । अनुरूप शोभा देता, समान प्रतीत होता । 'चरित करत नर अनुहरत ।' मा० २.८७

अनुहरि : पूकृ० । अनुसार ग्रहण करके--अनुसरण करके । 'अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा ।' मा० २.२४१.४

अनुहरिया : भू० कृ० पुं० । उपमति, अनुरूप पाया गया, अनुसार हुआ, उपमा में आया । 'मुख अनुहरिया केवल चंद समान ।' बर० ६

अनुहार : सं+पि० (सं०) । अनुरूप, योग्य, समान । 'सगुन समय अनुहार ।' स० प्र० ७.१.३

अनुहारि : (१) वि० स्त्री० । अनुरूप लगने वाली । 'बर अनुहारि बरात न भाई ।' मा० १.९३.१ (२) पूकृ० । अनुसार करके, समान बनाकर । 'बोले बचन समय अनुहारि ।' मा० १.२३०

अनुहारी : अनुहारि अनुसार । 'सुभ अरु असुभ करम अनुहारी—ईसु देइ फल ।' मा० २.७७.७ (२) सं० स्त्री० । प्रतिकृति, प्रतिभूति, समान आकृति । 'भरतु राम ही की अनुहारी ।' मा० १.३११.६

अनूप (पा) : वि० (सं० अनूप=जलाशय के निकट की भूमि) पवित्र, शीतल प्रभाव वाला, सुखद, उत्तम । 'ब्रह्मसुखहिं अनुभवहिं अनूपा । मा० १.२२.२

अनूपम : अनूपम । अद्वितीय । मा० १.१९.२

अनूपान : सं० पुं० (सं० अनुपान) पेय या लेह्य पदार्थ जिसे दवा के साथ लिया जाता है (शहद, स्वरस आदि) । मा० ७.१२२.७

अनृत : सं० वि० (सं०) असत्य । मा० ६.१६.३

अनेक, का : एक से अधिक, दो या बहुत । मा० १.९.९

अनेरे : वि० पुं । विचित्र, उत्पाती । 'छोटे निपट अनेरे ।' कृ० ३

अनेरो : वि०+क्रि० वि० पुं० कष्ट । दूर-दूर, विचित्र, पराया जैसा । 'निसि दिन फिरते अनेरो ।' विन० १४३.१

अनै : अनय । गी० ५.४०.३

अनैसी : 'अनइस'+स्त्री० । अयोग्य, अनुचित, प्रतिकूल । कबि० ७.६

अनैसें : क्रि० वि० । अन्य प्रकार से अनुचित रीति से प्रतिकूल ढंग से । 'अजहुं बंधु तव चितव अनैसें ।' मा० १.२७९.७

अन्तरात्मा : सं० पुं० (सं०) । जीव-चेतना के साथ अनुस्यूत परमात्मा= अन्तर्यामी; प्रेरक । मा० ५ श्लो० २

अन्न : सं० पुं० (सं०) (१) अनाज । मा० १.१०१.८ (२) खाद्य सामग्री । 'अन्न सो जोइ-जोइ भोजन करई ।' मा० १.१६८.६

अन्नपूरना : सं० स्त्री० (सं० अन्नपूर्णा) । काशी में प्रसिद्ध एक देवी का नाम कवि० ७.१४८

अन्नप्रासन सं० पुं० (सं० अन्नप्राशन) । शिशु को प्रथम वार अन्न खिलाना आरम्भ करने का कर्म विशेष । गी० ७.३५.२

अन्ने : वि० पुं० वहु० सं० अन्येग अन्य लोग । 'ये चापि अन्ने ।' विन० ५७.२

अन्य : वि० (सं०) अपर, इतर, भिन्न

अन्यतः : क्रि० वि० (सं०) । अन्य (स्रोतों) से । मा० १ श्लो० ७

अन्यथा : अव्यय (सं०) । प्रतिकूल, अन्य प्रकार से, विपरीत । मा० १.७१.८

अन्याई : वि० (सं० अन्यायी) अन्याय या उपद्रव करने वाला, उत्पाती, अनाचारी । कृ० ८

अन्याउ : 'अन्याय'+कए । अनुचित, अयोग्य । 'अति अन्याउ अली' । गी०२.१०.१

अन्याव : अन्याउ । दिन० २७२.३

अन्वेषण : सं०पुं० (सं०) । खोज, गवेषण, अनुसन्धान । मा० ४.श्लो०१

अन्हवाइ, ई : पुकृ० । नहलाकर ।मा० १.४३

अन्हवाइय : अन्हवावा । नहलाया । 'जुबतिन्ह मंगल गाइ राम अन्हवाइय' । रा०न० ३

अन्हवाएँ : नहलाने (से) । 'रामचरित सर बिनु अन्हवाएँ' मा० १.११.५

अन्हवाए : भू०कृ०पुं० बहु० । नहलाये । 'एक बार जननी अन्हवाए ।' मा० १.२०१.१

अन्हवावउँ : आ०उ०प्र० । नहलाता हूँ । 'संकर चरित सु-सरित मनहि अन्हवावउँ ।' पा०म० ३

अन्हवावहु : अ० मब० । नहलाओ । 'प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई' । मा० ७.११.२

अन्हवावा : भू०कृ०पुं० । नहलाया । 'नृप तनु बेद बिदित अन्हवावा' । मा० २.१७०.१

अन्हवैया : विकृ० । नहाने वाला-वाले । गी० १.६.६

अन्हवैहै : आ०प्रए० भ० । नहलायेगा । 'को भोरही उबरि अन्हवैहै' । गी० १.९६.२

अपकार : सं०पुं० (सं०) । दुर्व्यवहार (उपकार का विलोम) । मा० १.१३७.७

अपकारा : अपकार । मा० ६.२४.६

अपकारी : वि०पुं० (सं०) अपकार करने वाला । मा० २.१७३.३

अपकीरति : सं०स्त्री० (सं० अपकीर्ति) । अयश कुख्याति । मा० १.२७३.७

अपछरा : सं०स्त्री० (सं० अप्सरस्>प्रा० अच्छरा) देवाङ्गना, स्वर्ग की नर्तकी । मा० १.८५.छ०

अपजस : सं० पुं० (सं० अपयशस्) । अयश, अपकीर्ति, कुख्याति । मा० १.७ ख
अपजसु : अपजस+कए । एकमात्र अयश । 'घरु जाउ अपजसु होउ ।' मा० १ ६६ छं०
अपडर : सं० पुं० (सं० आत्म-दर>प्रा० अप्पडर) अकारण भय, अपने-आप में डरना । 'अपडर डरेउँ न सोच समूलें ।' मा० २.२६७.३ (दे० अपभय) ।
अपडरनि : अपडर+संब० । अपने-आप ही भयों से । 'अब अपडरनि डरयो हौं ।' विन० २६६.३
अपडरे : भू०कृ० पुं० बहु० । अपने भीतर भयाक्रान्त हुए । मा० ६.८६ छं०
अपत : वि० (सं० अपात्र>प्रा० अपत्त) अयोग्य, नीच, पातकी । कवि० ७ ६८
अपतु : अपत+कए । अद्वितीय पातकी । 'अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ ।' मा० १.२६.७
अपनपउ : सं० पुं० कए (सं० आत्मपदम्>प्रा० अप्पणपयं>अ० अत्पणपउ) । अपना पद, स्वरूप, स्वाधिकार । अपनाया । मा० २.१६०
अपनपौ : अपनपउ । 'सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ ।' मा० १.१६१.२
अपना : वि० पुं० (सं० आत्मनः>प्रा० अप्पणो) निजका । 'उमा कहउँ मैं अनुभव अपना ।' मा० ३.३९.५
अपनाइ : पूकृ० । अपना करके, अङ्गीकृत करके (अपना बनाकर) । मा० १.१६१.७
अपनाइअ, अपनाइए : आ० क० वा० प्रए । अपना बनाइए, स्वीकार कीजिए । मा० ६.११६.७, विन० २६७.४
अपनाए : भू० कृ० पुं० बहु० । अपने बना लिए । 'सकृत प्रनामु किएँ अपनाए ।' मा० २.२९९.३
अपनाय : अपनाइ । गी० ५.५१.४
अपनायति : सं० स्त्री० । आत्मीयता, अपनापन, घनिष्ठता । 'देखी सुनी न आजु लौं अपनायति ऐसी ।' विन० १४७.४
अपनाया भू० कृ० पुं० । अपना बना लिया, स्वीकार किया । 'जब तें रघुनायक अपनाया ।' मा० ७.८९.३
अपनायो : अपनाया+कए । गी० ५.४४.३
अपनावा : अपनाया । 'निज जन जनि ताहि अपनावा ।' मा० ५.५०.२
अपनियां : अपनी । 'प्रेम बिबस कछु सुधि न अपनियाँ ।' गी० १.३४.६
अपनीं : अपनी···में । 'अपनीं समुझि साधु सुचि को भा ।' मा० २.२६१.२
अपनी : वि० स्त्री । निज की । मा० २.२८४.१
अपनी-अपना : एक सामूहिक होड़ जिसमें सब पहले कर लेना चाहते हैं । 'देव कहैं अपनी-अपना अवलोकन तीरथराज चलो रे ।' कवि० ७.१४४

अपनें : (१) अपने में। 'फिरत सनेहँ मगन सुख अपनें।' मा० १.२५.८ (२) अपने आप (से)। 'समुझि सहम मोहि अपडर अपनें।' मा० १.२६.२

अपने : 'अपना' का रूपान्तर। निज के। मा० १.१२.५

अपना : अपना+कए। गी० १.७०.४

अपबरग : सं० पुं० (सं० अपवर्ग) परम लक्ष्य की प्राप्ति। मोक्ष—जिसके चार प्रकार हैं (१) सायुज्य (२) सालोक्य (३) सारूप्य और (४) सार्ष्टि। 'सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनुधारी।' मा० १.३१५.६

अपबरगु : अपबरग+कए। मा० २.१३१.७

अपबर्ग, गा : अपबरग। मा० ५.४; ७.४६.७

अपबाद, दा : सं० पुं० (सं० अपवाद) निन्दा, कुख्याति। मा० १.६४.३

अपबादु, दू : अपबाद+कए। एक मात्र निन्दा। 'जसु जग जाइ, होइ अपबादू।' मा० २.७७.४

अपभयँ : क्रि० वि० (सं० आत्मभयेन>प्रा० अप्पभएण>अ० अप्पभएँ) अपने-आप ही भय के कारण (अकारण भय से)। 'अपभयँ कुटिल महीप डेराने।' मा० १.२८५.८

अपभय : सं० पुं० (सं० आत्मभय>प्रा० अप्पभय) अकारण अपनी ही त्रुटि से उत्पन्न भय (=अपडर)। 'बिनय करौं अपभयहु तें, तुम परम हितै हौ।' विन० २७०.३

अपमानहिं : अपमान से को। मा० ६.३०.८

अपमानतां : सं० स्त्री० (सं० अपमान्यता) अपमानित होना। 'गुट अपमानता सहि नहिं सकेउ महेस।' मा० ७.१०६ ख

अपमाना : अपमान। 'तैं सीता मम कृत अपमाना।' मा० ५.१०.१

अपमानु : अपमान+कए। तिरस्कार। 'सिव अपमानु न जाइ सहि।' मा० १ ६३

अपर : वि० (सं०) अन्य। मा० १.४६

अपरना : सं० स्त्री० (सं० अपर्णा) पार्वती (तपस्या में उन्होंने पत्ते (पर्ण) खाना भी छोड़ दिया था अतः यह नाम पड़ा)। मा० १.७४.७

अपराध : सं० पुं० (सं०) दण्डनीय अनुचित कर्म। मा० २.६१.७

अपराधा : अपराध। मा० १.५८.२

अपराधी : वि० पुं० (सं०)। अपराध करने वाला। मा० १.२७५.६

अपराधु, धू : अपराध+कए। एकमात्र (बड़ा) दोष। 'को बड़ छोट कहत अपराधू।' मा० १.२१.३

अपलोक : सं० पुं० (१) (सं० अपलोक)। नरक आदि कुत्सित लोक; (२) (सं० अपलोक) अपयश, कुख्याति। 'लहहिं सुजस अपलोक बिभूती।' मा० १.५.७

अपलोकु : अपलोक+कए। अपयश, अद्वितीय अपकीर्ति। 'अब अपलोकु सोकु सुत तोरा।' मा० ६.६१.१३

अपसरा : अपछरा । गी० १.३.२

अपह : वि० पुं० (सं०) । नाशक (समासान्त में) । 'ध्वान्तापहं तापह्म' । मा० ३ श्लोक १

अपहर, अपहरई : (१) (सं० अपहरति—दूर करना, नष्ट करना, हर लेना) आ० प्रए । हरण करता है । दूर करता है । 'सरदातप निसि ससि अपहरई ।' मा० ४.१७.६ (२) छीन लेती है+अपने वश में करती है । 'जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई ।' मा० ७.५९.५

अपहरत : (१) वकृ० पुं० । अपहरण करता है—दूर या निरस्त करता है । 'अपहरत विषादा ।' मा० २.२७९.१

(२) क्रियाति० पुं० । 'दुख दाह दारिद······अपहरत को ।' मा० २.३२६ छं०

अपहरति : (१) वकृ स्त्री० । हरण करती । (२) आ० प्रए (सं०) दूर करता-ती है । 'दर्शनादेव अपहरति पाप ।' विन० ५५.८

अपहरन (पा) : वि० । हरने वाला । विन० ५३.९

अपहरहि, हीं : आ० प्रब । दूर करते हैं, छीन लेते हैं । 'भानु जान सोभा अपहरहीं ।' मा० १.२९९.४

अपहारी : वि० (सं० अपहारिन्) दूर करने वाला, हरने वाला । विन० ४४.३

अपाउ : सं० पुं० (सं० अपाय)+कए । हानि, उत्पात, उपद्रव । 'जोगवत अनट अपाउ ।' विन० १००.३

अपान : सं० पुं० (सं० आत्मन्>प्रा० अप्पाण) अपनापन, स्वयम्, निज की सत्ता । 'अपान सुधि भोरी भई ।' मा० १.३२१.छं०

अपाय : (१) सं० पुं० (सं०) । क्षति, विकार, नाश, व्याधि । (२) विघ्न, बाधा (उपाय का विलोम) । 'कलि-काल अपर उपाय ते अपाय भए ।' विन० १८४.१

अपार : वि० (सं०) जिस का पार (छोर) न हो, असीम । मा० १.६.१

अपारा : अपार । मा० १.९.१०

अपारि : अपार (सं० अपारिन्) जो 'पारी'=पारयुक्त न हो । असीम । 'सब गुन उदधि अपारि ।' कृ० २७

अपारू : अपार+कए । 'राम बियोग पयोधि अपारू ।' मा० २.१५४.५

अपारो : अपारू । विन० ११७.३

अपावन : वि० (सं०) । अपवित्र, मलिन, बीभत्स । मा० १.९३ छं०

अपावनि, नी : अपावन+स्त्री० । 'सहज अपावनि नारि ।' मा० ३.५

अपि : अव्यय (सं०) । भी । 'रिपु तेजसी अकेल अपि ।' मा० १.१७०

अपी : अपि । भी । 'धनवंत कुलीन मलीन अपी ।' मा० ७.१०१.७

अपुनीत : अपावन, अपवित्र । मा० १.६९.७

अपेल : वि० (सं०—पेल गतौ) अचल, अनुल्लङ्घनीय । 'प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई ।' मा० ५.५९.८

अप्रतिहत : वि० (सं०) । अव्याहत, निर्बाध, बेरोक । 'अप्रतिहत गति होइहि तोरी ।' मा० ७.१०९.१६

अप्रमेय : वि० (सं०) । अज्ञेय, अनिर्वचनीय (जो प्रमाणों—प्रत्यक्ष इन्द्रिय, अनुमान आदि—से प्रमेय न हो) । प्रमाता द्वारा जो स्वसंवेद्य (साक्षिमास्य) तो हो पर वह उसे अन्य संवेद्य न बना सके । मा० ३.४ छं०

अफल : वि० (सं०) । निष्फल, निरर्थक । 'अफल उपाय-कदंब ।' रा० प्र० ७.५.३

अब : अव्यय (सं० अतः>प्रा० अओ>अ० अउ>अव) ।

अबर्त : सं० पुं० (सं० आवर्त) । भौंर, घुमावदार धारा, प्रवाह चक्र । मा० २.२७९.३

अबल : वि० (सं०) । बलहीन, अशक्त । 'अबला अबल सहज जड़ जाती ।' मा० ७.११५.१६

अबलनि : (१) अबल+सं०ब० । (२) अबला+सं०ब० । अबलों ने+अबलाओं ने । 'हम अबलनि सब सही है ।' कृ० ४२

अबलन्ह : अबलनि । अबलाओं (के) (+अबलों के) । 'अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा ।' मा० १.९६.४

अबला : सं० स्त्री० (सं०) स्त्री (पुरुष की अपेक्षा में अल्प बल वाली) । मा० ७.११५.१६

अबस : वि० (सं० अवश्य) । जो वश में न किया जा सके । 'अबसहि बस-करी ।' मा० ३.२६ छं०

अबहिं, हीं : अभी, इसी समय । मा० २.३४.७

अबहुं, हूं : अब भी, इस समय भी । 'तुम्ह अबहुं न जाना ।' मा० २.१९.२

अबाध धा : वि० पुं० । बाधारहित, अविच्छिन्न, अप्रतिहत । मा० १.३६ २

अबाधी : वि० स्त्री (सं० अबाधा) । दोषों से व्याहत न होने वाली, निर्बाध । मा० ७ ११६ ६

अबासू : सं० पुं० (सं० आवास)+कए । भवन । 'बिनु रघुबीर बिलोकि अबासू ।' मा० २.१७९.६

अबिकारी : वि० (सं० अविकारिन्) विकार रहित, माया के त्रिगुणात्मक परिवर्तनों से परे (वैष्णव मत में जगत् ब्रह्म का परिणाम है—विवर्त नहीं—परन्तु उसमें वैसा विकारात्मक परिवर्तन नहीं आता जैसा कि दूध से दही में देखा जाता है । इस सिद्धांत को 'अविकृत-परिणामवाद' कहते हैं—जैसे, जल हिम रूप में भी जल ही रहता है) 'अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी ।' मा० १.२३.७

अबिगत : वि० (सं० अ-विगत) जो कहीं भी विगत (रहित) न हो=सर्वव्यापी। 'अबिगत अलख अनादि अनूपा।' मा० २.९३.७

अबिचल : वि० (सं० अविचल)। स्थिर, अटल। मा० १.७६.४

अबिचारे : क्रि० वि० (सं० अविचारित)। बिना विचार किये हुए; सत्-असत् की विवेचना किये विना (दे अनबिचार-रमणीय)। 'स्रग महँ सर्प बिपुल भयदायक प्रगट होइ अबिचारे।' विन० १२२.३

अबिछीन : वि० (१) (सं० अविक्षीण) जो क्षीण न हो, प्रचुर, अविरल, सघन, पुष्ट (२) (सं० अविच्छिन्न) अटूट, निरन्तर, अखण्ड, धारा प्रवाहवत् व्याप्त। 'राम पद प्रीति सदा अबिछीन।' मा० ७.११६

अबिद्यमान : वकृ (सं० अविद्यमान) असत्, सत्ताहीन। 'अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाईं।' विन० १२०.२

अबिद्या : सं० पुं० (सं० अविद्या) व्यामोहिका माया, (सात्त्विक विद्या से भिन्न) राजस तथा तामस प्रकृति जिसकी क्रमशः विक्षेप और आवरण शक्तियाँ हैं। आवरण से सत्य का बोध तिरोहित होता है और विक्षेप से असत् में सत् का आरोप होता है—जैसे रज्जु में सर्प का बोध हो तो रज्जुबोध तिरोहित हो जाता और सर्प (असत्) का बोध हो चलता है। मा० ३.१५.३-४

अविद्या पंच : राग, द्वेष, अस्मिता, अभिनिवेश सहित अविद्या का योग-शास्त्रीय पञ्चका। मा० ७। उपसंहार अविद्या पंच जनित विकार भी रघुपति हैं।

अबिनय : सं० (सं० अविनय)। अशिष्टता, दुराग्रह, धृष्टता। 'छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी।' मा० २.६४.६

अबिनासिनि : वि० स्त्री० (सं० अविनाशिनी) कभी नष्ट न होने वाली (आदि शक्ति)। मा० १.९८.३

अबिनासिहि : अविनाशी तत्त्व को। मा० ७.३०.९

अबिनासी : वि० पुं० (सं० अविनाशिन्)। अनश्वर, अनन्त। मा० १.१३.६

अबिबेक, का : सं० पुं० (सं० अविवेक) विवेकहीनता, सत् तथा असत् में अन्तर करने की शक्ति का अभाव। मा० १.१५.२

अबिबेकी : वि०। विवेकहीन। मा० २.१४.२

अबिबेकु : अबिबेक+कए। एक (विचित्र) अविबेक, अद्वितीय नासमझी। 'देखहु मुनि अबिबेकु हमारा।' मा० १.७८.७

अबिरल : वि० (सं० अविरल) सघन, अधिक, संहत, प्रचुर। 'रति होउ अबिरल।' मा० २.७५ छं०

अबिरोधा : वि० (सं० अविरोध)। विरोध-रहित, अनुकूल, निर्विरोध। 'समय समाज धरम अबिरोधा।' मा० २.२९६.३

अबिहित : वि० (सं० अविहित) । शास्त्रीय अथवा लौकिक मर्यादाओं के विपरीत, अनुचित, अनर्गल, विधानविरुद्ध । मा० १.११६.५
[धर्मशास्त्रीय विधीविधान वाले कर्म विहित हैं, शास्त्रीय निषेध वाले कर्म अविहित हैं आधुनिक अवधी में 'अबिहति' चलता है ।]

अबीर : सं० पुं० (सं० आवीर) अभ्रक मिलाकर बनाया हुआ रंगीन चूर्ण विशेष । [अञ्जीर के पत्ते को 'आवीर चूर्ण' कहा गया है अतः अनुमान होता है कि अबीर की रचना में इस पत्ते का योग कभी अवश्य रहा होगा ।] मा० १.१९५.५

अबीरनि : अबीर+संब० । अबीरों (से) । गी० ७.२१.२२

अबुझ : (१) अबुध । नासमझ, बोधहीन, मूढ़ (२) वि० (सं० अबोध्य>प्रा० अबुज्झ) अज्ञेय । 'तेरे ही बुझाये बूझै अबूझ बुझाउ सो ।' विन० १८२.५

अबुध : वि० (सं०) । अज्ञ, मूढ, बोधहीन । मा० १.२७४.२

अबूझ, झा : अबुझ । बुद्धिहीन, अबुध, मूढ+अबोध्य, अज्ञेय । 'अजहुं न बूझ अबूझ ।' मा० १.२७५ 'तिमिधाए मनुजाद अबूझा ।' मा० ६.४०.१०

अब्ज : सं० पुं० (सं०) । कमल । मा० ७ श्लोक १

अब्यक्त : अव्यक्त । (१) मूल प्रकृति । 'अव्यक्तमूलमनादि तरु ।' मा० ७.१३ छं० ५ (२) ब्रह्म । 'कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव । अव्यक्त जेहि श्रुति गाव ।' मा० ६.१३ छं० ७

अब्याहत : वि० (सं० अव्याहत) । व्याघात-रहित, निर्बाध, अप्रतिहत, बेरोक । 'अब्याहत गत संभु प्रसादा ।' मा० ७.११०.१२

अभंग, गा : वि० (सं० अभङ्ग) । अविच्छिन्न, अखण्ड, निरन्तर । 'प्रीति अभंगा ।' मा० ३.१३.११

अभंगू : अभंग+कए । अटूट, हठ । 'मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू ।' मा० १ ७.४

अभय : वि० (सं०) । भय-रहित, निर्भय । मा० ४.४.३

अभाग : अभाग्य । भाग्यहीनता, दुर्भाग्य । 'मोर अभाग उदधि अवगाहू ।' मा० २ २६१.५

अभागा : वि० पुं० । भाग्यहीन । 'गएहुं न मज्जन पाव अभागा ।' मा० १.३९.२

अभागिनि : अभागी (स्त्री) । मा० २.५७.६

अभागी : वि० (१) पुं० । भाग्यहीन । 'अग्य अकोबिद अंध अभागी ।' मा० १.११५.१ (२) स्त्री० । भाग्यहीना । मा० २.५१.२

अभागु : अभाग+कए । एकमात्र दुर्भाग्य । 'मोर अभागु मातु कुटिलाई ।' मा० २.२६७ ४

अभागें : अभागे ने । 'तउ न तजा तन प्रान अभागें ।' मा० २.१६६.६

अभागे : 'अभागा का रूपान्तर (१) बहु०। 'करहिं न प्रान पयान अभागे।' मा० २.७६.६ (२) सम्बो० ए०। 'ताते परबस परयो अभागे। विन० १३६.३

अभागो : अभागा+कए। कवि० ७.१५

अभाग्य : सं० पुं० (सं०)। भाग्यहीनता, दुर्भाग्य। मा० ६.९६.६

अभारू : सं० पुं० (सं० आभार:) कए। भारी बोझ; उत्तरदायित्व तथा उपकार का भार। 'नाथ दीन्ह सबु मोहि अभारू।' मा० २.२६९.३

अभास : आ० प्रए (सं० आभासते>प्रा० आभासइ) भासित होती है, प्रतीत होता है। 'सोइ स्यामता अभास।' मा० ६.१२

अभिअंतर : अभ्यंतर। 'अभिअंतर मल कबहुं न जाई।' मा० ७.४९.६

अभिजित : सं० पुं० (सं० अभिजित) मुहूर्त विशेष जो मध्याह्न और मध्य रात्रि को दो घड़ी का माना गया है ['अभितो जयत्ति इति अभिजित्' व्युत्पत्ति के अनुसार विजेता को भी 'अभिजित्' कहा जाता है अतः अभिजित् मुहूर्त में उत्पन्न बालक विजेता होता है, ऐसी मान्यता है। राम इसी मुहूर्त में हुए थे। मा० १.१९१.१

अभिनंदनु : सं० पुं० कए (सं० अभिनन्दनम्)। विनययुक्त अनुमोदन, स्वागतपूर्ण समर्थन। 'गुर के बचन सचिव अभिनंदनु।' मा० २.१७६.७

अभिमत : (१) सं०+वि० पुं० (सं०)। अभीष्ट, मनचाहा, इष्ट वस्तु। 'राम नाम कलि अभिमत दाता।' मा० १.२७.६

(२) मनोरथ। 'अभिमत बिरखें परेउ जनु पानी।' मा० २.५.६

अभिमान (ना) : सं० पुं० (सं०)। अहंकार। मा० १.३९.३

अभिमानी : वि०। अहंकारी। मा० १.१२१.६

अभिमानु : अभिमान+कए। अद्वितीय अभिमान। 'अति अभिमानु हृदयँ तब आवा।' मा० १.६०.७

अभिरक्षय : आ०-अभ्यर्थना-मए (सं०) तू रक्षा कर। 'मामभिरक्षय रघुकुल नायक।' मा० ६.११५.१

अभिराम : वि० (सं०) अभितः=सब ओर रमण=आनन्द देने वाला। मनोरम, सर्वथा रमणीय, सुन्दर। मा० १.७५

अभिरामा : अभिराम। मा० ७.५३.४

अभिरामिनी : वि० स्त्री०। पूर्ण आनन्द-दायिनी। अति मनोरम 'अभिरामिनी जामिनि भई।' गी० १.५.३

अभिलाष : सं० पुं० (सं०)। कामना, इच्छा, मनोरथ। मा० १.१४४.३

अभिलाषा : अभिलाष। मा० १.८५.१

अभिलाषिहि : आ० भ० प्रए०। अभिलाष करेगा, चाहेगा। 'अस सुकृती नरनाहु जो मन अभिलाषिहि। सो पुरइहि जगदीसु।' जा० मं० ७६

अभिलाषी : वि० । अभिलाष युक्त । इच्छुक । मा० २.२४४.२

अभिलाषु : अभिलाष+कए । एक ही इच्छा । 'सब कें उर अभिलाषु'— २.१

अभिलाषें : क्रि० वि० । अभिलाष किये हुए स्थिति में । 'नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें ।' मा० २.२.३

अभिलाषे : भू० कृ० पुं० (बहु०) अभिलाष युक्त हुए । 'मुनि पन सकल भूप अभिलाषे ।' मा० १.२५०.५

अभिषेक : सं० पुं० (सं०) (१) नहाना या नहलाना, पूर्णतः स्नान कराना । 'सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना ।' २.१५७.७ (२) राज्याभिषेक=सिंहासन पर आसीन होने का विशेष संस्कार जिसमें तीर्थ-जल से स्नान कराया जाता है । मा० २.५ ; ३.६.४

अभिषेकतः : क्रि० वि० (सं०) । अभिषेक से । मा० २१ श्लोक २

अभिषेकु, कू : अभिषेक+कए । मा० २.८; २.१०.७

अभीष्ट : वि०+सं० (सं०) सर्वथा इष्ट, पूर्णतया मनचाहा । 'अति अभीष्ट बर पाइ ।' मा० ७.३५

अभूत : वि० (सं०) । जो न हुआ हो । अपूर्व, अद्भुत । 'उपमा एक अभूत भई तब ।' गी० १.२६.६

अभूतरिपु : (१) वि (सं०) जिस के शत्रु न हुए हों । अजातशत्रु । सर्वथा शत्रुहीन । (२) भूतों=प्राणियों का जो शत्रु न हो । निर्वैर । सर्वथा वैर-रहित । 'सम अभूतरिपु बिमद बिरागी ।' मा० ७.३८.२

अभेद : वि० (१) (सं० अभेद्य) । जिसका किसी प्रकार भेदन न किया जा सके । 'कवच अभेद बिप्र गुर पूजा ।' मा० ६.८०.१० (२) (सं० अभेद) । भेद-रहित, अद्वैत निर्विकार, जिससे पृथक् कोई सत्ता न हो । 'अज अकल अनेह अभेद ।' मा० १.५०

अभेदबादी : वि० पुं० (सं० अभेद-वादिन्) जीव और जगत् से ब्रह्म को तथा ब्रह्म से जीवजगत् को भिन्न न मानने के सिद्धान्त के प्रतिपादक । अद्वैतवादी । विवर्त सिद्धान्त के आधार पर सृष्टि की व्याख्या करने वाले । 'तेइ अभेदबादी ग्यानी नर ।' मा० ७.१००.२

शाङ्करवेदान्त पूर्ण अभेदवादी है; माध्ववेदान्त पूर्ण द्वैतवादी तथा शेष वैष्णव वेदान्त भेदाभेद या द्वैताद्वैत मान्य करते हैं—जैसे रामानुज अंशरूप जीवजगत् की पृथक् सत्ता स्वीकृत करके भी अंशी ब्रह्म से अभेद मानते हैं । गोस्वामी जी ने निर्गुण मतवादी के लिए इस शब्द का प्रयोग किया है ।

अभेरा : सं० पुं० । मुठभेड़, भिड़न्त, टकराव, धक्कमधक्का । विन० १८९.३

अभोगी : वि० पुं० (सं० अभोगिन्) । भोग-वासना-रहित, मुक्त । 'अज अनवद्य अकाम अभोगी ।' मा० १.९०.३

अभ्यंतर : वि० (सं० आभ्यन्तर) भीतरी, आन्तरिक, (मानसिक)। 'बाहिर कोटि उपाय करिअ अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै।' विन० ११५.१

अभ्यास : सं० पुं० (सं०)। एक ही कार्य को बार-बार निरन्तर करते रहने की प्रक्रिया; उस प्रक्रिया से बनी हुई मानसिक वासना। 'जनम-जनम अभ्यास निरत चित अधिक-अधिक लपटाई।' विन० ८२.१

अमंगल : मङ्गल का अभाव या मङ्गल—प्रतिकूल स्थिति। मा० १.२६.१

अमर : (१) वि० (सं०) जो मरता न हो, मृत्युजयी। 'अजर अमर सो जीति न जाई।' मा० १.८२.७ (२) सं० (सं०) देवजाति। 'सब अमर हरषे सुमन बरषि।' मा० १.१०२ छं०

अमरउ : अमर भी। न मर सकता हो, उसे भी। 'सकउँ तोर अरि अमरउ मारी।' मा० २.२६.३

अमरताँ : अमरत्व के कारण, अमर करने की प्रकृति से। 'सुधा सराहिअ अमरताँ।' मा० १.५

अमरपति : देवराज=इन्द्र। मा० २.१७४

अमरपद : अमरों=देवों का पद; मृत्युहीन स्थिति=अमरत्व। 'अभिअ अमरपद माहुरु मीचू।' मा० २.२६८.६

अमरपुर : स्वर्ग, देवलोक। मा० २.१४१

अमरष : सं० पुं० (सं० अमर्ष) रोष, असहिष्णुता। मा० ७.३८.२

अमरषत : वकृ पुं०। रोष करता-ते। 'बारहिं बार अमरषत करषत करकैं परीं सरीर।' गी० ५.२२.८

अमरषा : भू० कृ० पुं०। अमर्ष-युक्त हुआ, क्रुद्ध हुआ। 'को करै अटक कपि कटक अमरषा।' कवि० ६.७

अमरावति : सं० स्त्री० (सं० अमरावती) इन्द्र की नगरी, स्वर्गपुरी। मा० १.१५२.८

अमरावतिपालू : (दे० पालु) इन्द्र। मा० २.१६६.७

अमल : वि० (सं०) निर्मल, निष्कलुष। मा० १.४२.७

अमा, अमाइ, ई : (सं० माति, आमाति,>प्रा० माइ, आमाइ—समाना, सीमा में आ जाना) आ० प्रए०। अमाता है। 'प्रेम उमँग न अमाइ।' रा० प्र० ४.४.१ 'हृदयँ न अति आनंदु अमाई।' मा० १.३०७.४

अमात : वकृ० पुं० (सं० मात्>प्रा० माअंत) समाता-ते। 'हृदयँ न प्रेमु अमात।' मा० १.२८४

अमान : वि० (सं०) (१) मान=प्रमाण+परिमाण से रहित, अमेय, अप्रमेय, अज्ञेय। 'मानद अमान' विन० ४२.३ (२) प्रमाण+आत्म सम्मान से रहित। 'अगुन अमान मातु पितु हीना।' मा० १.६७.८ (३) अभिमनरहित।

'तीसरि भगति अमान ।' मा० ३.३५ (४) आदर से रहित, सम्मान के अयोग्य । 'अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिताँ बनबास ।' मा० ६.३१ क

अमाना : अमान । अप्रमेय, अनिवचनीय । मा० १.१९२ छं०

अमानी : वि० (सं०) । जो मानी=अभिमानी न हो । निरहंकार । मा० ७.३८.४

अमानुष : वि० (सं०) । मानुषशक्ति से परे, लोकोत्तर । 'सकल अमानुष करम तुम्हारे ।' मा० १ ३५७ ६

अमाया : वि० (सं० अमाय) । निर्माय=माया रहित । निश्छल । 'मुदिता मम पद प्रीति अमाया ।' मा० ३.४६.४

अमाये : भू० कृ० पुं० । समाया, समाये । 'मुदित मगन आनँद न अमाये ।' गी० १.३२.६

अमायो : भू० कृ० पुं० कए । समाया । 'उर प्रमोद न अमायो ।' गी० १.१७.४

अमिअँ : अमृत से, अमृत में [सं० अमृतेन, अमृते>प्रा० अमिएण>अ० अमिएँ] । 'बोले गिरा अमिअँ जनु बोरी ।' मा० १.३३०.५

अमिअ, य : सं० पुं० (सं० अमृत>प्रा० अमय=अमिअ) । अमरता देने वाला देवों का पेय विशेष । मा० १.१.२

अमित : वि० (सं०) । अपरिमित, असंख्य, अपरिमेय, मिति=सीमा से परे । मा० १ १२.१२

अमितबोध : वि० (सं०) असीम ज्ञान से सम्पन्न । मा० ३.४५.८

अमिति : अमित । मिति=परिमाण से रहित । अत्यन्त । 'सुनि मैं नाथ अमिति सुखु पावा ।' मा० ७.५३.७

अमिय : अमिअ । गी० १.१४.१

अमी : अमिअ । 'कालकूट फलु दीन्ह अमी को ।' मा० १.१६.८

अमृत : अमिअ । मा० २.४२.३

अमृतु : अमृत+कए । अमर बनाने वाला पेय । 'अमृतु लहेउ जनु संतत रोगीं ।' मा० १.३५०.६

अमृषा : अमिथ्या, सत्य । मा० १ श्लोक ६

अमोघ : वि० (सं०) । जो मोघ=निष्फल न हो । अव्यर्थ, सदा सार्थक, अवश्य कार्यकारी । 'जिमि अमोघ रघुपति कर बाना ।' मा० ५.१.८

अमोघसक्ति : वि० (सं० अमोघशक्ति) अमोघ शक्ति से सम्पन्न । मा० ७.७२.४

अमोल : वि० (सं० अमूल्य>प्रा० अमोल्ल) अमित मूल्य वाला (जिसका मूल्य न लगाया जा सके) । मा० २.१.४

अमोले : अमोल (बहु०) । 'देखि प्रीति सुनि बचन अमोले ।' मा० १.१५०.१

अय : सं० पुं० (सं० अयस्) । लोहा । 'अय इव जरत धरत पग धरनी ।' मा० १.२९८.५

अयं : सर्व० पुं० कए (सं० अयम्) यह। 'पापौघमय तव तनु अयं।' मा० ६.१०४· छं०

अयन : सं० पुं० (सं०)। (१) आगार, भवन। 'करुना अयन' मा० १.० दो० ४ (२) स्थान, आश्रय। 'नयननि अयन दये।' गी० १.६३.५ (३) सूर्यगति के अनुसार खगोल के दो भाग—उत्तरायण तथा दक्षिणायन। 'दिनमति गवन कियो उतर अयन।' गी० १.५१·३

अयना : अयन। आगार। 'सकल गुन अयना।' मा० १.२०६.८

अयमय : वि० (सं० अयोमय)। लौह, लोहनिर्मित। 'अयमय खाँड़ न ऊखमय।' मा० १.२७५

अयान : वि० पुं० (सं० अज्ञ>प्रा० अयाण) मूढ़। 'कहै सो अघम अयान असाधू।' मा० २ २०७.७

अयानप : सं० पुं०। अज्ञता, मूढता। विन० २६२.४

अयानपन : अयानप (सं० अज्ञत्व>प्रा० अयाणत्तण>अ० अयाणप्पण)। मूढ़ता।

अयानी : वि० स्त्री०। मूढा। मा० १.१२०.४

अयाने : (१) 'अयाना' का रूपान्तर (बहु०)। (२) सम्बो० एक०। हे मूढ़। 'भजहि व अजहुँ अयाने।' विन० २३६.४

अयान्यो : अयाना+कए। विन० ९२.२

अयुत : संख्या (सं०) दस सहस्र। मा० ७.१०७.३

अरँड़ु : सं० पुं० कए (सं० एरण्डम्>अ० एरंडु) रेड़ का वृक्ष। 'सेवहिं अरँड़ु कलपतरु त्यागी।' मा० २.४२.३

अरंभ, भा : सं० पुं० (सं० आरम्भ) प्रारम्भ (श्रीगणेश, सूत्रपात)। मा० ७.६३.५; १.३५.६

अरंभेउ : भू०कृ० पुं० कए। आरम्भ हुआ। 'अनरथु अवध अरंभेउ जब तें।' मा० २.१५७.५

अरगजाँ : अरग्रजा से। 'गलीं सकल अरगजाँ सिचाईं।' मा० १.३४४.५

अरगजा : सं० पुं० (फा० अरगजः) एक सुगन्धित द्रव पदार्थ जो चन्दन, गुलाब, कपूर, कस्तूरी और चमेली-तेल के मिश्रण से बनता है। गी० १.१.८

अरगाइ, ई : पूकृ०। (१) अलग करके, निवारण कर, हटा कर। 'गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ रखइ जननी अरगाई॥' मा० ३.४३.६ (२) अलग रह कर चुप या उदासीन होकर। 'अस कहि रामु रहे अरगाई।' मा० २.२५९.८

अरगानी : भू०कृ० स्त्री०। वार्ता से अलग हुई, चुप। 'अब रहु अरगानी।' मा० २.१४.७

अरघ : सं० पुं० (सं० अर्घ्य) अभ्यागत स्वागत-सम्मान में भेंट किया जाने वाला पात्र जिसमें जल, फूल, फल आदि की सामग्री रहती है। षोडशोचार पूजन में यह प्रथम है। 'अरघ पाँवड़े देत।' मा० १.३४९

अरघनि : अरघ+संब०। अर्घ्यों (से)। 'हरषत अरघनि भानु।' दो० ४५५

अरघु : अरघ+कए। 'करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा।' मा० १.३१९.४ (सम्पूर्ण पूजा-सामग्री से तात्पर्य है)।

अरण्य : सं० पुं० (सं०)। वन। मा० १ श्लोक ४

अरति : सं० स्त्री० (सं०) बेचैनी, उल्लासहीनता की मनोदशा। मा० २.२९५

अरथ : सं० पुं० (सं० अर्थ)। (१) काव्यार्थ। 'आखर अरथ अलंकृति नाना।' मा० १.९.९ (२) शब्द का सामान्य अर्थ। 'गिरा अरथ' मा० १.१८ (३) चार पुरुषार्थों में-से एक। 'धरम अरथ कामादिक चारी।' मा० २.३७.९ (४) आशय, गूढ तात्पर्य। 'कहहु नाम कर अरथ बखानी।' मा० १.१६२.८

अरथु : अरथ+कए। 'अरथु अमित अति आखर थोरे।' मा० २.२९४.२

अरध : (१) वि०+सं० पुं० (सं० अर्ध) एक वस्तु का समान भार। 'तनु अरध भवानी।' मा० १.२४७.५ (२) आधा कुछ भाग। 'अरध निमेष' मा० २७०.८

अरधंग : सं० पुं० (सं० अर्धाङ्ग) शरीर का आधा भाग। 'सदा संभु अरधंग निवासिनि।' मा० १.९८.३

अरनी : सं० स्त्री० (सं० अरणि)। पवित्र लकड़ी जिसे घिस कर यज्ञ हेतु अग्नि उत्पन्न की जाती है। 'पुनि विवेक पावक कहुँ अरनी।' मा० १.३१.६

अरप : सं० पुं० (सं० अर्प)। अर्पण, दान। 'जो संपति दससीस अरप करि रावन सिव पहिं लीन्ही।' विन० १६२.३

अरबिंद : अरविन्द।

अरबिंदु : अरबिंद+कए। 'अरबिंदु सो आननु।' कवि० १.२

अरविन्द : सं० पुं० (सं०)। कमल। मा० ७.१०८.१३

अराती : सं० पुं० (सं० अराति)। शत्रु। मा० १.१६०.७

अरि : (१) सं० पुं० (सं०)। शत्रु। मा० १.२७१.३ (२) सं० स्त्री० (सं० आली =श्रेणी पंक्ति, समूह। 'महाबिषु ब्याधि दवा-अरि घेरे।' कवि० ७.५०

अरिन्ह : अरि+संब०। शत्रुओं। 'अरिन्ह को कोटि कृसानु है।' गी० ५.३५.३

अरिमर्दन : (१) वि० शत्रुओं का विनाश करने वाला। (२) सं० पु०। राजा भानु प्रताप का अनुज। मा० १.१५३.६

अरिष्ट : सं० पुं० (सं०)। शत्रु, अनिष्ट ग्रह, पापग्रह-शनि आदि, कष्ट या कष्टकारी ज्योतिषयोग। रा० प्र० ३.३.४

अरिहि : शत्रु को। 'जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला।' मा० २.३२.८

अरिहुक : शत्रु का भी। 'अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा।' मा० २.१८३.६

अरी : अरि। मा० ७.१४.१८

अरु : अव्यय (सं० अपरम्>प्रा० अवर>अ० अवरु) और। 'पिता अरु माता।' मा० १.७३.८

अरुंधती : बसिष्ठ की पत्नी का नाम। मा० २.१८७.५

अरुझा, अरुझाइ, ई : (सं०आरुध्यते>प्रा० आरुज्झइ-उलझना, संपृक्त होना, सुलझाव न मिलने वाला गुँथना) आ० प्रए। उलझता है, उलझती है। 'छूट न अधिक अरुझाई।' मा० ७.११७.६

अरुझानी : भू०कृ० स्त्री०। उलझी, लिपटी, गुँथी हुई। 'बिटप बिसाल लता अरुझानी।' मा० ३.३८.१

अरुझान्यो : भू०कृ० पुं० कए। गुँथ गया, उलझ-लिपट गया। 'बिषम जाल अरुझान्यो।' विन० ८८.२

अरुझि : (१) पूकृ०। उलझकर। (२) सं० स्त्री०। उलझन। 'करत न प्रान पयान सुनहु सखि, अरुझि परी यहि लेखे।' गी० २.५३.३

अरुन : (१) वि० (सं० अरुण)। लाल, रक्तवर्ण। मा० १.१०६.७ (२) सं० पुं०। सूर्य का सारथी जो उषा की लाली के रूप में उदित माना गया। (३) सूर्य का एक नाम। 'उभउ अरुन अवलोकहु ताता।' मा० १.२३८.७

अरुनचूड़ : सं० पुं० (सं० अरुणचूड़=ताम्रचूड़)। कुक्कुट, मुर्गा। मा० १.३५८.५

अरुनतर : वि० (सं० अरुणतर)। अतिशय रक्तवर्ण। गी० ७.१२.६

अरुनमय : वि०। प्रभात की अरुणाभा से ओतप्रोत। 'मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी।' मा० २.२३७.५

अरुनसिखा : अरुनचूड (सं० अरुणशिख)। मा० १.२२६

अरुनारी : सं० स्त्री० (सं० अरुणाली)। अरुण की पक्ति। उषःकाल की लाल आभा की रेखा। 'अड़त अबीर मनहुं अरुनारी।' मा० १.१९५.५

अरुनारे : वि० पुं० (बहु०)। अरुणाभ, लाली लिए हुए, रक्तवर्ण 'अधर अरुनारे।' मा० १.१९९.८

अरुनोदयं : अरुणोदय-काल में, उषाकाल में। 'अरुनोदयँ सकुचे कुमुद।' मा० १.२३८

अरुनोपल : (अरुन+उपल)। लाल पत्थर। मा० ६.४०.९

अरूप : वि० (सं०)। रूपरहित, निराकार। मा० १.१३ ३

अरूपा : अरूप। मा० १.४१.२

अरे : (१) अव्य० सम्बोधनार्थक (सं०)। (२) भू० कृ० पुं०। उड़ गए, डटे गये, दृढता के साथ स्थिर हुए। 'बिरुझे बिरुदैत जे खेत अटे।' कवि० ६.३४

अरोष : वि० (सं०)। रोषरहित। मा० ७.४६.६

अर्क : सं० पुं० (सं०) (१) सूर्य (२) मदारकक्ष। 'अर्क जबास पात बिनु भयऊ।' मा० ४.१५.३

अर्चि : (१) पूकृ०। अर्चन करके, पूजकर। विन० १०.६ (२) सं० स्त्री० (सं० अर्चिष्) अग्निशिखा, दीपशिखा—लौ, आँच; तेज की किरणें। विन० ५३.६

अर्थ : (अरथ)। (१) पुरुषार्थ चतुष्टय में अन्यतम। कवि० ७.१५८ (२) पदार्थ, विषयवस्तु। 'अर्थ अविद्यमान जानिऊ संसृति नहिं जाइ गोसाईं।' विन० १२०.२

अर्थसंघ : विविध अर्थों का समवाय; काव्य में वाच्य, लक्ष्य, व्यङ्ग्य अर्थों का संश्लिष्ट बिम्ब। मा० १ श्लोक १

अर्ध : वि०+सं० (सं०)। समान भाग आधा। 'अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा।' मा० १.१९०.२

अर्धंग : अरधंग। कवि० ७.१४९

अर्धनिसि : आधी रात, मध्यरात्रि में। 'इहाँ अर्धनिसि रावनु जागा।' मा० ६.१००.७

अर्धांग : अर्धंग। विन० १०.२

अर्पा : अर्पित। सौंप दिया। 'बिस्व ग्रसिहि जनु एहि बिधि अर्पा।' मा० ६.६७.५

अर्पित : भूकृ० (सं०)। समर्पित, प्रदत्त। मा० १.१५६.२

अर्बुदै : संख्या (सं० अर्बुद)। अरबों में। 'सैन के कपिन को गनै अर्बुदै।' कवि० ६.२०

अर्भक : सं० पुं० (सं०)। छोटा बच्चा, क्षीण, कृश शिशु। 'गर्भन्ह के अर्भक दलन।' मा० १.२७२

अर्वाक् : वि० (सं०) अर्वाचीन (प्राचीन का विलोम), अपेक्षाकृत बाद का, अवर। विन० ५४.७

अलंकृत : भू० कृ० (सं०)। विभूषित, सुसज्जित, अङ्गारित। मा० १.२९९.६

अलंकृति : सं० स्त्री० (सं०)। अलंकार=आभरण+काव्यालंकार। 'आखर अरथ अलंकृति नाना।' मा० १.९.९

अलंपट : जो लम्पट न हो। परस्त्री-परधन आदि से विमुख। मा० ७.३८.१

अलक : सं० पुं० (सं०)। घुँघराले केश। 'चिक्कन कुटिल अलक अवली छबि०।' कृ० २१

अलकावली : (अलक+आवली)। अलकों की श्रेणी। केशकजाप। 'गमुआरी अलकावली।' गी० १.२२.७

अलकैं : अलक+बहु०। गी० १.२३.२

अलख : वि० (सं० अलक्ष्य>प्रा० अलक्ख)। जो लक्षित न हो, देखा न जा सके; जिसका लक्षण (स्वरूप) न किया जा सके; अदृश्य, अप्रमेय। 'अबिगत अलख अनादि अनूपा।' मा० २.९३.७

अलखगति : वि० (सं० अलक्ष्यगति) अदृश्य गति वाला, व्यापक तत्त्व जिसका लक्षण या दर्शन न किया जा सके। अदृश्य होकर चलने वाला। 'को अज अगुन अलखगति कोई।' मा० १.१०८.८

अलखित : वि० (सं० अलक्षित) अदृश्य, न देखा हुआ, न देखी हुई। 'कबि अलखित गति बेषु बिरागी।' मा० २.११०.८

अलखु : अलख+कए। अदृश्य तत्त्व। 'ब्यापकु ब्रह्म अलखु अबिनासी।' मा० १.३४१.६

अलच्छि : सं० स्त्री० (सं० अलक्ष्मी>प्रा० अलच्छी)। निर्धनता, अकिंचनता, दरिद्रता। मा० १.६.७

अलप : वि० (सं० अल्प)। थोड़ा, लेशमात्र, यत्किंचित। 'तातें मैं अति अलप बखाने।' मा० १.१२.३

अलसात : वकृ० पुं०। आलस्यपूर्ण शिथिलता की चेष्टाएँ करता-करते। गी० १.१९.४

अलसातो : क्रियाति० पुं० एक०। यदि आलस्य करता······। 'जपत जीह रघुनाथ को नाम नहिं अलसातो। बाजीगर के सूम ज्यों खल खेहू न खातो।।' विन० १५१.२

अलसी : वि० पुं०। आलसी, अकर्मण्य। कवि० ६.७१

अलरन : सं० पुं० (सं० आलान)। हाथी बाँधने का खम्भा या खूँटा। मा० २.५१

अलायक : (सं० अ+अरबी-लायक)। नालायक, अयोग्य। विन० १४५.६

अलि, अली : (१) सं० स्त्री० (सं० आली)। सखी, सहेली। 'सिय सहित हियँ हरषित अली।' मा० १.२३६ छं० (२) (सं० आलि)। श्रेणी, पंक्ति, समूह। (३) सं० पुं० (सं० अलि)। भ्रमर। 'अलिगन गावत नाचत मोरा।' मा० २.२३६.७

अलिगिनी : अलिनि (संभवतः 'अलिगण' से बनाया हुआ स्त्री० शब्द)। 'मंद मंद गुंजत हैं अलि अलिगिनी।' गी० २.४३.३

अलिनि : सं० स्त्री०। भ्रमरी। मा०१.२५९.१

अलीं : 'अली'+ब०। अलियाँ, सखियाँ। 'प्रेमु न जाइ कहि, जानहिं अलीं।' मा० १.२३७ छं० ३

अलीक : वि०+सं० (सं०)। मिथ्या, असत्य। मा० ६.२५.८

अलीका : अलीक। मा० २.२१६.६

अलीहा : वि० (सं० रेखा>प्रा० लीहा) । रेखा-हीन, निर्मूल, निराधार (रेखा-रहित चित्र के समान व्यर्थ) । मिथ्या, कपोल कल्पित । 'एक कहहिं यह बात अलीहा ।' मा० २.४८.७

अलुज्झि : पूकृ० । उलझकर, उलझाकर । 'खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं ।' मा० ६.८८ छं०

अलेख : (१) वि० (सं०) लेख-रहित या लेखारहित । शून्य, वह जिसका उल्लेख न हो, अद्भुत । (२) (सं० अलेख्य) । अकथ्य, अनिर्वचनीय, उल्लेख के अयोग्य । (३) सं० पुं० (सं० आलेख) । चित्र । 'भए अलेख सोचबस लेखा ।' २.२९४.८

अलेखी : अलेख । अकथ्य, विचित्र । 'बड़े अलेखी लखि परैं ।' विन० १४७.५

अलेप : वि० (सं०) । लेपरहित, निर्लिप्त, अनासक्त, निष्काम, वासनादि मलों से रहित । 'अगुन अलेप अमान एकरस ।' मा० २.२१९.६

अलोने : वि० पुं० बहु० (सं० अलवण>प्रा० अलोण) । लवणरहित । 'जस सालन साग अलोने ।' विन० १७५.४

अलोला : वि० (सं० अलोल) । अचञ्चल, स्थिर, लोभ तथा वासना से रहित होकर एकाग्र । 'नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला ।' मा० ४.७.१५

अलौकिक : (१) (दे० लौकिक) । लौकिक हिताहित से परे, लोकोत्तर । 'अकथ अलौकिक तीरथराऊ ।' मा० १.२.१३ (२) विलक्षण, अद्भुत—जो लोक प्रसिद्ध व्यवहार की व्याख्या में न बँधता हो । 'असि सब भाँति अलौकिक करनी ।' गी० १.११८.८ (३) लोक में जो अन्यत्र न दिखाई दे । 'जासु बिलोकी अलौकिक सोभा ।' मा० १.२३१.३

अल्प : वि० (सं०) । तुच्छ, क्षुद्र, छोटा (थोड़ा-सा) । 'रावन नगर अल्प कपि दहई ।' मा० ६.२३.८

अल्पमृत्यु : सं० स्त्री० (सं०) । अल्पायु वाली मृत्यु, अकालमृत्यु [दीर्घायु, मध्यायु और अल्पायु ये तीन आयुर्दाय होते हैं । ४० वर्ष से कम वय वाली आयु अल्पायु है और उसमें मृत्यु को 'अल्पमृत्यु' कहा जाता है] । मा० ७.२१.५

अवँराई : अँबराई । आम्रवण, बगीचा । 'संतसभा चहुँ दिसि अवँराई ।' मा० १.३७.१२

अवकलत : वकृ० पुं० । सूझता, विचार में आता, तर्क में बैठता । 'मोहि अवकलत उपाउ न एकू ।' मा० २.२५३.२

अवकास : सं० पु० (सं० अकाश) । रिक्त स्थान, अन्तराल । 'कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ ।' मा० ७ ९०.३ [दो मूर्त द्रव्यों के बीच का अन्तर अवकाश है, जिसका कारण अथवा आश्रय आकाश है ।]

अवकासा : अवकास । 'नभ सत कोटि अमित अवकासा ।' मा० ७.९१.८

अवगाहत : वकृ० पुं० । थहाते हुए । विन० १२२.४

अवगाहन्ति : आ० प्रब० (सं०) । थाह लेते हैं, मज्जन करते हैं । मा० ७.१३० श्लोक २

अवगाहहिं : अवगाहन्ति । स्नानार्थ प्रवेश करते है । 'जे सर सरित रामु अवगाहहिं ।' मा० २.११३.६

अवगाहा : वि० (सं० अ+वगाह) । अथाह । 'उभय अपार उदधि अवगाहा ।' मा० १.६.१ (२) अशक्य, दुर्गम । 'तोरेहुँ धनुषु ब्याहु अवगाहा ।' मा० १.२४५.६

अवगाहि, ही : पूकृ० अवगाहन करके, निमज्जन करके । 'भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही ।' मा० १.३९.९

अवगाहु, हू : अवगाहा । 'प्रेम बारि अवगाहु सुहावन ।' मा० १.२६२.२

अवगाहैं : अवगाहहिं । गी० ७.१३.२

अवगुन : सं० पुं० (सं० अवगुण) । दोष (गुण का विलोम) । मा० १.४.५

अवगुनन्हि : अवगुन+संब० । अवगुणों (को) 'गुन प्रगटइ अवगुनन्हि दुरावा ।' मा० ४.७.४

अवग्या : सं० स्त्री० (सं० अवज्ञा) । तिरस्कार, अनादर, अवहेलना, अवमानना । मा० ५.२६.५

अवघट : सं० पुं० (सं० अपघट्ट, अवघट्ट) । जलाशय का वह तट जिसमें चढ़ने-उतरने की व्यवस्था न हो और गहराई अधिक हो । मा० ३.७.४

अवचट : क्रि० वि० (सं० अव+चट आवरणे) । आवरण रखे हुए, अनिच्छा से, बिना किसी लगाव के, उड़तीं नजर से, सरसरे तौर पर । 'अवचट चितए सकल भुआला ।' मा० ९.२४८.६

अवटैं : आ० प्रए० (प्रा० अट्टइ=सं० क्वथति) । पकाता है, पकाए, आग और पानी के योग से परिपक्व करे । 'अवटैं अनल अकाम बनाई ।' मा० ७.११७.१३

अवडेरि : पूकृ० । बाहर करके, तिरस्कृत करके, निकाल कर । 'पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही ।' मा० १.७९.८ [प्राकृत में 'द्वार' का रूपान्तर 'देर' होता है । 'सं० अपद्वार=गौण या छोटा द्वार>प्रा० अवदेर' से अवडेरना हिन्दी क्रिया की निष्पत्ति है अतः पिछले द्वार से निकालने जैसा मूल अर्थ है । निकालने या तिरस्कृत करने का लाक्षणिक अर्थ चलता है ।]

अवडेरिये : आ०-कवा-प्रए । द्वार से निकालिए, बाहर कीजिए । 'पोषि तोषि थापि आपनो न अवडेरिये ।' हनु० ३४

अवडेरे : क्रि० वि० । अनादर के साथ, घर से बाहर करके । 'बिधिहु सृज्यो अवडेरे ।' विन० २२७.२

अवढर : क्रि० वि० (सं० अबाक्+द्रव>प्रा० अव+ढल—परि०)। नीचे को ढलकना या बहना, बेरोक द्रवित होना, अतिशय उदारतावश बिना विचार किये दान करना। 'आसुतोष तुम्ह अवढर दानी।' मा० २.४४८

अवतंस : सं० पुं० (सं०) आभरण। मा० २.९

अवतंसा : अवतंस। 'भए प्रसन्न चंद्र अवतंसा।' मा० १.८८.६

अवतर, अवतरइ, ई : (सं० अवतरित>प्रा० अवतरइ—अवतार लेना, जन्म ग्रहण करना) आ० प्रए। अवतार लेता है। 'निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ।' मा० ४.२६

अवतरहिं, हीं : आ० प्रब०। अवतार लेते हैं। मा० १.१४०.२

अवतरिहउँ : आ० भ० उए। मैं अवतार लूँगा। 'परमसक्ति समेत अवतरिहउँ।' मा० १.१८७.६

अवतरिहि : आ० भ० प्रए। अवतार लेगी (लेगा)। 'सोउ अवतरिहि मोरि यह माया।' मा० १.१५२.४

अवतरी : भू०कृ० स्त्री०। अवतीर्ण हुई। 'जगदंबा जहँ अवतरी।' मा० १.९४

अवतरेउ : भू०कृ० पुं० कए। अवतीर्ण हुआ। 'जो अवतरेउ भूमि भय टारन।' मा० १.१६.७

अवतरेहु : आ० भू०कृ० पुं०+म० ब०। तुम अवतीर्ण हुए हो। 'धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं।' मा० ४.९.५

अवतार : सं० पुं० (सं०)। परमेश्वर का जगत् में आकार ग्रहण करना अवतार है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि अवतार हैं जिनके माध्यम से ब्रह्म (राम) जगत् में अवतीर्ण होता है। उपासना की दृष्टि से आचार्य रामानुज ने अवतार के चार भेद किये हैं—(१) अर्चा=प्रतिमा, (२) विग्रह=नृसिंह, वामन, वराह आदि; (३) व्यूह=चतुर्व्यूह=वासुदेव या नारायण, संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—रामभक्ति दर्शन में राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का चतुर्व्यूह मान्य है; (४) प्रत्यक् अथवा अन्तर्यामी जो सभी जीवों में व्याप्त रहकर प्रेरणा देता है। रामानुज के अनुसार—चारों का उत्तरोत्तर महत्त्व है; फलत: प्रत्यक् सर्वोपरि है, परन्तु प्रथम तीन से होकर ही प्रत्यक् की उपासना संभव मानी गई है। अत्याचार का दमन करने हेतु अवतारों की अनन्तता मान्य है जिनके चार प्रमुख भेद किए जाते हैं—(१) आवेशावतार=छोटे-मोटे अनाचार के विरुद्ध किसी व्यक्ति में भगवान् का आवेश हो सकता है। (२) प्रवेशावतार=परशुराम आदि। (३) अंशावतार=वामन आदि। (४) पूर्णावतार=राम, कृष्ण।

अवतारी : वि० (सं०)। अवतार लेने वाला। विन० ४३.१

अवदात : वि० (सं०)। उज्ज्वल, श्वेत। मा० ६ श्लोक १

अवध : अजोध्या (सं० अयोध्या>प्रा० अउज्फा)।

अवधधनी : अवधपति । गी० ७.२०.१

अवधनाथु : अवधपति । दशरथ । मा० १.३३२

अवधपति : अयोध्या नरेश । मा० १.३२५

अवधपुर : अयोध्या नगरी । मा० १.३३६

अवधपुरीं : अयोध्या नगरी में । 'अवधपुरीं यह चरित प्रकासा ।' मा० १.३४.५

अवधपुरी : अवधपुर । मा० १.१६.१

अवधि : (१) सं० स्त्री० (सं०) । सीमा; वह बिन्दु जहाँ से अथवा जहाँ तक गणना, गति आदि की जाय । 'महिमा अवधि राम पितु माता ।' मा० १.१६.८ (२) प्रवासी के आने की निश्चित तिथि । 'अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना ।' मा० २.५७.२

अवधूत : (१) वि० (सं०) । उपेक्षित तिरस्कृत । (२) सं० पुं० । वर्णाश्रमधर्म से संन्यास लेकर अपने में ही सन्तुष्ट रहने वाला परमहंस; जीव-ब्रह्म के अभेद अंशांशिभाव) का ज्ञाता । 'धूत कहौ अवधूत कहौ ।' कवि० ७.१०६

अवधेस : अयोध्या नरेश; राम या दशरथ । मा० १.४६.७

अवधेसा : अवधेस । मा० ६.४५.७

अवन : वि० पुं० (सं०) । रक्षणशील (अवरक्षणे) । पालक । 'सरन आये अवन ।' हनु० ८

अवनि : सं० स्त्री० (सं०) । पृथ्वी । मा० १.१५४.८

अवनि कुमारी : पृथ्वी की पुत्री, सीताजी । मा० २.६४.४

अवनिप : सं० पुं० (सं०) । पृथ्वी का रक्षक=राजा । मा० २.४४.१

अवनीं : अवनि पर, पृथ्वी पर । 'त्रसित परेउ अवनीं अकुलाई ।' मा० १.१७४.८

अवनी : अवनि । मा० १.१८२.५

अवनीस, सा : अवनिप (सं० अवनीश) । मा० १.६.७

अवनीसु, सू : अवनीस+कए । 'चलेउ लवाइ नगर अवनेसू ।' मा० १.२१७.६

अवमान : सं० पुं० (सं०) । अवज्ञा, तिरस्कार, अवहेलना । 'गुर अवमान दोष नहिं दूजा ।' मा० २.२०९.५

अवमानी : वि० पुं० (सं०) । अवहेलना करने वाला । 'सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी ।' मा० २.१७२.६

अवर : वि० (सं० अपर>प्रा० अवर) । अन्य और । 'अवर एक बिनती प्रभु मोरी ।' मा० १.१५१.४

अवराधक : वि० (सं०) । आराधना करने वाला, उपासक । मा० ४.७.१७

अवराधन : सं० पुं० (सं०) । आराधना, उपासना । 'सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान ।' मा० ७.११० घ

अवराधहिं : आ० प्रब०। आराधना करें। 'कहिय उमहि मनु लाइ जाइ अवराधहिं।' पा० मं० २३

अवराधहु : आ० मब०। आराधना करते या करती हो। 'केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू।' मा० १.७८.३

अवराधिए : आ० कवा० प्रए०। आराधन कीजिए। 'बीर महा अवराधिए।' विन० १०८.१

अवराधें : आराधन से। 'इच्छित फलु बिनु सिव अवराधें।' मा० १.७०.८

अवराधे : भू०कृ० पुं० (बहु०)। आराधित किये, पूजे, अनुकूल किये। 'इन्ह सम कोउ नहि सिव अवराधे।' मा० १.२१०.२

अवरेखी : भू०कृ० स्त्री० (सं० अवरेखिता)। रेखाङ्कित की हुई; चित्रित की हुई; रेखाओं में उकेरी हुई; उरेही हुई। 'रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी।' मा० १.२६४.४

अवरेखु : आ० आज्ञा-मए। तू रेखांकित कर, चित्रित कर। 'चित्त भीति, सुप्रीति रंग, सुरूपता अवरेखु।' गी० ७.९.१

अवरेब, ब : सं० स्त्री० (सं० अवरेबा, अवरेवा—अव + रेबृ रेवृ गतौ—टेढ़ी चाल, अगवति, प्रतीति) (१) वक्रोक्ति, लाक्षणिकता, काव्य की अतिशयोक्ति जो अलंकारों का प्राण है, कवि कल्पना की वक्रता, वाग्वैदग्ध्य। 'धुनि अवरेब कबित गुन जाती।।' मा० १.३७.८ (२) उक्त प्रकार से टेढ़ाई का अर्थ लेकर यह शब्द उलझन, ग्रन्थि, असमञ्जस जैसा अर्थ भी देता है। 'राम कृपाँ अवरेब सुधारी।' मा० २.३१७.३ (३) संकट, बाधा, अपवाद। 'मिटिहि अनट अवरेब।' मा० २.२६९

अवलंब : सं० पुं० (सं०)। आश्रय, आधार, सहारा। 'सो सुतंत्र अवलंब न आना। मा० ३.१६.३

अवलंबन : अवलंब (सं०)। मा० १.२६.७

अवलंबनु : अवलंबन + कए। एकमात्र सहारा। 'तुम्ह अवलंबनु दीन्ह।' मा० २.१८४

अवलंबा : अवलंब। मा० २.६०.७

अवलंबि : पूकृ०। अवलम्बन करके, सहारा लेकर। गी० ५.९.३

अवलंबु : अवलंब + कए। एकमात्र सहारा। 'आपने तौ एकु अवलंबु।' कवि० ७.८१

अवलि, ली : सं० स्त्री० (सं० आवलि)। पंक्ति, श्रेणी, समूह। 'मनहुं बलाक अवलि मनु करषहिं।' मा० १.३४७.२

अवलीं : अवली + बहु०। श्रेणियाँ 'जनु सुबेलि अवलीं हिम भारी।' मा० २.२४४.६

अवली : अवलि । 'बचन नखत अवली न प्रकासी ।' मा० १.२५५.१

अवलोकत : (१) वकृ० पुं० । देखता, देखते । 'जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि ।' मा० १.३३३ (२) देखते-ही-देखते । 'अवलोकत अपहरत विषादा ।' मा० २.२७६.१

अवलोकन : भ०कृ० अव्यय । देखने (को) । 'सो धनु कह अवलोकन भूपकिसोरहि ।' जा० मं० १०५

अवलोकनि : सं० स्त्री० । देखने की क्रिया । 'अवलोकनि बोलनि मिलनि ।' मा० १.४२

अवलोकहिं : आ० प्रब० । देखते हैं । 'निसि दिन नहिं अवलोकहिं कोका ।' मा० १.८५.५

अवलोकहु : आ० मब० । देखते हो, देखो । 'उभउ अरुन अवलोकहु ताता ।' मा० १.२३८.७

अवलोकि : पूकृ० (सं० अवलोक्य) । देखकर । 'लघु लाग बिधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही ।' मा० १.९४ छं०

अवलोकिए : आ० कवा० प्रए० । देखिए, देखा जाय, देखा जाता है । 'तुलसी नमत अवलोकिए ।' विन० २७६.६

अवलोकी : (१) अवलोकि । 'प्रगट न लाज निसा अवलोकी ।' मा० १.२५६.१ (२) भूकृ० स्त्री० । देखी । 'गुर नृप भरत सभा अवलोकी ।' मा० २.३१३.३

अवलोकु : आ० आज्ञा-भए० । तू देख । विन० ६३.१

अवलोके : भूकृ० पुं० बहु० । देखे । 'अवलोके रघुपति बहुतेरे ।' मा० १.५५.४

अवलोक्य : अवलोकि । विन० ४६.८

अवसर : सं० पुं० (सं०) । उचित देशकाल, अनुकूल स्थिति । प्रस्तावोचित समयाविशेष । मा० १.४८.७

अवसरु : अवसर+कए । विशिष्ट अवसर । 'अवसरु जानि सप्त रिषि आए ।' मा० १.८९.७

अवसाना : सं० पुं० (सं० अवसान) । अन्त, विराम, छोर । 'नहिं तप आदि मध्य अवसाना ।' मा० १.२३५.७

अवसि : क्रि० वि० अव्यय (सं० अवश्यम्>अ० अवसि) । निश्चय ही, अवश्य । 'भरतहिं अवसि देहु जुवराजू ।' मा० २.५०.२

अवसेरी : सं० स्त्री० । चिन्ता, प्रतीक्षा, मानसिक उलझन । 'भए बहुत दिन अति अवसेरी ।' मा० २.७.६

अवसेषा : सं० पुं० (सं० अवशेष) । शेष भाग, अन्तिम भाग । 'उहाँ राम रजनी अवसेषा ।' मा० २.२२६.३

अवसेषित : भू०कृ० वि० (सं० अवशेषित)। बचाया हुआ। 'सिर अवसेषित राहु।' मा० १.१७०

अवस्था : सं० स्त्री० (सं०)। दशा, स्थिति। जीव की चार दशाएँ—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। 'जनु जीव अरु चारिउ अवस्था।' मा० १.३२५ छं०

'तीनि अवस्था···तूल तुरीय···। मा० ७.११७ ग

अवस्य : क्रि० वि० (सं० अवश्य)=अवसि। मा० ७.१०९.६

अवाँ : सं० पुं० (सं० आमपाक>प्रा० आमवाअ>अ० आवँवाअ>आवाँ)। आम=कच्चे बर्तन पकाने की कुँमार की भट्टी जिसका धुवाँ बाहर नहीं आता, भीतर बर्तन पकते रहते हैं। मा० १.५८.४

अवास : सं० पुं० (सं० आवास)। घर, निवास स्थान। पा० मं० १४८

अवासू : अबासू। मा० २.१७९.६

अविगत : अबिगत। सर्वव्यापी होने से सर्वगत, सर्वगत, सर्वव्याप्त। मा० १.१८६ छं०

अविछिन्न : अबिछीन। विन० ४९.३

अविद्या पञ्च : दे अबिद्या।

अव्यक्त : अव्यक्त। ब्रह्म, जीव तथा प्रकृति।

अव्यय : सं०+वि० (सं०)। व्ययहीन, निर्विकार, अविकृत ब्रह्मतत्त्व (दे० अबिकारी)। मा० ४ श्लोक २

अशुभ : (दे० असुभ)। अहित, अमङ्गल, पाप। विन० १०.५

अशेष : वि० (सं०)। सम्पूर्ण (जिससे पृथक् कुछ शेष न हो)। निर्विशेष (निरपेक्ष)। मा० १ श्लोक ६

अष्टक : सं० पुं० (सं०)। आठ का समवाय। जैसे—रुद्राष्टक=रुद्रस्तुति के आठ श्लोकों का समूह। मा० ७.१०८.९

अष्टासिद्धि : योग की आठ सिद्धियाँ—(१) अणिमा=अणु रूप ग्रहण की शक्ति (२) महिमा=अति विशाल रूप लेने की शक्ति (३) लघिम=अत्यन्त हल्का बनने की शक्ति (४) गरिमा=बहुत भारी होने की शक्ति (५) प्राप्ति=मनचाही गति या पहुंच (६) प्राकाम्य=मनोभीष्ट वस्तु की प्राप्ति (७) ईशित्व=सभी जीवों पर प्रभुता (८) वशित्व=सबको वशीभूत करने की शक्ति। मा० १.२.२३

अष्टादस : संख्या (सं० अष्टादशन्)। अठारह। मा० ६ १५.७

अष्टोत्तर : वि० (सं०)। वह संख्या जिसके आगे आठ और हों। रा० प्र० मङ्गलाचरण।

असं : वि० पुं० (सं० ईदृश>प्रा० एरिस>अ० अइस) ऐसा। 'अस बिबेक जब देइ बिधाता।' मा० १.७.१ (२) इस प्रकार। 'अस बिचारि उर छाड़हु कोहू।' मा० २.५०.१

असंक : वि० पुं० (सं० अशङ्क)। शङ्कारहित, निःशङ्क, निर्भय। 'अति असंक मन सदा उछाहू।' मा० १.१३७.३

असंका : (१) असंक। 'तहँ रह रावन सहज असंका।' मा० ४.२८.११ (२) सं० स्त्री० (सं० आशङ्का)। सन्देह, संशय। 'अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका।' मा० १.७२.४

असंकू : असंक+कए। मा० १.२७३.२

असंग : वि० (सं०)। सङ्गरहित, अनासक्त, उदासीन, निर्लेप। 'मीन जल बिनु तलफि तनु तजै, सलिल सहज असंग।' कृ० ५४

असंगत : वि० (सं०)। अनुपयुक्त, अयुक्त, अयोग्य। विन० ६०.८

असंत : (संत का विलोम)। अशान्तचित्त, असज्जन। मा० ७.३७.५

असंतन्ह, न्हि : असंत+संब०। असंतों। 'संत असंतन्ह के गुन भाषे।' मा० ७.४१.८ 'संत असंतन्हि कै असि करनी।' मा० ७.३७.७

असंभावना : सं० स्त्री० (सं०)। अनिश्चय, उलझन, नैराश्य। 'दारुन असंभावना बीती।' मा० १.११९.८

असंमत : वि० (सं०)। अविहित, अमान्य। 'कहहिं ते बेद असंमत बानी।' मा० १.११५.३

असगुन : (सगुन का विलोम)। दुर्निमित्त, अशुभसूचक प्राकृतिक संकेत। मा० २.१५८.४

असज्जन : (सज्जन का विलोम)। असाधु, असंत। मा० १.५.३

असत् : अविद्यमान। वास्तव सत्ता से शून्य, पारमार्थिक दृष्टि से असत्य। अन्य की सत्ता से सत्तावन्—जैसे, पुरुष की छाया। भ्रान्त प्रतीत—जैसे, रस्सी में साँप। संसार या जरामरण आदि सांसारिक सम्बन्ध जो जीव के सन्दर्भ में नश्वर हैं। विन० १२०.४

शङ्करमत में जगत्प्रपञ्च अनिवचनीय है—वह 'सत्' नहीं क्योंकि परिवर्तमान है और ज्ञानी के लिए सत्ताहीन है; 'असत्' भी नहीं क्योंकि प्रतीत होती है। वैष्णवमत में प्रपञ्च नित्य सत् है—यद्यपि परिवर्तमान है क्योंकि परिवर्तन भी नित्य है। संसार अनित्य है—क्योंकि वह जीव द्वारा स्थापित सम्बन्धों—पितापुत्र, जरामरण आदि—से बनता है।

असत्य : वि०=असत्, मिथ्या। 'जदपि असत्य देत दुख अहई।' मा० १.११८.१

असन : सं० पुं० (१) (सं०) । फेंकने का साधन । शरासन, विशिखासन, बाणासन आदि । (२) (सं० अशन) । भोजन । 'बचन सुधासम असन अहि ।' मा० १.१६१ ख (३) भोजन करने की क्रिया । 'इहाँ उचित नहिं असल अनाजू ।' मा० २.२७८.७

असनि : सं० स्त्री० (सं० अशनि) । वज्र । 'ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घाए ।' मा० २.३०६.८

असनु : असन+कए । भोजन, एकमात्र खाद्य सामग्री । 'असनु कंद फल मूल ।' मा० २.६२

असबाबु : सं० पुं० कए (अरबी-असबाब=सबब+बहु० जिसका अर्थ उपकरण, उपादान जैसा होता है; बन्धन, रस्सी, कारण जैसे अर्थ भी उर्दू में चलते हैं। हिन्दी में 'सामग्री' के अर्थ में आता है, विशेषतः घरेलू सामग्री) । सामान। 'सबु असबाबु डाढ़ो, मैं न काढ़ो नैं न काढ़ो ' कवि० ५ १२

असम : वि० (सं०) । विषम (संख्या, मात्रा आदि में) । दुर्गम, अज्ञेय । 'असम सम सीतल सदा ।' मा० ३.३२ छं० ४

असमंजस : सं०+वि० पुं० (सं०) । (१) असंगत, अनर्ह, अयोग्य । 'राम सुकीरति भनिति भदेसा । असमंजस ।' मा० १.१४.१० (२) अनिश्चय, कर्तव्यनिर्णय का अभाव । 'बना आइ असमंजस आजू ।' मा० १.१६७.५ (३) संशय, व्याघातपूर्ण स्थिति, मनोभीष्टपूर्ति में सन्देह । 'करौं काह असमंजस जी कें ।' मा० २.२६३.५ (४) अव्यवस्थित, उखड़ा-सा, बेठीक । 'सबु असमंजस अहइ सयानी ।' मा० २.२२३.३ (५) ग्रहण-त्याग में अनिश्चित । 'समुझि अवधि असमंजस दोऊ ।' मा० २.२७१.६ (६) उक्त सभी अर्थों का समाहार । 'तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहि कालो ।' मा० २.२९१

असमंजसु : असमंजस+कए । 'असमंजसु बड़'—रा० प्र० ६.७ १

असमय : प्रतिकूल समय, अनवसर, विपरीत अवसर; संकट काल । 'आपन अति असमय अनुमानी ।' मा० १.१५७.३

असमसर : सं० पुं० (सं० असमशर=विषमशर) विषम संख्यक बाणों वाला= पञ्चबाण=कामदेव । 'सकल असमसर—कला प्रबीना ।' मा० १.१२६.४ (असमसर-कला=कामकला, संभोग कौशल ।)

असमाकं : सर्व० (सं० अस्माकम्) । हमारा । विन० ५१.८

असयानी : (सयानी का विलोम) चातुरी से रहित निश्छल, वाक्कौशल की लाग-लपेट से शून्य । 'बिबिध सनेह सानी बानी असयानी सुनि ।' कवि० २.१०

असरन : वि० (सं० अशरण) । शरणहीन, निराश्रय, अनाथ, रक्षकहीन । मा० ७.१८ ३

असवार, रा : वि०+सं० पुं० (सं० अश्ववार>प्रा० असवार, आसवार) ।

(१) अश्वारोही । 'जुगदपदचर असवार प्रति ।' मा० १.२९८ (२) आरोही । 'बरु बौराह बसहँ असवारा ।' मा० १.९५.८

असहाई : असहाय । सहायक-रहित । मा० २.२२९.३

असहाय : वि० (सं०) । एकाकी, अनाथ, सहायरहित, मित्रहीन । 'संबल निसंबल को, सखा असहाय को ।' विन० ६९.१

असही : वि० स्त्री० । असहनशीला, परसन्तापिनी, दूसरे के शुभ में डाह करने वाली । गी० १.२.१०

असाँचा : वि० पुं० (सं० असत्य>प्रा० असच्च) । मिथ्या, झूठा । मा० १.१७५.७

असाँची : वि० स्त्री (सं० असत्य>प्रा० असच्ची) । झूठी । मा० ६.२९.२

असा : अस । ऐसा । 'कलपांत न नास गुमानु असा ।' मा० ७.१०२.२

असाध : (१) वि० (सं० असाध्य) । जो उपायों से साध्य न हो, जिसका कोई उपचार न हो । 'देखी ब्याधि असाध नृपु ।' मा० २.३४ (चिकित्साशास्त्र में साध्य, दुःसाध्य और असाध्य—तीन प्रकार के रोग होते हैं ।) (२) असाधु । 'असाध जानि मोहि तजेउ अग्य की नाईं ।' विन० ११२.१ (असाध=असाधु+असाध्य—ऐसा नीच जो उपायों से भी सुधारा न जा सके ।)

असाधि : वि० स्त्री० (सं० असाध्या) । उपचारहीन । 'ब्याधि असाधि देखि तिन्ह त्यागी ।' मा० २.५१.२ (असाध्य रोगी को वैद्य त्याग देता है ।)

असाधु, धू : (साधु का विलोम) असज्जन, असंत । 'सुधा सुरा सम साधु असाधू ।' मा० १.५.६

असि : (१) वि० स्त्री० (सं० ईदृशी>अ० अइसी=अइसि) ऐसी । 'जिन्ह कें असि मत सहज न आई ।' मा० ४.७.३

(२) सं० स्त्री० (सं०) । तलवार । 'काढ़ि असि बोला ।' मा० ५.९

(३) आ० मए० (सं०) । तू है । विन० १५.१-३ (दे० जोसि, सोसि) ।

असिकला : सं० स्त्री० (सं०) । तलवार चलाने का कौशल । मा० १.२९८

असिधारब्रत : सं० पुं० (सं० असिधारा-व्रत) । तलवार की धार पर चलने के समान कठोर व्रत । गी० ७.२५.३

असिधारा : सं० स्त्री० (सं०) । तलवार की धार । खड्गधारा पर चलने के समान कर्मनिष्टा । 'तिय चढ़िहहिं परिब्रत असिधारा ।' मा० १.६७.६

असिव : वि० (सं० अशिव) अमङ्गल, अभव्य, भद्दा । 'असिव बेष सिवधाम कृपाला ।' मा० १.९२.४

असी : सं० (सं०) । काशी के पास नदी विशेष । वि० २२.३

असीम : वि० (सं०) । संख्या अथवा परिमाण में अज्ञेय, अनन्त, निरवधि, व्यापक । अधिकतम । विन० १३६.६

असीस : सं० स्त्री० (सं० आशिष्>प्रा० आसीस) । शुभाशंसा, (किसी के प्रति) मङ्गलकामना, आशीर्वाद । मा० २.५२.२

असीसत : वकृ० पुं० । असीस देता, देते । गी० १.२.२२

असीसन : भकृ० अव्यय । आशीर्वाद देने । 'लागीं असीसन राम-सीतहि ।' गी० ७.१८.४

असीसहिं : आ० प्रब० । अशीर्वाद देते हैं, असीसते हैं । 'नाऊ बारी भाट…… असीसहिं ।' मा० १.३१९

असीसा : असीस । मा० १.२६२.५

असीसें : असीस+बहु० । 'मनभावती असीसें पाईं ।' मा० १.३०८.६

असुचि : वि० (सं० अशुचि) । अपवित्र, कलुष, मलिन, तेजोहीन । 'निसिबासर रुचि पाप असुचि मन ।' विन० १४०.१

असुझ : वि० । (१) जिसे सूझता न हो=दृष्टिहीन (२) जो वस्तु सूझती न हो= अदृश्य । (३) अशुद्ध । 'तेरे ही सुझाए सूझै, असुझ सुझाउ सो ।' विन० १०२.५

असुद्ध : (शुद्ध का विलोम) जिसमें विजातीय मिश्रण हो, अपवित्र, सकलुष, मलिन । दो० ३३०

असुभ : सं०+वि० (सं० अशुभ) । (१) तीन प्रकार के कर्मों—शुभ, अशुभ तथा मिश्र—में-से अन्यतम, पापकर्म तथा पापफल । 'जो सुभ असुभ सकल फल दाता ।' मा० २.२८२.४ (२) अशकुन । 'असुभ होन लागे तब नाना ।' मा० ६.१०२.७ (३) मलिन, विकृत । 'सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई ।' मा० १.६९.७ (४) मङ्गल, कल्याण । 'बोली असुभ भरी सुभ छूछी ।' मा० २.३८.८ (५) अभव्य । 'असुभ रूप श्रुति नासा हीनी ।' मा० ३.१८.६

असुर : (सुर का विलोम) । दैत्य, दानव, राक्षस । मा० १.१८.३

असुराधिप : असुरों का राजा (जालन्धर) । मा० १.१२३.७

असुरारी : (सं० असुरारि) । असुरों का शत्रु, असुर नाशक । मा० १.५१.२

असुरु : असुर+कए । मा० १.१०३ ७

असेष, षा : अशेष । मा० १.१८६ छं०

असैली : वि० स्त्री० (सं० अशैली ? शीलाज्जाता शैली) । शील-हीन, दुःशीलता से जनित, अनुचित । 'मैं सुनीं बातैं असैली जो कहीं निसिचर नीच ।' गी० ५.६.२

असैले : वि० पुं० ब० (सं० अशैलाः—शीले साधवः शैलाः) शीलरहित, उदण्ड, निर्मियाद । 'अबुध असैले मन मैले महिपाल भए ।' गी० १.७३.५

असोक, का : सं०+वि० पुं० (सं० अशोक) । (१) वृक्ष विशेष । 'बन असोक यहाँ राखत भयऊ ।' मा० ३.२९.२६ (२) शोक रहित । 'राज बिभीषन देव

असोका।' मा० ७.६८.२ (३) श्लिष्ट प्रयोग—'सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका।' मा० ५.१२.१०

असोकी : वि० पु० (सं० अशोकिन्)। शोकरहित। मा० १.१६४.८

असोच : वि० (सं० अशोच्य>प्रा० असोच्च)। निर्द्वन्द्व (जिसके लिए कुछ भी शोचनीय न रह जाय)। निश्चिन्त। 'रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें।' मा० ४ ३.४

असौ : सर्वनाम—कए (सं०)। वह। मा० ६ श्लोक ३

असौच : सं० पुं० (सं० अशौच) अपवित्रता, मलिनता। मा० ६.१६.३

अस्त : वि० पुं० (सं०) सूर्य का सन्ध्या समय अदृश्य होना। मा० १.१५६.२

अस्तु : आ० शुभकामना—प्रए० (सं०)। हो, होवे। मा० २ श्लोक २

अस्तुति : सं० स्त्री० (सं० स्तुति)। प्रशंसा, प्रार्थना। मा० १.८३.८

अस्त्र : सं० पुं० (सं०)। फेंककर चलाया जाने वाला आयुध बाण आदि। मा० ३.१६

अस्थाना : सं० पुं० (सं० स्थान) मा० ६.१२०.२

अस्थि : सं० पुं० (सं०)। हड्डी। मा० ३.९.६

अस्थिमात्र : केवल हड्डी, अस्थिशेष। मा० १.१४५.४

अस्नाना : सं० पुं० (सं० स्नान)। नहाना, नहान। मा० ७.२९.२

अस्मदीय वि० पुं० (सं०)। हमारा-हमारे। मा० ५ श्लोक २

अस्व : सं० पुं० (सं० अश्व)। घोड़ा। मा० २.२०३.५५

अस्विनि : सं० स्त्री० (सं० अश्विनी) सत्ताईस नक्षत्रों में से एक। पा० मं० ५

अस्विनीकुमार : सं० पु० बहु० (सं० अस्विनी कुमारौ)। देवद्वय जो घोड़ी के रूप में परिवर्तित सूर्य पत्नी संज्ञा की नासिका से उत्पन्न बताये गये हैं। वैदिक तथा नैसर्गिक धारा के अनुसार प्रातःकाल में अन्धकार और प्रकाश के मिश्रित रूप का नाम है। पुराणों में इन्हें देवों का वैध बताया गया है अतः 'देव-भिषजौ' भी कहते हैं। 'जासु घ्रान अस्विनीकुमारा।' मा० ६.१५.३

अहँकारी : वि० पुं० (सं० अहंकारिन्)। अभिमानी, आत्ममानी। मा० ६.४०.१

अह : अहं। अहंकार, अभिमान। 'अह मम मलिन जनेषु।' मा० २.२२५

अहं : (१) अहम्। मैं। मा० १ श्लो० ५ (२) अहंकार। 'अहं अगिनि नहिं दाहै कोई।' वैरा० ५२

अहंकार : सं० पुं० (सं०)। (१) अभिमान, घमण्ड। 'अहंकार अति दुखद डमरू का।' मा० ७.१२१.३५ (२) चार अन्तःकरणों में से एक जो महत्तत्त्व या बुद्धि से जनित बताया गया है। वेदान्त तथा सांख्य दर्शनों में अहंकार से ही मन, इन्द्रियों तथा भौतिक प्रपञ्च की सृष्टि बताई गई है। मा० ६.१५ (दे० अन्तःकरण)।

अहंबाद : सं० पुं० (सं० अहंवाद) क्षुद्र अहन्ता, अपने को ही बहुत समझने वाला कथन, अहंकारोक्ति । 'अहंबाद मैं-तैं नहीं, दुष्ट संग नहिं कोइ ।' वैरा०

अह, अहइ, ई : (सं० अस्ति>प्रा० असइ>अहइ) आ० प्रए० । है । 'जदपि अहइ असमंजस भारी ।' मा० १.८३.४ 'सो सुग्रीव दास तव अहई ।' मा० ४.४.२

अहउँ, ऊँ : आ० उए० । हूं । 'बैठ अहउँ बट छाहीं ।' मा० १.५२.२

अहन : सं० पुं० (सं० अहन्) दिन, प्रतिदिन, दिन में । 'अटत गहनगन अहन अखेटकी ।' कवि० ७.९६

अहनिसि : क्रि० वि० (सं० अहर्निशम्) । दिन रात सदा । मा० ७.२५.५

अहम् : (१) सर्वनाम (सं०) मैं । 'नतोऽहमुर्विजापतिम् ।' मा० ३.४ छं० (२) अहंकार । अहन्ता ।

अहमिति : सं० स्त्री० (सं०—अहम्+इति) । अहंता, अहंभाव । 'मैं ही हूं' ऐसा भाव । 'जीवधर्म अहमिति अभिमाना ।' मा० १.११६.७

अहलाद : सं० पुं० (सं० आह्लाद) । प्रसन्नता, प्रमोद । 'भक्त प्रहलाद अहलाद कर्ता ।' विन० ५२.४

अहल्या : सं० स्त्री० (सं०) । गौतम की पत्नी का नाम (वेदों में उषा का तथा बिना जोती भूमि का नाम) । मा० १.२२३.५

अहसि : आ० मए० । तू है । 'को तू अहसि' मा० २.१६२.७

अहह : अव्यय (सं०—अहं जहाति इति अहह) अहंकार छूटने का भाव, विस्मय श्रम, पश्चात्ताप, खेद, क्लेश आदि का व्यञ्जक है । 'अहह तात ।' मा० १.२५८.२

अहहिं, हीं : आ० प्र० । हैं । 'भए जे अहहिं जे हो इहहिं आगें । मा० १.१४.६ 'आकर चारि जीव जग अहहीं ।' मा० १.४६.४

अहहु, हू : आ० मब० । हो । मा० १.१२०.५

अहार : सं० पुं० (सं० आहार) । भोजन । 'करहिं अहार साक फल कंदा ।' मा० १.१४४.१

अहारन : भकृ० अव्यय । खा जाना । 'चाहत अहारन पहार ।' कवि० ७.१४८

अहारपर : वि० (सं० आहारपर) भोजन परायण । विन० १६६.५

अहारा : अहार । मा० ५.२.३

अहारी : वि० (सं० आहारिन्) । आहार करने वाला । 'कंदमूल भल फूल अहारी ।' मा० २.२०१.३

अहारु, रू : अहार+कए । एकमात्र भोजन । मा० १.१७७.७

अहि : सं० पुं० (सं०) (१) सर्प । मा० १.११.१ (२) शेषनाग । कवि० १.११

अहिंसा : सं० स्त्री० (सं०) । योग के आठ अङ्गों में 'यम' प्रथम है जिसमें 'अहिंसा' प्रथम स्थान पर है । मनु ६.७५ के अनुसार यही ब्रह्मपद पाने प्रथम कारण है;

मनु ने यज्ञ की हिंसा को अहिंसा बताया है—५.४४ गीता १०.५ में अहिंसा को उत्तम बताया गया है—शङ्कराचार्य ने "प्राणियों को पीडा न देने को 'अहिंसा' कहा है।' 'परम धरम श्रुति बिदित अहिंसा।' मा० ७.१२२.२२

अहित : वि०+सं० (सं०) (१) हित विरोधी, अनिष्टकारी। शत्रु। 'ये अति अहित राम तेउ तोही।' मा० २.१६२.७ (२) अकल्याण। 'अहित न होइ तुम्हार।' मा० ५.४०

अहिनाथ : शेषनाग। गी० ७.२०.२

अहिनाहु, हू : अहिनाथ+कए। 'बरनि न सकहिं गिरा अहिनाइ।' मा० १.२६१.६

अहिनी : सं० स्त्री०—सर्पिणी। मा० ३.१७.३

अहिन्ह : अहि+सं०ब०। सर्पों। 'अहिन्ह कै माता।' मा० ५.२.३

अहिप, पति : सं० पुं० (सं०) सर्पराज, शेषनाग। मा० २.२५४.७

अहिपति : अहिप (सं०)। मा० ५.३५ छं०

अहिबात, ता : सं० पुं० (सं० अविधवात्व>प्रा० अविहवत्त) स्त्री का पति सहित जीवन-सौभाग्य। मा० १.३३४.४

अहिबेलि : सं० स्त्री० (सं० अहिवल्ली=नागवल्ली)। पान की लता, ताम्बूल-लता। मा० २.१८८.२

अहिभवन : सं० पुं (सं०)। सर्पों के रहने का स्थान, बाँबी, मिट्टी का स्तूप जिसमें साँप रहते हैं। मा० १.११३.२

अहिभामिनी : सर्पिणी। मा० ३.३०.११

अहिराजा : सं० पुं० (सं० अहिराज) सर्पराज, शेषनाग। मा० ३.१४.४

अहिरिनि : अहीर स्त्री०। रा० न० ४

अहिवात : अहिवात। मा० ६.१५

अहीर : सं० पुं० (सं० आभीर)। गोपालन व्यवसायी जातिविशेष। मा० ७.११७.१२

अहीसा : सं० पुं० (सं० अहीश)। सर्पराज, शेषनाग। मा० १.१०५.३

अहीसु : अहीस+कए। मा० २.१२६ छं०

अहेर : सं० स्त्री० (सं० आखेट>प्रा० आहेड्र—पुं०)। मृगया। 'तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब।' मा० २.१३६.७

अहेरि, री : वि० पुं० (सं० आखेटिक>प्रा० आहेडिअ)। शिकारी। मा० २.१३३.४

अहेरें, रे : अहेर में। 'फिरत अहेरें परेउँ भुलाई।' मा० १.१५६.६ 'राम अहेरे चलैंगे।' गी० १.२२.१४

अहैं : अहहिं। हैं। 'इन्ह से एइ अहैं।' मा० १.३११ छं०

अहै : अहइ। है। 'बिदित गति सब की अहै।' मा० १.३३६ छं०

अहो : अव्यय (सं०) । आश्चर्य, कष्ट, प्रशंसा, सम्बोधन, ईर्ष्या, हर्ष, श्रम, सन्देह का व्यञ्जक है । 'अहो मुनीसु महाभटमानी ।' मा० १.२७३.१ 'अहो भाग्य मैं देखिहउँ तेई ।' मा० ५.४२.८

आँक : अंक । निश्चय । 'एकहिं आँक मोर हित एहू ।' मा० २.१७८.७

आँकरो : वि० पुं० कए । अतिशय, तीव्र, अत्यन्त । 'आँकरो अचेतु है ।' कवि० ७.८२

आँकु : आंक+कए । लेख, लिपि, रेखा । 'मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ ।' पा० मं० ६४

आँखि : सं० स्त्री० (सं० अक्षि>प्रा० अक्खि) । नेत्र ।

आँखिन, न्ह : आँखि+संब० । आँखों । 'बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा ।' मा० १.२८०.७

आंखी : आंखि+बहु० । आँखें । 'मोरें भरतु रामु दुइ आँखी ।' मा० २.३१.६

आँगन : अँगना । अजिर । रा० न० ७

आँच : सं० स्त्री० (सं० अर्चिष>प्रा० अच्चि) । अग्निशिखा, आग की लौ या ज्योति, दीपशिखा, अग्निताप । दो० ३३९

आँचर : सं० पुं० (सं० अञ्चल) । रा० न० ९

आँचरन्हि : आँचर+सं०ब० । अञ्चलों (मैं) । 'दुहु आँचरन्हि लगे मनि मोती ।' मा० १.३२७.७

आंचरु : आँचर+कए । 'आंचरु पसारि पिय पायँ लै लै हौं परी ।' कवि० ६.२७

आँचा : आँच । ताप, दाह । 'अजहूँ हृदउ जरत तेहिं आंचा ।' मा० २.३२.५

आँचे : भू०कृ० पुं० बहु० । आँच खाए हुए, तपे हुए, विदिग्ध । 'कोप कृसानु गुमानु अवाँ, घट ज्यों जिन के मन आव न आँचे ।' कवि० ७.११८

आँजहिं : आ० प्रब० (सं० अञ्जन्ति>प्रा० अंजंति>अ० अंजहिं) । अञ्जनयुक्त करती—ते—हैं । 'लोचन आँजहिं फगुआ मनाइ ।' गी० ७.२२.७

आँजी : भू०कृ० स्त्री० । अञ्जन लगाई हुई, कज्जल-रेखायुक्त । 'लोकरीति, फूटी सहहिं, आँजी सहइ न कोइ ।' दो० ४२३

आँजे : भू०कृ० पुं० बहु० । अञ्जनयुक्त किये । 'चुपरि उबटि अन्हवाइ के नयन आँजे ।' गी० १.१०.१

आँत : सं० स्त्री० (सं० अन्त्र>प्रा० अंत) पेट की ओझरी; उदरस्थ नलिका-शृङ्खला विशेष । मा० ६.८८.५

आँतन, नि : आँत+संब० । आँतों । कवि० १.५०

आँधर : सं०+वि० पुं० (सं० अन्ध, अन्धन्न) । अन्धा, दृष्टिहीन ।

आँधरें : अन्धे ने । 'लही आँखि कब आँधरें ।' दो० ४९६

आँधरे : आँधर (रूपान्तर) । 'आँधरे को आँखि है ।' विन० ६९.३

आंधरो : आंधर+कए । 'ते नयना जनि देहु राम करहु बरु आंधरो ।' दो० ४४

आँधी : सं० स्त्री० (सं० अन्धिका) । अन्धवात, धूल उड़ाकर अँधेरा करने वाला तीव्र वायु । मा० ६.७८.८

आँब : सं० पुं० (सं० आम्र>प्रा० अंब) । आम्रवृक्ष । मा० ७.५७.६

आँसु, सू : सं० पुं० (सं० अश्रु>प्रा० अंसु, अंसू) नेत्र-जल । मा० २ १३.६

आ : (१) उपसर्ग—जैसे—आधार, आकार आदि ।
(२) अव्यय—पर्यन्त आदि—जैसे—आजानु ।
(३) धातु (सं० आस्) । होना—जैसे—आहिं ।

आइ : (१) पूकृ० । आकर । 'आइ करहिं रघुनायक सेवा ।' मा० १.३४.७
(२) आयु । 'सो जानइ जनु आइ खुदा भी ।' मा० १.२६६.३

आइअ : आ० भावा० । आइए, आया जाय । 'जाइ जनकपुर आइअ देखी ।' मा० १.२१८.१

आइन्ह : आ०भू०कृ० स्त्री०+उब । (हम स्त्रियाँ) आई हैं । 'लहेउ जनम फल लाहु, जनमि जग आइन्ह ।' जा० मं० ५६

आइयहु : आ०-भवि०+आज्ञा या प्रार्थना—म०ब० । तुम आना । 'बाल्मीकि मुनीस आश्रम आइयहु पहुंचाइ ।' गी० ७.२७.४

आइहहिं : आ० भ० प्रब० । आयेंगे । 'लेन आइहहिं बंधु दोउ ।' मा० १.३१०

आइहि : आ० भ० प्रए । आएगा । 'तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा ।' मा० ३.२५.८

आइहैं : आइहहिं । दो० ४२२

आइहै : आइहि । गी० ५.३४.१

आइहौं : आ० भ० उए । आऊँगा । मा० २.१५१ छं०

आईं : भू०कृ० स्त्री० बहु० । 'संभ्रम चलि आईं सब रानी ।' मा० १.१९३.१

आई : (१) आइ । आकर । 'तिन्ह फिरि भवनु न देखा आई ।' मा० १.७९.१
(२) भू०कृ० स्त्री । आ पहुंची । 'तेहि अवसर सीता तहँ आई ।' मा० १.२२८.२

आउ : (१) आव, आवइ । आता-ती-है । 'बिहँसत आउ लोहारिनि हाथ बरायन हो ।' रा०न० ५
(२) आ०—आज्ञा—मए । तू आ । 'सरन राम कें आउ ।' रा०प्र० ७.५.५
(३) सं०स्त्री० (सं० आयुष>प्रा० आउ) । जीवनकाल । 'भय भभरि भगी न आउ ।' गी० २.५७.३

आउज : सं० पुं० (सं० आतोद्य>प्रा० आउज्ज) । आघात से बजने वाला बाजा । गी० १.२.१३

आउब : भ०कृ० पुं० । आना होगा, आना चाहिए (आऊँगा) । 'मैं एहिं बेष न आउब काऊ ।' मा० १.१६९.३

आउ-बाउ : अंडबंड, निरर्थक शब्द जाल । 'बक्यो आउबाउ मैं ।' विन० २६१.२

आएँ : आने से, आने पर । 'सोह सैल गिरिजा गृह आएँ ।' मा० १.६६.३

आए : (१) आएँ । आने पर । 'बनि आए बहिबे ही ।' कृ० ४० (२) भू०कृ० पुं० ब० । आ गये, आ पहुंचे । 'कहहु अमर आए केहि हेतू ।' मा० १.८८.७

आएहु : आ०—भ०+आज्ञा—मब० । तुम आना । 'आएहु बेगि न होइ लखाऊ ।' मा० २.२७१.८

आक : सं० पुं० (सं० अर्क>प्रा० अक्क) । मदार । कृ० ५१

आकर : सं० पुं० (सं०) (१) खानि । 'मनि आकर बहु भाँति ।' मा० १.६५ (२) जीव जातियाँ—अण्डज, पिण्डज (जरायुज), स्वेदज तथा उद्भिज्ज । 'आकर चारि, लाख चौरासी ।' मा० १.८.१

आकरषै : आ० प्रए (सं० आकर्षति>प्रा० आकरिसइ) । खींचता है, आकृष्ट करता है । विन० १०८.४

आकरष्यो : भू०कृ० पुं० कए । खींचा । गी० १.६०.७

आकरी : सं० स्त्री० । आकर-कर्म, खान खोदने का काम । 'चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख ।' कवि० ७.६७

आकाश : सं० पुं० (सं०) । खगोल, शून्य मण्डल । मा० ७.१०८.२

आकाशबास : सं०+वि० पुं० (सं०) । आकाशवत् व्यापक आवास, सबको आवृत कर रहने वाला, सर्ववास, आकाश तुल्य निराकार होकर भी सबका आश्रय । मा० ७.१०८.२

आकास : आकाश ।

आकिंचन : वि० (सं० अकिंचन) । पूर्ण निर्धन । अपने पास कुछ भी न रखने वाला । 'आकिंचन इंद्रिय रमन दमन राम इकतार ।' वैरा० २६

आकु : आक+कए । मदार । 'खोजत आकु फिरहिं पय लागी ।' मा० ६.११५.२

आकृति : सं० स्त्री० (सं०) । आकार, रूप । मा० १.१३७.७

आको : आक भी, मदार भी । 'राम नाम महिमा करै कामभूरुह आको ।' विन० १५२.१३

आक्षिप्त : भू०कृ०पुं० (सं०) । फेंका हुआ, डाला हुआ । विन० ५६.८

आखत : सं० पुं० (सं० अक्षत) । चावल (हवन सामग्री) । 'आखत आहुति किए जातु धान ।' गी० ५.१६.६

आखर : सं० पुं० (सं० अक्षर>प्रा० अक्खर) (१) स्वर अथवा व्यञ्जन युक्त स्वर । 'आखर मधुर मनोहर दोऊ ।' मा० १.२०.१ (२) शब्द । 'आखर अरथ अलंकृति नाना ।' मा० १.६.६

आखे : भू०कृ० पुं० बहु० (सं० आख्यात>प्रा० आक्खिअ) । कहे, आख्यान किये । 'साँचे सदा जे आखर आखे ।' गी० १.६.२१

आख्य : (समासान्त में) वि० (सं०) । आख्या=नाम वाला । मा० १ श्लो० ६

आगम : सं०पुं० (सं०) । शास्त्र, पवित्र प्रामाणिक ग्रन्थ । मा० १.१२

आगमन : सं०पुं० (सं०) । आने या आ पहुंचने की क्रिया । मा० १.२०७.८

आगमनु, नू : आगमन+कए । विशिष्ट आगमन । 'सेवक सदन स्वामि आगमनू ।' मा० २.९.५

आगमी : सं०पुं० (सं०) । आगमवेत्ता, ज्योतिषी । गी० १.१७.१

आगर : सं०पुं० (सं० आकर>प्रा० आगर) । खानि । 'सब गुन आगर ।' मा० १.१९२ छं०

आगरि, री : आगर+स्त्री० । जा० मं० १५४, मा० १.३२५ छं० ३

आगवन : आगमन (अ० आगवँण) । मा० ७.०.२

आगवनु, नू : आगमनु । मा० २.२२७.१

आगार : सं०पुं० (सं०) । स्थान, घेरा, घर । मा० १.१७

आगारा : आगार । मा० ६.१०.७

आगि : सं० (सं० अग्नि>प्रा० अग्गि) । मा० १.१८३.६

आगिल : वि० पुं० (सं० अग्रथ, अग्रिम>प्रा० अग्गिल्ल) आगे होने वाला । 'आगिल चरित सुनहु जस भयऊ ।' मा० १.७१.१

आगिलि, ली : वि० स्त्री० (सं० अग्या>प्रा० आग्गिल्ली) आगे होने वाली । 'आगिलि कथा सुनहु मन लाई ।' मा० १.२०६.१ विन० २६१.४

आगिलो : आगिल+कए । अगला । गी० १.८४.८

आगी : आगि (सं० अग्नि>प्रा० अग्गी) । मा० २.४७.४

आगें : (१) आगामी समय में । 'भए जे अहहिं जे होइहहिं आगें ।' मा० १.१४.६ (२) अग्र भाग में । 'आगें होइ चलि पंथ तेहिं ।' मा० १.५२

आगे : सं०पुं० (सं० अग्र>प्रा० अग्ग) । (१) सामने । 'नयननि आगे तें न टरति मोहन मूरति ।' कृ० २८ (२) (सं० अग्रे>प्रा० अग्गे) । तुलना में । 'जिन्ह के जस प्रताप कें आगे ।' मा० १.२९२.२ (३) अग्रदेश में । 'सुतन्ह समेत ठाढ़ ये आगे ।' मा० १.३६०.५

आग्या : अग्या । गी० १.८५.४

आग्याकारी : वि० पुं० (सं० आज्ञाकारिन्) । आज्ञापालक । विन० ९८ ७

आचमनु : सं०पुं० (सं०)+कए । हाथ, मुंह आदि धोने की क्रिया । मा० १.३२९.८

आचरज : अचरज । (१) विस्मय । 'सुनि आचरज करै जनि कोई ।' मा० १.३.२ (२) विस्मयजनक विचित्र कार्य । 'कहेसि अमित आचरज बखानी ।' मा० १.६३.६

आचरजु : आचरज+कए। (१) अद्वितीय विस्मय। 'जनि आचरजु करै मुनि सोई।' मा० १.३३.३ (२) अद्भुत अद्वितीय कर्म। 'यह तुम्हार आचरजु न ताता।' मा० २.२०८.२

आचरत : (१) वकृ० पुं०। आचरण करता, करते। 'जो आचरत मोर हित होई।' मा० २.१७७.५ (२) क्रियाति पुं० ए०। 'होत जनमु न भरत को······बिषम ब्रत आचरत को।' मा० २.३२६ छं०

आचरन : सं०पुं० (सं० आचरण)। कर्म, आचार व्यवहार। 'सुभ आचरन कतहुं नहिं होई।' मा० १.१८३.७

आचरनि : आचरन। आचरण क्रिया। 'सकल सराहैं निज-निज आचरनि।' विन० १८४.३

आचरनी : आचरनि। 'जिमि कुठार चंदन आचरनी। मा० ७.३७.७

आचरनु, नू : आचरन+कए। मा० २.२२३.१

आचरहिं : आ० प्रब०। आचरण में लाते हैं। 'जे आचरहिं ते नर न घनेरे।' मा० ६.७८.२

आचरिबे : भकृ० पुं०। आचरण में लाने को। 'जौ प्रपंच परिनाम प्रेम फिरि अनुचित आचरिबे हो।' कृ० ३६

आचार : सं० पुं० (सं०)। उत्तम आचरण, धार्मिक दिनचर्या। मा० ७ १२१ ख

आचारा : आचार। (१) आचरण। 'सुमति सुसील सरल आचारा। मा० ७.६४.१ (२) धार्मिक दिनचर्या।

आचारी : वि०पुं० (सं०)। सदाचारी, धर्माचरण करने वाला, शास्त्रीय आचरणों वाला। मा० ७.६८.५

आचारु, रू : आचार+कए। 'बेद बिदित आचारु।' मा० १.२८६

आछी : वि० स्त्री० (सं० अच्छा>प्रा० अच्छी) उत्तम, अतिशय। 'मति अति नीचि ऊँचि रुचि आछी।' मा० १.८.७

आछें : क्रि० प०। भली-भाँति। अच्छे······पर। 'आगे मुनिबर बाहन आछें।' मा० २.२२१.५

आछे : वि० पुं० (बहु०)। अच्छे, उत्तम। 'आछे मुनिबेष धरें।' कबि० २.१५

आजन्म : (दे० आ०)। जन्म से+जीवन पर्यन्त। 'आजन्म ते परद्रोह रत।' मा० ६.१०४ छं०

आजहूं : अजहूं। कवि० ६.२४

आजानु : क्रि० वि० (सं०)। जानुपर्यन्त, घुटनों तक। 'आजानु सुभग भुज।' गी० २.६६.१

आजु, जू : अव्यय (सं० अद्य>प्रा० अज्ज>अ० अज्जु)। मा० २.२०

आठ : संख्या (सं० अष्ट>प्रा० अट्ठ)। मा० ६.१६.२

आठइँ : वि०+सं० स्त्री० (सं० अष्टमी>प्रा० अट्ठमी)। (पखवारे की) आठवीं (तिथि)। विन० २०३.६

आठइ : आठ ही, केवल आठ। 'आठइ नयन जानि पछिताने।' मा० १.३१७.४

आठ प्रकृति : प्रकृति के आठ विकार—पञ्चभूत, मन, अहंकार और बुद्धि। विन० २०३.६

आठवँ : वि०पुं० (सं० अष्टम>प्रा० अट्ठम>अ० अट्ठवँ)। आठवाँ। मा० ३.३६.४

आढ़ : सं० स्त्री०। आश्रय, अवलम्ब, सहारा (आड़)। 'जमगन मुख मलीन लहैं आढ़ न।' विन० २१.२

आढ्य : वि०पुं० (सं०)। सम्पन्न, वैभवयुक्त। मा० ७ श्लोक १

आतनोति : आ० प्रए० (सं०)। सब ओर फैलाता है, रचता है। मा० १ श्लोक ७

आतप : सं०पुं० (सं०)। (१) तेज, ताप। 'रबि आतप भिन्नमभिन्न यथा।' मा० ६.१११.१६ (२) घाम, गर्मी। मा० १.४२.४

आतम, मा : सं०पुं० (सं० आत्मन्)। (१) जीव, चेतन तत्त्व। 'आतम अनुभव सुख सुप्रकासा।' मा० ७.११८.२ (२) साक्षी, अन्तर्यामी, परमात्मा। ऊगो आतम भानु।' वैरा० ३३

आतमबादी : वि०पुं० (सं० आत्मवादिन्)। जड़ तत्त्व से पृथक् चेतन तत्व की सत्ता का सिद्धान्त मानने वाले। 'जें मुनिनायक आतमबादी।' मा० ७.७०.६

आतमा : आतम। विन० २०२.३

आतुर : (१) वि० (सं०)। वेगशील। 'चला गगन पथ आतुर।' मा० ३.२८ (२) व्याकुल, आतङ्कित, हड़बड़ाया हुआ। 'भय आतुर कपि भागन लागे।' मा० ६.४३.१ (३) क्रि०वि०। शीघ्रता के साथ। 'सर मज्जन करि आतुर आवहु।' मा० ६.५७.६

आतुरता : सं० स्त्री० (सं०)। शीघ्रता, हड़बड़ी, व्याकुलता। कवि० २.११

आतुरताई : आतुरता। 'मुदित महरि लखि आतुरताई। कृ० १३

आतुरे : भूकृ० पुं० (सं० आतुरति)। आतुर किए हुए, व्याकुल, व्यथित। 'भालु बोलहिं आतुरे।' मा० ६.८२ छं०

आत्माहन् : वि० (सं० आत्महन्—ईशोपनिषद् में प्रयुक्त)। (१) आत्मज्ञान की उपेक्षा करने वाला (२) आत्मघाती। 'सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ।' मा० ७.४४

आदर : सं०पुं० (सं०)। सम्मान, सत्कार। मा० १.६६.६

आदरहिं, हीं : आ०प्रब०। आदर करते हैं, सम्मान देते हैं, मान्य करते हैं। 'जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं।' मा० १.१४.८

आदरही : आदर को । 'सम मानि निरादर आदरही ।' मा० ७.१४ छं०

आदरहुं : आ०—संभावना—प्रब । सम्मान दें, आदर करें । 'कै निदरहुं कै आदरहुं ।' दो० ३८१

आदरिअ : आ०कवा०प्रए० । आदर दिया जाय, समान्य करना चाहिए । 'सो आदरिअ करिअ हित मानी ।' मा० २.१७६.२

आदरियत : वकृ०पुं०—कवा० । आदर पाता-पाने । विन० १८३.२

आदरिये : आदरिअ । 'तिनहू न आदरिये ।' विन० १८६ ४

आदरी : भूकृ० स्त्री० । संमानित की । 'भवहरनि भवित न आदरी ।' मा० ७.१३ छं० ३

आदरु : आदर+कए । अद्वितीय सम्मान । 'जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा ।' मा० १.१०७.३

आदरे : भू०कृ०पुं० बहु० । सम्मानित किये । गी० ६.२२.६

आदरेण : (सं० पद) आदर से । मा० ३.४ छं०

आदरेहु : आ०—भू०कृ०पुं०+मब० । तुमने सम्मानित किया-किये । 'नहिं आदरेहु भगति की नाईं ।' मा० ७.११५.१०

आदरौ : आ०—आज्ञा—प्रए० । (वह) आदर करे, सम्मान दे । 'सोइ आदरौ आस जाके जिय बारि बिलोवत फीकी ।' कृ० ४३

आदर्यो : भू०कृ०पुं०कए० । सम्मानित किया । 'तू जो हम आदर्यो सो तौ नव कमल की कानि ।' कृ० ५२

आदि : (१) वि० (सं०) । प्राथमिक । 'आदि सृष्टि उपजी जबै ।' मा० १.१६२ (२) मुख्य, प्रथम (समासान्त में) इत्यादि । 'व्यास आदि कबि पुंगव नाना ।' मा० १.१४.२ (३) सं०पुं० । आरम्भ । 'आदि अंत कोउ जासु न पावा ।' मा० १.११८.४ (४) क्रि०वि० । पहले, सर्वप्रथम । 'आदि सारदा गनपति गौरि मनाइय हो ।' रा०न० १

आदिक : आदि । इत्यादि । मा० ६.६२.१२

आदिकवि : बाल्मीकि मुनि जिन अषि रामायण ग्रन्थ आदि-काव्य माना गया है । मा० १.१९.५

आदित : सं०पुं० (सं० आदित्य) । सूर्य । 'दंड द्वै रहै हैं रघु आदित उवन के ।' कवि० ६.३

आदिदेव : (१) मुख्य देवता, (२) प्रथम पूज्य देवता=गणेश जी, (३) सूर्य, (४) ब्रह्म, (५) शिव (६) विष्णु । 'आदिदेव प्रभु दीनदयाला ।' मा० १४२.६ (यों आदिदेव दैत्य-पर्याय है ।)

आदिसक्ति : सं० स्त्री० (सं० —आदिशक्ति) (१) (ब्रह्म की सनातन शक्ति= महामाया अथवा मूल प्रकृति जो विश्वसृष्टि का आदि कारण है। (२) राम-ब्रह्म की परमाशक्ति=सीता। 'आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला।' मा० १.१४८.२

आदि-सृष्टि : विश्व की प्रथम उत्पत्ति, प्रलय के अनन्तर विश्व का आविर्भाव। मा० १.१६२

आदेस : आयस। आज्ञा। कवि० ७.१४०

आध : वि० (सं० अर्ध>प्रा० अद्ध)। आधा-आधी। 'कपूत कौड़ी आध को।' कवि० ७.६८

आधा : आध। मा० ६.४८.४

आधार : सं०पुं० (सं०)। आश्रय, अधिष्ठान, अधिकरण कारक, अपने में आधेय वस्तु को धारण करने वाला। 'सकल जगत आधार।' मा० १.१९७

आधारा : आधार। मा० ३.१२.७

आधीन : वि० (सं० अधीन)। परवश, परतन्त्र। 'अंब ईस अधीन जगु।' मा० २.२४४

आधीना : आधीन। 'देखिअहिं रूप नाम आधीना।' मा० १.२१.४

आधु : आध+कए। एक खण्ड, एक द्वितीयाशमात्र। 'पुधरत पल लगै न आधु।' विन० १९३.३

आधे : 'आधा' का रूपान्तर (सं० अर्धक>प्रा० अद्धय)। 'उभय भाग आधे कर कीन्हा।' मा० १.१९०.२

आनँद : आनंद। मा० १.२३.६ 'सत चेतन धन आनंद रासी।' मा० १.२३.६

आनंदमई : वि० स्त्री० (सं० आनन्दमयी>प्रा० आनंदमई)। आनन्दपूर्ण। 'सकल दिसि आनँदमई।' मा० १.३२१ छं०

आनँदु : आनंदु। मा० १.३२३.४

आन : (१) वि० (सं० अन्य>प्रा० अन्न)। इतर, दूसरा। 'हृदयँ धरहिं कछु आन।' मा० १.४९ (२) सं० स्त्री०। शपथ। 'मोहि राम राउरि आन।' मा० २.१०० छं० (३) दुहाई। 'विश्वनाथपुरी फिरी आन कलिकाल की।' कवि० ७.१६९

आनंद : सं०पुं० (सं०)। अखण्ड सुख। 'दिए दान आनंद समेता।' मा० २.२९५.८ परमात्मा का कल्याणकारी गुण। दे० सच्चिदानंद।

आनंदकंदु : आनन्द का एकमात्र मूलकारण। मा० १.३१८ छं०

आनंदघन : (१) आनन्द की वर्षा करने वाला (२) घनीभूत आनन्द—आनन्दरूप कल्याण गुण का आगार। विन० ४७.१

आनंद-द : आनन्द-दायक। मा० ३ श्लो० १

आनंदित : वि० (सं०)। परमसुख से युक्त। गी० १.६९

आनंदू : आनंद+कए। अद्वितीय आनन्द। मा० १.३०१.५

आनइ : अन्य ही। 'सब पंप्रच तहँ आनइ आना।' मा० ७.८१.४

आनउँ : आ०उए (सं० आनयामि>प्रा० आणमि>आ० आणउँ)। ले आऊँ। 'तात जतन करि आनउँ सोई।' मा० ४.१८.३

आनत : वकृ०पुं० (सं० आनयत्>प्रा० अणंत)। (१) लाता-लाते। (२) लाते ही। 'उर अस आनत कोटि कुचाली।' मा० २.२६१.३

आनन : सं०पुं० (सं०)। मुख। मा० १.११८.६

आननी : (समासान्त में) वि० स्त्री०। मुख वाली। 'चारु भ्रू, नासिका सुभग सुक-आननी।' गी० ७.५.४

आननु : आनन+कए। वह अद्वितीय मुख। 'आननु सरद चंद छबि हारी।' मा० १.१०६.८

आनब : भूकृ० पुं० (सं० आनेतव्य>प्रा० आणिअव्व)। लाना होगा (लाऊँगा)। 'हरि आनब मैं करि निज माया।' मा० १.१६६.४

आनसि : आ०मए०। तू लाता है। 'उत्तर प्रति उत्तर बहु आनसि।' मा० ७.११२.१३

आनहिं : (क) आ०प्रब० (सं० आनयन्ति>प्रा० आणंति>अ० आणहिं)। (१) ले आते हैं। 'एक कलस भरि आनहिं पानी।' मा० २.११५.१ (२) ले आएं। 'आनहिं नृप दसरथहि बोलाई।' मा० १.२८७.१

(ख) अन्य को भी, दूसरे को भी। 'आपु गए अरु घालहिं आनहिं।' मा० ७.४०.५

आनहु : आ०मब०। ले आओ। 'बेगि कुअँरि अब आनहु जाई।' मा० १.३२२.२

आना : (१) आन। शपथ। 'सपथ तुम्हारी भरत कै आना।' मा० २.४३.२ (२) आन०। अन्य। 'अस पन तुम्ह बिनु करइ को आवा।' मा० १.५७.५ (३) भू०कृ०पुं०सं० आनीत>प्रा० आणिअ)। लाया। 'मांगी नाव न केवट आना।' मा० २.१००.३

आनाकानी : सं० स्त्री० (सं०अनाकर्णिका>प्रा० अणाकण्णिआ>अ० अणाकण्णी)। सुनी-अनसुनी; जानबूझ कर भी न जानने का अभिनय। 'आनाकानी, कंठहँसी, मुँहाचाही होन लागी।' गी० १.८४.८

आनि : (१) पूकृ०। लाकर। 'आनि देखाई नारदहि।' मा० १.१३० (२) आकर। 'कीनि गोहारी आनि।' दो० ५३६ (३) आ० आज्ञा-मए। तू ला=आनु। 'उर आनि धरे धनु भाथहि रे।' कवि० ७.२६ (४) (वि० स्त्री०। अन्य। 'राम चरन तजि नहिंन आनि गति।' विन० १२८.१

आनिअ : आ०कवा०प्रए०। लाइए, ले आइए। 'अब आनिअ व्यवहरिआ बोली।' मा० १.२७६.४

आनिए : आनिअ। मा० २.२०१. छं०
आनिबी : भूकृ० स्त्री० (सं० आनेतव्या>प्रा० आणिअव्वी)। ले आनी होगी। 'रिपुहि जीति आनिबी जानकी।' मा० ५.३२.४
आनियहिं : आ०-कव-प्रब०। ले आये जायं। 'ब्रज आनियहिं मनाय पाय परि कान्ह कूबरी रानी।' कृ० ४८
आनिहिं : आ०-भ०-प्रब०। लाएँगे। 'सो कि स्वयंबर आनिहिं बालक बिनु बल।' जा०मं० ७७
आनिहि : आ०-भूकृ० स्त्री०+मए०। तू (स्त्री) ले आया है। 'सूनें हरि आनिहि पर नारी।' मा० ६.३०.६
आनिहु : आ०-भूकृ० स्त्री०+मब०। तुम (स्त्री) ले आये हो। 'हरि आनिहु सीता जगदंबा।' मा० ६.२०.५
आनिहैं : आनिहिं। ले आएँगे। 'रामु सीतहि आनिहैं।' मा० ४.३० छं०
आनिहै : आ०-भ० (१) प्रए। वह लायेगा। (२) मए०। तू लायेगा। 'स्वामी को सुभाव कसो सो जब उर आनिहै।' विन० १३५.५
आनिहौं : आ०-भ०-उए०। लाऊँगा। 'जैसी मुख कहौं तैसी जीयँ अब आनिहौं।' कवि० ७.६३
आनिहौ : आ०-भ०-मब०। लाओगे। 'बिरद लाज उर आनिहौ।' विन० २२३.१
आनी : (१) आनि। लाकर। 'करिअ न संसय अस उर आनी। मा० १.३३.८ (२) भूकृ० स्त्री०। लायी, ले आयी गई। 'जिन्ह हरि भगति हृदयँ नहिं आनी।' मा० १.११३.५
आनु : आ०-आज्ञा-मए०। तू ले आ। 'बेगि आनु जल पाय पखारू।' मा० २.१०१.२
आनू : आनु। 'लछिमन बान सरासन आनू।' मा० ५.५८.१
आने : (१) भूकृ०पुं०। लाये, ले आये। 'धरि बड़ि धीर रामु उर आने।' मा० १.२३४.८ (२) आ०प्रए०। लावे। 'सोइ बावरि जो परेखो उर आने।' कृ० ३८
आनेउँ : आ०-भूकृ०पुं०+उ०ए०। लाया हूँ, ले आया हूँ। 'आनेउँ सब तीरथ सलिलु।' मा० २.३०७
आनेउ : भूकृ०पुं० कए। लाया, ले आया। मा० ६.५५.८
आनेसु : आ० भ०+आज्ञा—मए। तू ले आना। 'तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी।' मा० १.१८२.३
आनेहि : आ०—भूकृ०+मए। तू लाया है। 'सठ सूनें हरि आनेहि मोही।' मा० ५.९.६

आनेहु : (१) आ०—भूकृ पुं०+मब० । तुम लाये हो । 'आनेहु मोल बेसाहि कि मोही ।' मा० २.३०.२ (२) आ०—भ०+आज्ञा+मब० । तुम लाना । 'लखनु रामु सिय आनेहु फेरी ।' मा० २.९४.८

आनें : आ० प्रब० । वे आते हैं, लाते हैं । 'एक भूखे जनि आगें आनैं कंद मूल फल ।' कवि० ५.३०

आनै : आ० प्रए । लाए, ले आवे । 'मनहू अकाजु आनै ।' कवि० ५.२२

आनौं : आ०—प्रए० । ले आऊँ, लाऊँ । 'करि बिनती आनौं दोउ भाई ।' मा० १.२०६.७

आन्यो : आनेउ । ले आया । गी० ६.९.२

आप : (१) (सं० आत्मना>प्रा० अत्पणा) । अपने-आप, स्वयम् । 'राम जासु जस आप बखाना ।' मा० १.१७.१० (२) सं० (सं०) । जलसमूह । 'भ्राज बिबुधापगा आप पावन परम मौलि मालेव शोभा विचित्रं ।' विन० ११.३

आपगा : स० स्त्री० (सं०) । नदी । मा० २ श्लोक १ 'अवगाह भव आपगा ।' विन० ५९.८

आपद : सं० स्त्री० (सं० आपद्) । विपत्ति । 'आपद काल परखिअहिं चारी ।' मा० ३.५.७

आपदा : आपद (सं०) । 'हरि सम आपदाहरन ।' विन० २१३.१

आपन : वि०पुं० (सं० आत्मन:—आत्मीय>प्रा० अप्पणो) । आत्मीय, निज, स्वकीय । 'तब आपन प्रभाउ बिस्तारा ।' मा० १.८४.५

आपना : आपन । मा० ६.५६.५

आपनि : वि०स्त्री० (सं० आत्मीय>प्रा० अप्पणी) । अपनी, निजी । 'आपनि दारुन दीनता कहउँ ।' मा० २.१८२

आपनी : आपनि । मा० २.२३३

आपनें : अपने······से । 'आपनें बय बल रूप गुन गति सकल भुवन बिभोहई ।' मा० १.३१६ छं०

आपने : (१) आपनें । स्वयम् । कवि० ७.९९ (२) वि०पुं०ब० । आत्मीय जन । कवि० ७.१२४ (३) आपने······में । 'बैठीं बिपुल सुख आपने ।' मा० ६.१०३ छं० २

आपनो : आपन+कए । अपना । 'अति अपमान बिचारि आपनो कोपि सुरेस पठाए ।' कृ० १८

आपनोई : अपना ही । कवि० ७.६३

आपन्न : वि० (सं०) । आपत्तिग्रस्त । मा० ७.१०८.१६

आपु, पू : आप+कए । (१) स्वयम् । 'भंजेउ राम आपु भवचापू ।' मा० १.२४.६ (२) जलसमूह । पिंगल जटाकलापु, माथे पै पुनीत आपु ।' कवि० ७.१५९

आपुन् : (सं० आत्मन्>प्रा० अप्पण) अपने-आप, स्वयम् । 'आपुन होइ न सोइ ।' मा० ७ ७२ख (२) अपना ।

आपुनि : आपुन (सं० आत्मनि>प्रा० अप्पणी) । स्वयम् । 'विद्यमान आपुनि मिथिलेसु ।' मा० २.२९६.७

आपुनु : आपुन । 'आपुनु आवइ ताहि पहिं ।' मा० १.१५९

आपुनो : आपनो । विन० १९१.६

आपुस : सं० स्त्री० । परस्पर, स्वजनों के बीच । 'आपुस में कछु पै कहिहैं ।' कवि० २.२३

आपुहिं : अपने आप ही, स्वयं ही । 'देत चापु आपुहिं चढ़ि गयऊ ।' मा० १.२८४.८

आपुहि : अपने आप को । 'आपुहि परम धन्य करि मानहिं ।' मा० १.१२०.७

आपू : आपु । 'जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू ।' मा० १.२६.३

आबाहन : सं०पुं० (सं० आवाहन) । निमंत्रण, आमंत्रण, देवशक्तियों को मंत्र द्वारा बुलाने की क्रिया । 'तीरथ आबाहन सुरसरि जस ।' मा० २.२४०.३

आभ : (समासान्त में) वि०पुं० (सं०) । समान, आभासदृश आभा वाला । 'नीलकंजाभ' विन० ४६.२ (नील की आभा के समान आभा वाला) मा० ७ श्लोक १

आभीर : सं०पुं० (सं०) । (१) अहीर जाति । (२) विन्ध्य के अन्तराल में बसने वाली एक जाति । (३) एक संकतवर्ण—ब्राह्मण से वैश्यकन्या की सन्तान 'अम्बष्ठ' है; अम्बष्ठ कन्या से ब्राह्मण सन्तति 'आभीर' होती है— दुहरा संकट वर्ण तथा ब्राह्मण योग होने से इसे 'महाशूद्र' भी कहा जाता है । 'आभीर जमन किरात रवस ।' मा० ७.१३०.छं० १

आम : वि० (सं०) । कच्चा । 'बिगरत मन संन्यास लेत, जल नावत आम घटो सो ।' १७३.४

आमय : सं०पुं० (सं०) । व्याधि, रोग । मा० ४. श्लोक २

आमरषि : पूकृ० । अमर्ष करके, आवेश में आकर, रुष्ट होकर । 'उठे भूप आमरषि ।' जा० मं० ८८

आमलक : सं०पुं० (सं०) । आमला, धात्रीफल । मा० १.३०.७

आमिष : सं०पुं० (सं०) । मांस । मा० १.१७३.३

आमोद : सं०पु० (सं०) । सुगन्ध । 'भ्रमत आमोद वश मत्त मधुकर निकर ।' विन० ५१.६

आय : आइ । आकर । गी० १ ७६. २

आयउँ : आ०—भूकृ पुं०+उए० । आया हूँ । 'मैं जाचन आयउँ नृप तोही ।' मा० १.२०७.६

आयउ : भूकृ पुं० कए० । आया 'आयउ जहँ सब भूप ।' मा० १.२६८

आयक : अन्ये हुए का, आने का। 'तौ तो दोष होय महि आयका' गी० २.३.४
आयत : वि० (सं०)। दीर्घ, विस्तुत, चौड़ा। 'उर आयत उरभूषन राजे।' मा० १.३२७.६
आयतन : सं०पुं (सं०)। विस्तार, भाण्डार। विन० ४६.१
आयस : सं०पुं० (सं० आदेश>प्रा० आएस)। आज्ञा। 'भरत राम आयस अनुसारी।' मा० २.२२०.१
आयसु : आयस+कए। आज्ञा। 'आयसु देहु' कृ० ४२ 'चली सती शिव आयसु पाई।' मा० १.५२.४
आयहु : आ० भूकृ पुं०+मब०। आये हो। 'अकसर आयहु तात।' मा० ३.२४
आया : भूकृ पुं० (सं० आयात>प्रा० आविय)। 'कामरूप केहि कारन आया।' मा० ५.४३.६
आयु : सं०पुं० (सं० आयुष्)। जन्म से मरण तक का जीवन-काल। गी० ७.२५.२
आयुध : सं०पुं० (सं०)। युद्धोपकरण, लड़ाई का साधन, अस्त्र-शस्त्र। मा० १.१८८.४
आयू : आयु। 'आयू-हीन भए सब तबहीं।' मा० ५.४२.१
आयों : आयउँ। कवि० ७.६५
आयो : आयउ। मा० ६.६.२
आरजसुत : सं० पुं० (सं० आर्यसुत=आर्यपुत्र)। पति<पत्नी द्वारा पति के लिए प्रयुक्त होता है)। मा ० २ ९७
आरजसुवन : आरजसुत। कवि ६ ३
आरण्य : अरण्य। वन। विन० ५६.७
आरत : वि० (सं० आर्त) ? दीन, व्याकुल। 'गहेसि जाइ मुनि चरन तब कहि सुठि आरत बैन।' मा० १.१२६ (२) आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी भक्तों में प्रथम भक्त जो संसार से त्रस्त होकर प्रपत्ति की ओर तीव्रता से उन्मुख होता है। 'आरत अधिकारी जब पावहिं।' मा० १.११०.२
आरतपाल : वि० (सं० आर्तपाल)। दीनों तथा आर्तभक्तों का रक्षक। कवि० ७.१२७
आरतपोसु : वि०पुं० कए (सं० आर्तपोषः)। आर्तजनों का पोषण करने वाला, आर्तों का अनुग्राहक। विन० १५९.१
आरति : (१) सं० स्त्री० (सं० आर्ति)। व्याकुलता। विह्वलता, असहायता। 'आरति बिनय दीनत मोरी।' मा० १.४३.१ (२) (सं० आरात्रिक>प्रा० आरत्तिअ)। नीराजना, दीपक माला उतारने की क्रिया। 'मनि बसन भूषन वारि आरति करहिं, मंगल गावहीं।' मा० १.३२७.छं० १

आरतिहर : वि०पुं० (सं० आर्तिहर) । दुःख-सन्तापों का हरणकर्ता । 'करहिं आरती आरति-हर की ।' मा० ७.९.७

आरतीं : आरती+ब० । आरतियाँ, नीराजनाएँ, दीपमालाएँ । 'कंचन थार आरतीं नाना ।' मा० ७.९.६

आरती : सं० स्त्री० (सं० आरात्रिक>प्रा० आरत्तिअ) । नीराजना । 'मैनाँ सुभ आरती सँवारी ।' मा० १.९६.२

आराति, ती : सं० पुं० (सं० आराति) । शत्रु । मा० १.५७.८

आराम : सं०पुं० (सं०) । उद्यान, उपवन । मा० ७.२९.छं०

आरामु : आराम+कए । अद्वितीय उपवन । 'परम रम्य आरामु यहु ।' मा० १.२२७

आरि : सं० स्त्री० (सं० आरा=कोड़ा, चाबुक) । (हिन्दी में), हठ, बालहठ । 'कबहूँ ससि मागत आरि करें ।' कवि० १.४

आरिषी : वि० स्त्री० (सं० आर्षी>प्रा० आरिसी) । ऋषियों की । 'रीतिभारिषी' कवि० १.१५ (ऋषियों की रीति)

आरूढ़ : भूकृ वि० (सं०) । चढ़ा हुआ । 'खर अरूढ़ नगन दससीसा ।' मा० ५.११.४

आरेसू : दे० सवतिआ तथा रेसू ।

आरोहैं : आ० प्रब० । चढ़ते हैं । 'दरसन लागी लोग अटनि आरोहैं ।' गी० १.६२.४

आरौ : सं०पुं० कए (सं० आरव) । शब्द, ध्वनि, (पदचाप आदि) । 'घुरुघुरात हय आरौ पाएँ ।' मा० १.१५६.८

आलबाल : सं०पुं० (सं०) । वृक्ष सींचने हेतु बनाया जाने वाला मण्डलाकार थाला । मा० १.३४४.८

आलस : सं०पुं० (सं० आलस्य>प्रा० आलस्य) । कर्म के प्रति अंगों की शिथिलता । दो० ३२७

आलसवंत : वि० (सं० आलस्यवत्>प्रा० आलस्सवंत) । आलसी । अलसाया हुआ । 'आलसवंत सुभग लोचन सखि ।' कृ० २२

आलसहूँ : आलस्य में भी । 'भायँ कुमायँ अनख आलसहूँ ।' मा० १.२८.१

आलसिन, न्ह : आलसी+सं०ब० । आलसियों । गी० ७.३२.३

आलसी : वि० । आलस्य करने वाला, अकर्मण्य, शिथिल । 'दैव-दैव आलसी पुकारा ।' मा० ५.५१.४

आलसु : आलस+कए० । जरा-सा भी आलस्य । 'तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं ।' मा० १.८१.४

आलि,ली : सं० स्त्री० (सं०) ? सखी। 'नहिन आलि इहाँ संदेहू।' मा० १.२२२.६ (२) पाङ्क्त

आली : आलि। सखी। मा० १.२२६.४

आले : वि०पुं० (सं० आर्द्र>प्रा० अल्ल)। गीले, सरस हरे। 'आलेहि बांस के माँड़व मनिगन पूरन हो।' रा०न० ३

आव : (१) आवइ। आता है। 'तीरथ पतिहि आव सबु कोई।' मा० १.४४.३ (२) आए। 'जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया।' मा० २ ६६ ७ (३) सं०पुं० (सं० आप=जल समूह>प्रा० आव)। जलप्रवाह। 'चारिहुं दिसि फिरि आव।' मा० १.१७८ (४) जलमय, अत्यन्त आर्द्र, द्रवपूर्ण। 'काम कृसानु, गुमानु अवाँ, घट ज्यों जिन के मन आव न आँचे।' कवि ७.११८

✓**आव आवइ** : (सं० आयाति>प्रा० आवइ—आना) आ० प्रए०। आता है। 'फिरि आवइ समेत अभिमाना।' मा० १.३६.३

आवई : आवइ। मा० ७.५ छं० २

आवउँ : आ० उए। आऊँ, आता हूं। 'बिदा मातु सन आवउँ मागी।' मा० २.४६.४

आवत : वकृ पुं०। आता, आते। 'आवत हृदयँ सनेह बिसेषें।' मा० १.२१.६

आवति : वकृ स्त्री०। अति। 'सुमिरत सारद आवति धाई।' मा० १.११.४

आवन : भकृ०। आना, आने। 'चहत जनु आवन।' जा०मं० ८६

आवनो : (१) भकृ०पुं० कए०। आने वाला। 'जा को ऐसो दूतु सो तौ साहेबु है आवनो।' कवि० ५ ६ (२) सं०पुं० (सं० आगमन)+कए। आना। 'बनत न आवनो।' कवि० ५.१८

आवर्त : (१) दे० अबर्त। (२) चक्कर, भ्रमण, घुमाव। 'फिरि गर्भगत आवर्त संसृतिचक्र।' विन १३६ ७

आवहिं : आ० प्रब०। (१) आते हैं। 'तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं।' मा० १.३४.६ (२) आएँ, आएँगे। 'कबहुंक ए आवहिं एहि नातें।' मा० १.२२२.८

आवहिंगे : आ०भ०पुं०प्रब०। आएंगे। 'कबहूं कपि राघव आवहिंगे।' गी० ५.१०.१

आवहुं : आ०-सम्भावना-प्रब। आएँ। 'आवहुं बेगि नयन फलु पावहिं।' मा० १.११.२

आवहु : आम०मब०। तुम आवो। 'जाइ देखि आवहु नगर।' मा० १.२१८

आवा : (१) आवइ। आता है। 'सोइ भरोस मोरें मन आवा।' मा०१.१०.८ (२) भूकृ० पुं०=आया। 'नाथ एक आवा कपि भारी।' मा० ५ १७.३

आवागमन : सं०पुं०। यातायात, गतागत। जन्म मरण का पुनः पुनः आवर्तन। विन० २०३.१२

आवाहन : आबाहन।

आवैं : आवहिं। कवि ७.२

आवै : आवइ। (१) आता है, आ सकता है। 'जेहि उर बसत श्यामसुंदर घन तेहि निर्गुन कस आवै।' कृ० ३३ (२) आए। 'आवै पिता बुलावन जबहीं।' मा० १.७५.३

आवौं : आवउँ। आ० उए०। आता हूँ, आ जाऊँ। 'नगर देखाइ तुरत लै आवौं।' मा० १.२१८.६

आवौंगी : आ०भ०स्त्री०उए०। आऊंगी। गी० २.६.१

आवौ : आवहु। गी० २.८७.१

आश्रम : सं०पुं०(सं०)। (१) धर्मानुसार आयु के चार विभाग—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास। 'बरन धर्म नहिं आश्रम चारी।' मा० ७.९८.१ (2) मुनि कुटीर। 'गोदावरी तट आश्रम जहवाँ।' मा० ३.३०.३ (3) तपोवन का मुख्य स्थान। 'भरद्वाज आश्रम अति पावन।' मा० १.४४.६

आश्रमन्ह, हि : आश्रम+सं०ब०। आश्रमों (में, का, को आदि)। 'सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए।' मा० १.४५.३; २.१३४

आश्रमहिं : आश्रम में। 'तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ।' मा० १.१२६.१

आश्रमी : वि०पुं० (सं० आश्रमिन्)। आश्रम वाला—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वनस्थ, संन्यासी। मा० ४.१६

आश्रमु : आश्रम+कए०। उस कुटी को, वह कुटीर। 'आश्रमु देखि नयन जल छाए।' मा० १.४६.६

आश्रित : भू०कृ० वि० (सं०)। अवलम्बित, अधीन—दार्शनिक दृष्टि से कार्यवस्तु उपादान कारण में स्थित। 'एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई।' मा० १.११८ १

आषर : आखर। कृ०पू०।

आस : आसा मा० १.४३.२

आसन : सं०पु० (सं०)। बैठकी। 'अति पुनीत आसन बैठारे।' मा० १.४५.५

आसनन्हि : आसन+सं०ब०। आसनों (पर)। 'सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए।' मा० १.३५९.३

आसनु : आसन+कए। मा० १.६०.४

आसरो : सं०पुं०कए (सं० आश्रयः)। सहारा, अवलम्ब। विन० २६१.४

आसा : सं०स्त्री० (सं० आशा>प्रा० आसा)। (१) अप्राप्त ज्ञात वस्तु की संभावना-पूर्ण अभ्यर्थना। 'नृपन्ह केरि आसा निसी नासी।' मा० १.२५५.१ (२) संभावना। 'कवनि राम बिनु जीवन आसा।' मा० २.५१.५ (३) दिशा। 'मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा।' मा० ६.११६.८ (४) और। 'देखु बिभीषन दच्छिन आसा।' मा० ६.१३.१

आसिरबचन : सं०पुं० (सं० आशीर्वचन। आशीर्वाद। मा० २.२४६.३

आसिरबाद : सं०पुं० (सं० आशीर्वाद)। आशी: के शक। मा० ६.११२.२

आसिर बादु : आसिरबाद+कए। 'आसिरबादु सबन्हि सन पावा।' मा० १.३४१.१

आसिष, षा : सं० स्त्री० (सं० आशिष्>प्रा० आसिसा)। आशीर्वाद। मा० १.२६९.५; १.३४३.६

आसीन : भू०कृ०वि० (सं०)। बैठा हुआ, बैठे हुए। मा० ३.३

आसीना : आसीन। 'जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना।' मा० १.५४.६

आसुतोष : वि० (सं० आशुतोष)। अतिशीघ्र सन्तुष्ट=प्रसन्न होने वाला। मा० १.७०.४

आसू : क्रि०वि० (सं० आशु)। शीघ्र, तत्क्षण। 'खंड खंड होइ फूटहिं आसू।' मा० ६.८२.३

आस्रम : आश्रम। रा०प्र० ६.६.६

आस्रमनि : आश्रमन्हि। विन० १७०.६

आह : अव्यय (सं०)। (१) तीव्र वेदना, संकट, क्लेश, विस्मय आदि का व्यञ्जक। 'आह दइअ मैं काह नसावा।' मा० २.१६३.६ (२) सं० स्त्री० के प्रयोग भी हैं—'कबि उर आह न आई।' गी० ३.११.३ (३) होने के अर्थ में धातु (सं० आस्)।

आहहिं : आ०प्रब०। हैं। 'जद्यपि ब्रह्मनिरत मुनि आहहिं।' मा० ७.४२.७

आहार : सं०पुं० (सं०)। भोजन, भक्ष्य। विन० ११८.३; मा० १.१४४

आहिं : आहहिं। 'सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।' मा० २.११७.१

आही : (१) आ०भू०प्रए०। था, हुआ। 'राजधनी जो सेठ सुत आही।' मा० १.१५३.५ (२) आ०प्रए०। है। 'अपर देउ अस कोउ न आही।' मा० १.२२०.८

आहुति : सं०स्त्री० (सं०)। (१) यज्ञ की आग में डाली जाने वाली सामग्री, हवन सामग्री। (२) हवन, होम मा० १.१८९.६

इ

इंदारुन : सं०पुं० (सं० इन्द्र-वारुणी>प्रा० इंद्रारुणी)। एक वृक्ष जिसका फल देखने में अति सुन्दर परन्तु अति कटु होता है; कड़वा सेव। 'बिनु हरि भजन इँदारुन के फल, तजत नहीं करुआई।' विन० १७५.३

इँद्रजीता : इंद्रजीत। मा० ६.११९.९

इ : अवधारणार्थक अव्यय (सं०हि) । जैसे झूठइ, लोभइ ।

इंदिरा : सं०स्त्री० (सं०) । लक्ष्मी । मा० १.५४

इंदीवर : सं०पुं० (सं०) । नीलकमल । मा० ४ श्लो० १

इंदु : सं०पुं० (सं०) । चन्द्रमा । मा० ३.१२

इंद्र : सं०पुं० (सं०) (१) देवराज । मा० ७.१०९.१३ (२) राजा—'कोसलेन्द्र' । मा० ६ श्लो० २ (३) (समासान्त में) वि०पुं० (सं०) । श्रेष्ठ । कपीन्द्र> कपिंदा ।

इंद्रजाल : सं०पुं० (सं०) । जादू, अद्भुत कौतुक, विस्मयजनक खेल आदि । मा० ३.३९.४

इंद्रजालि : वि० (सं० इन्द्रजालिन्) । जादूगर । मा० ६.२९.१०

इंद्राजित : सं०पुं० (सं० इन्द्रजित्) । रावण पुत्र मेघनाथ जिसने इन्द्र पर विजय पा कर यह नाम पाया था । मा० ५.१९.३

इंद्रजीत : इंद्रजित । मा० १.१८३.१

इंद्र धनु : सं०पुं० (सं० इन्द्रधनुष्) । मेघों में सूर्य किरणों से बनने वाला सतरंगा आकार विशेष । मा० ६.८७.५

इंद्रधनुष : इंद्रधनु । मा० ६.१०१ छं० १

इंद्रनील : सं०पुं० (सं०) । नीलम, मणि विशेष । गी० १.१०८.१

इंद्रिन, न्ह : इंद्री+सं०ब० । इन्द्रियों (को) । विन० ८८.१ 'इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई ।' मा० ७.११८.१५

इंद्रिय : सं०स्त्री० (सं० इन्द्रिय—नपुं०) । 'इन्द्र' अर्थात् आत्मा की सत्ता के सूचक ज्ञान साधन—पाँच ज्ञानेन्द्रिय (चक्षुः, घ्राण, श्रवण, रसना और त्वक्) तथा पाँच कर्मेन्द्रिय (वाक्, पाणि, पाद, वायु और उपस्थ) । वैरा० १४, २९

इंद्रियगन : पञ्चप्राणसहित पञ्च कर्मेन्द्रिय+मन एवं बुद्धि सहित पञ्च ज्ञानेन्द्रिय= प्राणमय कोश+मनोमय कोश+विज्ञानमय कोश । 'जिमि इंद्रियगन उपजें ज्ञाना ।' मा० ४.१५.१२

इंद्रियादिक : इंद्रियगन । मा० ३.४ छं०

इंद्रीं : इंद्री+ब० । ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय=इन्द्रियाँ । मा० २.१५४.२

इंद्री : इंद्रिय ।

इंद्रीद्वार : शरीर के नौ छिद्र=मुख १, नेत्र २, श्रवण २, नासिका २, मूत्रेन्द्रिय १ तथा मलेन्द्रिय १ । 'इंद्री द्वार झरोखा नाना ।' मा० ७.११८.११

इंधन : सं० पुं० (सं०) । अग्नि ज्वाला के साधन काष्ठ आदि । मा० १.३२

इक : एक (सं० एक>प्रा० एक्क=इक्क) । विन० १०९.२

इकटक : एकटक । गी० १.२५.५

इकतार : वि०+क्रि०वि० । निरन्तर, धाराप्रवाह, अविच्छिन्न (ध्यान में अखण्ड चित्त प्रवाह जिसमें तार न टूटने जैसी क्रिया हो) । 'रमन राम इकतार ।' वैरा० २६

इकीस : संख्या (सं० एकविंशति>प्रा० इक्कवीसा) कवि० १.७

इगारहों : संख्या विशेषण (सं० एकादश>प्रा० एगारहम<अ० एगारहवँ) । ग्यारहवाँ । 'तुलसी कियो इगारहों बसन बेस जदुनाथ ।' दो० १६८ (दस अवतारों के अतिरिक्त ग्यारहवाँ वस्त्रावतार ।)

इच्छाँ : इच्छा से । 'निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ ।' मा० ४.२६

इच्छा : सं० स्त्री० (सं०) । (१) (जीव के सन्दर्भ में) काँमना । 'समदरसी इच्छा कछु नाहीं ।' मा० ५.४८.६ (२) ईश्वर की लीला शक्ति, महामाया 'निज इच्छा निर्मित तनु मायागुन गोपार ।' मा० १.१९२ (३) महामाया की कार्य-शक्ति । 'निज इच्छा लीला बपु धारिनि ।' मा० १.९८.४

इच्छाचारी : वि० (सं०) ? स्वच्छन्द, उच्छृङ्खल, मनचाहा करने वाला, अनाचारी । 'कुटिल कहल प्रिय इच्छाचारी ।' मा० २.१७२.७ (२) इच्छानुसार बेरोक गति लेने वाला । 'चले गगन महि इच्छाचारी ।' मा० ५.३५.६

इच्छाजीवन : मनचाहे समय तक जीवित रहना । गी० ३.१५.२

इच्छामय : वि० (सं०) । (१) इच्छाजनित (२) इच्छा (लीला) का ही परिणत रूप । 'इच्छामय निज बेष सँवारें ।' मा० १.१५२.१

इच्छामरन : यथेच्छ जीवित रहकर जब चाहे तभी मरने वाला । 'कामरूप इच्छा-मरन ।' मा० ७.११३ क

इच्छित : भू०कृ०वि० (सं० इस्ट>प्रा० इच्छिअ) । मनचाहा, अभीष्ट । मा० १.७०.८

इत : क्रि०वि० (सं० इतः) । इधर, इस ओर । मा० १.२०३

इतनी : एतनी । गी० ५.७.४

इतनो : वि०पुं० कए (सं० इयान्>प्रा० इत्तुल्लो) । इस मात्रा या संख्या वाला । कवि० ७.३७

इतनोइ, ई : इतना ही । गी० १.१०६.२

इतर : वि० (सं०) । अन्य, साधारण । 'जनु देत इतर नृप कर बिभाग ।' गी० २.४६.५

√**इतरा, इतराइ, ई** : (सं० इत्वरायते>प्रा० इत्तराइ) आ०प्रए० । चञ्चल होता है, बहक चलता है, मनमानी करता है । इच्छाचारी हो जाता है, दूसरे की अवज्ञा करने लगता है । 'जिमि थोरेहुं धन खल इतराई ।' मा० ४.१४.५

इताति : सं० स्त्री० (अरबी—इताअत) । आज्ञापालन, सेवाशुश्रूषा । 'निसि बासर ता कहँ भलो मानै राम इताति ।' दो० १४८

इति : अव्यय (सं०) । यह (उपर्युक्त) । मा० ६.१११ छं०

इतिहास : सं०पुं० ? (सं० इतिहास=इति+ह+आस=ऐसा कहा सुना जाता है कि हुआ था—इस प्रकार वाक्यात्मक शब्द है ।) प्राचीन वृत्तकथा, इतिवृत्त । 'यह इतिहास पुनीत अति ।' मा० १.१५२ (२) स्त्री० प्रयोग भी है । 'यह इतिहास सकल जग जानी ।' मा० १.६५.४

इतिहासा : इतिहास । मा० १.५८.६

इते : वि०पुं० (सं० इयत्>प्रा० इत्तिय) । इतने । 'इते घटें घटिहै कहा ।' दो० ५६३

इतो, तौ : वि०पुं० कए० (सं० इयान्>प्रा० इत्तिओ) । इतना । 'चतुर जनक ठयो ठाट इतौ री ।' गी० १.७७.३

इदं : सर्वनाम (सं०) । यह । मा० ३.४ छं०

इदमित्थं : अव्यय (सं०) । यह-ऐसा (गुणों के आधार पर वस्तु के निश्चयात्मक बोध की स्थिति) । 'इदमित्थं कहि जाइ न सोई ।' मा० १.१२१.२

इन, इन्ह : सर्वनाम—संब० । मा० १.८५.७

इन्हहि : इनको । 'इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी ।' मा० १.१३४.४

इन्हैं : इन्हहि । गी० १.७७.३

इभ : सं० पुं० (सं०) । हाथी । मा० ६ श्लोक १

इमि : अव्यय (सं० एवम्>अ० इम) । इस प्रकार, ऐसे । मा० ३.२८.१०

इयारे : वि० पुं० बहु० (सं० ईय=व्यापक) । लोक सामान्य, साधारण, तुच्छ । 'तौ क्यों बदन देखावतो कहि बचन इयारे ।' विन० ३३.५

इरषाई : इरषादि (सं० ईर्ष्यादि>प्रा० ईरिसाई) । मा० ७.१२१.३३

इरिषा : सं० स्त्री० (सं० ईर्ष्या>प्रा० ईरिसा) । दूसरे के शुभ के प्रति असहिष्णुता, डाह, परसन्ताप । मा० १.१३६.७

इरिषादि : ईर्ष्या आदि=काम, क्रोध आदि (दे० षड्वर्ग) । मा० ७.३५.५

इव : अव्यय (सं०) । उपमा तथा उत्प्रेक्षा का वाचक—सदृश, मानों । 'लुबुध मधुप इव तजइ न पासू ।' मा० १.१७.४

इष्ट : भू०कृ० वि० (सं०) । (१) अभीष्ठ, वाञ्छित (इष्ट+क्त) (२) प्रिय (३) इष्टदेव पूजित (यज्+क्त) । 'कुल इष्ट सरिस बसिष्ट पूजे ।' मा० १.३२० छं०

इष्टदेउ : इष्टदेव+कए । अनन्य उपास्य । 'निज इष्ट देउ पहिचानि ।' मा० २.११०

इष्टदेव : सं० पुं० (सं०) । (१) मनचाहा देवता (सं० इष्ट इच्छायाम्+क्त) । (२) पूजित देवता (सं० यज पूजायाम्+क्त) । मनोभीष्ट उपास्य देव । 'सोइ मम इष्ट देव रघुराया ।' मा० १.५१.८

इष्टदेवन्ह : इष्टदेव+संब०। इष्टदेवों (के प्रति)। 'चले इष्टदेवन्ह सिर नाई।' मा० १.२५०.६

इसान : सं० पुं० (सं० ईशान)। शिव। पा०मं० १३ छं०

इसानु : इसान+कए०। 'दोष निधान इसानु सत्य सब भाषेउ।' वा०मं० ६४

इह : अव्यय (सं०)। यहाँ, इस लोक में, इस स्थान पर, इस जन्म में। मा० ७.१०८.१३ वि० ५६ ६ (२) सर्व०। यह

इहइ : यही, एकमात्र यह। 'इहइलाभ संकर जाना।' मा० १.२१ छं०

इहलोक : इस जीवन का संसार, यह जल और तत्सम्बन्धी विश्व, वर्तमान जीवन और उसके विषय। मा० ७.१०८.१३

इहाँ : क्रि०वि० अव्यय (सं० इह<प्रा० इहं)। यहाँ। मा० १.५२.५

इहै : इहइ। यही। 'कारन इहै गह्यो गिरिजाबर।' कृ० ३१

ई

ईंधनु : इंधन+कए। 'ईंधनु पात किरात मिताई।' मा० २.२५१.२

ई : इ। भी। तनोई मा० २.३१६.११ आदि

ईछा : इच्छा। मा० ६.५०.७

ईड्य : वि० (सं०)। स्तुत्य। मा० ६ श्लोक २

ईति : सं० स्त्री० (सं०)। (१) महामारी (२) अकाल=दुर्भिक्ष (३) अतिवृष्टि (४)शलभ=टिड्डीदल (५) चूहों का लगना (६) खेती में शुक आदि पक्षियों का गिरना (७) विदेशी आक्रमण (८) संक्रामक रोग (९) प्रवास (१०) राष्ट्र में गृह-युद्ध। मा० २.२३५.३ 'ईति भीति जस पाकत साली।' मा० २.२५३.१

ईश : सं०+वि०पुं० (सं०)। (१) स्वामी। मा० ६ श्लोक १ (२) शिव। मा० ७.१०८.१६

ईशान : सं० पुं० (सं०)। शिव। मा० ७.१०८ १

ईश्वर : (सं०) । दे० ईस्वर। मा० १ श्लोक २

ईषना : सं०स्त्री० (सं० ईषणा, एषणा) (१) लालसा, खोज, विषयों की अभ्यर्थना। (२) कामभोग, धन और यश की कामना। 'सुत बित लोक ईषना तीनी।' मा० ७.७१.६

ईस : सं०+वि० (सं० ईश) । (१) परमात्मा । 'नाम रूप दुई ईस उपाधी ।' मा० १.२१.२ (२) शिव । कवि० ५.३२ (३) स्वामी, पति । 'ईस बकसीस जनि खीस करु ईस सुनु ।' कवि० ६.१९ (४) राजा । जैसे, कोसलेस आदि । (५) ऐश्वर्य सम्पन्न । (६) (समासान्त में) राजा तथा श्रेष्ठ । जैसे, कपीस आदि ।

ईसन : ईस+संब० (सं० ईशानाम्>प्रा० ईसाण) । स्वामियों, ईशों । 'ईसन के ईस ।' कवि० ७.१२६

ईसा : ईस । मा० १.४९.३

ईसु : ईस+कए० । 'ईसु काहि धौं देइ बड़ाई ।' मा० १.२४०.१

ईस्वर : सं०+वि० पुं० (सं० ईश्वर) । (१) सर्वशक्तिमान् (२) सर्वसम्पत्ति-सम्पन्न (३) शिवरण (४) विष्णु (५) राजा, प्रभु । मा० १.१७४.२ (शांकर वेदान्त में मायशबल विराट् ब्रह्म को 'ईश्वर' कहते हैं परन्तु वैष्णव दर्शनों में परमात्मा और ईश्वर एकार्थक हैं । रामानुज मत में कार्यकारी ब्रह्म ईश्वर है । 'ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ ।' मा० ३.१४

ईस्वरहि : ईश्वर को 'कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ ।' मा० ७.४३

उ

उँजिआरा : उजिआर । मा० ७.११८.४

उ : अव्यय । भी । सोउ, केउ, जोउ, जेउ आदि । 'भलेउ पोच सब ।' मा० १.६.३ 'खलउ' मा० १.७.४

उअहिं : आ० प्रब० । उदय लेते हैं, उदित हों । 'एकापति षोडस उअहिं ।' मा० ७.७८

उएँ उदित होने से, उदित होने पर । 'जिमि रबि उएँ जाहिं तम फाटी ।' मा० ६.९७.१

उए : भू०कृ० पुं० (बहु०) (सं० उदित>प्रा० उइअ) (१) उदित हुए । 'मनहुं इंद्रधनु उए सुहाए ।' मा० ६.८७.५ (२) उएँ (सं० उदिते>प्रा० उइए) । उदित होते ही । 'वा के उए मिटति रजनि जनित जरनि ।' कृ० ३०

उकठि : पू०कृ० । उकठ कर, अपकाष्ठ होकर, सूखते-सूखते सारहीन होकर । 'पुनि न नवइ जिमि उकठि कुकाठू ।' मा० २.२०.४

उकठे : वि०पुं० बहु० (सं० अपकाष्ठ>प्रा० ओक्टु)। सूखकर सारहीन तथा रस-हीन हुए। 'उकठे तरु फूले फले।' गी० ५.४१.३

उकठेउ : उकठे भी। 'उकठेउ हरित भए जल थल रुह।' गी० २.४६.३

उकसहिं : आ० प्रब० (सं० उत्कसन्ते>प्रा० उक्कसंति>अ० उक्कसहिं) उमसते हैं, अङ्गों को ऊपर उठाते हैं, तिलमिलाकर ऊर्ध्वाङ्गचालन करते हैं। 'पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं।' मा० १.१३५.२

उकुति : उक्ति। मा० ६ १.४

उक्ति : सं० स्त्री० (सं०)। कथन। मा० ६.२३.६०

उखरैया : वि०। उखाड़ने वाला, उन्मूलनकारी। 'भूमि के हरैया, उखरैया भूमि-धरन के।' गी० १.८५.३

उखारिए : आ०क-वा०-प्रए०। उखाड़ फेंकिए। हनु० २४

उखारी : (१) पू०कृ०। उखाड़कर, उन्मूलित कर। 'बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी।' मा० १.१२६.५ (२) भू०कृ० स्त्री०। उखाड़ी, उन्मूलित की। 'जरि तुम्हारि चह सवति उखारी।' मा० २.१७.८

उखारे : भू०कृ० पुं०। (१) उन्मूलित किए। (२) उखाड़ने पर। 'गाड़े भली उखारे अनुचित।' कृ० ४०

उखारो : भू०कृ० पुं० कए। उखाड़ा, उपार लिया। कवि० ६.५५

उगिलत : वकृ० पुं० (सं० उद्गिलत्>प्रा० उग्गिलंत)। उगलता, मुख से निकलता। 'मनहुं क्रोध बस उगिलत नाहीं।' मा० १.१५६.६

उगिल्यो : भू०कृ० पुं० कए०। उगल दिया, उगला हुआ। कवि० ७.१०२

उग्यो : भू०कृ० पुं० कए०। (सं० उद्गतः>प्रा० उग्गओ)। उदित हुआ, उगा। 'जरठाइ दिसाँ रबिकालु उग्यो।' कवि० ७.३१

उग्र : (१) वि० (सं०)। तीव्र, निष्ठुर, उत्तेजित, घोर। 'परम उग्र नहिं बरनि सो जाई।' मा० १.१७७.१ (२) सं० पुं० (सं०)। शिव। विन० १०.७

उग्रकर्मा : वि० (सं०)। घोर कर्म करने वाला, क्रूर। विन० ५९.४

उग्रबुद्धि : वि० (सं०)। निष्ठुर बुद्धि वाला, तीखे तर्क करने वाला। मा० ७.९७.३

उग्रसेन : सं० पुं० (सं०)। कंस का पिता तथा कृष्ण का मातामह। विन० ९८.७

उघटत : वकृ० पुं० (सं० उद्घाटयत्)। उघाड़ता-उघाड़ते, प्रकट करता-करते। 'बल उपाय उघटत निज हिय के।' गी० ४.१.४

उघटहिं : आ०प्रब०। उद्घाटित करते हैं, प्रकट करते हैं। 'उघटहिं छंद प्रबंध गीत पद राग ताल बंधरन।' गी० १.२.१५

उघरत : वकृ०पुं०। खुलता, खुलते, प्रकट होते। 'बक उघरत तेहि काल।' दो० ३३३

उघरहिं : आ०प्रब०। (१) खुलते हैं। 'उघरहिं बिमल बिलोचन ही के।' मा० १.१.७ (२) ज्ञात हो जाते हैं। 'उघरहिं अंत न होइ निबाहू।' मा० १.७.६

उघरि : पूकृ०। खुलकर, अनावृत होकर (लज्जा संकोच छोड़कर)। 'हरि परे उघरि सँदेसहु ठठई।' कृ० ३६

उघरे : भूकृ० पुं० (बहु०)। खुल गये। 'उघरे पटल पर सुधर मति के।' मा० १.२८४.६

उघार : वि०पुं०। निरावरण, निर्वसन, नग्न या नग्नप्राय। 'द्विज चिन्ह जनेउ, उघार तपी।' मा० ७.१०१.७

उघारा : भूकृ० पुं० (सं० उद्घाटित>प्रा० उग्घाडिअ)। खोला। 'तब सिवँ तीसर नयन उघारा।' मा० १.८७.६

उघारि : (१) उघार+स्त्री०। नग्न, निर्वसन। 'नरनारि उघारि सभा महुँ होत।' कवि० ७.६ (२) पूकृ०। उघाड़कर, खोलकर। 'नयन उघारि सकल दिसि देखी।' मा० १.८७.४

उघारी : उघारि। (१) नग्न। 'समरधीर महाबीर पाँच पति क्यों देहैं मोहि होन उघारी।' कृ० ६० (२) खोलकर। 'छिन मूंदत छिन देत उघारी।' कृ० २२ 'बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी।' मा० १.५५.७ (३) आवरणहीन, (म्यान से बाहर) निकाली हुई। 'मनहुं रोष तरवारि उघारी।' मा० २.३१.१

उघारें : उघाड़ने पर, खोलने से। 'मूदें आँखि हिये मैं उघारें आँखि आगें ठाढो।' कवि० ५.१७

उघारे : भूकृ० पुं० (बहु०)। (१) खोले। 'सकुचि सीयँ तब नयन उघारे।' मा० १.२३४.३ (२) उघारें। लाज आपु ही निज जाँघ उघारे।' विन० २४७.१ (३) खोले हुए (निरावरण)। 'छूटे बार बसन उघारे।' कवि० ५ १५

उचकि : पूकृ०। ऊपर को झटके से गति लेकर। 'उचकें उचकि चारि अंगुल अचलु अचलु गो।' कवि० ४.१

उचकें : उचकने से, झटके के साथ ऊपर उड़ने पर। 'उचकें उचकि चारि अंगुल अचलु गो।' कवि० ४.१

उचाट : सं० पुं० (सं० उच्चाट—चट भेदने) (१) मन के उखड़ जाने की क्रिया (२) उच्चाटन मन्त्र आदि से होने वाली मानसिक शून्यता या अस्थिरता (३) कहीं से भाग खड़े होते भी उदास इच्छा। 'भय उचाट बस मन थिर नाहीं।' मा० २.३०२.५

उचाटि : सं० स्त्री०। उचाट। विन० १०८.४

उचाटु : उचाट+कए०। अभूतपूर्व उच्चाट। 'भय भ्रम अरति उचाटु।' मा० २.२९५

उचाटे : भू०कृ०पुं० बहु० (सं० उच्चाटित)। उखाड़ दिये, उचाट से भर दिये। 'लोग उचाटे अमरपति।' मा० २.३१६

उचारहीं : आ० प्रब०। उच्चारण करते हैं, बोलते हैं। 'जयति बचन उचारहीं।' मा० १.२६१ छं०

उचारी : भू०कृ० स्त्री०। कही, उच्चारित की। 'हरषि सुधा सम गिरा उचारी।' मा० १.११२.५

उचारे : भू०कृ०पुं० स्त्री० (सं० उच्चारित>प्रा० उच्चारिय)। कहे। 'मधुर मनोहर बचन उचारे।' मा० १.२६१.३

उचित : वि० (सं०)। (१) योग्य। 'जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा।' मा० १.५६.३ (२) पदमर्यादानुसार। 'उचित बास हिमभूधर दीन्हे।' मा० १.६५.८ (३) अनुरूप, अनुकूल। 'उचित असीस सब काहू दई।' मा० १.१०२ छं० (४) कर्मानुसार, योग्यतानुसार 'सब कहँ सुनिअ उचित फलदाता।' मा० १.२२२.५

उच्च : वि० (सं०)। उन्नत, उत्तम, विशाल। मा० ६.११६.४

√उच्चर उच्चरइ : (सं० उच्चरति>प्रा० उच्चरइ—बोलना) आ० प्रए०। बोलता है। 'यह दिन रैनि नाम उच्चरै।' वैरा० ४१

उच्चरत : वकृ०पुं०। बोलता-बोलते। 'जयति राम जय उच्चरत।' कवि० ६ ४७

उच्चरहिं, हीं : आ० प्रब०। बोलते हैं। 'वेद मंत्र मुनिबर उच्चरहीं।' मा० १.१०१.४

उच्छलत : वकृ० पुं० (सं० उच्छलत्—उद्+शलगतौ>प्रा० उच्छलंत)। उमग चलता, ऊर्ध्वगति लेता। 'उच्छलत सायर सकल।' कवि० ६ ४४

उछँग : उछंग। मा० १.६८.६

उछंग : सं० पुं० (सं० उत्संग>प्रा० उच्छंग)। गोद, क्रोड। 'लै उछंग सुंदर सिख दीन्ही।' मा० १.१०२.२

उछँगा : उछंग। मा० ६.११.५

उछरि : पूकृ० (सं० उच्छल्त्य>प्रा० उच्छलिअ>अ० उच्छलि)। उछल कर, ऊर्ध्वगति लेकर। विन० १६१.३

उछलि : उछरि। 'तुलसी उछलि सिंधु मेरु मसकतु है।' कवि० ६.१६ (सागर उछल कर मेरु को धो रहा है।)

उछाह, हा : सं० पुं० (सं० उत्साह>प्रा० उच्छाह)। उत्लास, वीरता का मनोभाव। हर्षातिरेक। 'मज्जहिं प्रात समेत उछाहा।' मा० १.४४ ८

उछाहु, हू : उछाह+कए। अद्वितीय उत्साह। 'सानुज राम बिबाहु उछाहू।' मा० १.४१.५

उजरउ : आ०-संभावना-प्रए० (सं० उज्जटतु>प्रा० उज्जडउ)। उजड़ जाय, चाहे तहस-नहस हो जाय। 'बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ।' मा० १.८०.७

उजरी : भू०कृ० स्त्री०। उजड़ी, निर्जन हो गई। 'उजरी परनकुटी।' गी० ३.१०.१

उजरें : उजड़ने पर, उजड़ जाने की दशा में। 'उजरें हरष बिषाद बसेरें।' मा० १.४.२

उजागर : वि० (सं० उज्जागर)। अत्यन्त जागरूक। (१) उज्ज्वल। 'पंडित, मूढ़, मलीन उजागर।' मा० १.२८.६ (२) सर्वोपरि देदीप्यमान। 'सो बितानु तिहुँ लोक उजागर।' मा० १.२८९.५ (३) उत्तम, विख्यात। 'राम जनमि जगु कीन्ह उजागर।' मा० २.२००.५ (४) प्रकट, स्पष्ट, सुव्यक्त। 'संतन गायो करन उजागर।' वैरा० ५२

उजागरि, री : उजागर+स्त्री०। उत्तम, प्रकाशमान। 'रूप सील उजागरी।' मा० १.३२५ छं०

√**उजार, उजारइ** : (सं० उच्चाटयति>प्रा० उज्जाडइ—उच्छिन्न करना, नष्ट भ्रष्ट करना) आ० प्रए०। उड़ाड़ रहा है। 'बन उजार जुबराज।' मा० ५.२८

उजारा : भू०कृ० पुं० (सं० उज्जाटित>प्रा० उज्जाडिअ)। नष्ट कर डाला। 'भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा।' मा० १.९७.१

उजारि : (१) सं० स्त्री० (सं० उज्जाट)। उजाड़, शून्य, बिना बस्ती का स्थान। 'होइहि सब उजारि ससारू।' मा० १.१७७.७ (२) पूकृ० (सं० उज्जाट्य> प्रा० उज्जाडिअ>अ० उज्जाडि)। उजाड़ कर, ध्वस्त करके। 'बन उजारि रावनहिं प्रबोधी। पुर दहि नाघेउ बहुरि पयोधी।' मा० ७.६७.५

उजारी : भू०कृ० स्त्री० (उज्जाटिता>प्रा० उज्जाडिआ)। नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। 'तेहिं असोक बाटिका उजारी।' मा० ५.१८.३

उजारे : भू०कृ० पुं० (सं० उज्जाटित>प्रा० उज्जाडिअ) बहु०। उजाड़ डाले, उखाड़ फेंके। 'उजारे बाग अंगद।' कवि० ५.३१

उजारो : भू०कृ०पुं०कए०। उजाड़ डाला। 'सुरलोकु उजारो।' कवि० ७.३

उजार्यो : उजारो। कवि० ५.५

उजिअरिया : उजिआरी। चाँदनी। 'डहकति है उजिअरिआ निसि नहिं घामु।' बर० ३७

उजिआर : सं० पुं० (सं० च्युतिकार>प्रा० जुइआर)। प्रकाश, उजाला। मा० १.२१

उजिआरीं : उजाली में, प्रकाश में। 'भए नखत जनु बिधु उजिआरीं।' मा० १.३१४.७

उजिआरी : उजिआर+स्त्री० । उजाली, ज्योति । चाँदनी । 'नृप सब नखत करहिं उजिआरी ।' मा० १.२३९.१

उजिआरे : वि० पुं० (सं० च्युतिकारक>प्रा० जुइआरय) । प्रकाशक । 'पुरुषसिंघ तिहु पुर उजिआरे ।' मा० १.२९२.१

उजेनी : सं० स्त्री० (सं० उज्जयिनी>प्रा० उज्जेणी=उज्जइणी) । उज्जैन नगरी । मा० ७.१०५.१

उज्जारि : उजारि । उजाड़ कर । कवि० ६.२१

√उठ, उठइ : (सं० उत्तिष्ठति>प्रा० उट्ठइ—बैठने से ऊपर गति लेना, उकसना, उकसना ऊर्ध्वगति करना) आ० प्रए० । उठता है । 'उठइ न कोटि भाँति बलु करहीं । मा० १.२५० ७

उठत : वकृ० पुं० । उठता, उठते मा० ७.५.७

उठति : वकृ० स्त्री० । (१) उठती, उभरती । 'उठति बयस मसि भीजत ।' गी० २.३७.२ (२) समाप्त होती हुई । 'हाट सी उठति जंबुकनि लूट्यो ।' कवि० ६.४६

उठन : भकृ० अव्यय । उठने को । 'चाहत उठन ।' मा० १.१९३.४

उठब : भकृ० पुं० । उठना । 'प्रेम मगन तेहि उटब न भावा ।' मा० ५.३३.१

उठहु : आ० मब० (सं० उत्तिष्ठथ, उत्तिष्टत>प्रा० उट्ठह>आ० उट्ठहु) । (१) उठते हो । 'उठहु न सुनि मम बच बिकलाई ।' मा० ६.६१.५ (२) उठो, सजग होओ । 'उठहु राम भंजहु भव चापा ।' मा० १.२५४.६

उठा : भूकृ०पुं० (सं० उत्थित>प्रा० उट्ठ) । मा० १.३३५

उठाइ : पूकृ० । उठाकर । 'लीन्हेसि जाइ उठाइ ।' मा० १.१७९

उठाई : (१) उठाइ । 'सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई ।' मा० १.१६५.५ (२) भू०कृ० स्त्री० । 'तेहिं अंगद कहुं लात उठाई ।' मा० ६.१८.५

उठाएँ : क्रि० वि० । उठाए हुए की मुद्रा में । 'भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ ।' मा० १.२८१.४

उठाए : भू०कृ० पुं० (सं० उत्थापति>प्रा० उट्ठाविअ) । 'तुरत उठाए करुना पुंजा ।' मा० १.१४८.८

उठाय : उठाइ । गी० १.७२.३

उठायो : भूकृ० पुं० कए० । उठाया । 'बिनु प्रयास हनुमान उठायो ।' मा० ६ ७७.१

√उठाव, उठावइ : (सं० उत्थापयति>प्रा० उट्ठावइ) आ० प्रए० (प्रेरणा) । उठाता है । 'पर्‌यों बीर बिकल उठाव दसमुख ।' मा० ६.८३ छं०

उठावन : भकृ० अव्यय । उठाने 'लगे उठावन टरइ न टारा ।' मा० १.२५१.१

उठावा : भू०कृ० पुं० (सं० उत्थापित>प्रा० उट्ठाविअ) । उठाया । 'जेहिं कौतुक सिवसैलु उठावा ।' मा० २.२९२.८

उठावौं : आ०उए० । उठाता हूँ, उठा सकता हूँ । 'कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं ।' मा० १.२५३.४

उठि : पूकृ० । उठकर । मा० १.१७१.१

उठिहौं : आ०भ०उए० । उठूंगा । 'उठिहौं न जनम भरि ।' विन० २६७

उठीं : भू०कृ० स्त्री० बहु० । मा० १.३५२.२

उठी : भू०कृ० स्त्री० । मा० २.२६

उठे : भू०कृ० पुं० बहु० । 'उठे लखनु ।' मा० १.२२६

उठेउ : भू०कृ० पुं० कए० । उठा । जग गया । 'उठेउ गँवहिं जेहिं जान न रानी ।' मा० १.१७२.३

उठैं : आ०प्रब० । उठते-ती-हैं । 'प्रेम बिबस उठैं गाइ कै ।' गी० १.७०.२

उठै : उठइ । उठे, उठ सके । उठ सकते हैं, उठता है । 'जगदाधार सेष किमि उठै ।' मा० ६.५४

उठौ : उठहु । उठो । 'प्रात भयो······उठौ प्रानप्यारे ।' गी० १.३७.१

उठ्यो : उठेउ । कवि० ५.६

√**उड़, उड़इ** : (सं० उड्डीयते>प्रा० उड्डुइ—उड़ना) आ०प्रए० । उड़ता है । 'उड़इ अबीर मनहुं अरुनारी ।' मा० १.१९५.५

उडगन : उडुगन । मा० १.३२.१२

उड़त : वकृ० पुं० । उड़ता, उड़ते । 'नभ उड़त बहु भुज मुंड ।' मा० ३.२० छं० १

उड़न : भकृ० अव्यय । उड़ते को । 'मनहुं उड़न चाहत अति चंचल ।' कृ० २२

√**उड़ा, उड़ाइ, ई** : उड़ । उड़ता है, उड़ती है । 'ऊपर धूरि उड़ाइ ।' मा० ६.५३ 'मसक फूंक मेरु उड़ाई ।' मा० २.२३२.३

उड़ाइ : पूकृ० । उड़कर । 'बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर ।' मा० ६.८६.१

उड़ाई : (१) उड़ाइ—दे० √उड़ा । (२) उड़ाइ । उड़कर । 'गगन गए रबि निकट उड़ाई ।' मा० ४.२८.२ (३) भू०कृ० स्त्री० । उड़ा दी । हनु० ३५

उड़ाउँ : आ०उए० । उड़ता हूं (था) । 'तहँ तहँ संग उड़ाउँ ।' मा० ७.७५

उड़ात : उड़त । उड़ता-उड़ते । मा० ७.२८.४

उड़ाना : (१) उड़न । उड़ना । 'बिनु पंखन्ह हम चहहिं उड़ाना ।' मा० १.७८.६ (२) भू०कृ०पुं० । उड़ा । 'गहिसि पूंछ कपि सहित उड़ाना ।' मा० ६.९५.५

उड़ानी : भू०कृ० स्त्री० । उड़ी । 'कछु कटु चाह उड़ानी ।' कृ० ४७

उड़ाने : उड़ाना । उड़ने को । 'जन चहत उड़ाने ।' मा० १.२९८.६

√**उड़ाव, उड़ावइ** : (√उड़+प्रेरणा—सं० उड्डाययति>प्रा० उड्डावइ) आ० प्रए० । उड़ाता है । 'मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई ।' मा० ७.१०६.१२

उड़ावन : भकृ० अव्यय । उड़ाने को । 'चहत उड़ावन फूंकि पहारू ।' मा० १.२७३.२

उड़ावनिहारी : वि० स्त्री० । उड़ाने वाली । 'संसय बिहग उड़ावनिहारी ।' मा० १.११४.१

उड़ावहिं, हीं : आ०प्रब० । उड़ाते हैं । 'बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं ।' मा० ३.२० छं० २

उड़ाहिं, हीं : आ०प्रब० । उड़ते हैं । 'मानहुं सपच्छ उड़ाहिं भूधर ।' मा० ६.७९ छं० 'जीवजंतु जे गगन उड़ाहीं ।' मा० ५.३.२

उड़ि : पूकृ० । उड़कर । मा० ६.८२ छं०

उडुगन : नक्षत्र समूह (सं० उडुगण) । मा० ६.१०३ छं०

उड़्यौ : भू०कृ०पुं०कए० । उड़ा, उड़ गया । गी० २.११.४

उत : अव्यय क्रि०वि० । उधर, उस ओर । मा० १.२०३

उतंग : वि० (सं० उत्तुङ्ग) । उन्नत, उच्च, विशाल । मा० ५.३.११

उतकंठा : सं० स्त्री० (सं० उत्कण्ठा) । इच्छा (जिसमें व्यक्ति कण्ठ ऊपर उठाकर प्रतीक्षा-सी करता है) । अभिलाष+आशा । 'सिय हियँ अति उतकंठा जानी ।' मा० १.२२९.३

उतकरष : सं०पुं० (सं० उत्कर्ष) । महिमा, अभ्युदय, प्रशस्ति । 'रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ ।' मा० ५.४०.३

उतपति : (१) सं०स्त्री० (सं० उत्पत्ति) । जन्म । मा० १.१६२ (२) सृष्टि । 'उतपति थिति लय ।' मा० २.२८२.५

उतपात : सं०पुं० (सं० उत्पात) । (१) अशुभसूचक प्राकृतिक व्यापार—उल्कापात, भूकम्प आदि । मा० ६.१०२ छं० (२) उपद्रव, उछलकूद, उद्दण्डता । 'कहेन्हि करिअ उतपात अरंभा ।' मा० ६.४४.६ (३) विघ्न-बाधा । 'तहँ उतपात न भेदै कोई ।' वैरा० ४६

उतपाती : वि०पुं० (सं० उत्पादिन्) । उपद्रवी । 'अब दुइ कपि आए उतपाती ।' मा० ६.४४.४

उतपातु : उतपात+कए । (१) अन्याय, अनुचित कार्य । 'सबु उतपातु भयउ जेहि लागी ।' मा० २.२०१.५ (२) अशुभ सूचक । मा० २.३०५.८

उतर : सं०पुं० (सं० उत्तर) । (१) उत्तर दिशा । 'लखन दीख पय उतर करारा ।' मा० २.१३३.२ (२) प्रश्न के लिए प्रतिवचन । मा० १.४१.२

✓**उतर, उतरइ** : (सं० उत्तरति>प्रा० उत्तरइ—पार होना) आ०प्रए० । उतरता है, उतरे, पार जाये । 'करहु सेतु उतरै कटकु ।' मा० ६.०.२ (२) सं० अवतरति—नीचे आना) ।

उतरअयन : सं०पुं० (सं० उत्तरायण) । मकर रेखा (राशि) से कर्क रेखा (राशि) पर्यन्त सूर्य गति के छः मास का समय । गी० १.५१.३

उतरत : वकृ० पुं० । उतरना, नीचे आता । 'चढ़त दसा यह उतरत जात निदान ।' बर० ५

उतरन : भकृ० अव्यय । उतरने, पार जाने । 'जिअत न सुरसि उतरन देऊँ ।' मा० २.१६०.२

उतरहिं : आ०प्रब० । उतरते हैं, पार जाते हैं । 'उतरहिं नर भवसिंधु अपारा ।' मा० २.१०१.२

उतराई : सं० स्त्री० । पार ले जाने का पारिश्रमिक । 'कहेउ कृपालु लेहु उतराई ।' मा० २.१०२.४

उतरि : पूकृ० । उतरकर । (१) नीचे आकर । 'उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा ।' मा० १.१५८.८ (२) पार जाकर । 'सुरसरि उतरि निवास प्रयागा ।' मा० ७.६५.३

उतरिबो : भकृ० पुं० कए० । उतरना, उतरना (चाहिये, होगा) । गी० ५.१४.२

उतरिहि : आ०-भ०-प्रए० । उतरेगा । 'उतरिहि कटकु, न मोरि बड़ाई ।' मा० ५.५६.७

उतरी : भू०कृ० स्त्री० । (१) उतर पड़ी (अभियान करके आ गई) । 'मनहुं करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ ।' मा० २.४६ (२) पार हुई । 'सेन जिमि उतरी सागर पार ।' मा० ६.६७ क

उतरु : उतर+कए० । (१) कोई-सा भी उत्तर । 'जाइ उतरु अब देहउँ काहा ।' मा० १.५४.२ (२) एक भी उत्तर । 'आली अति अनुचित, उतरु न दीजै ।' कृ० ४५

उतरे : भू०कृ० पुं० (सं० उत्तीर्ण>प्रा० उत्तरिअ) । (१) पार हुए । 'सेन सहित उतरे रघुबीरा ।' मा० ६.५.२ (२) आकर रुके । 'उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा ।' मा० १.२१४.४ (३) अवरोहण किया, नीचे आये । 'उतरे राम देवसरि देखी ।' मा० २.८७.२

उतरेउ : भू०कृ०पुं०कए० । (१) पड़ाव डाला । 'जल-थल तकि तकि उतरेउ लोगू ।' मा० २.२४५.८ (२) पार किया । मा० ६.६.५

उतरै : उतरइ । मा० ५.५६

उतर्‌यो : उतरेउ । मा० ६.४६

उतहि : उधर, उधर ही । गी० १.१०५.४

उताइल : वि० (सं० उत्तावत्>प्रा० उत्ताइल्ल) । (१) त्वरित, शीघ्रगतिक (जैसे तची भूमि पर पैर पड़ रहे हों) । 'तब पथ परत उताइल पाऊ ।' मा०२.२३४.६ (२) क्रि०वि० । हड़बड़ी में । 'चला उताइल ।' मा० ३.२९.२३

उताना : वि०पुं० (सं० उत्ताल)। मुँह (और पैर) ऊपर किये हुये। 'जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना।' मा० ६.४०.६

उतार : वि०पुं०। उतारा हुआ, उतार कर फेंका हुआ, उपेक्षित। नितान्त गर्हित। 'अपत उतार अपकार को अगार जग।' कवि० ७.६८

उतारति : वकृ० स्त्री०। उतारती। जा०मं० १५१

उतारहिं : आ०प्रब०। उतारती हैं। 'कनक थार आरती उतारहिं।' मा० ७.७४

उतारहि : आ०-आज्ञा-मए०। तू पार ले चल। 'होत बिलंबु उतारहि पारू।' मा० २.१०१.२

उतारि : पूकृ०। उतारकर। 'चूड़ामनि उतारि तब दयऊ।' मा० ५.२७.२

उतारिहौं : आ०भ०उए०। उतारूँगा। मा० २.१०० छं०

उतारी : (१) उतारि। 'सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ।' मा० ६.२५.३ (२) भूकृ० स्त्री०। 'बार बार आरती उतारी।' मा० ७.१२.६ (३) अङ्ग से पृथक् की। 'मनिमुदरी मन मुदित उतारी।' मा० २.१०२.३

उत्तम : वि० (सं०)। उच्च, सर्वश्रेष्ठ। 'उत्तम मध्यम नीच लघु।' मा० १.२४०

उत्तर : सं० (सं०) (१) दिशा विशेष। 'मा० ५.६०.५ (२) प्रश्न वाक्य के लिए प्रतिवाक्य। मा० २.१७६

उत्तरु : उत्तर+कए। प्रतिवचन। गी० ५.२१.४

उत्तानपाद : सं० पुं० (सं०)। मनुपुत्र=ध्रुव के पिता। मा० १.१४२.३

उत्पात : (दे० उतपात) विन० २५.४

उत्सव : सं०पुं (सं०)। समारोह, उल्लास का अवसर। मा० १.६१

√उथप, उथपइ : (सं० उत्थापयति>प्रा० उत्थप्पइ—उठाना, उखाड़ना, हटाना, उजाड़ना) आ०प्रए०। उखाड़ता है, उखाड़ सकता है। 'उथपै तेहि को जेहि रामु थपै।' कवि० ७.४७

उथपन : (१) वि०पुं०। उखाड़ने वाला। जा०मं० १७२ (२) सं०पुं० (सं० उत्थापन)। उखाड़ना। 'उथपे थपन, थपे उथपन पन।' विन० ३१.३

उथपनहार : वि०पुं०। उखाड़ने वाला। 'थपे उथपनहार।' हनु० २२

उथपे : भूकृ०पुं० (सं० उत्थापित>प्रा० उत्थप्पिय)। उजाड़े, उखाड़े हुए (को)। 'उथपे थपन थिर।' हनु० २२

उथपै : उथपइ। दे० √उथप।

उदउ : उदय+कए०। 'उदउ करहु जनि रबि।' मा० २.३७.३

उदघारी : भूकृ० स्त्री० (सं० उद्घाटिता)। उघाड़ी, खोल दी, प्रकट की। 'तव भुजबल महिमा उदघाटी।' मा० १.२३९.६

उदधि : सं०पुं० (सं०—उद=जल+धि)। समुद्र। मा० १.६.१

उदबस : सं०पुं० (सं० उद्वस) । उजाड़, निर्जन । 'उदबस अवध अनाथ सब ।' रा०प्र० ६ ६.३

उदबेगु : सं०पुं० (सं० उद्वेग)+कए० । व्याघात, बाधा, आतङ्क । मानसिक उचाट या क्षोभ । मा० २.१२६.२

उदभव : सं०पुं० (सं० उद्भव) । (१) प्रकट होना (२) अभ्युदय (३) जन्म, उत्पत्ति, सृष्टि का आविर्भाव । 'उदभव पालन प्रलय कहानी ।' मा० १.१६३.६

उदयँ : उदय से, उदय काल में । 'उदयँ तासु त्रिभुवन तम भागा ।' मा० १.२५६.८

उदय : सं०पुं० (सं०) । (१) अभ्युदय, उन्नति । 'दुष्ट उदय जग आने हेतू ।' मा० ७.१२१.३० (२) प्रकाश का आविर्भाव । मा० १.२३९.५ (३) पूर्व दिशा का कल्पित पर्वत विशेष जहां से सूर्योदय माना जाता है । 'उदय अस्त गिरि अरु कैलासू ।' मा० २.१३८.६

उदयगिरि : एक काल्पनिक पर्वत जहाँ सूर्योदय माना गया है=उदयाचल । मा० १.२५४

उदयसैल : उदयगिरि । गी० १.८४.४

उदर : सं०पुं० (सं०) । पेट । मा० १.१४७

उदरबृद्धि : पेट बढ़ने का रोग विशेष, प्लीहा आदि । मा० ७ १२१.३६

उदार (रा) : वि० (सं०) । (१) परोपकारी, दानी । 'जनु उदार गृह जाचक भीरा ।' मा० ३.३९.८ (२) श्रेष्ठ, उत्तम । 'सो संबाद उदार ।' मा० १.१२० (३) निष्ठावान्, सरल, निश्छल । 'बिनती कीन्हि उदार ।' मा० ७.१३ क (४) उचित, योग्य । 'लछिमन नाम उदार ।' मा० १.१९७ (५) दयालु । 'बिहँसे रामु उदार ।' मा० ६.३८ ख (६) सम्मान्य, ग्राह्य । 'मम संदेस उदार ।' मा० ५.५२ (७) महान्, विशाल । 'सहि सक न भार उदार अहिपति ।' मा० ५.३५ छं० २ (८) प्रेरक । 'अवतार उदार अपार गुन ।' मा० ६.१११.६

उदास : वि० (सं०) । खिन्न, अनासक्त, विरक्त, निराश । 'एक उदास भायँ सुनि रहहीं ।' मा० २.४८.६

उदासा : उदास । (१) विरक्त, उदासीन एवम् अनासक्त । 'तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा ।' मा० १.७९.५ (२) तटस्थ । जिमि जिमि तापसु कथइ उदासा ।' मा० १.१६२.५

उदासी : वि०पुं० (सं० उदासिन्) । (१) उदासीन, तटस्थ । 'जे हमार अरि मित्र उदासी ।' मा० २.३.२ (२) निष्काम, अनासक्त । 'पिता बचन तजि राजु उदासी ।' मा० १.४८.८ (३) निर्लेप, मायागुणातीत । 'सदा एकरस सहज उदासी ।' मा० ६ ११०.५

उदासीन : वि० (सं०) उदासी । 'उदासीन अरि मीत हित ।' मा० १.४

उदित : भू०कृ०वि० (सं०) । उगा हुआ, प्रकट, व्यक्त, प्रकाशित, उन्नत । 'उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग ।' मा० १.२५४

उदैं : उदयँ । कवि० २.२२

उदोत : सं०पुं० (सं० उद्योत) । प्रकाश । 'हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ।' बर० ६

उदौ : उदउ । दो० ३४४

उद्धरण : वि०पुं० । उद्धार करने वाला, तारने वाला । विन० ५२.२

उद्धरहुगे : आ०भपुं०-मब० । उद्धार करोगे, पापमुक्त करोगे । 'मोहि नाथ उद्धरहुगे ।' विन० २११.१

उद्धारन : वि०पुं० । उद्धार करने करने वाला, ऊर्ध्वगति देने वाला । 'गीध सबरी उद्धारन ।' कवि० ७.११४

उद्धृत्य : पूकृ० (सं०) । निकाल कर । विन० ५७.६

उद्भव : सं०पुं० (सं०) । उत्पत्ति, आविर्भाव । मा० १ श्लोक ५

उद्यम : सं०पुं० (सं०) । उद्योग, प्रयत्न (धन्धा) । 'जस सुराज खल उद्यम गयऊ ।' मा० ४.१५.३

उद्योत : सं०पुं० (सं०) । प्रकाश, ज्योति । विन० ५१.२

उधरी : भू०कृ०स्त्री० (सं० उद्धत>प्रा० उद्धरिआ) । ऊपर की गई, उठाकर बचा ली गई । 'अनायास उधरी तेहिं काला ।' मा० १.२९७.४

उधर्यो : भू०कृ०पुं० कए० । उद्धार करके बचाया, तारा । 'कर गहि उधर्यो ।' विन० २३९.३

उधारन : उद्धारन । गी० ६.९.५

उधारि : पूकृ० । उद्धार करके । 'रिषि नारि उधारि······सुकीर्ति लही ।' कवि० ७.१० मा० १.२२१

उधारिहैं : आ०भ०प्रब० । उद्धार करेंगे, पापमुक्त करेंगे । गी० २.४१.४

उधारी : भू०कृ० स्त्री० । उद्धार की, पापमुक्त की । 'भग मुनि बधू उधारी ।' गी० १.६३.४

उधारे : भू०कृ०पुं०ब० । मुक्त किये, ऊपर उठाये । 'नाम उधारे अमित खल ।' मा० १.२४

उधार्यो : भू०कृ०पुं० कए० । उद्धार किया, मुक्त किया । 'गीध उधार्यो ।' विन० २०२.५

उन : सर्वनाम-संब० । उन्हों (ने) । 'चित्रकेतु कर घर उन घाला ।' मा० १.७९.२

उनचास : संख्या (सं० ऊनपञ्चाशत्>प्रा० ऊणचास) । मा० ५.२५

उनमाय : पूकृ० (सं० उन्नमय्य)। ऊपर उठाकर, ऊँचा करके। 'कीर्तन उनमाय काय क्रोध कंदिनी।' गी० २.४३.२

उनमे, खुबु, षु : सं०पुं० कए० (सं० उन्मेषम्)। उदय, विकास। 'भ्रमर द्वै रबि किरन ल्याये करन जनु उनमेखु।' गी० ७.६.३

उनये : भू०कृ०पुं०। लदाव के कारण ऊपर से नीचे को झुके हुए। 'सो मनो उनये घन सावन के।' कवि० ६.३४

उनरत : वकृ०पुं० (सं० उन्नटत्>प्रा० उन्नडंत)। ऊपर को नाचता हुआ, उभरता हुआ, बढ़ता हुआ, विकास लेता हुआ। 'उनरत जोबनु देखि नृपति मन भावइ हो।' रा०न० ५

उनवनि : सं०स्त्री० (सं० उन्नमन>प्रा० उन्नवण)। ऊपर से घेर कर झुकना, छा जाना, उमड़ना। 'लाज गाज, उनवनि कुचालि कलि।' कृ० ६१

उनहि : उन को। 'जो कछु करहिं उनहि सब छाजा।' मा० ३.१७.१४

उनीद : सं० स्त्री० (सं० उन्निद्रा)। उचटी नींद, अधिक सोने की इच्छा, ऊँघा। 'लरिका अमित उनीद बस।' मा० १.३५५

उनीदे : भू०कृ०पुं० (सं० उन्निद्रित>प्रा० उन्निद्दीय)। उचटी नींद वाले, ऊँघे हुए, निद्रालस, सोकर उठे पर नींद से भरे हुए। 'आजु उनीदे आए मुरारी।' कृ०२२। बर० १६

उन्नत : वि० (सं०)। उत्तुङ्ग, ऊँचा। गी० ७.१७.४

उन्ह : (१) उन। 'सचिहुँ उन्ह कें मोह न माया।' मा० १.६७.३ (२) उन्होंने। 'छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा।' मा० ३.२२.१

उन्हहि : उनहि। उनको। 'तस फलु उन्हहि देउँ।' मा० २.३३.८

उपंग : सं०पुं०। वाद्यविशेष, मुरचंग (?)। गी० २.४७ १०.४८.३

उपकार : सं०पुं० (सं०)। दूसरे के प्रति हित कार्य। मा० ५.३२.६

उपकारा : उपकार। मा० १.८४.४

उपकारी : वि० (सं०)। स्वार्थरहित परहित करने वाला। मा० १.११२.६

उपकारु, रू : उपकार+कए०। अद्वितीय हितकार्य। 'बिधिबस भयउ विश्व उपकारू।' मा० २.३१०.६

उपखान : सं०पुं० (सं० उपाख्यान)। इतिष्टत्त, प्रासंगिक कथानक। दो० ३६८

उपखानु : उपखान+कए०। 'संगति न जाइ पाछिलो को उपखानु है।' कवि० ७.६४

उपखानो : उपखानु। कवि० ७.१०७

उपचार : सं०पुं० (सं०)। (१) सेवा, विनय, शिष्टता आदि। (२) उपाय। 'तब लगि सुखु सपनेहुं नहीं, किएँ कोटि उपचार।' मा० २.१०७ (३) चिकित्सा। 'कहहु कवन उपचार।' मा० २.१०८ (४) छल करने का अर्थ भी है—

'उपचरित' महाभारत, शान्ति मा० ३.३० ललकार, आह्वान । 'भरत हमहि उपचार न थोरा ।' मा० २.२२६.७ (५) उपाय, चिकित्सा, बिनती, प्रार्थना आदि का श्लिष्ट रूप—'नाना उपचार करि हरि ।' कवि० ५.२५

उपज : उपजइ । उत्पन्न होता है । 'उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिएँ ।' मा० ७.१११.१५

√**उपज, उपजाइ** : (सं० उत्पद्यते>प्रा० उप्पज्जइ—उत्पन्न होना, जन्म लेना, उगना) आ०प्रए० । उपजाता है । 'बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ।' मा० ४.१५ख उपजती है । 'मुनि प्रभु पद रति उपजइ ।' मा० ७.९६ क

उपजत : वकृ०पुं । उत्पन्न होता—होते । 'निमिष निमिष उपजत सुख नए । मा० ७ ८ ९

उपजहिं : आ०प्रब० । उत्पन्न होते हैं । 'उपजहिं एक संग जग माहीं ।' मा० १.५ ५

उपजा : भू०कृ०पुं० (सं० उत्पन्न>प्रा० उप्पाजिअ) । उत्पन्न हुआ । 'उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा ।' मा० १.५०-१

उपजाइ : पूकृ० उत्पन्न करके । 'बंदि बोले बिरद अकस उपजाइ कै ।' गी० १.८४.७

उपजाएँ : उत्पन्न किये (से) । 'बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ ।' मा० ३.२१.९

उपजाए : भू०कृ०पुं० बहु० (सं० उत्पादिताः>प्रा० उप्पज्जाविया) । उत्पन्न किये (हुए) 'भलेउ पोच सब बिधि उपजाए ।' मा० १.६.३

उपजायक : उपजाने का, उत्पन्न करने का । 'यह दूसन बिधि होत तोहि अब राम चरन बियोग उपजायक ।' गी० २.३.३

उपजाया : भू०कृ०पुं० । उत्पन्न किया । 'आदिसक्ति जेहिं जब उपजाया ।' मा० १.५२.४

√**उपजाव, उपजावइ** : (सं० उत्पादयति>प्रा० उप्पज्जावइ—उत्पन्न करना) । आ०प्रए० । उत्पन्न करता है । 'निज भ्रम तें रबिकर संभव सागर अति भय उपजावै ।' विन० १२२.४

उपजावसि : आ०मए० (सं० उत्पादयसि>प्रा० उप्पज्जावसि) । तू उत्पन्न करता है, तू उत्पन्न कर । 'अब जनि रिस उपजावसि मोही ।' मा० ६.३१.५

उपजावहिं : आ०प्रब० (सं० उत्पादयन्ति>प्रा० उप्पज्जावंति>अ० उप्पज्जावहिं) । उत्पन्न करते हैं । 'जय जय धुनि करि भय उपजावहिं ।' मा० ६ ९३.७

उपजावा : (१) उपजाया । 'जगु बिरंचि उपजावा जब तें ।' मा० १.३२०.५ (२) उपजावइ । उत्पन्न करता है । 'देखहु तात बसंत सुहावा । प्रिया हीन मोहि भय उपजावा ।' मा० ३.३७.१०

उपजावै : दे० √उपजाव ।

उपजि : पूक्रृ० । उत्पन्न हो (कर) । 'उपजि परी ममता मन मोरें ।' मा० १·१६४.४

उपजिहि : आ०भ०प्रए० । उत्पन्न होगा-होगी । 'राम भगति उपजिहि उर तोरें ।' मा० ७.१०६.१०

उपजिहु : आ०—भू०कृ०स्त्री०+मब० । उत्पन्न हुई हो । 'तीयरतन तुम उपजिहु भव रतनाकर ।' पा०मं० ४४

उपजी : भू०कृ०स्त्री० । उत्पन्न हुई । 'आदि सृष्टि उपजी ।' मा० १·१६२

उपजें : उत्पन्न होने पर-होने से । 'जिमि इन्द्रियगन उपजें ग्याना ।' मा० ४.१५·१२

उपजे : भू०कृ०पुं० (बहु०) । उत्पन्न हुए । 'उपजे जदपि पुलस्ति कुल ।' मा० १.१७६

उपजेउ : उपजा+कए० । 'उपजेउ सिव पद कमल सनेहू ।' मा० १.६८.५

उपजेहु : आ०—भू०कृ०पुं०+मब० । तुम उत्पन्न हुए हो । 'उपजेहु बंस अनल कुल घालक ।' मा० ६.२१·५

उपजै : उपजइ । (१) उत्पन्न हो, उत्पन्न हो सके । 'एहि बिधि उपजै लच्छि जब ।' मा० १.२४७ (२) उत्पन्न होता है । 'अति दारुन दुख उपजै ।' विन० ८६.२

उपदेस : सं०पुं० (सं० उपदेश) । शिक्षा, शिक्षा बचन, धर्मकथन । मा० १.८६

उपदेसत : वकृ०पुं० । उपदेश देता-देते । कवि० ७.७४

उपदेसन : भकृ० अव्यय । उपदेश देने । 'अब साधन उपदेसन आये ।' कृ० ५०

उपदेसहिं : आ०प्रब० । उपदेश करते हैं । 'कतहुं मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना ।' मा० १.७६.१

उपदेसहि : आ०प्रए० । उपदेश करे । 'तेहि को उपदेसहि ग्यान ।' विन० १९३.४ ('उपदेसइ' पाठ अधिक संगत है ।)

उपदेसा : (१) उपदेस । 'जस तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा ।' मा० १.१७१.३ (२) भू०कृ०पुं० । उपदेश किया, सिखाया । 'मनहुं जरठपनु अस उपदेसा ।' मा० २.२.७

उपदेसि : पूकृ० । उपदेश दे (कर) । 'तुम्हहि सकइ उपदेसि ।' मा० २.२८३

उपदेसिअ : आ०कवा०प्रए० । उपदेश दिया जाय, सिखाया जाय । 'धरम नीति उपदेसिअ ताही ।' मा० २.७२.७

उपदेसिबे : भकृ०पुं० । उपदेश देने, सिखाने । 'तजहि तुलसी समुझि यह उपदेसिबे की बानि ।' कृ० ५२

उपदेसिबो : भकृ०पुं०कए० । उपदेश देना, सिखाने योग्य । दो ० ४९८

उपदेसु, सू : उपदेस+कए० । अनन्य उपदेश । 'कासीं मुकुति हेतु उपदेसू ।' मा० १.११९.३

उपदेसे : भू०कृ०पुं० (ब०) । सिखाये, समझाये-बुझाये । 'मुनि बहुभाँति भरत उपदेसे ।' मा० २.१६९.८

उपदेसेउ : भू०कृ०पुं० कए० । सिखाया । 'सुंदर गौर सुबिप्रबर अस उपदेसेउ मोहि ।' मा० १.७२

उपदेसेन्हि : आ० भू०कृ०पुं०+प्रब० । उन्होंने उपदेश दिया । 'दच्छ सुतन्ह उपदेसेन्हि जाई ।' मा० १.७९.१

उपदेसेहु : आ०भू०कृ०पुं०+मब० । तुमने उपदेश किया । 'एहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा-सुख-पुंज ।' मा० ६.८०

उपद्रव : सं०पुं० (सं०) । (१) उत्पात, वेगयुक्त अयोग्य कार्यकलाप । 'करहिं उपद्रव असुर निकाया ।' मा० १.१८३.४ (२) बड़े रोग से उत्पन्न सहायक रोग । (३) बाधा, विघ्न । 'करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं ।' मा० १.२०६.४

उपधान : सं०पुं० (सं०) । उपबर्हण, तकिया । 'बिबिध बसन उपधान तुराईं ।' मा० २.९१.१

उपनिषद : सं०स्त्री० (सं० उपनिषद्) । अज्ञान-नाशक ब्रह्मविद्या, वेदान्त, वैदिक ज्ञान काण्ड सम्बन्धी ग्रन्थ विशेष; तत्त्व ज्ञान परक ग्रन्थ, उनसे उत्पन्न ब्रह्म-ज्ञान । मा० १.४६.२

उपपातक : सं०पुं० (सं०) । दे० पातक । ब्रह्महत्या, सुरापान्न, स्तेय (चोरी), गुरुपत्नी गमन तथा इन चारों का या किसी का संसर्ग—ये पाँच महापातक हैं । इनके तुल्य पातक हैं—स्त्री बाल वध, गोवध, गृहदाह आदि । इन दोनों कोटियों से न्यून पातक उपपातक हैं—गुरुजनों के आदेश का उल्लंघन, गुप्त षड्यन्त्र आदि । मा० २.१६७.७ तथा पूरा प्रसंग ।

उपबन : सं०पुं० (सं० उपवन) । उद्यान, बगीचा । मा० ४.२४

उपबरहन : सं०पुं० (सं० उपबर्हण) । उपधान, तकिया । मा० १.३५६.३

उपबास, सा : सं०पुं० (सं० उपवास) । अनशन व्रत । मा० १.७४.५

उपबियो : भू०कृ०पु०कए० । अङ्कुरति, प्रकट, उदित । 'सब को सुकृत उपबियो है ।' गी० १.१०.२

उपबीत : सं०पुं० (सं० उपवीत) । (१) जनेऊ, बायें कन्धे से ऊपर और दाहिनी बाँह के नीचे का द्विजातीय परिधेय विशेष । 'नयन तीनि उपबीति भुजंगा ।' मा० १.९२.३ (२) उपनयन-संस्कार । मा० १.३६१ छं०

उपमा : सं०स्त्री० (सं०) (१) सादृश्यपरक काव्यालंकार विशेष । मा० १.३७.३ (२) उपमान । 'सब उपमा कबि रहे जुठारी ।' मा० १.२३०.८

उपमाई : उपमा (सं० उपमाति) 'अति अभूत उपमाई।' वि० ६२.३

उपर : ऊपर। 'लंका सिखर उपर आगारा।' मा० ६.१०.७

उपरना : सं०पुं०। कन्धे पर डाला जाने वाला वस्त्र विशेष। 'पिअर उपरना कारवा-सोती।' मा० १.३२७.७

उपरागा : सं०पुं० (सं० उपराग)। सूर्य (चन्द्र) ग्रहण, राहुग्रास। 'भयउ परब बिनु रबि उपरागा।' मा० ६.१०२.६

उपराजा : भू०कृ०पुं०। उत्पन्न किया हुआ। 'अग-जगमग जग मम उपराजा।' मा० ७.६०.५

उपरि, उपरी : अव्यय (सं० उपरि)। ऊपर। विन० ५२.३

उपरी-उपरा : क्रि०वि०। एक-दूसरे के ऊपर होने की होड़ के साथ। 'रन मारि मची उपरी-उपरा।' कवि० ६.३४

उपरोहित : सं०पुं० (सं० पुरोहित)। पुरोधा, कर्मकाण्डी आचार्य। मा० १.१६९.४

उपरोहित्य : सं०पुं० (सं० पौराहित्य)। पुरोहिती। 'उपरोहित्य कर्म अतिमंदा।' मा० ७.४८.६

उपल : सं०पुं० (सं०)। (१) पत्थर। 'उपल किए जल जान जेहिं।' मा० १.२८ (२) ओला। 'उपल घन बरषन।' कृ० १८

उपवास, सा : निराहार व्रत (दे० उपवास)। मा० २.३२२; १.७४.५

उपसम : सं०पुं० (सं० उपशम)। (१) शान्ति, (२) धैर्य, (३) स्थिरता, (४) संयम (५) विषयों के क्षोभ का शमन। विन० १५२.५

उपस्थित : वि० (सं०)। समीप स्थित। 'मृत्यु उपस्थित आई।' विन० १२०.३

उपहार : सं०पुं० (सं०)। भेंट, उपायन। मा० १.३०५.६

उपहास : सं०पुं०+स्त्री० (सं०)। परिहास, आक्षेपात्मक हास्य, निन्दासूचक हँसी। 'खल करिहहिं उपहास।' मा० १.८ 'जगत मोरि उपहास कराई।' मा० १.१३६.३

उपहासी : उपहास। 'सब नृप भए जोगु उपहासी।' मा० १.२५१.३

उपहासू : उपहास+कए। 'रहे प्रान सहि जग उपहासू।' मा० २.१७९.६

उपही : वि० (सं० उत्पथिक, उपपथिक>प्रा०उप्पाहिअ, ऊपहिअ)। मार्गचारी, क्षण-परिचित, पूर्व परिचय से रहित। 'प्रानहुँ तें प्यारे प्रियतम उपही।' गी० २.३८.२

उपाइ : उपाय। 'तात सो कहहु उपाइ।' मा० ५.५९

उपाई : (१) उपाइ। 'तदपि एक मैं कहउँ उपाई।' मा० १.६६.१ (२) भू०कृ० स्त्री० (सं० उत्पादिता>प्रा० उप्पाइआ)। उत्पन्न की। 'जेहिं सृष्टि उपाई।' मा० १.१८६ छं०

उपाउ, ऊ : उपाय+कए०। एक भी उपाय, एक ही उपाय। 'लोकहुं बेद न आन उपाऊ।' मा० १.३.६

उपाएँ : उपाय से, उपायों से। 'सो श्रमु जाइ न कोटि उपाएँ।' मा० १.११.५

उपाए : भू०कृ०पुं०ब० (सं० उत्पादित>प्रा० उप्पाइय)। उत्पन्न किये। 'जे बिरंचि चिरलेप उपाए।' मा० २.३१७.८

उपाटी : पूकृ०। उखाड़ कर। 'लीन्ह एक तहिं सैल उपाटी।' मा० ६.७०.६

उपाधी : सं०स्त्री० (सं० उपाधि—पुं०)। (१) उपद्रव, छल प्रपञ्च, विघ्नबाधा। 'तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी।' मा० ७.११८.१० (२) संकट, अनुचित घटना। 'भै मोहि कारन सकल उपाधी।' मा० २.१८३.३ (३) भेद प्रतीति कराने वाला वस्तु धर्म जो अभेद में भी भेद लाता है तथा परस्पर भिन्न पदार्थों का पार्थक्य निर्धारित करता है। 'नाम रूप दुइ ईस उपाधी।' मा० १.२१.२

उपायँ : उपाय से। 'आन उपायँ न मिटिहि कलेसू।' मा० १.७२.२

उपाय : सं०पुं० (सं०)। (१) युक्ति (२) साधन (३) उपादान सामग्री (४) विधि या रीति। मा० १.१६८.८

उपायन : उपाय+संब०। उपायों (को)। विन० १३.८

उपाया : (१) उपाय। 'करहु किन कोटि उपाया।' मा० २.३३.५ (२) भू०कृ० पुं० (सं० उत्पादित>प्रा० उप्पाइय)। उत्पन्न किया हुआ। 'अखिल बिस्व यह मोर उपाया।' मा० ७.८७.७

उपारहिं : आ०प्रब० (सं० उत्पाटयन्ति>प्रा० उप्पाडंति>अ० उप्पाडहिं) उखाड़ते हैं। 'उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं।' मा० ६.८१.६

उपारा : भू०कृ०पुं० (सं० उत्पाटित>प्रा० उप्पाडिअ)। उखाड़ा, उखाड़ फेंका (२) उखाड़ लिया। 'अति बिसाल तरु एक उपारा।' मा० ५.१६.५

उपारि : पूकृ० (सं० उत्पाट्य>प्रा० उप्पाडिअ>अ० उप्पाडि)। उखाड़ कर। 'सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा।' मा० ६.५७.७

उपारिउँ : आ०—भूकृ० स्त्री०+उए०। मैंने उखाड़ी। 'जौं न उपारिउँ तब दस जीहा।' मा० ६.३४.७

उपारी : उपारि। 'आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारि।' मा० ४.३०.६

उपारू : आ०—आज्ञा—मए०। तू उखाड़ दे। 'सीस तोरि गहि भुजा उपारू।' मा० ६.५३.६

उपारे : भू०कृ०पुं० (सं० उत्पाटित>प्रा० उप्पाडिय)+बहु० । उखाड़े । 'खाएसि फल अरु बिटप उपारे ।' मा० ५.१८.४

उपास : सं०पु० (सं० उपवास) । अनशन । 'तीसरें उपास……।' कवि० ५.१२

उपासक : वि० (सं०) । आराधक, उपासना करने वाला । मा० ४.२६

उपासन : सं०पुं० (सं०) । आराधन, भक्ति, ज्ञाननिष्ठ । जिसमें आराध्य का सामीप्य बोध होता है । 'सगुन उपासन कहहु मुनीसा ।' मा० ७.१११.८

उपासना : सं०स्त्री० (सं०) । उपासन । आराधना, भक्तिनिष्ठा । एक प्रकार की साक्षात्कार या अपरोक्षानुभूति जिसमें आराध्य का सामीप्य बोध हो ।' कवि० ७.८४

उपासा : उपास । (१) (सं० उपवास)+(२) (सं० उपास) निराहार व्रत+ उपासना । 'समदम संजम नियम उपासा ।' मा० २.३२५.४

उपेच्छनीय : वि० (सं० उपेक्षणीय) । उपेक्षा-योग्य, अनुरक्ति तथा विरक्ति दोनों के अयोग्य । विन० १२४.२

उप्पम : उपमा । समानता । कवि० २.१

उफनात : वकृ०पुं० (सं० उत्फणत्—फणगतो) । उफनता, उबर चलता, ऊपर को बहता । 'आँच पय उफनात ।' गी० ७.३६.४

उबटि : पूकृ० (सं० उद्वर्त्य>प्रा० उव्वट्टिअ>अ० उव्वट्टि) । उबटन लगा कर । 'भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए ।' मा० १.३३६.३

उबटौं : आ०उए० । उबटन लगा दूं । 'उबटौं, न्हाहु गुहौं चोटिया बनि ।' कृ० १३

✓**उबर, उबरइ** : (सं० उद्वृणुते>प्रा० उव्वरइ—शेष रहना, बचना) आ०प्रए० । बचता है, बचा रह सके) । 'तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी ।' मा० ३.३८.१२

उबरन : भकृ० अव्यय । बचने । 'इन्ह के लिए खेलिबो छाँड्यो तऊ न उबरन पावहिं ।' कृ० ४

उबरसि : आ०मए० । तू बचता है, बच सकता है । 'राम बिरोध न उबरसि ।' मा० ५.५६

उबरा : भूकृ०पुं० । बचा । 'उबरा सो जनवासेहि आवा ।' मा० १.३२६.७

उबरिहिं : आ०प्रब० । बचेंगे 'ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान ।' मा० ४.६

उबरी : भू०कृ० स्त्री । बची हुई । 'उबरी जूठनि खाउँगो ।' गी० ५.३०.४

उबरे : भू०कृ०पुं०ब० । बचे रहे । 'जें राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ ।' मा० १.८५

उबर्‌यौ : भू०कृ०पुं०कए । बचा । 'नहिं जाचत कोउ उबर्‌यो ।' विन० ६१.३

उबार : सं०पुं० (सं० उद्वार>प्रा० उव्वार) । बचाव, बचत, रक्षा । 'और प्रकार उबार नहीं कहुं ।' गी० ६.१.८

उबारा : (१) उबार। 'नहिं निसिचर कुल केर उबारा।' मा० ५.३६.२ (२) भू०कृ०पुं०। बचाया। 'तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा।' मा० १.२७४.४

उबीठे : वि०पुं० (सं० उद्विष्ट>प्रा० उव्विट्ठ)। बार-बार सेवन से जिस पर विरक्त हो गयी हो। 'यह जानत हौं हृदय आपने सपने न अघाइ उबीठे।' विन० १३६.२

उबेने : वि०पुं०ब०। बिना पनही पहने हुए। 'तौ लौं उबेने पाय फिरत।' कवि० ७.१२५

उभयँ : दोनों ने, से, में। 'धरम सनेह उभयँ मति घेरी। मा० २.५५.३

उभय : संख्या (सं०)। दो, युगल। मा० १.६.१

उभै : उभय। कवि १.१

उभौ : संख्या (सं०)। दो, दोनों। 'भिरे उभौ बाली अति तर्जा।' मा० ४.८.२

✓**उमँग उमँगइ** : (सं० उन्मङ्गते—उद्+मगिगतौ>प्रा० उम्मंगइ—उमड़कर बहना, उफनना, उमड़ना) आ०प्रए०। उमड़ता है। 'भूपति पुन्य पयोधिउमँग।' गी० १.६.४

उमँगि : पूकृ०। उमड़कर। गी० १.१.११

उमंग : सं०स्त्री० (सं० उन्मङ्गा>प्रा० उम्मंग)। उल्लास, उत्तरङ्ग गति। कवि० २.१५

उमग : (१) सं० स्त्री० (सं० उन्मार्ग)। मार्ग लांघकर बहना, उमड़ना तट लांघ कर गमन, उच्छलन। 'सो सुभ उमग सुखद सब काहू।' मा० १.४१.५ (२) उमगइ। उमड़ता है। 'तन मन बचन उमग अनुरागा।' मा० २.३१७.५

✓**उमग उमइ** : (सं० उन्मार्गति>प्रा० उम्मगइ—मार्ग लांघकर बहना, उमड़ना) आ०प्रए०। उमड़ता है। 'महि उमग जनु अनुराग।' गी० ७.१८.३

उमगत : वकृ०पुं०। उमड़ता, उफनता। 'जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा।' मा० १.८६.८

उमगति : वकृ स्त्री०। उफनती। 'अंगनि उमगति सुंदरताई।' गी० १.५५.२

उमगहिं : आ०प्रब०। उफनते हैं। 'उछाह उमगहिं दस दिसा।' पा० मं० १५ छं०

उमगा : भकृ० पुं०। उमड़ा, उफना। 'उर उमगा अनुरागु।' मा० २.२५५

उमगि : पूकृ०। उफनकर, उन्मार्ग होकर। 'नदीं उमगि अंबुधि कहुं धाईं।' मा० १.८५.२

उमगी : भू०कृ० स्त्री०। उफन चली। मा० १.३५६

उमगे : भू०कृ०पुं० बहु०। उमड़ चले, उफने। 'उमगे भरत बिलोचन बारी।' मा० २.२३८.१

उमगेउ : भू०कृ०कए० । उफन चला । 'उमगेउ जनु जनवास ।' मा० १.३२७

उमग्यो : उमगेउ । गी० ३.१०.४

उमरि : सं० स्त्री० (अरबी-उम्र) । जीवन, आयुर्दाय । कवि० ७.७६

उमहि : (१) उमा को । 'मिलिमि उमहि तस संसय नाहीं ।' मा० १.६६.२

(२) उमा से । 'उमहि कही बृषकेतु ।' मा० १.१५२

उमा : सं० स्त्री० (सं०) । पार्वती । मा० १.४७

उमाकंत : (सं० उमाकान्त) । शिवजी ।

उमाकृत : वि० (सं०) । उमा द्वारा बनाया हुआ । मा० १.५३.१

उमानाथ : (सं०) शिव । मा० ७.१०८.१३

उमापति : (सं०) शिव । मा० ६.२५.२

उमाबर : शिव । कृ० २१

उमेस : (सं० उमेश) । उमापति, शिव । मा० १.१५.७

उयउ : भू०कृ०पुं०कए० (सं उदित>प्रा० उइओ>अ० उद्यउ) । उदित हुआ । प्राची दिसि ससि उदउ सुहावा ।' मा० १.२३७.७

उर : सं०पुं० (सं० उरस्) । हृदय । मा० २.५०.१

उरग : सं०पुं० (सं० उरसा गच्छन्तीति उरगाः) । सर्प । मा० ३.२४.७

उरगा : उरग । मा० ६.६२.१

उरगाद : सं०पुं० (सं० उरगान् अत्तीति उरगादः) । गरुड़ । मा० ३.११.६

उरगाय : उरुगाय । विष्णु । गी० २.२८.४

उरगारि : सं०पुं० (सं०) । सर्प शत्रु=गरुड़ । ७.११६ क

उरगारी : उरगारि । मा० ३.१७.५

उरन्हि : उर+संब० । हृदयों (पर) । 'उरन्हि तुलसिका माल ।' मा० १.२४३

उरभूषन : वक्ष पर धारण किए जाने वाले आभरण । मा० १.३२७.६

उरमिला : सं० स्त्री० (सं० उर्मिला) । सीता की अनुजा=लक्ष्मण की पत्नी । मा० १.३२५ छं० २

उरसाल : सं०पुं० (सं० उरःशल्य>प्रा० उरसल्ल) । हृदय में चुभने वाली बात । 'सो बढ़ैया उरसाल को ।' कवि० ७.१३५

उरसि : (सं० पद) । हृदय पर, हृदय में । मा० २ श्लोक १

उरहनो : उराहनो । 'देन उरहनो आवहिं ।' कृ० ४

उराउ : सं०पुं०कए० । बचाव, रक्षा (धैर्य) । 'तुलसी डराउ होत राम को सुभाउ सुनि ।' कवि० ७.१५

उरालय : वि०पुं० । हृदय में जिसका आलय है, मनोनिवासी । अन्तर्यामी । मा० ७.३४.७

उराहनो : सं०पुं० (सं० उपालमन>प्रा० उआलहण)+कए०। उपालम्भ, शिकायत, गिला। 'पाइ कै उराहनो, उराहनो न दीजो मोहि।' कवि० १.१६५

उरिन : वि० (सं० उऋण=अऋण>प्रा० उरिण)। ऋण मुक्त। मा० १.२७५.८, २७६.२

उरु : सं०पुं० (सं० अरु)। (१) घुटनों के ऊपर चरणों का भाग। गी० ७.१७.५ (२) विस्तृत, दीर्घ, विशाल (सं०)।

उरुगाय : सं०पुं०(सं०)। विस्तृत (व्यापक) गति वाला=विष्णु। 'जयति जय उरुगाय।' विन० २२०.११

उर्बि : उर्वी। कवि० १.११

उर्बिजा : पृथ्वी-पुत्री=सीता जी। मा० ३.४ छं०

उर्बिधर : सं०पुं० (सं० उर्वीधर)। भूधर=पर्वत। विन० १५.५

उर्बिपति : पृथ्वी का स्वामी=राजा। विन० ५६.९

उर्वी : सं०स्त्री० (सं०)। पृथ्वी।

उर्वीश : पृथ्वी का स्वामी=राजा। मा० ६ श्लोक १

उलटउँ : आ०उए०। उलटे देता हूं। 'उलटउँ महि जहँ लगि तव राजू।' मा० १.२७०.४

उलटा : वि०पुं० (प्रा० उल्लट्ट)। प्रतीप। मा० १.१९.५

उलटि : पू०कृ०। उलटकर। (१) 'उलटि पलटि लंका सब जारी।' मा० ५.२६.८ (२) उलटा होकर, प्रतिकूल होकर। 'करइत उलटि परइ सुर-राया।' मा० २.२१८.२

उलटी : भू०कृ०स्त्री०। विपरीत, प्रतिकूल। 'उलटी रीति प्रीति।' विन० २२४.२

उलटे : उलटा+बहु०। मा० २.११९.२

उलटने : उलटा+कए०। गी० ५.४०.३

उलदै : आ०प्रए० (प्रा०उल्लद्दइ)। उँडेलता है। 'बारिधारा उलदै जलदु जौन सावनो।' कवि० ५.८

उलीचा : भू०कृ०पुं०। हाथ से (पानी) डाला। 'मीन जिअन निति बारि उलीचा।' मा० २.१६१.८

उलीचे : उलीचने से, हाथ या पात्र से पानी डालने से। 'सागर सीप कि जाहिं उलीचे।' मा० २.२८३.४

उलूक : सं०पुं० (सं०)। उल्लू पक्षी। मा० १.२५५.२

उलूकहि : उल्लू को, घुग्घू पक्षी को। 'जया उलूकहि तम पर नेहा।' मा० ५.४५.८

उवन : सं०पुं० (सं० उदयन>प्रा० उअण)। उदय करना। 'दंड द्वै (हे हैं रघु आदित उवन को।' कवि० ६.७

उष्नकाल : सं०पुं० (सं० उष्णकाल)। ग्रीष्म ऋतु। दो० ३१०

उसास, सा : सं०पुं०स्त्री० (सं० उच्छ्वास>प्रा० ऊसास)। ऊंची साँस, आह। 'सिरु धुनि लीन्हि उसास असि।' मा० २.३०, २.५१.५

उसासु, सू : उसास+कए०। 'ऊतरु देइ च, लेइ उसासू।' मा० २.१३.६

उसीले : वि०पुं०ब० (सं० उच्छील)। उच्च शील वाला, कृतज्ञ, उपकारी। साहेब कहूं न राम से, तो से न उसीले।' विन० ३२.१

उहाँ : क्रि०वि०। वहाँ। 'इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मा०' १.२०१.७

उहारु : सं०पुं०कए० (सं० अवहारः, अवहारम्>प्रा० ओहारो, ओहारं>अ० ओहारु)। ऊपर का आवरण (खो पालकी आदि पर पड़ा होता है)। 'नारि उहारु उघारि दुलहिनिन्ह देखहिं।' जा०मं० १८८

ऊ

ऊँच : वि०पुं० (सं० उच्च)। ऊर्ध्व, महान्, उत्तम। मा० १.६.६

ऊँचि, ची : वि० स्त्री०। 'मति अति नीचि ऊँचि रुचि आछी।' मा० १.८.७

ऊँचें : उच्च स्थान पर (या से)। 'तब केवट ऊँचें चढ़ि धाई।' मा० २.२३७.१

ऊँचो : ऊँच+कए०। 'ऊँचो कुल केहि काम को।' वैरा० ३८

ऊँट : सं०पुं० (सं० उष्ट्र>प्रा० उट्ट)। पशु विशेष। मा० १.३००.६

ऊ : अव्यय। भी। 'नटनागर मनि नंदललाऊ। कृ० १२

ऊक : सं०स्त्री० (सं० उल्का>प्रा० उक्का)। पुच्छल, तारा, टूटता-गिरता नक्षत्र। 'ऊकपातदिकदाह दिन।' रा०प्र० ५.६.३

ऊख : सं०स्त्री० (सं० इक्षु>प्रा० उच्छू=इक्खु)। (१) ईख। वैरा० ३९ (२) वि०पुं० (सं० उख्य—उख दाहे>प्रा० उक्ख)। दग्ध। 'उष्न काल अरु देह खिन मग पंथी तन ऊख।' दो० ३१०

ऊखमय : ऊख से बना हुआ (खाँड)। 'अग्नमय खाँड, न ऊखमय।' मा० १.२७५

ऊगो, ग्यो : उग्यो। 'ऊगो आतम भानु।' वैरा० ३३

ऊतर : उत्तर। गी० ५.३२.२

ऊतरु : उतरु। एक भी उत्तर। 'ऊतरु देइ न, लेइ उसासू।' मा० २.१३.६
ऊतरे : उतरे। पहने कर फेंके-पुराने। 'तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौं।' गी० ५.३०.४
ऊधो, धौ : सं०पुं० (सं० उद्धव)। मथुरा में कृष्ण के सखा। कृ० ४६
ऊना : वि०पुं० (सं० ऊन) न्यून, अल्प, छोटा। 'अस कस कहहु मानि मन ऊना।' मा० २.२१.४
ऊपजै : उपजइ। 'दुख ते दुख नहिं ऊपजौ।' वैरा० ३०
ऊपर : अव्यय (सं० उपरि>प्रा० उप्परि)। मा० ५.३०.२
ऊब : सं०स्त्री०। उद्वेग, मानसिक क्लान्ति, उदासी। 'सब की सहत, उर अंतर न ऊब हौ।' कवि० ७.१०८
ऊबर : वि० (१) उबार। रक्षा। (२) (सं० उर्वर>प्रा० उव्वर)। अधिक, 'सफल। 'सो सब बिधि ऊबर करै, अपराध बिसारी।' विन० ३४.४
√ऊबर, ऊबरइ : (√ऊबर)। बच जाय, बच सकता है। 'कहु तुलसी सो ऊबरै जेहि राख राम राजिवनयन।' कवि० ७.११७
ऊमरि : सं०स्त्री० (सं० उदुम्बरि>प्रा० उंबरि)। गूलर वृक्ष। 'खमरि तरु बिसाल तब माया।' मा० ३.१३.६
ऊर्ध : (सं० ऊर्ध्व)। ऊपर। कवि० ५.१७
ऊध्वरेता वि०पुं० (सं० ऊर्ध्वरेतस्)। जिसका रेतस् (वीर्य) ऊर्ध्व हो—नीच न आये; वीर्यपात रहित=ब्रह्मचारी। विन० २६.३
ऊषर : सं०पुं० (सं०) अनुर्वर भूमि जिसकी दूषित मिट्टी में वनस्पति नहीं उगते। 'ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा।' मा० ४.१५.१०
ऊसर : ऊषर। 'ऊसर बीज बएँ फल जथा।' मा० ५.५८.४
ऊसरो : ऊसर भी। 'सुखेत होत ऊसरो।' कवि० ७.१६

ऋ

ऋक्ष : सं०पुं० (सं०)। रीछ, भालू। विन० २५.६
ऋचा : सं०स्त्री० (सं० ऋच्)। वेद मन्त्र। गी० १.२३.५
ऋतु : सं० (सं०)। वर्ष के छठे भाग के दोमास का समय—(१) बसन्त=चैत्र-वैशाख; (२) ग्रीष्म=ज्येष्ठ-आषाढ; (३) वर्षा=श्रावण-भाद्रपद;

(४) शरद्=आश्विन-कार्तिक; (५) हेमन्त=मार्गशीर्ष-पौष; (६) शिशिर =माघ-फाल्गुन। ये मास सूर्यतिथि से लिये जाते हैं।

ऋतुनाथ : बसन्त। गी० २.२४.२

ऋतुपति : बसन्त। गी० १.६५.३

ऋद्धि : सं०स्त्री० (सं०)। (१) वृद्धि (२) उन्नति, अभ्युदय (३) सफलता (४) महत्ता (५) उत्तमता, उदात्तता, उदरता (६) पूर्णता, समग्रता, श्रेष्ठता (७) अप्राकृत शक्ति (८) उपलब्धि (९) सम्पत्ति (१०) कुबेर की पत्नी (११) पार्वती (१२) लक्ष्मी। रा०न० २०

ऋषयनि : (दे० रिषय)। ऋषियों ने। 'जे पूजी कौसिक मख ऋषयनि।' गी० ७.१३.४

ऋषि : सं०पुं० (सं०)। वेद-मन्त्रों का द्रष्टा, मन्त्ररहस्य ज्ञाता। गी० १.६०.४

ऋषिन : ऋषि+संब० (सं० ऋषीणाम्)। ऋषियों। 'ऋषिन के आश्रम सराहैं।' गी० २.४५ ४

ए

ए : सर्वनाम—कब (सं० एते>प्रा० एए>अ० एइ)। ये। 'ए प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी।' मा० १.२१६.७

एइ, एई : ये ही। केवल ये। 'इन्ह से एइ कहैं।' मा० १.३११ छं०

एउ, एऊ : ये भी। 'एउ देखिहैं पिनाकु।' गी० १.६८.४

एक : (१) संख्या (सं०)। 'एक कलप एहि बिधि अवतारा।' मा० १ १२३.४ (२) सर्वनाम (सं०)। कुछ कतिपय। 'एक कहहिं भल भूप न कीन्हा।' मा० २ ४८.२ (३) वि० (सं०)। श्रेष्ठ। 'परम बिचित्र एक तें एका।' मा० १.१२२.२ (४ वि०) (सं०)। अल्प। 'कथा कछु एक है कही।' मा० ५.३ छं० ३ (५) वि० (सं०)। अनन्य, एकमात्र। 'राम नाम गति एक।' दो० ३७ (६) वि० (सं०)। अद्वितीय, सर्वोत्तम—निज जननी के एक कुमार।

एकंत, ता : एकान्त। 'सदा रहैं एहि भाँति एकता।' वैरा० ४७

एकइ : एक ही। 'एकइ उर बस दुसह दवारी।' मा० २.१८४.६

एकउ : एक ही। 'जदपि कबित रस एकउ नाहीं।' मा० १.१०.७

एकछत्र : वि० (सं० एकच्छत्र)। (राजा या राज्य) जिसके प्रति दूसरा छत्रधारी राजा न हो। 'एकछत्र रिपुहीन महि।' मा० १.१६४

एकटक : वि०+क्रि०वि० (सं० एकतर्क>प्रा० एक्कतक्क)। एक ही दृष्टि से ताकते रहने वाला, अविराम ताकने वाला, अपलक। टकटकी बाँधकर। 'एकटक रहे नयन-पट रोकी।' मा० १.१.४८ (दे० तक)

एक ठोरी, ठौरी : (दे० ठोरी, ठौरी) एक स्थान पर, एकत्र।

एकतनु : जिसका एक ही शरीर हो—दुबारा जन्म लेकर शरीर धारण न किया हो। मा० १.१६२

एकतीस, सा : संख्या (सं० एकत्रिंशत्>प्रा० एक्कतीसा)। मा० १.३४.४

एकनयन : वि० (सं०)। एकाक्ष, काना। मा० ३.२.१४

एकनारि व्रत : एक ही पत्नी के प्रति निष्ठा। मा० ७.२२.८

एकन्ह : एक+सं०ब०। कुछ लोगों (को)। 'एकन्ह एक बोलि सिख देहीं।' मा० २.११४.६

एकपर : वि० (सं०)। एकमात्र प्रधान। विन० ५७.४

एकरस : वि०+क्रि०वि० (सं०)। (१) अपरिवर्तित, निर्विकार। 'सदा एकरस सहज उदासी।' मा० ६.११०.५ (२) एकभाव से, निरन्तर समान। 'तब तें बिरह रबि उदित एकरस।' कृ० २९

एकरूप : वि० (सं०)। (१) सदृश रूप वाले। 'एकरूप तुम्ह भ्राता दोऊ।' मा० ४.८.५ (२) सदा एक ही रहने वाला, अपरिवर्तित, निर्विकार। विन० ६०.५

एकहिं, हीं : एक ही। मा० २.१८३.२

एकहु : एक भी। 'प्रभु के एकहु काज न आयउँ।' मा० ६.६०.३

एका : एक। मा० १.१२२.२

एकांत : क्रि०वि० (सं०)। जहाँ एक (अपेक्षित व्यक्ति) के अतिरिक्त अन्य कोई न हो। 'पतिहि एकांत पाइ कह मैना।' मा० १.७१.२

एकाकिन्ह : एकाकी+संब० (सं० एकाकिनाम्)। एकाकियों, अकेलों। 'सहज एकाकिन्ह के भवन।' मा० १.७९

एकाकी : वि० (सं०)। अकेला (अद्वितीय, असहाय)। मा० २.२२८.४

एकादसी : वि०+सं०स्त्री० (सं० एकादसी) (१) ग्यारहवीं (२) पक्ष की ग्यारहवीं तिथि। विन० २०३.१२

एकु, एकू : (१) एक+कए०। 'एकु दारुगत देखिअ एकू।' मा० १.२३.४ (२) क्रि०वि०। प्रथमत:, पहले तो। 'एक मंद मैं मोहबस।' मा० ४.२

एकै : (१) एकइ। एक ही। दो० ३१८ (२) एक+हि। एक से, एक को। 'एकै एक वहत।' गी० १.८८.४

एकौ : एकउ। एक भी। 'सो तौ कछु एकौ न चित्त ठई।' कृ० ३६

एतना : वि०पुं० (सं० एत्सकत्>प्रा० एत्तुल्ल)। इतना। मा० २.१६२.४

एतनिअ : इतनी ही। 'जनु एतनिअ बिरंचि करतूती।' मा० २.१.५

एतनेइ : इतना ही, इतने ही। 'एतनेइ कहेहु भरत सन जाई।' २.१५७.३

एतनेहि : इतने ही। मा० ५.१५.७

एतनोई : इतना ही। 'राज धरम सरबसु एतनोई।' मा० २.३१६.१

एतादृस : वि० (सं० एतादृश)। ऐसा। मा० २.६८.५

एती : वि०स्त्री० (सं० इयती>प्रा० एत्तिई)। इतनी। 'एती गलानि न गलतो।' गी० ५.१३.५

एते : इते। इतने। दो० ५७३

एतेहुं, हु : (१) इतने······भी। 'एतेहु पर करिहहिं जे असंका।' मा० १.१२.८ (२) इतने में भी। 'जो एतेहुं दुख मोहि सिआवा।' मा० २.१६५.८

एतो : वि०पुं०कए० (सं० एतावत्>प्रा० एत्तिओ)। इतना। कवि० ७.७२

एव : निश्चयार्थक अव्यय (सं०)। ही। 'स्वारथ साधन एव।' दो० ३४६

एवमस्तु : अव्यय (सं०—एवम्+अस्तु)। ऐसा हो (आशीर्वाद जिसमें वर-याचन को मान्य किया जाता है)। मा० १.१६५

एह : सर्वनाम (सं० एषः>प्रा० एसो>अ० एह=एहा, एहु, एहो)। पुं०कए०। यह। 'सिखवन एह।' विन० १६०.१

एहा : एह। 'सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा।' मा० १.८०.५

एहिं : सर्वनाम पद (सं० एतास्मिन्>प्रा० एअहिं)। इसमें, इससे। 'मैं एहिं बेष न आउब काऊ।' मा० १.१६६.३ एहिं बिआह अतिहित सबही का।' मा० १.२२३.१

एहि : 'एइ' का रूपान्तर। इस। 'राम प्रताप प्रगट एहि नाहीं।' मा० १.१०.७ 'एहि बिधि जलपत भयउ बिहाना।' मा० ६.७२.६

एहीं : इसीसे, इसी में। 'कछु दिन जाइ रहउँ मिस एहीं।' मा० १.६१.६

एही : इसी। 'एही भाँति चलेउ हनुमाना।' मा० ५.१.८

एहु : एह। यह। 'तुम्हहि उचित मत एहु।' मा० २.२०७

एहूं : एह+हूँ। यह भी, इस भी। 'एहूं मिस देखौं पद जाई।' मा० १.२०६.७

एहू : एहु। 'तिन्ह कहँ सुखद हासरस एहू।' मा० १.६.२

ऐ

ऐक : सं०पुं० (सं० ऐक्य) । (१) एकत्व, एकरूपता, अत्यन्त समानता । 'कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए ।' मा० २.१२०.६ (२) मेल, सामञ्जस्य, संगति । 'सकहिं न सेइ ऐक नहिं आवा ।' मा० २.२७६.४

ऐन : अयन । घर, भाण्डार । 'बिहसे करुना ऐन ।' मा० २.१००

ऐनी : ऐन+स्त्री० । खानि । 'सीय सुमंगल ऐनी ।' गी० १.८१.२

ऐपन : सं०पुं० (प्रा० आइप्पण) । हल्दी और चावल के पीठे का मिश्रित द्रव । दो० ४५४

ऐश्वर्य : सं०पुं० (सं०) । (१) सम्पत्ति, वैभव (२) ईश्वरत्व (३) श्रेष्ठता (४) ईश्वरीय गुणकर्म व्यापकत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्व, सत्य संकल्प आदि कल्याण गुण । विन० ६१.६

ऐसा : वि०पुं० (सं० ईदृश>प्रा० एरिस>अ० अइस) । मा० ५.२६.५

ऐसि : ऐसी । मा० ६.६६.२

ऐसिअ : (१) ऐसी ही । 'ऐसिअ प्रस्न बिहंगपति कीन्हि ।' मा० ७.५५ (२) ऐसी । कवि० ६.२१

ऐसिउ : ऐसी भी । 'ऐसिउ पीर बिहसि तेहिं गोई ।' मा० २.२७.५

ऐसिहु : ऐसिउ । विन० १३६.८

ऐसी : वि०स्त्री० (सं० ईदृशी>प्रा० एरिसी>अ० अदृसी) । कवि० ७.११

ऐसें : क्रि०वि० । इस प्रकार से । 'जासु बियोग बिकल पसु ऐसें ।' मा० २.१००.१

ऐसे : ऐसा+बहु० । इस प्रकार के । मा० २.१११.७

ऐसेइ : (१) ऐसा ही । 'ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी ।' मा० १.८६.५ (२) ऐसे ही । 'ऐसेइ संसय कीन्हि भवानी ।' मा० १.४७.८

ऐसेउ, ऊ : ऐसे भी । 'ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई ।' मा० १.१४४.७

ऐसेहिं : इसी प्रकार । मा० १.२३९.३

ऐसेहुं, हु, हुं, हू : ऐसे भी, ऐसे में भी । 'ऐसेहुं पति कर किएं अपमानाए मा० ३.५.६, 'ऐसेहुं दुख जो राख मम प्राना ।' मा० ६.६९.१०

ऐसो : ऐसा+कए । 'नहिं जानत ऐसो को है ।' कृ० ३५

ऐसोई : ऐसा ही । कवि० ७.७७

ऐहउँ : आ०भ०उए० । आऊंगा । 'ऐहउँ बेगिहि होइ रजाई ।' मा० २.४६.३

ऐहहिं : ऐहैं । आएँगे । 'ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता ।' मा० २.३१.७

ऐहहु : आ०भ०मब० । आओगे-गी । 'जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं ।' मा० १.५३.२

ऐहैं : आ०भ०प्रब० । आएँगे । 'ऐहैं सुत देखुवार कालि तेरे ।' कृ० १३

ऐहै : आ०भ०प्रए० । आएगा । गी० ५.३४.२

ऐहौं : ऐहउँ । 'ऐहौं बेगि सुनहु दुति दामिन्ति ।' गी० २.५.३

ऐहौ : ऐहहु । 'जो रघुबीर न ऐहौ ।' गी० २.७६.४

ओ

ओंकार : सं०पुं० (सं०) । ॐ ध्वनि जो ब्रह्म का वाचक कहा गया है, मूलनाद, नादब्रह्म, शब्दब्रह्म, अनाहतनाद (परब्रह्म ही ओंकार का मूल कारण है जिससे शब्दजगत् और अर्थजगत् की सृष्टि होती है अतः ब्रह्म ओंकार रूप तथा ओंकार मूल भी होता है । 'निराकारमों का मूल तुरीय ।' मा० ७.१०८.३

ओऊ : वे भी । 'सुन्दर सुत जनमत मैं ओऊ ।' मा० १.१९५.१

ओक : सं०पुं० (सं० ओकस्) । घर । 'ओक की नीव परी हरिलोका ।' कवि० ७.१४५

ओघ : सं०पुं०(सं०) । प्रवाह, समूह । 'सिय निंदक अघ ओघ बसाए ।' मा० १.१६.३

ओझ : सं०पुं० (सं० ऊपाध्याय>प्रा० ओज्झाअ) । ओझा, पण्डित, पुरोहित । 'तुलसी रामहि परिहरें निपट हानि सुनु ओझ ।' दो० ६८

ओझरी : सं०स्त्री० । पेट के भीतर आमाशय की थैली या आंत । कवि० ६.५०

ओट, रा : सं०स्त्री० (सं० अवकटिका) । पर्दा, आवरण, आड़ । 'बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा ।' मा० १.२८०.७ 'लता ओट तव साखिन्ह लखाए ।' मा० १.२३२.३ (२) सहारा, अपने अवगुणों का अवरण । 'ओट राम नाम की ललाट लिख लई है ।' हनु० ३८

ओठ : सं०पुं० (सं० ओष्ठ>प्रा०ओष्ठ) । अधर । मा०६.४१.६

ओड़न : सं०पुं० (सं० अवकटन—कट आवरणे>प्रा०ओअडण) । बार या प्रहार रोकना, बचाव करना । 'एक कुसल अति ओड़न खाँड़ो ।' मा० २.१९१.६

ओड़िअत : वकृ०पुं० कर्मवाच्य (सं० अवकट्यमान>प्रा० ओअडीअंत) रोका जाता, बचाव के लिए ओट किया जाता। 'पलक पानि पर ओड़ियत समुझि कुघाइ सुघाई।' दो० ३२५

ओड़िअहिं : आ०कवा०प्रब (सं० अपकट्यन्ते>प्रा० ओअडीअंति>अ० ओअडी-अहिं)। ओड़े जाते हैं, बचाव के लिए आड़ में लाए जाते हैं। 'ओडिअहिं हाथ असनिहुं के घाए।' मा० २.३०६.८

ओड़िए, ये : आ०कवा प्रए०। बचाव के लिए आड़ लिया जाए। 'तजि रघुनाथ हाथु और काहि ओड़िए।' कवि० ७.२५

ओड़ेहुं : ओड़ने पर भी, बार रोकने पर भी। 'भागें भल ओड़ेहुँ भलो।' दो० ४२४

ओढ़न : सं०पुं० (सं० अवगुण्ठन>प्रा० ओड्ढण)। शरीर का आवरण। मा० ७.४०.१

ओढ़ाई : भकृ०स्त्री०। आच्छादित की हुई। 'हेमलता जनु तरु तमाल ढिग नील निचोल ओढ़ाई। विन० ६२.१२

ओढ़ाए : भू०कृ०पुं। अवगुण्ठित किए। 'जननी पट पीत ओढ़ाए।' गी० २६.६

ओढ़िहौं : आ०भ०पुए। ओढ़ूंगा, शरीर ढकूंगा। 'तुलसी पट अतरे ओढ़िहौं।' गी० ५.३०.४

ओढ़ी : भू०कृ०स्त्री०। ओढ़ ली, शरीर पर लपेट ली। 'दामिनी ओढ़ी मानो बारे बारिधर।' गी० १.३३.२

ओढ़े : भू०कृ०पुं० (बहु०)। आवेष्टित किए हुए, लपेटे हुए। 'ओढ़े जीत पट हैं।' कृ० २०

ओतो : वि०पुं०कए०। उतना। 'क्यों कहि आवत ओतो।' विन० १६१.४

ओदन : सं०पुं० (सं०) पका चावल, भात। मा० १.२०३

ओधे : भू०कृ०पुं०ब० (सं० ऊर्ध्व>प्रा० उद्ध=ओद्ध)। ऊर्ध्व हुए, उठ खड़े हुए, उद्यत एहु। 'निज निज काज, पाइ सिख ओधे।' मा० २.३२३.१

ओट : सं० स्त्री० (सं० अपरा>प्रा० ओरा)। (१) दिशा, पार्श्व। 'बिहरहिं बन चहुँ ओर।' मा० २.२५५ (२) पक्ष। 'तुलसी के हिएँ है भरोसो एक ओर को।' हनु० ६ (३) छोर, अन्त, सीमा। 'ओर निबाहेहु भायप भाई।' मा० २.१५२.५

ओरहने : सं०पुं० (सं० उपालभन>प्रा० ओआलहण)। शिकायत करने, अपराध लगाने। 'ठाढ़ी ग्वालि ओरहने के मिस।' कृ० ५

ओरा : ओर। मा० १.२३०.३

ओरी : ओर। 'भ्राजत दुहुं ओरी।' गी० ७.७.३

ओरे : सं०पुं०ब० (सं० ओल)। ओले, वर्षोपल। 'गरहिं गति जिमि आतप ओरे।' मा० २.१४७.७

ओल : सं०पुं० (सं० ओल्ल=शरीर बन्धक) । वह दास जिसका शरीर धरोहर हो, क्रीतदास, गुलाम । 'बाजे-बाजे राजन के बेटा-बेटी ओल हैं ।' कवि० ५.२१

ओषधी : सं०स्त्री० (सं ओषधि) । जड़ी, चिकित्सा हेतु मूल आदि । रा०प्र० ७.२.१

ओस : सं०स्त्री० (सं० अवश्याय>प्रा० ओसा) । तुषार 'पंकज कोस ओस कन जैसें ।' मा० २.२०४ १

ओसरिन्ह : ओसरी+संब० । ओसरियों (से) । 'ओसरिन्ह गावैं सुहो ।' गी० ७.१८.५

ओसरी : सं० स्त्री० (सं० अवसर>प्रा० ओसर) । क्रम, बारी, पर्याय ।

ओहार : सं० स्त्री० (सं० अवसर>प्रा० ओसर) । पालकी आदि का वातावरण । 'सिबिका सुभग ओहार उघारी ।' मा० १.३४८.८

ओही : सर्वनाम (सं० असौ>प्रा० अहो>अ० ओह) । (१) वह, उसे । 'आन भाँति नहिं पावौं ओही ।' मा० १.१३२.६ (२) उसने । 'भलो ठग्यो ठगु ओही ।' कृ० ४१

ओहू : (अ० ओह+कए=ओहु) । वह । 'पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहूं ।' मा० ६.६१.६

औ

औ : और । (१) कवि० ७.१२२ (२) अव्यय—समुच्चयार्थक । जैसे, मोरिऔ ।

औगुन : अवगुन । कवि० ७.१७४

औचट : अवचट । 'तिजरा को सो टोटक औचक उलटि न हेदो ।' विन० २७२.२

औटि : पूकृ० (१) (सं क्वथित्वा=प्रा० अट्टिअ>अ० अट्टि) । उबलकर, क्वथित होकर । (२) (सं आवर्त्य>प्रा० आवट्टिअ>अ० आवट्टि) । आवर्त गति लेकर, भ्रमण कर, उलट-फेर कर, आवागमन करके । 'कलट कोटि लगि औटि मरौं ।' विन० १४१.६

औढर : अवढर । कवि० ७.१५६

औत : सं०पुं०+स्त्री० (सं० आपूर्त=आपूर्ति>प्रा० आउत्त=आउत्ति)। घाव आदि (या गड्ढे आदि) का भरना। चैन, तृषा आदि की पूर्ति, आराम। 'औत पावै न मनाक सो।' कवि० ५.२५

औतेहु : क्रियाति० पुं० मब०। तुम आते। 'जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं।' मा० १.२८२.३

औध : अवध। कवि० २.१

औनिप : अवनिप। राजा। कवि० ७.१६४

औनिपनि : औनिप+संब०। राजाओं (ने)। कवि० १.१९

और : अउर। 'मेरे जान और कछु न मन गुनिए।' कृ० ३७

औरउ : और भी, अन्य भी। 'औरउ जे हरि भगत सुजाना।' मा० १.३०.८

औरन, नि : और+संब० (१) (सं० अपरेषाम्>प्रा० अवराण)। औरों। 'कुमयाँ कछु हानि न औरन की।' कवि० ७.४७ (२) औरों को। 'तेरे बेसाहे बेसाहत औरनि।' कवि० ७.१२ (३) औरों का। कवि० ४.१

औरहि : और को, अन्य के प्रति। 'जरि जाउ सो जीह जो जाचत औरहि।' कवि० ७.२६

औरहु : औरउ। और भी। गी० ७.३८.८

औरु : और+कए०। अन्य कोई (एक)। 'औरु करै अपराध कोउ।' मा० २ ७७

औरे : 'और' का रूपान्तर। दूसरे (से)। 'बनिहै बात उपाइ न औरे।' गी० २.११.२

औरेब : अवरेब।

औरेबैं : औरव+ब०। गाँठें, वक्रताएं, कुटिल करतूतें; 'हमहूं कछुक लखी ही तब की औरेबैं नंदलाला की।' कृ० ४३

औरै : और ही, अन्य ही, कोई विलक्षण। 'औरै आगि लागि, न बुझावै सिंधु सावनो।' कवि० ५.१८

औरो : औरउ। गी० ६.१७.१

औषध : सं०पुं० (सं०)। (१) वनस्पति आदि। 'औषध मूल फूल फल नाना।' मा० २.६.२ (२) दवा, औषधियों का मिश्रण जो चिकित्सा के काम आता है। 'बिनु औषध बिआधे बिधि खोई।' मा० १.१७१.४

औषधी : ओषधी। मा० ६.५५

औषधु : औषध+कए०। एक भी उपचार, कोई दवा। 'एहि कुरोग कर औषधु नाहीं।' मा० २.२१२.२

औसर : अवसर। कवि० २.२२

औसरा : औसर। दो० ४९९

क

कँगाल : वि० (सं० कङ्काल=अस्थिपञ्जर) । बुभुक्षा-जीडित (जो कङ्काल शेष रह गया हो), अतिशय दरिद्र तथा भूखा । 'ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाज की ।' कवि० ६.३०

कँगूरन्हि : 'कँगूरा'+संब० । कँगूरों (पर) । 'कोट कँगूरन्हि चढ़ि गए ।' मा० ६.४०

कँगूराँ : कँगूरे पर । 'कौतुकी कपीसु कूदि कनक कँगूराँ चढ़्यो ।' कवि० ५.४

कँगूरा : सं०पुं (सं० कङ्गुल=हाथ; फा० कंगुर=बाजू, बाँह) । भवन के ऊपर हस्ताकार उन्नत रचनाविशेष । 'रचे कँगूरा रंग रंग बर ।' मा० ७.२७.४

कँगूरें : कँगूरा+ब० । कँगूरों को । 'कोट के कँगूरें······ढैहैं ढेलन की ढेरी सी ।' कवि० ६.१०

√**कँप, कँपइ** : (सं०कम्पते>प्रा० कंपइ—काँपना) । आ०प्रए० । काँपता है । 'कँपै कलाप बर बरहि फिरावत ।' गी० ३.१.२

कँवल : कमल (सं० कमल>प्रा० कमल>अ० कवँल) । 'नवल कँवलहू तें कोमल चरन हैं ।' कवि० २.१७

क : (१) 'का' का लघुरूप । 'मित्र क दुख रज मेरु समाना ।' मा० ४.७.२ (२) 'इक' का रूपान्तर । कोटिक, कछुक । (३) 'कर' का लघु रूप (पूक्र०) । 'जावक रचि क अँगुरियन्ह मृदुल सुठारी हो ।' रा०न० १५ (४) (सं० किम्) सर्वनाम जिससे को, केहि, कब आदि रूप बनते हैं । (५) स्वार्थिक प्रत्यय कटुक आदि ।

कंक : सं०पुं० (सं०) । गृध्र । 'काक कंक लै भुजा उड़ाहीं ।' मा० ६.८८.२

कंकन : सं०पुं० (सं० कङ्कण) । हस्ताभरण विशेष, कंगन । मा० १.६२.२

कंकर : काँकर । विन० २३१.३

कंचन : सं०पुं० (सं०) । सुवर्ण । मा० १.१२.३

कंचुकि : सं०स्त्री० (सं० कञ्चुकी) । (१) स्त्रियों के वक्षस्थल का परिधान विशेष । 'श्रीफल कुच कंचुकि लता जाल ।' विन० १.४१५ (२) चोगा, लम्बा अंगरखा । 'बहु बासना बिबिध कंचुकि भूषन लोभादि भर्यौ ।' विन० ६१.२

कंज : सं०पुं० (सं०) । कमल । मा० १.२०.८

कंजन, नि, न्ह, न्हि : कंज+संब० । कमलों (पर, में, से आदि) । 'पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि ।' कवि० १.२

कंजकोस : कमल की पंखड़ियों के समूचे आकार का भीतरी भाग । गी० ७.७४

कंजराग : पद्मराग । मणिविशेष । 'कंजकोस भीतर जनु कंचराग सिखर निकर ।' गी० ७ ७.४

कंजा : कंजा । मा० १.१४८.८

कंजारुन : वि० (सं० कंजारुण) । कमल के समान लाल । मा० ५.४५.४

कंजु : कंज+कए० । 'बंदउँ मुनि पद कंजु ।' मा० १.१४ घ

कंटक : सं०पुं० (सं०) । (१) काँटा । 'कुस कंटक मग काँकर नाना ।' मा० २.६२.५ (२) व्याघात, विरोधी तत्त्व । 'कासी में कंटक जेते भए ।' कवि० ७.१७९ (३) शत्रु (शत्रु विनाश=कण्टकशोधन) । 'तीय तनय सेवक सखा मन के कंटक चारि ।' दो० ४७६ (मूल अर्थ एक है—चुभन की समानता से अन्य अर्थ आते हैं जो मानसिक कोंचन से सम्बद्ध है ।)

कंटकित : वि० (सं०) । काँटों से युक्त । 'कमल कंटकित सजनी, कोमल पाइ ।' बर० २६

कंठ : सं०पुं० (सं०) । ग्रीवा । मा० १.७२.७

कंठगत : कण्ठ में स्थित (सारे शरीर को छोड़कर कण्ठ में आया हुआ) । 'प्रान कंठगत भयउ भुआलू ।' मा० २.१५४.१

कंठहँसी गुप्त परिहास जो गले तक ही सीमित हो, बाहर प्रगति ध्वनि न करे । गी० १.८४.८

कंठा : सं०पुं० (सं० कण्ठ्य>प्रा० कंठअ) । ग्रीवाभरण । 'कुँजर-मनि कंठा कलित ।' मा० १.२४३

कंठु : कंठ+कए० । 'कंठु सूख मुख आव न बानी ।' मा० २.३५.२

कंठे : (सं० पद) । कण्ठ में । मा० ७.१०८ छं० ६

कंडु : सं०स्त्री० (सं० कण्डु=कण्डू) । (१) खुजली का रोग । मा० ७.१२१.३३ (२) खुजलाहट । 'भ्रमत मंदर कंडु सुख मुरारी ।' विन० ५२.३

कंत, कंता : सं०+वि०पुं० (सं० कान्त>प्रा० कंत) । प्रिय, पति । 'सिंधु सुता प्रिय कंता ।' मा० १.१८६ छं०

कंद : सं०पुं० (सं०) । (१) मूल, जड़ (कारण) । 'प्रगटे सुषमा कंद ।' मा० १.१९४ (२) खाद्य मूलविशेष । 'कंद मूल फल भोजन ।' मा० १.२०९ (३) (सं० कं=जल+द)=जलद । मेघ । 'कंद तड़ित बिधु जनु सुरपति धनु ।' गी० १.१०८.६

कंदबृंद : मेघ समूह । 'कंदबृंद बरषत जनु ' गी० ७.७.५

कंदर : सं०पुं०+स्त्री० (सं० कन्दर=कन्दरा) । गुहा । मा० ३.१८.११

कंदरन्हि : कंदर+संब० । कंदराओं । 'सदग्रंथ परबत कंदरन्हि महुं जाइ तेहिं अवसर दुरे ।' मा० १.८४ छं०

कंदरप : कंदर्प । विन० २३६.६
कंदरां : कन्दरा में । 'गिरि कंदरां सुना संपाती ।' मा० ४.२७ १
कंदरा : कंदर । मा० ६.७५.२
कंदर्प : सं०पुं० (सं०) । कमदेव । मा० ६ श्लोक २
कंदा : कंद । मा० १.१४४.१
कंदिनी : वि०स्त्री०=निकंदिनी । उन्मूलन करने वाली । 'क्रोध-कंदिनी ।' गी० २.४३.२
कंदु : कंद+कए० । एकमात्र मूल कारण । 'आनंद कंद बिलोकि दुलहु········· ।' मा० १.३२१ छं०
कंदुक : सं०पुं० (सं०) । गेंद । मा० १.२५३.४
कंध : सं०पु० (सं० स्कन्ध>प्रा० खंध) । (१) बाहुमूल । 'वृषभ कंध केहरि ठवनि ।' मा० १.२४३ (२) शाखामूल, वृक्ष का । वह भाग जहाँ से मोटी शाखाएँ निकलती हैं ।' 'षट कंध साखा पचबीस ।' मा० ७.१३.५
कंधर : सं०पुं० (सं०) । ग्रीवा । 'केहरि कंधर बाहु बिसाला ।' मा० १.२१६.५ 'दल्यो दसकंधर कंधर तोर ।' कवि० ६.५७
कंप : सं०पुं० (सं० कम्प) । (अङ्गों की) थरथराहट, बेपथु । मा० १.५५.६
कंपत : वकृ०पुं० । काँपता, काँपने । 'कंपत अकंपन, सुखाय अतिकाय काय ।' कवि० ६.४३
कंपति : (१) वकृ०स्त्री० । काँपती । 'मंदोदरि उर कंपति भारी ।' मा० ६.१०२.१० (२) सं०पुं० (सं०) । समुद्र । 'सत्य तोयनिधि कंपति ।' मा० ६.५
कंपहिं : काँपहिं । काँपते हैं । 'कंपहिं भूप बिलोकत जाकें ।' मा० १.२९३.४
कंपित : भूकृ० (सं०) । काँपा हुआ, काँपे हुए । 'ठाढ़ रहा अति कंपित गाता ।' मा० ६.९५.३
कंपेउ : भू०कृ०पुं० कए० । काँप उठा । 'भयउ कोपु कंपेउ भैलोका ।' मा० १.८७.५
कंवल : सं०पुं० (सं०) । ऊनी आवरण विशेष । मा० १.३२६.३
कंबु : सं०पुं० (सं०) । शङ्ख । 'कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई ।' मा० १.१९९.७
कंस : मथुरा का राजा जिसे कृष्ण ने मारा था । विन० ४९.६
कइ : (१) की (सम्बन्धार्थक स्त्री०) । 'सोभा दसरथ भवन कइ ।' मा० १.२९७ (२) सर्व० (सं० कति>प्रा० कइ=कई) । कितने । 'एक गाँठि कइ फेरे ।' विन० २२७.४
कई : भू०कृ० स्त्री० (सं० कृता>प्रा० कई) । की । 'बहुत हौं ढीठ्यौ कई ।' मा० १.३२६ छं० ३

कच : सं०पुं० (सं०)। केश। मा० १.१९९.१०

कचनि, न्हि : कच+संब०। केशों (ने)। 'कचनि अनूपम छबि पाई।' गी० १.१०८.८

कच्छ : सं०पुं० (सं० कक्ष)। तिनकों (या पुआल का) ढेर। 'राम प्रताप हुतासन, कच्छ विपक्ष।' हनु० १९

कच्छप : सं०पुं० (सं०) कमठ, कछुआ।

कच्छपु : कच्छप+कए०। कच्छपावतार भगवान्। मा० १.२४७.७

कछु : वि०+क्रि०वि०। कुछ, अल्प। मा० २.५०.६

कछुक : (कछु+इक)। कुछेक, थोड़ा, अत्यल्प। 'कछुक दिवस जननी धरु धीरा।' मा० ५.१६.४

कछू : कछु। मा० ५.३३.९

कछौटी : सं०स्त्री० (सं० कक्षपट्टी>प्रा० कच्छपट्टी)। कटि भाग के पास का परिधान। 'छोटियै कछौटी तटि।' गी० १.१४४.१

कज्जल : सं०पुं० (सं०)। आँखों का मलहम विशेष, काला अञ्जन, पारे के मिश्रण से बनाई कजली। 'जनु कज्जल कै आँधी चली।' मा० ६.७८.८

कज्जलगिरि : कज्जल या सुरमे का पहाड़। मा० ६.१९.४

कज्जली : सं०स्त्री० (सं०)। धुएं से जमी कालिख। दो० ५७१

कञ्जनाभ : सं०पुं० (पद्मनाभो)। जिसकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ=विष्णु। विन० ५३.७

✓**कट कटइ** : (सं० कर्त>प्रा० कट्ट) आ०प्रए। कटता है, कट सकता है। 'तुब हित होइ कटै भव बंधन।' विन० १९९.३

कटक : सं०पुं० (सं०)। (१) सेना। मा० ३.२२.११ (२) कड़ा, हस्ताभरण तथा पादाभरण। 'कनक कटकांगदादी।' विन० ५४.४

कटकई : कटक। सेना। 'मनहुं करुनरस कटकई उतरी अवध बड़ाइ।' मा २.४६

कटकटहिं : आ०प्रब० (सं० कटकटायन्ते)। दातों की ध्वनि करते हैं। 'कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत।' मा० ३.२० छं०

कटकटाइ : पूकृ०। दाँत पीसकर, दन्त ध्वनि करके (क्रुद्ध होकर)। 'कटकटाइ गर्जा अस धावा।' मा० ५.१९.४

कटकटात : वकृ०पुं०। क्रोध से दाँत पीसने की ध्वनि करने। 'कटकटात भर भालु।' गी० ५.२२.४

कटकटान : भूकृ०पुं०। दाँत पीसता हुआ क्रुद्ध हुआ। 'कटकटान कपि कुंजर भारी।' मा० ६.३२.३

कटकटाहिं : कटकटाहिं। 'कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं।' मा० ६.४१.६

कटकाई : कटकई। सेना। मा० १.१७६.४

कटकु : कटक+कए०। एक फौज। 'राम भालु कपि कटकु बटोरा।' मा० १.२५.३

कटक्कट : क्रि०वि०। 'कटकट' ध्वनिपूर्वक। 'जंबुकनिकर कटक्कट कट्टहिं।' मा० ६.८८.६

कटत : (१) वकृ०पुं०। कटता-ते; छिन्न होता-ते। 'भट कटत तन सत खंड।' मा० ३.२०.११ (२) कटते ही। 'कटत झटिति पुनि नूतन भए।' मा० ६.६२.१२

कटन : भकृ० अव्यय। कटने, छिन्न होने। 'लगे कटन बिकट पिसाच।' मा० ३.२०.८

कटहिं : आ०प्रब०। कटते हैं, छिन्न होते हैं। 'कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा।' मा० ६ ६८.५

कटाइ : कटैया। काटने वाला। 'रामु सो न साहेबु न कुमति कटाइ को।' कवि० ७.२२

कटाच्छ : सं०पुं० (सं० कटाक्ष)। नेत्रापाङ्ग, नेत्रकोण, अपाङ्ग से देखना। 'कृपा कटाच्छ पसाउ। मा० १.१३१

कटाच्छु : कटाच्छ+कए०। एक अपाङ्ग दृष्टि। 'जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत।' मा० ७.२४

कटाह : सं०पुं० (सं०)। बड़ी कड़ाही, कड़ाह के आकार की नतोदर गोल वस्तु (जैसे, आकाश)। 'अंडकटाह अपितु लयकारी।' मा० ७.६४.८

कटि : सं०स्त्री० (सं०)। शरीर—मध्य भाग, उदर और नितम्ब के बीच का अङ्ग। मा० १.१९९.४

कटितट : कटि का पार्श्व भाग। 'कटितट परिकर कस्यो निषंगा।' मा० ६.८६.१०

कटिन्ह : कटि+संब०। कटियों (पर)। 'मुनिपट कटिन्ह कसें तूनीरा।' मा० २ ११५.८

कटिहउँ : आ०भ०उए०। काट डालूंगा। 'कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना।' मा० ५ १०.१

कटु : (१) वि० (सं०)। कड़वा (अस्वाद्य)। मा० ७.१३ छं० ५ (२) असह्य, कष्टकर। 'अति कटु बचन कहति कैकेई।' मा० २.३०.८

कटुक : कटु। (१) अस्वाध, कड़वा। 'कुटिल कटुक फर फरैगो।' दो० ४५२ (२) कष्टकर। 'कटुक कठोर कुबस्तु दुराईं।' मा० २.३११.५

कटुबादी : वि०पुं० (सं० कटु-वादिन्)। कष्टकर बोलने वाला। कूट तर्क-वितर्क करने वाला। 'कटुबादी बालक बधा जोगू।' मा० १.२७५.३

कटेहुं : कटने पर भी। 'मरत न मूढ़ कटेहुं भुजसीसा।' मा० ६.६८.२

कटैया : वि०। काटने वाला, छिन्नकर्ता। 'दसरत्थ को नंदन बंदि कटैया।' कवि० ७.५१

कट्टहिं : आ० प्रब०। काटते हैं। 'जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं।' मा० ६.८८.६

कठमलिआ : वि०पुं० (सं० काष्ठमालिक>प्रा० कट्ठमालिअ)। काठ की माला पहनने वाला (दम्भी)। 'करमठ कठमलिआ कहैं।' दो० ६६

कठवता : सं०पुं० (सं० काष्ठपात्रक>प्रा कट्ठवत्तअ)। कठवत, अढ़िया। 'पानि कठवता भरि लेइ आवा।' मा० २.१०१.६

कठवति : सं०स्त्री० (सं० काष्ठपात्री>प्रा० कट्ठवत्ती>अ० कट्ठवत्ति)। छोटा कठौता। 'मीठो अरु कठवति भरो।' दो० १५

कठिन : वि० (सं०)। (१) कठोर, निष्ठुर, जड़, क्रूर। मा० १.३२.६ (२) दुर्दम, घोर। 'हरन कठिन कलि कलुष कलेसू।' मा० २.३२६.६ (३) तीक्ष्ण। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना।' मा० ५.१०.१

कठिनई : कठिनता (प्रा० कठिणया)। विषमता, उलझना। 'तहाँ परंतु एक कठिनई। मा० ७.११७.६

कठिनता : सं०स्त्री० (सं०) कठोरता। 'सुनत कठिनता अति अकुलानी।' मा० २.४१.१

कठिनाई : कठिनई। कठोरता, संकट, कष्ट। मा० १.३८.६

कठुला : सं०पुं० (अ० कंठा=कंठुल्लअ)। कण्ठाभरण (बालकों का)। 'कठुला कंठ बघनहानीके।' गी० १.३१.३

कठोर : वि०पुं० (सं०)। परुष, निष्ठुर, क्रूर, कठिन। मा० १.११३.७

कठोरपनु : सं०पुं०कए०। कठोरता, क्रूरता। 'जनु कठोरपनु धरें सरीरू।' मा० २.४१.३

कठोरा : कठोर। मा० १.६.१

कठोरि, री : वि०स्त्री०। 'मति थोरि कठोरि न कोमलता।' मा० ७.१०२ छं०

कठोरु, रू : कठोर+कए०। अद्वितीय कठोर। 'मानहुं कुलिस कठोरू।' मा० २.१५३

कठोरें : कठोर······से। 'न त एहि काटि कुठार कठोरें।' मा० १ २७५.८

कठोरे : 'कठोर' का रूपान्तर (बहु०)। 'सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे।' मा० २ २६४.२

कठौता : कठवता। कवि० २.१०

कड़हारू : सं०पुं०कए० (सं० कर्णधार>प्रा० कण्णहारो>अ० कण्णहारु)। नाविक, मल्लाह। 'चहत पारु, नहिं कोउ कड़हारू।' मा १.२६०.८

कढ़त : वकृ०पुं० । निकलता, निकलते । 'कढ़त प्रेम बल धीर ।' गी० २.६६.३

काढ़इ : पूकृ० । खिचवा कर, निकलवा कर । 'खाल कढ़ाइ बिपति सह मरई ।' मा० ७.१२१.१७

कढ़ावउँ : आ०उए० । खिचवालूं । 'तौ धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी ।' मा० २.१४.८

कढ़ावन : भकृ० अव्यय । खिचाने, रेखित कराने । 'तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका ।' मा० २.१८१.३

कढ़ैया : वि० । खींचने वाला, निकालने वाला । 'बार खाल को कढ़ैया सो बढ़ैया गुर-साल को ।' कवि० ७.१३५

कढ़ोरि : पू०कृ० । घसीटकर, खींचकर, बाहर निकालकर । 'तोरि जम कातरि मदोदरी कढ़ोरि आनी ।' हनु० २७

कत : अव्यय (सं० कुतः>प्रा० कत्तो) । किस कारण । 'तौ कत दोष लगाइअ काहू ।' मा० १.९७.७ (२) कहाँ, किधर ।

कतहु, हुं : कहीं भी, किसी ओर । 'खोजत कतहुं मिलइ नहिं धूरी ।' मा० ४.१५.४

कति : वि०स्त्री० (सं० कियती>प्रा० कियत्ती) । कितनी । 'यह लघु जलधि तरत कति बारा ।' मा० ६.१.१

√कथ कथइ : (१) सं० कथयति—कथ वाक्य प्रबन्धे—कहना; (२) कत्थते—कत्थ श्लाघायम्—आत्म प्रशंसा करना । आ०प्रए । कहता है, प्रशस्तिगान करता है । 'जिमि जिमि तापसु कथइ उदासा ।' मा० १.१६२.५

कथक : सं०पुं० (सं०) । नाट्य-निर्देशक, मुख्य नर्तक जो टोली के बीच में अङ्गुलि संकेत से या छड़ी घुमाकर सबको लय-ताल का अनुशासन देता है जिसके इङ्गित पर सब नाचते हैं । 'कियो कथक को दंड हौं जड़ करन कुचाली ।' विन० १४७.३

कथन : सं०पुं० (सं०) । कहना, वर्णन । मा० १.४१

कथनीया : वि० (सं० कथनीय) । कहने योग्य, वर्णन-शक्य । 'सो सपनेहुं सुख नहिं कथनीया ।' मा० १.२४२.६

कथरी : सं०स्त्री० (सं० कन्था>प्रा० कंथा>अ० कंथडी) । वस्त्रखण्ड-निर्मित बिछावन । 'मलीन धरें कथरी करवा है ।' कवि० ७.५६

कथहिं : आ०प्रब० (सं० कत्थन्ते>प्रा० कत्थंति>अ० कत्थहिं) । प्रशस्तिगान करते हैं । 'कायर कथहिं प्रतापु ।' मा० १.२७४

कथहि : कथा को । 'जो एहि कथहि······कहिहाहीं ।' मा० १.१५.१०

कथा : सं०स्त्री० (सं०) । (१) आख्यान, इतिहास । 'राम कथा जगमंगल करनी ।' मा० १.१०.१० (२) वर्णन । 'करम कथा बिनंदिनि बरनी ।' मा०

१.२.६ (३) वार्ता। 'मोरिऔ सुधि या इबी कछु करुन कथा चलाइ।' विन० ४१.१

कथाप्रबंध : कथा का प्रबन्ध काव्यात्मक रूप। मा० १.३३.२

कथा प्रसंगु, गू : सं०पुं०कए०। वार्ता-सन्दर्भ, वृत्तान्त का अवसर, इतिवृत्त का अवसर प्राप्त अंश। 'पूरब कथा प्रसंगु सुनावा।' मा० १.६८.१

कदंब : सं०पुं० (सं०)। (१) वृक्ष-विशेष। 'चंपक बकुल कदंब तमाला।' मा० ३.४०.६ (२) समूह। 'कूदत कबंध के कदंब बंबसी करत।' कवि० ६.४८

कदंबा : कदंब। समूह। 'एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा।' मा० २.८२.६

कदन : सं०पुं० (सं०)। सूदन, वध, संहार। विन० २५.८

✓**कदरा, कदराइ** : (सं० कातरायते>प्रा० कादराइ—कायर आचरण करना)। आ०प्रए०। कायरतापूर्ण आचरण करता है, करे। कायर व्यवहार करे। 'मुनि रजाइ कदराइ न कोऊ।' मा० २.१६१.१

कदराई : (१) कदराइ। अति या कातर हो जाता है। 'करत कथा मन अति कदराई।' मा० १.१२.१२ (२) सं०स्त्री० (सं० कातरता>प्रा० कादरया)। कायर कर्म 'रिपु पर कृपा परम कदराई।' मा० ३.१६.१३

कदराहु, हू : आ०मब०। (१) कातर होते हो। 'तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू।' मा० २.१७६.३ (२) कातर होओ। 'तात प्रेम बस जनि कदराहू।' मा० २.७०.८

कदरी : कदली। 'काटे पै कदरी फरइ।' मा० ५.५८

कदर्थना : स० स्त्री० (सं०)। उत्पीड़न, सन्तापना, घोर अपमान। 'कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की।' कवि० ७.१८२

कदलि : कदली। मा० ३.३०.१३

कदली : सं०स्त्री० (सं०)। केले का वृक्ष। मा० २.२०.२

कदाचि : कदाचित। संभवतः (मान लें कि, शायद)। 'जौं कदाचि मोहि मारहिं।' मा० ४.७

कदाचित : अव्यय (सं० कदाचित्)। शायद ही, कभी, हो सकता है कि, विरल अवसरों पर ही। 'तबहुं कदाचित सो निरु अरई।' मा० ७ ११७.८

कद्रूं : कद्रू ने (सं० कद्रू=सर्पमाता=कश्यप—पत्नी विशेष)। 'कद्रूं बिनतहि दीन दुख।' मा० २.१६

कन : *सं०पुं० (सं० कण)। (१) किनका, लघु खण्ड। 'सिरस सुमन कन बोधिक* हीरा।' मा० १.२५८.५ (२) बूंद। 'लसत स्वेद कन जाल।' मा० २.११५ (३) चिनगारी। 'चंदु चवै बरु अनल कन।' मा० २.४८

कनउड़ : वि०पुं० (सं० कृतज्ञ>प्रा० कयण्णू)। आचारी, उपकृत। 'हमहि आजु लगि कनउड़ काहुँ न कीन्हेउ।' पा०मं० ७३

कनक : सं०पुं० (सं०) । सुवर्ण मा० १.३५६.१

कनकउ : सुवर्ण भी । 'कनकउ पुनि पषान तें होई ।' मा० १.८०.६

कनककासिपु : (कनक=हिरण्य)—हिरण्यकशिपु=दैत्यराज, प्रह्लाद का पिता । मा० १.२७

कनकफूल : कर्णाभरण विशेष जो पुष्पाकार बनते हैं=कनफूल । गी० १.७३.४

कनकमय : वि० (सं०) । स्वर्ण घटित, प्रचुर सुवर्णयुक्त । 'तासु कनकमय सिखर सुहाए ।' मा० ७.५६.८

कनकलोचन : (कनक=हिरण्य+लोचन=अक्ष) हिरण्याक्ष (हिरण्यकाशिपु का अनुज) । मा० २.२९७.५

कनकहिं : कनक पर, सुवर्ण में । 'कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें ।' मा० २.२०५.५

कनकु : कनक+कए० । सुवर्ण । 'कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ ।' मा० २.२८३.६

कनखियनु : कनाखिया+संब० (सं० कटाक्ष>प्रा० कडक्ख>अ० कडक्खिया) । कटाक्षों में=नेत्रकोण दर्शन में । 'चितबनि बसति कनखियनु अँखियनु बीच ।' बर० ३०

कनगुरिया : सं० स्त्री० (सं० कनाङ्गुलिका>प्रा० कणंगुलिया) । छोटी अँगुली (कनिष्ठा) । 'कनगुरिया कै मुदरी कंकन होइ ।' बर० ३८

कनसुई : सं०स्त्री० (सं० कणसूची>प्रा० कणसूई) । आटे या गोबर की गौरी जिसे चलनी में घुमाकर स्त्रियाँ औंधा करती हैं; यदि 'कनसुई' सीधी निकलती है तो शकुन, उत्तम माना जाता है । 'लेत फिर कनसूई सगुन सुभ ।' गी० १.७०.५

कनाउड़ो : कनउड=कनाउड+कए । कृतज्ञ, आभारी । 'जाचक जगत कनाउड़ो ।' दो० २८९

कनावड़े : कनाउड़=कनावड़+ब० । कृतज्ञ । 'जनक दसरथ किए प्रेम कनावड़े ।' जा०मं० छं० १६

कनिगर : वि०पुं० । 'कानि' करने वाला, आत्मप्रतिष्ठा वाला, स्वाभिमानी । 'देखिए दास दुखी तोसे कनिगर के ।' हनु० ३३

कनियाँ : कनिया=गोद में । 'भूप लिये कनियाँ ।' गी० १.३४.१

कनीं : कनी+बहु० । कणिकाएँ, बूंदें । 'झलकीं भरि भाल कनीं जल की ।' कवि० २.११

कनी : सं०स्त्री० (सं० कणिका>प्रा० कणिया>अ० कणी)=कण । (१) छोटी बूंद । 'अरुन तन सोनित कनी ।' मा० ६.७१ छं० (२) छोटा कण । 'रज-कनी ।' मा० ६.८३ छं०

कनै : कण को, अन्नादि के खण्ड को । 'मोद पाइ कोदो कनै ।' गी० ५.४०.४

कनौड़े : कनावड़े । 'कपि सेवा बस भए कनौड़े ।' विन० १००.७

कनौड़ो : कनाउड़ो । (१) कृतज्ञ । 'प्रेम कनौड़ो राम सो ।' विन० १६४.६ (२) क्षुद्र परिचारक आदि, क्रीत दास । 'प्रभुहिं कनौड़ो भरिहैं ।' विन० १७१.७

कन्दर्पह : (दे० ह) । कन्दर्प = कामदेव के घातक शिवजी । मा० ६.२ श्लोक २

कन्या : सं०स्त्री० (सं०) । (१) अविवाहिता बालिका । मा० १.८१.४ (२) पुत्री । मा० १.७१.८

कन्यादानु : सं०पुं० कए० । विवाह के पूर्व माता-पिता द्वारा कन्या का वर को संकल्पित समर्पण । मा० १.३२४ छं० ३

कन्हाई : कान्ह । कृष्ण । कृ० २६

कन्हैया : कन्हाई (स्नेहातिरेक का प्रयोग) । कृ० २

कपट : सं०पुं० (सं०) । छल । मा० १.१२.२

कपटमुनि : छल से मुनि बना हुआ । मा० १.१६५

कपटमृग : छल से बना हुआ मृग, हरिवेष में मारीच । मा० ३.२७

कपटी : वि०पुं० (सं० कपटिन्) । छली, वञ्चक । मा० १.७६.४

कपटु : कपट+कए० । एकमात्र छल । 'सती कपटु जाना सुरस्वामी ।' मा० १.५३.३

कपाट : सं०पुं० (सं०) । किवाड़ । मा० १.२३२.७

कपाटा : कपाट । मा० १.२१४.१

कपाटी : कपाट, छोटा किवाड़ । 'जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी ।' मा० २.१४५.४

कपारु, रू : कपाल = कपार+कए० । (१) मत्था । 'कूबरू टूटेउ फूट कपारू ।' मा० २.१६३.५ (२) भाग्य । 'फोरै जोगु कपारू अभागा ।' मा० २.१६.२

कपाल : सं०पुं० (सं०) । (१) नरमुण्ड । 'ब्याल कपाल बिभूषन छारा ।' मा० १.६५.८ (२) खप्पर । मा० १.६३ छं०

कपाला : कपाल । मा० ६.२८.११

कपाली : वि०पुं० (सं० कपालिन्) । नरमुण्डधारी । मा० १.७६.६

कपालु : कपाल+कए० । एक नरमुण्ड या खप्पर । 'डमरू कपालु कर ।' कवि० ७.१४६

कपास : सं०पुं० (सं० कर्पास>प्रा० कप्पास) । रुई । मा० ७.११७ ग

कपासू : कपास+कए । 'साधु चरित सुभ चरित कपासू ।' मा० १ २.५

कपि : सं०पुं० (सं०) । वानर । मा० १.२५.३

कपिंदा : सं०पुं०+वि० (सं० कपीन्द्र>प्रा० कइंद) । श्रेष्ठ वानर । (१) हनुमान । मा० ५.३५.३ (२) अंगद । मा० ६.३२.१

कपिकच्छु : सं०स्त्री० (सं०) । के वाँच नामक लता (जिसे वानर उखाड़ डालता है) । 'बाहु सूल कपिकच्छु बेलि—कपिकेलि ही उखारिए ।' हनु० २४

कपिकुंजर : हाथी जैसे डील डौल वाला वानर । 'कटकटान कपिकुंजर भारी ।' मा० ६.३२.३

कपिन, न्हि : कपि+संब० । वानरों । 'देखिन्ह जाइ कपिन्ह के ठट्ठा ।' मा० ६.४१.४

कपिपति : वानरों का राजा=सुग्रीव । मा० ४.४.२

कपिपोत : (दे० पोट) । बन्दर का बच्चा । 'रे कपिपोत बोलु संभारी ।' मा० ६.२१.१

कपिराइ, ई : कपिराज । मा० ५.५

कपिराउ, ऊ : (दे० राऊ) । वानरों का एकमात्र स्वामी । मा० ४.१२.४

कपिराज : कपिपति । (१) सुग्रीव । मा० ६ ६५ (२) श्रेष्ठ वानर, हनुमान । कवि० ७.१७६

कपिल : सं०पुं० (सं०) । सांख्यशास्त्र के प्रवर्तक मुनि जो चौबीस अवतारों में परिगणित हैं । मा० १.१४२.६

कपिलहि : कपिला गाय को । 'जिमि कपिलहि घालइ हरहाई ।' मा० ७.३९.२

कपिला : सं०स्त्री० (सं०) । पीले रंग की श्रेष्ठ गाय । 'जिमि मलेच्छ बस कपिला गाई ।' मा० ३.२९.८

कपिलीला : वानरक्रीडा=उछल कूद, मुह बिचकाना, किलकिला शब्द, दाँत निकालना, झपट्टा, खो खो ध्वनि आदि । मा० ६.४४.५

कपिश : वि० (सं०) । भूरे रंग का (वानर जैसे रंग वाला) । 'कपिश कर्कश जटाजूटधारी ।' विन० २८.२

कपिस : कपिश । हनु० २

कपिहिं : कपि ने ही 'प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा ।' मा० ५.२०.४

कपिहि : कपि को, कपि के प्रति । 'सो छन कपिहि कलप समबीता ।' मा० ५.१२.१२

कपीश्वर : वानर श्रेष्ठ=हनुमान । मा० १ श्लोक ४

कपीस, सा : (सं० कपीश) : (१) वानरराज=सुग्रीव । मा० ४.२०.२ (२) श्रेष्ठ वानर । हनुमान

कपीसु : कपीस+कए० । अद्वितीय वानरराज । (१) हनुमान । 'कपीसु कूधो बात घात जलधि हलोरि कै ।' कवि० ५.२७ (२) सुग्रीव । कवि० ७.४

कपूत : सं०पुं० (सं० कुपुत्र, कापुत्र, कत्पुत्र>प्रा० कप्पुत्त) । निन्दित पुत्र । मा० १.२६६.१

कपूतन : कपूत+संब० । कपूतों । 'कायर कूर कपूतन की हद ।' कवि० ७.१

कपूर : कर्पूर । दो० २५५

कपोत : सं०पुं० (सं०) । भूरा पारावत, कबूतर । मा० ३.३०.१०

कपोल : सं०पुं० (सं०) । गाल । मा० १.१४७.१

कपोलन, नि : कपोल+सं०ब० । कपोलों । 'कुंडल लोल कपोलन की ।' कवि० १.५

कपोला : कपोल । मा० १.१९९.९

कफ : सं०पुं० (सं०) । त्रिदोष में, अन्यतम । श्लेष्मा । मा० ७.१२१.३०

कब : अव्यय (सं० कदा>प्रा० कआ; सं० कुतः>प्रा० कओ>अ० कउ>कब) । किस समय । मा० २.११.६

कबंध : सं०पुं० (सं०) । (१) एक राक्षस जिसका धड़ ही था, सिर वृक्ष पर लटकता-लगा था । मा० ३.३३.९ (२) शरीर का धड़ भाग, शिरोरहित शरीर । 'कूदत कबंध के कदंब बंस सी करत ।' कवि० ६.४८

कबंधु : कबंध+कए० । कबन्ध नामक राक्षस । कवि० ६.११

कबहिं : निश्चित रूप से कब, भला कब । 'कबहिं देखिबे नयन भरि ।' मा० १.३००

कबहुँ, हूँ : कभी, किसी समय । 'कबहुं पालने घालि झुलावै ।' मा० १.२००.८

कबहुँक : कभी एक बार (कबहुं+इक) । कभी तो । 'कबहुँक ए आवहिं एहि नातें ।' मा० १.२२२.८

कबार : सं०पुं० । लेन देन का लघु व्यवसाय, छोटी मोटी दुकानदारी, क्रय विक्रय धंधा । 'मागध सूत भाट नट जाचक जहँ तहँ करहिं कबार ।' मी० १.२.२१

कबारू : कबार+कए० । 'नहिं जानउँ कछु अउर कबारू ।' मा० १.१०० ७

कबि : सं० (सं० कवि) । (१) ऋषि, तत्त्व दृष्टा (२) विद्वान्, विवेकी । (३) शब्दों में भाव व्यक्त करने वाला=साहित्यकार । मा० १.९.८

कबित : सं०पुं० (सं० कवित्त्व>प्रा० कवित्त) । कविकर्म, काव्य कौशल, कविता कला । मा० १.९.११

कबितरस : (दे० नवरस) परम्परागत काव्य रस जिनमें सहृदय विषय-वासना का रस-निष्पत्ति की प्रणाली से आस्वादन करता है; वासना की सूक्ष्म अनुभूति से पृथक कोई बाह्य प्रयोजन नहीं माना जाता । 'जदपि कबित रस एकउ नाहीं ।' मा० १.१०.७

कबितरसिक : वे रसिक जो स्वागत वासना का ही काव्य के माध्यम से रस रूप में आस्वादन करते हैं, इस रसास्वाद से पृथक् किसी काव्य प्रयोजन को मान्य नहीं

करते—भक्ति को काव्यरस बनाकर नहीं ग्रहण कर पाते। 'कबितरसिक न राम पद नेहू।' मा० १.६.३

कबिता : सं०स्त्री० (सं० कविता)। काव्य, कवित्व। 'चली सुभग कविता सरिता सो।' मा० १.३६.११

कबित्त : कबित। 'निज कबित्त केहि लाग न नीका।' मा० १.८.११

कबिन्ह : कबि+संब०। करियों (ने)। 'कबिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई।' मा० १.१४.८

कबी : कवि। मा० ६.१११ छं०

कबुली : वि०स्त्री० (१) (अरबी—क़बूल=मानना)। बात मान्य कराई हुई। (२) (अरबी—कुबूल=आगे आना)। आगे की हुई। (३) (अरबी क़बूली=बिना गोश्त का पुलाव)। पुलाव=खाद्य पदार्थ बनाई हुई। (४) (अरबी—क़बुला=मछली या चूहा)। मछली के समान फँसाई हुई। (५) (अरबी—क़ब्ल=पहले)। पहल कराई हुई। 'कुबरीं करि कबुली कैकेई। 'कपट छुरी उर पाहन टेई।' मा० २.२२.१ (छुरी का सम्बन्ध मछली वाले अर्थ से है। अत: श्लेष से कई अर्थ अभीष्ट हैं।)

कबूतर : सं०पुं० (फा०)। पारावत पक्षी (जिसकी एक जाति, कपोता है जो भूरा होता है)। गोस्वामी जी ने कपोत से भिन्न उसी जाति के पक्षी को 'कबूतर' माना है। 'हँस कपोत कबूतर बोलत।' गी० २.४७.११

कबूलत : वकृ०पुं० (अरबी—कबूल=स्वीकार करना)। मानता, स्वीकार करता। 'हौं न कबूलत।' विन० १४६.२

कमंडल : सं०पुं० (सं० कमण्डलु)। विशेष प्रकार का जल पात्र। मा० ६.५७.७

कमठ : सं०पुं० (सं०)। कच्छप। मा० १.२०.७

कमठी : कमठ+स्त्री० (सं०)। कच्छपी। कृ० ६०

कमुठ : कमठ+कए०। कच्छप भगवान्। 'कोलु कमठु अहि कलमल्यो।' कवि० १.११

कमनीय : वि० (सं०)। मनोहर स्पृहणीय, रुचिर, उत्तम। 'कीरति अति कमनीय।' मा० १.२५१

कमनीया : कमनीय+स्त्री०। वाञ्छनीया, मनोहारिणी, सुन्दरी। 'जग असि जुवति कहाँ कमनीया।' मा० २.२४७.४

कमल : सं०पुं० (सं०)। (१) पुष्पविशेष जो जल में होता है। (२) नीलकमल के सादृश्य से 'कृष्ण' के लिए भी प्रयोग हुआ है। 'तू जो हम आदर्यो सो तौ नव कमल की कानि।' कृ० ५२

कमलनि, न्हि : कमल+सं०ब० । कमलों । 'कमलन्हि पर करि बास ।' मा० ६.२२ ख

कमलावली : (सं०) । कमल श्रेणी, कमल समूह । गी० १.३८.४

कमलापति : कमला=लक्ष्मी के पति=विष्णु । मा० १.१३५.२

कमलासन : सं०पुं० (सं०) । विष्णु के नाभि कमल पर आसन किये हुए=ब्रह्मा जी । मा० १.५८.७

कमातो : क्रियाति० पुं० एक० । यदि अर्जन करता है । 'जौ तू मन मेरे कहे राम नाम कमातो ।' विन० १५१.३

कमान : सं०स्त्री० (फा०) । धनुष । मा० २.४१.२

कमानैं : कमान पर । 'तिलकु ललित सर भृकुटी काम कमानैं ।' जा०मं० ५१

कमाहिं : आ०प्रब० । उपार्जन करते हैं, काम करके पुरस्करादि लाभ पाते हैं । 'सब भूपति भवन कमाहिं ।' गी० १.२.२३

कर : (१) सं०पुं० (सं०) । हाथ । मा० २.४८.७ (२) सम्बन्धार्थक वि०=केर । का । 'कानन काहु राम कर काजू ।' मा० २.५०.२ (३) सं०पुं० (सं०) । किरण । 'हरण मोह तम दिनकर कर से ।' मा० १.३२.१० (४) सं०पुं० (सं०) । हाथी की सूंड । 'करि कर सरिस सुभग भुजदंडा ।' मा० १.१४७.८ (५) (समासान्त में) वि० (सं०) । करने वाला । दिनकर, निसाकर आदि । (६) (समासान्त में) वि० (सं०) । हाथ में धारण किये हुए । 'शूल-सायक-पिनाकासि-कर ।' विन० १०.४ (७) करइ । करती-ती-है, करे, कर सकता है । 'लोकमान्यता अनल सम कर तप काननदाहु ।' मा० १.१६१ क

√कर, करइ, ई : (सं० करोति>प्रा० करइ—करना) आ०प्रए० । करता है, करती है । 'करइ सदा नृप सबकै सेवा ।' मा० १.१५५.४ 'सोइ सादर सर मज्जनु करई ।' मा० १.३९.६

करंत : करत । 'काढ़त दंत करंत हहा है ।' कवि० ७.३९

करउँ, ऊँ : आ०उए० । करता हूं, करती हूं । मा० १.२.४

करउ : आ० प्रेरणा, आज्ञा, प्रार्थना आदि—प्रए० । (सं० करोतु>प्रा० करउ) वह करे । 'सो सतसंग करउ मन लाई ।' मा० १.३९.८

करक : सं०स्त्री० । चाबुक आदि की बरत, प्रहार से जनित लम्बी सूत जैसी लकीर, सूत्राकार लम्बी फटन । 'जानै साई जाके उर कसकै करक सी ।' गी० ४४.२

करकस : कर्कश । हनु० २

करके : भूकृपुं०=ब० । करक उठे, व्रण की सी कसकनदे चले, मर्म स्थान में दरार कीसी पीड़ा देने लगे । 'सर सम लागे मातु उर करके ।' मा० २.५४.१

करकैं : करक+बहु० । बरतें, घर्षण जनित उभरी रेखाएँ । 'बारहि बार अमरषत करषत करकैं परीं सरीर ।' गी० ५.२२.८

करगत : वि० (सं०) । हस्तगत, हाथ में उपस्थित । अपने अधीन, स्ववश । 'करगत बेद तत्त्व सब तोरें ।' मा० १.४५.७

करछुली : सं०स्त्री० । रसोई का उपकरण विशेष जिसे चावल आदि परोसने में काम लाते हैं । दो० ५२६

करज : सं०पुं० (सं०) । अँगुली । 'अरुन पानि न करज मनोहर ।' मा० ७.७७.१

करटन : सं०पुं० (सं० करट) । कौआ पक्षी । 'कटु कुठायँ करटन रटहिं ।' रा०प्र० ३ १.५

करत : वकृ०पुं० (सं० कुर्वत्···प्रा० करंत) । करता-ते । मा० ७.७७ ख

करतब : सं०पुं० (सं० कर्तव्य) । (१) कार्य, काम, करनी । 'करतब बायस बेष मराला ।' मा० १.१२.१ (२) खेल, कौतुक, जादू । कृ० ३९ (३) लीला, प्रपञ्च । 'बिधि करतब उलटे सब अहहीं ।' मा० २.११९.४ (४) छलपूर्ण कार्य । 'मोहि न मातु करतब कर सोचू ।' मा० २.२११.४

करतबउ : करतब भी, कार्यकलाप भी । 'बचन बिकार, करतबउ खुआर ।' कवि० ७.६४

करतबु : करतब+कए० । धोखाधड़ी का अनोखा कर्म । 'जौं अंतहुं अस करतबु रहेऊ ।' मा० २.३५.४

करतब्य : वि०कृ०पुं० (सं० कर्तव्य) । अवश्यकरणीय, विहित (कर्म) । मर्यादानुगत कार्य, इति कर्तव्यता वाले कार्य । 'सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें ।' मा० २.९६.२

करतल : सं०पुं० (सं०) । (१) हथेली । 'करतल गत न परहिं पहिचाने ।' मा० १.२१.५ (२) वशीभूत (हाथ में), अधीन । 'चारि पदारथ करतल तार्कें ।' मा० २.४६.२

करतहि : कर्ता को । विधाता को । मा० २.२६५.८

करता : वि०कृ०पुं० (सं० कर्ता) । करने वाला, विधाता, निर्माता, सृष्ठा । दो० ४१४

करतार : करता । विधाता, ईश्वर । 'होनिहार का करतार ।' मा० १.८४ छं०

करतारा : करतार । मा० ६.१८.६

करतारी : सं०स्त्री० (सं० करताली) । (१) हाथ की हथेड़ी (हस्तध्वनि विशेष) । (२) करताल या चंग, ताल देने हेतु हाथ से बजाया जाने वाला वाद्य विशेष । 'राम कथा सुंदर करतारी ।' मा० १.११४.१

करतारु : करतार+कए० । ईश्वर, दैव । 'भयो करतारु बड़े कूर को कृपालु ।' कवि० ७.६६

करताल : सं० पुं० (सं०) । (१) हथेली । 'कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत ।' कवि० १.४ (२) हाथों से बजाया जाने वाला वाद्य विशेष । 'भट कपाल करताल बजावहिं ।' मा० ६.८८.८

करतालिका : सं०स्त्री० (सं०) । करतल वाद्य, थपेड़ी । 'उड़त बिहग सुनि ताल करतालिका ।' विन० ४८.२

करति : वकृ०स्त्री० (सं० कुर्वती>प्रा० करंती) । करती । 'करति बिलाप मनहिं मन भारी ।' मा० ६.१००.४

करतु : करत+कए० । 'करि बीत्यो अब करतु है ।' विन० १६०.४

करतूति, ती : सं०स्त्री० (सं० कर्तृत्व) । (१) करनी, कर्म । 'ऊँच निवासु नीति करतूती ।' मा० २.१२.६ (२) चालढाल, व्यवहार । 'देखि बूझि करतूति ।' मा० २.२७१ (३) कर्मकौशल, कर्तव्यनिष्ठा । 'जनक सनेहु सीलु करतुती ।' मा० १.३३२.१ (४) रचना, सर्जना, कला-कौशल । 'जनु एतनिअ बिरंचि करतूती ।' मा० २.१.५

करते : (१) वकृ०पुं०ब० । 'पद पंकज प्रेम न जे करते ।' मा० ७.१४.१० (२) क्रियाति०पुं०बहु० । यदि…तो…करते । 'जौं रघुबीर होति सुधि पाई । करते नहिं बिलंबु रघुराई ।' मा० ५.१६.१

करतेउँ : क्रियाति०पुं०उए० । तो मैं करता । 'बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार ।' मा० ४.२८

करतेहु : क्रियाति०पुं०मब० । यदि तुम करते । 'करतेहु राजु त तुम्हहिं न दोषू ।' मा० २.२०७.८

करतो : क्रियाति०पुं०ए० । यदि करता । 'जौ पै चेराई राम की करतो, न लजातो ।' विन० १५१.१

करदा : वि० (१) (सं० कर्ता=फा० कर्द-किया) । करने वाला (?) । (२) (सं० करद) । सहायक, समान, सहभागी । 'राँक-सिरोमनि काकिन भाग, बिलोकत लोकप को करदा है ।' कवि० ७.१५५

करन : (१) सं०पुं० (सं० करण) । करने की क्रिया । 'करन पुनीत हेतु निज बानी ।' मा० १.३६१.८ (२) सं०पुं० (सं० करण) । उपकरण, साधन । इन्द्रिय—जो अन्तःकरण=चित्त, मन, बुद्धि और अहंकार तथा बाह्यकरण=चक्षुः, घ्राण, श्रोत्र, रसना और त्वक् हैं । 'विषय करन सुर जीव समेता ।' मा० १.११७.५ (३) वि०पुं० । करने वाला । 'सकल बिस्व कारन करन ।' मा० १.२०८ ख (४) सं०पुं० (सं० कर्ण) । कान, श्रवण । 'भगति सुतिय कल

करन-बिभूषन ।' मा० १.२०.६ (५) सं०पुं० (सं० कर्ण) । महाभारत में दुर्योधन का मित्र, कुन्तीपुत्र राधेय जो दान के लिए पुराण-प्रसिद्ध है। दो० ३८२ (६) भकृ० अव्यय । करना, करने । 'करन चहहुँ रघुपति गुनगाहा ।' मा० १.८.५ 'करन लगे बड़ जाग ।' मा० १.६०

करनघंट : सं०स्त्री० (सं० कर्णघण्टा) । काशी में तीर्थ विशेष । विन० २२.४

करनधार : सं०पुं० (सं० कर्णधार) । नाविक, मल्लाह । मा० २.१५४.६

करनबेध : सं०पुं० (सं० कर्णवेध) । कनछेदन, शिशु के कान छेदने का कर्म । मा० २.१०.६

करनहार : वि० (सं० करनधार>प्रा० करणहार—करण: नृत्यमुद्रा-विशेष) । नृत्य करने वाली । 'करनहार वारपार पुर पुरंगिनी ।' गी० २.४३.३

करना : करन । करने । 'जाइ बिपिन लागीं तपु करना ।' मा० १.७४.१

करनि : (१) सं० स्त्री० । करने की रीति, कर्म, क्रिया । 'हित जो करत अनहित की करनि ।' कृ० ३० (२) वि०स्त्री० । करने वाली । 'मंगल करनि···कथा रघुनाथ की ।' मा० १.१० छं० (३) करन्हि । हाथों (से) । 'अपने करनि गाँठि गहि दीन्हीं ।' विन० १३६.३

करनिहार : वि०पुं० । करने वाला (सृष्टा) । 'बिधि से करनिहार ।' गी० २.२५.२

करनी : (१) सं०स्त्री० । करने की रीति, क्रिया, करतूत, कार्य । 'आपिहुं तें सब आपनि करनी ।' मा० २.१६०.८ (२) वि०स्त्री० करने वाली । 'राम कथा जग मंगल करनी ।' मा० १.१०.१०

करनीया : भकृ० (सं० करणीय) । (१) करना (होगा) । 'अबधौं बिधिहि काह करनीया ।' मा० १.२६७.७ (२) कर्तव्य, करने योग्य । 'सोइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया ।' मा० २.९६.७

करनू : करन+कए० । एकमात्र करने वाला । 'मधुर मंजु मुद मंगल करनू ।' मा० २.३२६.५

करन्हि : कर+संब० । हाथों (में) । 'कमल करन्हि लिएँ मात ।' मा० १.२४६

करपुट : सं०पुं० (सं०) । हाथों की संपुटित अञ्जलि । गी० १.६.२०

करब : भकृ०पुं० (सं० कर्तव्य>प्रा० करिअत्व) । करना, करने योग्य, करना होगा (करूँगा आदि) । 'तदपि करब मैं काजु तुम्हारा ।' मा० १.८४.२

करबाल : सं०पुं०+स्त्री० (सं० करवाल, करवालिका) । करौली, कृपाण । मा० ६.१०१ छं० २

करबि : करब+स्त्री० । करनी (होगी) । 'भाषाबद्ध करबि मैं सोई ।' मा० १.३१.२

करभ : सं०पुं० (सं०)। करतल मूल से कनगुरिया तक का चिकना पुष्ट हस्त-भाग। 'काम तून तल सरिस जानु जुग, उरु करि कर करभहि बिलखावति।' गी० ७.१७.५

करम : सं०पुं० (सं० कर्मन्)। (१) क्रिया, चेष्टा। कायिक व्यापार। 'करउँ प्रनाम करम मन बानी।' मा० १.१६.७ (२) अनासक्त कर्म, फल-निरपेक्ष क्रिया, कर्मयोग। 'नहिं कलि करम न धरम बिबेकू।' मा० १.२७.७. (३) इतिकर्तव्यता, कर्तव्याकर्तव्य। 'बिधिनिषेधमय······करम कथा।' मा० १.२.६ (४) लीला, अवतारी कर्म। 'जनम करम अगनित श्रुति गाए।' मा० १.११४.३ (५) शुभ, अशुभ तथा मिश्र कर्म जो प्रारब्ध संचित तथा क्रियमाण वर्गों में बँटकर जन्म और फलभोग के कारण बनते हैं। 'करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा।' मा० १.१३७.४ (६) प्रारब्ध, भाग्य। 'करम लिखा जौं बाउर नाहूं।' मा० १.९७.७ (७) रामानन्द दर्शन में ३० तत्त्वों का अन्यतम तत्त्व:— प्रकृति, महत्, अहंकार, मन, १० इन्द्रिय, ५ सूक्ष्म भूत, ५ महाभूत, जीव, परमेश्वर, गुण, काल, स्वभाव और कर्म। 'काल सुभाउ करम बरिआईं।' मा० १.७.२

करमचँद : प्रारब्ध कर्मों के लिए कविकल्पित नाम जो 'भाग्य' को मानवीकरण में प्रस्तुत करता है—भाग्यरूपी पुरुष। 'हमहिं दिहल करि कुटिल करमचँद मंद मोल बिनु डोला रे।' विन० १८९.२

करमठ : वि०+सं०पुं० (सं० कर्मठ)। कर्मरत, कर्मपरायण, कर्मयोगी या कर्म-काण्डी-जन। 'करमठ कठमलिआ कहैं।' दो० ९९

करमन : सं०पुं० (सं० कार्मण)। जादू-टोना; पिशाचादि साधना; मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन की आभिचारिक क्रियाएँ। 'करमन कूट की कि जंत्रमंत्र बूट की।' हनु० २६ (यहाँ 'कारमन' पाठ अधिक उपयुक्त है।)

करमनास : सं०स्त्री० (सं० कर्मनाशा)। एक नदी जिसमें स्नान करने से कर्मों का नाश माना जाता है। मा० २.१९४.७

करमा : करम। मा० ३.३६.२

करमाली : वि०+सं०पुं० (सं० करमालिन्=किरणमालिन्)। किरणों के समूह से युक्त=सूर्य। 'दिवाकर······हिमतम करि केहरि करमाली।' विन० २.२

करमी : वि०पुं० (सं० कर्मिन्)। कर्मकाण्डी, कर्मयोगी, फलासक्ति से रहित कर्म करने वाला। विन० २५९.३

करमु, मू : करम+कए०। (१) भाग्य। 'फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली।' मा० २.२०.४ (२) कर्तव्य कर्म। 'सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ।' मा० २.२९१.१ (३) आचरण, व्यवहार, कार्यकलाप। 'तुम्हहि बिदित सब ही कर करमू।' मा० २.३०५.३

करमुद्रिका : सं०स्त्री० (सं०) । अँगूठी । मा० ४.२३.१०

कररत : वकृ०पुं० (सं० कद्+रटत्>प्रा० करडंत) । कटु रटन करता । 'का का कारत काम । दो० ४३६

करवट : सं० स्त्री (सं० कर-वर्त ?) । पार्श्वपरिवर्तन । मा० २.४३

करवर : सं० स्त्री० (सं० कर्वर=सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक जीव) । (हिन्दी में) संकट, विपत्ति, आकस्मिक उत्पात । 'आजु परी कुसल कठिन करवट तें ।' कृ० १७

करवरें : करवर+ब० । आपत्तियाँ । मा० १.३५७.१

करवा : सं०पुं० (सं० करक>प्रा० करअ) । मिट्टी का जलपात्र । 'मलीन धरें कथरी करवा है ।' कवि० ७.५६

करवाइ : पूकृ० । करवा कर । 'पुनि जागु करवाइ रिषि राजहि दीन्ह प्रसाद ।' स०प्र० १.२.५

करवाई : भूकृ० स्त्री० । मा० १.१०१.१

करवाउब : भकृ०पुं० (सं० कारयितव्य>प्रा० कराविअव्व) । करवाना होगा (करवाएँगे) ।' करवाउब बिबाहु बरिआइ ।' मा० १.८३.६

करवाए : भूकृ० पुं०ब० (सं० कारित>प्रा० कराविअ) । मा० १.१४३.७

करवायउ : भूकृ० पुं० कए० । करवाया । 'मारि निसाचर निकर जग्य करवायउ ।' जा० मं० ३८

करवायो : करवायउ । 'तिन्ह बहु बिधि भज्जन करवायो ।' मा० ६.१०६.६

✓**करवाव करवावइ** : (सं०कुर्वन्त प्रेरयति कारयति>प्रा० करावइ; सं० कारयन्तं प्रेरयति कारयति>प्रा० करवावइ) इस दुहरी प्रेरणा के हिन्द में ही उदाहरण मिलते हैं— दशरथ यज्ञ करते हैं; ऋष्यश्रृङ्ग उन्हें यज्ञ कराते हैं और वसिष्ठ ऋष्यश्रृङ्ग से दशरथ को यज्ञ करवाते हैं । इस सन्दर्भ में इस धातु के ऊपर नीचे बहुल उदाहरण द्रष्टव्य हैं ।

करवावहिं : आ०प्रब०(सं० कारयन्ति>प्रा० करावावंति>अ० करावावहिं) । करवाते हैं । 'साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ।' मा० १.१८४.२

करवावा : भूकृ पुं० (एक०) । (सं० कारित>प्रा० करावाविअ) । करवाया । 'बिबिधि भाँति भोजन करवावा ।' मा० १.२०७.४

करष : सं०स्त्री० (सं० कर्ष) । खिचाव, तनाव (१) द्वेष । 'कंत करष हरिसन परिहरहू ।' मा० ५.३६.६ (२) रोष, आवेश । 'बातहिं बात करष बढ़ि आई ।' मा० ६.१८.४

√**करष करषइ** : (सं० कर्षति>प्रा० करिसइ—खींचना) आ प्रए० । खींचता है, आकृष्ट करता है । 'बहुरि निरखि रघुबरहि प्रेम मन करषइ ।' जा०मं० ७९

करषक : सं०पुं० (सं० कर्षक) । खेतिहर, किसान । 'भइ बरषा करषक बिकल ।' रा०प्र० ७.५.६

करषत : वकृ पुं० (सं० कर्षत्>प्रा० करिसंत) । खींचता, खींचते । 'करषत चित हित हरष अरे रीं ।' गी० १.७६.३

करषतु : करषत+कए० । खिचता, निकलता, खींचता । 'देखत बिषादु मिटै, मोदु करषतु है ।' कवि० ६.५८

करषहिं : आ०प्रब० (सं० कर्षन्ति>प्रा० करिसंति>आ० करिसहिं) । खींचते-ती-हैं । आकृष्ट करते-ती-हैं । 'मनहुं बलाक अवलि मनु करषहिं ।' मा० १.३४७.२

करषा : करष । आवेश, जोश, उत्साह । 'एकन्हि एक बढ़ावहिं करषा ।' मा० २.१९१.२

करषि : पूकृ० । खींच (कर) । 'निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्हि ।' मा० १.१३७

करषी : भूकृ स्त्री० । खींची । 'सुनि प्रभु बचन मोहँ मति करषी ।' मा० २.१०१.५

करषै : करषइ । 'बिप्रचरन चित कहँ करषै ।' विन ६३.४

करष्षत : करषत । 'कतहुं बाजि सों बाजि मर्दि गजराज करष्षत ।' कवि० ६.४७

करसि : आ०मए० (सं० करोषि>प्रा० करसि) । (१) तू करता है । 'करसि हमार प्रबोधु ।' मा० १.२८० (२) तू कर । 'मातु पितहि जनि सोचबस करसि महीपकिशोर ।' मा० १.२७२

करहिं : (१) आ०प्रब० । वे करते हैं । 'खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू ।' मा० १.७.४ (२) आ० उब० । हम करते हैं । 'आयसु देहु करहिं तोइ सिरधरि ।' कृ० ४२

करहिंगे : आ० म०प्रब०पुं० । करेंगे । 'बासु करहिंगे आइ ।' मा० ४.१२

करहि : आ—आज्ञा—मए० । तू कर । 'करहि सदा सत संग ।' दो० २६९

करहीं : करहिं । (१) वे करते हैं । 'सो श्रम बादि बाल कबि करहीं ।' मा० १.१४.८ (२) हम करते हैं । 'हम सभी मृगया बन करहीं ।' मा० ३.१९.१०

करहुं : आ०—इच्छा, प्रार्थना, आशी:—प्रब० । करें । 'भरतहि रामु करहुं जुबराजू ।' मा० २.२७३.७

करहु : आ० मब० । करो । 'कृपा करहु अब सर्व ।' मा० १.७.घ

करहुगे : आ०—भ०पुं०—मब० । करोगे । 'कबहुं रघुबंस मनि सो कृपा करहुगे ।' विन० २११.११

करहू : करहु । करो । 'अवसि नरेस बचन फुर करहू ।' मा० २.१७५.१

कराइ : पूकृ० । करा (कर) । 'राखिनि जतन कराइ ।' मा० ३.२६क

कराइहि : आ०भ०प्रए० । कराएगा । 'सो सीता कर खोज कराइहि ।' मा० ४.४.४

कराई : (१) कराइ । 'चलेउ पवन सुत बिदा कराई ।' मा० ५.८.५ (२) भूकृ० स्त्री० । 'जगत मोरि उपहास कराई ।' मा० १.१३६.३

कराएहु : आ० भ०+अभ्यर्थना+म०ब० । 'तुम कराना । 'सुरति कराएहु मोरि ।' मा० ७.१६क

करामाति : सं०स्त्री० (अरबी—करामत=मुअजज:=जादू आदि+ब० करामात) । विविध आश्चर्य जनक कार्य-समूह, ऐन्द्रजालिक कौतुक—कलाप । 'कासीं करामाति जोगी जागति मरद की ।' कवि० ७.१५८

करायहु : आ०—भूकृ पुं०+मब० । तुमने कराया । 'सुरन्ह प्रोर बिष पान करायहु ।' मा० १.१३६.८

करारा : सं०पुं० (१) (सं० कराल=ऊँचा नीचा धरातल) । नदी आदि का किनारा, ऊँचा तट । 'लखन दीष पय उतर करारा ।' मा० २.१३३.२ (२) (सं० करट=कराट—'क' ध्वनि रटने वाला=काक पक्षी>प्रा० करड=कराड) । कौआ । 'रटहिं कुभाँति कुखेत करारा ।' मा० २.१५८.४

करारें : कगार पर, तीर पर । 'मागत नाव करारें ह्वै ठाढ़े ।' कवि २.५

करारे : करारा+ब० । तट । 'बोरति ग्यान बिराग करारे ।' मा० २.२७६.१

कराल (ला) : वि० (सं०) । (१) विषम, प्रतिकूल, घोर, भयानक । 'जे जनमे कलिकाल कराला ।' मा० १.१२.१ (२) दुर्गम । 'कठिन कुसंग कुपंथ कराला ।' मा० १.३८ ७ (३) अशोभन, बीभत्स । 'भूषन कराल, कपाल कर ।' मा० १ ६३.छं० (४) विशाल काय, दुर्घर्ष, दुर्जय । 'कोल कराल दसन छबि गाई ।' मा० १.१५६ ७ (५) उग्र, असह्य, रौद्र । 'लखी महीप कराल कठोरा ।' मा० २.३१.३

करालताँ : करालता में; दुर्जयता में । 'कालऊ करालताँ बड़ाई जित्यो बावनो ।' कवि० ५.६

करालता : सं०स्त्री० (स०) । घोरता, विषमता, क्रूरता । 'काल भी करालता ।' कवि० ७.८१

करालिका : वि०स्त्री० (सं० कराला=करालिका) । 'विकट, दुर्दभ, घोर (दुर्गा का नाम भी 'कराला' है ।) । 'दलनि दानव दलरण—करालिका ।' विन० १६.२

√कराव करावइ : (सं० कारयति>प्रा० करावइ—करने को प्रेरित करना) आ०प्रए० । कराता है, कराती है । 'गोद राखि कराव पय पाना ।' मा० ७.८८ ८

करावन : भूकृ० (सं० कारयितुम्>प्रा० कराविउं>आ० करावण)। कराना, कराने। 'बिदा करावन हेतु।' मा० १.३३४

करावहु : आ०मब० (सं० कारयत>प्रा० करावह>आ० करावहु)। करावो। 'सयन करावहु जाइ।' मा० १.३५५

करावा : भूकृ० पुं० (सं० कारित>प्रा० कराविऊ)। कराया। 'पुत्र का सुभ जग्य करावा।' मा० १.१८९.५

करावौं : आ०उए० (सं० कारयामि>प्रा० करावमि, करावमु>अ० करावउँ)। कराऊँ, करा सकता हूं। 'पग पानही करावौं।' गी० २.७२.२

करावौंगी : आ—भ० स्त्री० —उए०। कराऊँगी। 'नयन चकोरनि मुख मयंक छबि सादर पान करावौंगी।' गी २.६.२

कराहत : कहँरतं। पीडा ध्यनि करते। 'भूमि परे भट घूमि कराहत।' कवि ६.३२

कराहिं: हीं : (१) करावहिं। बनवाते हैं। 'जौं नृप सेतु कराहिं।' मा० १.१३ (२) करहिं। करते हैं। 'जनम-जनम मुनि जतन कराहीं।' मा० ४.१०.३

कराही : सं० स्त्री० (सं० कराही>प्रा० कडाही)। कढ़ाई, छोटा कड़ाह—पात्र विशेष। 'कनक कराही लंक तलफति ताय सों।' कवि० ५.२४

करि : (१) सं०पुं० (सं० करिन्)। हाथी। 'संगलाइ करिनीं करि लेहीं।' मा० ३.३७.७, १.१४७.८ (२) पूकृ० (सं० कृत्वा>प्रा० करिअ>अ० करिग कर के। 'करि कृपा रामचरन रति देहु।' मा० १.३ख (३) आ०—आज्ञा—मए०। तू कर। 'मेरो कह्यो सुनि, पुनि भावै तोहि करि सो।' विन० २६४.१

करिअ, य कहिऐ, ये : आ कर्मवाच्य—प्रए०। किया जाय, की जाय, कमजए। 'कहिअ कृपा करि करिअ समाजू।' मा० २.४.२ 'अब दीन-दयाल दया करिऐ।' मा० ६.१११.१९

करिअहिं : आ०—कर्मवाच्य—प्रब०। किये जायँ, किये जा रहे हैं। 'नाथ रामु करिअहिं जुबराजू।' मा० २.४.२

करिआ, या : वि० (सं० काल=कालक>प्रा० कालय)। काला, कृष्णवर्ण। 'करिआ मुहु करि जाहि अभागे।' मा० ६.४९.२

करिऐ : दे० करिअ।

करिकर : हाथी की सूँड़। 'उरु करिकर करमहि बिजखावति।' गी० ७.१७.५

करित : करत। 'तो बिनु जगदंब गंग कलिजुग का करित।' विन० १९.३

करिनि, नी : सं० स्त्री० (सं० करिणी)। हथिनी। मा० २.३५.१

करिनीं : करिनी+ब०। हथिनियाँ। 'संग लाइ करिनीं करि लेहीं।' मा० ३.३७.७

करिबर : श्रेष्ठ हाथी। मा० ६.६१.९

करिबर गामिनी : मत्त गजराज की गति के समान गतिवाली। मा० ३.३६.१०

करिबरन्हि : करिबर+संब०। मत्त हाथियों पर। 'कलित करिबरन्हि परीं अंबारीं।' मा० २.३०.१

करिबे : भकृ०पुं० (सं० कर्त्तव्य>प्रा० करिअव्व=करिअव्वय)। करना, करने को। 'जो पै अलि अंत इहै करिबे हो।' कृ० ३९

करिबो : भकृ०पुं०कए० (सं० कर्त्तव्यम्>प्रा० करिअव्व>आ० करिअव्वउ)। करना। 'कियो न कछू करिबो न कछू।' कवि० ७.९१

करिय : करिअ

करिया : करिआ

करिये : करिऐ

करिहउँ : आ०भ०उए०। करूँगा। 'करिहउँ रघुपति कथा सुहाई।' मा० १.१४.१

करिहहिं : आ०भ०प्रब०। करेंगे। 'खल करिहहिं उपहास।' मा० १.८

करिहहु : आ०भ०मब० (सं० करिष्यथ>प्रा० करिहिह>आ० करिहिहु)। करोगे-गी। 'राम काज सब करिहहु।' मा० ५.२

करिहिं : करिहहिं। 'सो महेस···करिहिं कथ मुद मंगल मूला।' मा० १.१५.७

करिहि, ही : आ०भ०प्रए० करेगा। 'गोकुल कौन करिहि ठकुराई।' कृ० ३२ 'मम कृत सेतु जो दूसन करिही।' मा० ६.३.४

करिहैं : करिहहिं। 'भगवानु भलो करिहैं।' कवि ७.६

करिहै : करिहि। 'लरिहै मरिहै करिहै कछु साको।' कवि १.२०

करिहौं : करिहउँ। 'सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं।' मा० २.६७.२

करिहौ : करिहु। करोगे। 'करिहौ कोसलनाथ तजि जबहिं दूसरी आस।' दो० ७१

करीं : भू०कृ०स्त्री०ब०। कीं। 'अनेक क्रिया सुख लागि करीं।' कवि० ७.३२

करी : (१) सं०पुं० (सं० करिन्)। हाथी। (२) करि। करके। 'सुर बदन जय, जय-जय करी।' मा० ६.१०१.छं०१ (३) करिअ। किया जाय। 'कहाँ जाई का करी।' कवि० ७.९७ (४) भूकृ०स्त्री०। की, की नाई, की हुई। 'नन्द नन्दन ह्वो निपट करी सठई।' कृ० ३६ (५) (समासान्त में) वि०स्त्री० (सं०) करने वाली। मा० १ श्लोक ५

करीजे, जै : कीजे (प्रा० किज्जइ=करिज्जइ)। कीजिए, किया जाय। 'दीन जानि तेहि अभय करीजे।' मा० ४.४.३

करील, ला : सं०पुं० (सं० करील)। एक प्रकार का झाड़ जिस में पत्तों के स्थान काँटे ही होते हैं। 'सोह कि कोकिल बिपिन करीला।' मा० २.६३.७

करु : आ०—आज्ञा, प्रार्थना आदि—मए० (सं० कुरु>प्रा० कर>अ० करु, करि)। तू कर। 'करु परितोष मोर संग्रामा।' मा० १.२८१.२

करुआई : सं०स्त्री० (सं० कटुकता>प्रा० कडुआया>आ० कडुआई)। कड़वाहट। 'घूमड तजइ सहज करुआई।' मा० १.१०.९

करुइ : वि०स्त्री० (सं० कटुका>प्रा० कडुई) । कड़वे स्वाद वाली, तीखी, अग्राह्य, अप्रिय । 'ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई ।' मा० २.१६.३

करुणा : सं०स्त्री० (सं०) । कृपा, अनुग्रह । 'करुणा कर'=कृपा करने वाला । मा० ५ श्लो०१

करुणार्द्र : वि० (सं०) । कृपा भाव से तरल हृदय वाला, दीनजन पर अनुग्रह से ओत प्रोत (द्रुत) । विन० ६१.२

करुन : वि० (सं० करुण) । दयनीय, शोकाकुल, कृपापात्र ।

करुनरस : सं०पुं० । काव्य के नौ रसों में अन्यतम जिस का स्थायी भाव शोक, आलम्बन विपन्न इष्ट जन, रोदन आदि अनुभाव, चिन्ता, स्मृति, दैन्य, विषाद आदि व्यभिचारी भाव होते हैं । इस सम्पूर्ण सामग्री से सहृदय में जब साधारणी कृत शोक-वासना व्यक्त होती है तब करुणरस होता है । 'सब भइं मगन करुनरस बानी ।' मा० २.२८४ ५

करुनाँ : (१) करुणा ने । 'मानहुं कीन्ह विदेहपुर करुनाँ बिरह निवासु ।' मा० १.३३७ (२) करुणा से । 'भुवन भरि करुनाँ रहे ।' जा०मं०छं० २२

करुना : करुणा । (१) कृपा दया । 'जेंहि करुना करि कीन्ह न कोहू ।' मा० १.१३.६ (२) दयनीय चेष्टा, विलाप आदि । 'करुना करति संकर पहिं गई ।' मा० १.८७·छं० (३) दैन्य, दुःख, मनोव्यथा । 'करुना परिहरहु अवसर नहीं ।' मा० १.६७ छं०

करुनाऐन : (दे०ऐन) । कृपागार । मा० २.१००

करुनाकर : (दे० करुणा) कृपा करने वाला+कृपागार । मा० २.५७.२

करुनानिधान : करुणाकर । मा० १.१८.७

करुनानिधी : करुनानिधान । मा० १.१२६.४

करुनानिधे : (करुनानिधि+सम्बोधन) हे करुणानिधी । मा० १.६.२०

करुनापुंजा : (सं० करुणापुन्ज) । कृपागार । मा० १.१४८.८

करुनामई : करुनामय+स्त्री० । 'रघुबर प्रकृति करुनामई ।' गी० ३.१७.८

करुनामय : वि० (सं० करुणामय) । कृपा से व्याप्त, दयाप्रावित । 'करुनामय मृदु राम सुभाऊ ।' मा० २.४०.३

करुनायतन : कृपागार, करुणाकर । मा० १.११०

करुनारस : दयारस, दयावीररस । वल्लभाचार्य ने इस को वीररस से पृथक् रस माना है जिसका स्थायी भाव भगवान् की भक्त के प्रति 'दया' है । भक्त आलम्बन, दैन्य आदि उद्दीपन, कष्ट निवारण हेतु चेष्टाएं आदि अनुभाव: धृति स्मृति, चपलता आदि संचारी हैं । 'भू सुन्दर करुनारस पूरन ।' गी० १.२६.४

करुनासिंधु : करुनानिधि । मा० २.७२

करे : भूकृ०पुं० (ब०)। किये, बनाये। 'मानो बिधि बिबिध बिदेह करेरी।' गी० १.७६.१

करेजो : भूकृ०पुं०कए० (सं० कालेयकम्>प्रा० कालेज्जअं>अ० कालेज्जउ)। कलेजा, हृदयखण्ड। 'करेजो कसकतु है।' कवि० ६.१६

करेरी : वि०स्त्री०। अति कठोर, अधिक कड़ी। 'बात कहत करेरी जी।' कवि० ६.१०

करेरो : वि०पुं०कए०। अत्यन्त कड़ा, कठोर (महँगा)। 'मोल करत करेरो।' विन० १४६.२

करेसि : आ०—भूकृ पुं०+प्रए०। उसने किया। 'नाना भाँति करेसि दुर्बादा।' मा० ६.५१.५

करेसु : आ०—भ+आज्ञा+मए०। तू करना। 'करेसु अचल अनुराग।' मा० ८.८५ ख

करेहु, हू : आ०—भ+प्रेरणा+मब०। तुम करना। 'करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी।' मा० १.५२.३

करें : (१) करहिं। करते हैं। 'साखोच्चारु दोउ कुलगुरु करें।' मा० १.३२४. छं० ३ (२) भकृ० अव्यय (सं० कर्तुम्>प्रा० करिउं)। करने। 'मन महुं तरक करें कपि लागा।' मा० ५.६.२

करेंगे : आ०भपुं०प्रब०। 'प्रभु···अभय करेंगे तोहि।' गी० ६.१.६

करै : (१) करइ। करे, कर सकता है। 'जड़ जीवन को करै सचेता।' वैरा० ६ 'क्यों करै बिनय बिदेहु।' मा० १.३२४.छं० ४ (२) भकृ० अव्यय। करने। 'आए करै अकंटक राजू।' मा० २.२२८.५

करैगो : आ० भपुं० प्रए०। करेगा। 'अभय करैगो तोहि।' मा० ६.२०

करैया : वि०। करने वाला। हनु० ४४

करैहहु : आ०भ०मब०। करावोगे। 'हँसी करैहहु पर पुर जाई।' मा० १.६३.१

करो : करउ। वह करे। 'जो जेहि रुचै करो सो।' विन० १७३.२

करोरि, री : कोरी। करोड़ (संख्या)। मा० २.१८७.३

करौं : करउँ। करूँ, कर सकता-ती-हूं। 'करहि बिचारु करौं का भाई।' मा० १.५२.४

करौंगी : आ०भ०स्त्री० उए०। करूँगी। गी २.८.२

करौंगो : आ०भ०पुं०उए०। करूँगा। 'कै न आयों, करौं न करौंगो करतूति भली।' कवि० ७.६५

करौ : (१) करहु। तुम करो। 'घरी करौ हम ज़ोही।' कृ० ४१ (२) करउ। वह करे। 'सो करौ बेगि सँभार श्रीपति।' विन० १३६.४

कर्कश : वि० (सं०)। परुष, कठोर, अस्निग्ध (खरखरा)। 'कपिश कर्कश जटाजूट धारी।' विन० २८.२

कर्ण : महाभारत में दुर्योधन के पक्ष का एक वीर पुरुष जो कुन्ती का पुत्र था। विन० २८.३

कर्ता : वि०पुं० (सं० कर्ता)। करने वाला, कारक। मा० ७.९२.६

कर्तारौ : (सं० पद)। (दो) करने वाले। मा० १.श्लो० १

कर्दम : सं०पुं० (सं०) (१) ऋषि विशेष। मा० १.१४२.५ (२) कीचड़, पङ्क

कर्दमावत : कर्दम=कीचड़ से आव्टत; मल से ढका हुआ। 'कर्दमावत सोवई।' विन० १३६.३

कर्पूर : सं०पुं० (सं०)। सुगन्धित द्रव्य विशेष। कवि० ७.१५०

कर्म : (दे० करम)। (१) कायिक चेष्टा, क्रिया। मा० १.१८.९ (२) तत्त्व विशेष। 'काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ।' मा० १.२०२.२ (३) वर्णाश्रम धर्म के नियत आचरण। 'निज-निज कर्म निरत श्रुति रीती।' मा० ३.१६.६ (४) प्रारब्ध आदि त्रिविध कर्म विपाक। 'जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस।' मा० ४.१०.छं० २ (५) कर्मकाण्ड। मा० ३.३६.छं० (६) शास्त्र विहित या मर्यादानुसार कार्य। 'मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा।' मा० ४.११.८ (७) कौशल। 'सिलिप कर्म जानहिं नलनील।' मा० ६.२३.५ (८) शुभा शुभ आचरण जो भाग्य का रूप लेता है। मा० ७.४१.५.७ (९) व्यवसाय। 'उपरोहित्य कर्म अति मंदा।' मा० ७.४८.६ (१०) अवतारी लीला। मा० ७.५२.३ (११) कर्मयोग, फला शक्ति रहित व्यापार। 'प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं।' मा० ७.१०३.२ (१२) संचित तथा क्रियमाण कर्म जो ज्ञान से समाप्त हो जाते हैं। 'कर्म कि होहिं स्वरूपहि चीन्हें।' मा० ७ ११२.३ (१३) वैष्णव तत्त्व विभाग में अन्यतम तत्त्व मा० ७.२१

कर्मना : (सं० कर्मणा—दे० कर्म)। कर्म से, कार्यों द्वारा। 'मनसा बाचा कर्मना तुलसी बंदत ताहि।' वैरा० २६

कर्मनास : करमनास। कर्मनाशा नदी।। 'मज्जन पान कियो कै सुरिसरि कर्मनास जल छानी।' कृ० ४९

कर्मपथ : कर्मयोग का मार्ग, अनासक्त कर्म मार्ग। विन० १०.७

कर्मा : कर्म। मा० ७.४९.१

कर्मु : कर्म+कए०। विशिष्ट कार्य। 'जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा।' मा० १.१०३.छं०

कर्यो : कियो। किया। 'मायानाथ अति कौतुक कर्यो।' मा० ३.२०.छं०

कर्षण : वि०। खींचने वाला। 'जयति मंदोदरी केश-कर्षण।' विन० २९.४

कल : वि० (सं०) (१) मनोहर। 'भगति सुतिय कल करना बिभूषन।' मा० १.२०.६ (२) मधुर-सूक्ष्म (ध्वनि)। 'सुर सुंदरी करहिं कल गाना।' मा० १.६१.४ (३) कोमल सुकुमार। 'बाल मरालन्ह के कल जोरा।' मा० १.२२१.३ (४) कौशल युक्त। 'कल बल छल करि जाहिं समीपा। मा० ७.११८.८

कलंक : सं०पुं० (सं०)। लाञ्छन, लोकनिन्दा, दोष। मा० २.५०.१

कलंका : कलंक। मा० ५.२३.२

कलंकी : विपुं० (सं०)। लाञ्छित। मा० २.२९९.२

कलंकु, कू : कलंक+कए। विशेष लाञ्छन। 'तब कलंकु अब जीवन हानी।' मा० २.१८९.२

कलई : सं०स्त्री० (अरबी—कलई=सज्जी, एक प्रकार की खारी मिट्टी)। (हिन्दी में) बर्तन आदि पर लगाया जाने वाला विशेष पदार्थ जिससे चमक आ जाती है; दिखावटी रङ्ग, दिखावा। 'बढ़ी कुरीति कपट कलई है।' विन० १३९.५

कलकंठ : सं०पुं० (सं०)। (१) कोकिल पक्षी। 'काक कहहिं कलकंठ कठोरा।' मा० १.९.१ (२) सुन्दर कण्ठ, उत्तम स्वर। 'रिषिबर···गावत कलकंठं हास।' गी० २.४३.२

कलकंठि : (सं० कलकण्ठी)। कोकिला। 'सुनि कलख कलकंठि लजानीं' मा० १.२९७.३

कलकी : सं०पुं० (सं० कल्कि)। दशावतार में अन्तिम भावी अवतार। विन० ५२.९

कलत्र : सं० (सं०)। पत्नी। विन २०४.१

कलधौत : सं०पुं० (सं०)। सुवर्ण। गी० २.१६.१

कलप : सं०पुं० (सं० कल्प)। (१) ७२ चतुर्युगी का समय। (२) १००० युगों का समय (३) ब्रह्मा का दिन (४) सृष्टि से प्रलय तक का समय। 'परहिं कलय भरि नरक महुं।' मा० १.६९

कलपतरु : सं०पुं० (सं० कल्पतरु)। कल्पवृक्ष=स्वर्ग का एक वृक्ष जो अभीष्ट वस्तु देने वाला कहा गया है। मा० १.१०७

कलपद्रुमु : कल्पद्रुम<कलपद्रुम+कए०। कल्पवृक्ष। 'कलपद्रुमु काटत मूसर को।' कवि० ७.१०३

कलपना : सं०स्त्री० (सं० कल्पना) (१) चित्त, अविद्यमान वस्तु की मानस रचना। 'जागि करहि कटु कोटि कलपना।' मा० २.१५७.६ (२) कलात्मक कृति के लिए मन में स्वरूप-संभावना। 'मोरे हृदयँ परम कलपना।' मा०

६.२.४ (३) उत्प्रेक्षा, प्रतीक रचना। 'जगमय प्रभु का बहु कलपना।' मा० ६.१५.८

कलपबल्ली : सं०स्त्री० (सं० कलपवल्ली)। कल्पलता, कल्पतरु समान स्वर्ग की पुराण कल्पित लता जो अभीष्ट दान करती है। विन० १३५.१

कलपबेलि : कलपबल्ली (सं० बल्ली>प्रा०बेल्ली>आ० बेल्लि) मा० २.५९.३

कलपभेद : कल्पान्तर, विविध कल्प। 'कलप भेद हरि चरित सुहाए।' मा० १.३३.७

कलपलता : दे० कलपबल्ली। गी० ३.१२.१

कलपांत : कल्पांत। मा० ७.१०२.छं०

कलपि : कल्पि। 'कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई।' मा० २.२२८.६

कलपित : कल्पित। मनगढंत, संयावित। 'मिट्टी मलिन मन कलपित सूला।' मा० २.२६७.२

कलबल : वि० (ध्वन्यात्मक)। मधुर तथा अस्पष्ट। 'कलबल बचन अपार अरुनारे।' मा० ७.७७.३

कलभ : सं०पुं (सं०)। गजशावक, तीस वर्ष का हाथी। 'काम कलभ कर भुज बल सीवा।' मा० १.२३३.७

कलमले भू०कृ०पुं०बहु० (सं० कल्ल=अव्यक्त शब्द+मल्ल युद्धार्थक धातु—दोनों के योग से बना चेष्टानुकरण—धातु)। कसमसा उठे, कुल बुलाए, तिलमिला गये। 'कोल कूरम कलमले।' मा० १.२६१.छं०

कलमल्यो : भू०कृ०पुं०कए०। कुलबुलाया, कसमसाया, तिलमिलाया। 'कोलु कमठु अहि कलमल्यो।' कवि० १.११

कलरव : सं०पुं० (सं०)। सूक्ष्म मधुर ध्वनि। 'सुनि कलरव कलकंठि लजानीं।' मा० १.२९७.३

कलवारा : सं०पुं० (सं०कल्यापाल—कल्या+मदिरा>प्रा० कल्लवाल)। मद्य व्यवसायी जाति, कलार। मा० ७.१००.५

कलस : सं०पुं० (सं० कलस=कलश)। घट। मा० १.९१.८

कलसनि, न्हि : कलस+संब०। कलशों। 'प्रति मंदिर कलसनि पर भ्राजहिं मनिगन दुति अपनी।' गी० ७.२०.३

कलसजोनि : घटजोनी। अगस्य। बर० ५५

कलसभव : कलसजोनि। गी० ५.५.२

कलह : सं०पुं० (सं०)। विवाद,लड़ाई। मा० ७.१०६.१४

कलहंस : उत्तम जातीय हंस। मा० १.८६.छं०

कलहंसनि : कलहंस+संब०। कलहंसों (ने)। 'कलहंसनि रचे नीड।' गी० १.२९.२

कलहंसा : कलहंस । मा० ३.४०.२

कलहप्रिय : वि० (सं०) । जिसे लड़ाई झगड़ा प्रिय हो, बखेड़िया । मा० २.१६८.२

कलहीन : कलाहीन । प्रकाशहीन, किरण रहित, सौन्दर्य हीन । दो० ५३५

कला : सं०स्त्री० (सं०) । (१) ६४ कलाएँ जिनमें कविता, संगीत आदि की गणना है । 'सकल कला सब बिद्या हीनू ।' मा० १.६.८ (२) निपुणता, कौशल । 'सकल असम सर कला प्रबीना ।' मा० १.१२६.४ (३) ललित रचना । 'कहत पुरान, रची केसव, निजकर करतूति कला सी ।' विन० २२.६ (४) माया, छलप्रपंच, वञ्चना । 'सकल कला करि कोटि बिधि हारेउ सेन समेत ।' मा० १.८६ (५) अंश, वस्तु का सोलहवाँ भाग । जैसे कलातीत, कलाधर ।

कलातीत : वि० (सं०) । निष्कल, अखण्ड, अच्छेद्य, निरन्तर (जिस के अंश न हों) 'कलातीत कल्याण कल्पांतकारी ।' मा० ७.१०८.११

कलाधर : (१) सं०पुं० (सं०) । चन्द्रमा । (२) वि० (सं०) कला को धारण करने वाला (सकल) । 'रजनीश-कल-कलाधर ।' विन० ११.३

कलाप, कलापा : सं०पुं० (सं०) । (१) गुच्छा, पुञ्ज, समूह । 'एहि बिधि करत बिलाप कलापा ।' मा० २.८६.७ (२) मयूर-पिच्छ । 'कँपै कलाप बर बरहि फिरावत ।' गी० ३.१.२

कलापु : कलाप+कए० । समूह । 'तुलसी सुरेस चापु, कैधौंदामिनी कलापु ।' कवि० ५.५

कलि : (१) सं०पुं० (सं०) । चतुर्थ युग । मा० ७.१००अ (२) सं०स्त्री० (सं०) । कलह । 'कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंलू ।' मा० २.२१२.४

कलिंद : सं०पुं० (सं०) । हिमाचल पर्वत माला में पर्वता विशेष निस से यमुनानदी निकली है (अतः 'कालिन्द्री' नाम है) । गी० ७.४.४

कलिंदजा : सं०स्त्री० (सं०) । कालिन्द्री, यमुना नदी । गी० ७.७ ५

कलिकाल, ला : कलिजुग । मा० १.१२.१

कलिजुग : सं०पुं० (सं० कलियुग) । चतुर्युगी का अन्तिम युग । विन० १६.३

कलित : भूकृ वि० (सं०) । (१) विभूषित, अलंकृत, सुसज्जित । 'कलित करिबरन्हि परीं अंबारीं ।' १.३००.१ (२) रचित । 'कनक कलित अहिबेलि बनाई ।' मा० १.२८८.२ (३) ग्रथित, गुम्फित । 'कुंजर मनि कंठा कलित ।' मा० १.२४३ (४) अस्पष्ट-मधुर ध्वनि युक्त । 'मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल गति पर बाजहीं ।' मा० १.३२२.छं० (५) उत्तम, विशिष्ट । 'कोमल कलित सुपेतीं नाना ।' मा० १.३५६.२ (६) उदित, समुदित, स्वच्छ । 'कीरति

कलित लोक तिहुं माची ।' मा० १.३५६.७ (७) परिगणित (कल गति-संख्यानयो:) । 'जासु रूप गुन नहिं कलित ।' गी० ७.६.६

कलिधर्म : कलियुग के गुण दोष । मा० ६.६७ख

कलिमल : कलियुग के दोष । मा० १.५.८

कलिमलो : कलिमल भी । 'गरत तुहिन ज्यों कलिमलो ।' गी० ५.४२.३

कलियुग : कलिजुग । मा० ७.४०

कलिल : सं०पुं० (सं०) । भ्रम, भ्रान्तिसमूह । 'मोह कलित व्यापित मति मोरी ।' मा० ७.८२.७

कलीं : कली+बहु० । कलियाँ । 'कुसुम कलीं बिच बीच बनाई ।' मा० १.२४३.७

कली : सं०स्त्री० (सं० कलि=कलिका) । कुड्मल, अविकसित पुष्प । 'गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के ।' मा० १.२३६.२ (२) कलिकाकार आभूषण । 'कनक कली काननि ।' गी० १.१२.२

कलु : सं०पुं०कए० (सं० कल्यम्—अभिनन्दन, शुभ संवाद>प्रा० कल्लं>अ० कल्लु) । चैन, विश्राम, धृति, सुख । 'औरनि को कलु गो ।' कवि० ४.१

कलुष : सं०पुं० (सं०) । कुसंस्कार, दोष, पाप । मा० १.१६.१

कलुषाई : सं०स्त्री० (सं० कलुषता) । मलिनता, दोष । 'जेहिं पावक की कलुषाई दही है ।' कवि० ७.६

कलेऊ : कलेवा । विन० २००.३

कलेवर : सं०पुं० (सं०) । शरीर । मा० १.१२.२

कलेवरनि : कलेवर+संब० । कलेवरों (ने) । गी० २.३०.१

कलेवा : सं०पुं० (सं० कल्यवर्त) । प्रातराश, नाश्ता, प्रातः काल लिया जाने वाला अल्पाहार । 'नाथ सकल जगु काल कलेवा ।' मा० ७.६४.७

कलेस, सा : सं०पुं० (सं० क्लेश>प्रा० किलेस) । (१) कष्ट, व्यथा । 'परिहरु दुसह कलेस ।' मा० १.७४ (२) त्रिविध दुःख (३) योग के पाँच क्लेशः—अविद्या (मोह, अज्ञान), अस्मिता (अहंकार), राग (आसक्ति), द्वेष (क्रोध, वैर, ईर्ष्या), अभिनिवेश (दुराग्रह, हठ, दूसरे की उन्नति की संभावना मात्र से दुःख) । 'बिनु हरिभजन न जाहिं कलेसा ।' मा० ७.८९.५

कलेसु, सू : कलसे+कए० । 'हरन कठिन कलि कलुष कलेसू ।' मा० २.२२६.६

कलोरे : सं०पुं०ब० (प्रा० कल्हारे) । गाय के तरुण बछड़े । 'बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे ।' कवि० ७.१४४

कल्प : (दे० कलप) । मा० ६.११३घ

कल्पतरु : सं०पुं० (सं०) । कल्पवृक्ष, अभीष्ट दायक स्वर्ग वृक्ष । मा० ६.२६.६

कल्पद्रुम : कल्पतरु । मा० १.श्लो० २

कल्पथालिका : (सं० कल्पस्थालिका) (१) अभीष्ट देने वाली थाली, (२) कल्प वृक्ष का आलवाल (थाला)। 'भंजन भव भार भक्ति कल्प-थालिका।' बिन० १७.२

कल्पना : (दे० कलपना)। उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति रूपक, प्रतीक विधान। 'लोक कल्पना बेद कर अंग-अंग प्रति जासु।' मा० ६.१४

कल्पनातीत : वि० (सं०)। कल्पना से परे, बुद्धि-मन में न आने वाला। विन० ५४.६

कल्पपादप : कल्पतरु। मा० ३.४.२०

कल्पशाखी : सं०पुं० (सं०)। कल्पतरु (शाखी=वृक्ष)। विन० २७.४

कल्पहिं : आ०प्रब०। उत्प्रेक्षित करते हैं, कृत्रिम रूप से निश्चित कर लेते हैं। 'कल्पहिं पंथ अनेक।' मा० ७.१००ख

कल्पांत : कल्प का अवसान, प्रलय काल। मा० ७.५७.१

कल्पान्तकारी : प्रलय करने वाला=शिव। मा० ७.१०८.११

कल्पि : पू०कृ० (सं० कल्पयित्वा)। कल्पित कर, गढ़ कर, मनगढ़ंत से उत्प्रेक्षित कर। 'दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ।' मा० ७.९७क

कल्पित : भूकृ०वि० (सं०)। मनगढ़न्त, स्वरचित, उत्प्रेक्षित। 'सब नर कल्पित करहिं अचारा।' मा० ७.१००.१०

कल्मष : सं०पुं० (सं०) पाप, कलुष, दोष मल। मा० ६.श्लो० २

कल्याण : सं०पुं० (सं०)। मङ्गल, शुभ, उत्तम। मा० ६.श्लो० २

कल्यान, ना : कल्याण। मा० १.२६

कल्यानप्रद : मङ्गलदायक। मा० ४.१०.छं० २

कल्यानमइ, ई : वि०स्त्री० (सं० कल्याणमयी)। कल्याण युक्त। दो० २१२

कल्यानमय : कल्याण रूप, मङ्गल से परिपूर्ण। मा० १.३०३

कल्यानि, नी : सं०+वि०स्त्री० (सं० कल्याणी)। माङ्गलिक लक्षणों से सम्पन्न स्त्री, सौभाग्यवती, परिवारादि के लिए कल्याणप्रद लक्षणों वाली। गी० ७.३२.११

कल्यानु, नू : कल्यान+कए०। 'जेहि बिधि होइ राम कल्यानू।' मा० २.८.६

कल्लोलिनी : सं०स्त्री० (सं०)। नदी, तरङ्गिणी, लहराती हुई नदी। मा० ७.१०८.६

कवच : सं०पुं० (सं०)। वर्म, सन्नाह, युद्ध में लौह परिधान। मा० ६.८०.१०

कवन : प्रश्नार्थक सर्वनाम (सं० किम्>अ० कवण)। क्या, कौन मा० १.५५

कवनि, नी : कवन+स्त्री० (अ० कवणि=कवणी)। क्या, कौन-सी। 'तिन्ह के पापहि कवनि मिति।' मा० १.१८३

कवनिउ : कोई भी (स्त्री०) । 'नर तन सम नहिं कवनिउ देही ।' मा० ७.१२१.९

कवनिहुं : किसी भी (स्त्री०) । 'चिंता कबनिहुं बात कै ।' मा० २.९५

कवनु : कवन+कए० । कौन-सा, कोई एक । 'कारनु कवनु बिसेषि ।' २.३७

कवनें : किस से, में, पर (अ० कवणें) । 'कवनें अवसर का भयउ ।' मा० २.२९

कवने : किस, किन । 'भजन हीन सुख कवने काजा ।' मा० ७.८४.१

कवनेउँ, हुं : किसी भी (पुं०) । 'कवनेउँ जन्म मिटिहि नहि ग्याना ।' मा० ७.१०९.८ 'कवनेहुं जन्म अवध बस जोई ।' मा० ७ ९७.६

कवल : सं०पुं (सं०) । ग्रास । मा० १.३२९.१

कवलित : भू०कृ०वि० (सं०) । ग्रास किया (हुआ) । 'कवलित काल कराल ।' रा०प्र० ६.३.६

कवलु : कवल+कए० । एक ग्रास । 'काल कवलु होइहि छन माहीं ।' मा० १.२७४.३

कवीश्वर : श्रेष्ठ कवि=वाल्मीकि । मा० १.श्लो० ४

कषाय : सं०+वि० (सं०) । (१) भूराग (२) विशेष प्रकार की कड़बाहट जिस में मुँह सूखने लगे, जीभ बंध सी जाय, कण्ठ रुँध जाय । हृदय तक पीड़ित हो उठे । (३) तत्सदृश अनुभूति विशेष जो भावावेश में होती है (४) रोषावेश जनित मुख शोष+कण्ठ रोध+जिह्वास्तम्भन+हृदय—पीडन । 'अरुन मुख भ्रू विकट, पिंगल नयन, रोष कषाय ।' विन० २२०.८

कष्ट : सं०पुं० (सं०) । क्लेश, कठिनाई । 'जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई ।' मा० १.३९.४

कष्ट-साध्य : क्लेश से प्राप्य, कठिनता से सिद्ध होने वाला—जे । मा० १.१६७.१

कष्टी : वि०पुं० (सं०) । कष्ट युक्त । 'त्राहि हरि दास कष्टी ।' विन० ६०.८

कस : (१) वि०पुं० (सं० कीदृश>प्रा० केरिस>अ० कइस) । किस प्रकार का कैसा । 'ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस ।' मा० ७.७८.५ (२) क्रि०वि० । कैसे, किस प्रकार । 'जेहि उर बस स्याम सुन्दर घन तेहि निर्गुन कस आवैं ।' कृ० ३३ (३) क्यों । 'कस न भजहु भ्रम त्यागि ।' मा० ७.७४ख (४) सं०पुं० (सं० कष, कर्ष>प्रा०कए० कस्स) । निचोड़, निचोड़ा हुआ रस, स्वाद । 'बिषय बिरत खटाई नाना कस ।' विन० २०४.२

√**कसक, कसकइ** : (सं० कषाति—कष हिंसत्याम्>प्रा० कसइ, कसक्कइ—चुभना, टीसना) । आ०प्रए० । कसकता है, टीसता है, चुभता है, व्यथित करती है । 'जानै सोई जाके उर कसकै करक सी ।' गी० १.४४.२

कसकतु : वकृ० पुंकए० । कसक अनुभव करता, टीसता । 'करे जो कसकतु है ।' कवि० ६.१६

कसम : सं०स्त्री० (अरबी—कसम=सौगन्द) । शपथ । 'कसम खाइ तुलसी भनी ।' गी० ५.३९.६

कसमसत वकृ०पुं० (सं० कष मष हिंसायाम्) । घर्षण करता, सम्मर्दन पूर्वक गति लेता । गी० ५.२२.९

कसमसात : कसमसत । 'कसमसात आई अति घनी ।' मा० ६.८७.१

कसमसे : भू०कृ०पुं० (ब०) संघर्षण करने लगे, परस्पर घिसने लगे, कुलबुला उठे । 'त्रोन सायक कसमसे ।' मा० ६.९१.छं०

कसहिं, हीं : आ०प्रब० (सं० कषन्ति>प्रा० कसंति>अ० कसहिं) । कष्ट देते हैं, क्लेशित करते हैं । 'करहिं जोग जप तप तन कसहीं ।' मा० २.१३२.७

कसाई : सं०पुं० (सं० कषायिन्=हिंसक>प्रा० कसाई—अरबी कस्साब=बूचर) । पशुवध-व्यवसायी । 'कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है ।' कवि० ७.१८१

कसि : (१) कैसी (अ० कइसी=कइसि) । 'मोरें हृदय कृपा कसि काऊ ।' मा० १.२८०.२ (२) पूकृ० (सं०कसित्वा—कस बन्धने>प्रा० कसिअ>अ० कसि) । कसकर, हढ बाँध कर । 'बाँधि जटा सिर, कसि कटि भाथा ।' मा० २.२३०.२

कसें : क्रि०वि० (सं० कसितेन>प्रा० कसिएण>अ० कसिएँ) । बाँधे हुए (मुद्रा में) । 'मुनिपट कतिन्ह कसें तूनीरा ।' मा० २.११५.८ (२) (सं० कषेंण>प्रा० कसेण>अ० कसें) । कसौटी पर कसने से, निकष-परीक्षण द्वारा । 'कसे कनकु मनि पारीखि पाएँ ।' मा० २.२८३.६

कसे : भकृ०पुं०ब० (सं० कसित>प्रा० कसिय) । बाँधे । 'बसन बन ही के कटि कसे हैं बनाइ ।' कवि० २.१५

कसैहौं : आ०भ०उए० (सं० कषयिष्यामि>प्रा० कसाविहिमि>अ० कसाविहिउँ) । कसौटी पर कसाऊँगा, निकष-परीक्षण कराऊँगा । 'चित कंचनहि कसैं हौं ।' विन० १०५.२

कसौटी : सं०स्त्री० (सं० कष—पट्टिका>प्रा० कसवट्टिआ>अ० कस पट्टी) । निकष, सोना परखने का काला पत्थर । 'स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहि कसैहौं ।' विन० १०५.२

कस्यप : सं०पुं० (सं० कश्यप) । ऋषि विशेष जो प्राणिसृष्टि के आदि पुरुष हैं—विशेषत: देव, दानव, दैत्य, नाग आदि के पिता के रूप में पुराण प्रसिद्ध हैं ।' मा० १.१२३.३

कस्यो : भू०कृ०पुं०कए० । दृढ़ता से बाँधा । 'कटि तट परिकर कस्यो निषंगा ।' मा० ६.८६.१०

कहँ : अव्यय (१) (सं० कुत्र>प्रा० कहिं, कहं)। कहाँ, किस स्थान पर। 'कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही।' मा० २.१५५.२ (२) (सं० कृते=अ० केहिं)। के लिए, के प्रति, को। 'तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं।' मा० ३.१२.३

कहँरत : वकृ०पुं०। कष्ट-ध्वनि करते, कराहते, 'कहँ' ख करते। 'कहँरत भट घायल तट गिरे।' मा० ६.८८.४

कह : (१) कहइ। कहता है। 'गाधिसून्ड कह हृदयँ हँसि।' मा० १.२७५ (२) कहा। क्या। 'कहा लाभ कह हानि।' विन० १९०.५

कहंत, ता : वकृ० पुं० (सं० कथयत्>प्रा० कहंत)। कहता हुआ। 'सापत ताड़त परुष कहंता।' मा० ३.३४.१

✓**कह, कहइ, ई** : (सं० कथयति—कथ वाक्य प्रबन्धे>प्रा० कहइ—कहना, वाक्य बोलना) आ०प्रए०। कहता है। 'उर धरि धीर कहइ गिरिराऊ।' मा० १.६८.८ 'सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई।' मा० १.६९.७

कहउं, ऊँ : आ०उए० (सं० कथयानि>प्रा० कहमि>अ० कहउँ)। कहता हूं, कहती हूं। 'तदपि एक मैं कहउँ उपाई।' मा० १.६९.१

कहउ : आ०—संभावना—प्रए० (सं० कथयतु>प्रा० कहउ)। (कोई) कहे। 'लोग कहउ गुर साहिब द्रोही।' मा० २.२०५.१

कहत : कहंत। कहता, ते। 'कहत रामसिय रामसिय।' मा० २.२०३

कहति : वकृ० स्त्री०। कहती। कह रही। मा० २.१६०.७

कहतु : कहत+कए०। अकेला कह रहा। 'कहतु हौं सोहैं किएँ।' मा० २.३०१छं०

कहते : क्रियाति० पुं०ब०। यदि···कहते···तो। 'जौं···भजन प्रभाउ न कहते···।' विन० ९७.३

कहतेउँ : क्रियाति० पुं० उए०। तो मैं कहता। 'कहतेउँ तोहि समय निरबहा।' मा० ६.६३.७

कहन : भकृ० अव्यय (सं० कथयितुम्>प्रा० कहिउ>अ० कहण)। कहना, कहने (कह)। 'प्रभु सनमुख कुछ कहन न पारहिं।' मा० ७.१७.४ 'लगे कहन हरि-कथा रसाला।' मा० १.६०.५

कहनि : सं०स्त्री० (सं० कथन>प्रा० कहण)। कहने की क्रिया। 'कहनि हीय मुख राम।' वैरा० १७

कहनी : किहनी। कहानी।

कहब : भू०कृ०पुं० (सं० कथयितव्य>प्रा० कहिअव्व)। कहना (है, होगा), कहा जायगा। 'अब कछु कहब जीभ करि दूजी।' मा० २.१६.१

कहबि : कहब+स्त्री०। कहनी होगी। 'हमहुं कहबि अब ठकुर सोहाती।' मा० २.१६.४

कहरत : कहँरत ।

कहरि : पूं०कृ० । कराह कर, व्यथा की ध्वनि निकाल कर, आर्त ध्वनि करके । 'ठहर-ठहर परे कहरि-कहरि उठैं ।' कवि० ६.४२

कहरी : वि० (अरबी—कहर=जबर्दस्ती करना) । बलात्कारी, संकटकारी, आकङ्क ढाने वाला । 'गढ़ दुर्गम ढाहिबे को कहरी है ।' कवि० ६.२६

कहरु : सं०पुं० कए० (अरबी—कहर=बलात्कार) । आतङ्क । 'डरत हौं देखि कलिकाल को कहरु ।' विन० २५०.४

कहसि, सी : आ०मए० (सं० कथयसि>प्रा० कहसि) । तू कहता-ती-है (तू कहे) । 'छोटे बदन बात बड़ि कहसी ।' मा० ६.३१.७

कहहिं, हीं : आ० (१) प्रब० (सं० कथयन्ति>प्रा० कहंति>अ० कहहिं) । वे कहते हैं । 'बचन कहहिं जनु परिमारथी ।' मा० ६.११०.२ (२) उब० (सं० कथयामः>प्रा० कहामो>अ० कहहुं) । हम कहते हैं । 'सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं ।' मा० २.२१०.३

कहहिंगे : आ०भ०पुं० पूब० । कहेंगे । 'क्यों कौसिकहि कहहिंगे ।' गी० १.६६.१

कहहि : आ०—आज्ञा—मए० । तू कह । 'सत्य कहहि दस कंठ सब ।' मा० ६.२३ ख

कहहुं : आ०—संभावना—प्रब० । वे कहें, कहा करें, कहते रहें । 'तो कहहुं जानहुं नाथ ।' मा० ७.१३.६

कहहु, हू : आ०मब० (सं० कथयथ, कथयत>प्रा० कहह>अ० कहहु) । कहो (कहते हो, कहती हो) । 'मधुकर कहहु कहन जो पारो ।' कृ० ३४ 'हम सन सत्य मरम किन कहहू ।' मा० १.७८.३

कहाँ : कहूँ । किस स्थान पर । मा० २.१५५.२

कहा : (१) भू०कृ०पुं० (सं० कथित>प्रा० कहिअ) । कथन किया । 'कहा बिबिध बिधि ग्यान बिसेषा ।' मा० ७.१७.३ (२) सर्वनाम— नपुंसक । क्या । 'करइ त कहहु कहा बिस्वासा ।' मा० ७.४६.३

कहाइ, ई : पूकृ० (सं० कथापयित्त्व>प्रा० कहाविअ>अ० कहावि) । कहला कर । 'मोर दास कहाइ नर आसा करइ ।' मा० ७.४६.३

कहाउति : सं०स्त्री० (सं० कथोक्ति=कथालाप=कथावार्ता>प्रा० कहाउत्ति) । बातप्रिसंग में कथन, बात जीत में आई उक्ति । 'भरत कहाउति कही सुनाई ।' मा० २.२६६.४

कहाउब : भकृ०पुं० (सं० कथापयितव्य>प्रा० कहाविअव्व) । कहलाना, ख्याति लेना । 'नाहिं त छाड़ कहाउब रामा ।' मा० १.२८१.२

कसाए, ये : भूकृ०पुं० । कहलाये । 'लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए ।' मा० ६.६६.८

कहाधौं : (दे० कहा तथा धौं)। क्या भला, कैसे भला, क्यों कर। 'अबहीं ते ये सिखे कहाधौं चरित ललित सुत तेरे।' कृ० ३

कहानी : सं०स्त्री० (सं० कथानिका>प्रा० कहाणिआ>अ० कहानी)। (१) आख्यान। 'कहहिं पुरातल कथा कहानी।' मा० २.१४१.२ (२) वार्तालाप। 'ममता रत सन ग्यान कहानी।' मा० ५.५०.३ (३) सप्रसंग वृत्तान्त। 'सुनब राम बनबास कहानी।' मा० २.२२४.८

कहायहु : आ०—भू०कृ०पुं०+म०ब०। तुम कहलाये। 'निज मुख तापस दूत कहायहु।' मा० ६.२१.६

कहाये : कहाए।

कहायो : भू०कृ०पुं० कए० (सं० कथापितः>प्रा० कहाविओ>अ०कहाविउ=कहावियउ)। कहलाया, कहा गया। 'नाम तुलसी पै भोड़ो तें कहायो दासु।' कवि० ७.१३

कहार : सं०पुं० (सं० कहार ?>प्रा० कहार, काहार—'काहारो जलादिवाही कर्मकरः)। जल आदि ढोने वाली किंकर जाति विशेष। (२) पालकी ढोने वाला। 'बिषम कहार मार मद माते।' विन० १८९.३

कहारन्ह : कहार+सं०ब०। कहारों (ने)। 'भरि-भरि भार कहारन्ह आने।' मा० २.१९३.३

कहारा : कहार। मा० १.३००.७

✓**कहाव, कहावइ** : (सं० कथापयति>प्रा० कहावइ—कहलाना, कहा जाना, कहने को प्रेरित करना, ख्यात होना, नाम पाना) आ०प्रए०। कहलाता है।

कहावउँ : आ०उए। कहलाता हूं। 'कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ।' मा० १.१२.९

कहावत : वकृ०पुं० (सं० कथापयत्>प्रा० कहावंत)। कहलाता। 'लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोरा।' मा० २.३५

कहावती : क्रियाति०स्त्री०ए०। कहलाती। यदि…तो…कही जाती। 'बरही सती कहावती, जरती नाह वियोग।' दो० २५४

कहावहिं : आ०प्रब० (सं० कथापयन्ति>प्रा० कहावंति>अ० कहावहिं)। कहलाते हैं, कहे जाते हैं। 'ते नहिं सूर कहावहिं।' मा० ६.२९

कहावा (१) कहावइ। कहलाता है, कहा जाता है। 'जौं प्रभु दीन दयाल कहावा।' मा० १.५९.६ (२) भकृ०पुं०। कहलाया, कथन कराया। 'प्रेरि सतिहि जेहिं झूठ कहावा।' मा० १.५६.५

कहावौं : कहावउँ। कहलाऊँ, कहा जाऊँ, ख्याति पाऊँ। 'कहौं कहावौं का अब स्वामी।' मा० २.२६७.१

कहाहीं : कहसि । कहते हैं । 'ब्रह्म लोक सब कथा कहाहीं ।' मा० ७.४२.५

कहि : (१) पूकृ० (सं० कथयित्त्वा>प्रा० कहिअ>अ० कहि) । कह कर । 'तौ कहि प्रगट जनावहु सोई ।' मा० २.५०.६ (२) आ०—आज्ञा, प्रार्थना—मए० । तू कह । 'जन की बिनती मानि मातु कहि, मेरे हैं ।' कवि० ७.१६४

कहिअ : आ० कर्मवाच्य—प्रए० (सं० कथ्यते>प्रा० कहीअइ) । कहा जाय, कहना चाहिए । 'इंद्रजालि कहुं कहिअ न बीरा ।' मा० ६.२६.१०

कहिअत : वकृ०—कर्मवाच्य—पुं० । कहा जाता, कहे जाते । 'कहिअत भिन्न न भिन्न ।' मा० १.१८

कहिउँ : आ०—भूकृ० स्त्री०+उए० । मैंने कही । 'उमा, कहिउँ सब कथा सुहाई ।' मा० ७.५२.६

कहिए : कहिअ । 'सो सीतल कहिए जगमाहीं ।' वैरा० ४६

कहिबी : भकृ० स्त्री० (सं० कथयितव्या>प्रा० कहिअव्वा>अ० कहिअव्वी) । कहनी (चाहिए) । 'कहिबी नाम दसा जलाइ ।' विन० ४१.३

कहिबे : भकृ०पुं० (सं० कथयितव्य>प्रा० कहिअव्वय) । कहने योग्य । 'कहिबे कछू कछू कहि जैहै ।' कृ० ४७

कहिबो : भकृ०पुं०कए० (सं० कथयितव्यम्>प्रा० कहिअव्वं<अ० कहिव्वउ) । कहना । 'समुझें ही भलो कहिबो न रखा है ।' कवि० ७.५६

कहियत : अहिअत । 'मधुकर रसिक सिरोमनि कहियत ।' कृ० ५०

कहियो : कहेहु । तुम कहना । 'पथिक…कहियो मातु सँदेसो ।' गी० २.८७.४

कहिसि : आ०भूकृ०स्त्री०<प्रए० । उसने कही-कहीं । 'कहिसि कथा सत सवति कै ।' मा० २.१८

कहिहउँ : आ०भ०उए० (सं० कथयिष्यामि>प्रा०कहिहिमि>अ०कहिहिउँ) । कहूंगा । 'कहिहउँ नाइ राम पद माथा ।' मा० १.१३.९

कहिहहिं : आ०भ०प्रब० (सं० कथयिष्यन्ति>प्रा० कहिहिंति>अ० कहिहिंहि) । कहेंगे 'कहिहहि सुनिहहिं समुझि सचेता ।' मा० १.१५.१०

कहिहि : आ०भ०प्रए० (सं० कथयिष्यति>प्रा० कहिही, कहिहिइ) । कहेगा । 'गिरि जड़ सहज कहिहि सबु लोगू ।' मा० १.७१.५

कहिहु : आ०भूकृ०स्त्री०+मब० । तुमने कही (थी) । 'स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं ।' मा० २.२२.४

कहिहैं : कहिहहिं । कहेंगे, बातचीत करेगे । 'आपुस में कछु पै कहिहैं ।' कवि० २.२३

कहिहै : कहिहि । कहेगा-गी । 'क्यों कहिहै बर नारी ।' कृ० ६ ।

कहिहौं : कहिहउँ । 'और मोहि को है, कहि कहिहौं ।' विन० २३१.१

कहीं : (१) भूकृ०स्त्री०बहु० । 'कहीं कथा उपदेस बिसेषी ।' मा० ४.२६.११ (२) अव्यय । किसी स्थान पर । 'परै न कल कहीं ।' कवि० ७.९८

कही : भूकृ०स्त्री० । वर्णित की । 'तब हनुमंत कही सब राम कथा ।' मा० ५.६

कहीजै : आ०—कर्मवाच्य—प्रए० (सं० कथ्यते>प्रा० कहिज्जइ) । कहा जाए । 'होहिं त क्यों न कहीजें ।' गी० ३.१५.४

कहुं : अव्यय (१) कहीं (कहाँ+हुं) । 'सोभा असि कहुं सुनि अति नाहीं ।' मा० १.२२०.६ (२) को, के लिए, के प्रति (=कहँ) । 'राजु देन कहुं सुभ दिन साधा ।' मा० २.५४.७

कहु : आ०-आज्ञा-मए० (सं० कथय>प्रा० कह>अ० कहु) । तू कह । 'कहु कारनु निज हरष कर ।' मा० १.२२८

कहूं : कहुं । कहीं पर । 'तुलसी कहूं न राम से साहिब सील निधान ।' मा० १.२९क

कहें : (१) कहने से । 'कहें कथा तव परम अकाजा ।' मा० १.१६६.१ (२) कहने में । 'जौं नहिं लगिहहु कहें हमारे ।' मा० २.५०.५

कहे : (१) भूकृ०पुं० (बहु०) (सं० कथित>प्रा० कहिय) । वर्णित किये । 'जहँ लगि कहे पुरान श्रुति ।' मा० १.१५५ (२) कहें । कहने से, पर । 'जौं न चलब हम कहे तुम्हारें ।' मा० १.१६६.७

कहेउँ, ऊँ : आ०भूकृ०पुं०+उए० । मैंने कहा-कहे । 'अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ ।' मा० १.१८५.४

कहेउ, ऊ : भूकृ०पुं०कए० (सं० कथितम्>प्रा० कहिअं>अ० कहिउ=कहियउ) । कहा । 'कहेउ, पुत्रवर मागु ।' मा० १.१७७

कहेन्हि : आ०-भूकृ०पुं०+प्रब । उन्होंने कहा-कहे । 'देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना ।' मा० २.४०.७

कहेसि : (१) आ०-भूकृ०पुं०+प्रए० । उसने कहा । 'पातकिनि कहेसि कोपगृहँ जाहु ।' मा० २.२२ (२) उसने कहे । 'कहेसि अमित आचरज बखानी ।' मा० १.१६३.६

कहेसु : आ०भ०+आज्ञा—मए० । तू कहना । 'कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई ।' मा० ४.१.४

कहेहुं, हूँ : कहने से भी, कहने पर भी । 'मातु कहेहुं बहुरहिं रघुराई । मा० २.२५३.४

कहेहु, हू : आ० (१) भूकृ०पुं०+मब० । तुमने कहा । 'कहेहु नीक मोरेहुं मन भावा ।' मा० १.६२.१ (२) भ०+आज्ञा+मब । 'तुम कहना । कहेहु मोरि सिख अवसरु पाई ।' मा० २.८२.३

कहैं : कहहिं। (१) वे कहें, कहते हैं। 'ऊधो हैं बड़े, कहैं सोइ कीजै।' कृ० ४६ (२) हम कहें, कहते-ती-हैं। 'कोटि जतन करि सपथ कहैं हम।' कृ० ६

कहै : (१) कहइ। कहे, कह सकता है, (कहता है)। 'पाँवरन्हि की को कहै।' मा० १.८५.छं० (२) भकृ० (सं० कथयितुं>प्रा०कहिउ)। कहने। 'कथा पुरातन कहै सो लागा।' मा० १.१६३.४

कहैगो : आ०-भ०पुं०-प्रए०। कहेगा। 'अपने-अपने को तौ कहैगो घटाइ को।' कवि० ७.२२

कहैया : वि० कहने वाला। कवि० १.१६

कहैहौं : आ०भ०उए। कहलाऊंगा। 'यह छरमार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं।' विन० १०४.४

कहो : कह्यो। कवि० ७.९१

कहौं : कहउँ। कहूं। 'कहौं कहावौं का अब स्वामी।' मा० २.२६७.१ (२) कह सकता-ती हूं। 'स्याम गौर किमि कहौं बखानी।' मा० १.२२९.२ (३) कहता-ती हूं। 'गोरस हानि सहौं, न भहौं कछु।' कृ० ३

कहौंगो : आ०भ०पुं०उए०। कहूंगा। 'बहोरि न खोरि लगै, सो कहौंगो।' कवि० ७.१४

कहौ : कहहु। 'सकल कहौ समुझाइ।' मा० ३.१४

कहौगी : आ०भ०स्त्री०मए०। तुम कहोगी। गी० १.७२.३

कह्यो : (१) कहेउ। कहा। 'कह्यो है पछोरन छूछो।' कृ० ४३ 'मुख कोटिहू न परै कह्यो।' मा० १.९९ छं० (२) कहा हुआ तथ्य। 'कह्यो मेरो मानि। कृ० १७ (३) कहेहु। तुमने कहा। 'आक दुहन तुम कह्यो।' कृ० ५१

काँकर : सं०पुं० (सं० कर्कर=कठोर, कर्कर=काँटा>प्रा० कक्कर, कक्कड। सं० कङ्करत=कवच>प्रा० कंकड़। सं० कक्करत>प्रा० कक्खुड—कठोर)। एक प्रकार का प्रस्तर तुल्य कठोर भूमिज खण्ड विशेष, कंकड़। मा० २.६२.५

काँकरीं : काँकर+स्त्री०ब०। कंकड़ियाँ। 'कुस कंटक काँकरीं कुराईं।' मा० २.३११.५

काँकिनी : काकिनी। कौड़ी। विन० १४३.५

काँख : सं०स्त्री० (सं० कक्ष, कक्षा>प्रा० कक्ख, कक्खा)। बगल, भुजमूल का नतोदर भाग। मा० ६.२४

काँच : सं०पुं० (सं० काच>प्रा० कच्च)। शीशा, पारदर्शी धातु विशेष। मा० ७.१२१.१२

काँचमनि : श्रेष्ठ काँच (काँच को काचमणि भी कहते हैं)। गी० २.२.३

काँचहि : काँच को। कंचन काँचहि सम गनै।' वैरा० २७

कांचा : कांच। मा० ७.२७.६

कांचे : कांचहि। 'सम कंचन कांचै गिनत।' वैरा० ३१

कांचो : कांच भी। 'मनि कनक संग लघु लसत बीच बिच कांचो।' विन० २७७.२

कांजी : सं०पुं० (सं० काञ्जिक>प्रा० कंजिअ)। दही का तोड़। मा० २.२३१

कांट : सं०पुं० (सं० कष्ट)। कांटा। विन० १८६.४

कांठे : (सं० कण्ठे=उपकण्ठे) किनारे, समीप, सीमा पर। 'प्रभु आइ परे सुनि सायर कांठे।' कवि० ६.२८

कांड़ि : पूकृ० (सं० कण्डित्वा>प्रा० कंडिअ>अ० कंडि)। कूट कर, छट कर। 'भारी-भारी राउरे के चाउर से कांडिगो।' कवि० ६ २४

कांधी : पूकृ०। कन्धे पर उठाकर, धारण कर। 'उठि सुव पितु अनुशासन कांधी।' मा० १.१८२.३

कांधें : कन्धे पर। 'धनुष बाम बर कांधें। मा० १.२४४.१

कांध्यो : भूकृ०पुं० कए०। कन्धे पर उठाया, आर लिया। 'सकत संग्रामु दसकंधु कांध्यो।' कवि० ६.४

कांपहिं : आ०प्रब० (सं० कम्पन्ते>प्रा० कंपंति>अ० कंपहिं)। कांपते हैं। 'थर-थर कांपहिं पुर नर नारी।'

कांपी : भूकृ०स्त्री०। कम्पित हुई। मा० २.५४.४

कांपु : भूकृ०पुं०कए०। थरथराया, कांपने लगा। 'कांपु तन थर-थर।' पा०मं० ६२ ('शरीर में कम्प' अर्थ लें तो——) सं०पुं०कए०। कँपकँपी।

कांवरि : सं०स्त्री० (प्रा० कावडिआ)। बहँगी। 'भरि-भरि कांवरि चले कहारा।' मा० १.३०५.६

का : प्रश्नार्थक सर्वनाम (सं० किम्>प्रा०कं०>अ०कं०=का)। क्या। 'कहौं कहावौं का अब स्वामी।' मा० २.२६७.१ (२) क्या=कौन-सा। 'का अपराध रमापति कीन्हा।' मा० १.१२४.७ (३) क्या=क्यों। 'का अनमनि हसि, कहु हंसि रानी।' मा० २.१३.५ (४) किस। 'तुम्ह तें अधिक पुन्य बड़ काकें।' मा० १.२६४.६ (५) सम्बन्धार्थक परसर्ग पुं०कए०। 'एहिं बिआहु अति हित सबही का।' मा० १.२२३.१ (६) ध्वनिविशेष। 'का का कररत काग।' दो० ४३६

कांति : सं०स्त्री० (सं० कान्ति)। आभा, ज्योति, छवि। गी० २.१६.१

काई : सं०स्त्री०। (१) एक प्रकार की घास जैसी वस्तु जो गन्दे जलाशयों का पानी ढक लेती है। 'काई कुमति केकई केरी।' मा० १.४१.८ (२) मोर्चा, मैल। 'काई बिषय मुकुट मन लागी।' मा० १.११५.१

काउ, काऊ : अव्यय (सं० कदापि>प्रा० कआवि) । कभी । 'मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊ ।' मा० १.२८०.२ 'सन्मुख चितव कि काउ ।' मा० ६.६४

काक : सं०पुं० (सं०) । कौआ पक्षी । मा० ७.५४

काकपच्छ : सं०पुं० (सं० काकपक्ष) । बालकों के (विशेषत: क्षत्रियों के) घुंघराले केश जो कानों की ओर खिचे लटकते रहते हैं । काकुला । 'काकपच्छ घर, कर कोदंड सर ।' गी० १.५४.१

काकभुसुंड, डि, डी : काकविशेष जिसकी कथा उत्तरकाण्ड में है ।

काकसिखा : (सं० काकशिखा)=काकपच्छ । गी० १.६६.३

काकिनि, नी : सं०स्त्री० (सं० काकिनी, काकिणी) । कौड़ी । कवि० ७.१५५

काकु, कू : सं०स्त्री० (सं० काकु) । (१) परिवर्तित कण्ठध्वनि, ताना, भावावेश में बदले हुए स्वर से कथन ।' जारिउं जायँ जननि कहि काकू ।' मा० २.२६१.६ (२) कहने की रीति जिससे विपरीत अर्थ व्यक्त होता है । 'कहियत काकु कूबरी हूं कौं, सो कुबानि बस नारी ।' कृ० २७

काखासोती : वि० (सं० कक्षाश्रोत्रिक>प्रा० कक्खासोत्तिअ) । एक ओर काँख के नीचे और दूसरी ओर कान के नीचे (कन्धे पर) धारण किया हुआ । 'पिअर उपरना काखासोती ।' मा० १.४१

काग, गा : काका । मा० १.४१

कागद : सं०पुं० । काग़ज़, पत्र । मा० १.६.११

कागभुसुंडि : काकभुसुंडि । मा० ७.५३.८

कागर : सं०पुं० । पंख । कवि० २.२

कागू : काग+कए । एक कौआ, कोई कौआ । 'बैनतेय बलि जिमि यह कागू ।' मा० १.२६७.१

काचा : वि०पुं० । कच्चा, कोमल । अपक्व । मा० ५.३७.१

काचे : 'काचा' का रूपान्तर । कच्चे । 'काचे घट जिमि डारौं फेरी ।' मा० १.२५३.५

काचो : काचा+कए० । कच्चा (बिना पकाया हुआ) । 'सहबासी काचो गिलहिं ।' दो० ४०४

काछिअ : आ०-कर्मवाच्य-प्रए० । पहना जाए, परिधान सजाया जाय । 'जस काछिअ तस चाहिअ नाचा ।' मा० २.१२७.८

काछें : क्रि०वि० । परिधान सजाए, पहने हुए (मुद्रा में) । 'मुनिबर वेष बने अति काछें ।' मा० ३.७.२

काछे : भू०कृ०पुं० (सं० कक्षित>प्रा० कच्छिय) ब० । पहने । 'चौतनी चोलना काछे ।' गी० १.७४.१

काज : सं०पुं० (सं० कार्य>प्रा० कज्ज) । काम, कर्म । (१) 'कल्यान काज बिबाह मंगल···।' मा० १.१०३ छं (२) प्रयोजन, साध्य, लक्ष्य । 'जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ ।' मा० १.४.१ (३) उपयोग, पात्रता, अर्हता । 'बरिबे कौं बोले बैदेही बर काज के ।' कवि० १.८

काजहिं : काम में । 'निज निज काजहिं लाग ।' मा० २.६

काजा : काज । मा० २.७.२

काजु, जू : काज+कए । एक भी कार्य । 'कानन काह राम कर काजू ।' मा० २.५०.२

√काट, काटइ : (सं० कृन्तति—कृती छेदने>प्रा० कट्टइ—काटना, छिन्न करना) आ०प्रए० । काटता है । 'काटइ निज कर सकल सरीरा ।' मा० ६.२६.१०

काटत : वकृ०पुं० (सं० कृन्तत्>प्रा० कट्टंत) । काटता, काटते । 'काटत सिर होइहि बिकल ।' मा० ६.६६

काटन : सं०पुं० (सं० कर्तन>प्रा० कट्टण) । उच्छेदन, खण्डन । 'गर्भ के अर्भक काटन को पटुधार ।' कवि० १.२०

काटहिं : आ०प्रब० (सं० कृन्तान्ति>प्रा० कट्टंति>अ० कट्टहिं) । काटते हैं । 'मारहिं काटहिं धरहिं परारहिं ।' मा० ६.८१.५

काटा : भू०कृ०पुं० (सं० कृत्त>प्रा० कट्ट) । विच्छिन्न कर डाला । 'पालव बैठि पेड़ु एहिं काटा ।' मा० २.४७.५

काटि : पूकृ० । काटकर । 'भुजा काटि महि पारी ।' मा० ६.७०.१०

काटिअ : आ० कर्मवाच्य—प्रए० । काट डालिए । 'काटिअ तासु जीभ जो बसाई ।' मा० १.६४.४

काटिए : काटिअ (सं० कृत्यते>प्रा० कट्टीअइ) । 'काटिए न नाथ बिषहू को रूखु लाइ कै ।' कबि० ७.६१

काटियतु : वकृ०पुं० कए० । काटा जाता । 'सुरतरु काटियतु है ।' कवि० ७.६६

काटी : भूकृ० स्त्री० । खन्डित कर डाली । 'एक बान माया सब काटी ।' मा० ६.५२.७

काटु : आ० आज्ञा—मए० । तू काट डाल । 'धरु मारु काटु पछारु ।' मा० ६.८१.छं० २

काटें : (१) काटने से । 'काटें सीस कि होइअ सूरा ।' मा० ६.२६.६ (२) काटने पर । 'काटें भुजा सोह खल कैसा ।' मा० ६.७०.११

काटे : भूकृ० पुं० (बहु०) । खलित किये । मा० ३.१६ ख

काटेसि : आ०—भूकृ पुं०+प्रए० । उसने काटा, काटे । 'काटेसि पंख परा खग धरनी ।' मा० ३.२६.२२

काटेंहि : काटने पर ही । 'काटेंहि पै कदरी फरइ ।' मा० ५.५८

काटैं : भकृ० (सं० कर्तितुम्>प्रा० कट्टिउं) । काटने । 'श्रवन नासिका काटैं लागे ।' ५.५४.४

काटै : काटइ । काटे, छिन्न करदे । 'जौं सपनें सिर काटै कोई ।' मा० १.११८.२

काठ : सं०पुं० (सं० काष्ठ>प्रा० कट्ठ) । लकड़ी । मा० २.१००.५

काढ़त : वकृ पुं० (सं० कर्षत्>प्रा० कड्ढंत) । (१) खींचता, खींचते । 'प्रति उत्तर सड़सिन्ह मनहुं काढ़त भट दस सीस ।' मा० ६.२३ड० (२) निकालता—ते । 'काढ़त दंत करंत दृहा है ।' कवि० ७.२९

काढ़न भकृ० (सं० कृष्टुम्>प्रा० कड्ढिउ>अ० कड्ढण) । निकालने, खींचने । 'निदरि लगे बहु काढ़ना ।' विन० २१.१

काढ़हिं : आ० प्रब० (सं० कर्षन्ति>प्रा० कड्ढंति>अ० कढ्हिं) निकालते हैं, खींच बाहर करते हैं । 'कथा सुधा मथि काढ़हिं ।' मा० ७.१२० क

काढ़ा : भूकृ० पुं० (सं० कृष्ट>प्रा० कड्ढ, कड्ढिअ) । निकाला । 'सो जनु हमरे माथें काढ़ा ।' मा० १.२७९.३ (२) खींचा, रेखाङ्कित किया । 'मानहुं चित्र मांझ लिखि काढ़ा ।' मा० ३.१०.२४

काढ़ि : पूकृ० । (१) निकाल कर । 'निज कर नयन काढ़ि चह दीखा ।' मा० २.४९.३ (२) खींच कर । 'तब मैं मारबि काढ़ि कृपाना ।' मा० ५.१०.९

काढ़िअ : आ० कर्मवाच्य—प्रए० । निकालिए, खींच बाहर कीजिए । 'बिहगराज बाहन तुरत काढ़िअ मिटै कलेस ।' दो० २३५

काढ़ीं : भूकृ०स्त्री०ब० । निकालीं, उरेहीं, उत्कीर्णकीं । 'सुरप्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं ।' मा० १.२८८.६

काढ़ी : भूकृ० स्त्री० । (१) निकाली । 'समय बिचारि पत्रिका काढ़ी ।' मा० ५.५६.८ (२) उरेहीं (चित्रित की या उत्कीर्ण की) । 'मनहुँ चित्र लिख काढ़ी ।' गी० २.५५.५

काढ़ें : क्रि०वि० । निकाले हुए (मुद्रा में) । 'कहाँ लौं कहौं केहि सों रद काढ़ें ।' कवि० ७.२४

काढ़े : भूकृ०पुं० (ब०) । (१) निकाले, खींच बाहर किए । 'मीन दीन जनु जल तें काढ़े ।' मा० २.७०.३ (२) (रेखाओं में) खींचे, उरेहे । 'जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े ।' मा० २.८४.१

काढ़ेसि : आ—भूकृ पुं०+प्रए० । उसने निकाला, खींचा । 'काढ़ेसि परम कराल कृपाना ।' मा० ३.२९.२१

काढ़ैं : काढ़हिं । निकालते हैं=बाहर करते हैं । 'एक काढ़ैं सौंजा ।' कवि० ६.९

काढ़ो : काढ़्यौ । निकाला=बाहर किया । 'सब असबाबु डाढ़ो, मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो ।' कवि० ५.१२

काढ़ो : आ० मब० । निकालो । 'एक करैं धौंज, एक कहैं काढ़ो सौंज ।' कवि ५.१८

काढ़्यो : भूकृ०पुं० कए० । निकाला, खींचा । 'रोषि बानु काढ़्यो न दलैया दससीस को ।' कवि० ६ २२

कातरि : (१) वि०स्त्री० (सं० कातर) । दीन, विकल ।' देखि परम कातरि महतारी ।' मा० २.६६.१ (२) सं० स्त्री (सं० कर्तरी>प्रा० कत्तरी) । कृपाण । 'तोरि जम कातरि मंदोदरी कढ़ोरि आनी ।' (दे० जम कातरि) हनु० २७

कातिबो : भकृ० पुं० कए० । कातना (चर्खा या तकली से सूत निकालना) । 'करषि कातिबो नान्ह ।' दो० ४९२

कादर : वि०पुं० (सं० कातर>शौरसेनी प्रा० कादर) । कायर, क्लीब, पौरुष हीन । 'जनि मन गुनहु मोहि करि कादर ।' मा० ६.९.७

कान : सं०पुं० (सं० कर्ण>प्रा० कण्ण) । श्रवण । मा० १.१५६.८

कानन : सं०पुं० (सं०) । वन । मा० १.१६१ क

काननचारी : वि०पुं० (सं०) । (१) वन में विचरण करने वाला । मा० ३.११.१८ (२) वन्य, जङ्गली (जीव) । 'धन्य विहगमृग काननचारी ।' मा० २.१३६.२

काननि : कानन्हि

काननु : कानन+कए० । अद्वितीय वन । 'सुन्दर गिरि काननु जलु पावन ।' मा० २.१२४.६

कानन्हि : कान+संब० । कानों (में) । 'कानन्हि कनक फूल छबि देहीं ।' मा० १.२१९.७

काना : कान । मा० १.४.९

कानि, नी : सं० स्त्री० । (१) आदर, मान्यता । 'तू जो हम आदर्‌यो सोतौ नव कमल की कानि ।' कृ० ५२ (२) स्वाभिमान, प्रतिष्ठा । 'रहइ न सीलु सनेहु न कानी ।' मा० १६२.२ ४ (३) साख प्रसिद्धि । 'कबि कुल कानि मानि सकुचानी ।' मा० २.३०३.७

काने : (१) कान+अधिकरण (सं० कर्णे>प्रा० कण्णे) । कान में । 'काने कनक तरीवन ।' रा०न० ११ (२) वि०पुं०ब० (सं० काणा:) । एकाक्ष । 'काने खोरे कूबरे ।' मा० २.१४

कान्ह : सं०पुं० (सं० कृष्ण>प्रा० कण्ह) । अवतारी कृष्ण ।' हेरि कान्ह गोबर्धन चढ़ि गैया ।' कृ० १९

काम : (१) सं०पुं० (सं०) । कामदेव+अन्त: शत्रु विशेष । मा० १.८४; १.३२.७ (२) काम सुख भोग, भोग विषय, काम वासना । 'किंकर कंचन कोह

काम के।' मा० १.१२.३ (३) कामना, फलासक्ति। 'जे बिनु काम राम के चेरे।' मा० १.१८.४ (४) साध्य, प्रयोजन। 'तेहि तेही सन काम।' मा० १.८० (५) कामना=मनोरथ। 'अब पूरे सब काम हमारे।' मा० १.१४६.२ (६) सौन्दर्य गतिरेक की व्यञ्जना हेतु विशेषण रूप में—कामदेव। 'काम कलभ।' मा० १.२३३.७ (७) (सं० कर्म>प्रा० कम्म)। कार्य। 'धाए धाम काम सब त्यागी।' मा० १.२२०.२

कामकाज : प्रयोजन, उपादेयता, सार्थकता। 'पाल्यो नाथ, सह्यो सो-सो भयो काम-काज को।' कवि० ७.१३

कामकेलि : काम क्रीडा=रतिविहटर। (२) कामदेव की क्रीडा। 'कामकेलि बाटिका बिबुध बत।' गी० २.४६.७

कामकृत : कामजनित, कामदेव द्वारा उत्पादित।' मा० १.८५.छं०

कामतरु : कामना पूर्ति करने वाला वृक्ष=कल्पतरु। मा० १.२७.५

कामता : चित्रकूट में 'कामतानाथ' तीर्थ। विन० २४.६

कामद : वि० (सं०)। मनोरथ (काम) का दाता—यथेष्ट दाता या दात्री। 'कामद भेद गिरि राम प्रसाद।' मा० २.२७६.१ 'राम कथा कलि कामद गाई।' मा० १ ३१.७

कामदुधा कामदुहा : सं०स्त्री० (सं०)। कामना पूरक धेनु, देवधेनु, कामधेनु। मा० १.३२६.४

कामधेनु : स्वर्ग की गो विशेष जो कल्प वृक्ष के समान सभी कामनाओं की पूर्ति करती है। मा० १.१५५.१

कामधुक : कामदुग्धा (सं०) कामदुह्—कामधुक्। कवि० ७.११५

कामना : सं०स्त्री० (सं०)। इच्छा, लिप्सा। मा० १.२२

कामबेलि : (सं० कामवल्ली>प्रा० कामवेल्ली)=कल्पलता। गी० २.३४.२

कामभूरुह : कामतरु। विन० १५२.१३

कामरि : सं०स्त्री० (सं० कम्बली)। कमली, छोटा कम्बल। 'तुलसी त्यों-त्यों होइगी गरुई ज्यों-ज्यों कामरि भीजै।' कृ० ४६

कामरिपु : कामदेव के शत्रु=शिवजी। मा० १.१०७.१

कामरूप : वि० (सं०)। इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति वाला। 'कामरूप सुन्दर तन धारी।' मा० १.६४.५

कामसुकु : सं०पुं०कए०। कामक्रीडा जनित सुख। मा० १.८७.८

कामसुरभि : कामधेनु। मा० १.३३१.२

कामा : काम। मा० ४.१५.१०

कामादि, कामादिक : षड्वर्ग—काम, क्रोध, लोभ मोह, मद, मत्सर। मा० १.१५४, १.३७.९

कामारिनी : कामरिपु। शिव। मा० १.१२० क, १.३१५.२

कामिनि : सं०स्त्री० (सं० कामिनी)। प्रमदा, स्त्री। गी० २.५.१

कामिन्ह : कमी+संब। कामियों।' कामिन्ह कै दीनता देखाई।' मा० ३.३९.२

कामिहि : कामी को। 'कमिहि नारि पियारि जिमि।' मा० ७.१३० ख

कामी : वि० (सं०)। (१) विषयी, विषयों की कामना रखने वाला। 'संत संग अपबर्ग कर, कामी भवकर पंथ।' मा० ७.३३ (२) भोगा सक्त, यौन उत्ते-जनाओं से युक्त। 'कामी बचन सती मनु जैसे।' मा० १.२५१.२

कामु : काम+कए०। कामदेव। मा० १.८९.२

कामो : काम भी। 'सकुचत समुझि नाम महिमा मद लोभ मोह कोह कामो।' विन० २२८.२

कायँ : काय से, शरीर से। 'कायँ बचन मन पति पद प्रेमा।' मा० ३.५ १०

काय : सं०पुं० (सं०)। शरीर। मा० ७.८७.८

कायर : वि० (सं० कातर>प्रा० कायर)। कादर। मा० १.२७४

काया : काय। ५.५९.६

कार : (समासान्त में) (१) कारक, करने वाला (२) ध्वनि, शब्द। 'हाहाकार' मा० १.८७.७ 'जयजयकार' मा० ६.७९ आदि।

कारक : कर्ता (सं०)। विन० ६०.७

कारज : सं०पुं० (सं० कार्य)=काज। (१) प्रयोजन। 'प्रभु सुर कारज कीन्ह।' मा० १.१२३ (२) धन्धा, व्यवसाय। 'गृह कारज नाना जंजाला।' मा० १.३८.८ (३) कार्य-कारण सम्बन्ध में उपादान से निर्मित वस्तु।

कारजु : कारज+कए०। 'कारन तें कारजु कठिन।' मा० २.१७९

कारन : सं०पुं० (सं० कारण)। (१) निमित्त, हेतु। 'तेहि कारन आवत हियँ हारे।' मा० १.३८.५ (२) उपादान। 'कारन तें कारजु कठिन।' मा० २.१७९ (३) प्रयोजन। 'करहु कवन कारन तपु भारी।' मा० १.७८.२

कारनी : सं०पुं०। कारण समूह, प्रेरक कारण। (अवधी में) छिपकर प्रतिकूल कर्म की प्रेरणा देने वाला या बखेड़ा पैदा करने वाला। 'काल करम कुल कारनी कोऊ न कोहातो।' विन० १५१.४

कारनु : कारन+कए०। एक कोई कारण। 'कारनु कवनु बिसेषि।' मा० २.३७

कारमन : सं०पुं० (सं० कार्मण)। जादू-टोना, इन्द्रजाल, माया, मारण आदि अभिचार-कर्म। 'कारमन कूटकृत्यादिहंता।' विन० २६.७ (दे० करमन)।

कारमुक : सं०पुं० (सं० कार्मुक)। धनुष। मा० ६.९३.५

कारागृह : सं०पुं० (सं०)। बन्दीघर, जेल। विन० १३६.२

कारिख : सं०पुं०। कालिख, धुएँ आदि से बनी स्याही, कज्जली। 'धूम कुसंगति कारिख होई।' मा० १.७.११

कारिखी : सं० स्त्री०। कारिख। 'न लागै मुंह कारिखी।' मा० १.१५

कारिनि : (समासान्त में) वि०स्त्री० (सं० कारिणी)। करने वाली। 'भव भव बिभव पराभव कारिनि।' मा० १.२३५.८

कारी : (१) (समासान्त में) वि०पुं० (सं० कारिन्)। करने वाला। 'अंड कटाह अमित लय कारी।' मा० ७.६४.८ (२) वि०स्त्री०। काली, कृष्ण वर्णा। 'सो जनु जलदघटा अति कारी।' मा० ६.१३.५

कारुणीक : वि० (सं० कारुणिक)। कृपालु। मा० ७.२ श्लोक ३

कारुनीक : कारुणीक। मा० ६.३७.२

कारून्य : सं०पुं० (सं० कारुण्य)। करूणा, दया। 'नील कंठ कारुन्यसिंधु।' गी० १.८०.१

कारे : वि०पुं० (सं० कालक>प्रा० कालय)। काले, कृष्ण वर्ण। 'महाबीर निसिचर सब कारे।' मा० ६.४६.७

कारो : वि०पुं० (सं० कालः>प्रा० कालो) कए०। काला। 'बदन करम को कारो।' गी० २.६७.२

काल : सं०पुं० (सं०)। (१) मृत्यु। 'नाथ सकल जग काल कलेबा।' मा० ७.९४.७ (२) समय (वर्तमान, भूत, भविष्यत्)। 'चहुं जुग तीनि काल तिहुं लोका।' मा० १.२७.१ (३) दर्शन में पदार्थ विशेष। 'काल सुभाउ करम बरिआई।' मा० १.७.२ (४) यमराज। 'जनु कालदूत उलूक बोलहिं।' मा० ६.७८ छं० (५) वैष्णव तत्त्वविभाग में तत्त्वविशेष—मा० ७.२१

कालउ, ऊ : काल भी। यमराज या मृत्यु भी। 'कालउ तुअ पद नाइहि सीसा।' मा० १.१६५.२

कालकूट : सं०पुं० (सं०)। हालाहक, विष। मा० १.१६.८

कालकूटमुख : वि० (सं०)। (१) जिसके मुंह में विष हो=सर्प आदि (२) विष देने योग्य मुख वाला (३) विष तुल्य वचन बोलने वाला। 'कालकूटमुख पय-मुख नाहीं।' मा० १.२७७.७

कालकूट : कालकूट+कए०। कवि० ७.१५८

कालकेतु : एक राक्षस का नाम। मा० १.१७०.३

कालगहा : वि० (सं० कालगृहीत>प्रा० कालगहिअ)। मौत द्वारा जकड़ा हुआ, मुमूर्ष। 'राखि बिभीषन को सकै, अस काल-गहा को।' विन० १५२.६

कालछेप : सं०पुं० (सं० कालक्षेप)। समय काटन, निर्वाह। 'कालछेप केहिबिधि करहिं।' दो० ४०४

कालदंड : यमराज का दंड=जरा, व्याधि, मरण।' मा० ७.१०६.१३

कालदूत : यमदूत। जरा, रोग आदि। मा० ६.७८ छं०

कालनाथ : काल-भैरव। कवि० ७.१७१

कालनिसा : (दे० निसा) (१) काली अँधेरी रात (२) यमराज की बहिन का नाम (३) अमावस्या की रात (४) आयु के ७७वें वर्ष के सातवें मास की सातवीं रात जो मारक मानी गई है (५) प्रलय। 'कालनिसा सम निसि ससि भानू।' मा० ५.१५.२

कालनेमि : एक राक्षस का नाम। मा० ६.५६.२-३

कालराति : कालनिसा (सं० कालरात्रि)। 'कालराति निसिचर कुल केरी।' मा० ५.४०.८

कालरूप : मृत्यु रूप, मूर्त मृत्यु, सर्वथा विनाशकारी। मा० ६.४८ ख

कालसर्प : (१) काले साँप (२) मृत्यु रूपी सर्प। 'कालसर्प जनु चले सपच्छा।' मा० ६.६८.३

कालहि : काल को। 'कालहि···मिथ्या दोष लगाइ।' मा० ७.४३

कालहु : काल भी। 'कालहु कर काला।' मा० ५.३९.१

काला : काल। मा० १.६०.५

कालि : अव्यय (सं० कल्य, कल्लि)। कल, आगामी प्रातः। मा० २.११.४

कालिका : सं०स्त्री० (सं०)। दुर्गा, महामाया=दुर्गा का तामस रूप। मा० १.४७.६

कालिमा : सं०स्त्री० (सं०पुं०—प्रा० स्त्री०)। कालापन, स्याही, कलङ्क। गी० २.६२.१

काली : (१) कालि। कल। 'सुने जे मुनि सँग आए काली।' मा० १.२९९.४ (२) कालिका (३) काले रंग वाली। 'लंकाँ कोलुप लंकिनी काली काल कराल।' रा०प्र० ५.२.३

कालीना : वि० (सं० कालिक—कालीन ?)। समय वाला।' ग्यानी गुन-गृह बहु-कालीना।' मा० ७.६२.३

कालु, लू : काल+कए०। (१) मृत्यु (२) समय। 'कालु सदा दुरतिक्रम भारी।' मा० ७.९४.८

काल्हि : कालि। कल, पिछले सबेरे। 'बालि दब्नि काल्हि जलजान पाषान किये।' कवि० ६.१९

काव्य : सं०पुं० (सं०)। कविकर्म जिसमें शब्द और अर्थ की संपृक्त रचना रहती है। विन० २८.५

काशी : सं०स्त्री० (सं०)। वाराणसी तीर्थ। मा० ६ श्लोक २

कास : सं०पुं० (सं० काश) । एक प्रकार की ऊँची घास । मा० ४.१६.२

कासीं : काशी में । 'कासीं भरत परम पद लहहीं ।' मा० १.४६.४

कासी : काशी । मा० १.६.८

कासीनाथ : शिव । कवि० ७.१६५

कासीपति : शिव । विन० १३.६

कासीस : (सं० काशीश) । शिव । विन० ६.५

कासु : सर्वनाम (सं० कस्य>प्रा० कस्स>अ० कासु) । किसका-की-के । 'कहिअ होइ भल कासु भलाईं ।' मा० २.२६७.७

काह : प्रश्नार्थक (नपुंसक) सर्वनाम । क्या । 'कानन काह राम कर काजू ।' मा० २.५०.२

काहली : वि० (अरबी—काहिल=सुस्त; काहली=सुस्ती) । काहिल, सुस्त, आलसी, निकम्मा । 'मो से दीन दूबरे कपूत कूर काहली ।' कवि० ७.२३

काहा : काह । 'जाइ उतस अब देहउँ काहा ।' मा० १.५४.२

काहि : (१) किसको, किससे । 'काहि कहै केहि दूषनु देई ।' मा० २.२७३.१ (२) काहू । किसी को । 'सत्रु न काहू करि गनै, मित्र गनै नहिं काहि ।' वैरा० १३

काहीं : किस···से । 'राजु तजा सो दूषन काहीं ।' मा० १.११०.६

काही : काहि । मा० १.२००.५

काहुं, हुं : कोई भी, किसी ने भी । 'दच्छत्रासू काहुं न सनमानी ।' मा० १.६३.१ 'सो फलु तुरत लहब सब काहूं ।' मा० १.६४.२

काहु, हू : काहुं । किसी को आदि । 'सुखद सब काहु ।' मा० १.३२७ 'लोकहुँ वेद बिदित सब काहू ।' मा० १.७.८

काहुक : किसी का । 'अनभल काहुक कीन्ह ।' मा० २.२०

काहुन : किन्हीं का भी । 'लंकदाहु देखें न उछाहु रह्यो काहुन को ।' कवि० ६.१

काहुंहि : किसी को, किसी के प्रति । 'सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ ।' मा० २.२६७.८

काहे : सर्वनाम (सं० कस्मात्>प्रा० काहे) । किस लिए, किस कारण । 'काहे करसि निदानु ।' मा० २.३६

कि : (१) प्रश्नार्थक अव्य (सं० किम्>प्रा० कि) । क्या । 'सीय कि पिय सँगु परिहरिहि ।' मा० २.४६ (२) या अथवा । 'देहु किलेहु अजसु ।' मा० २.३३.६ (३) की (सम्बन्धार्थक परसर्ग—स्त्री०) । 'देखहु प्रीति कि रीति भलि ।' मा० १.५७ ख (४) किमि । कैसे । 'सोपुर बरनि कि जाइ ।' मा० १.६४

किंकर : सं०पुं० (सं०)। दास, परिचारक, सेवक। मा० १.१२.३ वैष्णवमत में 'भगवत्कैंकर्म' ही मुक्ति रूप है, वही जीव का स्वरूप है जिस की अनुभूति परम पुरुषार्थ है। 'दीनबन्धु रघुपति कर किंकर।' मा० ७.२.६

किंकरि, री : किंकर+स्त्री० (सं० किंकरी)। दासी परिचारिका। मा० १.१२०.४

किंकरु : किंकर+कए०। अनन्यदास। 'राम को किंकरु सो तुलसी।' मा० ७.५६

किंकिनि, नी : सं०स्त्री० (सं० किंकिणी)। छोटी घण्टी जो आभूषणों में टँकी रहती है; उन घण्टियों से जटित आभूषण। 'कटि किंकिनी उदर भय रेखा।' मा० १.१९९.४

किंजल्क : सं०पुं० (सं०)। पुष्पकेसर। कृ० २३

किंनर : (सं०) देव जाति विशेष जिसका धड़ मनुष्य का और सिर घोड़े का कहा गया है। मा० १.७ घ

किंनरी : सं०स्त्री० (सं०)। किंगरी; वीणा या सारंगी से मिलता-जुलता वाद्य विशेष। दो० ३५८

किंबा : अव्यय (सं० किंवा)। अथवा। 'नृप अभिमान मोहबस किंबा।' मा० ६.२०.५

किंसुक : सं०पुं० (सं० किंशुक)। टेसू, पलास। मा० ६.५४.१

किआरीं : सं०स्त्री० ब०। क्यारियाँ। 'महाबृष्टि चलि फूटि किआरीं।' मा० ४.१५.७

किआरी : सं०स्त्री० (सं० केदारिका>प्रा० केआरिआ>अ० केआरी)। सिंचाई हेतु मेड़ बाँध कर बनाया हुआ कृषि भाग

किएँ : (१) किए हुए, करके। 'रहि न जाइ बिनु किएँ बरेखी।' मा० १.८१.३ (२) करने से, करने पर। 'किएँ अन्यथा होइ नहिं।' मा० १.१७४

किए, ये : भू०कृ०पुं० (ब०) (सं० कृत>प्रा० किअ, किय)। 'किए कठिन कछु दिन उपबासा।' मा० १.७४.५

किछु : कछु। कुछ। 'बिधि करतब पर किछु न बसाई।' मा० २.२०६.८

कित : अव्यय (सं० कुतः>प्रा० कत्तो)। किधर, किस ओर, कहाँ। 'कुलिस कठोर कहाँ संकर धनु, मृदु मूरति किसोर कित ए री।' गी० १.७८.३

कितहूं : किसी ओर, कहीं। 'जाहु कितहूं जनि।' कृ० ५

कितो : वि०पुं० कए० (सं० कियान्>प्रा० कियत्तो)। 'बरज्यो न करत कितो सिर धुनिए।' कृ० ३७

कितौ : कितना, कितना भी। 'लोचन मोचन बारि कितौ समुझाए।' गी० २.३५.४

किधौं : (कि+धौं)। या कि, या भला, अथवा क्या। 'जम कर धार किधौं बरिनाता।' मा० १.९५.७

किन : (१) अव्यय (सं० किन्न) । क्यों न । 'तो किन जाइ परीछा लेहू ।' मा० १.५२.१ (२) चाहे क्यों न, भले ही । 'मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ ।' मा० १.१५१.५ (३) सं०पुं० (सं० किण) । घट्ठा, घिसने या छिदने आदि से बना चमड़ी पर धब्बा । 'बन फिरत कंटक किन लहे ।' मा० ७.१३.छं० ४

किमपि : अव्यय (सं०) । कुछ भी । 'हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं ।' मा० १.१६२.१

किमि : अव्यय (सं० किम्>आ० किम) । कैसे, किस प्रकार । 'जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि ।' मा० १.१०८

किमिकै : क्यों कर । 'इन्हैं किमिकै बनबासु दियो हैं ।' कवि० २.२०

किय : भू०कृ० (सं० कृत>प्रा० किय) । किया । 'सतीं हृदयँ अनुमान किय ।' मा० १.५७ क

कियउँ : आ—भू०कृ०+उए० । मैंने किया—की । 'सब कियउँ ढिठाई ।' मा० २.२४८.८

कियउ : किय+कए (अ०) । किया । 'कियउ निषादनाथु अगुआईं ।' मा० २.२०३.१

कियत : वि०पुं० (सं० कियत्) । कितना । 'सुख सो समुझ कियत ।' विन० १३२.१

कियहु : आ०—भूकृ०+मब० । तुमते किया । 'कबहुं न कियहु सवतिआ रेसू ।' मा० २.४०.७

किया : किय । मा० १.६८.छं०

कियो : कियउ । 'सुतन्ह समेत गवनु कियो भूषा ।' भा० १.३२८.२

किरणकेतु, (तू) : सं०पुं० (सं०) । सूर्य । 'शत्रु तम तुहिनहर किरणकेतू ।' विन० ४०.१

किरणमालिका : किरण समूह । विन० १६.१

किरणमाली : करमाली सूर्य । विन० २६.१

किरन : सं० (सं० किरण) । मा० १.१९८.७

किरात : सं०पुं० (सं० किर पर्यन्त भूमिमतन्ति सततं गच्छन्तीति किराताः) । पर्वत-प्रदेशों में घूमने वाली जंगली जाति । मा० २.६०.१

किरातन्ह : किरात+सं०ब० । किरातों (ने) । 'यह सुधि कोल किरातन्ह पाई ।' मा० २.१३५.१

किरातिनि : किराती । मा० २.२६

किराती : किराती+स्त्री० (सं०) । मा० २.१३.४

किरातो : किरात भी । 'महिमा उलटे नाम की मुनि कियो किरातो ।' विन० १५१.७

किरिच : सं०स्त्री० (सं० कृत्ति>प्रा० किच्चि) । खण्ड, टुकड़ा। 'कांच क्रिरिच बदले ते देहीं।' मा० ७.१२१.१२

किरिन : किरन । कवि० १.१३

किरीट : सं०पुं० (सं०) । मुकुट । मा० १.११.२

किरीटन्हि : करीट+संब० । मुकुटों (में, पर) । 'पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई।' मा० ७.१०६.१२

किलकत : वक्र पुं० । प्रसन्नतासूचक बचकानी ध्वनि करते हुए। 'भाजि चले किलकत।' मा० १.२०३

किलकन : भक्र० किलकने, किलकारी भरने। 'राम किलकन लागे।' गी० १.१३.१

किलकनि : सं० स्त्री० । किलकारी। मा० ७.७७.७

किलकनियाँ : किलकनि+ब० । किलकारियाँ। गी० १.३४.५

किलकहिं, हीं : आ०प्रब० । किलकारी भरते हैं। 'देखि खेलौना किलकहीं।' गी० १.२८.८

किलकारी : सं० स्त्री (सं० किल—कारिका—परि०)। किलकने की ध्वनि, शिशु-हर्ष-नाद । कवि० ५.३

किलकि : पूक्र० । किलकारी भर कर, किलकिला शब्द करके। 'किलकि-किलक हँसे।' गी० १.३३.४

किलकिला : सं०पुं० (सं०) । हर्ष नाद विशेष, ध्वनि विशेष। 'सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा।' मा० ५.२८.२

किलकिलाइ : पूक्र० । किललिा ध्वनि करके। 'किलकिलाइ गरजा अरु धावा।' मा० ६.६५.३

किलकिलात : वक्र पुं० । किलकिला शब्द करता-ते । गी० ५.२२.६

किलकैं : किलकहिं । 'किलकैं कल बाल बिनोद करैं। कवि० १.३

किलबिषी : वि०पुं० (सं० किल्विविन्) । पातकी । 'मन मलीन कलि कियबिषी।' विन० १६१.६

किसब : सं०पुं० (अरबी—कस्ब=पेशा) । व्यवसाय। 'जानत न कूर कछू किसब कबारु है।' कवि० ७.६७

किसबी : वि० (अरबी—कस्बी=पेशेवर) । व्यवसायी। 'किसबी किसान कुल बनिक भिखारी भाट।' कवि ७.६७

किसलय : सं०पुं० (सं०) । पल्लव । मा० २.६६.२

किसलयमय : पल्लव—निर्मित । 'साँथरी···कुस किसलयमय परम सुहाई।' मा० २.८९.८

किसान, ना : सं०पुं० (सं० कृषाण>प्रा० किसान) । खेतिहर। मा० ४.१५ ८

किसु : कासु । किसका । 'कहहु बसेउ किसु गेह ।' मा० १.७८

किसोर,रा : सं०+वि०पुं० (सं० किशोर) । (१) पन्द्रह वर्ष से कम वयस् का बालक । 'बय किसोर सुषमा सदन ।' मा० १.२२० (२) किशोरावस्था (सं० कैशोर) । 'कौमर सैसव अरु किसोर ।' विन० १३६.६ (३) 'पुत्र' अर्थ में भी प्रचलित है, पर वय का अर्थ सम्मिलित रहता है । 'कहँ गए नृपकिशोर मनु चिता ।' मा० १.२३२.७

किसोरकु : (सं० किशोर:=किशोरक:) किसोर=किसोरक+कए० । एक मनोहर किशोर । 'ससिहि चकोर किसोरकु जैसे ।' मा० १.२६३.७

किसोरी : किसोर+स्त्री० (सं० किशोरी) । १५ वर्ष से कम वयस् की लड़की । (२) किशोरावस्था । 'बीती है बय किसोरी जोबन होनी ।' गी० २.२२.१ (३) किशोरावस्था की पुत्री । 'जय-जय गिरिबरराज किसोरी ।' मा० १.२३५.५

किहनी : कहानी । 'कहि किहनी उपखान ।' दो० ५५४

किहें : किएँ । करने से । 'सकृत प्रनामु किहें अपनाए ।' मा० २.१९९.३

किहेसि : कीन्हेसि । उसने किया । 'किहेसि भँवर कर हरवा ।' बर० ३२

कीं : (दे० की) । (१) की…में । 'रहा बालि कीं काँख ।' मा० ६.२४ (२) की…से । 'छूटहिं सकल राम कीं दाया ।' मा० ३.३९.३ (३) की…को । 'फिरि-फिरि चितव राम कीं ओरा ।' मा० ७.१९.२ (४) की…के लिए । 'आपु रहे मख की राखवारी मा० १.२१०.२

की : (१) सम्बन्धार्थक परसर्ग स्त्री० । 'भव अंग भूति मसान की ।' मा० १.१०.छं० (२) कि । क्या । 'भरत की मातु को भी ऐसो चहियतु है ।' कवि० २.४ (३) कि । अथवा । ' की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ ।' मा० ४.१.१० (४) भू०कृ० स्त्री०=करी । 'करनी न कछू की ।' कवि० ७.८८

कीच : सं०पुं० । कीचड़ । 'अंतहुं कीच तहाँ जहँ पानी ।' मा० २.१८२.४

कीचहिं : कीचड़ में, पङ्क में । 'कीचहिं मिलइ नीच जल संगा ।' मा० १.७.९

कीचा : कीए । मा० १.१९४.८

कीजहु : आ० अभ्यर्थना मब० । तुम करना । 'कीजहु इहै बिचार निरंतर ।' गी० २.११.४

कीजिअ : आ० कर्मवाच्य—प्रए० । कीजिए, किया जाय करिए । 'कीजिअ काजु रजायसु पाई ।' मा० २.३८.२

कीजिऐ : कीजिअ (सं क्रियते>प्रा० किज्जीअइ) । 'आपन दास अंगद कीजिऐ ।' मा० ४.१०.छं २

कीजिय, ये : कीजअ (पालन कीजिए) । 'तजि अभिमान अनख अपनो हित कीजिय मुनिबर बानी ।' कृ० ४८

कीजे, जै : कीजिअ (प्रा०>किज्जीअइ=किज्जइ)। 'तेहि सन नाथमयत्री कीजे।' मा० ४४३ 'ऊधो हैं बड़े कहैं सोइ कीजै।' कृ० ४६

कीट : सं०पुं० (सं०)। क्षुद्रजन्तु—जैसे (१) धुन। 'दास सरीर कीट पहले सुख सुमिरि-सुमिरि बासर निसि घुनिए।' कृ० ३७ (२) कोश कीट, रेशम का कीड़ा। 'पाट कीट तें होइ।' मा० ७ ९५ ख (३) कोई भी छोटा जीव चींटी आदि। 'काह कीट बपुरे नर नारी।' मा० २.२६.३

कीट-भृंग : एक मुहावरा जिस का तात्पर्य है कि भृङ्ग नामक पतिंगा 'झींगुर' के पैर काट कर अपने घरौंदे में रखता है। फिर मँड़राता हुआ आवाज करता रहता है जिस से पतिङ्गा अपवश उसी भृङ्ग के ध्यान में तन्मय हो जाता और कुछ दिनों में भृङ्ग बनकर निकलता है। 'भइ मम कीट-भृंग की नाई।' मा० ३.२५.७

कीटु : कीट+कए०। एक तुच्छ जन्तु। 'को कुंभकनु कीटु।' कवि० ६.२

कीती : सं०स्त्री० (सं० कीर्ति:>प्रा० कित्ती)। यश। 'जासु सकल मंगलमय कीती।' मा० ५.३५.५

कीदहुं : किधौं (दे० दहुं)। उत्प्रेक्षदि सूचक अव्यय। 'कीदहुं रानि कौसिलहिं परिगा भारे रो।' रा०न० १२

कीधौं : किधौं। हनु० ३७

कीने : कीन्हे। विन० १०६.२

कीन्ह, न्हा : किया (दीन्ह की समानता से हिन्दी में प्रयुक्त हुआ)। मा० १.५.१

कीन्हि : कीन्ह+स्त्री०। की, की गई। 'जौं परिहास कीन्हि कछु होई।' मा० २.५०.६

कीन्हिउँ : आ०—भूकृ० स्त्री०+उए०। मैं ने की-कीं। 'आजु लगे कीन्हिउँ तुअ सेवा।' मा० १.२५७.७

कीन्हिसि : आ०—भूकृ० स्त्री०+कए०। उसने की-कीं। 'उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया।' मा० ५.१९.९

कीन्हिहु : आ—भूकृ०स्त्री०+मब०। तुमने की-कीं। 'कीन्हिहु प्रस्न मनहुं अति मूढ़ा।' मा० १.४७.४

कीन्हीं : कीन्हि+ब०। कीं। 'राज बैठि कीन्हीं बहु लीला।' मा० १.११०.८

कीन्ही : कीन्हि। की। 'गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही।' मा० १.९१.५

कीन्हें : करने पर, करने से। 'जे अध तिय बालक बध कीन्हें।' मा० २ २६७.६

कीन्हे : कीन्हे का रूपान्तर (ब०)। किये (बनाये)। 'जहँ तहँ मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे।' मा० १.६५.८

कीन्हेउँ : आ०—भूकृपुं०+उए० । मैं ने किया-किये । 'सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोषा ।' मा० ३.२९.३

कीन्हेउ : कीन्ह+कए० । किया । 'नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना ।' मा० ५.२९.५

कीन्हेसि : आ०—भूकृपुं०+प्रए० । उसने किया-किये । 'कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा ।' मा० ५.२८.४

कीन्हेहु : आ०—भूकृपुं०+मब० । तुमने किया-किये । 'बर पायहु कीन्हेहु सब काजा ।' मा० ६.२०.४

कीन्हो : कीन्ह्यो । 'बाम बिधि कीन्हो कहा ।' मा० २.२७६.छं०

कीन्ह्यो : कीन्हेउ । 'ईस के ईस सों बैरु कीन्ह्यो ।' कवि० ६.१८

कीबी : करबि । करनी (करणीया) । 'तुलसी की बलि बार बरहीं सँभार कीबी ।' कवि० ७.८०

कीबे : करिबे । करने (योग्य) । 'कीबे को बिसोक लोक ।' कवि० ७.१७

कीबो : भकृपुं० कए० । करना, करने योग्य, करने शक्य (किया जा सकेगा) । 'अब ब्रजबास महरि किमि कीबो ।' कृ०९

कीय : किय । विन० २६३.२

कीयो : कियो=कियउ । कवि ७.१७९

कीट : सं०पुं० (सं०) । (१) शुकपक्षी । मा० ३.३८.६ (२) शुकदेव मुनि जिन्हों ने परीक्षित् को भागवत कथा सुनाई थी । 'कह्यो जो भुज उठाइ मुनिबर कीर ।' विन० १९६.१

कीरति : सं० स्त्री० (सं० कीर्ति) । यश, ख्याति । मा० १.३.५

कीरा : सं०पुं० (सं० कीर=कीटक>प्रा० कीउअ) । कीड़ा । 'गरिन जीह मुहँ परेउ न कीरा ।' मा० २.१६२.२

कीरु : कीर+कए० । (कोई एक) तोता । 'कीरु ज्यों नामु रटै तुलसी ।' कवि० ७.६०

कीरैं : कीट को, शुक पक्षी के लिए, तोते के प्रति । 'जैसे पाठ अरथ चरचा कीरैं ।' गी० ६.१५.२

कीर्तन : सं०पुं० (सं०) । कीर्तिगान, गुण-वर्णन । गी० २.४३.२

कीर्ति : कीरति । कवि० ६.५

कील : सं० (सं०) । 'कनक कीलमनि पान संवारे ।' मा० १.३२८.८

कीले : भूकृ०पुं० (ब०) । कील दिए, कीलों से जड़कर निष्क्रिय कर दिए, मन्त्र या किसी अभिशाप से व्यर्थ बना दिए । 'जानत हौं कलि तेरेऊ मन गुन गन कीले ।' विन० ३२.२

कीस, सा : सं०पुं० (सं० कीश>प्रा० कीस) । वानर । मा० १.१८.१

कीसन्ह : कीस+संब० । बानरों (ने) । 'कीसन्ह घेरि पुनि रावनु लियो ।' मा० ६.१००.छं०

√**कुँमिला, कुँमिलाइ** : (सं० कुम्लायति>प्रा० कुमिलाइ>कुम्हिलाइ—मुरझाना) । आ०-प्रए० । मुरझाता है । 'जानि परै सिय हियरें जब कुँमिलाइ ।' बर० १२

कुँवर : कुअँर । गो० १०४.३

कुँवरि : कुअँरि । गी० १०४.३

कु : अव्यय (सं०) । कुत्सित, कलुष, अनुचित, दुष्ट, नीच, प्रतिकूल असाध्य, घोर, विषम आदि अर्थों में यह पूर्वपद होकर आता है । कुपीर, कुआगि, कुरोग, कुसंग आदि बहुश: उदाहरण हैं जिनमें से ऐसे शब्द यहाँ संकलित होंगे जिनमें विशेष अर्थ जुड़ता है ।

कुंकुम : सं०पुं० (सं०) । केसर । मा० १.१९४.८

कुंचित : भूकृ०वि (सं०) । सिकुड़ा या सिमटा हुआ; (केशों के सन्दर्भ में) घुंघराले । 'मेचक कुंचित केस ।' मा० १.२१९

कुंजर : सं०पुं० (सं०) (१) हाथी । मा० १.२४३ (२) (समासान्त में) वि० । श्रेष्ठ । कपिकुंजर ।

कुंजरारी : गजारि । सिंह । कवि० ६.४२

कुंजरो-नरो : संशयसूचक मुहावरा । महाभारत में 'अश्वत्थामा' नाम का हाथी मारा गया था परन्तु द्रोणाचार्य को धोखा देने के लिए सत्यवादी युधिष्ठिर से कहलाया गया—'अश्वत्थामा मृत:' जिससे अपने पुत्र 'अश्वत्थामा' के शोक में मग्न द्रोण को मारा जा सका—वे निर्णय न कर सके कि जो अश्वत्थामा मरा था वह 'कुञ्जर' था या नर । सत्य के रूप में मिथ्या-प्रत्यय या सत्य और मिथ्या के अनिश्चय के अर्थ में इसका प्रयोग होता है । 'स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुंजरो नरो ।' विन० २२६.४

कुंठित : भूकृ०वि० (सं०—कुठि वेष्टने) । वेष्टित, गुट्ठल । 'भा कुठारु कुंठित नृपघाती ।' मा० १.२८०.१

कुंड : सं०पुं० (सं०) । (१) बड़ा पात्र, कूंड़ा । 'जनु फूटहिं दधि कुंड ।' मा० ६.४४ (२) गर्त । 'जग्यकुंड' कवि० ५.७ (३) जलाशय आदि । 'अमृत-कुंड महिलावौं ।' गी० ६.८.२

कुंडल : सं०पुं० (सं०) । कर्णाभरण, कानों का साला । 'कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा ।' मा० १.१४७.५ (२) कोई मण्डलाकार रचना । (३) सर्प की गुँडेली ।' 'कुंडल कंकन पहिरे ब्याला ।' मा० १.९२.२ (यहाँ कर्णाभरण अर्थ भी है) ।

कुंडलनि : कुंडल+संब०। कुण्डलों (ने)। 'कुंडलनि परम आभा लही।' गी० ७.६.३

कुंडु : कुंड+कए०। गर्त, वेदी का गड्ढा। 'जग्यकुंड' कवि० ५.७

कुंत : सं०पुं० (सं०)। कन्नीदार बल्लम=ऐसा भाला जिसका फल चौड़ा होता है और लम्बा दुधारी के साथ पीछे की ओर को भी दो नोकें बनी रहती हैं। 'कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा।' मा० ५.१५.३

कुंद : सं०पुं० (सं०)। (१) श्वेत पुष्प विशेष। 'कुंद इंदु दर गौर सरीरा।' मा० १.१०६.६ (२) शाणयन्त्र जिस पर छुरे आदि की धार तेज की जाती है। (३) बढ़ई आदि का पहिएदार उपकरण विशेष जिस पर लकड़ी आदि को गढ़ने-छीलने के बाद चिकनाया जाता है। 'गढ़ि-गुढ़ि छोलि छालि कुंद की सी भाईं बातें। कवि० ७.६३

कुंभ : सं०पुं०(सं०)। (१) कलश, घट। दे० कुंभज आदि। (२) हाथी का कपोल मण्डल। 'मत्तनाग तम कुंभ बिदारी।' मा० ६.१२.२

कुंभऊकरन : कुम्भकर्ण भी। 'कुंभऊकरन भाइ रक्षो पाइ आह सी।' कवि० ६.४३

कुंभकरन : (सं० कुम्भकर्ण) रावण का एक अनुजा। मा० ६.६२

कुंभकरन्न : कुंभकरन। हनु० १६

कुंभकरन्नु : कुंभकरन्न+कए। कवि० ६.५७

कुंभकनुं : 'कुंभकर्न'+कए० (सं० कुम्भकर्णः)। 'को कुंभकनुं कीटु।' कवि० ६.२

कुंभज : सं०पुं० (सं०)। अगस्त्य मुनि जिन्हें 'मैत्रावरुणि' भी कहते हैं—मित्र और वरुण ने घड़े में शुक्रपात किया जिससे उनका जन्म हुआ। एक चुल्लू में समुद्र पी लेने की पौराणिक कथा भी है। मा० १.३२.६

कुंभजात : कुंभज (सं०)। विन० ५३.८

कुंभसंभव : (दे० संभव)=कुंभज। विन० ४०.३

कुंभीश : (सं०) कुंभी=हाथी+ईश। श्रेष्ठ हाथी, गजराज। विन० १५.४

कुअँर : सं०पुं० (सं० कुमार>प्रा०कुमार>अ० कुवँर)=कुमार। मा० १.२२९.१

कुअँरन, न्ह, कुवँरन, न्ह : कुअंर+संब०। कुमारों। 'तेज प्रताप बढ़त कुवँरन को।' गी० १.८०.५

कुअँरि, कुवँरि : सं०स्त्री० (सं० कुमारी>प्रा० कुमरी>अ०कुवँरि)=कुमारी। मा० १.३३८

कुअँरु : कुअँर+कए०। 'साँवर कुअँरु सखी सुठि लोना।' मा०१.३२५.१

कुअँरोटा : छोटे कुवँर। लघु वयस्क मनोहर कुमार। 'कोसलराय के कुअँरोटा।' गी० १.६२.१

कुअंक : अशुभ चिन्ह, कुलक्षण की रेखाएँ। 'मेटत कठिन कुअंक भाल के।' मा० १.३२.६

कुअवसर : अनुपयुक्त अवसर, प्रतिकूल परिस्थिति। 'भयउ कुअवसर कठिन संकोचू। मा० २.२१३.१

कुअवसरु : कुअवसर+कए०। अद्वितीय प्रतिकूल समय। 'कुटिल कुबन्धु कुअवसरु ताकी।' मा० २.२२८.४

कुआर : वि०पुं०—अविवाहित (कुमार)। 'अहइ कुआर मोर लघु भ्राता।' मा० ३.१७.११

कुआरि : वि०स्त्री०—अविवाहिता (कुमारी)। 'कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ।' मा० १.२५२.५

कुआरी : कुआरी। 'बरऊँ संभु न त रहउँ कुआरी।' मा० १.८१.५

कुकवि : कुत्सित कवि, काव्य कौशल तथा व्युत्पत्ति से रहित कवि, प्रतिभाहीन अरसिक कवि। मा० १.१०.५

कुकरमू : कुकरम+कए०। एकमात्र (अद्वितीय) पापाचार; कलुषित कर्म। 'आरत काह न करइ कुकरमू।' मा० २.२०४.७

कुकाठ : अनुपयोगी काठ, अशुभ काष्ठ, अमङ्गलकारी लकड़ी। 'कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंलू। मा० २.२१२.४

कुकाठु : कुकाठु+कए०। दूषित लकड़ी, गँठीला अनुपयोगी काष्ठ। 'दस आठ को पाठु कुकाठ ज्यों फारैं।' कवि० ७.१०४

कुकृत : (सुकृत का विलोम) कुकृत्य कलुषकर्म। विन० २६३.२

कुखेत : कुत्सित क्षेत्र, अशुभ भूभाग (जो स्वतः अपशकुन हो)। 'रटहिं कुभाँति कुखेत करारा।' मा० २.१५८.४

कुगहनि : कुत्सित पकड़, दुराग्रह+ऐसी दबोच जिससे स्वयं छूटना असंभव हो। 'मीचु बस नीच हठि कुगहनि गही है।' गी० ५.२४.२

कुगांव : असभ्य निवासियों वाला गाँव, निन्दित+उपेक्षित बस्ती। 'बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा।' मा० २.२२३.७

कुघरी : कुअवसर, अनुपयुक्त घड़ी, ऐसी घड़ी जिसमें कोई प्रस्ताव उपयुक्त नहीं होता। 'घरी कुघरी समुझि जियँ देखू।' मा० २ २६.८

कुघाइ : कुघाय। दो० ३२५

कुघाउ : कुघाय+कए०। अति कष्टकर घाव जिसका उपचार असंभव हो, असाध्य क्षत। 'निज तन मरम कुघाउ।' विन० १००.६

कुघातु : कुघाड़ा। कड़ी चोट, विश्वासघात+दुःसाध्य आघात। 'बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृहँ जाहु।' मा० २.२२

कुघाय : (दे० घाय)। मर्मान्तिक आघात, असाध्य आघात, करारी चोट। 'असन बिनु बन, बरम बिनु रन, बच्यो कठिन कुघाय।' गी० ७.३१.२

कुच : सं०पुं० (सं०) मुकुलितप्राय स्तन। विन० १४.५

कुचरचा : कुत्सित चर्चा, अपवाद, लोकनिन्दा। 'राम कुचरचा करहिं सब सीतहि लाइ कलंका।' रा०प्र० ६.६.४

कुचाल : कुचालि। कृ० ६१

कुचालि, ली : सं०स्त्री० (सं० कुचाल>प्रा० कुचल्ली) (१) कुत्सित गति (नृत्य की गतिविशेष को प्राकृत में 'चल्ली' कहते हैं)। लयहीन गति, असंगत चाल, छलना, प्रपञ्च। 'फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली।' मा० १.२९.६ (२) वि०। छली, प्रपञ्ची, धूर्त। 'बिघन मनावहिं देव कुचाली।' मा० २.११.६ 'कुपथ कुतरक कुचालि कलि।' मा० १.३२

कुचाह : अशुभ समाचार। 'कठिन कुचाह सुनाइहि कोई।' मा० २.२२६.७

कुछ : कछु। कृ० ४५

कुज : सं०पुं० (सं०)। कु=पृथ्वी का पुत्र=मङ्गल ग्रह। गी० १.२६.५

कुजंतु : क्षुद्र कीट-पतङ्ग, दूषित (अभक्ष्य) जीव। 'जनम भरि खाइ कुजंतु जियो हौं।' गी० ३.१४.२

कुजंत्रू : सं०पुं० (सं० कुयन्त्र)+कए०। अटपटा यन्त्र, बढ़ई आदि का रद्दी-सा उपकरण जिसमें फंसाकर वह लकड़ी ठीक से नहीं गढ़ पाता फिर भी अपटू कारीगर उसी से काम करता है। मा० २.२१२.४

कुजन : (१) कु=पृथ्वी भर के लोग। (२) कुत्सित जन, दुष्टजन। 'कुजनपाल गुन बर्जित अकुल अनाथ।' बर० ३५

कुजाचक : अनुचित प्रार्थना करने वाला, अदेय या अलभ्य वस्तु की माँग करने वाला। विन० १७७.४

कुजाति, ती : (१) अधम जाति वाला। 'साधु असाधु सुजाति कुजाती।' मा० १.६५ (२) अधम जाति। 'धिग तव जन्म कुजाति जड़।' मा० ६.३३क

कुजुगुति : दूषित तर्क (हेत्वाभास)। गी० २.७८.१

कुजोग : (दे० जोग) प्रतिकूल योग, मिश्रण, मिलावट आदि। 'ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग। होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग। मा० १.७क

कुजोगनि : कुजोग+संब०। कुयोगों (ने), ग्रह आदि के पापयोगों ने। 'घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यों।' हनु० ३५

कुजोगी : दम्भी योगी, योगभ्रष्ट पति। मा० ६ ३४.१४

कुजोगु : कुजोग+कए० । (१) पापग्रह-योग+विपरीत परिस्थिति । 'मिटिहि कुजोगु राम फिरि आएँ ।' मा० २.२१२.६ (२) दम्भपूर्ण समाधि (योगी का भ्रष्ट योग) । जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू ।' मा० २.२६१.२

कुटि : वि० (सं० कुटि=कौटिल्य) । कुटिल, वक्र । 'बड़े नयन कुटि भृकुटी भाल बिसाल ।' बर० १

कुटिल : वि० (सं०) (१) वक्र, टेढ़ा । 'माखे लखनु कुटिल भईं भौहैं ।' मा० १.२५२.८ (२) कुञ्चित । 'कुटिल केस जन मधुप समाजा ।' मा० १.१४७.५ (३) मानस स्तर पर ग्रन्थियुक्त, कपटी । 'कुटिल कुबन्धु'—मा० २.२२८.४

कुटिलई : कुटिलाई । मा० ७.१२१.३४

कुटिलपन : (दे० पन) । कुटिलता । 'रचि पचि कोटिक कुटिलपन ।' मा० २.१८

कुटिलपनु : कुटिलपन+कए० । (यही एक) कुटिलता । 'कारनु कवल कुटिलपनु ठाना ।' मा० २.४७.६

कुटिलाईं : (१) कुटिलता ते । 'सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाईं ।' मा० २.१७८.१ (२) कुटिलता से । 'कपट कुटिलाईं भरे ।' कवि० ७.११६ (३) कुटिलता में । 'तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाईं ।' मा० २.१८४.६

कुटिलाई : सं०स्त्री० (सं० कुटिलता>प्रा० कुटिलया) । टेढ़ाई, वक्रता । मा० २.६

कुटी : सं०स्त्री० (सं०) । पर्णशाला, झोंपड़ी । गी० २.४६.५

कुटीर : सं०पुं० (सं०—ह्रस्वा कुटी कुटीरः) । छोटी कुटी । मा० २.३२१

कुटीरा : कुटीर । मा० २.३२३.२

कुटुंब : सं०पुं० (सं०) । परिवार, परिजन, पारिवारिक कार्यकलाप । एक रसोई में सम्मिलित जनसमूह । मा० १.१७२

कुटुंबी : वि०पुं० (सं० कुटुम्बिन्) । गृहपति, परिवार का स्वामी । मा० ४.१६.८

कुटेब : (दे० टेव) कुत्सित स्वभाव । 'मेरिऔ टेव कुटेव महा है ।' कवि० ७.१०१

कुठाकुर : (दे० ठाकुर) । अनाचारी स्वामी, अभीष्ट विरोधी राजा आदि । विन० १७०.५

कुठाट : कलुषित साजसज्जा, अनुचित कार्यों की प्रवृत्ति । 'काया नहिं छाड़ि देत ठाटिबो कुठाट को ।' कवि० ७.६६

कुठाटु : कुटार+कए० । अनोखा दुःखद साज । 'सोहि लगि यहु कुठाटु तेहिं ठाटा ।' मा० २.२१२.५

कुठायँ : (१) कुत्सित स्थान पर+(२) मर्म स्थान पर (३) रक्षक हीन शून्य स्थान पर । 'मारेसि मोहि कुठायँ ।' मा० २.३०

कुठाय : (१) अरक्षित स्थान (२) मर्म प्रहार । 'देखि बंधु सनेह, अंब सुभाउ, लखन कुठाय ।' गी० ६.१४.५

कुठार : सं०पुं० (सं०) । कुल्हाड़ा, परशु । मा० १.२७६

कुठारधर : परशुराम । कवि० ७.११२

कुठारपानि : परशुपाणि=परशुराम । कवि० ५.१६

कुठारा : कुठार । मा० ६.२६.२

कुठारी : सं० स्त्री० (सं०) । कुल्हाड़ी, छोटा कुठार । मा० १.११४.२

कुठारु, रू : कुठार+कए० । 'भा कुठारु कुंठित नृपघाती ।' मा० १.२८०.१

कुठाहर : प्रतिकूल स्थान, विपरीत परिस्थित, कुअवसर । मा०२.३६.२

कुणप : सं०पुं० (सं०) । शव । (२) वि० (सं०) । शव के समान दुर्गन्धयुक्त, वीभत्स, जुगुप्सित । 'कुणप अभिमान सागर भयंकर घोर ।' विन० ५८.३

कुतरक : (१) कुत्सित तर्क मिथ्यातर्क (हेत्वाभास) । 'मिटिगैं सब कुतरक कै रचना ।' मा० १.११६.७ (२) मिथ्या तर्क वाला । 'कुपथ कुतरक कुचालि कलि ।' मा० १.३२

कुतरकी : वि० स्त्री । मिथ्या तर्क वितर्क वाली । 'हरि हर पद रति, मति न कुतरकी ।' मा० १.६.६

कुतरु : निष्फल वृक्ष । कुत्सित फल वाला वृक्ष । 'कुतरु सुफर फरत ।' विन० १३४.४

कुतरुक : कुतरु । गुणहीन छोटा वृक्ष, एक निष्फल वृक्ष । 'कुतरुक सुरपुर राज मग लहत भुवन बिख्याति ।' दो० १६

कुतर्क : (दे० कुतरक) । 'तजि कुतर्क संसय सकल ।' मा० ७.६० ख

कुत्रापि : अव्यय (सं०) । कहीं भी । विन० ५७.८

कुदाउ : कुदाय+कए० । (१) पासे आदि का विपरीत दाँव । (२) प्रतिकूल परिणाम का कार्य । 'पापिनि दीन्ह कुदाउ ।' मा० २.७३

कुदाना : (सं० कुदान) । अनुचित दान-दक्षिणा । प्रेतकर्म आदि का दान । 'मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ।' मा० ७.६६.२

कुदाम : खोटा सिक्का । वि० १५१.१

कुदाय : (दे० दाय) । कपट का पास आदि (छल धूत) । प्रतिकूल परिणाम वाला आचरण (धोखा, विश्वासघात) । 'त्योंहि राम गुलाम जानि निकाम देत कुदाय ।' विन० २२०.४

कुदारिद : दुरन्त दारिद्रय, अतिशय निर्धनता । कवि० ७.५६

कुदारी : सं०स्त्री० (सं० कुद्दाली) । भूमि खोने का उपकरण विशेष फावड़ा । मा० ७.१२०.१४

कुदिन : प्रतिकूल समय, विपरीत परिस्थिति, कुयोग का दिवस । संकट आदि । 'कुदिन हितू सो सुदिन हित ।' दो० ३२२

कुदृष्टि : कलुषित दृष्टि । पापदृष्टि । मा० ४.६.८

कुदेव : अपूर्ण देव—भूत, प्रेतादि जो देवरूप में पूजे जाते हैं। विन० १७०.५

कुदेस : निन्दित देश, सुविधाहीन भू-भाग, असभ्य निवासियों का देश। 'बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा।' मा० २.२२३.७

कुधर : सं०पुं० (सं०)। कु=पृथ्वी का धारण कर्ता=पर्वत। 'कुधर डगमगत डोलति धरा।' मा० ६.७०.८

कुधरम : (सं० कुधर्म)। धर्म का पापपूर्ण आडम्बर, तामस धर्माचरण। विन० २४६.४

कुधरु : कुधर+कए०। पर्वत। कवि० ७.११५

कुधात : (सं० कुधातु)। लोह आदि नीच कोटिका धातु, अपवित्र धातु, मलिन धातु। 'पारस परसि कुधात सुहाई।' मा० १.३.६

कुनय : (दे० नय)। अनाचारी नीति, अनीति, अन्याय दो० ५१४

कुनाज : (दे० नाज) कदन्न, क्षुद्र अन्न। दो० ५०६

कुनारि, री : पापाचारिणी स्त्री। मा० ४.७.६

कुनृप : अन्यायी राजा। दो० ५१४

कुपंथ : कुपथ। कुमार्ग। मा० १.१२.२

कुपथ : सं०पुं० (१) (सं० कुपन्थाः)। असन् मार्ग, निषिद्ध मार्ग। कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।' मा० ४.७.४ (२) कुमार्ग पर चलने वाला। 'कुपथ कुतरक कुचालि कलि।' मा० १.३२ (३) (सं० कुपथ्य)। अस्वास्थ्यकर भोजन आदि। 'कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी।' मा० १.१३३.१

कुपथु : कुपथ+कए०। कुमार्ग, अनाचार युक्त। 'राज काजु कुपथु।' कवि० ७.६८

कुपथ्य : सं०पुं० (सं०)। रोग बढ़ाने वाला आहार आदि। मा० ७.१२२.४

कुपीर : (दे० पीर)। कठिन व्यथा, असाध्य पीडा। कवि० ७.१६६

कुपूत : कपूत। कवि० ७.५

कुपेटक : कुत्सित पेटक, पापमय पेटारा, कलुष-पेटिका। कवि० ७.८६

कुफेर : (दे० फेर) कुत्सित चाल, घुमाव, भूलभुलैया, अटपटा चक्कर। दो० ४३७

कुफेरैं : कुफेर को। 'डरौं कठिन कुफेरैं।' गी० ५.२७.१

कुबन्धु : पापाचारी या प्रतिकूलकारी बन्धु। मा० २.२२८.४

कुबरन : वि० (सं० कुवर्ण)। (१) कलुषित रूप वाला+(२) कुजाति। 'हौं सुबरन कुबरन कियो।' विन० २६६.२

कुबरिहि : कुबरी को। 'कुबरिहि रानि प्रान प्रिय जानी।' मा० २.२३.१

कुबरी : (१) वि० स्त्री०। कूबर वाली स्त्री। (२) सं० स्त्री०। कुब्जा सुन्दरी=कृष्ण की मथुरा में प्रेयसी। (३) मन्थरा। मा० २.१३

कुबलय : सं०पुं० (सं० कुबलय) नील कमल। मा० ५.१५.३

कुबस्तु : अग्राह्य वस्तु । मा० १.७ क

कुबानि : (१) अनुचित वाणी । 'मन मानि गलानि कुबानि न मूकी ।' कवि० ७.८८ (२) कलुषि स्वभाव गर्हित प्रकृति । कृ० २७

कुबामा : असभ्य स्त्री, संस्कारहीन जंगली स्त्री । मा० २.२२३.७

कुबासनाँ : कलुष विषयवासना ने, पापामय इच्छा ने । 'करम् उपासना कुबासनाँ न सायो ग्यानु ।' कवि० ७.८४

कुबिचारी : कलुषित विचारों वाला । मा० १.८.१०

कुबिहग : हिंसक पक्षी । मा० २.२८.८

कुबुद्धि : (१) वि० (सं०) । दुष्ट बुद्धि वाला, वाली । 'करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती ।' मा० २.१३.३ (२) सं० स्त्री० (सं०) । दुर्बुद्धि, कलुषित बुद्धि । 'मूठि कुबुद्धि धार निठुराई ।' मा० २.३१.२

कुबुद्धे : कुबुद्धि+सम्बोधन ए० । ह्ये दुर्बुद्धि । मा० ६.९४.५

कुबेर : सं०पुं० (सं०) । यक्षों का राजा=रावण का वैमात्र अग्रज । मा० १.१७९.८

कुबेरै : कुबेर को । 'कृपानिधी को मिलौं पै मिलि कै कुबेरै ।' गी० ५.२७.१

कुबेलि : (दे० बेलि) । विषफल आदि की लता, कुत्सित लता । 'कुल कुबेलि कैकेई ।' गी० २.१०.२

कुबेष (षा) : (१) सं०पुं० । कुत्सित वेष, अभव्य रूप रचना । 'किएहुं कुबेष साधु सनमानू ।' मा० १.७.७ (२) वि० । कुत्सित वेष वाला । 'निर्गुन निलज कुबेष कपाली ।' मा० १.७९.६

कुबेषता : सं० स्त्री० । कलुष वेष युक्त का आचरण, कुत्सित वेष की स्थिति । 'कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी ।' मा० २.२५.७

कुबेषु, षू : कुबेष+कए० । अशुभ वेष । 'बेगि प्रिया परिहरहि कुबेषू ।' मा० २.२६.७

कुबोल : कड़वा बोल । दो० ४६६

कुब्याज : कुत्सित ब्याज (सूद); चक्रवृद्धि से लगने वाला बड़ा ब्याज जो मूलधन से भी अधिक होकर दिया न जा सके । दो० ४७८

कुभाँति, ती : वि०+क्रि०वि० । (१) प्रतिकूल रीति से, विपरीत रीति वाला । अनुचित, अननुरूप । 'रामु कुभाँति सचिव सँग जाहीं ।' मा० २.३९.८ (२) अस्वाभाविक, अवसर-विरुद्ध, रीति-विपरीत । 'प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती ।' मा० २.३१.५ (३) अमङ्गल, अशुभ । 'रटहिं कुभाँति कुखेत करारा ।' मा० २.१५८.४

कुभाउ, ऊ : (दे० भाउ) दुर्भावना, कलुषपूर्ण मनः स्थिति । मा० २.२५७

कुभाग्य : दुर्भाग्य। मा० ६.९४.५

कुभामिनी : दुष्ट स्त्री गी० २.३९.४

कुभायँ : (दे० भायँ, भाय)। दुर्भावना से, कलुष भाव के साथ। 'भायँ कुभायँ अनख आलसहूं।' मा० १.२८.१

कुभोग : कलुषित भोग, पापवासनापूर्ण विषयविलास। मा० ७.१४ छं० ४

कुमंत : कुमन्त्र। 'कंत बीस लोचन बिलोकिए कुमंत फलु। कवि० ६.२७

कुमंत्र : (१) पापपूर्ण मन्त्रणा, नीति विरुद्ध मन्त्र। 'कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।' मा० २.२९५ (२) अभिचार मन्त्र, मारण आदि के प्रयोग का तालिका मन्त्र।

कुमंत्रिन : कुमंत्री+संब०। दुष्ट मन्त्रियों। 'कह्यो कुमंत्रिन को न मानिये।' गी० ५.१२.४

कुमंत्रु, त्रू : कुमंत्र+कए०। (१) कलुषित मन्त्रणा, षड्यन्त्र। करि कुमंत्रु मन साजि समाजू।' मा० २.२२८.५ (२) मारण आदि का तांत्रिक अभिचार-जप। 'गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू।' मा० २.२१२.४

कुमग : (दे० मग) कुमार्ग, कुपथ। मा० २.३१५.५

कुमत : कलुषित मत, अशुभ विचार, अमाङ्गलिक अभिप्राय। 'मातु कुमत बढ़ई अघमूला।' मा० २.२१२.३

कुमति : कुबुद्धि। (१) कलुषित बुद्धि, पापबुद्धि। 'सुमति कुमति सब कें उर रहहीं।' मा० ५.४०.५ (२) पापबुद्धि वाला-वाली। 'कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी। मा० २.२५.७

कुमयाँ : (दे० मया) कलुषित ममता से, छलपूर्ण आत्मीयता से। 'कुमयाँ कछु हानि न औरन कीं।' कवि० ७.४७

कुमाच : सं० (तुर्की—कुमाच=मोटी रोटी; सं० कुम्बा=पेटीकोट जैसा परिधान विशेष)। दुसाला, रेशमी वस्त्र (?) 'काम जु आवै कामरी का लै करिअ कुमाच।' दो० ५७२

कुमात : कुमातु। गी० २.६५.२

कुमातां : दुष्ट माता ने। 'साइँ-द्रोह मोहि कीन्ह कुमातां।' मा० २.२०१.६

कुमातु : दुष्ट माता, पुत्र का कष्ट न समझने वाली माँ। २.१८३

कुमार (रा) : सं०पुं० (सं०)। (१) पाँच वर्ष का बालक। 'भए कुमार जबहिं सब भ्राता।' मा० १.२०४.३ (२) बालक, पुत्र (राजकुमार)। 'एक राम अवधेस-कुमारा।' मा० १.४६.७ (३) कार्तिकेय। 'तब जनमेउ षटबदन कुमारा।' मा० १.१०३.७

कुमारग : कुपंथ। मा० ३.४६.६

कुमारगगामी : दुराचारी, अनीति पर चलने वाले । 'मारहिं मोहि कुमारग-गामी ।' मा० ५.२२.४

कुमारि, रि : कुमार+स्त्री० (सं० कुमारी) । मा० १.६७.३

कुमारिका : कुमारी । 'चाहति काहि कुधर कुमारिमा ।' पा०मं० छं० ५

कुमारु : कुमार+कए० । 'सुमिरि समीर कुमारु ।' दो० २३०

कुमित्र : दुष्ट मित्र, छली मित्र । मा० ४.७.८

कुमुख : (१) दुष्ट मुख, कटुवादी मुख । 'लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे ।' मा० २.४३.७ (२) सं०पुं० (सं०) । एक राक्षस-यूथप । मा० १.१८०

कुमुद : सं०पुं० (सं०) । (१) जलाशयों में होने वाला पुष्पविशेष जो चन्द्रोदय से खिलता है । 'अरुनोदयँ सकुचे कुमुद ।' मा० १.२३८ (२) एक वानरयूथप । 'संग नीलनल कुमुद गद ।' रा०प्र० ३.७.२

कुमुदबंधु : चन्द्रमा । मा० १.२४३.५

कुमुदिनि : (सं० कुमुदिनी) कुमुद पुष्प । 'बिलखित कुमुदिनि चकोर ।' गी० १.३६.१

कुमुदिनीं : कुमुदिनी+ब० । कुमुदिनियाँ । 'जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं ।' मा० २.११८.४

कुमुलानी : भूकृ०स्त्री० (सं० कुम्लाना) । मुरझा गई, सूख गई । 'हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी ।' मा० १.२०८.१

कुम्हड़ : सं०पुं० (सं० कूष्माड>प्रा० कुम्हंड) । कछू ।

कुम्हड़बतिया : कछू का कच्चा छोटा फल । मा० १.२७३.३

कुम्हड़े : 'कुम्हड़' का रूपान्तर । 'कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है ।' विन० १३६.८

कुम्हारा : सं०पुं० (सं० कुम्भकार>प्रा० कुंमार) । घड़ा बनाने वाली जाति, कुँमार । मा० ७.१००.५

कुम्हिलाहिं, हीं : आ०प्रब० । मुरझाते हैं, सूख से जाते हैं । 'बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं ।' मा० २.८३.८

कुम्हिलैहे : आ०भ०प्रए० । कुम्हला जायगी, मुरझायगी । 'कुम्मिलैहै कुम्हड़े की जई है ।' विन० १३६.८

कुयोगिनां : (सं० पद) मिथ्या योगसाधना करने वाले यतियों के । मा० ३.४.छं०

कुरंग : सं०पुं० (सं०) । हरिण । मा० २.८६.८

कुरंगा : कुरंग । मा० १.४६.४

कुरंगिनि, नी : सं०स्त्री० (सं० कुरंगी) । हरिणी । 'चितवत चकित कुरंग कुरंगिनि ।' गी० ३.२.५

कुदरी : सं०स्त्री० (सं०) । पक्षिविशेष । मा० ३.३१.३

कुरव : सं०पुं० (सं०) । न मुरझाने वाले फूलों का एक वृक्ष जिसे 'महासहा' भी कहते हैं । गी० २.४८.१

कुराईं : कुराय+स्त्री०ब० । लताओं के लिपटने से बनी हुई जालियाँ । मा० २.३११.५

कुराज : बुरा राज्य, दुष्ट शासकों का राज्य । दो० ५१३

कुराय : सं०पुं० (सं० कुलाय) । लता आदि का जाला । 'काँट कुराय लपेटन लोटन ।' विन० १८९.४

कुरितु : प्रतिकूल ऋतु । मा० ६.५.५

कुरी : सं०स्त्री० (सं० कुल) । जातीय वर्ग । 'हरषित रहहिं लोग सब कुरी ।' मा० ७.१५.८

कुरु : आ०—प्रार्थना—मए० (सं०) । तू कर । मा० ५ श्लोक २

कुरुखेत : सं०पुं० (सं० कुरुक्षेत्र) । तीर्थ विशेष जहाँ महाभारत संग्राम हुआ था । कवि० ७.१६२

कुरुचि : कलुषित इच्छा, अनुचित वासना । मा० २.१६१.७

कुरुपति : कुरुराज । विन० २४०.३

कुरुराज : कुरुवंश का राजा+दुर्योधन । विन० ९३.६

कुरूप : वि० (सं०) । असुन्दर, विकृत वेष वाला-वाली । 'करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा ।' मा० २.१६.५

कुरूपता : सौन्दर्यहीनता । कृ० २९

कुरूपा : कुरूप । मा० ७.६६.३

कुरोग, गा : असाध्य रोग, अति कष्टकर स्थायी रोग । 'एहि कुरोग कर औषधु नाहीं ।' मा० २.२१२.२

कुर्वन्ति : आ०प्रब० (सं०) । करते हैं । 'मधुरतर मुखर कुर्वन्ति गानं ।' विन० ५१.५

कुल : सं०पुं० (सं०) । (१) वंश । 'जलदाता न रहहिं कुल कोऊ ।' मा० १.१७४.३ (२) वर्ग । 'साधु बिबुध कुल हित गिरिनन्दिनि ।' मा० ३१.९ (३) समूह। 'सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा ।' मा० १.३७.५

कुलकेतु : वंश में पताका के समान सर्वोपरि । मा० ३.११.१४

कुलखन : सं०पुं० (सं० कुलक्षण>प्रा० कुलक्खण) । अपशकुन, दुर्भाग्यसूचक आदि । 'मिटे कलुष कलेस कुलखन ।' गी० ७.१.२

कुलगुर : कुलगुरु । मा० ५.५०

कुलगुरु : सम्पूर्ण कुल का गुरु। (१) वंश का आचार्य (वसिष्ठ)। मा० २.२९३.२ (२) वंश का पूर्वपुरुष (सूर्य)। 'बिधुहि जोरि कर बिनवति कुलगुरु जानि।' बर० ४१

कुलघाती : (दे० घाती)। सम्पूर्ण वंश का विनाश करने वाला। मा० ५.५२.८

कुलदीपा : वि०पुं० (सं० कुलदीप)। वंश में प्रकाश करने वाला=कुलश्रेष्ठ। मा० २.२८३.५

कुलदेवा : (सं० कुलदेव)। सम्पूर्ण वंश में पूज्य देव। मा० २.६.८

कुलपूज्य : सम्पूर्ण वंश में पूजनीय। मा० २.६.८

कुलबधू : कुलीन स्त्री, कुलाङ्गना, कुल की मर्यादाओं का पालन करने वाली वधू। गी० १.३४.६

कुलब्ददध : वंश भर में बड़ा-बूढ़ा। मा० १.२८६

कुलमान्य : वंश भर में सम्मान योग्य=कुलपूज्य। मा० २.४९.३

कुलरीति : सम्पूर्ण वंश में प्रचलित रीति, परम्परागत मर्यादा। मा० १.३३९.१

कुलवंति : वि० स्त्री० (सं० कुलवती>प्रा० कुलवंती)। कुलीना। 'कुलवंति निकारहिं नारि सती।' मा० ७.१०१ छं०

कुलह : सं०स्त्री० (फ़ा०)। टोपी (आँखों का आवरण)। 'कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली।' मा० २.२८.८

कुलहि : (१) कुल को। 'कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी।' मा० १.२८४.४ (२) कुलह

कुलही : कुलह। टोपी। 'कुलही चित्र, बिचित्र झँगूलीं।' गी० १.३१.५

कुलम्हण : कोलाहल। गी० १.४.९

कुलि : वि० (अरबी—कुल=तमाम, पूरा; सं० कुल्य=कुल समूह) सम्पूर्ण। 'कलि कुचाल कुलि कलुष नसावन।' मा० १.३५.१०

कुलिपि : कुत्सित लिपि, प्रतिकूल लेख, दुर्भाग्य रेखा, 'लोपति बिलोकत कुलिपि भोंड़े भाल की।' कवि० ७.१८२

कुलिस : सं०पुं० (सं० कुलिश)। (१) वज्र, इन्द्र का आयुध। मा० १.११३.७ (२) पैरों की रेखा विशेष। 'रेख कुलिश ध्वज अंकुस सोहे।' मा० १.१९९.३ (३) लोहो विशेष। 'सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा।' मा० १.२१४.१ (४) हीरा। 'मानिक मरकत कुलिस पिरोजा।' मा० १.२८८.४

कुलिसनि : कुलिस+सं०ब०। कुलिश=हीरों (ने)। 'मनहुं सोन सरसिज महँ कुलिसनि तड़ित सहित कृत बासा।' गी० ७.१२.६

कुलिसरद : वज्र तुल्य दांतों वाला=राक्षस विशेष। मा० १.१८०

कुलिसादिक : सामुद्रिक की चार रेखाएं—कुलिश, ध्वज, अंकुश तथा धनुष। मा० ७.७६.७

कुलिसु : कुलिस+कए०। वज्र। 'निदरि कुलिसु जेहिं लही बड़ाई।' मा० २.१७६.८

कुलीन : वि० (सं०) उत्तम कुल वाला=अभिजात। मा० २.१४५.१

कुलीना : कुलीन। मा० ५.७.७

कुलु : कुल+कए०। 'जौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा।' मा० १.७१.३

कुलोग : दुर्जन। दो० १७८

कुलोगनि : कुलोग+सं०ब० दुष्ट लोगों। 'घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यों।' हनु० ३५

कुवँर : कुअँर। कृ० २७

कुष्ट : सं०पुं० (सं० कुष्ठ)। रोगविशेष, कोढ़। मा० ७.१२१.३४

कुस : सं०पुं० (सं० कुश)। (१) तृणविशेष जो यज्ञोपयोगी होता है—दर्भ। मा० २.३११.५ (२) सीताजी के ज्येष्ठ पुत्र का नाम। मा० ७.२५.६

कुसंकट : अति विषम परिस्थिति। मा० १.२२.५

कुसंग : दुष्टों का साथ। मा० १.७.८

कुसंगत : दुष्टों की मित्रता (संगत=मित्रता)। 'बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं।' मा० १.३.१०

कुसंगति : कुसंग। मा० १.७.११

कुसकेतु : जनकराज सीरध्वज के अनूजा=कुशध्वज=सीता के पितृव्य=माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति के पिता। मा० १.३२५ छं०

कुसगुन : दुर्निमित्त, अशुभसूच शकुन। मा० २.८१.४

कुसपने : (कुसपन+ब०—दे० सपन) दुष्ट स्वप्न, अशुभ स्वप्न। मा० २.२०.६

कुसमउ : कुसमय+कए०। 'तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता।' मा० २.२५३.५

कुसमयँ : कुसमय में-पर। 'कुसमयँ तात न अनुचित मोरा।' मा० २.३०६.७

कुसमय : प्रतिकूल समय। मा० १.५०.२

कुसमाज : पापपूर्ण समुदाय, कलुष-समूह। 'परिहारु बिलोकु महा कुसमाजहि रे।' कवि० ७.३०

कुसमाजु : कुसमाज+कए०। 'तुलसी तजि कुसमाजु।' दो० २२

कुसल : (१) सं० (सं० कुशल)। मङ्गल, शुभ। 'संभु बिरोध न कुसल मोहि।' मा० १.८३ (२) वि०। दक्ष, निपुण, प्रवीण। 'केवट कुसल उतर सबिबेका।' मा० १.४१.२

कुसलाई : सं०स्त्री० (सं० कुशलता>प्रा० कुसलया) । शुभ दशा, उत्तम समाचार । 'कहि असीस पूछी कुसलाई ।' मा० १.३०८.२

कुसलात, ता : सं०स्त्री० (सं० कुशलवार्ता) । शुभ समाचार, हालचाल । 'हँसि पूछी कुसलात ।' मा० १.५५ 'बार-बार बूझी कुसलाता ।' मा० ७.२.१२

कुसली : वि० (सं० कुशलिन्) । कुशलमङ्गलयुक्त । मा० २.१५१ छं०

कुसाँसति : (दे० साँसति) असाध्य क्लेश । विन० २५६.१

कुसाज : (१) कुत्सित साज, प्रतिकूल रीति । कृ० ६१ (२) कुत्सित साज वाला

कुसाजु : कुसाज+कए० । (१) कलुषित साज । 'राजकाजु कुपथु कुसाजु भोग रोग ही के ।' कवि० ७.६८ (२) प्रतिकूल साज वाला । 'नरपति निपट कुसाजु ।' मा० २.३९

कुसाथ : कुसंग । कवि० ७.२९

कुसासन : सं०पुं० (सं० कुशासन) । कुशनिर्मित का आसन । मा० ७.१ख

कुसाहेब : कष्ट-दायक स्वामी । कवि० ७.१२

कुसुँभि : वि० (सं० कुसुम्भिन्=कौसुम्भ) । कुसुम्भ पुष्प के (समान) रंग वाला । 'कुसुँभि चीर तन सोहहीं । गी० ७.१९.४

कुसुम : सं०पुं० (सं०) । पुष्प । मा० ३.१.३

कुसुमांजलि : पुष्पाञ्जलि । मा० १.२६५.३

कुसुमित : वि० (सं०) । पुष्पसम्पन्न । 'कुसुमित नव तरु राजि बिराजा ।' मा० १.८६.६

कुसूत : (१) सं०पुं० (सं० कुसीप—दे० सूत)=कुब्याज+(२) (अरबी-किसूत) परिधान, घेरा+(३) (अरबी-कुसूत) जुल्म, दुर्दान्त अन्याय+(४) (सं० कुसूत्र) उलझा धागा जो कभी सुलझे ही नहीं । 'रोग भयो भूत सो कुसूत भयो तुलसी को ।' कवि० ७.१६७

कुसेवकु : कुसेवक+कए० । दुष्ट परिचारक । मा० १.२८.४

कुसोदक : कुश और जल (जो दान-संकल्प में विहित है) । 'अगिनि थापि मिथिलेस कुसोदक लीन्हेउ ।' जा०मं० १४४

कुहत : वकृ०पुं० । वध करता, मारता । 'कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है ।' कवि० ७.१८१

कुहर : सं०पुं० (सं०) । बिल, कन्दरा

कुहरनि : कुहर+संब० । कुहरों, बिलों, कन्दराओं (में) । 'भुजग···रहे कुहरनि ।' गी० १.२७.४

कुहू : (१) कोकिलनाद का अनुकरण शब्द। 'कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं।' मा० ३.४०.९ (२) अमावस्या तिथि। 'मोहमय कुहू निसा।' विन० ७४.२

कुहौ : आ०—संभावना—प्रए०। चाहे मार ही डाले। 'आपु व्याध को रूप धरि कुहौ कुरंगहि राग।' दो० ३१४

कूँड़ि : सं०स्त्री० (सं० कुण्डी)। लोहे की टोपी, शिरस्त्राण। मा० २.१९१.२

कूकर : कूकुर। कवि० ७.५७

कूकरु : कूकर+कए०। 'जनि डोलहि लोलुप कूकरु ज्यों।' कवि० ७.३०

कूकुर : सं०पुं० (सं० कुर्कुर=कुक्कर)। कुत्ता। कवि० ७.२६

कूच : सं० (फ़ा०)। प्रस्थान, यात्रा। 'सोच न कूच मुकाम को।' विन० १५६.३

कूजत : वकृ०पुं० (सं० कूजत्)। कूजन (पक्षिध्वनि विशेष) करते। कूजत मंजु मराल मुदित मन।' मा० २.२३६.६

कूजहिं : आ०प्रब०। कूजन करते हैं। 'कूजहिं खग।' मा० ७.२३.३

कूजैं : कूजहिं। 'कल कूजैं न मराल।' गी० ३.९.२

कूट : सं०पुं० (सं०)। (१) समूह (२) पर्वत शिखर (३) कपाल की हड्डी (४) धनुष आदि की कोटि। 'कमठ पीठि पबि-कूट कठोरा।' मा० १.३५७.४ (५) छल, भ्रान्ति, मिथ्या। 'कारमन कूट कृत्यादि हंता।' विन० २६.७ (६) गुप्त विरुद्धाचरण (अभिचार आदि, मारण आदि प्रयोग)। 'घोर जंत्र मंत्र कूट कपट कुरोग जोग।' हनु० ३२

कूटकृत्या : गुप्त छलपूर्ण आचरण, षड्यन्त्र। विन० २६.७

कूटस्थ : वि०पुं० (सं०)। अचल, सुप्रतिष्ठ, निर्विकार (अन्तर्यामी ब्रह्म)। विन० ५३.६

कूटि : सं०स्त्री० (सं० कूट)। कूट वचन, गूढ परिहासादि-वाक्य। 'कूटि करहिं नारदहि सुनाई।' मा० १.१३४.३

कूट्यो : भूकृ०पुं०कए०। कूट डाला, चकनाचूर कर दिया। 'हाँकि हनुमान कुलि कटकु कूट्यो।' कवि० ६.४६

कूदत : वकृ०पुं० (सं० कूर्दत्>प्रा० कुद्दंत)। कूदता-ते, उछाल भरते। 'कूदत कपि कुरंग की नैंया।' कृ० १९

कूदहिं : आ०प्रब० (सं० कूर्दन्ति>प्रा० कुद्दंति>अ० कुद्दहिं)। उछाल भरते हैं। 'कूदहिं गगन मनहुं छिति छाँड़े।' मा० २.१९१.६

कूदि : पूकृ०। कूद कर, उछाल लेकर। 'कूदि परा पुनि सिंधु मझारी।' मा० ५.२६.८

कूदिए (ये) : आ० भाववाच्य। उछाल ली लाय। हनु० २३

कूदिबे : भकृ०पुं०। कूदने। 'पवन के पूत को न कूदिबे को पलु गोर।' कवि० ४.१

कूदे : भूकृ०पुं०ब० (सं० कूर्दित>प्रा० कुद्दिय) । उछले । 'कूदे जुगल बिगत अम ।' मा० ६.४५

कूदें : कूदहिं । कूदें कपि कौतुकी ।' कवि० ५.२६

कूद्यो : भूकृपुं० कए० । उछल गया । 'कपीसु कूद्यो बातघात उदधि हलोरि कै ।' कवि० ५.२७

कूप : सं०पुं० (सं०) । कूआ, गहरा गर्त । मा० २.२१

कूपक : कूप । 'संसार तम कूपक ।' विन० २०६.५ (तम कूपक=अन्धा कुआ)

कूपा : कूप । मा० ३.१५.५

कूबर : सं०पुं० (सं० कुब्र, कुब्ज) । पृष्ठ गुल्म विशेष । मा० २.१६३.४

कूबरी : कुबरी । (१) कृष्ण की प्रेयसी विशेष (२) मन्थरा । मा० २.३१.२

कूबरे : वि०पुं०ब० । कुब्ज लोग । 'काने खोटे कूबरे ।' मा० २.१४

कूर : वि० (सं० क्रूर) (१) छली, प्रपञ्ची । 'हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी ।' मा० १.८.१० (२) नृशंस, निर्दय, कर्कश, कठोर । मा० २.२६६.२ (३) अकर्मण्य, आलसी । 'सूरनि उछाहु, कूर कायर डरत हैं ।' कवि० ६ ४६ (४) मूर्ख । 'लात के अघात सहै, जीमें कहै, कूर है ।' कवि० ५.३ (५) सं०पुं० (सं०) । उबला चावल आदि । 'तुलसी परोसरे त्यागि मागै कूर कौर रे ।' विन० ६६.५ (६) (सं० कूट>प्रा० कूड) । ढेर, ऊँची राशि, शिखर

कूरुम : सं०पुं० (सं० कूर्म) । कच्छप । मा० १.२६१ छं०

कूरो : कूट+कए० (सं० कूट>प्रा० कूडो) । पर्वताकार ढेर । 'भाँग धतूरो बिभूति को कूटो ।' कवि० ७.१५५

कूल : सं०पुं० (सं०) । तट, पार्श्वभाग । मा० १.३६

कूलद्रुम : नदी तट का वृक्ष जो सहजही धारा बढ़ने से किसी क्षण ढह सकता है । 'तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ ।' मा० ६.२३.३

कूला : कूला । मा० १.३६.१२

कृकलास : सं०पुं० (सं०) । शरट=गिरगिट (राजा नृग विप्र-शाप से कृकलास होकर गर्त में पड़े थे जिनका उद्धार श्रीकृष्ण ने किया) । विन० २३६.३ यह तीर्थ 'कृकलास-तीर्थ नाम से द्वारका के पास है ।

कृकाटिका : सं०स्त्री० (सं०) । ग्रीवा-पश्चाद्-भाग । सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका, कंबु कंठ सोभा मन भावति ।' गी० ७.१७.१०

कृत : (१) भूकृ० (सं०) । किया हुआ, किये हुए । किया । 'सीता तैं मम कृत अपमाना ।' मा० ५.१०.१ (२) वि० (सं० कृत्) । करने वाला । 'कल्पांत-कृत ।' विन० ५४.६

कृतकृत्य : वि० (सं०)। जो अपना कार्य सम्पन्न कर चुका हो, सफल, कृतार्थ। मा० ७.१२६

कृतग्य : वि० (सं० कृतज्ञ)। किये हुए को जानने वाला=उपकार मानने वाला। 'अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना।' मा० ६.६२.१

कृतयुवा : सं०पुं० (सं०)। चतुर्युगी का प्रथम युग जो सत्त्व प्रधान होता है=सत्त्वयुग=सतजुग। मा० ७.४०

कृतांत : सं०पुं० (सं०)। यमराज, मृत्यु; काल। मा० ३.२६.१२

कृतारथ : वि० (सं० कृतार्थ)। कृतकृत्य, सफल-मनोरथ। मा० २.२५७

कृतिन् : वि० (सं०)। कृती, कुशल, कृतार्थ। मा० ४ श्लोक २

कृतु : कृत+कए०। एकमात्र कर्म। 'सुमिरिए छाड़ि छल भलो कृतु है।' विन० २५४.२

कृत्या : सं०स्त्री० (सं०)। (१) कृत्य, कर्म (२) इन्द्रजाल (३) एक प्रकार की देवी जिसे पशुबलि दी जाती है और जो जादू की देवी तथा पिशाची मानी गई है। 'कारमन कूट कृत्यादि हंता।' विन० २६.७

कृपन : वि० (सं० कृपण) (१) कन्जूस। 'सेवक सठ नृप कृपन कुनारी।' मा० ४.७.६ (२) दरिद्र, दीन। 'जैसें परम कृपन कर सोना।' मा० १.२५६.२

कृपनाईं : कृपणता से, दीनतावश। 'आगम लाग मोहि निज कृपनाईं।' मा० १.१४६.४

कृपनाई : सं०स्त्री० (सं० कृपणता)। कन्जूजी। 'दानि कहाउब अरु कृपनाई।' मा० २.३५.६

कृपनु : कृपन+कए०। एकमात्र कन्जूस। 'कृपनू देइ पाइअ परो।' रा०प्र० ७ ४.३

कृपाँ : कृपा से। 'तुम्हारी कृपाँ सुलभ सोउ मोरे।' मा० १.१४.११

कृपा : सं०स्त्री० (सं०—कृपू सामर्थ्ये)। समर्थ द्वारा की हुई दया; अनुग्रह। मा० १.३.७

कृपाकर : वि० (सं०)। (१) कृपा+आकर=दयानिधान (२) कृपा-कर=कृपा करने वाला=कृपालु। 'जानि कृपाकर किंकर मोहू।' मा० १.८.३

कृपाना, ना : सं०पुं० (स० कृपाण)। तलवार। मा० ५.१०.१

कृपापात्र : वि० (सं०)। कृपा का आलम्बन, कृपा पाने योग्य। मा० ७.७०.२

कृपामई : वि०स्त्री० (सं० कृपामयी)। कृपापूर्ण। वि० १७०.७

कृपामृत : कृपा रूपी अमृत; अमृतवत् अमरत्व देने वाली कृपा। मा० १.१४५.६

कृपायतन : कृपा का आगार=परमकृपालु। मा० १.६१

कृपाल, ला : कृपालु। मा० १.१३.५; १६२ छं०

कृपालु (लू) : वि० (सं०)। कृपायुक्त, दयालु। मा० १.२८.क

कृपाहीं : कृपा में, कृपा से । 'तात बात फुरि राम कृपाहीं ।' मा० २.२५६.१

कृपिन : कृपन । मा० ६.३१.२

कृपिनतर : वि० (सं० कृपणतर) । अतिशय कृपण । 'हमरि बेर कस भयहु कृपिनतर ।' विन० ७.२

कृमि : स०पुं० (सं०) । क्षुद्जन्तु=कीट । मा० ७.६५ ख

कृशानु : सं०पुं० (सं०) । अग्नि । मा० ३.११.५

कृषी : सं०स्त्री० (सं० कृषि) । खेती, सस्य क्षेत्र । मा० ४.१५.८

कृष्न : सं०पुं० (सं० कृष्ण) । द्वापर का ईश्वरावतार । मा० १.८८.१-२

कृस : वि० (सं० कृश) । क्षीण, दुर्बल । मा० ५.८.८

कृसगात : वि० (सं० कृशगात्र>प्रा० कसगत्त) । दुर्बल शरीर । कवि० ७.४६

कृसधन : वि० (सं० कृशधन) । अल्प धन वाला । दो० ३३५

कृसानु, नू : कृशानु । मा० १.४.५

कृस्न : कृष्न । विन० १०६.४

कें : क्रि०वि० परसर्ग । (१) के पास, के अधीन । 'जिन्ह कें बिमल बिबेक । मा० १.६ । (२) के······पर । 'तिन्ह कें बचन मानि बिस्वासा ।' मा० १.७६.५ (३) के······से । 'कहा हमार न सुनेहु तब नारद कें उपदेस ।' मा० १.८६ (४) के······में । 'पितु कें जग्य जोगानल जरीं ।' मा० १.६८ छं० (५) के यहाँ । 'तेहिं कें भए जुगल सुत बीरा ।' मा० १.१५३.४

केंकरहिं : आ०प्रब० (सं० क्रें कुर्वन्ति>प्रा० केंकरंति>अ० केंकरहिं) । कें-कें ध्वनि करते हैं । 'केंकरहिं फेरु कुभाँति ।' रा०प्र० ३.१.५

केंचुरि : सं०स्त्री० (सं० कञ्चुलिका>प्रा० कंचुलिआ>अ० कंचुली=कंचुलि) । साँप की चमड़ी का खोल जो पूरे शरीर से निकल जाता है=केंचुल=काँचुरी । 'तुलसी केंचुरि परिहरें होत साँपहू दीठि ।' दो० ८२ । (कहते हैं कि केंचुल जब तक नहीं निकलती, साँप को सूझना बन्द हो जाता है ।)

के : (१) सम्बन्धार्थक परसर्ग—पुं० । 'नाहिन रामु राज के भूखे ।' मा० २.५०.३ (२) उपयुक्त, के निमित्त । 'बरिबे कौं बोले बयदेही बर काज के ।' कवि० १.८

केइँ : किसने । 'अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा ।' मा० २.२६.१

केउ : (१) कुछ भी । 'मोहि केउ सपनेहुं सुखद न लागा ।' मा० २.६८.६ (२) कोई । 'होइहि केउ एक दास तुम्हारा ।' मा० १.२७१.१

केकई : कैकई । मा० १.४१.८

केकि, की : सं०पुं० (सं० केकिन्) । मयूर (जिसकी बोली=केका) । 'तुलसी केकिहि पेखु ।' मा० १.१६१ ख 'केकी काक अनंत ।' वैरा० ३२

केत : केतु । धूमकेतु । 'उदय केत सम हित सबही के ।' मा० १.४.६

केतकि : सं०स्त्री० (सं० केतकी) । केतक जाति का पुष्प विशेष । बर० ३२

केता : वि०पुं० (सं० कियत्>किअत्त) । कितना 'ग्यानहि भगतिहि अंतर केता ।' मा० ७.११५.११

केतिक : (१) केता+इक । कितना-सा । 'केतिक बीच बिरह परमारथ ।' कृ० ३३ । (२) केती+इक । कितनी-सी । नर पावँर कै केतिक बाता ।' मा० ७.१०६.३

केतु, तू : सं०पुं० (सं०) (१) ध्वज । 'पताका केतु गृह-गृह सोहहीं ।' मा० १.९४ छं० (२) ग्रह-विशेष, जो राहु का धड़ कहा गया है । 'राहु केतु उलटे चलहिं ।' रा० प्र० ७.२.३ (३) धूमकेतु, उल्का । 'जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ।' मा० ७.१२१.२० (४) (समासान्त में) पताका के समान सर्वोपरि=श्रेष्ठ । 'कहि जय जय जय रघुकुल-केतू ।' मा० १.२८५.७ (५) सामुद्रिक की रेखा विशेष । 'कुलिस केतु जव जलज रेख बर ।' विन० ६३.२

केतुजा : सुकेतु राक्षस की पुत्री=ताड़का । हनु० ३९

केते : केता का रूपान्तर (ब०) कितने । 'सुनु रावन रावन जग केते ।' मा० ६.२४.१२

केतो : केतो+कए० । कितना । 'रोषु केतो बड़ो कियो है ।' कृ० १६

केदारु : केदार+कए० । क्यारी, खेत । कवि० ७.११५

केन : (सं० पद) सर्वनाम । किससे । 'जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान ।' मा० ७.१०३ ख (येन केन विधिना=जिस किसी प्रकार से)

केयूर : पुं०सं० (सं०) । बहूरा, अङ्गद=बाहुभूषण विशेष । विन० ५१.६

केर : सम्बन्धार्थक परसर्ग—पुं० (अ०) । का । 'नहिं निसिचर कुल केर उबारा ।' मा० ५.३६.२

केरा : (१) केर । का । 'धुआँ देखि दसकंधर केरा ।' मा० ३.२१.५ (२) सं० पुं० (सं० कदल>प्रा० केल) केला, कदली वृक्ष । 'सफल रसाल, पूगफल, केरा ।' मा० २.६.६

केरि, री : केर+स्त्री० । की । 'सीता केरि करेहु रखवारी ।' मा० ३.२७.९ 'पुनि कहु खबरी बिभीषन केरी ।' मा० ५.५३.४

केरें : कें । के लिए, के प्रति । 'परहित हानि लाभ जिन्ह केरें ।' मा० १.४.२

केरे : के । केर का रूपान्तर । 'चरन कमल बंदउं तिन्ह केरे । मा० १.१४.३

केरो : केर+कए० । का । 'बहिबो ताहू केरो ।' विन० ८७.३

केलि : सं०स्त्री० (सं०) । क्रीडा, कौतुक, विनोद । मा० २.१०.५

केलिगृह : क्रीडागृह, विलास भवन, रतिमन्दिर, कोहबर । गी० १.१०७.३

केलिमृग : क्रीडामृग, विनोदार्थ पालितमृग । मा० २.८३

केवट : सं०पुं० (सं० कैवर्त>प्रा० केवट्ट) । मल्लाह, नाविक, नौका व्यवसायी जाति (निषाद) । मा० १.४१.२

केवटु : केवट+कए० । 'केवटु भेंटेउ राम ।' मा० २.२४१

केवल : वि० (सं०) । एकमात्र, अमिश्रित, अद्वितीय, शुद्ध । मा० १.१३.५

केश : (१) दे० केस । (२) क+ईश=ब्रह्मा तथा शिव । 'केश बंदित पदद्वन्द्व ।' विन० ४६.५

केस : सं०पुं० (सं० केश) । शिरोरुह, सिर के बाल । मा० १.१४७.५

केसरिणि : केसरी+स्त्री० (सं० केसरिणी) । सिंही । विन० १५.४

केसरी : सं०पुं० (सं० केसरिन्) । (१) सिंह । मा० ६.१२.२ (२) हनूमान् के पिता । कवि० ५.१२

केसव : सं०पुं० (सं० केशव) । विष्णु, राम, कृष्ण । कृ० ६१

केसा : केस । मा० २.२.७

केहरि, री : केसरी । मा० १.३२.७

केहरिनख : सं०पुं० (सं० केसरिनख)=व्याघ्रनख । बघनहा । गी० २५.३

केहरिनाद : सिंहगर्जन । मा० ५.३५.१०

केहिं : किस······से । 'को जानै केहिं सुकृत सयानी । मा० १.१३५.४

केहि : सर्वनाम (सं० कीदृश्>अ० केह) (१) किस । 'कहहु तूल केहि लेखे माहीं ।' मा० १.१२.११ (२) किसे, किसको । 'निज कबित्त केहि लाग न नीका ।' मा० १.८.११ (३) किसके । 'दुइ माथ केहि ।' मा० १.८४ छं०

केहीं : केहिं । (१) किसी ने । 'पुर नर नारि न जानेउ केहीं ।' मा० १ १७२.४ (२) किसी······से । 'सोभा कहि न जात बिधि केहीं ।' मा० १.३२५.८ (३) किसी······के द्वारा । 'अनुचित कहब न पंडित केहीं ।' मा० २.१७५.५ (४) किसी······में । 'तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केहीं ।' मा० २.२९१.२

केही : केहि । 'सो बरनै असि मति कबि केही ।' मा० १.२८९.४

केहू : किसी को । 'नामु सत्य अस लाग न केहू । मा० २.२७१.२

कैं : केइँ । किसने । 'तुम सों मन भावत पायो न कैं ।' कवि० ७.३८

कै : (१) अव्यय (सं० कृत>प्रा० कए) । के लिए, के प्रति, के स्थान पर । 'दुइ कै चारि भागि मकु लेहू ।' मा० २.२८.३ (२) सम्बन्धार्थक वि० परसर्ग—स्त्री० । की । 'जनम लाभ कै अवधि अघाई ।' मा० २.५२.८ (३) पूकृ०=करि । करके । 'लोचन लाहु लेत अघाइ कै । गी० १.५.२ (४) कैं । किसने । 'कै न लह्यो कौन फरु ।' कृ० १७ (५) कि । अथवा । 'साधु कै असाधु के भलो कै पोच ।' कवि० ७.१०७ (६) और । 'ख्वैहौं ना पठावनी कै ह्वैहौं ना हँसाइ कै ।' कवि० २.९

कैकइ, ई : कैकेई । मा० २.२४.२.१२

कैकय : सं०पुं० (सं० केकय) । जनपद विशेष । मा० १.१५३.२

कैकेई : सं०स्त्री० (सं० कैकयी) । केकय राजकुमारी=दशरथ की मध्यमा रानी । मा० १.१९०.३

कैकै : करि कै । करके । 'तैसो कपि कौतुकी डेरात ढीले गात कैभै ।' कवि० ५.३

कैटभ : सं०पुं० (सं०) । एक असुर जिसे सृष्टि के पूर्व प्रलय सागर में विष्णु ने मारा था । मा० ६.४८ क

कैटभारे : 'कैटभारि' का सम्बोधन (सं०) । हे कैटभ के शत्रु । गी० १.३८.३

कैधौं : अव्यय (सं० किं ध्रुवम्) कै+धौं । क्या निश्चय ही, क्या भला, अथवा क्या । 'तुलसी सुटेस चापु कैधौं दामिनी कलापु कैधौं चली मेरुतें कृसानु सरि भारी है ।' कवि० ५.५

कैरव : कुमुद (सं०) । मा० २.१०

कैलास : सं०पुं० (सं०) । हिमालय पर्वतमाला का शिखिर विशेष । मा० १.५८

कैलासहिं : कैलास में । 'जपहिं संभु कैलासहिं आए ।' मा० १.१०३.३

कैलासा : कैलास । मा० १.५८.६

कैलासु, सू : कैलास+कए० । 'परम रम्य गिरिबर कैलासू ।' मा० १.१०५.८

कैवल्य : सं०पुं० (सं०) । मुक्त दशा, माया रहित जीव की शुद्ध अवस्था, मोक्ष । मा० ७.११९.३

कैसा : कस । मा० ३.३५.६

कैसी : कसि । मा० १.७७.१

कैसें : क्रि०वि० । किस प्रकार से । 'सो मो सन कहि जात न कैसें ।' मा० १.३.१२

कैसे : 'कैसा' का रूपान्तर (अ० कइस=कइसय) । किस प्रकार के । 'घायल बीर बिराजहिं कैसे ।' मा० ६.५४.१

कैसेउ : कैसे भी, किसी प्रकार के । 'कैसेउ पावंर पातकी ।' विन० १९१.८

कैसेहुं : किसी प्रकार भी । 'एक बार कैसेहुं सुधि पावौं ।' मा० ४.१८.२

कैसो : कैसो+कए० । (१) कैसा । 'सुद्धता लेसु कैसो ।' विन० १०६.४ (२) के जैसा, के सदृश । 'सहित समाज गढ़ु राँउ कैसो भाँड़िगो ।' कवि० ६.२४

कैहूं : किसी प्रकार से । ज्यों का त्यों करके । 'पठयो है छपदु छबीलें कान्ह कैहूं कहूं ।' कवि०.१३५

को : (१) का+कए० । बंदउँ नाम राम रघुबर को ।' मा० १.१९.१ (२) सर्वनाम (सं० कः>प्रा० को) । कौन । 'को बड़ छोट कहत अपराधू ।' मा० १.१२१.३ (३) कोई । 'राम सो न साहेबु न कुमति कटाइ को ।' कवि० ७.२२ (४) कौं । के लिए, के प्रति । 'भरत की मातु को भी ऐसो चहियतु है ।' कवि० २.४ । 'मोसो दोस कोस को भुवन कोस दूसरो न ।' विन० २५८.२

कोइ, ई : सर्वनाम (सं० कोऽपि>प्रा० कोइ=कोई) मा० १.३क; १.३.२

कोउ, ऊ : कोई। मा० १.१०क; १.५८

कोए : सं०पुं० (सं० कोच>प्रा० कोच)+ब०। सिकुड़ा भाग, कोण। 'कहत भरे जल लोचन कोए।' मा० २.१९८.७

कोक, का : सं०पुं० (सं०)। चक्रवाक पक्षी। मा० २.८६

कोकनद : सं०पुं० (सं०)। रक्तकमल। कृ० २९

कोका : कोक। चकवा। 'निसि दिन नहिं अवलोकहिं कोका।' मा० १.८५.५

कोकिए : आ० कर्मवाच्य-प्रए०। पुकारिए, पुकारा जाए। 'धाइ जाइ तहाँ जहाँ और कोऊ कोकिए।' कवि० ५.१७

कोकिल : (१) सं०पु० (सं०)। पक्षीविशेष, कोयल। मा० २.६२.७(२) (समासान्त में) वि०। श्रेष्ठ। 'कबि कोकिल' कवि० ७.८९

कोकिलन : कोकिल+संब०। कोयलों (ने)। 'धरी कोकिलन मौन।' दो० ५६४

कोकिलबयनीं : (दे० बचन) वि०स्त्री०बहु०। कोकिलवत् मधुर बोलने वाली स्त्रियाँ। 'करहिं गान कल कोकिलबयनीं।' मा० १.२८६.२

कोकिला : कोकिल+स्त्री०। मा० ३.३०.१०

कोकी : कोक+स्त्री०। चक्रवाकी। मा० २.६६.४

कोकू : कोक+कए०। एकाकी चकवा पक्षी। 'ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू।' मा० २.२९.४

कोखि : सं०स्त्री० (सं० कुक्षि>प्रा० कुक्खि=कोक्खि)। उदर, गर्भ। 'कोखि के जाए सो रोषु।' कृ० १६

कोछें : कोछ में, क्रोड में। 'गयउ तुम्हारेहिं कोछें घाली।' मा० ७.१८.२

कोट : सं०पुं० (सं०)। गढ़, दुर्ग। मा० ६.४०

कोटर : सं०पुं० (सं०)। खोह, वृक्षादि का बिल। मा० ७.१०७.८

कोटि, टी : संख्या स्त्री० (सं०)। करोड़। मा० ६.४०

कोटिक : (कोटि+इक)। एक करोड़, लगभग करोड़। 'करहिं कलप कोटिक भरि लेखा।' मा० १.३४२.२

कोटिन्ह : कोटि+समवाचार्थक ब०। करोड़ों (एक साथ)। 'हय गय कोटिन्ह केलिमृग।' मा० २.८३

कोठरी : सं०स्त्री० (सं० कोष्ठक>प्रा० कोट्ठअ>अ० कोट्ठडी)। छोटा कमरा। गी० ३.१७.७

कोठि : सं०स्त्री० (सं० कोष्ठिका>प्रा० करोट्ठिआ>अ० कोट्ठी=कोट्ठी)। भण्डार, कोठा। 'सोक कलंक कोठि जनि होहू।' मा० २.५०.१ अवधी में बांस की धान को भी 'कोठि' कहते हैं जहाँ सदैव बाँस उगा करते और बढ़ते रहते हैं।

कोठिला : सं०पुं० (सं० कोष्ठ>प्रा० कोट्ठ=कोट्ठिल्लअ) कोठा, मिट्टी का अन्नागार, डहरा। 'ह्वै है कीच कोठिला धोए।' कृ० ११

कोढ़ : सं०पुं० (सं० कुष्ठ, कोठ>प्रा० कोढ़)। संक्रामक चर्मरोग विशेष जो असाध्य होता है। कवि० ७.१७७

कोढ़ी : कोढ़ रोग वाला (सं० कुष्ठी)। दो० ४९६

कोतल : सं०पुं० (सं० कौन्तल)। कुन्तल देशीय अश्व। 'ओतल संग जाहिं डोरिआए।' मा० २.२०३.४

कोतवाल : सं०पुं० (सं० कोटपाल>प्रा० कोट्टवाल)। रक्षक, पहरेदार, रक्षाधिकारी। कवि० ७.१७१

कोदंड : सं०पुं० (सं०)। धनुष। 'संदेह हर कोदंड।' मा० ३.२५

कोदंडकला : धनुर्विद्या, बाण-चालन कौशल। गी० १.७४.२

कोदंडा : कोदंड। मा० ६.८०.८

कोदंडु : कोदंड+कए०। एक धनुष को ही। 'ताकेउ हर कोदंडु।' मा० १.२५९

कोदेव : सं०पुं० (सं० कोद्रव>प्रा० कोद्दव)। क्षुद्र अन्न विशेष। 'फरइ कि कोदेव बालि सुसाली।' मा० २.२६१.४

कोदो : कोदेव। गी० २.४०.४

कोना : सं०पुं० (सं० कोन)। मा० २५९.२

कोने : 'करेना' का रूपान्तर। कोर। 'परसपर लखतर सुलोचन कोने।' गी० १.१०७.१

कोप : सं०पुं० (सं०)। रोष, क्रोध, अमर्ष। मा० १.१२३

कोपर : सं०पुं० (सं० कर्पर>प्रा० कप्पर=पात्र) बड़ा थाल, परात। 'कनक कलस मनि कोपर रूटे।' मा० १.३२४.५ अधिकतर 'कर्पर' लौह पात्र का अर्थ देता है अतः कढ़ाई की सी गहराई वाला पात्र ही—जो अधिक नतोदर हो—'कोपर' कहा जाएगा, सामान्य थाल नहीं। 'कनक कलस भरि कोपर थारा।' मा० १.३०५.१

कोपहिं : आ०प्रब० (सं० कुप्यन्ति, कुप्यन्तु>प्रा० कोप्पंति, कोप्पंतु>अ० कोप्पहिं)। कोप करते हैं या करें। 'जौं हरि हर कोपहिं मन माहीं।' मा० १.१६६.४

कोपा : (१) को। 'सुनहु बचन प्रिय परिहर कोपा।' मा० ६.६.४ (२) भूकृ०पुं०। कुपित हुआ। 'समुझि राम प्रताप कोपि कोपा।' मा० ६.३४.८

कोपि : (१) पूकृ०। कुपित होकर, कोप करके। 'सुनत कोपि कपि कुंजर धाए।' मा० ६.४७.२ (२) (सं० कोऽपि) कोई। 'गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी।' मा० ७.१०१.६

कोपित : वि०। कोपयुक्त। विन० २४.१

कोपिहि : आ०भ०प्रए० । कोप करेगा । 'जबहिं समर कोपिहि रघुनायक ।' मा० ६.२७.६

कोपिहैं : आ०भ०प्रब० । कोप करेंगे । 'को है रन रारि को, जो कोसलेसु कोपिहैं ।' कवि० ६ १

कोपी : (१) कोपि । कोई । 'सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी ।' मा० २.२९९.७ (२) वि०पुं० (सं० कोपित्) । क्रोधी । 'रन दुर्मद रावन अति कोपी ।' मा० ६.८२.४

कोपु : कोप+कए० । जरा भी क्रोध । 'सपनेहुं तो पर कोपु न मोही ।' मा० २.१५.१

कोपें : कुपित होने से, कोप करने से । 'कोपें सोच पोच कर ।' दो० १८६

कोपे : भू०कृ०पुं०ब० । कोपयुक्त, क्रुद्ध । 'रिपु परम कोपे जानि ।' मा० ३.२०.७

कोपेउ : भू०कृ०पुं०कए० । कुपित हुआ । 'कोपेउ समर श्री राम । मा० ३.२०.२

कोप्यो : कोपेउ । 'समरभूमि दसकंधर कोप्यो ।' मा० ६.९३.३

कोबिद : वि०पुं० (सं० कोविद) । अनुभवी, शास्त्र मर्मज्ञ, निपुण, प्रतिभाशाली, विशेषज्ञ, विवेकी, पण्डित । 'बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी ।' मा० १.३.११

कोमल : वि० (सं०) । सुकुमार । (१) सुख स्पर्श । 'कोमल कलिस सुपेतीं नाना ।' मा० १.३५६.२ (२) सुख-श्रव्य, सुकुमारता नामक काव्यगुण से युक्त । 'पुनि उमा बचन बिनीत कोमल ।' मा० १.९७ छं० (३) दर्शनीय+मृदुल । 'कोमल चरन चलत बिनु पनहीं ।' मा० २.३११.४ (४) सरस, सानुग्रह । संवेदनशील । 'कोमलचित कृपालु रघुराई ।' मा० ५.१४.४

कोमलता : सं०स्त्री० (सं०) । सुकुमारता, मृदुलता । मा० ७.१०२ छं०

कोमलताई : कोमलता । मा० ७.११.६

कोय : कोई । 'सुनत सब समुझत कोय ।' बर० ६३

कोर : सं०स्त्री० (सं० कोर=कलिक) । कोना, कलिकाकार संकुचित भाग ।' 'कीजै राम बार यहि मेरी ओर चख कोर ।' कवि० ७.१२३

कोरि : पूकृ० (सं०कोटयित्वा>प्रा० कोडिअ>अ० कोडि—कुट छेदे) । काट-छील कर, रन्द कर, खुरचने द्वारा चिकना कर । चीरि-कोरि पचि रचे सरोजा ।' १.२८८.४

कोरी : संख्या (सं० कोटि>प्रा० कोडी) । करोड़ । 'नहिं निस्तार कलप सत कोरी ।' मा० ७.१.५

कोरें : कोरे पर, अलिखित पर, बिना प्रयोग किए हुए पर । 'सत्य कहहुं लिखि कागद कोरें ।' मा० १.९.११

कोल : सं०पुं० (सं०)। (१) वन्य जाति विशेष। 'कोल किरात भिल्ल बनबासी।' मा० २.२५०.१ (२) शूकर, वराह। 'कोल कराल दसन छबि गाई।' मा० १.१५६.७

कोलनी : कोल जातीय स्त्री=शबरी। कवि० ७.१६

कोलन्हि : कोल+संब०। कोलों (ने)। 'सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे।' मा० २.२२६ छं०

कोला : कोल। शूकर (जो पौराणिक मत से पृथ्वी को रोके हुए हैं=वराह भगवान्)। मा० १.२६०.१

कोलाहल : सं०पुं० (सं०)। जनरव, भीड़-भाड़ का समुदित शब्द। मा० २.१५३

कोलाहलु : कोलाहल+कए०। 'राउर नगर कोलाहलु होई।' मा० २.२३.८

कोलिनि, नी : कोलनी। गी० ३.९.२

कोलु : कोल+कए०। वराह भगवान्। 'कोलु कमठु अहि कलमल्यौ।' कवि० १.११

कोल्हुन्ह : कोल्हू+संब०। कोल्हुओं (में)। 'मूल्यो सूज करम कोल्हुन्ह तिल ज्यों बहु बारनि पेरो।' विन० १४३.२

कोल्हू : सं०पुं० (सं० कोष्टु>प्रा० कोल्हु) यन्त्रविशेष, तैलादिपीडनयन्त्र। 'पेरत कोल्हू मेलि तिल।' दो० ४०३

कोशौघ : (सं०) शरीर-रचना के कोश समूह, पाँच कोश। (१) अन्नमय कोश=स्थूल शरीर, (२) प्राणमय कोश=पञ्च प्राण+पञ्चकर्मेन्द्रि, (३) मनोमय कोश=मन+पञ्चज्ञाननेन्द्रिय, (४) विज्ञानमय कोश=बुद्धि+पञ्चज्ञानेन्द्रिय, (५) आनन्दमय कोश=कारण शरीर या सुषुप्ति दशा)। विन० ५८.२

कोस : सं०पुं० (१) (सं० क्रोश>प्रा० कोस)। लगभग दो मील की दूरी। 'गए कोस दुइ दिनकर ढरकें।' मा० २.२२६.१ (२) (सं० कोष, कोश>प्रा० कोस)। धनागार। 'पावा राज कोस पुर नारी।' मा० ४.१८४ (३) तलवार आदि का खोल या म्यान। (४) खानि। 'कठिन काल मल कोस।' मा० ३.६ख (५) खोह या अन्य घेरा। 'मो सो दोस कोस को भुवन-कोस दूसरो न।' विन० २५८.२ (६) पुष्पादि का आकार तथा भीतरी भाग। 'अरुन कंज कोस।' गी० १.२५.४ 'पंकज कोस-ओस कन जैसे।' मा० २.२०४.१ (७) रेशम को खोल जिसमें कीड़ा रहता है (अत एव रेशम को कौशेय कहते हैं)। 'कीर कोस-कृषि कीस।' दो० २४३

कोसकृमि : (दे० कोस) रेशम का कीड़ा। दो० २४३

कोसल : सं०पुं० (सं०)। अवध जनपद। मा० २.२७०

कोसलधनी : कोसल का राजा। मा० ६.८९.८

कोसलनाथ : कोसल का राजा। मा० ५.३५.छं० १

कोसलपति : कोसलनाथ । मा० १.११८

कोसलपाल : कोसलनाथ । मा० २.३१३

कोसलपुर : कोसल की राजधानी=अयोध्या । मा० १.२०४

कोसलपुरी : कोसलपुर । मा० ६.११५

कोसलराऊ : कोसलराय+कए० । कोसलपति । मा० १.२८.१०

कोसलराज : कोसलपति । मा० १.२४२

कोसलराय : (दे० राय)=कोसलराज । मा० २.१३५

कोसला : कोसल । मा० २.१०३

कोसलाधीस, सा : (सं० कोसलाधीश) । कोसलराज मा० ६.७.७

कोसलाधीसु : कोसलाधीस+कए० । राम । कवि० ६.१६

कोसलेन्द्र : (सं०)=कोसलराज । मा० ७ श्लो० २

कोसलेस : (सं० कोसलेश) । कोसलराज । (१) दसरथ । मा० ४.७.२६ (२) राम ।

कोसलेसु : कोसलेस+कए० । राम । कवि० ६.१

कोसा : कोस । खजाना । मा० १.२०८ ३

कोसु : कोस+कए० । (१) खजाना । 'देसु कोस परिजन परिवारू ।' मा० १.३१५.७ (२) आगार, खोल । 'लोभ मोह काम कोह दोस कोसु ।' कवि० ७.६२

कोह, हा : सं०पुं० (सं० क्रोध>प्रा० कोह) । मा० १.१२.३

कोहबर : सं०पुं० । कौतुकागार, मङ्गल कार्य का देवगृह, क्रीडागार जिसमें विवाह के अनन्तर वर-वधू को ले जाकर बिठाते हैं । मा० १.३२६.छं० ५

कोहबरहिं : कोहबर में । 'कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि ।' मा० १.३२७.छं० २

कोहा : कोह । मा० ४.१८.७

कोहातो : क्रियाति०पुं०ए० । यदि······तो······क्रोध करना । 'काल करम कुल कारनी कोऊ न कोहातो ।' विन० १५१.४

कोहानी : भूकृ० स्त्री० । क्रुद्ध हुई । 'रिधि सिधि तिन्ह पर सबै कोहानी । गी० १.४.११

कोहाब : भकृ०पुं० (सं० क्रोद्धव्य>प्रा० कोहि अव्व) । क्रोध करना । रूठना । 'तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई ।' मा० २.२८

कोही : वि० (सं० क्रोधिन्>प्रा० को ही) । कोपशील, द्वेषी । 'काम लोभ मद रत अति कोही ।' मा० ६.११०.६

कोहु, हू : कोह+कए० । क्रोध । 'अस बिचारि उर छाड़हु कोहू ।' मा० २.५०.१

कौं : (१) कौन। किस। 'उपमा ताकि ताकत है कवि कौं की।' कवि० ७.१४३ (२) कहुं। के लिए। 'बरिबे कौं बोले बयदेही बर काज के।' कवि० १.८

कौड़ी : सं० स्त्री० (सं० कपर्दिका>प्रा० कमड्डिआ>अ० कवड्डी)। एक प्रसिद्ध समुद्री वस्तु जिसका उपयोग छोटे सिक्के के रूप में किया जाता था। मा० ७.९९ क

कौतुक : सं०पुं० (सं०)। (१) आश्चर्य, विस्मय। 'सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी।' मा० १.२०४.५ (२) विस्मयपूर्ण कार्य, इन्द्रजाल (जादू)। 'काम कृत कौतुक अयं।' मा० १.८५ छं। (३) खेल, तमाशा, स्वांग, अभिनयादि। 'करहिं बिदूषक कौतुक नाना।' मा० १.३०२.८ (४) विस्मयपूर्ण मङ्गलोत्सव। कौतुक देखि पतंग भुलाना।' मा० १९५.८ (५) मङ्गलोत्सव (मात्र)। 'कालि ही कल्यान कौतुक।' गी० ७.३२.१ (६) आनन्द-विनोद, हास-परिहास। 'कौतुक बिबिध होहिं मग जाता।' मा० १.६४.१ (७) लीला। 'मुनि कर हित मम कौतुक होई।' मा० १.१२९.६ (८) क्रीडा-विनोद। 'कौतुक देखहिं सैल बन भूतल भूरि निधान।' मा० १.१

कौतुकिअन्ह : कौतुकी=कौतुकिआ+संब०। कौतुकियों, तमाशबीनों, ब्याह आदि करा कर विनोद करने वालों (को)। 'तौ कोतुकिअन्ह आलसु नाहीं। मा० १.८१.४

कौतुकी : वि०पुं० (सं० कौतुकिन्)। (१) मायावी, लीलाकारी। 'प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला।' मा० १.१३२.३ (२) कौतुक देखने का इच्छुक। 'मुनि कौतुकी नगर तेहिं गयऊ।' मा० १३०.७ (३) परिहासप्रिय, विनोदी। 'परम कौतुकी तेउ।' मा० १.१३३

कौतुकु : कौतुक+कए०। एक कौतुक, एक तमाश:। 'कौतुकु करौं बिलोकिअ सोऊ।' मा० १.२५३.७

कौतूहल : कौतुक (सं०)। (१) आश्चर्य। 'यह कौतूहल जानइ सोई।' मा० ६.५५.३ (२) मङ्गलोत्सव। 'नभ नगर कौतूहल भले।' मा० १.३२६ छं० ४

कौन : कवन। मा० २.२२७.८

कौनु : कौन+कए०। कौन-सा। 'देहउँ उतरु कौनु मुहु लाई।' मा० २.१४६.७

कौनें : किसने। 'पारु कबि कौनें लह्यो।' मा० १.३६१ छं०

कौने : कौनें। (१) किसने। 'कौने यह रस रीति चलाई।' कृ० ५० (२) किस ……से। 'कौने जतन बिसारौं।' कृ० ३३। (३) किस। 'देहि धौं कौने को दोष।' कृ० ३७

कौमार : सं०पुं० (सं०)। (१) कुआरापन—१६ वर्ष की वयस् तक (२) बचपन पाँच वर्ष की वयस् तक। 'कौमार सैसव अरु किसोर अपार अघ को कहि सकै।' विन० १३३.६

कौमुदीं : (सं० कौमुदी) कौमुदी ने, चाँदनी ने। 'जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं।' मा० २.११८.४

कौमोदकी : सं०स्त्री० (सं०)। विष्णु की गदा का नाम। विन० ४६.५

कौर : कवल। कवि० ७.२६

कौरव : सं०पुं० (सं०) कुरु वंश का क्षत्रीय=दुर्योधन आदि। दो० ४२८

कौल : सं०पुं० (सं०)। वाममार्गी तान्त्रिक जा पञ्चमकारी कहलाते हैं—मांस, मद्य मत्स्य, मैथुन और मुद्रा (एक प्रकार की रोटी) ये पाँच मकारादि पदार्थ उनकी साधना के अङ्ग हैं। 'कौल कामबस कृपिन बिमूढा।' मा० ६.३१.२

कौशेय : वि० पुं० (सं०)। रेशमी। विन० ५१.२

कौसल : कोसल। 'कौसलनाथ।' मा० ७.५.छं० २ 'कौसलपुरी।' मा० ७.१५.८

कौसल्यां : कौसल्या ने। 'कौसल्यां अब काह बिगारा।' मा० २.४६.८

कौसल्या : सं०स्त्री० (सं०)। राम की माता=दशरथ की बड़ी रानी। मा० १.१६.४

कौसिक : सं०पु० (सं० कौशिक)। कुशिक—वंशज=विश्वामित्र। मा० १.३३१

कौसिकु : कौसिक+कए०। मा० १.३६९.३

कौसिलहि : कौसल्या को। 'भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन।' मा० ३.१४.३

कौसिलां : कौसल्यां। कौसल्या ने। 'जस कौसिलां मोर भल ताका।' मा० २.३३.८

कौसिला : कौसल्या। मा० २.२८२

कौसिल्यहि : कौसल्या को। मा० २.१५४.४

क्यों : किमि (सं० किम्=कथम्>अ० केवं)। (१) किस हेतु। 'सो नर क्यों दस कंठ अभागा।' मा० ६.३३.क (२) किस प्रकार। 'जट जूट बाँधन सोह क्यों।' मा० ३.१८.छं

क्योंहू : किसी प्रकार। 'क्योंहू कोऊ पालि है।' कवि० ५.१०

क्रम : (१) कर्म। 'राम भगत तुम मन क्रम बानी।' मा० १.४७.३ (२) यथा संख्य (सं०)। मानस में अप्रयुक्त है।

क्रमनासा : करनास। 'कासीं मग सुरसरि क्रमनासा।' मा० १.६.८

क्रियन्ह : क्रिया+सं०ब० (सं० क्रियाणाम्)। क्रियाओं। 'क्रियन्ह सहित फल चारि।' मा० १.३२५ यज्ञ=देवकार्य, आद्ध=पितृकार्य, योग=साधना, उपासना, ज्ञान=ब्रह्मसाक्षात्कार—ये चार क्रियाएँ अभिप्रेत हैं।

क्रिया : सं०स्त्री० (सं०) । (१) कर्म, व्यापार । 'जेहिते बिपरीत क्रिया करिऐ ।' मा० ६.१११.२० (२) नित्यकर्म, दिनचर्या आदि । 'प्रात क्रिया करि गे गुर पाहीं ।' मा० १.३३०.४ (३) कर्मकाण्ड आदि की व्यवस्था वाले आचार— दे० क्रियन्ह । (४) पितृ कर्म, और्ध्वदेहिक श्राद्ध आदि । 'करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी ।' मा० २.२४८.१

क्रीड़त : वकृ० पुं० (सं० क्रीडत्>प्रा० कीडंत) । खेलता, खेलते । 'प्रभु क्रीडत ।' मा० ६.१०१ख

क्रीड़हिं : आ०प्रब० । खेलते-ती हैं । 'बहु बिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा।' मा० १.१२६.५

क्रीड़ा : सं०स्त्री० (सं०) । खेल, विनोद, लीला । 'जब रघुनाथ कीन्हि रन क्रीड़ा ।' मा० ७.५८.३

क्रुद्ध : भूकृ०वि० (सं०) । कुपित, रोषाविष्ट । मा० ५.५२

क्रुद्धा : क्रुद्धा । मा० ६.६७.१

क्रुद्धे : 'क्रुद्ध' का रूपान्तर (ब०) । क्रुद्ध हुए । 'देखिअत बिपुल काला जनु क्रुद्धे ।' मा० ६.८१.८

क्रोड़ : सं०पुं० (सं०) वूकर, वराह । विन० ५२.२

क्रोध : सं०पुं० (सं०) । कोप, रोषावेश, द्वेष, कमर्ष ।मा० ३.४३

क्रोधवंत : वि०पुं० (सं० क्रोधवत्) । क्रोधयुक्त । मा० ६.३२.१

क्रोधा : क्रोध । मा० १.६३.८

क्रोधातुर : वि० (सं०) । क्रोध से छटपटाया हुआ, कोपावेश में व्याकुल । 'क्रोध से त्वश (हड़बड़ी) करने वाला । 'सुनत गीध क्रोधातुर धावा ।' मा० ३.२९.१५

क्रोधानल : क्रोधरूपी अग्नि, अग्नितुल्य भस्मान्तकारी क्रोध मा० ६.५५.१

क्रोधिहि : क्रोधी को, से । 'क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा ।' मा० ५.५८.४

क्रोधी : वि०पु० (सं० क्रोधिन्) । कोपाविष्ट, क्रोधशीय मा० २.१६८.१

क्रोधु : क्रोध+कए० । एक मात्र क्रोध । 'क्रोधु पाप कर मूल ।' मा० १.२७७

क्लेशह (दे० ह) क्लेशनाशक । विन० ४६.५

क्लेशहारिणी : वि०स्त्री० (सं०) । क्लेशों का निवारण करने वाली । मा० १.श्लो०५

क्लेस : कलेस । मा० ७.१०९ घ

क्वचित् : अव्यय (सं०) । कहीं, कहीं-कहीं । मा० १.श्लोक ७

क्वै : कोइ । 'करनिहूं न पूजै क्वै ।' कवि० ७.१६३

क्वौ : कोउ । 'नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा ।' मा० ७.१०२.३

क्ष

क्षत्रिय : सं०पुं० (सं०) । क्षत्रवंशज, क्षत्रजातीय माता-पिता की सन्तति । विन० ५१.६

क्षुरधार : सं०स्त्री० (सं० क्षुरधारा) छुरे की धारा तद्वत् तीव्र काट करने वाली । ऐसी तीव्र कि उस पर चलना असम्भव है, जिस से आत्मरक्षा असम्भव हो जाय यदि उस पर गति की जाय । ' बिकटतर वक्र क्षुरधार प्रमदा ।' विन० ६०.७

ख

खँचाइ : पूकृ० । खींचकर, (रेखा) बनाकर । 'देख खँचाइ कहउँ बलु भाषी ।' मा० २.१६.७

खँसेउ : भू०कृ०पुं०कए० (सं० कसितः>प्रा० खसिओ>अ० खसियउ) । गिर गया, खिसक गया, पतित हुआ । 'सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती ।' मा० २.१४८.६

ख : सं०पुं० (सं०) । आकाश, शून्य । खग, खद्योत आदि में प्रयुक्त है ।

खंजन : सं०पुं० (सं०) । खञ्जरीट, खड़ैचा पक्षी । मा० २.११७.७

खंजरीट : सं०पुं० (सं०) । खञ्जन । कृ० २२

खंड : सं०पुं० (सं०) (१) टुकड़ा, टुकड़े । 'खंड खंड होइ हृदउ न गयऊ ।' मा० २.१६२.१ (२) भाग, अंश । 'धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट···।' मा० ६.४१छं०

खंडन : वि०पुं० । विच्छेदकारी, विनाशक । 'खल खंडन मंडन रम्य छमा ।' मा० ६.१११.२१

खंडनि : वि०स्त्री० । विच्छेदकारिणी, विनाश करने वाली । 'चंड भुजदंड खंडनि ।' विन० १५.४

खंडहिं : आ०प्रब० (सं० खण्डयन्ति>प्रा० खंडंति>अ० खंडहिं) । काटकर टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं । 'रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा ।' मा० ३.२० छं० १

खंडा : (१) खंड भाग। भारत आदि भू-भाग। 'असि रव पूरि रही नव खंडा।' मा० ६.५३.७ (२) टुकड़े। 'बहुतक बीर होहिं सत खंडा।' मा० ६.६८.५

खंडि : पूकृ० (सं० खण्डयित्वा>प्रा० खंडिअ>अ० खंडि)। (१) टुकड़े-टुकड़े करके।। 'खंडि खंडि डारे ते बिदारे हनुमान के।' कवि० ६.४८ (२) मतवाद का प्रत्याख्यान (खण्डन) करके। 'खंडि सगुनमत अगुन निरूपा।' मा० ७.१११.१२

खंडित : भूकृ वि० (सं०)। (१) छिन्न-भिन्न, टुकड़ों में विभक्त। कटे हुए। 'मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।' मा० ५.११.४ (२) काट डाला, विनष्ट किया। 'भुज बल बिपुल भार महि खंडित।' मा० ६.५१.५

खंडेउ : भूकृ०पुं०कए० (सं० खण्डितम्>प्रा० खंडिओ>अ० खंडियउ)। उच्छिन्न किया (तोड़ा)। 'खंडेउ हर कोदंडु।' मा० ३.२५

खंड्यो : खंडेउ। 'चंडीस कोदंडु खंड्यो।' कवि० १.२१

खंभ : सं०पुं० (सं० स्तम्भ=स्कम्भ>प्रा० खंभ)। 'मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची।' मा० ७.२७ छं०

खंभन, नि : खंभ+संब०। खंभों। 'जगमगात मनि खंभन माहीं।' मा० १.३२५.३

खंभा : खंभ। मा० ६.४४.६

खई : सं०स्त्री० (सं० क्षति:>प्रा० खई)। (१) हानि, क्षय। 'गति कहे प्रगट, खुनिस खासी खई है।' गी० १.६६.५ (२) कलह 'काहूं सों न खुनिस खई।' गी० ५.३७.१

खग : सं०पुं० (सं०)। ख=आकाश में ग=चलने वाला। (१) पक्षी। 'खग मृग बृंद अनंदित रहहीं।' मा० ३.१४.३ (२) ग्रह-नक्षत्र। 'देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब।' मा० १.७घ (३) देव जाति विशेष।

खगईसा : खगेस। मा० १.११४.१०

खगकेतू : पक्षियों में पताकावत् सर्वोपरि=गरुड़। मा० ६.४२.११

खगनाथ, था : पक्षिराज=गरुड़। मा० ७.१०६.५

खगनायक : गरुड़। मा० ७.७६ १

खगनायकु : खगनायक+कए०। 'गति बिलोकि खगनायकु लाजे।' मा० १.३१६.७

खगनाहा : खगनाथ (दे० नाह)। मा० ७.६३.५

खगपति : (१) गरुड़। मा० ३.२९.१३ (२) पक्षि श्रेष्ठ=जटायु। गी० ३.१३.२

खगभूपा : गरुड़। मा० १.११४.१४

खगराई : खगराया। गरुड़। मा० ७.८९.३

खगराऊ : खगराय+कए०। गरुड़। 'पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ।' मा० ७.१२१.१

खगराज, जा : (१) गरुड़ । मा० ७.६०.५ (२) जटायु । 'राम काज खगराज आजु लर्यो ।' गी० ३.८.३

खगराय, या : खगराज (दे० राया) । मा० ७.७८.१

खगहा : सं०पुं० (सं० खड्गिन्=खड्गभृत>प्रा० खग्गी=खग्गह) । गैंड़ा (पशु विशेष) । मा० २.२३६.३

खगही : पक्षी ही । 'समुझइ खग खगही कै भाषा ।' मा० ७.६२.९

खगी : खग+स्त्री० (सं०) । पक्षिणी, चिड़िया । गी० ५.२०.२

खगे : भूकृ०पुं० । धँसे, खप गये, छुप गये । 'खग्गे खग खपुआ खरके ।' कवि० ६.३५

खगेस, सा : सं०पुं० (सं० खगेश) । गरुड़ । मा० ४.७.२४

खग्ग : (१) खग=पक्षी । 'खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं ।' मा० ६.८८ छं० (२) (सं० खड्ग>प्रा० खग्ग) तलवार । 'भिरे भट, खग्ग खगे, खपुआ खरके ।' कवि० ६.३५

खचाई : भू०कृ०स्त्री० । खींची । 'रामानुज लघुरेख खचाई ।' मा० ६.३६.२

खचित : भूकृ वि० (सं०) जटिल=जड़ा हुआ । गहरी रेखाएँ बना कर जड़ा हुआ; पच्चीकार किया हुआ ।'कनक कोट मनि खचित दृढ ।' मा० १.१७८क

खची : भू०कृ०स्त्री० (सं० खचिता) । जड़ाऊ, पच्ची की हुई । 'मनि खंभ, भीति बिरंचि बिरची कनक, मनि मरकत खची ।' मा० ७.२७ छं०

खचे : खचित (बहु०) । जटित । 'प्रति द्वार द्वार, कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे ।' मा० ६.२७ छं०

खच्चर : सं०पुं० (सं० खचर) । पशु विशेष जो अश्व-गर्दभ-योग से उत्पन्न होता है । मा० ५.३ छं० १

खजानो : सं०पुं०कए० (अरबी—ख़ज़ान:—न कही का गोदाम) । मुद्राकोश, बैंक । 'तुलसी को खुलैगो खजानो खोटे दाम को ।' कवि० ७.७०

खजूरि : सं०स्त्री० (सं खर्जूरी>प्रा० खज्जूरी) । खजूर का पेड़ । दो० ५१४

✓**खटा खटाइ** : (सम्बन्ध निभाना, किसी के साथ निभना) । आ० प्रए० । निभता है, निभ सकता है । 'कहौ, ऐसे साहेब की सेवा न खटाइ को ।' कवि० ७.२२

खटाइ : खटाई । 'विषय बिरत खटाइ नाना कस ।' विन० २०४.२

खटाई : सं०स्त्री० (प्रा० खट्ट) । अम्ल । मा० १.५७ख

खटाहिं : आ०प्रब० । निभते हैं, निभती हैं । 'सहज एकाकिन्ह कें भवन कबहुं कि नारि खटाहिं ।' मा० १.७९

खटोला : सं०पुं० (सं० खट्वा>अ० खट्टोल्लअ) छोटी हल्की खाट (पालकी आदि का आसन) । विन० १८९.२

खड़ग : खड्ग । 'दान खड़ग सूरो ।' विन० ८०.२

खड्ग : सं०पुं० (सं०) । तलवार । विन० ३९.२

खड्गधारा : तलवार की धार । विन० ६०.७

खद्योत : सं०पुं० (सं०) । आकाश (ख=शून्य) में चमक (द्योत) करने वाला=जुगनू । मा० ५.९

खन : छिन (सं० क्षण>प्रा० खण) 'धन्य आलि ए दिन ए खन ।' गी० १.७५.२

√**खन खनइ** : (सं० खनति>प्रा० खणइ—खनु अवदारणे—खोदना) आ०प्रए० । खोदता है, खोद निकालता है, खोद फेंकता है । 'मंगलमूल प्रनाम जासु जग, मूल अमंगल के खनै ।' गी० ५.४०.२

खनत : वकृ पुं० (सं० खनत्>प्रा० खणंत) । खोदते । 'सर खनतहि जनम सिरान्यो ।' विन० ८८.४

खनावत : (१) वकृ पुं० (सं० खानयत्>प्रा० खणावंत) । खुदवाता-ते । (२) क्रियाति०पुं० । तो···खुदवाते । 'न तरु सुधासागर परिहरि कत कूप खनावत खारे ।' गी० १.६८.६

खनावौं : आ०उए० । खोदकर बनवाता हूं, खुदवाता हूं । 'सुधागृह तजि नभ कूप खनावौं ।' विन० १४२.६

खनि : (१) पूकृ० । खोदकर । 'महि खनि कुस साँथरी सँवारी ।' मा० २.२३४.३ (२) सं०स्त्री० (सं०) । खानि, आकर । 'राम प्रनाम महा महिमा खनि ।' गी० ५.३६.५

खने : भूकृ०पुं०ब० (सं० खाताः>प्रा० खणिआ) । खोदे । 'सागर सृजे खने अरु सोखे ।' गी० ५.१२.५

खनै : दे० खन

खनैगो : आ०भ०पुं०प्रग० । खोदेगा, खोदकर बनाएगा । 'जोइ जोइ कूप खनैगो पर कहँ···।' विन० १३७.५

खन्यो : भू०कृ०पुं०कए० । खोदा, खोदकर तैयार किया । 'यह जलनिधि खन्यो ।' गी० ६.११.५

खपत : वकृ पुं० । खपता, क्रय-विक्रय-व्यापार में खप जाता, बाजार में बिक जाता । 'कलिजुग बर बनिज बिपुल नाम नगर खपत ।' विन० १३०.४

खपर : खप्पर । कवि० ६.५०

खपु : सं०पुं०कए० (सं० क्षप) । क्षय, कष्ट सहकर देहादिशोषण, क्लेशसहन । जापकी न तप-खपु कियो न तमाइ जोग ।' कवि० ७.७७

खपुआ : वि०पुं० (सं० खपुर=आकाश में नगर बसाने वाला) । जो विजय आदि की हवाई कल्पना (मनोराज्य) करता है पर युद्ध से घबराता है=कायर । खग्ग खगे खपुआ खरके ।' कवि० ६.३५

खप्पर : सं०पुं० (सं० खर्पर>प्रा० खप्पर) । कपाल, कपालाकार पात्र । 'जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं ।' मा० ६.८८.७

खप्परिन्ह : खप्परी+संब० । छोटे खप्परों (में, से) । 'खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं ।' मा० ६.८८ छं०

खबरि : सं०स्त्री० (अरबी-ख़बर) । सन्देश, समाचार । 'खबरि लेत हम पठए नाथा ।' मा० २.२७२.७

खभार : सं०पुं० (सं० अक्षभार>प्रा० अन्भृवभार—शकटभार) । एक बैलगाड़ी का बोझ, मानसिक बोझ जो दबोच दे, अनिश्चय या हड़बड़ी, इन्द्रिय यामन (अक्ष) का भार (तुर्की-खाबूर=पच्चर या खूंटी) । 'देखि निबिड तम दहुं दिसि कपिदल भयउ खभार ।' मा० ६.४६

खभारु : खभार+कए० । (१) एकमात्र दुश्चिन्ता का बड़ा बोझ, मनोव्यथा । 'फिरहु त सब कर मिटै खभारु ।' मा० २.९७.३ (२) अद्वितीय खभार=अनिश्चय का दबाव । 'लखन लखेउ प्रभु हृदयँ खभारु ।' मा० २.२२७.६ (३) सन्नाटा, अवसाद का भार । 'सोक मगन सब सभाँ खभारु ।' मा० २.२६३.२

खय : सं०पुं० (सं० क्षय>प्रा०खय) । विनाश । 'नृपति निकर खयकारी ।' गी० १.१०९.४

खये : सं०पुं० (सं० ख) ब० । अङ्ग—विशेषतः भुजमूल तथा पादमूल जिन्हें पहलवान लोग लड़ाई में ठोंकते हैं । 'मन कसि कसि ठोंकि ठोंकि खये ।' गी० १.४५.२

खर : (१) वि०पुं० (सं०) । तीक्ष्ण । 'खर कुठारु मैं अकरुन कोही ।' मा० १.२७५.६ (२) तीव्र, दुःसह । 'पंथ कथा खर आतप पवनू ।' मा० १.४२.४ (३) शुद्ध, निर्दोष । 'परख्यो न फेरि खर खोट ।' विन० १९१.८ (४) वि०पुं० (सं०) गधा । 'खर स्वान सुअर सृकाल ।' मा० १.९३ छं० (५) एक राक्षस जिसे जनस्थान में राम ने मारा था । 'खर दूषन पहिं गइ बिलपाता ।' मा० ३.१८.२

खरके : भूकृ०पुं० (बहु०) । खिसक गये, चुपके भाग खड़े हुए । 'खग्ग खगे खपुआ खरके ।' कवि० ६.३५

खरखौकी : भूकृ० स्त्री० (सं० खर+खोल्का=तीव्र पुच्छल तारा) । पुच्छल तारे के समान आकाशव्यापी रेखा बनाती हुई दमक उठी; धूमकेतू के समान आर-पार

तीव्रता के साथ लीक बना गई। 'लहकी कपि लंक जथा खरखोकी।' कवि० ७.१४३

खरगोस : सं०पुं०कए० (फ़ा० खरगोश)। गधे (खर) के समान कान (गोश) वाला जंगली जन्तुविशेष=शशक। 'चहत केहरि जसहि सेइ सृगाल ज्यों खरगोसु।' विन० १५६.३

खरच : सं०पुं० (अरबी—खर्ज=फा० खर्च—प्रवास में जाना अरबी अर्थ है; फारसी में व्यय में आया धन अर्थ हे)। (हिन्दी में) व्यय। दो० ४७१

खरतर : वि० (सं०)। तीव्रतर, अति तीक्ष्ण। 'अवलोकि खरतर तीर।' मा० ३.२०.३

खरनि : खर+संब०। गधों (पर)। 'भए खर निमि असवार।' गी० २.४७.१५

खरभर : सं०पुं० (ध्वनि-चेष्टानुकरण)। खलभली, कान्दिशीकता, किंकर्तव्यमूढ़ दशा में एक प्रकार का कलख, क्षुब्ध ध्वनि। 'कपिदल खरभर भयउ घनेरा।' मा० ६.१००.१० ('खर' तिनकों के 'भर' भार का-सा शब्द तथा अव्यवस्था का अर्थ अभिप्रेत रहता है।)

खरभरी : खरभर। विफलता। 'सिय हिय की बिसेषि बड़ी खरभरी है।' गी० १.९२.३ यहाँ घड़े में जल की खलभलाने वाली ध्वनि का अर्थ आता है जिससे हृदय के उमथने का अभिप्राय निकलता है।

खरभरु : खरभर+कए०। समुदित खलभली, सामूहिक विकलता। 'खरभरु नगर सोचु सब काहू।' मा० २.४९.२

खरभरे : भूकृ०पुं०ब०। क्षुब्ध हो उठे, खलभल ध्वनिपूर्ण हुए। 'लोल सागर खरभरे।' मा० ५.३५ छं० १

खरारि, री : खर राक्षस के शत्रु=राम। मा० ५.२२

खरि : (१) सं०स्त्री० (सं० खलि, खली)। तिल आदि का वह बचा भाग (या तलछट) जो तेल निकालने के बाद रह जाता है। 'दै दै सुमन तिल बासि कै खरि परिहरि रस लेत।' विन० १९०.३ (२) वि०स्त्री०। तीव्र, खरी, तीखी। 'झरि झकोर खरि खीझि।' दो० २८४

खरिया : सं०स्त्री० (सं० क्षारिका>प्रा० खारिया)। (१) घास-भूसा आदि बाँधने की जाली। 'घरबात घरें खुरपा खरिया।' कवि० ७.४६ (२) झोली (साधुओं की)। 'खरिया खरी कपूर सब उचित।' दो० २५५

खरी : (१) सं०स्त्री० (सं०)। गधी। 'खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी।' मा० ७.११०.७ (२) सं०स्त्री० (सं० खटिका, खडिका, खडि)। खड़िया मिट्टी

(जिससे तिलक आदि करते हैं) । दो० २४६, २५५ (३) भू०कृ०स्त्री० । खड़ी हुई । 'मंदिरनि पर खरी नारि ।' गी० ७.५.७

खरु : खर+कए० । (१) गधा, अन्यतम मूर्ख । 'सोइ नरु खरु है ।' विन० २५५.३ (२) राक्षस विशेष । 'बालि बली खरु दूषनु ।' कवि० ६.१२

खरे : (१) भूकृ०पुं०ब० । खड़े हुए । 'जहँ सो तहँ चितवत खरे ।' मा० ६.८६ छं० (२) वि०पुं०ब० । शुद्ध, निर्दोष । 'खोट खरे होत ।' कवि० ७.१६

खरो : खरु । (१) निर्दोष, शुद्ध । 'जनु खोटो खरो रघुनायक ही को ।' कवि० ७.५६ (२) तीखा, चुभने वाला । अधिक । 'चले मुदित मन डरु न खरो सो ।' मा० २.३२१.८

खरोइ : खरा ही, अत्यन्त ही । 'तुलसी राम जो आदर्यो खोटो खरो खरोइ ।' दो० १०६

खर्पर : सं०पुं० (सं०) । (१) भिक्षापात्र, कपाल, कपालाकार पात्र; खोपड़ी या तदाकार पात्र, पात्र का गोलाकार खण्ड । 'भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं ।' मा० ३.२० छं० (२) कछुए की पीठ जो उक्त आकार की होती है । 'जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत ।' मा० ५.३५ छं० २

खर्ब : (१) वि० (सं० खर्व) । बौना, छोटा । । 'महामत्त गजराज कहुं बस कर अंकुस खर्ब ।' मा० १.२५६ (२) क्षुद्र, नीच । 'रे कपि बर्बर खर्ब खल ।' मा० ६.२५

खर्वीकरण : वि०पुं० । अखर्व (बड़े) को खर्व (लघु) करने वाला । 'राहु रवि शक्र पवि गर्व खर्चीकरण ।' विन० २५.२

खर्यो : भूकृ०पुं०कए० । खड़ा हुआ । 'जोवट पंथ खर्यो ।' विन० २३६.७

खल : सं०+वि०पुं० (सं०) । (१) दुष्ट जन । 'बंदउँ खल जस सेष सरोषा ।' मा० १.४.८ (२) (सं०) खरल (जिसमें दवा पीसी जाती है) । 'रावन सो रसराज, सुभट रस सहित, लंक खल, खलतो ।' गी० ५.१३.२ (३) (सं०) खली=तेल रहित तिल की पिण्डी । 'भए मुख मलिखाइ खल खाजी ।' कृ० ६१

खलई : सं०स्त्री० (सं० खलता>प्रा० खलया) । दुष्टता । 'खल बिलसत हुलसत खलई है ।' विन० १३६.५

खलउ : दुष्टजन भी । 'खलउ करइ भल पाइ सुसंगू ।' मा० १.७.४

खलक : सं०स्त्री० (अरबी—ख़लक़) । (१) सृष्टि, सम्पूर्ण लोक समूह । 'पैआत न छत्री-खोज खोजत खलक मैं ;' कवि० ६.२५ (२) पैदायश, सृष्टि की उत्पत्ति । 'कियो कलिकालु कुलि खललु खलक ही ।' कवि० ७.६८

खल-खाजी : (दे० खल तथा खाजी) । खली का बना हुआ खाद्य । कृ० ६१

खलतो : क्रियाति०पुं०ए० । खरल करता, घोटता, पीस कर मिलाता । '(जो··· तो) रावन सो रसराज सुभट रस सहित लंक खल खलतो ।' गी० ५.१३.२

खलनि, न्ह : खल+संब० । दुष्टों (के) । 'खलन्ह हृदयँ परिताप बिसेषी ।' मा० ७.३९.३

खलता : सं०पुं० (अरबी—खलल) । बाधा, प्रत्यवाच, छलप्रपञ्च । 'देखि खलल अधिकार प्रभू सो भूरि भलाई भनि हैं ।' विन० ९५.२

खललु : खलल+कए० । 'कियो कलिकाल कुलि खललु खल कहीं ।' कवि० ७.९८

खलहु : खल+सम्बोधन ब० । ऐ दुष्टो ! 'खलहु जाहु कहँ मोरें आगे ।' मा० ६.९७.७

खलाइ : (दे० खलाय) पूकृ० । नीचा करके, खाली करके ।

खलाईं । खलाई से, दुष्टतावश । 'गए खल खेचर खीस खलाईं ।' कवि० ७.१३१

खलाई : (१) खलई (दे० खलाईं) । (२) पूकृ० । खल कर, भीतर को झुका कर, नीचा कर । 'प्रभु सों कह्यो बारक पेटु खलाई ।' कवि० ७.५७

खलाए : भूकृ०पुं० । भीतर धँसाए हुए, गर्ताकार किए हुए । 'फिरते पेट खलाए ।' विन० १६८.३

खलानां : (सं०)=खलन्ह । मा० ६ श्लोक ३

खलाय : खलाइ । धँसा कर । 'फिरत पेटौ खलाय ।' कवि० ७.१२५

खलायो : भूकृ०पुं०कए० । गर्ताकार बनाया, धँसाया । 'खिन खिन पेट खलायो ।' विन० २७६.३

खलु : (१) अव्यय (सं०) । निश्चय ही । 'आजु करउँ खलु काल हवालो ।' मा० ६.९०.८ (२) तो, वस्तुत: । 'माया खलु नर्तकी बिचारी । मा० ७.११६.४

खलेल : सं०पुं० (सं० खलतैल>प्रा० खलेल्ल) । खलीमिश्रित तेल; तेल का तलछटा । गी० १.४.१३

खलो : खलउ । दुष्ट भी । 'तरि गयो अजामिल सो खलो ।' गी० ५.४२.३

खवासु : सं०पुं०कए० (अरबी—खबास=खिदमतगार+मुसाहब) । परिचारक या सभासद् । 'खोजि कै खवासु खासो कूबरी सी बाल को । कवि० ७.१३५

खस : सं०पुं (सं०) । जाति विशेष । मा० २.१९४

√खस, खसइ : (सं० कसति—कस गतौ>प्रा० खसइ—खिसकना, गिरना) आ० प्रए० । खिसकता है, खिसके, गिरे । 'न्हात खसै जनि बार ।' जा०मं० २९

खसत : वकृ०पुं० (सं० फसत्>प्रा० खसंत) । खिसकता-ते । 'पट उड़त भूषन खसत ।' गी० ७.१९.४

खसम : सं०पुं०—पति, स्वामी । 'राम के प्रसाद गुरु गौतम खसम भए ।' गी० १.६७.३

खसमु : खसम+कए० । एकमात्र स्वामी । 'लसम के खसमु तुहीं पै दसरत्थ के ।' कवि० ७.२४

खसाई : भूकृ०स्त्री० । गिरियी । 'मीचु बस नीच सोऊ चाहत खसाई है ।' कवि० ७.१८१

खसि : पूकृ० । गिर कर, खिसक कर । 'मुरुछित बिकल धरनि खसि परी ।' मा० ६.१०४.१

खसी : भकृ०स्त्री० । छूट गिरी, खिसक गई 'खसी माल मूरति मुसुकानी ।' मा० १.२३६.५

खसे : भूकृ०पुं०ब० । गिर पड़े, खिसके । 'डोलत धरनि सभासद खसे ।' मा० ६.३२.४

खसेउ, ऊ : भूकृ०पुं०कए० । खिसका, गिरा । 'जब तें श्रवनपूर महि खसेऊ ।' मा० ६.१४.६

खसै : दे० √खस ।

खसैहौं : आ०भ०उए० । गिराऊँगा, खिसकने दूंगा । 'उरकर तें न खसैहौं ।' विन० १०५.२

खाँगिहे : आ०भ०प्रए० । कम रहेगा, कम पड़ेगा । 'तुलसीदास स्वारथ परमारथ न खाँगिहै ।' विन० ७०.५

खाँगें : कम होने से, कमी से, कमी पूरा करने हेतु । 'राखौं देह नाथ केहि खाँगें ।' मा० ३.३१.७

खाँगो : भूकृ०पुं०कए० । अल्प हुआ, कम पड़ा । 'न खाँगो कछू, जनि माँगिए थोरो ।' कवि० ७.१५३

खाँची : भूकृ०स्त्री० । खींची । 'पूछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची ।' मा० २.२१.७

खाँचो आ० आज्ञा—प्रए० । खींच देवे । 'कोड रेख दूसरी खाँचो ।' विन० २७७.१

खाँड़ : पुं०सं० (सं० खण्ड) । (१) खाँड़ा, आयुध (धनुष) शकर । 'अयमय खाँड़ न ऊखमय ।' मा० १.२७५

खाँड़े : खांड का रूपान्तर (ब०) । आयुध । 'एक कुसल अति ओड़न खाँड़े ।' मा० २.१९१.६

√खा, खाइ : (१) (सं० खादति>प्रा० खाइ—भोजन करना—खाद भक्षणे) आ०प्रए० । खाता है (भोजन करता है) । 'बिनु बोले संतोष जनित सुख खाइ सोइ पै जानै ।' विन० १२३.४ (२) (सं० खायति—खै अदने हिंसासां च) । चबा जाता है, मार कर खा लेता है । 'केहि जग कालु न खाइ ।' मा० २.४७

खाइ : पूकृ० । खाकर । 'सागु खाइ सत बरष गंवाए ।' मा० १.७४.४

खाइअ : आ० कर्मवाच्य-प्रए० । खाया जाता है । 'खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें ।' मा० २.१६.४

खाईं : सं०स्त्री० (सं० खातिका>प्रा० खाइआ)+ब । खाइयाँ, गढ़ के आसपास के गहरे गर्त । 'खाईं सिन्धु गभीर अति ।' मा० १.१७८ क

खाई : (१) खाइ । खा जाती है । 'यहि बिधि सकल गगनचर खाई । मा० ५.२.२ (२) खाइ । खाकर । 'कंदमूल फल खाई······चले ।' मा० २.१२४.४ (३) भूकृ०स्त्री० । 'बेलपाती······खाई ।' मा० १.७४.६

खाउँ, ऊँ : आ०उए० । खाता हूं (खाया करता था) । 'जूठनि·········खाउँ ।' मा० ७.७५ क

खाउँगो : आ०भ०पुं०उए० । खाऊँगा । 'ऊबरी जूठनि खाऊँगो ।' गी० ५.३०.४

खाउ : आ० आज्ञा-प्रए० । खाए । 'सो नर खेहर खाउ ।' विन० १००.१

खाएँ : खाने से, खाने पर । 'वहि के खाएँ मरत है ।' दो० ५०२

खाए (ये) : भूकृ०पुं०(ब०) । 'सिय सौमित्रि राम फल खाए ।' मा० २.१२५.४

खाएसि : आ०-भूकृ०पुं०+प्रए० । उसने खाया, खाये । 'फल खाएसि तरु तोरैं लागा ।' मा० ५.१८.१

खाको : (फा० खाक=मिट्टी) खाक भी, धूल भी, जरा भी । धूल के बराबर भी । 'बालिस बासी अवध को बूझिऐ न खाको ।' विन० १५२.१०

खाजी : सं०स्त्री० (सं० खाद्य>प्रा० खज्ज>अ० खज्जी) । खाजा, भक्ष्य । 'भए मुख मलिन खाइ खल-खाजी ।' कृ० ६१ (दे० खलखाजी)

खाजु : सं०स्त्री० (सं० खर्जु=खर्जु>प्रा० खज्जु=खज्जू) । खुजली रोग । 'कोढ़ में की खाजू सी सनीचरी है मीन की ।' कवि० ७.१७७

खाटी : वि०स्त्री० (प्रा० खट्ट) । खट्टी, अम्ल । मा० १.२६०.५

खात : वकृ पुं० । खाता, खाते । 'चलत पयादें खात फल ।' मा० २.२२२

खाती : खात+स्त्री० । 'खाती दीपमालिका, ठठाइअत सूप हैं ।' कवि० ७.१७१

खातेउँ : आ०क्रियति०पुं०उए० । मैं खा लेता, खा जाना । 'पितहि खाइ खातेउँ अब तोही ।' मा० ६.२४.१०

खातो : क्रियाति०पुं०ए० । यदि···तो···खाना । 'बाजीगर के सूम ज्यों खल बेह न खातो ।' विन० १५१.२

खान : (१) सं०पुं० (सं०) । खाने की क्रिया । 'खान पान को एक ।' मा० २.३१५ (२) भकृ० अव्यय । खाने । 'जहँ तहँ लागे खान फल ।' मा० ५.३५

खानपान : सं०पुं० (सं०) । खाना-पीना । मा० २.३१५; कवि० ७.१६८

खानि : सं०स्त्री० (सं०) । (१) आकर (जिससे धातु, रत्न आदि खनिज निकलते हैं) । 'हा गुन खानि जानकी सीता ।' मा० ३.३०.७ (२) जाति, जीव प्रकार

(जो विशेष खनि या वंश-परम्परा से संबद्ध है)। 'चारि खानि जग जीव अपारा।' मा० १.३५.४ (चारि खानि=अण्डज, पिण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज)

खानिक : खान का, खान सम्बन्धी। 'गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिका।' मा० १.१.८

खानीं : खानि+ब०। खानें। 'सोभासील तेज की खानीं।' मा० १.१९०.७

खानी : खानि। 'सुजन समाज सकल गुन खानी।' मा० १.२.४

खाब : भकृ०पुं० (सं० खातव्य>प्रा० खाअव्व)। (हमें) खाना (है)। 'सो भनु मनुज खाब हम भाई।' मा० ६.९.६

खायउँ : आ०भूकृपुं०+उए०। मैंने खाया-खाये। 'खायउँ फल मोहि लागी भूखा।' मा० ५.२२.३

खायगो : आ०भ०पुं० (१) प्रए०। वह खाएगा। (२) मए० तू खाएगा। 'ह्वै है बिष भोजन जो सानि सुधा खायगो।' विन० ६८.४

खाया : भूकृ०पुं०। भक्षित किया। 'चिंता साँपिनि को नहिं खाया।' मा० ७.७१.४

खायो : खाया+कए। 'खायो कालकूट।' कवि० ७.१५८

खारा : वि०पुं० (सं० क्षार>प्रा० खार)। नमकीन, क्षारयुक्त। मा० २.११९.४

खारे : 'खार' का रूपान्तर (ब०)। क्षारयुक्त। 'कूप खनावत खारे।' गी० १.६८.९

खारो : खारा+कए०। 'सकति खारो कियो चाहत मेघहू को बारि।' कृ० ५३

खाल : सं०स्त्री० (सं० खल्ला)। चर्म, चमड़ा, त्वचा। 'खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई।' मा० ७.१२१.१७

खालें : क्रि०वि० (सं० खल्ले=गर्ते>प्रा० खल्लेण>अ० खल्लें)। गढ़े में, नीचे (संकट आदि में)। 'चलेहुं कुमग परपर्हिं न खालें।' मा० २.३१५.५

खावा : खाया। 'पुरोडास चह रासभ खावा।' मा० ३.२९.५

खास : वि० (अरबी—खास)। विशेष। 'मरिये तौ अनायस कासीबास खास फल।' कवि० ७.१६६

खासी : खास+स्त्री०। 'खुनिस खासी खई है।' गी० १.९६.५

खासो : खास+कए। विशिष्ट, निजी। 'खोजि कै खवासु खासो कूबरी सी बाल को।' कवि० ७.१३५

खाहिं, हीं : आ०प्रब०। खाते-ती-हैं। 'निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं। मा० ३.२८.८

खाहिगो : आ०भ०पुं०मए० । तू खायगा । 'भागे तें खिरिरि खेह खाहिगो ।' कवि० ६.२३

खाहु, हू : आ०मब० । खाओ, खालो, खा डालो । 'खाहु सुरस सुंदर फल नाना ।' मा० ४.२५.२

खिझाइ : पूकृ० । खिझाकर, खिन्न करके । कृ० २२

√खिझाव खिझावइ : (सं० खेदयति>खिज्जावइ—खेद देना, रुष्ट या क्षुब्ध करना) आ०प्रए० । खिझाता है । 'जरै बरै अरु खीझि खिझावै ।' वैरा० ५७

खिझावतो : क्रियाति०पुं०ए० । (यदि···तो···) खिझाता । 'तौ हौं···खिझावतो न···जो होतो कहूं ठाकुर ठहरु ।' विन० २५०.१

खिन : (१) खिन्न । थका हुआ । 'उस्नकाल अरु देह खिन ।' दो० ३१० (२) खन । क्षण

खिनु : खिन+कए० (सं० क्षणम्>प्रा० खणं>अ० खणु—क्रि०वि०) । क्षण भर, एक क्षण । 'खिनु खिनु पेट खलायो ।' विन० २७६.३

खिन्न : भूकृ०वि० (सं०) । (१) आर्त (भक्त), दीन जन । 'बंदउँ सीता राम पद जिनहि परम प्रिय खिन्न ।' मा० १.१८ (२) थका हुआ, परिश्रान्त । 'खेद खिन्न छुद्धित तृषित ।' मा० १.१५७ (३) मानसिक क्लान्ति से युक्त, क्षुब्ध । 'खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई ।' मा० ७.५९.२

खिरिरि : पूकृ० । घिसटने की खरोंचें खाकर; खरोंचों के साथ घिसिट कर । 'भागे तें खिरिरि खेद खाहिगो ।' कवि० ६.२३

खिलाए : भू०कृ०पुं०ब० । खेलाए, दुलराए । 'जियत खिलाए राम ।' दो० २२१

खिसिआइ : पूकृ० । लज्जित होकर । 'चले खिसिआइ ।' मा० ६.५४

खिसिआई : खिसिआइ । मा० ६.९१.४

खिसिआन, ना : भूकृपुं० । लज्जित हुआ । 'बोला अति खिसिआन ।' मा० ५.९

खिसिआनि, नी : भू०कृ०स्त्री० । लज्जित हुई । 'तब खिसिआनि राम पहिं गई ।' मा० ३.१७.१९

खीझ : खीझि । अमर्ष, खेद, हल्का रोष, क्षोभ । 'खीझहूं मैं रीझिबे की बानि ।' कवि० ७.१३६

खीझत : वकृपुं० । खेद करता-ते, रुष्ट होता-ते । 'देखत दोष न खीझत ।' विन० १५७.४

खीझति : खीझत+स्त्री० रुष्ट होती । 'खीझति मँदोवै सबिषाद देखि मेघनादु ।' कवि० ५.४२

खीझन : भा०कृ० अव्यय । खीझने, रुष्ट होने । 'निज सारथि सन खीझन लागा ।' मा० ६.१००.७

खीझि : (१) सं०स्त्री० । रोष, खेद । 'झरि झकोर खरि खीझि ।' दो० २८४ (२) पूकृ० । खीझ कर, खिन्न होकर । 'जरै बरै अरु खीझि खिझावै ।' वैरा० ५७

खीझिअ : आ०भावा० । खेद किया जाय, खीझा जाय, अमर्ष किया जाय । 'काहे को खीझिअ, रीझिअ पै ।' कवि० ७.९३

खीझिबे : भकृ०पुं० । खीझने, रुष्ट होने । 'खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु ।' विन० २५२.५

खीझे : भूकृपुं० । अमर्षयुक्त हुए (होने पर), रुष्ट हुए (पर) । 'रीझे बस होत, खीझे देत निज धाम रे ।' विन० ७१.६

खीन : वि० (सं० क्षीण>प्रा० खीण) दुर्बल, कृस । 'तन खीन कोउ अति पीन ।' मा० १.९३ छं०

खीर : सं०पुं० (सं० क्षीर>प्रा० खीर) । दूध । 'खीर नीर बिबरन गति हंसी ।' मा० २.३१४.८

खीरु : खीर+कए० । 'सगुनु खीरु अवगुनु जलु ताता ।' मा० २.२३२.५

खीरै : क्षीर की, क्षीर से । 'उपमा······क्यों दीजै खीरै नीरै ।' गी० ६.१५.३

खीस, सा : वि० (सं० क्षि=क्षी—विनाश+ष=अन्त) । नष्ट, अस्त-व्यस्त, बिखेरा हुआ कि समेटा-सकेला न जा सके; उच्छिन्न किया हुआ, छिन्न-भिन्न; सर्वथा नष्ट कि अंशतः भी शेष न पाया जा सके । 'जनि घालसि कुल खीस ।' मा० ५.५६फ 'केहिं कें घालेहि बन खीसा ।' मा० ५.२१.१

खुआर : वि० (फा० ख्वार=जलील, खराब, बेऐतबार) । दुष्ट+निन्दित+अविश्वनीय । 'बचन बिकार, करतबउ खुआर ।' कवि० ७.६४

खुआरु, रू : खुआर+कए० । 'हमहि सहित सबु होत खुआरू ।' मा० २.३०५.६

खुटानी : भू०कृ०स्त्री० । खुट गई, समाप्ति पर पहुंची (मौत आ पहुंची) । 'सो जानइ जनु आइ खुटानी ।' मा० १.२६९.३

खुनिस : सं०स्त्री० (अरबी—खन्स=सुस्ती, टेढ़ाई) । ग्लानि, वक्रता, अमर्ष आदि का मिश्रभाव । 'खेलत खुनिस न कबहूं देखी ।' मा० २.२६०.६ (इसका विशेषण 'मुखन्नस' होता है जो 'कुटल हृदय' का अर्थ देता है अतः कुटिलतापूर्ण रोष मुख्य अर्थ है ।)

खुर : सं०पुं० (सं०) । पशु का पैर । 'होत अजाखुर बारिधि बाढ़े ।' कवि० २.५

खुरपा : सं०पुं० (सं० क्षुरप्न>प्रा० खुरप्प) । घास छीलने का उपकरण विशेष । 'घरबात घरें खुरपा खरिया ।' कवि० ७.४६

खुलहिं : आ०प्रब० । खुलते-ती-हैं; उघड़ते-ती-हैं । 'खुलहिं सुमंगल खानि ।' रा०प्र० १.१.५

खुली : भूकृ०स्त्री० । अनावृत हुई, प्रकट होकर शोभित हुई । 'पियरी झीनी झंगुली साँवरे सरीर खुली ।' गी० १.३३.२

खुले : भूकृ०पुं० (ब०) । अनावृत हुए, प्रकट हुए। 'एहो अनुराग खुले भाग तुलसी के हैं ।' गी० २.३०.६

खुलेउ : भूकृ०पुं०कए० । अनावृत होकर प्रकाशमान हुआ । 'भरत दरसु देखत खुलेउ मृग लोगन्ह कर भागु ।' मा० २.२२३

खुलैगो : आ०भ०पुं०कए० । खुलेगा, उजागर होगा । 'तुलसी को खुलैगो खजानो खोटे दाम को ।' कवि० ७.७०

खूँट : सं०पुं० (सं० खुण्ट=खुण्ड=खण्ड—खुटि खण्डने) । भाग, टुकड़ा, अञ्चल, छोर । 'देखि अति लागत आनंदु खेत खूँट सो ।' कवि० ७.१४१

खूँद : सं०स्त्री० (सं० क्षोद>प्रा० खुंद) । एक ही स्थान पर निरन्तर पैरों की गति; अनवरत चाल जो एक ही लक्ष्य पर हो (एकाग्रता) । 'तुलसी जो मन खूँद सम, कानन बसहुं कि गेह ।' दो० ६२

खूब : वि० (फ़ा० खूब) । उत्तम, दृढ़ । 'कोऊ कहै राम को गुलामु खरो खूब है ।' कवि० ७.१०८

खूसर : सं०पुं० । खूसट, उल्लू । 'राजपराल के बालक पेलि कै पालत लालत खूसर को । कवि० ७.१०३

खूसरो : खूसर भी, उल्लू भी । 'सुमिरें कृपाल के मराल होत खूसरो ।' कवि० ७.१६

खे : (दे० ख) आकाश में (सं०) । 'गो खग, खे खग, बारि खग ।' दो० ५३८

खेइ : पूकृ० । खे (कर), नाव चला (कर) । 'सकहिं न खेइ ।' मा० २.२७६

खेचर : सं०पुं० (सं०) । (१) पक्षी, खग । 'बानर बाज, बढ़े खल खेचर ।' हनु० १८ (२) ग्रह, बेताल आदि । 'डाकिनी शाकिनी खेचरं भूचरं ।' विन० ११.६ (३) आकाशगामी राक्षस आदि । 'गए खल खेचन्ह खीस खलहिं ।' कवि० ७.१३१

खेत, ता : सं०पुं० (सं० क्षेत्र>प्रा० खेत) । (१) निश्चित परिमाण का भू-भाग । (२) कृषि योग्य भू-भाग । वैरा० ५ (३) रणक्षेत्र । 'सानुज निदरि निपातउँ खेता ।' मा० २.२२३०.७ (४) तीर्थ आदि पावन भू-भाग । 'देखि अति लागत अनंदु खेत खूँट सो ।' कवि० ७.१४१

खेती : सं०स्त्री० । कृषि, अन्नोत्पादन की आजीविका । कवि० ७.६७

खेद : सं०पुं० (सं०) । (१) श्रम । 'जिन्हहिं न सपनेहुं खेद बरनत रघुबर बिसद जसु ।' मा० १.१४ छं० (२) शारीरिक थकावट । 'खेद खिन्न छुद्धित तृषित ।'

मा० १.१५७ (३) मानसिक क्लान्ति, विषाद। 'खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई।' मा० ७.५६.२

खेदा : खेद। 'उभय हरहिं भवसंभव खेदा।' मा० ७.११५.१३

खेदु : खेद+कए०। 'सोई है खेदु जो बेदु कहै……।' कवि० ७.६०

खेम, मा : छेम (सं० क्षेम>प्रा० खेम)। जीवनचर्या की निर्विघ्न व्यवस्था, अव्याहत आजीविका (योगक्षेम)। 'होइ कि कुसल खेम रौताई। मा० २.३५.६

खेरें : खेरे में, लघु ग्राम में। 'घरु ब्याध अजामिल खेरें।' कवि० ७.६२

खेरे : सं०पुं० (सं० खेटक>प्रा० खेडय) ब०। छोटे गाँव। 'जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे।' मा० २.२३६.१

खेरो : सं०पुं०कए० (सं० खेटम्, खेटकम्>प्रा० खेडयं>अ० खेडउ)। छोटा पहाड़ी गाँव। 'आप पाप को नगर बसावत सहि न सकत पर खेरो।' विन० १४३.४

खेल : सं०पुं० (सं०)। (१) क्रीडा, विनोद आदि। 'हारेहुं खेल जितावहिं मोही।' मा० २.२६०.८ (२) स्वाँग, लीला। 'प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई।' मा० ६.६४.३

खेलउँ : आ०उए० (सं० खेलामि>प्रा० खेल्लमि>अ० खेल्लउँ)। खेलता रहता हूं (था)। 'खेलउँ तहूं बालकन्ह मीला।' मा० ७.११०.४

खेलक : वि० (सं०)। खिलाड़ी। गी० १.४५.३

खेलत : वकृ०पुं० (सं० खेलत्>प्रा० खेल्लंत)। खेलता-ते। 'खेलत मनसिज मीन जुग।' मा० १.२५८

खेलन : भकृ० अव्यय। खेलने। 'पुरुषसिंघ बन खेलन आए।' मा० ३.२२.३

खेलनि : सं०स्त्री० (सं० खेलन)। क्रीडन क्रिया। गी० १.२१.२

खेलनिहारे : वि०ब०। खेलने वाले। गी० १.४६.१

खेलवार : सं०+वि०पुं० (सं० खेलकार>प्रा० खेल्लआर)। खिलाड़ी या शिकारी। 'मुनि आयूस खेलवार।' मा० २.२१५

खेलहिं, हीं : आ०प्रब० (सं० खेलन्ति>प्रा० खेल्लंति>अ० खेल्लहिं)। खेलते हैं। 'खेलहिं खेल सकल नृपलीला।' मा० १.२०४.६

खेलहु : आ०मब० (सं० खेलत>प्रा० खेल्लह>अ० खेल्लहु)। खेलो। 'खेलहु मुदित नारि नर, बिहँसि कदेउ रघुबीर।' गी० ७.२१.४

खेला : खेल। मा० ५.२५.५

खेलाइ, ई : पूकृ०। खिलाकर, खेल कराकर (नचाकर)। 'हतौं न समर खेलाइ खेलाई।' मा० ६.३५.११

खेलाउब : भकृ०पुं० (सं० खेलयितव्य>प्रा० खेल्लाविअव्व) । खेलना (होगा) । 'तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब ।' मा० २.१३६.७

खेलारू : सं०पुं० (सं० खेलिता>प्रा० खेल्लारो>अ० खेल्लारू) कए० । खिलाड़ी । 'चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू ।' मा० २.२४०.६

खेलावत : वकृ०पुं० (सं० खेलयत्>प्रा० खेल्लावंत) । खेल कराता-ते (हुए) । 'जुआ खेलावत गारि देहिं गिरि नारिहि ।' पा०मं० १३५

खेलावन : सं०पुं० (सं० खेलना>प्रा० खेल्लावण) । क्रीड़ा करना । 'जुआ खेलावन कौतुक कीन्ह सयानिन्ह ।' जा०मं० १५०

खेलावहिं : आ०प्रब० (सं० खेलयन्ति>प्रा० खेल्लावंति>अ० खेल्लावहिं) । खेल कराते हैं; खेलने को प्रेरित करते हैं, खेल में सम्मिलित रखते हैं । 'संतत संग खेलावहिं ।' कृ० ४

खेलावहु : आ०मब० (सं० खेलयत>प्रा० खेल्लावह>अ० खेल्लावहु) । खेल करावो । 'अब जनि नाथ खेलावहु एही ।' मा० ६.८६.६

खेलावा : भूकृ०पुं० (सं० खेलित>प्रा० खेल्लाविअ) । खेल कराया । 'एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा ।' मा० ६.७६.१४

खेलि : पूकृ० (सं० खेलित्वा>प्रा० खेल्लिअ>अ० खेल्लि) । खेलकर, खिलवाड़ करके । 'डगरि चले हँसि खेलि ।' कृ० २६

खेलिबे : भ०कृ०पुं० (सं० खेलितव्य>प्रा० खेल्लिअव्वय) । खेलने । 'खेलिबे को खग मृग ।' विन० २३१.३

खेलिबो : भकृ०पुं०कए० । (सं० खेलितव्यम्>प्रा० खेल्लिअव्वं>अ० खेल्लिव्वउ) । खेलना । 'इन्ह के लिए खेलिबो छाँड्यो ।' कृ० ४

खेलिय : आ०कवा०प्रए० (सं० खेल्यते>प्रा० खेल्लीअइ) । खेला जाय, खेलिए । 'खेलिय अब फागु ।' विन० २०३.१७

खेलिहहिं : आ०भ०प्रब० (सं० खेलिष्यन्ति>प्रा० खेल्लिहिंति>अ० खेल्लिहिहिं) । खेलेंगे । 'खेलिहहिं भानु कीरू चौगाना ।' मा० ६.२७.५

खेलिहौ : आ०भ०मब० (सं० खेलिष्यथ>प्रा० खेल्लिहित>अ० खेल्लिहिहु) । खेलोगे । 'छगन मगन अँगना खेलिहौ मिलि ।' गी० १.८.३

खेलैं : खेलहिं । खेलते हैं । 'साँपनि सों खेलैं ।' कवि० ५.११

खेलौना : सं०पुं० (सं० खेलनक>प्रा० खेल्लावणअ) । क्रीडनक, खेल का उपकरण ।' गी० १.२२.१

खेल्यो : भूकृ०पुं०कए० । खेला, खेल किया । 'बाल दसाहू न खेल्यो खेलत सुदाउ मैं ।' विन० २६१.२

खेवाँ : खेवे में । 'प्रात पार भए एकहि खेवाँ ।' मा० २.२२१.३

खेवा : सं०पुं० (सं० क्षेप>प्रा० खेव) । नाव की खेप, एक बार पार जाने वाला नौकाभार ।

खेवैया : वि० । खेने वाला, नाविक । 'न बोहितु नाव न नीक खेवैया ।' कवि० ७.५२

खेस : सं०पुं० (अरबी—खेश) । मोटे धागों से घना बुना वस्त्र-विशेष जो ओढ़ने-बिछाने के काम आता है । 'साथरी को सोदूबो, ओढ़िबो झूने खेस को ।' कवि० ७.१२५

खेह : सं०स्त्री० । राख, धूल । 'भागे तें खिरिरि खेह खाहिगो ।' कवि० ६.२३

खेहर : खेह । 'सो नर खेहर खाउ ।' विन० १००.१

√खैंच खैंचइ : (सं० खञ्चाति>प्रा० खंचइ—खींचना, अपनी ओर को तानना) आ०प्रए० । खींचता है, खींच ले । 'चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू ।' मा० २.२४०.६

खैंचत : वकृ०पुं० (सं० खञ्चत्>प्रा० खंचंत) । खींचते, तानते (हुए) । 'लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें ।' मा० १.२६१.७

खैंचहिं : आ०प्रब० (सं० खञ्चन्ति>प्रा० खंचंति>अ०खंचहिं) । खींचते-तानते हैं । 'खैंचहिं गीध आंत तट भए ।' मा० ६.८८.५

खैंचहु : आ०मब । खींचो, तान कर चढ़ाओ । 'खैंचहु चाप मिटै संदेहू ।' मा० १.२८४.७

खैंचि : पूकृ० । खींच कर, तान कर । 'खैंचि सरासन छाँड़े सायक ।' मा० ६.६२.६

खैबो : भूकृ०पुं०कए० ((सं० खादितव्यम्>प्रा० खाइअव्वं>अ०खाइव्वउ) । खाना । 'मागि कै खैबो मसीत को सोइबो ।' कवि० ७.१०६

खैहौं : आ०भ०उए० (सं० खादिष्यामि>प्रा० खाइहिमि>अ० खाइहिउँ) । खाऊँगा । 'सिगरियै हौंही खैहौं ।' कृ० २

खोंच : सं०स्त्री० (सं० क्रुञ्चा>प्रा० कुंचा=कोंचा) । उलझने से बनने वाली वस्त्रादि की फटन, खरोंच । 'तुलसी चातक प्रेम-पट मातहुं लगी न खोंच ।' दो० ३०२

खो : को । का । 'दूजो को कहैया औ सुनैया चख चारि खो ।' कवि० १.१६

खोइ : पूकृ० (सं० क्षपयित्वा>प्रा० खविअ>अ० खवि) । खोकर, क्षपित कर, मिटा कर, गवाँ कर । 'पूँछ बुझाइ खोइ श्रम ।' मा० ५.२६

खोई : (१) खोइ । 'गुंजा ग्रहइ परस मुनि खोई ।' मा० ७.४४.३ (२) भू०कृ० स्त्री० (सं० क्षपिता>प्रा० खविआ) । खो गई, मिटी । 'राम प्रताप बिषमता खोई ।' मा० ७.४४.३

खोएँ : (सं० क्षपितेन>प्रा० खविएण>अ० खविएँ)। खोने, गवाँ देने पर। 'खोएँ राखें आपु भला।' दो० २५२

खोज : (१) सं०स्त्री०। गवेषणा, ढूंढ़ना। 'सीता खोज सकल दिसि धाए।' मा० ७.६७ १ (२) पता, ढूंढ़ने के चिन्ह। 'रथकर खोज कतहुं नहिं पावहिं।' मा० २.८६.२ (३) भेद, रहस्य। दो० ४०६

✓**खोज, खोजइ** : (सं० खोजति—स्तेये—खोई वस्तु का पता लगाना, ढूंढ़ना) आ०प्रए०। खोजता है। 'खोजइ सो कि अग्य इव नारी।' मा० १.५१.२

खोजत : वकृ०पुं०। खोजता-खोजते। 'खोजत रहेउँ तोहि सुत घाती।' मा० ६.८३.२

खोजन : भकृ० अव्यय। खोजने, ढूंढ़ने। 'सुग्रीवहिं तब खोजन लागा।' मा० ६.६६.४

खोजहु : आ०मब०। खोजो, ढूंढ़ो। 'जनक सुता कहुं खोजहु जाई।' मा० ४.२२ ७

खोजि : पूकृ०। ढूंढ़कर। 'देखेउँ खोजि लोक तिहु माहीं।' मा० ३.१७.६

खोजौं : आ०उए०। ढूंढूं। 'आपु सरिस कहँ खोजौं जाई।' मा० १.१५०.२

खोट : वि०पुं० (सं० खोट=खञ्ज, लंगड़ा)। त्रुटिपूर्ण, दोषयुक्त, दुष्ट। 'ताहि दिखावइ निसिचर निज माया मति-खोट।' मा० ६.५१

खोटाई : सं०स्त्री०। खोटापन, दुष्टता। 'अहह बंधु तें कीन्हि खोटाई।' मा० मा० ६.६३.४

खोटि, टी : खोट+स्त्री०। दुष्टा। 'तोहि सम को खोटी।' मा० ३.५.१७

खोटें : खोट होने से, कपट से। 'तुलसी खोटें चतुरपन।' दो० ५४६

खोटे : 'खोट' का रूपान्तर (ब०)। दोषयुक्त। 'निखोट होत खोटे खल।' कवि० ७.१७

खोटेउ : खोटे भी। 'अँकरे किए खोटेउ छोटेउ बाढ़े।' कवि० ७.१२७

खोटने : खोट+कए०। कलुषित, सदोष। 'जनु खोटने खरो रघुनायक हा को।' कवि० ७.५६

खोयो : भूकृ०पुं०कए०। (१) खो दिया, गवाँया। 'खोयो सो अनूप रूप। विन० ७४.२ (२) खो गया, भटक गया। 'निकटहि रहत दूरि जनु खोयो।' विन० २४५.२

खोरि, री : (१) सं०स्त्री० (सं० खोड, खोर, खोल=लंगड़ाना)। त्रुटि, हीनता, क्षति, दोष, अपराध। 'कहहु त हमहि न खोरि।' मा० १.१६५ (२) चर्चित रेखाएँ। 'तन अनुहरत सुचंदन खोरी।' मा० १.२१९.४ (३) गली। 'खोरि खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं।' कवि० ५.३ (४) पूकृ०। स्नान करके। तीर तीर बैठीं सो समर सरि खोरि कै।' कवि० ६.५०

खोरे : (१) सं०+वि०पुं०ब० (सं० खोर, खोड, खोल=लँगड़ा)। लँगड़े, सदोष। 'काने खोरे कूबरे।' मा० २.१४ (२) भूकृ०पुं०। स्नान किए हुए। 'ज्यों नव घन सुधा सरोवर खोरे।' गी० ३.२.२ (३) नहाने से। 'हम सों कहत बिरह श्रम जैहै गगन कूप खनि खोरे।' कृ० ४४

खोलन : सं०पुं० (सं० खोलन—खोल्ट अपनयने)। अनावरण क्रिया। 'अधराधर पल्लव खोलन की।' कवि० १.५

खोलि : पूकृ० (१) खोल कर, अनावृत करके। 'खोलि दिखाई।' कृ० ४१। (२) दुराव हटाकर। 'क्यों मिलाए मन खोलि।' दो० ३३२

खोलिअ, ऐ : आ०कवा०प्रए० (सं० खोल्यते>प्रा० खोल्लीअइ)। प्रकट कीजिए, निकालिए। 'रोष न रसना खोलिए, बरु खोलिअ तरवारि।' दो० ४३५

खोली : (१) खोलि। 'तुरत देब मैं थैली खोली।' मा० १.२७६.४ (२) भूकृ० स्त्री०। अनावृत की। 'कुमत् कुबिहग कुलह जनु खोली।' मा० २.८८.८

खोलैं : आ०प्रब०। खोलते हैं, बन्धन मुक्त करते हैं। 'बोलैं खोलैं सेल असि चमकत चोखे हैं।' गी० १.६५.१

खोवत : वकृ०पुं० (सं० क्षपयत्>प्रा० खवंत)। गवाँता-ते। 'खोवत अपान।' कवि० ७.१६२

खोवहिं : आ०प्रब०। खो देते हैं, खो जाते हैं। 'बहुत दुख खोवहिं हो।' रा०न० १७

खोवै : भकृ० अव्यय। खोने, मिटाने को। 'सो खोवै चह कृपानिधाना।' मा० ७.६२.८

खोह, हा : सं०पुं०। कन्दरा, गुहा। भीतरी भाग। 'सरिता सर गिरि खोह।' मा० ४.२३

खोही : सं०स्त्री०। घोंघी, तृणनिर्मित छतरी। 'तौसिऐ लसति नव पल्लव खोही।' गी० २.२०.२

खौंदि : पूकृ०। खुरों से कुचल कर, चूर-चूर करके। 'भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं।' कवि० ५.१५

खौरि : सं०स्त्री०। आड़ी रेखा रचना। 'चंदन खौरि सुहाई।' गी० १.५२.३

ख्याल : (१) खेल। 'ख्याल ही पिलाकु तोर्यो। कवि० १.२ (२) सं०पुं० (अरबी—ख़याल)। कल्पना, मानस बिम्ब, ध्यान। 'जौं जमराज काज सब परिहरि इहै ख्याल उर अनिहैं।' विन० ६५.१

ख्याली : वि० कौतुकी, क्रीडाशील। कवि० ७.१५५

ख्वैहौं : आ०भ०उए०। खोऊँगा, गवाँऊँगा। 'ख्वैहौं न पठावनी।' कवि० २.६

ग

गँभीर, रा : गंभीर। 'बोले बचन गँभीर।' मा० ६.८९; 'कियो मृगनायक नाद गँभीरा।' मा० ६.६९.२

गँवाइ : (१) गवाँइ। गवाँ कर, खोकर, हारकर। 'मघवा अपने सों करि गयो गर्व गँवाइ।' कृ० १८ (२) आ० आज्ञा—मए०। तू बिता, गवाँ दे। 'लखि दिन बेठि गँवाइ।' दो० २५७

गँवाई : (१) गँवाइ। खोकर। 'जैहउँ अवध कौनु मुहु लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई।' मा० ६.६१.११ (२) गवाँई। खोदी, खो गई। 'मानहुं संपति सकल गँवाई।' मा० ६.३५.५

गँवायो : भू०कृ०पुं०कए०। खो दिया, बिता डाला। 'जनम गँवायो तेरे ही द्वार किंकर तेरे।' विन० १४९.१

गँवार : गवाँर। कवि० ७.३९

गँवारि, री : गवाँरी कृ० ५३

गँवारु : गवाँरु। गी० ७.१०.५

√गँवाव गँवावइ : (सं० गमयति>प्रा० गमावइ>अ० गवांवइ—खोना, बिताना)। आ०प्रए०। खोता है, गवाँता है। 'राग द्वेष महँ जनम गँवावै।' वैरा० ५७

गँवावौं : गवाँवौं। खो रहा हूं। 'सो बिनु काज गँवावौं।' विन० १४२.६

गँस : सं०स्त्री०। तीर आदि की नोक, नोक की चुभन; मन के भीतर की चुभन, दुर्भाव। 'जननिहु गँस न गही।' गी० ७.३७.२

ग : (समासान्त में) वि० (सं०)। चलने वाला। खग, अनुग आदि

गंग : गंगा। मा० १.३२.१४

गंगा : सं०स्त्री० (सं०)। नदी विशेष, देवनदी। मा० १.९२.३

गंगाधर : वि०+सं०पुं० (सं०)। गङ्गानदी को धारण करने वाला=शिव। विन० १२.३

गंगोझ : वि० (सं० गङ्गा-वाह्य>प्रा० गगउज्ज)। गङ्गाजी से बाहर का। 'सोई सलिल सुरा सरिस गंगोझ।' दो० ६८

गंजन : वि०पुं०। विनाशकर्ता। 'गंजन बिपति बरुथा।' मा० १.१८६ छं०

गंजनिहार : वि०पुं०। विनाशकारी। 'कुंजर गंजनिहार।' दो० ३८१

गंजय : आ०—प्रार्थना—मए०। तू नष्ट कर। 'हृदि बसि राम काम मद गंजय।' मा० ७.३४.८

गंजा : भूकृ०पुं० । नष्ट किया । 'तेहि समेत नृप दल मद गंजा ।' मा० ५.२७.८

गंजेउ : भूकृ०पुं०कए० । नष्ट किया, मार गिराया । 'जनु मृगराज किसोर महागज गंजेउ ।' जा०मं० १०४

गंड : सं०पुं० (सं०) । कपोल । गी० ७.४.३

गंडकि : सं०स्त्री० (सं गण्डकी) । एक नदी जिसके काले पत्थर से । बने हुए शालग्राम पूजे जाते हैं । 'गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिऐ गंडकि सिला सुभाउँ ।' दो० ३९२

गंता : वि०पुं० (सं० गन्त) । जाने वाला , गमनशील । 'भूमि पाताल जल गगन गंता ।' विन० २५.८

गंध : सं०पुं० (सं०) । (१) घ्राणग्राह्य गुण जो पृथ्वी का विशेष गुण है । 'बिनु महि गंध कि पावइ कोई ।' मा० ७.९०.४ (२) सांख्यादि दर्शनों में पञ्च तन्मात्रों या सूक्ष्मभूतों में अन्यतम । 'परम रस शब्द गंध अरु रूप ।' विन० २०३.६

गंधरब : गंधर्ब । गी० १.२.१५

गंधर्ब, र्बा : सं०पुं० (सं० गन्धर्ब) । संगीतज्ञ देवजाति विशेष । मा० १.७घ; १.६१.१

गंभीर : वि० (सं०) (१) गहरा । 'निर्मल जल गंभीर ।' मा० ७.२८ (२) घना, गहन । 'निसा घोर गंभीर बन ।' मा० १.१५९क (३) मन्द्र (स्वर) । 'गगन गिरा गंभीर भइ ।' मा० १.१८६ (४) भरापूरा, परिपूर्ण (५) धैर्यशाली

गंभीरतर : आरीशय गंभीर । विन० ५१.५

गंभीरा : गंभीर । (१) परिपूर्ण । 'नील कंज बारिद गंभीरा ।' मा० १.१९९.१ (२) धैर्यशाली । 'कहि न सकत कछु अति गंभीरा ।' मा० १.५३.२

गइ : गई ; 'धरि पंच गइ राति ।' मा० १.३५४

गइउँ : आ०—भूकृ०स्त्री०+उए० । मैं गई । 'गइउँ न संग न प्रान पठाए ।' मा० २.१६६.५

गईं : गई+ब० । 'सिधि सब···गईं जहाँ जनवास ।' मा० १.३०६

गई : भूकृ०स्त्री० (सं० गता>प्रा० गया=गई) । मा० १.७२.५

गईबहोर : वि०पुं० । गई=खोई वस्तु को लौटा लाने वाला, शरणदाता । 'गईबहोर गरीबने वाजू ।' मा० १.१३.७

गईबहोरि : सं०स्त्री० । 'गईबहोरि' होने का भावकर्म । खोई वस्तु को पुन: देने की क्रिया । 'कहि पारथ सारथिहि सराहत गईबहोरि गरीबनेबाजी ।' कृ० ६१

गएँ : जाने पर, जाने से । 'गएँ जान सबु कोइ ।' मा० १.४८क

गए : भूकृपुं० (ब०) । मा० १.४८.१

गगन : सं०पुं० (सं०) । आकाश, शून्य (अन्तरिक्ष) । मा० १.७.९

गगनगिरा : आकाशवाणी, दैवी अदृश्य वाणी। मा० १.१८६
गगनचर : आकाश में विचरण करने वाले जीव (पक्षी आदि)। 'एहि बिधि सकल गगनचर खाई।' मा० ५.३.३
गगनपथ : अन्तरिक्षमार्ग, वायुमार्ग। मा० ३.२८
गगनु : गगन+कए०। सब-का-सब (एकीभूत) आकाश। 'गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई।' मा० २.२३२.१
गगनोपरि : (गगन+उपरि—सं०) आकाश पर। मा० ६.७१.११
गच : सं०स्त्री० (फा०)। पक्की (जड़ाऊ) फर्श। 'नाना रंग चारु गच ढारीं।' मा० ७.२७.३
गचकांच : काँच की बनी फर्श। 'ज्यों गचकाँच बिलोकि स्येन जड़ छाँह आपने तन की।' विन० ९०.३
गच्छन्ति : आ०प्रब० (सं०)। जाते हैं, पहुंचते हैं, प्राप्त करते हैं। विन० ५७.५०
गज : सं०पुं० (सं०)। हाथी। मा० १.११.१
गजगवनि, नी : गजगामिनि (सं० गजगमना)। पा०मं० ११९
गजगामिनि : वि०स्त्री० (सं० गजगामिनी)। हाथी के समान मत्त चाल चलने वाली। मा० १.३१७
गजगाह : (दे० गाह) हस्तिसेना अथवा हाथी का हौदा। 'साजि कै सनाह गजगाह सउछाह दल।' कवि० ६.३१
गजछाल : (दे० छाल) हाथी का चर्म। पा०मं०छं० १२
गजबदन : गजानन। गणेश। मा० १.२३५.६
गजमनि, नी : गजमुकुता। मा० ७.९.३
गजमनियाँ : गजमनि+ब०। गजमुक्ताएँ। 'कंठुला कंठ मंजु गजमनियाँ।' गी० १.३४.३
गजमुकुता : (दे० मुकुता) हाथी के कुम्भमण्डल के भीतर उत्पन्न होने वाली मुक्ता। रा०न० ४
गजमोति : गजमुकुता (दे० मोती)। गी० ७.२१.८
गजराज : (सं०) श्रेष्ठ हाथी। मा० १.२५६
गजराजा : गजराज। मा० ५.१९.७
गजराजु : गजराज+कए०। मा० २.३९
गजानन : सं०पुं० (सं०)। गज के मुख के समान मुख वाला=गणेश
गजाननु : गजानन+कए०। 'सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना।' मा० १.३३९.८
गजारि, री : हाथी का शत्रु=सिंह। मा० ६.३०.३

गजाली : सं०स्त्री० (सं०) । गज समूह, हाथियों की श्रेणी । 'केहि सोहाति रथ बाजि गजाली ।' मा० २.२२८.७

गजु : गज+कए० । एक वह हाथी=गजेन्द्र जिसका भगवान् ने उद्धार किया था । 'अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ ।' मा० १.२६.७

गज्जत : गर्जत (सं० गर्जत्>प्रा० गज्जंत) । 'बीरु बारिदु जिमि गज्जत ।' कवि० ६.४७

गठिबँध : सं०पुं० (सं० ग्रन्थिबन्ध>प्रा० गंठबंध) । गँठजोड, गठबन्धन (विवाह का ग्रन्थि बन्धन) । मेल-मिलाप । 'गठिबँध तें परतीति बड़ि ।' दो० ४५३

गड़त : वकृ०पुं० । (गर्त में) धँसता-ते । 'गड़त गोड़ मानो सकुच पंक महँ ।' गी० २.६९.३

गड़ी : भूकृ०स्त्री० । धँसी, चुभ गई, प्रविष्ट होकर (मानों गर्त में) अदृश्य होकर बैठ गई । 'छबि गड़ी कबि जियरे ।' गी० १.४३.२

गड़े : भूकृ०पुं० (ब०) । (मानों गर्त में) धँस गये । 'जिय जात जनु सकुचनि गड़े ।' विन० १३५.४

गढ़ : सं०पुं० (प्रा०) । दुर्ग, किला । मा० १.७९.३

✓**गढ़ गढ़इ** : (सं० घटयति>प्रा० घडइ=घढ़इ—रचना, सँवार कर बनाना, कलात्मक निर्माण करना)

गढ़त : वकृ०पुं० (सं० घटयत्>प्रा० गढ़ंत) (१) रचना, रचते । (२) बातें बनाता-ते । 'अब यें गढ़त महरि मुख जोए ।' कृ० ११

गढ़ाइहौं : आ०भ०उए० (सं० घटयिष्यामि>प्रा० गढाविहिमि>अ० गढाविहिउँ) । गढाऊँगा, बनवाऊँगा । 'हौं दीन बित्तहीन कैसें दूसरी गढ़ाइहौं ।' कवि० २.८

गढायो : भूकृ०पुं०कए० । बनवाया । 'आनि कै सबै को सारु धनुषु गढ़ायो है ।' कवि० १.१०

गढ़ि : पूकृ० (सं० घटयित्वा>प्रा० गढ़िअ>अ० गढि) । रचकर । 'सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं ।' मा० १.२८८.६

गढ़ीवै : गढ़ी हुई बातें (दे० गढ़ोवै)

गढु : गढ़+कए० । एकमात्र (अद्वितीय) दुर्ग । 'छेत्रु अगम गढु गाढ़ सुहावा ।' मा० २.१०५.५

गढ़े : भूकृ०पुं० (ब०) (सं० घटित>प्रा० गढिय) । (१) छील डाले, रन्द दिये । 'रावन राढ़ सुहाड़ गढ़े ।' कवि० ६.६ (२) कृत्रिम रूप से छील छाल कर रचे हुए । 'चित्र से नयन अरु गढ़े से चरन कर ।' गी० ५.१८.२

गढ़ैया : वि० गढ़ने वाला, कृत्रिम रचना करने वाला, कपोल कल्पित करने वाला । 'ग्यान को गढ़ैया ।' कवि० ७.१३५

गढ़ोवैं : गढ़े में, गढ़ में—किले या गर्त में (आज-कल अवधी में गर्त और दुर्ग दोनों को 'गढ़वा' या 'गढ़ोवा' कहते हैं) । 'हौ भले नगफँग परे हौ गढ़ोवैं ।' कृ० ११

गणति : वकृ० स्त्री० (सं० गणयन्ती>प्रा० गणंती) । गिनती=गणना करती । 'यस्य गुणगण गणति बिमलमति शारदा ।' विन० ११.६

गत : भूकृ०वि० (सं०) । (१) स्थित, उपस्थित । 'अंजलि गत सुभ सुमन जिमि ।' मा० १.३ (२) गया=पहुंचा । 'मेधा महि गत सो जलु पावन ।' मा० १.३६.८ (३) बीत गया । 'एहि प्रकार गत बासर सोऊ ।' मा० २.२७३.३ (४) रहित । संत हृदय जस गत-मद-मोहा ।' मा० ४.१६.४ (५) समाप्त हुआ । 'नाथ कृपाँ मम गत संदेहा ।' मा० ७.१२९.८

गतक्रोध : वि० (सं०) । क्रोध रहित । मा० ६.११० छं०

गतव्यलीक : (दे० व्यलीक) माया-मिथ्या-रहित । गी० १.३६.१

गतभेदा : वि० (सं० गतभेद) । भेदभावना रहित, मायाकृत विविधाताओं से परे द्वैतहीन । 'सकल बिकार रहित गतभेदा ।' मा० २.९३.३

गतलाज : वि० (सं० गतलज्ज) । मा० २.१७८

गति : सं०स्त्री०(सं०) । (१) चाल । 'चलेउ बराह मरुत गति भाजी ।' मा० १.१५७.१ (२) उपाय । 'भनिति भगति नति गति पहिचानी ।' मा० १.२८.६ (३) पहुँच । 'गति सर्बत्र तुम्हारि ।' मा० १.६६ (४) लक्ष्य, गन्तव्य । 'गति परमिति लहिबे ही ।' कृ० ४० (५) मार्ग, पन्थ । 'अब निर्गुन गति गही है ।' कृ०४२ (६) प्राप्यक, रोय । 'जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ ।' मा० १.२२.३ (७) दशा, परिणाम । 'भै जगबिदितदच्छगति सोई ।' मा० १.६५.३ (८) बनाव, साज । 'कोउ अपावन गति धरें ।' मा० १.९३ छं० (९) शक्ति, क्षमता । 'सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी ।' मा० १.१२५.४-५ (१०) प्रपत्ति, शरण । 'गति अनन्य तापस नृप रानी ।' मा० १.१४५.५ (११) पुरुषार्थ प्राप्ति, लक्ष्य-सिद्धि । 'जो सुख पावहिं जो गति लहहीं ।' मा० १.१५०.८ (१२) प्रवृत्ति, इच्छा । 'मन की गति जानी ।' मा० १.२१८.३ (१३) प्रशिक्षित विशेष चाल । 'फेरहिं चतुर तुरग गति नाना ।' मा० १.२९९.२ (१४) (संगीत में) लय । 'अनुहरि ताल गातिहि नटु नाचा ।' मा० २.२४१.४

गतिकारी : वि०पुं० (सं०) । चाल लेने वाला । 'अजर अमर मन सम गतिकारी ।' मा० ६.८९.४

गती : गति । सद्गति, उत्तम मार्ग । 'गृह आनहिं चेरि निबेरि गती ।' मा० ७.१०१.३

गथ : सं०पुं० (सं० ग्रन्थ>प्रा० ग्रंथ)। धन। 'बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।' मा० ७.२८ छं०

गद : सं०पुं० (सं०)। (१) रोग। (२) एक वानर यूथप का नाम। मा० ५.५४

गदगद : (१) वि० (सं० गद्गद)। कण्ठरोधयुक्त। 'गदगद गिरा गभीर।' मा० १.२१५ (२) रुद्धस्वर। 'गदगद कंठ न कछु कहि जाई।' मा० १.७२.७

गदा : सं०स्त्री० (सं०)। मुद्गराकर आयुधविशेष। मा० १.१८२.४

गन : सं०पुं० (सं० गण)। (१) समूह। 'किएँ तिलक गुन गन बस करनी।' मा० १.१.४ (२) (शिव के) पार्षद। 'दिए मुख्य गन संग तब।' मा० १.६२ (३) (यम के) दूत। 'जन गन मुहँ मसि जग जमुना सी।' मा० १.३१.११ (४) कष्टप्रद देवदूत आदि। 'रुचिहि कामादि घन घेरे।' विन० २१०.३ (५) कर्मचारी, अधिकारी। 'प्रभु तें प्रभु गन दुखद।' दो० ५०१ (६) लोग (बहु०)। 'बहुरि बंदि खल गन सति भाएँ।' मा० १.४.१

√**गन गनइ** : (सं० गणयति—गण संख्याने>प्रा० गणइ—(१) गिनती करना (२) मानना, अपेक्षा करना) आ०प्रए०। (१) गिनता है। 'इन्ह सम कोटिन्ह गनइ के नाना।' मा० ५.५५.१ (२) मानता या अपेक्षा करता है। 'अति गर्ब गनइ न सगुन असगुन।' मा० ६.६८ छं०

गनक : सं०+वि०पुं० (सं० गणक)। (१) गणना करने वाला, गणितज्ञ। 'तेरें हेरें लोपै लिपि बिधिहु गनक की।' कवि० ७.२० (२) ज्योतिषी। 'गनक बोलि दिनु साधि।' मा० २.३२३

गनकन्ह : गनक+संब०। गणकों, ज्योतिर्विदों (ने)। 'गनी जनक के गनकन्ह जोई।' मा० १.३१२.७

गनत : वकृपुं० (गणयत्>प्रा० गणंत)। गिनता-गिनते। 'राम भरत गुन गनत सप्रीती।' मा० २.२९०.१

गनति : गनत+स्त्री०। गिनती, अपेक्षा करती, मानती। 'गनति न सो सिसु पीर।' मा० ७ ७४क (२) आ०प्रए० (सं० गणयति)। गिनता है। 'बिमल गुन गनति शुकनारदादी।' विन० २६.८

गनती : गिनती। विन० २०८.३

गननायक : रुद्र गणों में श्रेष्ठ=विनायक=गणेश। मा० १.२५७.७

गनन्ह : गन+संब। गणों। 'गनन्ह समेत बसहिं कैलासा।' मा० १.१०३.५

गनप : सं०पुं० (सं० गणप) गणपति। मा० २.२७३.४

गनपति : सं०पुं० (सं० गणपति)। सद्गुनों में श्रेष्ठ गणेश। मा० २.६.८ अनुश्रुत के अनुसार व्यासकृत महाभारत तथा पातञ्जल महाभाष्य के लेखक गणेश जी थे। 'तुलसी गनपति सों तदपि महिमा लिखी न जाइ।' वैरा० ३५

गनपु : गनप+कए। गणेश। रा०प्र० १.१.६

गनराऊ : गनपति (सं० गणराज:>प्रा० गणराओ>अ० गणराउ)। मा० १.१६.४

गनराजा : सं०पुं० (सं० गणराज)। गणेश। मा० १.३४७.८

गनहिं, हीं : आ०प्रब० (सं० गणयन्ति>प्रा० गणंति>अ० गणहिं)। (१) गिनते हैं। (२) समझते-मानते हैं। 'तुम्ह समान त्रैलोकहि गनहीं।' मा० ५.५५.२ (३) मन में लाते हैं, महत्त्व देते हैं। 'बाल दोष गुन गनहिं न साधू।' मा० १.२७५.५

गनहि : आ० आज्ञा-मए० (सं० गणय>प्रा० गणहि)। तू गिन। 'मेसादिक क्रम तें गनहि।' दो० ४५६

गना : गन। मा० ४.६० छं०

गनाये, ए : भू०कृपुं०ब०। परिगणित कराये, गिनाये। 'अति असीम नहिं जाहिं गनाये।' विन० १३६.६

गनावौं : आ०उए०। गिनाता हूं, अपनी गिनती करता हूं। 'सब संतन माझ गनावौं। विन० १४२.८

गनि : पूकृ०। (१) गणना कर। 'बिजन बहु गनि सकइ न कोई।' मा० १.१७३.२ (२) वर्णन करके। 'मति अनुहारि सुबारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ।' मा० १.४३ (३) विवेचित करके। 'गनि गुन दोष बेद बिलगाए।' मा० १.६.३ (४) एक के बाद एक—निरन्तर। 'देहिं गनि गारीं।' मा० १.७.१०

गनिअ : आ०—कवा०—प्रए० (सं० गण्यते>प्रा० गणीअइ)। (१) गिनिए, गिना जाता है, गिना जाय। (२) मानिए, समझना चाहिए। 'लघु करि गनिअ न ताहु।' मा० १.१७० (३) स्थान दिया जाय। 'प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा।' मा० २.४२.२

गनिकाँ : गणिका ने। 'गनिकाँ कबहीं मति पेम पगाई।' कवि० ७.६३

गनिका : सं०स्त्री० (सं० गणिका)। वेश्या। मा० ७.१३० छं० १

गनिकाऊ : गणिका भी। 'अपतु अजामिनु गज गनिकाऊ।' मा० १.२६.७ (एक भक्त गणिका का भगवान् ने उद्धार किया था।)

गनिबो : भकृ०पुं०कए० (सं० गणायितव्य:>प्रा० गणिअव्वो)। गिनना, योग्य। 'न्यारो कै गनिबो।' विन० ७७.३

गनियत : वकृ०पुं०—कवा०। गिना जाता-गिने जाते। 'तेइ गनियत बड़भागी।' विन० ६५.४

गनिहि : गनी को, धनी को। 'गहिहि गुनिहि साहिब लहै।' विन० २७४.२

गनी : (१) वि०पुं० (अरबी—गन्नी)। धनाढ्य, निश्चिन्त, अमीर। 'गनी गरीब ग्रामनर नागर।' मा० १.२८.६ (२) भू०कृ०स्त्री०। गिनी, गणित करके निकाली। 'गनी जनक के गनकन्ह जोई।' मा० १.३१२.७

गने : (१) गनइ। गिन सकता है। 'बिबिध बाहन को गने।' मा० ६.८७ छं० (२) भूकृ०पुं०ब०। परिगणित=गिने-चुने। 'गने लोग लिए साथ।' मा० २.२४५ (३) गिने गये। 'जहाँ गने गरीब गुलाम।' विन० ७७.३

गनेस : सं०पुं० (सं० गणेश)। गणपति। मा० १.२५५.८

गनेसु, सू : गनेस+कए०। मा० १.३०१

गनें : गनहिं। 'चारि पदारथ में गनें।' दो० ३५९

गनै : (१) गनइ। गिनता है, गिने, गिन सकता है। 'गन बेष अगनित को गनै।' मा० १.९३ छं० (२) भकृ० अव्यय। गिनने को। 'गनै को पार निसाचर जाती।' मा० १.१८१.३

गपत : (फा० गप=मिथ्या कथन, चापलूसी, बकवास) वकृपुं०। गप मारता, बकता। 'गाल गूल गपत।' विन० १३०.२

गभीर : गंभीर (सं०)। (१) सघन। 'बिंध्याचल गभीर बन गयऊ।' मा० १.१५६.४ (२) मन्द्र। 'गदगद गिरा गभीर।' मा० १.२१५ (३) गहरा, गहरी। 'खाई सिंधु गभीर अति।' मा० १.१७८क (४) अज्ञेय। मा० ७.१०८.५

गभीरा : गभीर। मा० १.८४.८

गभुआरे : वि०पुं०बहु०। गर्भ के बालों आदि का विशेषण। गर्भ के। 'चिक्कन कच मेचक गभुआरे।' मा० १.१९९.१०

गम : सं०पुं० (सं०)। गति, पहुंच। 'गम नहिं गिरा गुन ग्यान गुनी को।' कवि ७.१४६

गमन : सं०पुं० (सं०)। प्रस्थान, जाने की क्रिया।

गमनु : गमन+कए०। 'सीताँ गमनु राम पहिं कीन्हा।' मा० १.२६३.८

गमिहैं : (अरबी—गम=रन्ज, दुःख) आ०भ०प्रब०। ग्रम करेंगे, दुःखी होंगे। 'खल अनखैहैं तुम्हैं, सज्जन न गमिहैं।' कवि० ७.७१

गमु : गम+कए०। कोई गति। 'सेस महेस गिरा गमु नाहीं।' मा० २.३२५.८

गम्य : वि०पुं० (सं०)। गन्तव्य, लक्ष्य, प्राप्य, साध्य, प्रमेय, ज्ञेय। संवेदनीय या अनुभवनीय। 'अनुभव-गम्य भजहिं जेहि संता।' मा० ३.१३.१२

गय : (१) गज (प्रा० गय)। 'अगनित हय गय सेन समाजा।' मा० १.१३०.२ (२) (सं० गत>प्रा० गय)—दे० गयउ

गयंद : सं०पुं० (सं० गजेन्द्र>प्रा० गइंद)। हस्तियूथप, गजराज। 'रजनीचर मत्त गयंद घटा।' कवि० ६.३६

गयंदु : गयंद+कए०। अद्वितीय गजेन्द्र। 'नव गयंदु रघुबंसमनि।' मा० २.५१

गयउँ, ऊँ : आ०—भूकृ०पुं०+उए०। (१) मैं गया। 'मैं पुनि गयउँ बंधु सँग लागा।' मा० ४.६.४ (२) मैं मिट गया, समाप्त हो गया। 'गयउँ नारि बिस्वास।' मा० २.२६

गयउ, ऊ : भूकृ०पुं०कए०। गया। 'राउ गयउ सुरधाम।' मा० २.१५५

गयहु : आ०—भूकृपुं०+मब०। तुम समाप्त हो गये। 'गर्भ न गयहु ब्यर्थ तुम्ह जायहु।' मा० ६.२१.६

गयादिक : गया इत्यादि। 'गया' तीर्थविशेष का नाम है जो पितृ कर्म के लिए प्रसिद्ध है। मा० २.४३.७

गये : गए

गयो : गयउ। (सारथी) 'तुरत लंका लै गयो।' मा० ६.८४ छं०

गर : सं०पुं० (सं० गल)। गला, कण्ठ, ग्रीवा। मा० ६.३३.४

√गर गरइ : (सं० गलति—गल स्रवणे>प्रा० गलइ—गलना, घुलना, पिघलना, बहना) आ०प्रए०। घुलता-ती-है। 'गरइ गलानि कुटिल कैकेई।' मा० २.२७३.१

गरज : सं०स्त्री० (१) (अरबी—गरज=निशान:, हाजत, मकसद)। लिप्सा, प्रयोजन, लालसा। 'गरज आपनी सबन को।' दो० ३०० (२) (सं० गर्ज—गज शब्दे) शब्दों में व्यक्त करना। 'गरज करत उर आनि।' दो० ३००

√गरज गरजइ : (सं० गर्जति—गर्ज रवे—मेघ गर्जन) आ०प्रए०। गरजता है। 'मधुर मधुर गरजइ घन घोरा।' मा० ६.१३.२

गरजत : वकृ०पुं० (सं० गर्जत्)। गरजता, गरजते। 'घन घमंड गरजत नभ घोरा।' मा० ४.१४.१ (२) गरजते (होने पर)। 'पलुहत गरजत मेह।' दो० ३१६

गरजनि : सं०स्त्री० (सं० गर्जन)। गरजने की क्रिया। 'दुंदुभि धुनि घन गरजनि घोरा।' मा० १.३४७.५

गरजहिं : आ०प्रब०। गरजते हैं। 'गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा।' मा० १.३०१.१

गरजि : पूकृ०। गरज कर, गम्भीरनाद करके। 'गरजि अकास चलेउ तेहिं जाना।' मा० ६.६६.६

गरजी : (दे० गरज) वि०पुं०। चाहने वाला। 'अनंगु भयो जिय को गरजी।' कवि० ७.१३३

गरजै : गरजइ। कवि० ६.३६

गरत : वकृ०पुं० । घुलता, घुलते । 'गुरु गलानि गरत ।' बिन० १३४.५

गरद : गर्द । 'गथ गाठरी गरद की ।' कवि० ७.१५८

गरदनि : सं०स्त्री० (सं० गल+द्रुणि=बाल्टी—फा० गर्दन) । ग्रीवा । (गले का भाग जो बाल्टी के आकार का होता है) । मा० २.१८५.६

गरन : सं०पुं० (सं० गलन) । घुलना । 'तुलसी पै चाहत गलानि ही गरन ।' विन० २४६.४

गरब : गर्व । मा० २.१४.३

गरबित : वि० (सं० गर्वित) । गर्वयुक्त, साभिमान । 'गरबित भरत मातु बल पी के ।' मा० २.१८.३

गरभ : गर्भ । विन० १३६.३

गरम : वि० (सं० घर्म=फा० गर्म) । उष्ण । 'जूड़े होत थोरे, थोरे ही गरम ।' विन० २४६.१

गरल : स०पुं० (सं०) । विष, हालाहल । मा० १.५

गरह : (१) सं०स्त्री० (सं० गर्हा>प्रा० गरहा) । निन्दा (२) सं०पुं० (सं० गलहन्) । गले का रोग, कण्ठमाला आदि रोग । 'हरष बिषाद गरह बहुताई ।' मा० ७.१२१.३३

गरहिं, हीं : आ०प्रब० (सं० गलन्ति>प्रा० गलंति>अ० गलहिं) । घुलते हैं, पिघल जाते हैं । 'जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं ।' मा० १.४.७

गरि : (१) भूकृ०स्त्री० । गली, घुल गेई । 'गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा ।' मा० २.१६२.२ (२) पूकृ० । गल कर । 'गए गरब गरि गरि गनी ।' गी० ५.३९.५

गरिमा : सं०स्त्री० (सं० गरिमन्—पुं०>प्रा० गरिमा—स्त्री०) । गौरव, भारीपन । 'उग्र भार्गव गर्व गरिमापहर्ता ।' विन० ५०.४

गरिमागार : गौरव का भाण्डम्; महिमा का आकार । विन० ५४.५

गरीब : वि० (अरबी—गरीब=प्रवासी) । परदेसी, असहाय, बेसहारा, निर्धन, अकिंचन । मा० १.२८.६

गरीबनिवाज : वि० (अरबी—गरीब+फा० निवाज) । अशरण को शरण देने वाला, दीनपालक । 'नाथ गरीबनिवाज हैं ।' विन० १४८.५

गरीबनिवाजी : दीनपालकता, शरणदातृत्व । 'सराहत गईबहोरि गरीबनिवाजी ।' कृ० ६१

गरीबी : सं०स्त्री० । दीनता, निर्धनता । 'मैं गहीन गरीबी ।' विन० १४८.५

गरीसा : वि०पुं० (सं० गरीयस्) । बढ़कर भारी, अतिगुरु । 'परनिंदा सम अघ न गरीसा ।' मा० ७.१२०.२२

गरु : गरुअ (सं० गुरु) । भारी । 'न टरै पगु मेठहु तें गरु भो।' कवि० ६.१५

गरुअ : वि०पु० (सं० गुरुक>प्रा० गरुअ) । भारी । मा० १.२५०.१

✓**गरुआ गरुआइ** : (सं० गुरुकायते>प्रा० गरुआइ—भारी होना) आ०प्रए० । भारी होता है, भारी होता जाता है । 'मनहुं पाइ भट बाहुबल अधिक-अधिक गरुआइ ।' मा० १.२५०

गरुआई सं०स्त्री० (सं० गुरुकता>प्रा० गरुआया) । (१) भारीपन । 'करि हितु हरहु चाप गरुआई) ।' मा० १.२५७.६ (२) भार । हरहि धरनि गरुआई ।' गी० १.१६.३

गरुइ : गरुई । 'जानि गरुइ गुरु गिरि बहोरी ।' मा० २.२१३.२

गरुई : वि०स्त्री० (सं० गुरुका>प्रा० गरुई) । भारी 'तुलसी त्यों त्यों होइगी गरुई ज्यों ज्यों कामरि भीजै ।' कृ० ४६

गरुड़ : सं०पुं० (सं०) । सर्पभक्षी पक्षि विशेष जो विष्णु-वाहन कर के पुराण-प्रसिद्ध है । मा० १.१२०ख

गरुरु : गरुड़+कए० । 'चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसे ।' मा० १.२५९.८

गरूर : सं०पुं० (अरबी—गरूर) । क्षुद्र अहंकार, मिथ्याभिमान । 'गोरो गरूर गुमान भर्‍यो।' कवि० १.२०

गरें : गले में । 'बिषु पावकु ब्याल कराल गरें ।' कवि० ७.१५४

गरे : (१) गरें (सं० गले) । ग्रीवा में । 'गरे आसा डोरि ।' विन० १५८.५ (२) भू०कृ०पुं०ब० (सं० गलित>प्रा० गलिय) । 'इहाँ ज्वाल जरे जात, उहाँ ग्लानि गरे गात ।' कवि० ५.२०

गरै : गाइ । पिघल कर बह जाता है । 'ताप गरै गात की ।' कवि० ७.१३८

गरैगी : आ०—भ स्त्री०प्रए० । गल जायगी । 'गरैगी जीह जो कहौं और को हौं ।' विन० २२९.१

गरो आ०—आज्ञा, संभावना—प्रए० (सं० गलतु>प्रा० गलउ) । गल जाय । 'तौ जरि जीह गरो ।' विन० २२६.६

✓**गर्ज गर्जइ** : (सं० गर्जति>प्रा० गज्जइ—गरजना) आ०प्रए० । गरजता है । 'गर्जा घोर रव बारहिंबारा ।' मा० ६.७६.५

गर्जत : गरजत । 'गर्जत तर्जत सनमुख धावा ।' मा० ६.९०.२

गर्जहिं, हीं : गरजहिं । मा० ३.१८.८

गर्जा : भू०कृ०पुं० । गर्जन किया, मेघरव किया । 'गर्जा अति अंतर बल थाका ।' मा० ६.९२.२

गर्जि : पूकृ० । गरज कर, मेघ ध्वनि करके । 'गर्जि परे रिपु कटक मझारी ।' मा० ६.४४ ७

गर्जेउ : भूकृ०पुं०कए० । गरज उठा, मेघरव किया । 'गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा ।' मा० ६.४३.५

गर्जेसि : आ० —भूकृपुं०+प्रए० । वह गरजा, उसने मेघनाद किया । 'गर्जेसि जाइ निकट बलु पावा ।' मा० ४.७.२६

गर्त : सं०पुं० (सं०) । खात, गड्ढा । विन० ४३.५

गर्द, द्दा : सं०स्त्री० (फा०) । धूल । 'मर्दि गर्द मिलवहिं दस सीसा ।' मा० ५.५५.७

गर्दा : गर्द । मा० ६.६७.३

गर्ब : सं०पुं० (सं० गर्व) । रूप, धन, यौवन, विद्या, बल, कुल, पद, प्रभाव आदि से अपने महत्त्व का ज्ञान करके दूसरे की अवहेलना करने वाला अभिमान गर्व है । मा० ६.२६.४

गर्बु : गर्ब+कए० । अद्वितीय गर्व । 'परसुधर गर्बु जेहि देखि बीता ।' कवि० ६.१७

गर्भ : सं०पुं० (सं०) । (१) गर्भाशय, स्त्री के उदर का भाग विशेष जिसमें भ्रूण पलता है । 'गर्भ न गयहु ब्यर्थ तुम्ह जायहु ।' मा० ६.२१.६ (२) भ्रूण, गर्भस्थ शिशु । 'एहि बिधि गर्भसहित सब रानीं ।' मा० १.१९०.५ (३) किसी का भीतरी भाग । जैसे, कदलीगर्भ, गर्भगृह, गर्भाङ्ग । विन० १५.२

गर्भन्ह : गर्भ+संब० । गर्भों । 'गर्भन्ह के अर्भक दलन ।' मा० १.२७२

गर्भहिं : गर्भ में । 'जा दिन तें हरि गर्भहिं आए ।' मा० १.१९०.६

गर्‌यो : भूकृपुं०कए० । गल गया, घुला । 'जात गलानिन्ह गर्‌यो ।' गी० ५.२७.१

गर्वघ्न : वि० (सं०) । गर्वनाशक । विन० ५४.५

गर्वहर : वि० (सं०) । गर्व हरने वाला=गर्वघ्न । विन० ३९.५

गर्वापहरी : वि० (सं०) । गर्वहर । 'मनोभव कोटि गर्वापहारी ।' विन० ४४.३

गल : गर । ग्रीवा । 'गल अँतावरि मेलहिं ।' मा० ६.८१ छं०

गलकंबल : सं०पुं० (सं०) । गाय के गले में झूलता हुआ कम्बलाकार चर्माङ्ग-विशेष । विन० २२.३

गलगाजे : भूकृपुं० (सं० गल+गर्जित>प्रा० गलगाज्जिय) । गल-गल ध्वनि के साथ गरज उठे, कण्ठ से विजयनाद कर चले । 'अलसी हमसे गलगाजे ।' कवि० ७.१

गलबल : सं०पुं० (सं० गल्ल=कपोल+वल्ल गतौ) । गाल चलाने का ध्वनि समूह, अस्पष्ट कोलाहल, चिल्लपों, भगदड़ की चिल्लाहट । 'पर पुर गलबल भो ।' हनु० ६

गलानि : सं०स्त्री० (सं० ग्लानि>प्रा० गिलाजि—ग्लै हर्षक्षये)। उल्लासहीनता।
(१) कुँभलाहट, भुरझाहट। (२) मानसिक क्लान्ति, एक प्रकार की मन की पश्चात्तापपूर्ण स्थिति। 'गरइ गलानि कुटिल कैकेई।' मा० २.२७३.१

गलानिन्ह : गलानि+संब० ग्लानियों, विविध अवसादों (से)। 'जात गलानिन्ह गर्‌यो।' गी० ५.२७.१

गलानी : गलानि। मा० १.४३.३

गलित : भूकृ०वि० (सं०)। घुला, समान्त। 'तुम्ह सरिखे गलित अभिमाना। मा० १.१६१.१

गलिन, न्ह : गली+संब०। गलियों, वीथियों (में)। 'तुलसी गलिन भीर।' गी० १.६२.४ 'गलिन्ह रह्यो पूरि।' गी० ७.२१.२३

गलीं : (१) गलियाँ। 'मग गृह गलीं सँवारन लागे।' मा० १.२९६.४ (२) गली में 'बलवान है स्वानु गलीं अपनी।' कवि० ६.१३

गली : सं०स्त्री० (सं० गति>प्रा० गई=गइल्ली)। गैल, बीथी, पतला मार्ग। गी० १.२.५

गले : (सं० पद)। गले में। मा० २ श्लोक १

गवँ सं०पुं० (सं० गम>प्रा० गम>अ० गवँ)। (१) उपाय, लक्ष्य, ताक, दावँ। 'जिमि तकइ लेउँ केहि भाँती।' मा० २.१३.४ (२) बहाना, ब्याज, छल

गवँहि : गवँ से, बहाने से। 'गवँहि जोहारहिं जाहिं।' मा० २.१५८

गवन : गमन (अ० गवँण)। प्रस्थान, यात्रा। मा० १.१४३

गवनत : गवन+वकृ०पुं०। गमन करता-ते। 'तुरत पवनसुत गवनत भयऊ।' मा० ६ १२१.३

गवनब : गवन+भकृ०पुं०। जाना (होगा)। 'गवनब अवहिं कि प्रात।' मा० २.११४

गवनहिं : गवन+आ०प्रब०। (१) प्रस्थान करते हैं। 'मकर भज्जि गवनहिं मुनि बृंदा।' मा० १.४५.२ (२) जाते हैं=बीतते हैं। 'पात खात दिन गवनहिं।' पा०मं० ३८

गवनहु : गवन+आ० मब०। जाओ, प्रस्थान करो। 'तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा।' मा० १.८१.७

गवनि : गवन=पूकृ०। जाकर। 'गृह तें गवनि परसि पद पावन घोर साप तें तारी।' विन० १६६.२

गवनिहैं : गवन+आ०भ०प्रब०। प्रस्थान कर जायँगे। 'गवनिहैं गवँहि गवाँइ गरब गृह।' गी० १.७०.६

गवनीं : गवन+भूकृ०स्त्री०ब० । गईं । 'छबि खानि मातु भवानि गवनीं ।' मा० १.१०० छं०

गवनी : (१) गवन+भूकृ०स्त्री० । गयी, चली । 'गवनी बाल मराव गति ।' मा० १.२६३ (२) (समासान्त में) गति वाली । 'सुरसरी सोहै तीनि-गवनी ।' गी० १.५८.३

गवनु : गमनु (गवन+कए०) । मा० १.२६३.२

गवने : गवन+भूकृ०पुं०ब० । प्रस्थित हुए, चल पड़े । 'हरषि सप्त रिषि गवने गेहा ।' मा० १.८२.३

गवनेउ : गवन+भूकृ०पुं०कए० । गया, प्रस्थान किया । 'निज भवन गवनेउ सिंधु ।' मा० ५.६० छं०

गवाँइअ : आ०-कवा०-प्रए० । बिताइए, दूर कीजिए । 'कहहिं, गवाँइअ छिनुकु श्रमु ।' मा० २.१४४

गवाँइ, ई : पूकृ० । गवाँ कर, खोकर । 'फिरेउ बनिकु जिमि मूर गवाँई ।' मा० २.९९.८

गवाँई : भूकृ०स्त्री० । खोदी, गवाँ दी । 'मनहु कृपन धनरासि गवाँई ।' मा० २.१४४.७

गवाँए, ये : भूकृ०पुं० (ब०) । (१) बिता दिए । 'सागु खाइ सत बरष गवाँए ।' मा० १.७४.४ (२) खो दिए, खो गये । 'मद अभिमान गवाँये ।' विन० २०१.४

गवाँयउँ : आ०—भूकृ०पुं०+उए० । मैंने बिताया । 'तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँयउँ ।' मा० ७.८२.२

गवाँर : वि०पुं० (सं० ग्रामड, ग्रामीण>प्रा० गामाल>अ० गावाँल) । असभ्य, मूर्ख, असंस्कृत । मा० ५.५९.६

गवाँरी : गवाँर+स्त्री० । 'बिलगु न मानव न जानि गवाँरी । मा० २.११६ ७

गवाँरु : गवाँर+कए० । अद्वितीय मूर्ख, बेजोड़ असभ्य । 'अति मति मंद गवाँरु ।' मा० १.१०३

गवाँवा : भूकृ०पुं० (सं० गमित>प्रा० गमाविअ>अ० गवाँविअ) । खोया, बिताया । 'बैठि, बिटप तर दिवसु गवाँवा ।' मा० २.१४७.४

गवाँवौं : आ०उए० (सं० गमयामि>प्रा० गमावमि>अ० गवाँवउँ) । खोऊँ, दूर करूँ । 'फहि भ्रम कहा गवाँवौं ।' विन० २३२.२

गवासा : वि०+सं०पुं० (सं० गवाश>प्रा० गवास) । गोभक्षी, गोमांसव्यवसायी । 'मरु मारव महिदेव गवासा ।' मा० १.६.८

गव्य : सं०पुं० (सं०)। गाय के पाँच बिकार:—दूध, दधि, घी, गोमय और गोमूत्र जिन्हें पञ्चगव्य कहते हैं। विन० २२.७

✓**गह गहइ, ई** : (सं० गृह्णाति>प्रा० गहइ—पकड़ना, घेरना, हस्तगत करना) आ०प्रए०। पकड़ता-ती-है। 'गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई।' मा० ३.४३.६ 'गहइ छाँह सक सो न उड़ाई।' मा० ५.३.३ 'करि माया नम के खग गहई।' मा० ५.३.२

गहगहि, ही : वि०स्त्री०। 'गहगह' ध्वनियुक्त। 'गहगहि गमन दुंदुभी वाजी।' मा० १.१९१.७ 'बाज दुंदुभि गहगही।' मा० ६.१०३ छं० १

गहगहे : वि०पुं०बहु०। 'गहगह' ध्वनि-युक्त। 'हरषि हने गहगहे निसाला।' मा० १.२९६.१

गहडोरिहौं : आ०भ०उए० सं० गाहू विलोडने+दुल उत्क्षेपे)। अवगाहन करके उथल-पुथल कर डालूंगा=मथ कर गन्दा कर दूंगा। 'सुधा सो सलिज सूकरी ज्यों गहओरिहौं।' विन० २५८.३

गहत : वकृ०पुं० (सं० गृह्णति>प्रा० गहंत)। पकड़ता, पकड़ते। 'भूमि परा कर गहत अकासा।' मा० ५.५७.२

गहति : वकृ०स्त्री०। पकड़ती। 'माया······गहाये तें गहति।' विन० २४६.३

गहतु : गहत+कए०। पकड़ता। 'गाज्यौ मृगराजु गजराजु ज्यों गहतु हौं।' कवि० १.१८

गहते : क्रियाति०पुं०ब० (सं० अग्रहीष्यन्>प्रा० गहंत)। यदि ग्रहण करते-तो)। 'जौ हरि जने के अवगुन गहते।' विन० ९७.१

गहन : (१) सं०पुं० (सं०)। वन। 'गयउ दूरि घन गहन बराहू।' मा० १.१५७.५ (२) वि० (सं०)। सघन, विषम, घोर। 'पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।' मा० १.०.२ (३) (सं० ग्रहण) ग्राह्य। 'त्यागन गहन उपेच्छनीय।' विन० १२४.२ (४) दुष्कर (सं० गहन)। 'मयन महनु पुरदहनु गहनु जानि।' कवि० १.१० (५) उपराग (सं० ग्रहण) सूर्य-चन्द का राहुग्रास। (६) भकृ० अव्यय। पकड़ने, ग्रहण करने। 'जाउँ समीप गहन पद।' मा० ७.७७क

गहनि : (१) सं०स्त्री० (सं० ग्रहण)। पकड़ (ग्रहण की क्रिया)। 'ग्राह अति गहनि गरीबी गाढ़ें गह्यो हौं।' विन० २६०.२ (२) आग्रह पूर्ण पालन। 'सील गहनि सबकी सहनि।' वैरा० १७

गहनु : गहन+कए०। (१) कठिन। 'पुरदहनु गहनु जानि।' कवि० १.१० (२) वन। 'गहनु उज्जारि···गो कीसु।' कवि० ६.२१ (३) उपराग। 'समउ रबि गहनु।' रा०प्र० ७.२.४

गहबर : वि० (सं० गह्वर) । सघन, घोर, दुष्प्रवेश । 'नगरु सकल बून गहबर भारी ।' मा० २.८४.२ (२) संकुल, भरा हुआ (भावपुञ्जित, भावशबल), उलझा हुआ । 'गहबर मन पुलक सरीर ।' विन० १६३.८

गहबरि : गहबर+पूकृ० । भाव संकुल होकर । 'गहबरि हृदयँ कहहिं बर बानी ।' मा० २ १२१.२

गहरू : सं०पुं०कए० (सं० गह्वर=ग्रन्थि, समस्या) । रोक, विलम्ब । 'होइहि जात गहरु अति भाई ।' मा० १.१३२.१

गहसि : आ०मए० (सं० गृह्णासि>प्रा० गहसि) । तू पकड़ता है । 'गहसि न राम चरन सठ जाई ।' मा० ६.३५.३

गहहिं, हीं : आ०प्रब० (सं० गृह्णन्ति>प्रा० गहंति>अ० गहहिं) । (१) ग्रहण करते हैं, स्वीकार करते हैं । 'संत हंस गुन गहहिं पय ।' मा० १६ (२) पकड़ते हैं । 'गहहिं सकल पद कंज ।' मा० ६.१०६

गहहु, हू : आ०मब० (सं० गृह्णीत>प्रा० गहह>अ० गहहु) । (१) ग्रहण करो=पकड़ो (दबाओ) । 'दसन गहहु तृन ।' मा० ६.२०.७ (२) समझो, मानो । 'सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू ।' मा० ७.४५.१ (३) घेर लो । 'गहहु घाट भट समिटि सब ।' मा० २.१९२

गहा : भूकृ०पुं० (सं० गृहीत>प्रा० गहिअ) । पकड़ा । 'सर पैठत कपि पद गहा, मकरीं ।' मा० ६.५७

गहागह : वि०+क्रि०वि० । ध्वनिविशेषयुक्त । 'बाज गहागह अवध बधावा ।' मा० २.७.३

गहागहे : गहगहे । गी० १.६.१

गहाये : भूकृ०पुं० । पकड़ाये (पकड़ाने) । 'गहाये तें गहति ।' विन० २४६.३

गहि : पूकृ० (सं० गृहीत्वा>प्रा० गहिअ>अ० गहि) । (१) पकड़ कर । 'गहि प्रभु पद गुन विमल बखाने ।' मा० ६.११७.२ (२) ग्रहण कर चुन कर । 'गहि गुन पय तजि अवगुन बारी ।' मा० २.२३२.७ (३) कस कर । 'अपने करनि गाँठि गहि दीन्ही ।' विन० १३६.३

गहिबे : भकृ० (सं० ग्रहीतव्य>प्रा० गहिअव्व=गहिअव्वय) । ग्रहण करने योग्य । 'ज्ञान गिरा कूबरी खन की सुनि बिचारि गहिबे ही ।' कृ० ४०

गहिबो : भकृ०कए० (सं० ग्रहीतव्यम्>प्रा० गहिअव्वं>अ० गहिअव्वउ) । पकड़ना (होगा) । 'जीवत दुरित दसानन गहिबो ।' गी० ५.१४.२

गहियतु : वकृ—कवा०—पुं०कए० (सं० गृह्यमाण:>प्रा० गहीअंतो>अ० गहीअंतु) । पकड़ा जाता, ग्रस्त किया जाता । 'ताहू पर बाहु बिनु राहु गहियतु है ।' कवि० २.४

गहिसि : आ०—भूकृ०स्त्री०+प्रए०। उसने पकड़ी। 'गहिसि पूंछ कपि सहित उड़ाना।' मा० ६.९५.५

गहिहौं : आ०—भ०—उए० (सं० ग्रहीष्यामि>प्रा० गहिहिमि>अ० गहिहिउँ)। पकड़ लूँगा। 'कहत पानहो गहिही।' विन० २३१.४

गही : भू०कृ०स्त्री०। पकड़ी, स्वीकार की। 'अब निर्गुन गति गही है।' कृ० ४२

गहीले : वि०पुं० (सं० ग्रहिल>प्रा० गहिल्लय)। आग्रही, हठी (अभिमानी)। हठ पकड़े हुए। 'सो बल गयो, किधौं भये अब गरब गहीले।' विन० ३२.३

गहु : आ०—आज्ञा—मए० (सं० गृहण>प्रा० गह>अ० गहु)। तू पकड़। 'सखीं कहहिं, प्रभु पद गहहु सीता।' मा० १.२६५ ८

गहें : (१) पकड़ने से। 'मम पद गहें न तोर उबारा।' मा० ६.३५.२ (२) पकड़े हुए (तत्पर मुद्रा में)। 'चहरि चपेटे देत नित केस गहें कर मीच।' दो० २४८

गहे : भूकृ०पुं०ब०। पकड़े। 'गहे राम पद कंज।' मा० ६.३५ ब

गहेउ : भूकृ०पुं०कए० (सं० गृहीतः>प्रा० गहिओ>अ० गहियउ)। पकड़ लिया। 'गहेउ चरन गहि भूमि पछारा।' मा० ६.६६.७

गहेसि : आ०—भूकृ०पुं०+प्रए०। उसने पकड़ा-पकड़े। 'आतुर सभय गहेसि पद जाई।' मा० ३.२.११

गहेहु, हू : आ०भ०+आज्ञा—मब०। तू पकड़ना। 'बार बार पद पंकज गहेहू।' मा० २.१५१.६

गहौं : आ०उए०। ग्रहण करता हूं। 'उलूक ज्यों······कुतरु कोटा गहौं।' मा० २.१५१.६

गहौंगो : आ०भ०पुं०उए०। ग्रहण करूँगा। 'संत सुभाव गहौंगो।' विन० १७२.१

गह्यो : गहेउ। (१) ग्रहण किया। 'कारण इहै गह्यो गिरिजाबर।' कृ० ३१ (२) पकड़ा हुआ। 'गरीबी गाढ़ें गह्यो हौं।' विन० २६०.२

गाँठरी : सं०स्त्री० (सं० ग्रन्थि>प्रा० गंठी>अ० गंठडी)। गठरी, बकुचा, पोटली। 'लियो रूप दै ज्ञान गाँठरी।' कृ० ४१

गाँठि, ठी : सं०स्त्री० (सं० ग्रन्थि>प्रा० गंठि, गंठी)। (१) पोटली या उसकी घुंडी। 'मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी।' मा० १.१३५.५ (२) रस्सी की घुंडी। 'ऐसी हठ जैसी गाँठि पानी परे सन की।' विन० ७५.१ (३) पोटली। 'गाँठी बाँध्यो दाम।' विन० १९१.८ (४) विवाह में वर-वधू के वस्त्र की माङ्गलिक ग्रन्थि। 'गाँठि जोरी, होन लागीं भाँवरीं।' मा० १.३२४ छं० ४

गांड़र : सं०पुं०। तृण विशेष जो 'गण्ड' ग्रन्थियों से युक्त नाल वाला होता है और जिससे सींक निकलती है। 'बाज सुराग कि गांड़र ताँती।' मा० २.२४१.६

गाँव : सं०पुं० (सं० ग्राम>प्रा० गाम>अ० गाँव)। छोटी बस्ती। मा० २.११३.१

गा : भ०कृ०पुं० (सं० गत>प्रा० गअ)। गया। 'अति सप्रेम गा निसरि दुराऊ।' मा० ५.५२.१ 'हरि पुरहिं न गा को।' विन० १५२.१२

गाइ : (१) गाय। 'मारसि न गाइ नहारू लागी।' मा० २.३६.८ (२) पूकृ०। गाकर कीर्तन करके। 'सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं।' मा० १.१२२.१

गाइअ, गाइए : गाइए। 'जेहिं यह सुजसु लोक तिहुं गाइअ।' मा० ५.६०.४ आ०कवा०प्रए० (सं० गीयते>प्रा० गाईअइ)। गाया जाय, गाया जाता है। मा० ७.२८. छं०

गाइन्ह : गाइ+सं०। गायों

गाइबी : भकृ०स्त्री०। गाने योग्य (गाई जायगी)। 'तुलसी सो तिहुं भुवन गाइबी नंदसुवन सनमानी।' कृ० ४८

गाइबे : भकृ०पुं० (सं० गातव्य>प्रा० गाइव्व)। गाने (को)। 'गाइबे को ध्याइबे को सेइबे सुमिरिबे को।' गी० २.३३.३

गाइय : गाइअ

गाइये : गाइए। 'गाइये गनपति जगबंदन।' विन० १.१

गाइहैं : आ०—भ०—प्रब० (सं० गास्यन्ति>प्रा० गाइहिंहि)। गायेंगे। मा० ६.१०६ छं०

गाइहौं : अ०भ०उए० (सं० गास्यामि>प्रा० गाइहिमि>अ० गाइहिउँ)। गाऊँगा। 'चारु चरित···गाइहौं।' गी० १.२१.४

गाईं : गाई+ब० गान कर चलीं। 'बरषि प्रसून अपछरा गाईं।' मा० १.२४८.५

गाई : (१) सं०स्त्री० (सं० गो>प्रा० गाई, गावी) गाय। 'सुर महिसुर हरिजन अरु गाई।' मा० १.२७३.६ (२) गाइ। गानकर। 'रामु न सकहिं नाम गुन गाई।' मा० १.२६.८ (३) भू०कृ०स्त्री०। वर्णित की। 'मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई।' मा० १.१३.१०

गाउँ, ऊँ : गावँ+कए०। 'गाउँ जाति गुह नाउँ सुनाई······।' मा० २.१९३.८ 'आवाँ सो प्रभु हमरें गाऊँ।' मा० ४.६.२

गाउ : आ० आज्ञा—मए० (सं० गाहि>प्रा० गाहि>अ० गाउ)। तू गा। 'सुनत कहत फिरि गाउ।' विन० १००.९

गाए : भूकृ०पुं० (सं० गीत>प्रा० गाइय) ब०। वर्णित किये। 'बेद पुरान बिदित मनु गाए।' मा० २.२८.६

गाज : सं०स्त्री० (सं० गर्जा—गर्जने वाली>प्रा० गज्जा>अ० गज्ज)। बिजली, वज्र। 'लाज गाज उनवनि कुचाल कलि।' कृ० ६१ 'मूंदे कान जातु धान मानो गाजें गाज के।' कवि० ६.६

गाजहिं, हीं : गर्जहिं (सं० गर्ज्जन्ति>प्रा० गज्जंति>अ० गज्जहिं)। 'हय गय गाजहिं हने निसाना।' मा० १.३०४.४

गाजी : भूकृ०स्त्री०। गरजी, गर्जन कर उठी। कृ० ६१

गाजें : गरजने पर। 'मूंदे कान जतुधान मानो गाजें गाज कें।' कवि० ६.६

गाजे : भूकृ०पुं० (सं० गर्जित>प्रा० गज्जिय) ब०। गरज उठे। 'भयउ कोलाहल हय गय गाजे।' मा० १.३०२.५

गाज्यो : भूकृ०पुं०कए०। गरज उठा। 'गाज्यो मृगराजु गजराजु०ज्यों गहतु हौं।' कवि० १.१८

गाठरी : गाँठरी। पोटली। 'भवनु मसानु, गथ गाठरी गरद की।' कवि० ७.१५८

गाड़ : सं०पुं० (सं० गर्त>प्रा० गड्ड)। गड्ढा, गड्ढे। 'रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो।' मा० ६.५३

गाड़हिं : आ०प्रब०। गर्त में तोप देते हैं। 'निसिचर भट महि गाड़हिं भालू।' मा० ६ ८१.७

गाड़ि : पूकृ०। गाड़कर, गर्तस्थ करके। मा० २.२१२.४

गाड़ी : सं०स्त्री० (सं० गन्त्री>प्रा० गड्डी)। प्रवहण। रा०न० १७

गाड़े : भूकृ०पुं० (सं० गर्तित>प्रा० गड्डिय)। (गर्त में) आवृत किये। 'गाड़े भली, उखारे अनुचित।' कृ० ४०

गाड़ैं : गाड़+ब०। गड्ढे। 'कमठ की पीठि जाके गोड़नि की गाड़ैं।' हनु० ७

गाड़ो : भूकृ०पुं०कए०। गड़ा हुआ, गर्तस्थ किया हुआ। 'हरो धरो गाड़ो दियों।' दो० ४५७

गाढ़, ढ़ा : वि०पुं० (सं० गाढ)। (१) सघन, दुर्गम, विषम। 'छेत्रु अगग गढ़ु गाढ़ सुहावा।' मा० २.१०५.५ (२) अधिक, कठोर। 'कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा।' मा० ३.२८.१४ (३) उग्र, भयानक। 'तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा।' मा० १.१३५.८

गाढ़ी : गाढ़+स्त्री०। (१) गहन, दुरतिक्रम। 'देखी माया सब बिधि गाढ़ी।' मा० १.२०२.३ (२) प्रचुर, अविरला प्रगाढ। 'हरिजन देखि प्रीति अति गाढ़ी।' मा० ५.१४.१ (३) घोर, प्रचंड। 'बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी।' मा० ६.९३.१ (४) सघन। 'छूटी त्रिबिध ईषना गाढ़ी।' मा० ७.११०.१३

गाढ़ें : क्रि०वि० । (१) प्रगाढ़ता के साथ, निष्ठुर होकर । 'लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें ।' मा० १.२६१.७ (२) संकट में । 'रामु सही दिन गाढ़ें ।' कवि० ७.५४ (३) दृढ़ता से । 'गरीबी गाढ़ें गह्यो हौं ।' विन० २६०.२

गाढ़े : (१) गाढ़ का रूपान्तर (ब०) । दुर्घर्ष, कठोर, प्रचण्ड । 'मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े ।' मा० १.२७६.७ (२) गाढ़ें । विषम संकट में । 'एक परे गाढ़े, एक डाढ़त ही काढ़े ।' कवि० ५.१८

गात : सं०पुं० (सं० गात्र>प्रा० गत्त) । (१) अङ्ग (२) शरीर । 'पुलक गात गिरिजा हरषानी ।' मा० १.७५.५

गाता : (१) गात । 'परसि अखयबटु हरषहिं गाता ।' मा० १.४४.५ (२) वि०पुं० (सं०) । गायक, गानकर्ता । 'राम गुण गाथ गाता ।' विन० ३९.५

गातु : गात+कए । शरीर । 'पुनि पुनि हरषत गातु ।' मा० १.८१

गाथ, गाथा : सं०स्त्री० (सं०) । गेय कथा, गानर (वर्णन) । 'बरनउँ बिसद तासु गुन गाथा ।' मा० १.१०५.७

गाथे : भूकृ०पुं० (सं० ग्रन्थित>प्रा० गत्थिय) ब० । बाँधे, पहने हुए । 'गाथे महामाने मौर मञ्जुल ।' मा० १.३२७ छं० १

गादुर : सं०पुं०=चमगादर । दो० ३८७

गाधि : सं०पुं० (सं०) । विश्वामित्र के पिता, कुशिक राजा के पुत्र । मा० १.३६०

गाधितनय : विश्वामित्र । मा० १.२०६.५

गाधिनंदन : विश्वामित्र । गी० १.८७.२

गाधिसुत : विश्वामित्र । मा० १.३५२.५

गाधिसुवन : विश्वामित्र । गी० १.८६.६

गाधिसूनु : विश्वामित्र । मा० १.२७५

गाधेय : सं०पुं० (सं०) । गाधिपुत्र=विश्वामित्र । विन० ३८.३

गान : सं०पुं० (सं०) । (१) गायन क्रिया । 'करहिं निरन्तर गान ।' मा० २.१२ (२) गीत, गेय । 'गावत हरिगुन गान प्रबीना ।' मा० १.१२८.३

गाना : गान । मा० १.११.७

गामिनीं : गामिनी+ब० गामिनियाँ । 'कुंजरगामिनीं ।' जा०मं०छं० २३ 'मत्त कुंजर गामिनीं ।' मा० १.३२२ छं०

गामिनी : (समासान्त में) चलने वाली । जैसे, कुंजर गामिनी=हाथी के समान चलने वाली ।

गामी : वि०पुं० (सं०) । चलने वाजा-ले । 'कठिन भूमि कोमल पद गामी ।' मा० ४.१.८

गामो : (सं० ग्राम>प्रा० गाम)+उ । ग्राम भी, गांव भी । जेहि किये नगर गत गामो ।' विन० २२८.५

गाय : गाइ । पशुविशेष । हनु० ४३
गायंति : आ०प्रब० (सं० गायन्ति) । गाते हैं । विन० ५२.१
गायउ, ऊ : भूकृ०पुं०कए० (सं० गीतम्>प्रा० गाइयं>आ० गाइयउ) । गाया, वर्णन किया । 'दास तुलसी गायऊ ।' मा० ५.६० छं०
गायक : वि०पुं० (सं०) । गानकर्ता, वर्णनकर्ता । मा० १.१६४.६
गाया : भूकृ०पुं० । गीतबद्ध किया, वर्णित किया । मा० १.१०६.३
गाये : गाए ।
गायो : गायउ । 'बेद पुरान जासु जसु गायो ।' मा० ६.४८.८
गारि, री : (१) सं०स्त्री० (सं० गालि, गाली) । दूसरे के लिए अपशब्द । 'देइ देवतन्ह गारि पचारी ।' मा० १.१८२.८ (२) पूकृ० (सं० गालयित्वा>प्रा० गालिअ>अ० गालि) निचोड़ कर । 'अमिअ गारि गारेउ गरल गारि कीन्हि करतार ।' दो० ३२८
गारीं : गारी+ब० । गालियाँ । 'लागीं देन गारीं मृदु बानी ।' मा० १.६६.८
गारुड़ि : सं०पुं० (सं०) । विष वैद्य, सर्प विष दूर करने वाला । मा० ७.६३.६
गारेउ : भूकृ०पुं०कए० (सं० गालितम्>प्रा० गालियं>अ० गालियऊ) । निचोड़ा; रस निकाला । 'अमिअ गारि गारेउ गरल गारि कीन्हि करतार । दो० ३२८
गारो, रौ : सं०पुं० (सं० गौरव>प्रा० गारव) । महत्त्व, यश । 'गारौ भयो पंच मैं पुनीत पच्छु पाइ कै ।' कवि० ७.६१
गाल : (१) सं०पुं० (सं० गल्ल) । कपोल । ब्यर्थ करहु जनि गाल बजाई ।' मा० १.२४६.१ (२) सं०पुं० (फा०) जालसाजी (मकर-फरेब), धोखाधड़ी । फरियाद, प्रपञ्च । गाल गूल गपत ।' विन० १.३०.२
गालव : सं०पुं० (सं०) । एक ऋषि का नाम । मा० २.६१
गाला : गाल । कपोल । मा० २.३५.५
गालु : गाल+कए० । कपोल+फरियाद या फरेब । 'गालु करब केहि कर बलु पाई ।' मा० २.१४.१
√**गाव गावइ, ई** : (सं० गायति>प्रा० गावइ—गान करना, कीर्तन करना) आ०प्रए० । गाता है । 'श्रुति पुरान मुनि गाव ।' मा० १.४५ 'देइ गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो ।' रा०न० ८ 'दास तुलसी गावई ।' मा० ३.६ छं०
गावउँ : आ०उए० । गाता हूं । 'मति अनुरूप राम गुन गावउँ ।' मा० १.१२.६
गावत : वकृ०पुं० (सं० गायत्>प्रा० गावत) । गाता, गाते । 'गावत हरि गुन गान प्रबीना ।' मा० १.१२८.३
गावति : गावत+स्त्री० । गाती । 'गावति गीत सबै मिलि सुंदरी ।' कवि० १.१७

गावतीं : गावति+ब० । गाती हुईं । 'बर नारि चलीं गावतीं ।' कवि० १.१३

गावन : भकृ० । गाने । 'सुमन बरषि जसु गावन लागे ।' मा० १.३२०.४

गावहिं, हीं : आ०प्रब० (सं० गायन्ति>प्रा० गावंति>अ० गावहिं) । गाते हैं, गाती हैं । 'सुभग सुआसिनि गावहिं गीता ।' मा० १.३१३.४

गावहिंगे : आ०भ०पुं०प्रब० । गायेंगे । 'जस नारदादि मुनिजन गावहिंगे ।' गी० ५.१०.४

गावहि : अ०मए० (सं० गायसि, गाय>प्रा० गायसि, गावहि>अ० गावहि) । 'तू गान कर, तू गाता-गाती है । 'काहे न रसना रामहि गावहि ।' विन० २३७.१

गावा : (१) माया । 'रिपु कर रूप सकल तैं गावा ।' मा० ६.१६.४ (२) गावइ । जहँ तहँ राम ब्याहु सबु गावा ।' मा० १.३६१.४

गावैं : गावहिं । गाते हैं । रा०न० २०

गावै : गावइ । 'तुलसीदास जाचक जस गावै ।' विन० ६.५

गावौं : गावउँ । गाता हूं, गाऊँ । 'कहा एक मुख गावौं ।' विन० १४२.६

गाह : (१) सं० (फा०) । शिविर (खेमा); सिंहासन (तख्त) । दे० गजगाह । (२) गाहा

गाहक : (१) वि०पुं० (सं० ग्राहक) । ग्रहण करने वाला । (२) क्रयकर्ता । 'स्याम सो गाहक पाइ सयानी खेलि देखाई गौं ही ।' कृ० ४१ (२) अङ्गीकार करने वाला । 'असरन सरन दीन जन गाहक ।' मा० ७.५१.४ (३) लेवा, लेने वाला । 'गाहक जी के ।' विन० १७६.२

गाहकताई : सं०स्त्री० (सं० ग्राहकता) । ग्रहण करने की प्रवृत्ति, ग्रहणशीलता । 'कह कपि तव गुन गाहकताई···।' मा० ६.२४.५

गाहा : गाथा (प्रा० गाहा) । 'करन चहउँ रघुपति गुन गाहा ।' मा० १.८.५

गाहैं : गाह+ब० । गाथाएँ, गेय गाथाएँ । 'रघुनायक की अगनी गुन गाहैं ।' कवि० ७.११

गिनती : सं०स्त्री० (सं० गणित, गणिति ?) । (१) गणना, संख्या । विन० २००.३ (२) स्थान या पद, मान्यता । 'केहि गिनती महँ गिनती जस बन घास ।' बर० ५६

गिरत : वकृ०पुं० । धराशायी होता-होते । मा० ४.१०

गिरन : भकृ० । गिरने । 'भूमि गिरन न पावहीं ।' मा० ६.६२ छं०

गिरहिं : आ०प्रब० । गिरते हैं । 'भट गिरहिं धरनि पर आइ ।' मा० ६.४१

गिरहुं : गिरा=वाणी में भी । 'हरि हर जस सुर नर गिरहुं बरनहिं सुकबि समाज ।' दो० १९१

गिरां : वाणी से । 'गदगद गिरां बिनय करन ।' मा० ६.११४ ख

गिरा : (१) सं०स्त्री० (सं०) । वाणी, सरस्वती । 'सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ।' मा० १.११.७ (२) बोली । 'गिरा ग्राम्य……।' मा० १.१० ख (३) शब्द । 'गिरा अरथ जल बीचि सम ।' मा० १.१८ (४) भूकृ०पुं० । गिर पड़ा भूपतित हुआ । 'जानु टेकि कपि भूमि न गिरा ।' मा० ६.८४.१

गिराए : भूकृ०पुं०ब० । पातित किए । मा० ६.७६.६

गिरापति : सं०पुं० (सं०) । (१) गीष्पति=वाचस्पति=बृहस्पति । 'गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति ।' जा०मं० १ (२) वाणी के प्रेरक अन्तर्यामी राम । 'सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी ।' मा० १.१०५.४ (३) सरस्वती के पति ब्रह्मा । 'सुरेसु सुर गौरि गिरापति नहिं जपने ।' कवि० ७.७८

गिरायो : भूकृ०पुं०कए० । गिराया, धरा-पतित किया । मा० ६.९७.८

गिरावा : भूकृ०पुं० । गिराया, अधःपतित किया । मा० ६.९२.५

गिरि : (१) सं०पुं० (सं०) । पर्वत । मा० १.११.१ (२) पूकृ० । पतित हो हो (कर), गिर कर । 'गिरि गो गिरिराजु ज्यों गाज को मारो ।' कवि० ६.३८

गिरिंद, दा : सं०पुं० (सं० गिरीन्द्र>प्रा० गिरिंद) । श्रेष्ठ पर्वत । मा० ५.३५.३

गिरिजा : सं०स्त्री० (सं०) । पार्वती । मा० ५.१५.५

गिरिजाऊ : गिरिजा भी, पार्वती भी । 'जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ।' मा० ५.४८.१

गिरिजापति : शिवजी । मा० ६ श्लोक २

गिरिधर : (दे० धर) गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले=श्रीकृष्ण । कृ० ३२

गिरिनाथा : पर्वतराज=हिमालय । मा० १.४८.५

गिरिन्ह : गिरि+संब० । पर्वतों । 'मानहुं अपर गिरिन्ह कर राजा ।' मा० ४.३०.७

गिरिपति : हिमालय । मा० १.९१.१

गिरिबर : श्रेष्ठ पर्वत । मा० ४.६.५

गिरिबरु : गिरिबर+कए० । मा० १.१०५.८

गिरिराई : गिरिराज (दे० राई) । मा० १.२०३.१

गिरिराऊ : गिरिराय+कए० । हिमालय (दे० राऊ) । मा० १.६८.८

गिरिराज : हिमालय । मा० १.११५

गिरिसंभव : वि० (सं०) । पर्वत से उत्पन्न (जड़) । मा० १.७८

गिरिहहिं : आ०प्रब० । गिरेंगे, निपतित होंगे (होंगी) । 'गिरिहहिं रसना संसय नाहीं ।' मा० ६.३३.९

गिरीस, सा : सं०पुं० (सं० गिरीश)। (१) शिव। 'चली तहाँ जहँ रहे गिरीसा।' मा० १.५५.८ (२) हिमालय। 'गहि गिरीस कुस कन्या पानी।' मा० १.१०१.२

गिरे : भूकृ०पुं०। (१) निपतित हुए। 'कहँ रत भट घायल तट गिरे।' मा० ६.८८.४ (२) गिरने पर। 'सिरउ गिरे संतत सुभ जाही।' मा० ६.१४.४

गिरौं : आ०उए०। मैं गिर पड़ूँ। 'तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं।' मा० १.१६ छं०

गिर्यो : भूकृ०पुं०कए०। गिर गया। 'गिर्‌यो धरनि दसकंधर।' मा० ६.८४ छं०

✓**गिल गिलइ, ई** : (सं० गिलति—गृ निगरवे>प्रा० गिलइ—निगलना) आ०प्रए०। निगलता है, निगल जाय, निगल सके। 'तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई।' मा० २.२३२.१

गिलहिं : आ०प्रब० (सं० गिलन्ति>प्रा० गिलंति>अ० गिलहिं)। निगल जाते हैं। 'सहबासी काचो गिलहिं।' दो० ४०४

गी : भविष्य-सूचक शब्द-स्त्री०। 'तरनी तरैगी मेरी।' कवि० २.८

गीत : सं०पुं० (सं०)। गेय पद। मा० १.६३

गीता : गीत। 'सुभग सुआसिनि गावहिं गीता।' मा० १.३१३.४

गीध : (१) सं०पुं० (सं० गृध्र>प्रा० गिद्ध)। पक्षिजातिविशेष। मा० ६.८६.१ (२) गीधराज=जटायु। 'सबरी गीध सुसेवकनि।' मा० १.२४

गीधपति : जटायु। मा० ३.३०.१८

गीधराज : जटायु। मा० ३.१३

गीधु : गीध+कए०। जटायु। कवि० ७.२४

गीरबान : सं०पुं० (सं० गीर्वाण)। देव। हनु० ३३

गीवाँ : ग्रीवा में, कण्ठ में। 'रेखें रुचिर कंबु कल गीवाँ।' मा० १.२४३.८

गीवा : सं०स्त्री० (सं० ग्रीवा>प्रा० गीवा)। कण्ठ। मा० १.२३३.७

गूँजारे : भूकृ०पुं०ब० (सं० गुञ्जारुता:>प्रा० गुंजारिय)। गुञ्जनरब कर चले। 'मंजुतर मधुर मधुकर गुंजारे।' गी० १.३७.४

✓**गुंज, गुंजइ** : (सं० गुञ्जति—गुञ्जशब्दे—गूँजना, गुञ्जा (करना) आ०प्रए०। गुञ्जन करता है-करती है। 'गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी।' मा० २.१३७.८

गुंजत : वकृ०पुं० (सं० गुञ्जत्>प्रा० गुंजंत)। गुञ्जन (अव्यक्तरव) करते। 'गुंजत मंजु मधुप रस भूले।' मा० २.१२४.७

गुंजनि : गुंजा+सं०ब०। गुञ्जाओं (ने)। 'गुंजनि जितो लतामो।' विन० २२८.४

गुंजहिं : आ०प्रब० (सं० गुञ्जन्ति>प्रा० गुंजंति>अ० गुंजहिं)। गुञ्जन करते हैं। 'कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा।' मा० १.१२६.२

गुंजा : सं०स्त्री० (सं०) । घुंघची, रत्ती । 'गिरि समहोंहि कि कोटिक गुंजा ।' मा० २.२८.५

गुंजारहीं : गुंजहिं (सं० गुंजा+रुवन्ति>प्रा० गुंजारंति>अ० गुंजारहिं) । गुञ्जा=गुञ्जन करते हैं । मा० ७.२९१ छं०

गुंड : सं०पुं० (सं०) । मधुर ध्वनि, मधुर ध्वनि का संगीत । 'राम सुजस सब गावहिं सुसुर सुसारँग गुंड ।' गी० ७.१९.४

गुंडमलार : सं०पुं० (सं० गुण्डमल्लार—गुण्ड=मधुर तान+मल्लार=राग-विशेष) । गोंड़मलार नाम का संगीत राग । गी० ७.१९.४

गुच्छ : सं०पुं० (सं०) । स्तवक, गुच्छा । 'गुच्छ बीच बिच कुसुमकली के ।' मा० १.२३३.२

गुड़ी : सं०स्त्री० (सं० गुडिका>प्रा० गुड्डिया>अ० गुड्डी । पतंग, पंग) । 'जनु बाल गुड़ी उड़ावहीं ।' मा० ३.३० छं०

गुढ़ि : पूकृ० (सं० घुटित्वा—घुट परिवर्तने>प्रा० घुडिअ>अ० घुडि) । उलट-पुलट कर, घोट-पीट कर, सँवार कर । 'गढ़ि गढ़ि छोलि छाजि कुंद की सी भाईं बातैं ।' कवि० ७.६३

गुण : सं०पुं० (सं०) । वस्तु का विशेष धर्म । मा० ५.श्लो० ३ दे० गुन

गुणग्राम : गुण समुह । मा० ३.११.१६

गुणनिधि : गुणों का सागर, सर्व गुण सम्पन्न, कल्याण गुण युक्त । मा० ६.श्लो० २

गुणगार : कल्याण गुणों के आगार । मा० ७.१०८.४

गुथए : भूकृ०पुं०ब० (सं० ग्रथिताः>प्रा० गुत्थविया) । गुम्फित, पोहे हुए । 'बचन प्रीति गुथए हैं ।' गी० ६.५.२

गुदरत : वकृ०पुं० (अरबी—गुदर=वेवफा) । उपेक्षा या अवज्ञा करते, कृतघ्न होते । 'मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई ।' मा० २.२४०.५

गुदरि : पू०कृ० । कृतघ्नता करके । 'प्रभु सों गुदरि निबर्यो हौं ।' बिन० २६६.४

गुदारा : सं०पुं० । पहला खेवा (?) (सं० गोदारण=हळ्न) लंगर ।'भर भिलुसार गुदारा लागा ।' मा० २.२०२.७

गुन : गुण । (१) रूप-रस आदि द्रव्य-धर्म । (२) माया (प्रकृति) के तीन गुण—सत्त्व, रजस् और तमस् । 'माया गुन गोपार ।' मा० १.१९२ (३) तीन संख्या (त्रिगुण के आधार पर) दो० ४५६ (४) वैष्णव मन में ब्रह्म के कल्याण गुण—सत्य संकल्पता, सत्य कामता, क्षुधापिपासाहीनता, अजरामरता, सर्वकर्तता, सर्वज्ञता, व्यापकता, अन्तर्यासिता आदि । 'नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान ।' मा० १.१२० (५) विशेषता । 'सुनि गुनभेदु समुझि हहिं साधू ।' मा० १.२१.३ (६) शुभ लक्षण । 'कहहु सुता के दोष गुन ।' मा० १.६६

(७) लाभ पुष्टि आदि। 'अद्भुत सलिल सुनत गुनकारी।' मा० १.४३.२ (८) गणितीय गुणन—दुगुन आदि (९) दया, ज्ञान, वैराग्य, श्रद्धा आदि मानवीय उदात्त धर्म। 'ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं।' मा० १.११९.६ (१०) वस्तु का अपरिहार्य धर्म। 'जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं।' मा० १.५.५ (११) रस्सी, धागा, डोरी। 'नाथ एव गुनु धनुष हमारें।' मा० १.२८२.७ (१२) ब्राह्मण के नव सात्त्विक धर्म—शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता। 'नव गुन परम पबित्र तुम्हारें।' मा० १.२८२.७ (१३) अच्छाई। 'बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना।' मा० १.६.४ (१४) चारित्रिक उदात्तता आदि। 'करन चहउँ रघुपति गुन गाहा।' मा० १.८.५ (१५) निष्कलङ्कता, शुद्धता आदि। 'साक बनिक मनि गन गुन जैसे।' मा० १.३.१२ (१६) काव्य गुण—श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओजस्, सुकुमारता अर्थव्यक्ति, उदारता और कान्ति। 'कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा।' मा० १.९.१०

√गुन, गुनइ : (सं० गुणति—गुण आमन्त्रणे>प्रा० गुणइ—सोच बिचार करना, निर्णय खोजना, मन में तर्क-वितर्क करना या उधेड़ बुन करना, उलझन को मन में सुलझाने का प्रयास करना) आ०प्रए०। सोच विचार करता है। 'अस मन गुनइ राउ नहिं बोला।' मा० २.४५.३

गुनउँ, ऊँ : आ०उए० (सं० गुणामि, प्रा० गुणमि>अ० गुणउँ) (१) सोच बिचार करता हूँ। 'समुझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा।' मा० ७.११०.५ (२) गुण-दोष पर विचार करता हूं। 'एहि बिधि अमिति जुगुति मन गुनऊँ।' मा० ७.११२.११

गुनउ : गुण भी। 'गुनउ बहुत कलिजुग कर।' मा० ७.१०२

गुनकारी : वि०पुं० (सं० गुणकारिन्)। लाभकारी (दे० गुन) मा० १.४३.२

गुनखानी : सभी गुणों का उत्पत्ति स्थान। गुणरूपी रत्नों का आकार। मा० १.१४८.३

गुनगन : गुण समूह। मा० १.३५८.६

गुनगाथा : गुण कीर्तन। गुणों का आख्यान। मा० १.४२.७

गुनगान, ना : गुण कीर्तन। मा० १.१९६.१

गुनगायक : गुण कीर्तन करने वाला-वाले। मा० १.३००.५

गुनगाहक : वि० (सं० गुण ग्राहक)। दोषों की उपेक्षा कर केवल गुणों का लेने वाला।

गुनकहकताई : (दे० गाहकताई) गुण ग्राहिता। मा० ६.२४.५

गुनगाहकु : गुन गाहक+कए० । अनन्य गुण ग्राही । मा० १.२९८.३

गुनग्य : वि० (सं० गुणज्ञ) । गुणों का ज्ञाता, विद्वान् । मा० ४.२३.७

गुनग्राही : वि०पुं० (सं० गुण ग्राहिन्) । गुन गाहक । 'मधुकर सरिस संत गुन ग्राही ।' मा० १.१०.६

गुनत : व०कृ०पुं० (सं० गुणन्>प्रा० गुणंत) । (१) सोच बिचार करता-करते । 'सिथिल सनेहँ गुनत मन माहीं ।' मा० २.२९२.२ (२) गुणन (गणित) करता-ते । 'हनत गुनत गनि गुनि हनत जगत् जौतिषी काल ।' दो० २४९

गुनति : गुनत+स्त्री० । सोच बिचार करती । कृ० ६०

गुनद : वि० (सं० गुणद) । गुणदायक, लाभकारी । 'बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी ।' मा० २.३१७.३

गुनधाम : सभी गुणों से सम्पन्न, कल्याणकारी गुणों से युक्त ।

गुनधामा : गुनधाम । मा० ६.१७.६

गुननि : गुन+संब० । गुणों (से) । 'कालकर्म गुननि भरे ।' मा० ७.१३.छं० २

गुननिधि : (१) गुनाकर । गुण सम्पन्न । मा० ५.१७.३ (२) पौराणिक कथा में एक ब्राह्मण का नाम । 'कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज ।' विन० ७.३

गुनमंदिर : गुणधाम मा० १.१८६.छं०

गुनमय : वि० (सं० गुणमय) । (१) गुणरूप, गुणों का मूर्तरूप+(२) सूत्ररूप= सदाचारादिरूप धागों से पूर्ण । 'साधु चरित सुभ चरित कपासू । निरस बिसद गुनमय फल जासू ।' मा० १.२.५

गुनमई : गुनमय+स्त्री० । गुण युक्त=त्रिगुणात्मिका । 'जा की विषम माया गुनमई ।' विन० १३६.४

गुनरहित : प्रकृति के तीन गुणों से परे (फिर भी कल्याण गुण युक्त) । निर्गुण (+सगुण); विरुद्धनानाधर्माश्रय=ब्रह्म । वैरा० ४ (२) काव्य के गुणों से शून्य । 'सब गुनरहित कुकबिकृत बानी ।' मा० १.१०.५

गुनरासी : (दे० गुनरहित) । गुणों का पुञ्ज । सर्व कल्याण गुणाश्रय । 'चिदानंदु निर्गुन गुनरासी ।' १.३४१.६

गुनवंत, ता : वि०पुं० (सं० गुणवत्>प्रा० गुणवंत) । गुण युक्त । मा० ७.९८.६

गुनवान : गुनवंत । हनु० ८

गुनवारि : वि०स्त्री० । गुणों वाली, कल्याण गुण सम्पन्न । 'स्यामघन गुनवारि छबि मनि मुरलि तान तरंग ।' कृ० ५४

गुनह : सं०पुं० (फा० गुनाह)। अपराध, दोष। 'गुनह लखन कर हम पर रोषू।' मा० १.२८१.५

गुनहिं : गुणों में। 'जब तजि दोष गुनहिं मनु राता।' मा० १.७.१

गुनहु, हू : आ०मब० (सं० गुणत>प्रा० गुणह>अ० गुणहु)। समझो, मानो। 'जनि मन गुनहु मोहि करि कादर।' मा० ६.६.७

गुनाकर : गुणों की खानि; गुणपूर्ण। मा० १.१७.८

गुनागार : गुनधाम। मा० ३.४६

गुनातीत : वि०(सं० गुणातीत)। माया के त्रिगुण से परे। 'गुनातीत सचराचर स्वामी।' मा० ३.३६.१

गुनानी : गुन+कब० (सं० गुणाः>प्रा० गुणाणि)। गुण समूह। 'राम अनंत-अनंत गुनानी।' मा० ७.५२.३

गुनि : पूकृ० (सं० गुणित्वा>प्रा० गुणिअ>अ० गुणि)। (१) सोच बिचार करके। 'सुनि गुनि कहत निषादु।' मा० २.२३४ (२) गणना में गुणनफल निकाल कर। 'हनत गुनत गनि गुनि हनत जगत जोतिषी काल।' दो० २४६

गुनिअ : गुनिए। 'देखिअ सुमिअ गुनिअ मन माहीं।' मा० २.६२.८

गुनिए : आ० कवा०प्रए० (सं गुण्यते>प्रा० गुणीअइ)। विचारिए, समझिए। 'मेरे जान और कछु न मन गुनिए।' कृ० ३७

गुनित : वि० (सं० गुणित)। गुना। 'कोटि गुनित।' गी० २.६.१

गुनिन्ह : गुनी+संब०। गुणीजनों (से)। 'पूंछेउँ गुनिन्ह रेखतिन्ह खाँची।' मा० २.२१.७

गुनय, ये : गुनिअ, गुनिए।

गुनिहि : गुणी को। 'गनिहि गुनिहि साहिब लहै।' विन० २७४.२

गुनी : (दे० गुन) वि०पुं० (सं० गुणिन्)। (१) गुण युक्त। मा० ३.२१.११ (२) भूकृ०स्त्री०। समाकी, सोच-बिचार ली। 'नीकें मन गुनी मैं।' कवि० ७.२१

गुनु : गुन+कए०। (१) विशेषता+(२) डोरी। 'नाथ एक गुनु धनुष हमारें।' मा० १.२८२.७

गुपुत : गुप्त। 'गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।' मा० १.१.८

गुप्त : भूकृ०वि० (सं०)। छिपा हुआ (रक्षित) ; निगूढ। 'गुप्त रूप अवतरेउ मेभु।' मा० १.४८ क

गुमान : सं०पुं० (फा० गुमान्=शक)। सन्देह। 'ग्यानी भगत सिरमनि त्रिभुवन पति कर जान। ताहि मोह माया नर पावँर करहिं गुमान।' मा० ७.६२ क इसका अभिमान अर्थ में भी हिन्दी प्रयोग होता है।

गुमानी : वि०पुं०। अभिमानी (संशयालु)। 'लोभी जसु यह चार गुमानी।' मा० ३.१७.१६

गुमानु : गुमान+कए०। अभिमान। 'कलपांत न नास गुमानु असा।' मा० ७.१०२.छं०

गुर : (१) गुरु। आचार्य। 'गुरगृहँ बसहुं राम तजि गेहू।' मा० २.५०.४ (२) भारी। 'धीरज धरम धरनिधरहू तें गुर धुर धरनि धरत को।' गी० ६.१२.२ (३) बृहस्पति। 'गुर सन कहेउ करिअ प्रभु सोई।' मा० २.२१७.८ (४) सं०पुं० (सं० गुड)। मधुर पदार्थ विशेष।

गुरकुल : सं०पुं० (सं० गुरुकुल)। गुरु वंश, गुरु का आश्रम जहाँ शिक्षण कार्य होता है। 'राजकुल>राउर' के समान 'गुरु' के अर्थ में भी इसका प्रयोग देखा जाता है। 'तात, तात बिनु बात हमारी। केवल गुरकुल कृपाँ सँभारी।' मा० २.३०५.५

गुरजन : (सं० गुरुजन) बड़े वयस्क लोग—माता-पिता, अग्रज आदि। मा० १.२४८

गुरतिय : (सं० गुरु स्त्री) गुरुपत्नी। मा० २.३२०

गुरदछिना : सं०स्त्री० (सं० गुरुदक्षिणा)। शिक्षा, मन्त्र आदि ग्रहण के अनन्तर आचार्य को दिया जाने वाला धन आदि। मा० ६.५८.४

गुरु : सं०+वि० (सं०)। (१) आचार्य। 'बंदउं गुरु पद पदुम परागा।' मा० १.१.१. (२) वयस्क जन, अपने से बड़े। 'गीधु मानो गुरु, कपि भालु माने मीत कै।' कवि० ७.२४ (३) भारी। 'बंधु बैर कपि बिभीषन गुरु गलानि गरत।' विन० १३४.५ (४) महान्, बड़ा, आदरणीय। 'तुलसी गुरु लघुता लहत।' दो० ३६० (५) पिता-माता। 'गुरु गिरा······राज्य त्यक्त।' विन० ५०.५ (६) श्रेष्ठ, उत्तम। 'प्रति छाँह छबि कबि साखि दै प्रति सों कहै गुरु हौरि।' गी० ७.१८.१ (७) बृहस्पति। 'बचन सुनत सुर गुरु मुसुकाने।' मा० २.२१८.१ (८) बृहस्पति दिन। 'सुदि पाँचैं गुरु दिनु।' पा०म० ५ (९) गुर +कए० गुड़। 'भीजो गुरु पीठि।' बिन० ७६.३

गुरुता : सं०स्त्री० (सं०)। भारीपन। 'करहु चाप गुरुता अति थोरी।' मा० १.२५७.८

गुरुबिनी : सं०+वि०स्त्री० (सं० गुर्विणी)। गर्भिणी स्त्री। 'गुरबिनी सुकुमारि सियमनि।' गी० ७.२६.२

गुरू : गुरु। अपकृष्ट गुरु। 'कोटि कुटिलमनि गुरू पढ़ाई।' मा० २.२७.६

गुर्वि : वि०स्त्री० (सं० गुर्वी)। (१) भारी, गरुई। 'डिगति उर्वि अति गुर्वि।'

कवि० १.११ (२) गौरव शालिनी, महती। 'निगम आगम गुर्वि।' विन० १५५

गुलाम : सं०पुं० (अरबी—गुलाम)। लड़का, सेवक, भृत्य, पाल्य। पालितदास। 'महाराज को सुभाउ समुझत मनु मुदित गुलाम को।' कवि० ७.१४ (२) (दास—प्रथा में) क्रीत—पाल्य। 'साहही को गोतु गोतु होतु है गुलाम को।' कवि० ७.१०७

गुलामनि : गुलाम+संब०। गुलामों=पालित पुत्रों या पाल्य अनुचरों। 'कामरिपु राम के गुलामनि को कामतरु।' कवि० ७.१६७

गुलामु : गुलाम+कए०। अनन्य पाल्य। 'हौं गुलामु राम को।' कवि० ७.७०

गुलाल : सं०पुं०। लाल अबीर, रोली। गी० २.४७.१६

गुलुक : सं०पुं० (सं० गुल्फ)। टखना, पैर की ग्रन्थियाँ जो चरण पीठ के ऊपर दोनों ओर होती हैं। 'चरनपीठ उन्नत नतपालक, गूढ़ गुलुक, जंघा कदली जाति।' गी० ७.१७.८४

गुसाईं : गोसाईं। स्वामी। विन० १४३.१

गुहें : गुहने। 'गाउँ जाति गुहँ नाउँ सुनाई।' मा० २.१९३.८

गुह : सिंगरौर का निषादराज मा० २.१०२.१

गुहाँ : गुहा में। 'गिरिबर गुहाँ बैठ सो जाई।' मा० ४.६.५

गुहा : सं०स्त्री० (सं०)। कन्दरा। मा० ४.१२

गुहिबे : भूकृ०पुं० (सं० गुफितव्य>प्रा० गुहिअव्वय)। गूंथने, पोहने। 'तेहि अनुराग ताग गुहिबे कहँ मति मृगनयनि बुलावौं।' गी० १.१८.२

गुहौं : आ०उए० (सं० गुफामि>प्रा० गुहमि>अ० गुहउँ)। गुह दूँ, पोहूं। 'उबटौं न्हाहु गुहौं चोटिया बलि।' कृ० १३

गूँगेहि : गूंगे को, मूक को, वाणीहीन व्यक्ति को। 'भा जनु गूंगेहि गिरा प्रसादू।' मा० २.३०७.४

गूढ़ : वि० (सं०)। गुप्त, रहस्यमय, दुर्बोध, सामान्यतः अज्ञेय। मा० १.३० ख

गूढ़उ : गुप्त भी। 'गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं।' मा० १.११०.२

गूढ़ा : गूढ़। मा० १.४७.४

गूढार्चि : सं० स्त्री० (सं० गूढार्चिष्)। गुप्त ज्योति, अन्तर्यामी रूप से सर्वव्यापक ब्रह्मज्योति। विन० ५३.६

गूढ़ार्थबित : वि० (सं० गूढार्थविद्)। गुप्त पदार्थों का ज्ञाता=अन्तर्यामी=सर्वज्ञ। विन० ५४.५

गूदा : सं०पुं० (सं० गोर्द>प्रा० गोछ=गुछ)। मस्तिष्क की लुगदी, भेजा। 'श्रोनितसों सानि सानि गूदा खात सतुआ से।' कवि० ६.५०

गून : वि०पुं० (सं० गुण्य>प्रा० गुण्ण)। गुणनीय, गुना, गुणित। 'अंक रहें दस गून।' दो० १०

गूल : सं०पुं० (फ़ा०) (१) जालसाजी (मकर-फरेब), छलना। (२) मूख (अहमक) 'गाल गूल गपत।' विन० १३० २

गूलरि : सं०स्त्री०। उदुम्बर वृक्ष। गूलर फल का वृक्ष जिसके फल के भीतर उड़ने वाले छोटे कीड़े (भुनगे) रहते हैं। 'गूलरि फल समान तव लंका।' मा० ६ ३४.३

गृध्र : सं०पुं० (सं०) गीध। विन० ४३.६

गृहँ : घर में। 'बालक बृन्द बिहाइ गृहँ।' मा० २.८४

गृह : सं०पुं० (सं०)। घर। मा० १.३८.८

गृहकाजु : (दु० काजु)। घरेलू काम। मा० २.११४.२

गृहकिंकरी : सं०स्त्री० (सं०)। घरेलू काम काज करने वाली दासी। मा० १.१०१

गृहपसु : सं०पुं० (सं० गृहपशु)। घरेलू पालतू पशु—कुत्ता (आदि)। 'लोलुप भ्रम गृह-पसु ज्यों जहँ-तहँ सिर पदत्रान बजै।' विन० ८९.३

गृहपाल : सं०पुं० (सं०)। गृहपति, परिवार का स्वामी। विन० १३६ ८

गृहादी : घर, वृक्ष इत्यादि मूर्त पदार्थ। 'बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी।' मा० ७.७३.६

गृहासक्त : वि० (सं०) गृहस्थी में संलग्न+पत्नी में अनुरक्त=रागयुक्त। मा० ७.७३ क

गृही : वि०पुं (सं० गृहिन्)। गृहस्थ, गृहस्वामी, गार्हस्थ्य नामक आश्रम में स्थित, दारधर्म का पालन करने वाला। मा० २.१७२

गेंड़ुआ : सं०पुं० (सं० गेन्दुक>प्रा० गेंडुअ)। तकिया, सोते में सिर के नीचे रखने वाला उपधान। 'करत गगन को गेंडुआ सो सठ तुलसीदास।' दो० ४९१

गे : (१) गए। 'प्रात क्रिया करि गे गुरु पाहीं।' मा० १.३३०.४ (२) भविष्य दर्थक विकारी शब्द—पुं०बहु०। 'आवहिंगे' इत्यादि।

गेरु : सं०पुं० (सं० गैर=गैरिक>प्रा० गेर=गेरिअ)। पर्वत से निकलने वाली लाल खड़िया। मा० ३.१८.१

गेहँ : घर में। 'नृपु गयउ कैकई गेहँ।' मा० २.२४

गेह : सं०पुं० (सं०)। घर। मा० १.७८

गेहा : गेह। मा० १.६२.५

गेहिनी : सं०पुं० (सं०)। गृहिणी, पत्नी, गृहस्वामिनी। विन० ५८.७

गेहु, हू : गेह+कए० । 'गुर गृहँ बसहुं रामु तजि गेहू ।' मा० २.५०.४

गै : गइ । (१) गई । बीती । 'मुरुछा गै बहोरि सो जागा ।' मा० ६.८४.३ (२) खोई हुई । 'गै मनि मनहुं फनिक फिरि पाई ।' मा० २.४४.३ (३) (सहायक क्रिया) । 'खेलत रहा सो होइ गै भेदा ।' मा० ६.१८.३

गैया : गाय । 'हेरि कन्ह गोबर्धन चढ़ि गैया ।' कृ० १६

गैहहिं : गाइहैं (सं० गास्यन्ति>प्रा० गाइहिंति>अ० गाइरिहिं) । गायेंगे, कीर्तन करेंगे । 'नारदादि जस गैहहिं ।' मा० ५.१६.५

गैहैं : गाइहैं । 'कबि कुल कीरति गैहैं ।' गी० १.५०.३

गैहै : आ०भ०प्रए० (सं० गास्यति>प्रा० गाइहिइ) । गायेगा, कीर्तन करेगा । 'तुलसीदास पावन जस गैहै ।' गी० ५.५०.६

गैहौं : आ०भ०उए० (सं० गास्यामि>प्रा० गाहिनि=गाइहिमि>अ० गाइहिउँ >गाइहउँ>गाइहौं) । गाऊँगा । गाऊँगी । 'रसना और न गैहौं ।' विन० १०४.३

गोंड़ : सं०पुं० (सं० गोण्ड) । शूद्र जाति विशेष । 'गोंड़ गवाँर नृपाल महि ।' दो० ५५६

गो : सं०पुं०+स्त्री० (सं०) । (१) गाय । 'गो द्विज हितकारी ।' मा० १.१८६.छं १ (२) इन्द्रिय । 'माया गुन गो पार ।' मा० १.१९२ (३) पृथ्वी । 'गो खग, खे खग, बारि खग ।' दो० ५३८ (४) गयो । गया । 'बंक गढ़ लंक सो ढकाँ ढकेलि ढाहि गो ।' कवि० ६.२३ (५) बीता । 'न कूदिबे को पलु गो ।' कवि० ४.१ (६) समाप्त हुआ । 'औरनि को कलु गो ।' कवि० ४.१ (७) भविष्य सूचक बिकारी शब्द—पुं०ए० । 'टूट्यो सो न जुरैगो ।' कवि० १.१९ (८) रूप में बदला, परिणत होकर समाप्त हो गया । 'सब होइ न गो ।' मा० ६.१११.१५

गोइ : पूकृ० (सं० गोपित्वा>प्रा० गोविअ>अ० गोवि) । गुप्त रखकर, छिपा कर । 'राखेउँ कछु नहिं गोइ ।' मा० ७.१२३ ख

गोइयाँ : सं०पुं०ब० । खेल के साथी जो एक पाली में साथ-साथ विपक्ष पाली के विरुद्ध खेलते हैं । 'गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये ।' गी० १.४५.१

गोइहहिं : आ०भ०प्रब० (सं० गोपिष्यन्ति>गोविहिंति>अ० गोविहिंहि) छिपाएँगे । 'निरखि नगर नर नारि बिहँसि मुख गोइहहिं ।' पा०मं० ५७

गोईं : भूकृ०स्त्री०बहु० । छिपाईं, रक्षित कीं । 'फनिकन्ह जनु सिर मनि उर गोईं ।' मा० १.३५८.४

गोई : (१) गोइ । छिपा कर । 'लोचन ओट बैठु मुहु गोई ।' मा० २.३६.६

(२) भूकृ०स्त्री० (सं० गोपायिता>प्रा० गोविआ=गोविई)। छिपायी। 'ऐसिउ पीर बिहँसि तेहिं गोई।' मा० २.२७.५

गोऊ : आ० अ ज्ञा मए०। तू छिपा रख। 'कृपिन ज्यों सनेह सो हिये सुगेह गोऊ।' गी० २.१६.३

गोए : भकृ०पुं० (सं० गोपित>प्रा० गोविय) ब०। छिपाये। 'जे हर कमल हृदय महुं गोए।' मा० १.३२८.५

गोकुल : सं०पुं० (सं०) (१) गो समूह (२) मथुरा मण्डल का एक भू-भाग। कृ० ४२

गोखुरनि : गोखुर+संब०। गाय के खुरचिह्नों (में)। 'कुंभज के किंकर बिकल बूड़े गोखुरनि।' हनु० ३८

गोगन : इन्द्रियगण विन० २६१.३

गोघात : सं०पुं० (सं०)। गोवध, गोहत्या मा० ६.३२ २

गोचर : सं०पुं० (सं०)। गो=इन्द्रियों के विचरण की वस्तु=विषय। 'इन्द्रिय बोध्य पदार्थ। प्रत्यक्ष। 'लोचन गोचर सुकृत फल।' मा० २.१०६

गोठ : सं०पुं० (सं० गोष्ठ>प्रा० गोट्ठ)। खरिक, गायों का निवास स्थान, गायों का बाड़ा, ब्रज। मा० २.१६७.५

गोड़ : सं०पुं०। पैर। 'गड़त गोड़ मानो सकुच पंक महँ।' गी० २.६९.३

गोड़नि : गोड़+संब०। पैरों। 'कमठ की पीठिजा के गोड़नि की गाड़ै मानो।' हनु० ७

गोड़िए : आ०—कवा०—प्रए०। खोदिए, कुदाल से सँवारिए। 'तुलसी बिहाइ कै बबूर रेंड़ गोड़िए।' कवि० ७.२५

गोड़ियाँ : सं०स्त्री०ब०। बच्चों के सुन्दर कोमल पैर (गोड़)। 'छोटी-छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीलीं छोटीं।' गी० १.३३.१

गोत : सं०पुं० (सं० गोत्र प्रा० गोत्र)। वंश परम्परागत जाति जो पूर्व पुरुष के नाम से चलती है।

गोतीत : गोपर (सं०)। इन्द्रियातीत, अतीन्द्रिय। 'अविगत गोतीत चरित पुनीतं।' मा० १.१८६.छं० ३

गोतु : गोत+कए०। एक ही गोत्र। 'साहू ही को गोतु गोतु होत है गुलाम को।' कवि० ७.१०७

गोतो : सं०पुं०कए० (अरबी—गोत:)। डुबकी। 'ज्यों मृदमय बसि मीन बारि तजि उछरि भभरि लेत गोतो।' विन० १६१.३

गोद : सं०स्त्री०। क्रोड़, गोदी, अँकवार, अङ्कपाली। मा० १.७२.६

गोदहि : गोदा=गोदावरी को। 'पंचबटी गोदहि प्रनाम करि।' मा० ३.११.२

गोदावरि : गोदावरी। मा० ३.३०.५

गोदावरी : सं०स्त्री० (सं०)। दक्षिण की एक नदी। मा० ३.१३

गोधन : सं०पुं० (सं०) । पालित पशु-समूह । 'दूध दधि माखन भो, लाखन गोधन धन ।' कृ० १६
गोप : सं०पुं० (सं०) । ग्वाला । कृ० १७
गोपद : गाय का खुर, खुरका चिह्न (जिसमें वर्षा जल भर जाता है) । 'गोपद जल बूड़हिं घट जोनी ।' मा० २.२३२.२
गोपर : वि० (सं०) गो=इन्द्रिय से परे, अतीन्द्रिय । मा० ३.३२ छं० २
गोपार : गोपर । इन्द्रिय बोध से पार=परे । 'माया गुन गो पार ।' मा० १.१९२
गोपहिं आ०प्रब० (सं० गोपायन्ति>प्रा० गोप्पंति>अ०गोप्पहिं) । छिपाते हैं । 'प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं ।' जा०मं० ८५
गोपाल : सं०पुं० (सं०) । (१)ग्वाला, अहीर, पशुपालक । (२) इन्द्रियों का स्वामी=कृष्ण, गोचारक अवतारी ब्रह्म । कृ० ४
गोपिकनि गोपिका+संब० । गोपिकाओं । 'गोपिकनि पर कृपा अतुलित कीन्ह ।' विन० २.४.३
गोपिका : गोपी । विन० १०६.४
गोपित : भूकृ० (सं०) । गूहित, छिपाया, तोपदिया । 'खनि गर्त गोपित बिराधा ।' विन० ४३.५
गोपी : सं०स्त्री० (सं०) । ग्वालिन । कृ० १७ कृष्ण भक्तिमत में 'गोपी भाव' एक महा भाव है जिसे उपलब्ध कर भक्त अपने को गोपीवत् कृष्ण की प्रेमिका मान कर मधुर-रति में लीन रहता है ।
गोप्यमपि : (सं०) गोप्यम्+अपि । गोपनीय भी । 'गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकाश ।' मा० ७.६९ ख
गोबर : सं०पुं० (सं० गोमय>प्रा० गोवर) । गाय-भैंस का पुरीष । दो० ७३
गोबर्धन : सं०पुं० (सं० गोवर्धन) । ब्रजमण्डल में एक पर्वत । कृ० १९
गोबिंद : सं०पुं० (सं० गा विन्दते इति गोविन्दः) । गायों को प्राप्त करने वाला+ इन्द्रिय धारण कर अवतीर्ण होने वाला=इन्द्रियाधीश । कृष्ण । परमात्मा । मा० ३.३२.छं० २
गोमति : सं०स्त्री० (सं० गोमती) । एक नदी । मा० २.१८८.८
गोमतीं : गोमती नदी में । 'सई उतरि गोमतीं नहाए ।' मा० २.३२२.५
गोमर : सं०पुं० (सं०) । गाय मारने वाला, गोमांसव्यवसायी । 'कामधेनु धरनी, कलि गोमर ।' विन० १३९.६
गोमाय : सं०पुं० (सं० गोमायु) । सियार । मा० ६.७८ छं०
गोमुख : क्रि०वि० (सं०) । गाय के सम्मुख, गाय की ओर । 'देखिहैं हनुमान गोमुख नाहरनि के न्याय ।' विन० २२०.७

गोयो : भूकृ०पुं०कए० (सं० गोपितम्>प्रा० गोविअं>अ० गोवियउ)। छिपाया। 'मैं निज दोष कछू नहिं गोयो।' वि० २४५.४

गोर : वि०पुं० (सं० गौर>प्रा० गोर)। गौरवर्ण। रा०न० १२

गोरख : सं०पुं० (सं० गोरक्ष>प्रा० गोरकख)। योगी गोरखनाथ जो हठयोग प्रणाली के प्रचारक तथा नाथपंथ के प्रवर्तक थे। 'गोरख जगायो जोगु।' कवि० ७.८४

गोरस : सं०पुं० (सं०)। दही, दूध आदि। (मुख्यत:) दही। कृ० ३

गोरसहाईं : वि०स्त्री०ब० (सं० गोरस-धान्य:>प्रा० गोरसहाईओं>अ० गोरस—हाईईं)। ग्वालिनें। गोरस रखने वाली स्त्रियाँ। 'ग्वालिनी गोरसहाईं लै-लै आईं बावरी दाँवरी घर-घर तें।' कृ० १७

गोरी : वि०स्त्री० (सं० गौरी>प्रा० गोरी)। गौरवर्णा। 'गोरी सोभा पर तन तोरी।' कवि० १.१४

गोरे : 'गोर' का रूपान्तर। गौरवर्ण। 'सहज सुभाय सुभग तन गोरे।' मा० २.११७.५

गोरो : गोर+कए०। 'गोरो गरूर गुमान भरो।' कवि० १.२०

गोरोचन : सं०पुं० (स्त्री)। एक प्रकार का सुगन्धित माङ्गलिक द्रव्य जो उत्तम गाय के पेट से निकलता है। मा० ७.७७.५

गोलक : सं०पुं० (सं०)। (१) गोला। (२) आँख की पुतली। 'पलक विलोचन गोलक जैसें।' मा० २.१४२.१

गोला : गोलक (प्रा० गोलअ)। तोप आदि से फेंका जाने वाला गोलाकार प्रहरण। मा० ६.४६ छं०

गोली : सं०स्त्री० (सं० गोलिका)। (१) बच्चों का विशेष खिलौना। 'गोली भौंरा चक डोरि।' गी० १.४३.३ (२) बन्दूक आदि का छोटा गोला। 'गोली बान सु मंत्र सर।' दो० ५१९

गोवति : वकृ०स्त्री० (सं० गोपायन्ती>प्रा० गोवंती)। छिपाती। 'सकुचि गात गोवति कमठी ज्यों।' कृ० ६०

गोसाँइ : गोसाईं। मा० २.२९७.४

गोसाँई : गोसाईं। मा० २.२५१.२

गोसाइँ : गोसाईं। मा० २.९४

गोसाईं : सं०+वि०पुं० (सं० गोस्वामी>प्रा० गोसामी)। पालक, स्वामी (इन्द्रियों पर प्रभुता रखने वाला)। मा० १.५६.२

गोसुत : बछड़ा, बछड़े। कृ० १८

गोहारि, री : सं०स्त्री०। (१) रक्षा। 'कीनि गोहारी आनि।' दो० ५३६ (२) रक्षक, शरण। 'बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी।' मा० २.३१७.३

गौं : गवँ। (१) अवसर, दाँव। 'जो हम तजे पाइ गौं मोहन।' कृ० ६ (२) गम

चाल, गति। 'चलत मत्त गज गौं हैं।' गी० १.६३.३ (३) लक्ष्य, घागा 'गौं हैं तकत सुभौंह सिकोरे।' गी० ३.२.४

गौंड़मलार : गुंडमलार। राग विशेष। 'गावैं सुहो गोंड़मलार।' गी० ७.१८

गौतम : सं०पुं० (सं०)। एक मुनि=अहल्या के पति=शतानन्द मुनि के पिता=जनकवंश के पुरोहित। मा० १.२१०

गौन : गवन। कवि० ७.४४

गौनु : गवनु। मा० २.१६०

गौने : गवने। गये। 'समउ केलि गृह गौने। गी १.१०७.३

गौर : वि० (सं०)। गौरवर्ण, उज्ज्वल। मा० १.७२

गौरव : सं०पुं० (सं०)। महत्त्व, गरिमा। मा० २.१३२.८

गौरि : गौरी। मा० १.१५

गौरी : सं०स्त्री० (सं०)। पार्वती

गौरीनाथ : शिव जी। कवि० ७.१६६

गौरीस, सा : सं०पुं० (सं० गौरीश)। शिव। मा० ६.२८

ग्याता : वि०पुं० (सं० ज्ञातृ, ज्ञाता)। जानकार, विद्वान्, ज्ञानवान्। मा० मा० २.१४३.२

ग्याति : सं०स्त्री० (सं० ज्ञाति)। बन्धु-बान्धव, भाई बन्धु, वंश सम्बन्धी। मा० १.२१४

ग्यान : सं०पुं० (सं० ज्ञान)। (१) बोध, प्रत्यय। 'रूप ग्यान नहिं नाम बिहीन।' मा० १.२१.४ (२) चेतनगुण=चैतन्य या संवेदन। 'ग्यानघन' आदि। (३) शास्त्रीय बुद्धि। 'कहब ग्यान बिग्यान बिचारी।' मा० १.३७.९ (४) योग साधना से साक्षात्कार। 'सदगुर ग्यान बिराग जोग के।' मा० १.३२.३ (५) ज्ञाननिष्ठा जो भक्तिरूप होती है। 'ग्यानगम्य जय रघुराई।' मा० १.२११ छं० (६) विवेक। 'उपजा ग्यान बचन तब बोला।' मा० ४.७.१५

ग्यानगम्य : वि० (सं० ज्ञानगम्य)। स्वसंवेदनसिद्ध, ज्ञाननिष्ठा (भक्ति) की अपरोक्ष अनुभूति से प्राप्य (ऐन्द्रिय बोध से अप्राप्य)। 'ग्यान-गम्य जय रघुराई।' मा० १.२११ छं०

ग्यानघन : घनीभूत ज्ञानरूप, चैतन्यमय, संवेदनों के आधार। मा० ६.१११ छं०

ग्यानदृष्टि : योगी की अपरोक्षानुभूति, दिव्यदृष्टि जो अदृश्य को भी दृश्य बनाती है। मा० ६.५७ ६

ग्यानवंत : वि०पुं० (सं० ज्ञानवत्)। ज्ञानी, योगजनित परसाक्षात्कार तथा शास्त्रीय ज्ञान-सम्पन्न, परमतत्त्व का द्रष्टा। 'ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ।' मा० ७.५४.४

ग्यानातीत : ऐन्द्रिय प्रत्ययों से तथा शास्त्रीय ज्ञान से पर। 'माया गुन ग्यानातीत अमाना।' मा० ७.१९२.६

ग्यानिन्ह : ग्यानी+संब० (सं० ग्यानिनाम्)। ज्ञानियों। 'जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई।' मा० ७.५९.५

ग्यानीं : ज्ञानी ने। 'बैठत सकल कहेउ गुर ग्यानीं।' मा० १.२४७.१

ग्यानी : ग्यानवंत (सं० ज्ञानिन्)। मा० १.२२.७

ग्यानु, नू : ग्यान+कए०। विवेक, समझ। 'भाबी बसन ग्यानु उर आरा।' मा० १.६२.७ (२) आत्म साक्षात्कार, परमात्मानुभूति। 'भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू।' मा० २.१६९.३ (३) व्यावहारिक वस्तु बोध। 'रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा।' मा० २.२७६.७ (४) अपरोक्षानुभूति, प्रकृतिपुरुषविवेक। 'सोहन राम पेम बिनु ग्यानू।' मा० २.२७७.५ (५) शास्त्रीय बोध। 'लखि गति ग्यानु बिरागु बिरामे।' मा० २.२९२.१

ग्रंथ : सं०पुं० (सं०)। प्रबन्धात्मक शब्दरचना। शास्त्र। मा० ७.१२२.१४

ग्रंथनि, न्हि : ग्रंथ+संब०। ग्रन्थों (मैं ने आदि)। 'सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाये।' मा० ५.५९.३ 'सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।' मा० ७.४३.७

ग्रंथि : सं०स्त्री० (सं०)। (१) गाँठ, जोड़। 'जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई।' मा० ७.११७.४ (२) मानसिक उलझन, भावग्रन्थि। 'भ्रमित पुनि समुझि चित ग्रथि अभिमान की।' विन० २०९.४ (३) विवाह आदि में जोड़ी जाने वाली गाँठ; गठबन्धन

ग्रंथिबिधि : सं०स्त्री०। वर-वधू के वस्त्रों में बाँधी जाने वाली वैवाहिक रीति। पा०मं० १३२

ग्रंथित : भूकृ० (सं०)। ग्रन्थिविधि से बँधे हुए। 'ग्रथित चूनकी पीत पिछोरी।' गी० १.१०५.३

√**ग्रस, ग्रसइ** : (सं० ग्रसति—ग्रस अदने>प्रा० गसइ>अ० ग्रसइ—खाना, निगलना, घेरना, पकडना—ग्रासयति—ग्रस ग्रहण)। आ०प्रए०। पकड़ता है, निगलता या घेरता है। 'ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई।' मा० १.२३८.१

ग्रसत : वकृ०पुं०। घेरते, ग्रास करते, निगलते। मा० ५.३६

ग्रसन : (१) सं०पुं० (सं०)। निगलना। 'मानहुं ग्रसन चहततहिं लंका।' मा० ५.५५.८ (२) वि०। निगलने वाला। 'संसय सर्व ग्रसन उरगाद:।' मा० ३.११ ९

ग्रससि : आ०मए० (सं०)। तू निगल या घेर। 'ग्रससि न मोहि कहा हनुमाना।' मा० ५.२.६

ग्रसि : पूकृ० । ग्रस्त करके, निगलकर । 'जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू ।' मा० १.१५६.५

ग्रसित : भूकृ० । आवृत, निगला हुआ, ग्रस्त । 'कलिमल ग्रसित बिमूढ़ ।' मा० १.३० ख

ग्रसिहि : आ०भ०प्रए० । ग्रस्त करेगा, निगलेगा । 'ग्रसिहि न कैकइ करतब राहू ।' मा० २.२०६.४

ग्रसे : भूकृ०पुं०ब० । निगल लिये । 'लोभ ग्रसे सुभ कर्म ।' मा० ७.६७

ग्रसेउ : भूकृ०पुं०कए० । निगल लिया । 'संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता ।' मा० ७.६३.६ (डसने से तात्पर्य है)

ग्रसै : ग्रसइ । कवलित करता है । 'बदनहीन सो ग्रसै चराचर ।' विन० १११.३

ग्रस्यो : ग्रस्यो । 'झषराज ग्रस्यो गजराज ।' कवि० ७.८

ग्रह : सं०पुं० (सं०) । (१) सूर्यादिनवग्रह । मा० १.१६० (२) देवविशेष जो आवेश में लेता है । 'ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस ।' मा० २.१८० (३) धूमकेतु, पुच्छल तारा । 'जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ।' मा० ७.१२१.२०

√**ग्रह, ग्रहइ** : (सं० गृह्णाति>प्रा० गहइ>अ० ग्रहइ—पकड़ना, बोध प्राप्त करना, ग्रहण या धारण करना) आ०प्रए० । ग्रहण करता है । 'ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेष ।' मा० १.११८.७

ग्रहीत : भूकृ० (सं० ग्रहीत) । पकड़ा हुआ । 'ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस ।' मा० २.१८०

ग्राम : सं०पुं० (सं०) । (१) समूह । 'जग मंगल गुन ग्राम राम के ।' मा० १.३२.२ (२) बस्ती । 'ग्राम बासु नहिं उचित ।' मा० २.८८

ग्रामदेबि : ग्राम पूज्य देवी (ग्राममातृका) । मा० २.८.५

ग्रामनर : ग्राम्य जन, ग्रामीण । 'ग्रामनर नागर ।' मा० १.२८.६

ग्रामा : ग्राम । मा० १.१४.४

ग्राम्य : वि० (सं०) । ग्रामीण, ग्राम सम्बन्धी । 'गिरा ग्राम्य सियराम जस ।' मा० १.१० ख

ग्रास : सं०पुं० (सं०) । कवल । 'चंडकर मंडल-ग्रास-कर्ता ।' विन० २५.२

ग्राह : सं०पुं० (सं०) मगर । विन० २६०.२

ग्रीव : ग्रीवा

ग्रीवा : सं०स्त्री० (सं०) । गला, कण्ठ । मा० १.१४७.१

ग्रीषम : सं०पुं० (सं० ग्रीष्म) । वसन्त के अनन्तर आने वाला गरमी का ऋतु विशेष । मा० १.४२.४

ग्लानि, नी : गलानि (सं०) । अवसाद, हर्षनाश । मा० १.१८४.४

ग्वाल : सं०पुं० (सं० गोपाल>प्रा० गोपाल) । अहीर । कृ० १८
ग्वालि, ली : सं०स्त्री० (सं० गोपाली>प्रा० गोवाली) । ग्वालिन । कृ० ५
ग्वालिनि : ग्वाली । कृ० ४

घ

घंट : सं०पुं० (सं०) । वाद्यविशेष । 'चले मत्त गज घंट बिराजी ।' मा० १.५०.२
घंटा : घंट । मा० १.३०१.१
घंटि : सं०स्त्री० (सं० घण्टा=घण्टिका>प्रा० घंटा=घंटिआ>अ० घंटी=घंटि) । छोटा घंटा । मा० १.३०२.७
घई : सं०स्त्री० । गर्व, कुण्ड, गहरा प्रवाह का आवर्त । 'थके बचन पैर न सनेह-सरि, पर्‍यो मानो घोर घई है ।' गी० २.७८.३
घट : सं०पुं० (सं०) । (१) घड़ा, कलश । 'सजे जबहिं हाटक घट नाना ।' मा० १.९९.३ (२) शरीर । 'जय जय अबिनासी सब घट बासी ।' मा० १.१८६ छं०
√**घट घटइ** : (१) (सं० घटते—घट चेष्टायाम्>प्रा० घट्टइ—होना) आ०प्रए० । होता है, घटना में प्रकट होता है, आ पड़ता है । 'दारुन दोष घटइ अब मोही ।' मा० १.१६२.४ (२) (सं० घट्टते—घट्ट चलने>प्रा० घट्टइ—कम होना) आ०प्रए० । कम होता है, क्षीण होता है । 'घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई ।' मा० १.२३८.१
घटउ : आ०प्रए० संभावना (सं० घट्टताम्>प्रा० घट्टउ) । चाहे क्षीण हो जाय । 'घटउ सकल बल देह । दो० ५६३
घटकर्ण : कुम्भकर्ण । रावण का भाई । विन० २८.५
घटज : कुम्भज, अगस्त्य मुनि । मा० २.२९७.२
घटजोनी : घटज (सं० घटयोनि) । मा० १.३ ३
घटत : वकृ०पुं० । (१) (सं० घटयत्) ? करता, सम्पन्न करता । 'घटत न काज पराए ।' विन० २०१.१ (२) क्षीण होता । 'घटत न तेज ।' कृ० २९
घटति : घटत+स्त्री० । क्षीण होती । 'राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मन माहँ ।' दो० ६९

घटन : वि०पुं० । घटित करने वाला, निर्माता । 'अघटित घटन सुघट बिघटन ।' विन० ३०.२

घटना : सं०स्त्री० (सं०) । रचना, क्रिया, चेष्टा, सृष्टि । 'अघट घटना सुघट ।' विन० २५.८

घटनि : घटा+संब० । घटाओं, मेघमालाओं । 'साँवरे बिलोकें गर्ब घटत घटनि के ।' कवि० २.१६

घटब : भकृ०पुं० (सं० घटितव्य>प्रा० घट्टिअव्व) । (मुझे) करना (होगा) । 'सब बिधि घटब काज मैं तोरे ।' मा० ४.७.१०

घटसंभव : घटज (सं०) । अगस्त्य मुनि । मा० ७.३२.७

घटहुं : आ० संभावना—प्रब० । चाहे क्षीण हो जायँ । 'श्रवन घटहुं पुनि दृग घटहुं ।' दो० ५६३

घटा : सं०स्त्री० (सं०) । समूह, यूथ । (१) हस्तिसमूह । 'चितवत मनहुं मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै ।' मा० ३.१८ छं० (२) मेघसमूह । 'मानहुं जलद घटा अति कारी ।' मा० ६.१३.५ (एकाकी प्रयोगों में 'मेघसमूह' अर्थ ही चलता है—दो० घटनि)

घटाइ : पूकृ० । कम करके । 'कहैगो घटाइ को ।' कवि० ७.२२

घटाटोप : सं०पुं० (सं०) । घटाओं का आडम्बर, मेघ समूह के समान सघन साज-सज्जा । 'घटाटोप करि चहुं दिसि घेरी ।' मा० ६.३९.१०

घटि : (१) पूकृ० । कम होकर, तुच्छ होकर । 'चातकु रटनि घटें घटि जाई ।' २.२०५.४ (२) कम या कमी । 'कहेहूं तें कछु दुख घटि होई ।' मा० ५.१५.५

घटित : भूकृ०वि० (सं०) । गढ़ा हुआ, गढ़े हुए । 'हाटक घटित जटित मनि कटि-तट रट मंजीर ।' गी० ७.२१.११

घटिहि : आ०भ०प्रए० (सं० घटिष्यते, घट्टिष्यते>प्रा० घट्टिहिइ) । (१) कम पड़ेगा । 'घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ।' मा० २.२०९.२ (२) घटित करेगा, सम्पादित करेगा । 'सो सब भाँति घटिहि सेवकाई ।' मा० २.२५८.५

घटिहै : घटिहि । क्षीण हो जायगा । 'घटिहै चपल चित चाय ।' विन० २२०.८

घटु : घट+कए० । घड़ा । 'बिष रस भरा कनक घटु जैसें ।' मा० १.२७८.८

घटें : कम होने से । 'चातकु रटनि घटें घटि होई ।' मा० २.२०५.४

घटे : भूकृ०पुं०ब० । कम हुए, क्षीण हो गये । 'मिटे घटे तमीचर तिमिर भुवन के ।' कवि० ६.३

घटै : घटइ । (१) कम पड़े, क्षीण हो । 'कबहुं घटै जनि नेहु ।' मा० ७.४९ (२) हो, घटित हो । 'सपने नृप कहँ घटै बिप्र बध ।' विन० १२२.२

घटैगी : आ०भ०स्त्री०प्रए० । कम होगी । 'घटें घटैगी आनि।' दो० २७९

घट्टा : सं०पुं० (सं० घट्ट) । विशाल जमाव, संघर्षपूर्ण धावनशील समूह, भीड़ भाड़ । 'प्रलय काल के जनु घनघट्टा ।' मा० ६.८७.२

घट्ठा : सं०पुं० (सं० घृष्टक>प्रा० घट्टअ) । कठोर घर्षण से जनित मोटा कठिन धब्बा । 'कमठ कठिन पीठि घट्टा पर्‍यो मंदर को ।' कवि० ६.१६

घट्यो : भूकृ०पुं०कए० । किया । 'घट्यो तौ न सहाय ।' गी० ६.१४.२

घन : (१) सं०पुं० (सं०) । मेघ । 'प्रलय काल के जनु घन घट्टा ।' मा० ६.८७.२
(२) लोहे का बड़ा हथौड़ा । 'अनलदाहि पीटत घनहि ।' मा० ७.३७
(३) वि० पुञ्जीभूत, राशीभूत । 'सत चेतन घन आनंद रासी ।' मा० १.२३.६
(४) घना, अविरल । 'गयउ दूरि घन गहन बराहू ।' मा० १.१५७.५
(५) मूर्त, साकार । 'गुनागार घन बोध । मा० ६.४८ ख

घनघोर : वि० (सं०) । घनीभूत घोर, अतिशय घोर, मेघाडम्बरवत् आवरण-कारी । 'पाप संताप घन-घोर संसृति ।' विन० ११.८

घननाद, दा : मेघनाद=रावणपुत्र । मा० ७.६७, ६.५१.५

घनस्याम : सं०+वि०पुं० (सं० घनश्याम) । (१) काला बादल । 'राम घनस्याम तुलसी पपीहा ।' विन० १५.५ (२) मेघ के समान श्याम वर्ण । मा० २.११३.५

घनस्यामा : घनस्याम । मा० १.१९२.३

घनहिं : घन से, बड़े हथौड़े से । 'पीटत घनहिं ।' मा० ७.३७

घनहि : मेघ को । 'निदरि घनहि घुर्मरहिं निसाना ।' मा० १.३०१.२

घना : घन । (१) ठोस, सुदृढ । 'कनक कोट·········सुंदरायतना घना ।' मा० ५.३ छं० १ (२) प्रचुर, अधिक । 'गजादि खल तारे घना ।' मा० ७.१३० छं० १

घनी : घना+स्त्री० । (१) अधिक । 'दुंदुभीं बाजहिं घनी ।' मा० १.३१७ छं० (२) संघर्षयुक्त अविराल । 'निसाचर अनी । कसमसात आई अति घनी ।' मा० ६.८७.१

घनु : घन+कए० । एक मेघ । 'भूषित उड़गन तड़ित घनु ।' मा० १.३१६

घने : 'घना' का रूपान्तर (ब०) । अधिक, अविरल । 'अनेक पर्व सुमन घने ।' मा० ७.१३ छं० ५

घनेरा : वि०पुं० (सं० घनतर>प्रा० घणयर) । अतिशय घना, अधिकतर; अत्यधिक 'नगर कोलाहलु भयउ घनेरा ।' मा० ६.४९.९ (घन के सभी अर्थ) ।

घनेरी : वि०स्त्री० (सं० घनतरा>प्रा० घणयरी) । अत्यधिक । 'तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ।' मा० ५.४०.८ (घन के सभी अर्थ)

घनेरे : 'घनेरा' का रूपान्तर। (१) प्रचुर तथा सघन—संघर्ष युक्त अविरल। 'चले मत्त गजजूथ घनेरे। मा० ६.७९.३ (२) बहुसंख्यक। 'जे आचरहिं ते नर न घनेरे।' मा० ६.७८.३

घनेरो : घनेरा+कए०। अत्यन्त घना। 'तिन्ह सों प्रेम घनेरो।' विन० १४३.३

घनै : घनहि। मेघ को। 'भयो जातक राम स्याम सुंदर घनै।' गी० ५.४०.४

घनो : घना+कए०। प्रचुर, अधिक। 'हाटकु पिघिलि चलो घी सो घनो।' कवि० ५.२४

घमंड : सं०पुं०। (१) घमँड़ना, गर्वातिरेक से घुमड़ने-घेरने की क्रिया, आवरणकारी आडम्बर या आटोप। 'घन घमंड गरजत नभ घोरा।' मा० ४.१४.१ (२) उत्साहतिरेक, समारोह, अतिशय उल्लास। 'भूप भवन घर घर घमंड।' गी० १.४६.४

घमंडु : घमंड+कए०। अद्वितीय आडम्बरपूर्ण घेरा। 'सावन घन घमंडु जनु ठयऊ।' मा० १.३४७.१

घमोई : सं०पुं० (सं० गर्मुत्)। (१) तृण विशेष जो बाँस के समान होता है। (२) बाँस की ही जाति का वनस्पति विशेष। 'बाँस बंस सुत भयहु घमोई।' मा० ६.१०.३

घर : सं०पुं० (१) (सं० घर=गृह>प्रा० घर)। मा० १.७५.३ (२) (सं० घट>प्रा० घड)। घड़ा। 'करि पुटपाक नाक-नायक हित, घने घने घर घलतो।' गी० ५.१३.२ (यहाँ घर रूपी घट का श्लेष है)

घरजायऊ : घर जाया भी। 'घरजायऊ है घर को।' कवि० ७.१२२

घरजाया : सं०पुं० (सं० घर जात>प्रा० घर जाय)। घर में ही पैदा हुआ सेवक।

घरनि : (१) घरनी। पत्नी। 'जपत सादर संभु सहिति घरनि।' विन० २४७.२ (२) घर+संब०। घरों (में)। 'जग जगदीस घर-घरनि घनेरे हैं।' विन० १७९.२

घरनी : सं०स्त्री० (सं० गृहिणी>प्रा० घरिणी)। पत्नी 'स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी।' मा० ५.३६.७

घरन्यो : घरनीभी। 'घरन्यो बरदा है।' कवि० ७.१५५

घरफोरी : वि०स्त्री० (सं० घरस्फोटी>प्रा० घडप्फोडी+घरस्फोटी>प्रा० घरप्फोडी)। घर (परिवार) में फूट डालने वाली+घडे फोड़ने वाली (बेशऊर)—दासी। 'घरेहु मोर घरफोरी नाऊँ।' मा० २.१७.३

घरबसी : वि०स्त्री० (सं० गृहोषिता)। घर बैठी, उपपति के घर जाकर रहने वाली या घरजाई दासी (एक प्रकार की गाली)। दुष्ट, नीच। 'डारि दै घरबसी लकुटी बेगि कर तें।' कृ० १७

घरबात : सं०स्त्री० (सं० गृहवार्ता>प्रा० घरवता>अ० घरवत्त)। घरेलू आजीविका, कृषि या वाणिज्य के उपकरण, जीवन साधन। 'घरबात घरें खुरपा खरिया।' कवि० ७.४६

घरिक : घरी+इक। एक घड़ी, घड़ी भर। 'घरिक बिलंबु कीन्ह बट छाहीं।' मा० २.११५.३

घरिनि : घरनि। मा० २.२८५.२

घरिनी : घरनी। मा० २.१००.६

घरीं : (१) घरी+ब०। घड़ियाँ। 'मानहुं मीचु घरीं गनि लेई।' मा० २.४०.२ (२) घरी+अधिकरण कारक। घड़ी में। 'केहि सुकृतीं केहि घरीं बसाए।' मा० २.११३.२

घरी : सं०स्त्री० (सं० घटी>प्रा० घडी)। दिन का सातवां भाग, दण्ड। 'घरी पंच गइ राति।' मा० १.३५४ (२) प्रतीक्षा (का समय)। 'घरी करौ हम जोही।' कृ० ४१ (३) अवसर। 'घरी कुघरी समुझि जियँ देखू।' मा० २.२६.८

घरीक : घरीक। घड़ी भर, थोड़ी देर। 'परिखौ पिय छाहँ घरीक ह्वै ठाढ़े।' कवि० २.१२

घरु : घर+कए०। 'घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा।' मा० २.७८.५

घरें : घर में। 'घरबात घरें खुरपा खरिया।' कवि० ७.४६

घरो : सं०पुं०कए०। (१) (सं० घटः>प्रा० घडो)। मिट्टी का घड़ा। (२) घर +कए०। वृक्ष आदि के आस-पास बनाया हुआ मिट्टी का घेरा। 'बिगरत मन संन्यास लेत, जल नावत आम घरो सो।' विन० १७३.४

घरौंधा : सं०पुं०। बच्चों के खिलवाड़ का घर जो धूल से थोड़ी देर के लिए बनाया और साँझ होते ही बिगाड़ दिया जाता है। 'बापुरो बिभीषनु घरौंधा हुतो बालु को।' कवि० ७.१७

घर्मांशु : सं०पुं० (सं०)। उष्ण किरणों वाला=सूर्य। विन० २८.६

घलतो : क्रियाति०पुं०ए०। यदि···तो···नष्ट कर देता। 'घने घने घर घलतो।' गी० ५.१३.२

घवरि : सं०स्त्री० (सं० गह्वर ?)। फलों या फलियों का गुच्छा (प्रायः कदली—फल-स्तवक के अर्थ में चलता है; आम्रफल-गुच्छ आदि अर्थ भी प्रचलित हैं)। 'हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि।' मा० १.२८८

घसीटन : भकृ० (संघर्ष+इट गतौ)। घसीटने, घिसते हुए भूमि पर खींचने, घर्षण-पूर्वक चलाने। 'लगे घसीटन धरि धरि झोटी।' मा० २.१६३.७

घहरात : वकृ०पुं० । घर्घर ध्वनि करते, लहराते, वज्र ध्वनि करते । 'घहरात जिमि पबिपात गरजत जनु प्रलय के बादले ।' मा० ६.४६ छं०

घाउ, ऊ : घाय+कए० । (१) आघात । 'अस कहि पर निसरनहिं घाऊ ।' मा० १.३१३.७ (२) चोट, मार । 'हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा ।' मा० ६.७६.८ (३) चोट से होने वाला क्षत (घाव) । 'हृदय घाउ मेरे पीर रघुबीरै ।' गी० ६.१५.१

घाएँ : घात में, लक्ष्य बनाकर, दाँव लगाये हुए । 'संकर साखि रहेउँ एहि घाएँ ।' मा० २.२६२.५

घाए : घाएँ (सं० घाते>प्रा० घाए) । चोट में, प्रहार में । 'ओड़िअहिं हाथ असनिहुं के घाए ।' मा० २.३०६.८

घाट, टा : सं०पुं० (सं० घट्ट) । जलावतार, जलाशय में उतरने का मार्ग ।' मा० १.३६ मा० ३७.४

घाटारोहु : सं०पुं०कए० (सं० घट्टारोध:>प्रा० घट्टारोहो>अ० घट्टारोहु) । घाट के चारों ओर घेराबन्दी । 'कीजिअ घाटारोहु ।' मा० २.१८९

घाटि : पूकृ० । घटकर (कम, हीन) । हम तुम्ह सन कछु घाटि ।' मा० ७.९९ ख

घाटू : घाट+कए० । एक (उत्तम) घाट । 'रघुबर कहेउ, लखन भल घाटू ।' मा० २.१३३.१

घात, ता : सं०स्त्री० (सं० घात>प्रा० घत्ता>अ० घत्त) । (१) लक्ष्य, साधना, निशाना । 'चुकइ न घात मार मुठभेरी ।' मा० २.१३३.४ (२) प्रहार (सं० पुं०) । 'उर लात घात प्रचंड लागत ।' मा० ६.९८ छं० (३) वध । 'करहिं बिप्र गुर घात ।' मा० ७.९९ (४) संहार । 'देखि भालु कपि निज दल घाता ।' मा० ६.९८.१५ (५) घातक । 'घात चंद्र जियँ जानु ।' दो० ४५९

घातक : वि० (सं०) । विनाशकारी । 'भ्राता कुंभकरन रिपु घातक ।' गी० ६.३.२

घातिनी : (समासान्त में) वि०स्त्री० (सं०) । विनाश करने वाली जैसे, बीर-घातिनी । मा० ६.५४.७

घाती : (समासान्त में) (१) वि०पुं० (सं० घातिन्) । विनाशकारी, घातक । 'या कुठारु कुंठित नृपघाती ।' मा० १.२८०.१ (२) पतनकारी, अधोगतिदायी । 'ते जड़ जीव निजात्मक घाती ।' मा० ७.५३.६

घानीं : घानी में । 'मारि दहपट दियो जम की घानीं ।' कवि० ६.२०

घानी : सं०स्त्री० (सं० ग्रहणी) । तेल के कोल्हू में एक बार में डाला जाने वाला तिल आदि; उसके ग्रहण की मात्रा या तौल । (२) तिल डाले जाने वाला कोल्हू का भाग । 'समय तौलिक यंत्र, तिल समीचर निकर, पेरि डारे सुभट घालि घानी ।' विन० २५.७ ('ग्रहणी' शब्द मूलतः आँत के प्रारम्भिक अंश के

अर्थ में है जो आमाशयगत भोजन को लेकर आँतों में प्रेरित करता है। उसी का लाक्षणिक प्रयोग कोल्हू के उस भाग के लिए होता है जिसमें पेरने वाली वस्तु डाली जाती है।)

घाम, मा : सं०पुं० (सं० घर्म>प्रा० घम्म)। (१) धूप, ऊष्मा। 'मध्य दिवस अति सीत न घामा।' मा० १.१६१.२ (२) ताप, क्लेश। 'सुमिरे त्रिबिध घाम हरत।' विन० २५५.१

घामु : घाम+कए०। 'घोर घामु हिम बारि बयारी।' मा० २ ६२.४

घामैं : घाम को। 'चल्यो सुरतरु तकि तजि घोर घामैं।' गी० ५.२५.४

घामो : घाम भी। 'करत छाँह घोर घामो।' विन० २२८.२

घायँ : घावों से, चोटों या व्रणों से। 'घूमत घायल घायँ घने हैं।' कवि० ६.३६

घाय : सं०पुं० (सं० घात>प्रा० घाय)। (१) चोट, व्रण, क्षत। 'मनहुं घाय महुं माहुर देई।' मा० २.३५.३ (२) प्रहार। 'मुएहि घालत घाय।' विन० २२२.३

घायनि : घाय+संब०। घावों (से)। 'घन घायनि अकुलान्यो।' गी० ३.८.२

घायल : वि०पुं० (सं० घातवत्>प्रा० घाइल्ल)। व्रणयुक्त, आहत, क्षतविक्षत। 'कछु मारे कछु घायल।' मा० ६.४७

घाल : (समासान्त में) घालक। 'घरघाल चालक कलहप्रिय।' पा०मं०छं० १३

✓**घाल घालइ** : (प्रा० घल्लइ—फेंकना, नष्ट करना, भीसना) आ०प्रए०। (१) नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है। 'धरि सब घालइ खीसा।' मा० १.१८३ छं० (२) संकटग्रस्त करता है। 'जिमि कपि लहि घालइ हरहाई।' मा० ७.३६.२

घालक : वि०। विनाशक। 'उपजेहु बंस अनल कुल घालक।' मा० ६.२१.५

घालकु : घालक+कए०। अकेला ही विनाशकारक। 'कुटिल काल वस निज कुल घालकु।' मा० १.२७४.१

घालत : वकृ०पुं० (प्रा० घल्लंत)। डालता, छोड़ता (मारता)। 'मुएहि घायत घाय।' विन० २२०.३

घालति : घलित+स्त्री०। बिगाड़ती, नष्ट करती, अस्त-व्यस्त करना। 'घने कर घालति है घने घर घालिहै।' कवि० ७.१२०

घालसि : आ०मए०। (प्रा० घल्लसि)। तू मिटा, नष्ट कर (मिटाता है)। 'जनि घालसि कुल खीस।' मा० ५.५६ क

घालहिं : आ०प्रब० (प्रा० घल्लंति>अ० घल्लहिं)। मिटाते हैं। 'आपु गए अरु घालहिं आनहि।' मा० ७.४०.५

घाला : भूकृ०पुं० (प्रा० घल्लिअ)। नष्ट किया, बिगाड़ डाला। 'चित्रकेतु कर घरु उन्ह घाला।' मा० १.७६.२

घालि : पूकृ० (प्रा० घल्लिय>अ० घल्लि) । (१) डालकर । 'कबहुं पालने घालि झुकावै ।' मा० १.२००.८ (२) घाते या पासंग के बराबर करके । 'बिभीषनु घालि नहिं ता कहुं गनै ।' मा० ६.६४ छं०

घालिहै : आ०भ०प्रए० (प्रा० घल्लिहिइ) । नष्ट करेगा-गी । 'बानरू बड़ी बलाइ घने घर घालिहै ।' कवि० ५.१०

घाली : (१) भूकृ०स्त्री० । डाल दी, छोड़ दी । 'राम सेन निज पाछें घाली ।' मा० ६.७०.६ (२) घालि । डालकर (छिपाकर) । 'सो भुजबल राखेहु उर घाली ।' मा० ६.२६.८ (३) डालकर । 'गयउ तुम्हारेहिं कोछें घाली ।' मा० ७.१८.२

घालें : घालने से, छोड़ने से (मारने से) । 'भलो न घालें घाउ ।' दो० ४२४

घाले : (१) भूकृ०पुं०ब० । नष्ट किये, उखाड़ फेंके । 'थपै थिर कै कपि जे घर घाले ।' हनु० १७ (२) घालें । मिश्रण से, डालने से, ओत-प्रोत करने से । 'अब देह भई पट नेह के घाले ।' कवि० ७.१३३

घालेसि : आ०भूकृ०पुं०+प्रए० । उसने नष्ट कर डाला । 'घालेसि सब जगु बारह बाटा ।' मा० २.२१२.५

घालेहि : आ०—भूकृ०पुं०+मए० । तूने नष्ट किया । 'केहि कें बल घालेहि बन खीसा ।' मा० ५.२१.१

घालै : (१) घालइ (२) भकृ० अव्यय । घालने, नष्ट करने । 'घालै लिए सहित समुदाई ।' मा० १.१७४.१

घालो : भूकृ०पुं०कए० । बिगाड़ा, नष्ट किया । 'जाहि घालो चाहिए, कहौ धौं, राखै ताहि को ।' कवि० ७.१००

घास : सं०पुं० (सं०) । पशु खाद्य तृण । बर० ५६

घासी : घास । तृण, चारा । विन० २२.८

घाहैं : सं०स्त्री०ब० । घाटियाँ, कुण्ड । 'धारें बान, कूल धनु, भूषन जलचर, भँवर सुभग सब घाहैं ।' गी० ७.१३.३

घिन : सं०स्त्री० (सं० घृणा>प्रा० घि[illegible]>अ० घिण) । जुगुप्सा । 'काल चाल हेरि होति हिये घनी घिन ।' विन० २५३.२

घिनात : वकृ०पुं० । घृणा करता-ते । 'जौ पै अधिक घिनात ।' विन० २१७.६

घिय : सं०पुं० (सं० घृत>प्रा० घिय) । घी । 'पिघले हैं आँच माठ मानो घिय के ।' गी० ४.१.२

घी : घिय । 'सोइ आदरौ आस जाके जिय बारि बिलोवत घी की ।' कृ० ४३

घीय : घी । विन० २६३.३

घुटुरुवनि : (घुटुरुवा=पैरों का घुटना, जानु)=घुटुरुवा+संब० । घुटनों (से) । 'आँगन फिरत घुटुरुवनि धाए ।' गी० १.२६.१

घुन : सं०पुं० (सं० घुण) । एक क्षुद्र कीट जो अन्न, काष्ठ आदि के भीतर ही जन्म पाता और उसी को खाता है (घुन पैदा होने की क्रिया 'घुनना' कहलाती है) । 'कीट मनोरथ दारु सरीरा । जेहि न लाग घुन, को अस धीरा ।' मा० ७.७१.५

घुनाच्छर : (घुन+अच्छर) लकड़ी को घुन काटता-खाता है तो अकस्मात् कभी-कभी अक्षर का आकार बन जाता है, इसे 'घुणाक्षर' कहते हैं । इसी प्रकार अनायास कोई काम बन जाय तो वहाँ 'घुणाक्षर न्याय' से काम होना कहा जाता है—दे० न्याय । 'होइ घुनाक्षर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक ।' मा० १.११८ ख

घुनिए : आ०कवा०प्रए० । घुन लगने की-सी स्थिति में रहा जाय, मन में जर्जर होकर जिया जाय । 'सुमिरि सुमिर बासर निसि घुनिए ।' कृ० ३७

घुरबिनिआ : वि० घूरे में दाना चुगने वाला, मलराशि में अन्न बीनने वाला । 'तुलसी मन परिहरत नहिं घुरबिनिआ की बानि ।' दो० १३

घुरघुरात : वकृ०पुं० । घुमघुर ध्वनि करता । 'घुरघुरात हय आरौ पाएँ ।' मा० १.१५६.८

घुमंरहिं : आ०प्रब० । घूम रहे हैं+घुमड़ रहे हैं+तरङ्गाकार गति लेते हैं । 'मिदरि घनहिं घुमंरहिं निसाना ।' मा० १.३०१.२

घुमि : पूकृ० । चक्कर खाकर । 'घुमि घुमि घायल महि परहीं ।' मा० ६.६८.६

घुमित : भूकृ० (सं० घूर्णित) । चकराया हुआ । 'घूमित भूतल परेउ तुरंता ।' मा० ६ ६५.८

घूँघट : सं०पुं० । मुखावरण । 'का घूँघट मुख मूदहु अबला नारि ।' बर० १७

घूँटक : घूँट+एक । एक घूँट भर । 'लेत जो घूँटक पानि ।' दो० २८७

घूँघरवारे : वि०पुं०ब० । घुँघराले, छल्लेदार । 'कच घुघरवारे ।' मा० १.२३३.४

घूटी : सं०स्त्री० । घुट्टी । (शिशुओं को दी जाने वाली औषधि) । 'लोच न सिसुन्ह देहु अमिय घूटी ।' गी० २.२१.२

घूमत : वकृ०पुं० (सं० घूर्णत्>प्रा० घुम्मंत) । घूमता, घूमते । 'घूमत घायल घाय घने हैं ।' कवि० ६.३९

घूमि : पूकृ० (सं० घूर्णित्वा> घुम्मिअ>अ० घुम्मि) । घूमकर, चक्कर या पछाड़ खाकर । 'भूमि परे भट घूमि कराहत ।' कवि० ६.३२

घूर : सं०पुं० । कूड़े का ढेर, मलराशि । 'चाहत अहारन पहार दारि घूर ना ।' कवि० ७.१४८

घृत : सं०पुं० (सं०) । घी । मा० १.४.४

घृतु : घृत+कए० । एकमात्र घी । 'लियो काढ़ि पामदेव नाम घृतु है ।' विन० २५४.२

✓घेर घेरइ : (सं० गुहेरयति—गुहेर=आवरण>प्रा० गुहेरइ आवृत करना), आ०प्रए० । घेरता है । 'सावन सरित सिंधु रुख सूप से घेरइ ।' पा०मं० ५६

घेरत : वकृ०पुं० । घेरता, घेरते । 'बाल रबिहि घेरत दनुज ।' मा० ३.१८

घेरहिं : आ०प्रब० । घेरते हैं, मण्डलाकार बृत्त में आस-पास पहुंचते हैं । 'कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं ।' मा० ४.२४.२

घेरा : भूकृ०पुं० । घेर लिया । 'कोपि कपिन्ह दुर्घट गढ़ु घेरा ।' मा० ६.४६.६

घेरि : पूकृ० । घेरकर । 'कीसन्ह घेरि पुनि रावनु लियो ।' मा० ६.१०० छं०

घेरी : (१) घेरि । मा० ६.३६.१० (२) भूकृ०स्त्री० । घेर ली, छाप ली । 'धरम सनेहूँ उभय मति घेरी ।' मा० २.५५.३

घेरें : घेरा डाले (स्थिति में) । 'महाबिषु ब्याल दवा अरि घेरें ।' कवि० ७.५०

घेरे : भूकृ०पुं०ब० । 'तिन्ह रामु घेरे जाइ ।' मा० ६.१०१ ७

घेरेन्हि : आ०—भूकृ०पुं०+प्रब० । (उन्होंने) घेर लिय थे । 'घेरेन्हि नगर निसान बजाई ।' मा० १.१७५.५

घेरेसि : आ०—भूकृ०पुं०+प्रए० । (उसने) घेर लिया-ये । 'सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई ।' मा० १.१७६.३

घेरो : भूकृ०पुं०कए० । घेर लिया (गया), घेरे में पड़ा हुआ । 'तू निज करम जाल जहँ घेरो ।' विन० १३६.४

घेरोइ : घेरा हुआ ही । 'घेरोइ पै देखिबो लंक गढ़ ।' गी० ५.५१.२

घैया : (१) घई । गर्त, कन्दरा, उदर गर्त । 'भूख न जाति अघाति न घैया ।' कृ० १६ (२) गाय आदि का स्तनमण्डल, आयना । 'पय सप्रेम घनी घैया ।' गी० १.२०.३

घैर : सं०पुं० । गुपचुप वार्ता, फुसफुसाहट, गोपनीय चर्चा ।

घैरु : घैर+कए० । एक ही चर्चा । 'समुझि तुलसीस कपि कर्म घर घर घैरु ।' कवि० ६.४

घोर : (१) वि० (सं०) । भयानक, आतङ्ककारी, विषम । 'घोर धार भृगुनाथ रिसानी ।' मा० १.४१.४ (२) तीव्र, असह्य । 'घोर घामु हिम बारि बयारी ।' मा० २.६२.४ (३) सं०पुं० (सं० घोट>प्रा० घोड) । घोड़ा, अश्व । दे० घोरसार ।

घोरत : (१) वकृ०पुं० (सं० घूर्णत्>प्रा० घोलंत) । घुमड़ता, घुमड़ते । 'सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु-रँगमने सृंगनि ।' गी० २.५०.३ (२) घोर इव

करता-करते । (३) घोलते, द्रव मिश्रण करते । (ऊपर तीनों अर्थ एक साथ देखे जा सकते हैं ।)

घोरसार : सं०स्त्री० (सं० घोटशाला>प्रा० घोडसाला>अ० घोडसाल) । अश्व-शाला । 'हाथी हथसार जरे घोरे घोर-सार ही ।' कवि० ५.२३

घोरा : (१) घोर । तीव्र, भयानक । 'घन घुमंड गरजत न घोरा ।' मा० ४.१४.१ (२) सं०पुं० (सं० घोटक>प्रा० घोडअ) । घोड़ा, अश्व । 'हाथी छोरी घोरा छोरौ ।' कवि० ५.६

घोरि : पूकृ० (१) (सं० घूर्णित्वा>प्रा० घोलिअ>अ० घोलि) । घुमड़कर । 'बरषैं मुसलाधार बार बार घोरि कै ।' कवि० ५.१९ (२) घोलकर, घोल बनाकर । 'प्रेत एक पिअत बहोरि घोरि घोरि के ।' कवि० ६.२० (३) घोर शब्द करके । 'कंद बूंद बरषत छबि मधुर घोरि घोरी ।' गी० ७.७.५

घोरी : (१) घोरि । घोलकर । 'देति मनहुं मधु माहुरु घोरी ।' मा० २.२२.३ (२) घोर रव करके या घुमड़ कर । 'कंद बूंद बरषत छवि मधुर घोरि घोरी ।' गी० ७.७.५

घोरे : घोरा+ब० । अश्व । 'चर कराहिं मग चलहिं न घोरे ।' मा० २.१४३.५

घोसु : आ०—आज्ञा—मए० । तू कह, जप, घोष कर । 'नित राम नामहि घोसु ।' विन० १५९.४

घ्रान : सं०पुं० (सं० घ्राण) । नासिका, गन्धग्राहक इन्द्रिय । 'लहइ घ्रान बिनु बास आसेषा ।' मा० १.११८.७

च

चँदोवा : सं०पुं० (सं० चन्द्रोदय=चण्डातक>प्रा० चंदोवअ) । वस्त्रमण्डप, पट-वितान । 'रतनदीप सुरि चारु चँदोवा ।' मा० १.३५६.४

चँवर : सं०पुं० (सं० चमर>प्रा० चमर>अ० चवँर) । चमर नामक वन्य पशु की पूंछ का बना व्यजन (मोर छल) । मा० १.२९९.४

च : अव्यय (सं०) । और मा० १ श्लोक १

चंग : सं०स्त्री० (फा० चंग=पन्जः, हाथ)। पतंग, कनकौआ। 'चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू।' मा० २.२४०.६ (सं० 'चङ्ग' दक्ष तथा उत्तम का वाचक है जो यहाँ अभिप्रेत नहीं)

चंगु : सं०पुं० (फा० चंग=पन्जा)। हाथ की पकड़, चंगुल। 'चरग चंगु गत चातकहि।' दो० ३०१

चंगुल : चंगु। पन्जा, पकड़। दो० ३०३

चंचरीक : सं०पुं० (सं०)। भ्रमर। मा० ५.३.६

चंचल : वि० (सं०)। (१) चपल, निरन्तर गतिशील। 'चंचल तुरग मनोहर चारी।' मा०६.८६.४ (२) अस्थिर, अधीर। 'कपि चंचल सबहीं बिधि हीना।' मा० ५.७.७

चंचलता : सं०स्त्री० (सं०)। चपलता, अस्थिरता। विन० ८३.४

चंचलताई : चंचलता। विन० ६२.१०

चंड : वि०पुं० (सं०)। (१) तीक्ष्ण, तीव्र। 'चंड सर मंडन मही।' मा० ३.३२ छं० १ (२) उग्र, भयानक। 'कोदंड धुनि अति चंड।' मा० ६.६१ छं० (३) उष्ण, गरम। दे० चंडकर। (४) सं०पुं० (सं०)। असुर विशेष जिसे दुर्गा ने मारा था। 'चंड भुजदंड खंडनि।' विन० १५.४

चंडकर : सं०पुं० (सं०)। उष्ण किरणों वाला=सूर्य। 'चंदिनि कर कि चंडकर चोरी।' मा० २.२९५.६

चंडाला : (१) सं०पुं० (सं० चाण्डाल)। शूद्र जाति विशेष। (२) वि०पुं०। धूर्त, नीच, क्रूर। 'सपदि होहि पच्छी चंडाला।' मा० ७.११२.१५

चंडिका : सं०स्त्री० (सं०)। दुर्गा, पार्वती। कवि० ६.४१

चंडीपति : सं०पुं० (सं०)। पार्वतीपति=शिव। कवि० ६.४१

चंडीस : चंडीपति (सं० चण्डीश)। शिव। कवि० १.१८

चंडीसु : चंडीस+कए०। कवि० ६.४५

चंद : चंद्र (प्रा०)। (१) चन्द्रमा। मा० १.१०६.८ (२) मोर पंख का चन्द्रक। 'मोर के चंद की झलकनि।' गी० १.२२.३

चंदन : सं०पुं० (सं०)। मा०१.१९४.८

चंदनु : (१) चंदन+कए०। चन्दन के समान शीतल। 'धीर कृपाल भगत उर चंदनु।' मा० २.१४१.७ (२) चंदन। मा० २.१७६ ७

चंदबदनि : वि०स्त्री० (सं० चन्द्रवदनी)। चन्द्रमा के समान आह्लादक मुख वाली, चन्द्रमुखी। मा० २.६३.८

चंदबदनियाँ : चंदबदनि+ब०। चन्द्रमुखियाँ, सुन्दरियाँ। गी० १.३४.६

चंदभूषन : सं०पुं० (सं० चन्द्रभूषण) । शिव । पा०मं०छं० १
चंदा : चंद । (१) चन्द्रमा (चन्द्रवत् आह्लादकारी) । 'कीन्ह दंडवत रघुकुलचंदा ।' मा० २.१३४.६ (२) मोरपंख का चमकीला गोलक । 'मोर चंदा चारु सिर ।' कृ० २०

चंदिनि, नी : सं०स्त्री० (सं० चन्द्रिका>प्रा० चंदिणी) । चाँदनी । 'चंदिनि कर कि चंडकर चोरी ।' मा० २.२९५.६

चंदु, दू : चंद+कए० । चन्द्रमा । 'चंदु चवै बरु अनल कन ।' मा० २.४९; २.१२२.१

चंद्र : सं०पुं० (सं०) । चन्द्रमा । मा० १.३२१
चंद्रमहि : चन्द्रमा को । 'बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू ।' मा० १.२८१.६
चंद्रमा : सं०पुं० (सं० चन्द्रमस्) । (१) चन्द्र । मा० १.२३८.२ (२) एक मुनि का नाम । 'मुनि एक नाम चंद्रमा ओही ।' मा० ४.२८.५

चंद्रमाललाम : चन्द्रभूषण । शिव । कवि० १.९
चंद्रमुखी : चंद्रमुखी+ब० । चन्द्रमुखियाँ, सुन्दरियां । 'ह्वै है सिला सब चंद्रमुखी ।' कवि० २.२८

चंद्रमुखी : चन्द्रमा के समान आह्लादकारी मुख वाली, सुन्दरी, प्रिया । कवि० ७.४४

चंद्रमौलि : सं०पुं० (सं०) । शिवजी । मा० १.६४.७
चंद्रहास : सं०पुं० (सं०) । (१) चाँदनी (२) रावण की तलवार । 'चंद्रहास हरु मम परितापं ।' मा० ५.१०.५

चंद्रलालाम : चंद्रमाललाम । शिव । विन० १५७.२
चंद्रार्क : (चन्द्र+अर्क) । चन्द्रमा और सूर्य । विन० १०.६
चंद्रिका : सं०स्त्री० (सं०) । चाँदनी, ज्योत्स्ना । मा० २.९७.६
चंपक : सं०पुं० (सं०) । चम्पा, पुरुषविशेष । (जिसके पास भ्रमर नहीं जाते, ऐसी कवि प्रसिद्धि है) । 'चंचरीक जिमि चंपक बागा ।' मा० २.३२४.७

चउथि : वि०+सं०स्त्री० (सं० चतुर्थी>प्रा० चउत्थी>अ० चउत्थि) । (१) चौथी (संख्या) (२) पाख की चौथी तिथि । 'तसउ चउथि के चंद कि नाईं ।' मा० ५.३८.६

चउथिउ : वि०पुं० (सं० चातुर्थिकः>प्रा० चउत्थिओ>अ० चउत्थिउ) । चौथ तिथि का, चौथिया । 'चउथें चउथिउ चंद ।' दो० ४९९

चउथें : (सं० चतुर्थे>प्रा० चउत्थे=चउत्थेण>अ० चउत्थें) । चौथे स्थान पर । 'चउथें चउथिउ चंद ।' दो० ४९९

चउहट्ट : सं०पुं० (सं० चतुर्हट्ट चतुर्हट्ट>प्रा० चउहट्ट)। बाजार का चौक, चौराहा। 'चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं।' मा० ५.३ छं० १

चए : चय। समुच्चय, पुञ्ज। 'बरषहिं सुमन चय।' गी० १.३.२

चक : सं०पुं० (सं० चक्र>प्रा० चक्क)। (१) चकवा पक्षी। 'संपति चकई भरतु चक।' मा० २.२१५ (२) चकरी, एक प्रकार का खिलौना, लट्टू। 'गोली भौंरा चकडोरि।' गी० १.४३.३

चकइहि : चकई को। 'चकइहि सरद चंद निसि जैसें।' मा० २.६४.२

चकई : सं०स्त्री० (सं० चक्रिका>प्रा० चक्किआ>अ० चक्कई)। स्त्री—चकवा पक्षी। मा० २.२१५

चकचौंधी : सं०स्त्री०। किरण आदि से होने वाला दृष्टिदोष, प्रकाश में आंखों की दर्शन शक्ति का अभाव तथा झिलमिलाहट। गी० २.२०.३

चकाचौंधी : चकचौंधी। 'लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खमीर सो।' हनु० ४

चकार : आ०भू०प्रए० (सं०)। किया। मा० ७.१३० श्लोक १

चकि : पूकृ०। चकित होकर, दिग्भ्रान्त होकर, विस्मित होकर। 'तुलसी प्रभुमुख निरखि रही चकि।' कृ० १०

चकित : भूकृ०वि० (सं०—चक प्रतिघाते+क्त)। (१) विस्मित। 'गिरिजा चकित भईं सुनि बानी।' मा० १.१२४.६ (२) अनिश्चिय ग्रस्त, विमूढ। 'चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा।' मा० १.५३.१

चकें : आ०प्रब०। चकित होते हैं। 'मृगीं मृग चौंकि चकें चितवैं चितु दै।' कवि० २.२७

चकोट : सं०पुं०+स्त्री०। चिकोटी, नखाघात, पञ्जे का आघात। 'चंचल चपेट चोट चरन चकोट।' कवि० ६.४० (२) चपेटा-ध्वनि, थप्पड़ आदि की चटाक। 'चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।' कवि० ६.४७

चकोर : सं०पुं० (सं०)। पक्षि विशेष। मा० १.४७.७

चकोरक : चकोर। विन० २५.१

चकोरकुमारि : चकोर कुमारी। मा० २.३०३

चकोरकुमारी : चकोरी। मा० २.१४०.२

चकोरा : चकोर। मा० २.२०६.१

चकोरीं : चकोरी+ब०। चकोरियां। 'मानहुं चकोरीं चारु बैठीं निज नीड़।' कवि० १.१३

चकोरी : चकोर+स्त्री० (सं०)। मा० १.२३१.६

चकोरु, रू : चकोर+कए०। एकमात्र चकोर। 'मनु तव आनन चंद चकोरू।' मा० २.२६.४

चक्क : चक । चकवा पक्षी । 'चक्क चक्कि सम पुर नर नारी ।' मा० २.१८७.१

चक्कवइ : सं०पुं० (सं० चक्रपति>प्रा० चक्कवइ) । चक्रवर्ती राजा, सम्राट, राजाधिराज । 'ससुर चक्कवइ कोसलराऊ ।' मा० २.९८.३

चक्कवनि : चक्कवा=चकवा+संब० । चकवा पक्षियों, चक्रवाकों (को) । 'ज्यों चकोर चय चक्कवनि तुलसी चाँदनि राति ।' दो० १९४

चक्कवै : चक्कवइ । जा०मं०छं० १७

चक्कि : चक्क+स्त्री० । चकई पक्षिणी । मा० २.१८७.१

चक्र : सं०पुं० (सं०) । (१) चक्क । चकवा पक्षी । (२) (रथ का) पहिया । मा० ६.८७ छं० (३) मण्डल, समूह । 'नक्रचक्रा-कुला······तीव्र धारा ।' विन० ५९.८ (४) आयुधविशेष । 'कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पवारै ।' मा० ६.९१.६ (५) विष्णु का सुदर्शन चक्र । 'जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा ।' मा० ३.२.३ (६) राजमण्डल, राष्ट्रमण्डल—जिसका प्रयोग 'चक्रवर्ती' आदि में होता है । (७) शासनतन्त्र । 'सरलै दंडै चक्र ।' दो० ५३७

चक्रधर : सुदर्शन चक्र धारण करने वाले=विष्णु । विन० ६०.९

चक्रपानि, नी : (सं० चक्रपाणि) । विष्णु । कवि० ७.१७२

चक्रबर्ति, ती : सं०पुं० (सं० चक्रवर्तिन्) (१) सम्राट् । मा० १.१५९.४ (२) श्रेष्ठ, सर्वोपरि । 'भट-चक्रबर्ती ।' विन० २७.३

चक्रबाक : सं०पुं० (सं० चक्रवाक) । चकवा पक्षी । मा० ४.१७.४

चख : सं०पुं० (सं० चक्षन्, चक्षुण्>प्रा० चक्ख, चक्खु) । नेत्र । मा० २.२३.३

चटकन : सं०पुं० । चटकना, थप्पड़, चपेटा । 'बिकट चटकन चोट ।' कवि० ६.४६

चटाक : (सं० चटत्कार>प्रा० चटक्क) । ध्वनि विशेष जो मिट्टी के पात्र आदि के फूटते समय होती है । 'चपेट की चोट चटाक दै फोरौं ।' कवि० ६.१४

चढ़ : चढ़इ । चढ़ता है (था) । 'मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई ।' मा० ५.२६.१

√चढ़, चढ़इ : (प्रा०चडइ—आरोहरण करना, लेप आदि से चमकना, अभिमान करना, बलि हो जाना) आ०प्रए० । (१) आरोहण करता है । 'गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा ।' मा० १.७.९ (२) (लेप से) चमकता है । 'कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें ।' मा० २.२०५.५

चढ़त : वकृ०पुं० (प्रा० चडंत) । (१) आरोहण करते । 'चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनीं ।' मा० ६.२५.७ (२) भेंट किया जाता । 'तातें सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्री खंड ।' मा० ७.३७

चढ़ति : चढ़त+स्त्री० । आरोहण करती । 'लातहुं मारें चढ़ति सिर...धूरि ।' मा० २.२२९

चढ़हु : आ०मब० । चढ़ो, आरुढ होओ । 'तात चढ़हु रथ ।' मा० २.१८८.५

चढ़ा : भूकृ०पुं० (प्रा० चडिअ) । आरुढ हुआ । मा० ५.१९.८

चढ़ाइ, य : पूकृ० । (१) चढ़ा कर=आरुढ करा कर । 'रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु ।' मा० २.८१ (२) तान कर । 'चाप चढ़ाइ बान संधाना ।' मा० ६.१३.८

चढ़ाइन्हि : आ०—भूकृ०स्त्री०+प्रब० । उन्होंने चढ़ाईं, तानीं, संधान कीं । 'भाथीं बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं ।' मा० २.१९१.४

चढ़ाइहि : आ०भ०प्रए० । चढ़ाएगा=उपहार देगा । 'जो गंगा जलु आनि चढ़ाइहि ।' मा० ६.३.२

चढ़ाइहौं : आ०भ०उए० । चढ़ाऊँगा=चढ़ने दूंगा । 'नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ।' कवि० २.६

चढ़ाईं : भूकृ०स्त्री०ब० । आरुढ करायीं । 'कुअँरि चढ़ाईं पालकिन्ह ।' मा० १.३३८

चढ़ाई : (क) भूकृ०स्त्री० । आरुढ़ करायी । (ख) चढ़ाइ । चढ़ा कर । (१) भेंट करके । 'दूजेउँ निज सिर सुरन चढ़ाई ।' मा० ६.२५.२ (२) स्वीकृत करके । 'लीन्हि आप मैं सीस चढ़ाई ।' मा० ७.११२.१६ (३) आरुढ कराकर । 'लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई ।' मा० ४.४१५

चढ़ाउब : भकृ०पुं० । (१) चढ़ाना, संधान करना । 'रहउ चढ़ाउब तोरब भाई ।' मा० १.२५२.२ (२) चढ़ाना होगा (चढ़ाएँगे) । 'अजहुं अवसि रघुनंदन चाप चढ़ाउब ।' जा०मं० ७१

चढ़ाएँ : चढ़ाए हुए (आकार में), संधान किये हुए (मुद्रा में) । 'अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ ।' मा० ४.९.२

चढ़ाए : भूकृ०पुं०ब० । (१) भेंट किये । 'सादर सिव कहुं सीस चढ़ाए ।' मा० ६.९४.६ (२) आरुढ कराये । 'कबि बिनती रथ रामु चढ़ाए ।' मा० २.८३.१

चढ़ाय : चढाइ ।

चढ़ायो, यौ : भूकृ०पुं०कए० । (१) चढ़ाया=आरोहण कराया । 'तिहारोइ नामु गयंद चढ़ायो ।' कवि० ७.६० (२) प्रत्यञ्चायुक्त किया, ताना । 'चपरि चढ़ायौ चापु चंद्रमा ललाम को ।' कवि० १.९

चढ़ावत : वकृ०पुं० (प्रा० चडावंत) । चढ़ाता, चढ़ाते=संधान करते । 'लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें ।' गी० १.२६१.७

चढ़ावन : सं०पुं० (प्रा० चडावण) । चढ़ाना, संधान करना । 'चहृन चपरि सिव चाप चढ़ावन ।' गी० १.९०.५

चढ़ावनु : चढ़ावन+कए० । चढ़ाना । 'राम चहत सिव चापहि चपरि चढ़ावनु ।' जा०मं० ९८

चढ़ावहिं : आ०प्रब० (प्रा० चडावंति>अ० चडावहिं)। चढ़ाते-ती हैं। 'करि कुलरीति कलस थपि तेलु चढ़ावहिं।' जा०मं० ११५

चढ़ावा : भूकृ०पुं०। चढ़ाया। (१) उपहृत किया। 'करि पूजा नैवेध चढ़ावा।' मा० १.२०१.३ (२) संधान किया। 'काहुं न संकर चाप चढ़ावा।' मा० १ २५२.१

चढ़ावौं : आ०उए०(प्रा० चडावमु>अ० चडावउँ)। चढ़ाता हूँ, संधान कर सकता हूं, चढ़ा सकता हूं। 'कमल नाल जिमि चाप चढावौं।' मा० १.२५३.८

चढ़ि : पूकृ०। (१) आरूढ होकर। 'गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी।' मा० ५.३.१० (२) अभियान करके। 'रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई।' मा० ३.१९.१३

चढ़िहहिं : आ०भ०प्रब० (प्रा० चडिहिंति>अ० चडिहिहिं)। आरूढ होंगे-गी, तत्पर होंगी। 'तिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा।' मा० १.६७.६

चढ़ीं : भूकृ०स्त्री०ब०। आरूढ़ हुईं। मा० ६.१०९क

चढ़ी : भूकृ०स्त्री०। आरूढ हुई। मा० १.३०१.४

चढ़ु : आ०—आज्ञा—मए० (प्रा० चड>अ० चडु)। तू आरोहण कर। 'चढ़ु मम सायक सैल समेता।' मा० ६.६०.६

चढ़े : भूकृ०पुं०ब० (प्रा० चडिय)। (१) आरूढ हुए। 'देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना।' मा० १.२४६.८ (२) अभियान में तत्पर हुए। 'चपरि चढ़े संग्राम।' दो० ४२२ (३) चढ़इ। चढ़ता है। 'पाथ माथे चढ़े तृन।' बिन० ७२.४

चढ़ेउ : भूकृ०पुं० कए० (प्रा० चडिओ>अ० चडियउ)। (१) आरुढ़ हुआ। 'तेहि पर चढ़ेउ मदन मन माखा।' मा० १.८७.१ (२) प्रभाव डाला। 'तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ।' मा० १.६३.५

चढ़ै : चढ़उ। चढ़ सके। 'जो चित चढ़ै नाम महिमा अति।' बिन० ९६.३

चढ़ौ : चढ़हु। चढ़ो, आरूढ होओ। 'कुधर सहित चढ़ौ बिसिख बेगि पठवौं।' गी० ६.११.३

चढ़्यो : चढ़ेउ। 'परम बर्बर खर्ब गर्ब पर्बत चढ़्यो।' बिन० २०८.३

चतुर : वि० (सं०)। (१) कुशल, दक्ष, निपुण। 'उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।' मा० १.२१.८ (२) विवेकशील। 'चहू चतुर कहुं नाम अधारा।' मा० १.२२.७ (३) लोक, शासन, काव्य आदि से प्राप्त निपुणता (व्युत्पत्ति) से युक्त। 'कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ।' मा० १.१२.९ (४) सतर्क' गोपन कुशल। 'परम चुतुर न कहेउ निजनामा।' मा० १.१५८.८ (५) तत्पर। 'तेइ एहि ताल चतुर रखवारे।' मा० १.३८.१ (६) अब सरोचित कार्य करने वाला=प्रत्युत्पन्नमति 'जो बरु नाथ चतुर नृप मागा।' मा० १.१५०.४ (७) चालाक, गुप्त स्वार्थ-नीति वाला-वाली। 'चतुर गँभीर राम महतारी।' मा० २.१८.१

चतुरंग : वि०=चतुरंगिनी । 'सेन संग चतुरंग अपारा।' मा० १.१५४.३

चतुरंगिनी : सं०+वि० स्त्री० (सं० चतुरङ्गिणी) । चार अङ्गों—हस्ति, अश्व, रथ और पैदल—से युक्त सेना । मा० ३.३८.१०

चतुरता : सं० स्त्री० (सं०)=चतुराई । मा० १.१६३

चतुरदसि, सी : सं० स्त्री० (सं० चतुर्दशी) । पाख की चौदहवीं तिथि । गी० १.५.२

चतुरसम : सं० पुं० (सं० चतुःसम) । चार गन्ध द्रव्यों—कपूर, चन्दन, केसर और कस्तूरी—का मिश्रित पङ्क । अरगजा । 'बीथीं सींचीं चतुरसम ।' मा० १.२९६

चतुराई : सं० स्त्री० (सं० चतुरता>प्रा० चतुरया, चतुराया) । (१) चातुरी, निपुणता आदि (दे० चतुर) । 'चतुराई तुम्हारि मैं जानी ।' मा० १.४७.३ (२) चालाकी, धूर्तता । 'रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई ।' मा० ३.१९.१३

चतुरानन : सं०पुं० (सं०) । चार मुखों वाला=ब्रह्मा । मा० १.२०२.१

चतुर्भुज : सं०पुं० (सं०) । चार भुजाओं वाला=विष्णु । मा० ३.१०.१८

चनक : सं०पुं० (सं० चणक) । अन्न विशेष=चना । 'जानत हो चारि फल चारि ही चनक को ।' कवि० ७.७३

चना : चनक (सं० चणक>प्रा० चणअ) । कवि० ७ ९९

चनार : सं०पुं० कचनार वृक्ष । गी० २.४३.३

चपत : वकृ०पुं० (सं० चपत्—चप सान्त्वने) । शान्त या मन्द पड़ जाता । 'राम नाम महिमा की चरचा चले चपत ।' विन० १३०.३ (२) टाल जाता, ध्यान नहीं देता । 'निज करुना करतूति भगत पर, चपत चलत चरचाउ ।' विन० १००.९

चपरि : पूकृ० (१) चपल होकर (फुर्ती के साथ) । 'चपरि चलेउ हय ।' मा० १.१५६ (२) उत्साह करके (सोल्लास) । 'रोप्यो पाउ चपरि ।' कवि० ६.२३

चपल : वि० (सं०) । चञ्चल । मा० १.२०३

चपलता : सं०स्त्री० (सं०) । चञ्चलता (१) दैहिक अस्थिरता । (२) मानसिक अस्थिरता । 'साहस अनृत चपलता माया ।' मा० ६.१६.३

चपला : सं०स्त्री० (सं०) । बिजली । 'चपला चमकैं घन बीच ।' कवि० १.५

चपेट : चपेटा । (१) दबाव । 'चारिहूं चरन कें चपेट चापें चिपिटि गो ।' कवि० ४.१ (२) थप्पड़ । 'चपेट कीं चोट चटाक दै फोरौं ।' कवि० ६.१४

चपेटन्हि : चपेट+सं०ब० । थप्पड़ों (से) । 'मारहिं चपेटन्हि ।' मा० ६.८१ छं०

चपेटा : सं०स्त्री०+पुं० (सं० चपेट, चपेटा) । थप्पड़, तलप्रहार । 'प्रान लेहिं एक एक चपेटा ।' मा० ४.२४.१

चपेटे : सं०पुं०ब० । थप्पड़+दबाव । 'चपरि चपेटे देत नित केस गहें कर मीच ।' दो० २४८

चबाइ : पूकृ० । चबाकर । 'आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है ।' कवि० ७.९९

चबेना : सं०पुं० (सं० चर्व्यान्निक>प्रा० चव्वियन्नअ) । चना आदि चबाने योग्य अन्न । मा० २.३०.६

चमंकहिं : आ०प्रब० (सं० चमत्कुर्वन्ति>प्रा० चमक्कंति>स० चमक्कहिं) । चमचमाते हैं । मा० ६.८७.३

चमकत : वकृ०पुं० । चमकते । 'असि चमकत चोखे हैं ।' गी० १.९५.१

√**चमकाव, चमकावइ** : (सं० चमत्कारयति>प्रा० चमक्कावइ—चमकान्म, दीप्ति से चकचौंधना, प्रकाश फेंकना, मटकाना) आ०प्रए० । चमकाता है, चमकाती है=मटकाती है । 'न उनिया भौं चमकावइ हो ।' रा०न० ८

चमकैं : (१) चमंकहिं । चमचमाती हैं । (२) चमक+ब० । चमचमाहटें । 'चपला चमकैं घन बीच जगैं छबि ।' कवि० १.५

चमगादुर : सं०पुं० । एक जन्तु जिसे दिन में नहीं सूझता, जिसके पैर नहीं होते—चमड़े के पंख जैसे होते हैं और उन्हीं में काँटे होते हैं जिनके सहारे वृक्ष आदि में उलटा लटक जाया करता है; मुँह खरगोश के जैसा होता है; इसे पशु-पक्षी का मध्यस्थ माना जाता है । मा० ७.१२१.२७

चमर : सं०पुं० (सं०) । चवँर (मोरछल) । मा० २.२२९.२

चमू : सं०स्त्री०(सं०) । सेना । कवि० ६.२३

चय : सं०पुं० (सं०) । समूह । 'ज्यों चकोर चय चक्कवनि तुलसी चाँदनि राति ।' दो० १९४

चयन : चेन । चैन, आनन्द । 'भूसुर उर चले उमगि चयन ।' गी० १.५१.२

चयनरूप : आनन्दस्वरूप । 'करुना रस अयन चयन रूप भूप माई ।' गी० ७.३ १

चये : चय, चए । गी० १.४५.३

चर : (१) वि०(सं०) । जंगम, गतिशील (स्थावर का विलोम) । 'जे सजीव जग अचर चर ।' मा० १.८४ (२) सं०पुं० (सं०) । गुप्तचर, भेदिया, दूत । 'बोले चर बरजोरें हाथा ।' मा० २.२७०.७ (३) चल । चञ्चल । 'चलदल को सो पात करै चित चर को ।' गी० १.६९.३

√**चर, चरइ, ई** : (सं० चरति—चर गतिभक्षणयोः>प्रा० चरइ—आहार करना, चलना, आचरण करना) आ०प्रए० । खाता है । 'चरइ हरित तृन बलि पसु जैसें ।' मा० २.२२.२

चरग : सं०पुं० (सं० चरक>प्रा० चरग) । बाजपक्षी । 'चरग चंगु गत चातकहि नेम प्रेम की पीर ।' दो० ३०१

चरचा : सं०स्त्री० (सं० चरचा) । वार्ता, बातचीत का प्रसंग । पा०मं०छं० २
चरचाउ : चर्चा भी । 'चपत चलत चरचाउ ।' विन० १००.६
चरचित : भूकृ०वि० (सं० र्चाचत) । लिप्त, लेप किये हुए । 'स्याम सरीर सुचन्दन चरचित ।' गी० ७.१७ ६
चरची : भूकृ०स्त्री० । बात चलाई, बहाने से प्रसंग । चलाई । 'चरचा चरनि सों चरची जानमनि रघुराइ ।' गी० ७.२७.१
चरन : सं०पुं० (सं० चरण) । पैर । मा० १.२०७.३
चरननि, न्हि : चरन+संब० । चरणों । 'चरनन्हि लागी ।' मा० १.२११ छं०
चरनपीठ : सं०पुं० (सं० चरण पीठ=पाद पीठ) । (१) पीढ़ा, पैर रखने का आसन । मा० २.३१६.५ (२) पादुका, खड़ाऊँ । 'तुलसी प्रभु निज चरनपीठ मिस भरत प्रान रखवारो ।' गी० २.६७.४
चरना : चरन । मा० १.२.३
चरनांबुज : (सं० चरणाम्बुज) । कमलतुल्य कोमल—ललित चरण । मा० ६.१११ छं०
चरनि : (१) चलनि । चलने-फिरने की क्रिया । 'लसत कर प्रतिबिंब मनि आँगन घुटुरुवनि चरनि ।' गी १.२७.५ (२) चर+संब० । चरों, दूतों । 'चरचा चरनि सों चरची जानमनि रघुराइ ।' गी० ७.२७.१
चरफराहिं : आ०प्रब० । चञ्चल होकर फड़फड़ाते हैं, एक ही स्थान पर गति करते एवं तिलमिलाते हैं । 'चरफराहिं मग चलहिं न घोरे ।' मा० २ १४३.५
चरम : (१) सं०पुं० (सं० चर्म) । चमड़ा । 'चामर चरम बसन बहु भाँती ।' मा० २.६.३ (२) वि० (सं०) । अन्तिम । 'चरम देह द्विज कै मैं पाई ।' मा० ७.११०.३
चरवाहे : चरवाहे को, पशुपालक को । 'भजे बिनु बानर के चरवाहे ।' कवि० ७.५६
चरवाहो : सं०पुं०कए० । पशुओं को चराने वाला, पशुपालक । 'कहूं कोउ भो न चरवाहो कपि भालु को ।' कवि० ७.१७
चरहिं, हीं : आ०प्रब० । (१) बिचरते— घूमते हैं । 'बयरु बिहाइ चरहिं एक संगा ।' मा० २.२३६.४ (२) खाते हैं । 'नर अहार रजनीचर चरहीं ।' मा० २.६३.१ (३) आचरण करते हैं । 'चरहिं बिस्वप्रतिकूल ।' मा० १.२७७
चरहि : आ०मए० (सं० चर>प्रा० चरहि) । तू विचरण कर । 'दुइज द्वैत मति छाड़ि चरहि महिमंडल धीर ।' विन० २०३.३
चरहु, हू : आ०प्रब० (सं० चरत>प्रा० चरह>अ० चरहु) । विचरण करो । 'तात बिगत भय कानन चरहू ।' मा० २.३०८.५

चराचर : (१) वि० (सं० चराचर=चर+अचर)। स्थावर तथा जंगम। 'सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी।' मा० १.११६.२ (२) सं०पुं० (सं०)= चर। गतिशील, जंगम। 'सेवहिं सकल चराचर ताही।' मा० १.१३१.४

चरिअ, ऐ : आ०—कवा०—प्रए०। आचरण-विचरण कीजिए, रहिए। 'दुख सो सुख मानि सुखी चरिऐ।' मा० ६.१११ छं०

चरित : (१) सं०पुं० (सं०)। आचरण, व्यवहार, कार्यकलाप, जीवनचर्या, क्रिया चिति, कार्यपद्धति, शील-सम्पति, शास्त्रीय मर्यादा। (२) (सं० चारित्र>प्रा० चरित्त)। कर्त्तव्य, प्रकृति, व्यवहार आदि। मा० १.१२.२

चरिता : चरित। मा० १.१५.१

चरित्र : चरित्र (सं०)। आरचण, व्यवहार, लीला आदि। मा० १.२०५

चरिय, ये : चरिऐ।

चरू : सं०पुं० (सं० चरु)। (१) खीर, पायस जो दूध-चावल तथा घी के मिश्रण से बनता है। (२) पायस-पाय। 'प्रगटे आगिनि चरु कर लीन्हें।' मा० १.१८९.६

चरेरी : वि० स्त्री०। सूखी पत्तियों के समान 'चरचर' ध्वनि करने वाली, नीरस, सूखी-रूखी। 'यह बतकही चपल चेरी की निपट चरेरीऐ रही है।' कृ० ४२

चरैं : चरहिं। भक्षण करते हैं। 'मानो हरे तृन चारु चरैं।' कवि० ७.१४४

चरै : चरइ। भक्षण करे। 'तेइ तृन हरित चरै जब गाई।' मा० ७.११७ ११

चर्म : सं०पुं० (सं० चर्मन्) (१) चमड़ा, खाल। 'आनहु चर्म कहति बैदेही।' मा० ३.२७.५ (२) ढाल। 'बिरति चर्म संतोष कृपाना।' मा० ६.८०.७

चर्माम्बर : वि० (सं०)। चर्म-वस्त्र वाला। विन० ११.६

चर्मासि : (चर्म+असि) ढाल-तलवार। विन० ४४४

चल : (१) वि०। चञ्चल। 'अजामिल की चलिगै चल चूकी।' कवि० ७.८९ (२) चलइ। 'चल न ब्रह्म कुल सन बरिआई।' मा० १.१६५.५

√चल, चलइ : (सं० चलति>प्रा० चलइ—गति करना, प्रस्थान करना, विचलित होना, काँपना) आ०प्रए०। चलता-ती है। 'पद बिनु चलइ सुनइ बिनु काना।' मा० १.११८.५

चलउँ, ऊँ : आ०उए० (सं० चलामि>प्रा० चलमि>अ० चलउँ)। चलता हूं, चलूं। 'चलउँ भाजि तब पूप देखावहिं।' मा० ७.७७.१०

चलत : वकृ०पुं० (सं० चलत्>प्रा०चलंत)। चलता, चलते। मा० १.१२.२

चलति : चलत+स्त्री०। चलती। मा० २.१२३.५

चलते : चलत+ब०। चलते थे, चला करते। 'जे चलते बहु छत्र की छाहीं।' कवि० ७.१३२

चलतो : क्रियाति० पुं० एक० यदि चलता···तो । 'जौं हौं प्रभु आयसु लै चलतो ।' गी० ५.१३.१

चलदल : सं०पुं० (सं०) । चञ्चल पत्तों वाला=पीपल वृक्ष । गी० १.६६.३

चलन : सं०पुं० (सं०) । चलना । 'प्रान नाथ चाहत चलन ।' मा० २.१४६

चलनि, नी : सं०स्त्री० । चलने की क्रिया या रीति । 'राम बिलोकनि बोलनि चलनी ।' मा० ७.१६.४

चलनु : चलन+कए० । चलना । 'प्रान···चलनु चहेरी ।' गी० ५.४६.३

चलनो : चलनु । 'चलनो अब केतिक ।' कवि० २.११

चलब : भूकृ०पुं० । चलना (पड़ेगा) । 'चलब पयादेंहि बिनु पदत्राना ।' मा० २.६२.५ (२) चलना (होगी—चलेंगे) । 'जौं न चलब हम कहें तुम्हारें ।' मा० १.१६६.७

चलहिं, हीं : आ०प्रब० (सं० चलन्ति>प्रा० चलंति>अ० चलहिं) । चलते हैं । 'ठुमुक-ठुमुम प्रभु चलहिं पराई ।' मा० १.२०३.७ (२) विचलित होते या डिगते हैं । 'परम धीर नहिं चलहिं चलाए ।' मा० १.१४५.३

चलहिंगे : आ०भ०पुं०प्रब० । चलेंगे । 'बाहु जोरि कब अजिर चलहिंगे ।' गी० २.५५.४

चलहु : आ०मब० (सं० चलत>प्रा० चलह>अ० चलहु) । चलो । 'बेगि चलहु सुनि सचिब जोहारे ।' मा० २.१८८.४

चला : भूकृ०पुं० (सं० चलित>प्रा० चलिअ) । मा० १.१७१.६

चलाइ : पूकृ० (सं० चालयित्वा>प्रा० चलाविअ>अ० चलावि) । चला (कर) । 'दीन्हेहु कटकु चलाइ ।' मा० २.२०२

चलाइहि : आ०भ०प्रए० । (सं० चालयिष्यति>प्रा० चलाविहिइ) । चलाएगी । 'अरुंधती मिलि मैनहि बात चलाइहि ।' पा०मं० ७६

चलाई : (१) चलाइ । 'जल भाजन सब दिए चलाई ।' मा० २.३१०.१ (२) भूकृ० स्त्री० । चालित की, फेंकी । 'बान संग प्रभु फेरि चलाई ।' मा० ६.६१.४ (३) चालू की, आरम्भ कर दी, प्रचारित की । 'कायर कोटि कुचालि चलाई ।' कवि० ७.१३० (४) मुद्रा चालू की । 'नामु राम रावरो तौ चाम की चलाई है ।' कवि० ७.७४

चलाए : भूकृ०पुं०ब० (सं० चालित>प्रा० चलाविय) । मा० १.१४५.३

चलाकी : सं०स्त्री० । चालूपन, कुटिल चातुरी । 'ये अब लही चतुर चेरी पै चोखी चालि चलाकी ।' कृ० ४३ । संस्कृत में चलाक=प्रचलाक मोर या सर्प को कहते हैं अत: मोर के समान मधुर वाणी के साथ सर्पभक्षण का क्रूर व्यवहार; तथा सर्प के समान गुप्त-विषतुल्य आचरण 'चलाकी' है ।

चलायउ : भूकृ०पुं०कए० (सं० चालितः>प्रा० चलाविओ>अ० चलावियउ)। चालित किया। 'सचिवँ चलायउ तुरत रथु।' मा० २.८५

चलायहु : आ०—भ०+आज्ञा—मब०। तुम चलाना। 'जाहु हिमाचल गेह प्रसंग चलायहु।' पा०मं० ७८

चलाये : चलाए।

चलायो : चलायउ। 'अस कहि तरल त्रिसूल चलायो।' मा० ६.७४.६

चलावहिं : आ०प्रब० (सं० चालयन्ति>प्रा० चलावंति>अ० चलावहिं)। चलाते हैं। 'लंका सनमुख सिखर चलावहिं।' मा० ६.५.६

चलावा : भूकृ०पुं० (सं० चालित>प्रा० चलाविअ)। चलाया। मा० १.१५७.३

चलि : (१) पूकृ० (सं० चलित्वा>प्रा० चलिअ>अ० चलि)। चलकर। 'नहिं अचिरिजु जुग जुग चलि आई।' मा० २.१९५.१ (२) आ०—आज्ञा—मए० (सं० चल>प्रा० चल>अ० चलि)। तू चल। 'चलि री आली देखन।' कृ० २० (३) चली। 'चालि त्रिबिध बयारी।' मा० ६.११९.७

चलिअ चलिए : 'अवसि चलिअ बन रामु जहै।' मा० २.१८४ आ०—कवा०—प्रए० (सं० चल्यते>प्रा० चलीअइ)। चला जाय, चलना चाहिए। 'रहि चलिए सुंदर रघुनायक।' गी० २.३.१

चलिबे : भकृ०पुं० (सं० चलितव्य>प्रा० चलिअव्वय)। चलना। गी० २.३१.३

चलिय : चलिअ।

चलिहउँ : आ०भ०उए० (सं० चलिष्यामि>प्रा० चलिहिमि>अ० चलिहिउँ)। चलूंगा-गी। 'प्रात काल चलिहउँ प्रभु पाहीं।' मा० २.१८३.२

चलिहहिं : आ०भ०प्रब० (सं० चलिष्यन्ति>प्रा० चलिहिंति>अ० चलिहिहिं)। चलेंगे। 'किमि चलिहहिं मारग अगम।' मा० २.१२०

चलिहि : आ०भ०प्रए०। (सं० चलिष्यति>प्रा० चलिहिइ)। चलेगा। 'तुम्हरें चलत चलिहि सबु लोगू।' मा० २.१८८.६

चलिहैं : चलिहहिं। 'प्रानौ चलिहैं परमिति पाई।' कृ० २५

चलिहै : चलिहि। कवि० २.१८

चलिहौ : आ०—भ०मब० (सं० चलिष्यथ>प्रा० चलिहिह>अ० चलिहिहु)। चलोगे-गी। 'क्यों चलिहौ मृदु पद गज गामिनि।' गी० २.५.२

चलीं : भूकृ०स्त्री०ब०। मा० १.५२.४

चली : भूकृ०स्त्री०ए०। मा० १.३९.११

चलु : आ०—आज्ञा—मए०। तू चल। 'चलु देखिअ जाइ।' कवि० २.२३

चलें : चलने पर, चलने से। 'बात चलें बात को न मानिबो बिलगु।' कवि० ७.१९

चले : भूकृ०पुं०ब० । चल पड़े । मा० १.४८.६

चलेउँ : आ०भूकृ०पुं०+उए० । मैं चला । 'सिला देइ तहँ चलेउँ पराई ।' मा० ४.६.८

चलेउ, ऊ : भूकृ०पुं०कए० (सं० चलितः>प्रा० चलिओ>अ० चलियउ) । चला । 'चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधाना ।' मा० ४.२३.१२

चलेसि : आ०—भूकृ०पुं०+मए० । तू चला है । 'निर्भय चलेसि न जानेहि मोही ।' मा० ३.२६.११

चलेहुं : (१) चलने पर भी । 'चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें ।' मा० २.३१५.५ (२) छिड़ने पर भी । 'चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूं ।' मा० १.१२७.८

चलैं : चलहिं । चलते हैं । कवि० ६.७

चलै : (१) चलइ । चले, चल सके । 'चलै कि जल बिनु नाव ।' मा० ७.८९ ख (२) भकृ० । चलने । 'सकल चलै कर साजहिं साजू ।' मा० २.१८५.५

चलैगो : आ०भ०पुं०प्रए० । चलेगा । 'नाथ न चलैगो बलु ।' कवि० ५.८

चलो : (१) चल्यो । चला । 'हाट बाट हाटकु पिघिलि चलो ।' कवि० ५.२४ (२) चलहु । तुम चलो । 'अवलोकन तीरथराज चलो रे ।' कवि० ७.१४४

चलौं : चलउ । चलूँ । 'नाथ चलौं मैं साथ ।' मा० २.२६८

चलौ : चलहु । चलो । 'चलौ मराली चाल ।' दो० ३३३

चल्यो : चलेउ । चला । 'सनमुख चल्यो बजाइ ।' मा० ६.४६

चवँर : चँवर (सं० चमर>प्रा० चमर>अ० चवँर) । पा०मं० ८७

√चव चवइ : (सं० च्यवते>प्रा० चवइ—टपकाना, स्राव करना) आ०प्रए० । टपकाता है, टपकाए, चुवाए । 'बिधु बिष चवै स्रवै हिम अगी ।' मा० २.१६६.२

चवहिं, हीं : आ०प्रब० । (सं० च्यवन्ते>प्रा० चवंति>अ० चवहिं) । चुलाते हैं, गिराते हैं । 'लता बिटप मागें मधु चवहीं ।' मा० ७.२३.५

चवै : चवइ । बहाए, चुलाए । 'बंदु चवै बरु अनल कन ।' मा० २.४८

चह : चहइ । 'जो नहाइ चह एहिं सर भाई ।' मा० १.३९.८

√चह, चहइ, ई : (सं० स्पृहयति>प्रा० छिहइ—इच्छा या अपेक्षा करना, आशङ्कित या संभावित होना) आ०प्रए० । (१) इच्छा करता है । 'छल बल कीन्ह चहइ निज काजा ।' मा० १.१६०.६ (२) आशङ्कित या संभावित है । 'यह निसिचर दुकाल सम अहई । कपि कुल देस परन अब चहई ।' मा० ६.७०.३

चहउँ, ऊँ : आ०उए० । चाहता हूं । 'कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा ।' मा० ५.२२.६

चहत : वकृ०पुं०। चाहता, चाहते। 'चलन चहत अब कृपानिधाना।' मा० ३.३१.४

चहति : वकृ०स्त्री०। चाहती। मा० २.२८

चहतु : चहत+कए०। एक बार चाहता। 'ता को देखिए चहतु हौं।' कवि० १.१८

चहते : क्रियाति०पुं०ब०। यदि चाहते। 'जौं जप जाग जोग ब्रत बरजित केवल प्रेम न चहते।' विन० ९७.२

चहनि : सं०स्त्री०। चाहने की क्रिया (प्रेम)। 'तुलसी तजि उभय लोक राम चरन चहनि।' गी० १.८१.३

चहसि, सी : आ०मए०। तू चाहता है। 'महामंद मन सुख चहसि।' मा० ३.३६

चहहिं, हीं : (१) आ०प्रब०। चाहते हैं। 'रामु चहहिं संकट धनु तोरा।' मा० १.२६०.२ (२) आ०प्रब०। (हम) चाहते हैं। 'बिनु पंखन्हि हम चहहिं उड़ाना।' मा० १.७८.६

चहहु, हू : आ०मब०। चाहते-ती हो। 'केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू।' मा० १.७८.३

चहिअ, य : आ०कवा०प्रए०। चाहिए अभीष्ट है। 'चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी।' मा० १.२८२.४

चहिबो : भकृ०पुं०कए०। अपेक्षित होगा। 'उतरिबो उदधि, न बोहित चहिबो।' गी० ५ १४.२

चहियतु : वकृ०पुं०—कवा०—कए०। उचित होता। 'भरत की मातु को की ऐसो चहियतु है।' कवि० २.४

चहिहौं : आ०भ०उए०। चाहूंगा। 'तउ फल चारिन चहिहौं।' विन० २३१.२

चही : भूकृ०स्त्री०। चाही, अभीष्ट मानी। 'ह्वैइगी पै सोई जो बिधाता चित चही है।' गी० २.४१.२

चहुं : चारों। 'चहुं जुग चहुं श्रुति नाम प्रभाऊ।' मा० १.२२.८

चहु : चहुं। 'बाल चरित चहु बंधु के।' मा० १.४०

चहूं, चहू : चारोहीं। 'चितवति चकित चहूं दिसि सीता।' मा० १.२३२.१ 'चहु चतुर कहुं नाम अधारा।' मा० १.२२.७

चहे : भूकृ०पुं०ब०। इच्छा किये हुए। 'प्रान······चलनु चहे री।' मा० ५.४९ ३

चहैं : चहहिं। चाह करते हैं। 'जो जेहि समय मुनि मन महुं चहैं।' मा० १.३२३ छं० १

चहै : (१) चहइ। चाहता है, चाह करे। 'सब संपदा चहै सिवद्रोही।' मा० २.२६७.२ (२) चहसि। तू चाहता है, चाह करे। 'राम जपु जो भयो चहै सुपासी।' विन० २२.९

चहैगो : आ०—भ०पुं०—प्रए०। चाहेगा। 'तोहि बिनु मोहि कबहूं न कोऊ चहैगो।' विन० २५६.४

चहौं : चहउँ। 'न नाथ उतराई चहौं।' मा० २.१०० छं०

चहौंगो : आ०भ०पुं०उए०। चाहूंगा। 'काहू सों कछु न चहौंगो।' विन० १७२.२

चह्यो : भूकृ०पुं०कए०। चाहा। 'उतरु न देन चह्यो ह्वै।' गी० ४.२.३

चाँकी : चाकी। भूकृ०स्त्री०। चक्रित कर दी, मुद्रित की, घेर दी। (खलियान की राशि को गोबर के मण्डल के समान) सुरक्षित कर दी। 'तिलक देख सोभा जनु चाँकी।' मा० १.२१९.८

चाँचरि : सं०स्त्री० (सं० चर्चरी>प्रा० चच्चरी)। सामूहिक गीत विशेष, होली गीत। 'तुलसीदास चाँचरि मिस कहे राम गुनग्राम, गावहिं सुनहिं नारि नर।' गी० २.४७.२२

चाँद : चंद। 'चाँद सरग पर सोहत।' बर० १७

चाँदनि, नी : चंदिनि। ज्योत्स्ना। कवि० ७.१५८

चाँपि : पूकृ०। (१) दबाकर, संवाहन करके। 'चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी।' मा० २.१९८.३ (२) अधिकार में कर। 'सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू।' मा० १.२२६.८

चाँपी : भूकृ०स्त्री०। दबायी। 'कुबरीं दसन जीभ तब चाँपी।' मा० २.२०.२

चाउ, ऊ : सं०पुं०कए० (सं० चायः— चायृ पूजानिशामनयोः>प्रा० चाओ>अ० चाउ)। (१) चाह, स्नेहादर। 'राम चरन आश्रित चित चाऊ।' मा० २.२३५.८ (२) उत्साह। 'चमू को चाउ चाहि गो।' कवि० ६.२३

चाउर : सं०पुं० (सं० तन्दुल>प्रा०चाउल)। चावल। कवि० ६.२४

चाकर : सं०पुं० (फा०)। दास, किंकर। कवि० ७.९६.९७

चाकरी : सं०स्त्री०। चाकर का कार, दासता। कवि० ७.९७

चाका : सं०पुं० (सं० चक्र=चक्रक>प्रा० चक्क=चक्कअ) पहिया। 'सौरज धीरज तेहि रथ चाका।' मा० ६.८०.५

चाखा : (१) भूकृ०पुं०। आस्वादित किया। (२) चाखइ। आ०प्रए०। चखता है, भोगता है। 'जो जस करइ सो तस फलु चाखा।' मा० २.२१९.४

चाख्यो : भूकृ०पुं०कए०। चखा, स्वाद लिया। 'नाहिन रास रसिक रस चाख्यो, ता तें डेल सो डारो।' कृ० ३४

चाटत : वकृ०पुं०। चाटता, जीभ से लेता-खाता। 'चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों।' विन० २२६.३

चाटि : पूकृ०। जीभ से लुप्त कर। 'जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो।' कवि० ७.१७९

चाटियत : वकृ०—कवा०—पुं० । चट किया जाता-चाटे जाते । 'आपने चना चबाइ हाथ चाटियत है ।' कवि० ७.९९

चाड़ : सं०स्त्री० (सं० चाट>प्रा० चाड़) । हित, स्वार्थ । 'तोरें धनुषु चाड़ नहिं सरई ।' मा० १.२६६.४ ('चाट' का मूल अर्थ वञ्चक है और 'चाटु' प्रशंसा-पर्याय है । हिन्दी में अर्थ बदला है ।)

चातक : सं०पुं० (सं०) । पपीहा, पक्षिविशेष । मा० १.२२७.६

चातकही : चातक को । 'दादुर चातकही—हँसहिं ।' मा० १.९.२

चातकि : चातकी । मा० २.५२

चातकी : चातक+स्त्री० (सं०) । 'जनु चातकी पाइ जलु स्वाती ।' मा० २.२६३.६

चातकु : चातक+कए० । 'चातकु रटनि घटें घटि जाई ।' मा० २.२०५.४

चातुरी : (१) सं०स्त्री० (सं०) । निपुणता, कौशल । कृ० ४ (२) धूर्तता । 'चल न चातुरी मोरि ।' मा० ४.९

चाप : सं०पुं० (सं०) । धनुष । मा० १.१७

चापत : वकृ०पुं० (सं० चपत्>प्रा० चप्पंत) । दबाता, दबाते । 'चपत चरन लखनु उर लाएँ ।' मा० १.२२६.७

चापन : भकृ० अव्यय । चापने, दबाने । 'लगे चरन चापन दोऊ भाई ।' मा० १.२२६.३

चापमख : धनुर्यज्ञ (सीता-स्वयंवर) । मा० १.२२१

चापलता : सं०स्त्री० (सं० चपलता) । चञ्चलता । मा० २.३०४.१

चापा : चाप । 'रावन बान छुआ नहिं चापा ।' मा० १.२५६.३

चापि : पूकृ० । चाप कर, दबा कर । 'बोले बचन चरन चापि ब्रह्मंडु ।' मा० १.२५९

चापु, पू : चाप+कए० । एक मात्र धनुष । 'संकट चापु जहाजु ।' मा० १.२६१

चापें : चपने से, दबाने से । 'चारिहूं चरन के चपेट चापें चिपिटि गो ।' कवि० ४.१

चापौंगी : आ०भ०स्त्री०उए० । दबाऊँगी । 'थाके चरन कमल चापौंगी ।' गी० २.६.२

चाम : सं०पुं० (सं० चर्म>प्रा० चम्म) । चमड़ा । वैरा० ३७ (२) चमड़े (का सिक्का) । 'नाम नरेस प्रताप प्रबल जग, जुग-जुग चालत चाम को ।' विन० ९९.४

चामर : चँवर (सं०) । 'ब्यजन चार चामर सिर ढरहीं ।' मा० १.३५०.४ (चमर गाल सम्बन्धी व्यजन) ।

चामीकर : सं०पुं० (सं०)। सुवर्ण। 'रसना रचित रतन चामीकर।' गी० ७.१७.५

चामुंड़ा : सं०स्त्री० (सं०)। चण्ड.मुण्ड दैत्यों का संहार करने वाली=दुर्गा। मा० ६.८८.८

चाय : सं०पुं० (सं०—चायृ पूजानिशामनयो:)। आदर, स्नेह, ममता, लगाव। 'मान सनमान कै जेवांए चित चाय सो।' कवि० ५.२५ (२) उल्लास, उत्साह। 'सखी, भूखे प्यासे पै चलत चित चाय हैं।' गी० २.२८.२

चार : सं०पुं० (सं०)। (१) दूत=चर। 'चार चले ते रहूति।' मा० २.२७१ (२) सेवक। 'स्वामी सरबग्य सो चलै न चोरी चार की।' विन० ७१.४ (३) चाल गति। 'पदचार' गी० २.४१.३ (४) सद्गति। 'लोभी जसु चह चार गुमानी।' मा० ३.१७.१६ (५) आचरण करने वाला। 'जे अपकारी चार मा० ७.९८ ख

चारा : सं०पुं० (सं० चार=चर भक्षणे+घञ्)। पशु पक्षियों का भोज्य। 'चारा चाषु बाम दिसि लेई।' मा० १.३०३.२

चारि : संख्या (सं० चत्वारि>प्रा० चयारि)। चार मा० १.२

चारिउ : चारों ही। 'जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई।' मा० ७.७६.३

चारिक (चारि+इक)। चतुष्टय, एकीभूत चार का समूह। 'कनक बिंदु दुइ चारिक देखे।' मा० २.१९९.३

चारिखो : (दे० खो)। चार का। 'दूजो को कहैया औ सुनैया चख चारिखो।' कवि० १.१६

चारिदस : संख्या। चौदह। मा० २.१.२

चारिहुं : चारोंही। 'लगे भालु कपि चारिहुं द्वारा।' मा० ६.७८.३

चारिहु : चारिहुं। 'चारिहु बिधि तेहिं कहि समुझावा।' मा० ४.१९.२

चारी : (१) चारि। चार (संख्या)। 'करतल होहिं पदारथ चारी।' मा० १.३१५.२ (२) वि० (सं० चारिन्)। विचरण करने वाला या वाली। 'सुरसर सुभग बनज बन चारी।' मा० २.६०.५

चारु : वि० (सं०)। (१) पवित्र। 'चित्रकूट चित चारु।' मा० १.३१ (२) मनोहर 'पुरइनि सघन चारु चौपाई।' मा० २.३७.४

चारुतर : अतिशय चारु, अत्युत्तम। मा० ७.१४.छं ३

चारू : चारु। 'अमिअ मूरिमय चूरन चारू।' मा० १.१.२

चारों : चार्‌यो, चारिहुं। 'तुलसी फल चारों करतल।' विन० ३१.६

चारो : (१) चारों। 'जागत चारो जुग जाम सो।' विन०१५७.४ (२) सं०पुं०

(फा० चार:—सं० चार=गति) । उपाय, उपचार, दवा, मार्ग । 'कहा करम सों चारो ।' कृ० ३४

चार्‌यो : चारिउ । चारों । 'चिरू जिअहुं जोरीं चारु चार्‌यो ।' मा० १३७.छं० ४

चाल : चालि (सं०) । गति, छलना आदि । 'चेरी की चाल चलाकी ।' कवि० ७.१३४

चालक : वि० (सं०) । चलाने वाला, विचलित करने वाला, डिगाने वाला । 'पारवती मन सरिस अचल धनु चालक ।' जा०मं० ६३

चालत : वकृ०पुं० (सं० चालयत्>प्रा० चालंत) । चलाता, चलाते । 'नाम नरेस प्रताप प्रबल जग जुग-जुग चालत चाम को ।' विन० ६६.४

चालति : वकृ०स्त्री० । चलाती । 'चालति न भुजबल्ली ।' मा० १.३२७ छं०

चालहिं, हीं : आ०प्रब० (सं० चलयन्ति>प्रा० चालेंति>अ० चालहिं) । चलाते-ती हैं । 'घर की न चरचा चालहीं ।' गी० १.५.६

चालहि, ही : आ०मए० (सं० चालय>प्रा० चालहि) । तू चला । 'जनि बात दूसरि चालही ।' मा० २.५०.छं

चालि : सं०स्त्री० (सं० चाल) (१) गति । 'चाटिन बिलोकि मत्त गज लाजहिं ।' मा० १.३१८.४ (२) धूर्तता, कुटिल चाल । 'अब ये लही चतुर चेरी पै चोखी चालि चलाकी ।' कृ० ४३ (प्राकृत में 'चल्ली' एक प्रकार की नृत्यगति को कहते हैं जिसमें नर्तक नाचते-नाचते दर्शक को चकमा देकर घूम जाता है; इसी का उक्त अर्थ में लाक्षणिक प्रयोग है ।) (३) स्वभाव । 'नीति औ प्रतीति प्रीतिपाल चालि प्रभु ।' कवि ७.१२२

चाली : चालि । गति, आचरण । 'सीलु सनेहु सरिस, सम चाली ।' मा० २.२२२.२

चालु : (१) चाल+कए० । 'पीरे पट ओढ़े चले चारु चालु ।' गी० १.४२.२ (२) आ०—आज्ञा—मए० । तू चला, आरम्भ कर । 'चरचा न दूसरी चालु ।' विन० १६३.७

चाष : सं०पुं० (सं०) । नीलकण्ठ पक्षी । दो० ४६०

चाषु : चाष+कए० । एक नीलकण्ठ (कटनास) । 'चारा चाषु बाम दिसि लेई ।' मा० १.३०३.२

चाह : सं०स्त्री० (सं० चाया—चाय पूजानिशामनयो:) । इच्छा, अपेक्षा, खोज, आदर । 'करिहहिं चाह कुसल कवि मोरी ।' मा० २.१२.७ (२) प्रेम, स्नेह, आसक्ति, राग । 'निगम अगम साहेब सुगम राम साँचिली चाह ।' दो० ८० (३) समाचार, हालचाल, सन्देश । 'कोउ सखि नई चाह सुनि आई ।' कृ० ३२

चाहउँ : (दे० चाह) आ०ए० । चाहता-ती-हूं । 'चाहउँ तुम्हहि समान सुता' मा० १.१४९

चाहत : वकृ०पुं० । चाहता-ते । (१) इच्छा करता । 'बैठो सकुचि साधु भयो चाहत ।' कृ० ३ (२) स्नेह करते । 'जेहि चाहत नर नारि सब ।' मा० २.५२ (३) संभावित या आशङ्कित होता । 'सोचहिं, चाहत होन अकाजू ।' मा० २ २६५.१

चाहति : चाहत+स्त्री० । 'चरन कमल रज चाहति ।' मा० १.२१०

चाहन : भकृ० अव्यय । खोजने । 'फल चाहन चली ।' गी० ३.१७.१

चाहसि : आ०मए० । तू चाहता है । 'जौं चाहसि उजिआर ।' मा० १.२१

चाहहिं : आ० प्रब० । चाहते हैं । (१) इच्छा करते हैं । 'राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई ।' मा० १.१२८.१ (२) देखते हैं । 'मधुर मनोहर मूरति चाहहिं ।' जा० मं० २०

चाहहु : आ०मब० । चाहते या चाहती हो । 'चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा ।' मा० १.४७.४

चाहा : (१) चाह । 'हरिपद बिमुख परम गति चाहा ।' मा० १.२६७.४ (२) चाहइ । इच्छा करता है । 'जिमि पिपीलिका सागर थाहा । महा मंदमति पावन चाहा ।' मा० ३.१.६ (३) भूकृ०पुं० । इच्छा की । 'कथा आरंभ करै सोइ चाहा ।' मा० ७.६३.५ (४) देखा (सतृष्ण अवलोकन किया) । 'सीय चकित चित रामहि चाहा ।' मा० १.२४८.७

चाहि : (१) चाह । 'जाके मन ते उठि गई तिल-तिल तृस्ना चाहि ।' वैरा० २६ (२) पूकृ० । देखकर । 'लेहि दस सीस अब बीस चख चाहि रे ।' कवि० ५.१६ (३) तुलना में लेकर, अपेक्षाकृत । 'कुलिसहुं चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहुं चाहि ।' मा० ७.१९ ग

चाहिअ (य) : चाहिऐ । अभीष्ट है । 'चाहिअ सदासिवहि भरतारा ।' मा० १.७८.७

चाहिऐ, ये : आ०कवा०प्रए० । अभीष्ट है, अपेक्षित होता है । 'मुखिआ मुख सो चाहिए ।' मा० २.३१५

चाही : चाहि । (१) देखकर । 'अस मानस-मानस चखचाही । भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही ।' मा० १.३९.९ (२) तुलना में लेकर (अपेक्षाकृत) । 'मरनु नीक तेहि जीवन चाही ।' मा० २.२१.२

चाहु : आ० आज्ञा—मए० । तू चाह, देख । 'चारि परिहरें चारि को दानि चारि चख चाहु ।' दो० १५१

चाहें : देखने से, देखकर । 'चकोट चाहें, हहरानीं फौजैं महरानीं जातुधान की ।' कवि० ६.४०

चाहे : भूकृ०पुं०ब०। (१) अभीष्ट माने, अपेक्षित किये। 'दिए उचित जिन्ह जिन्ह तेइ चाहे।' मा० ७.५०.४ (२) चाहें। देखने पर। 'चाहे चकचौंधी लागै।' गी० २.२०.३

चाहैं : चाहहिं। 'बहुरो भरत कह्यो कछु चाहैं।' गी० २.७३.१

चाहै : चाहइ=चहइ। इच्छा करे। 'जौं आपन चाहै कल्याना।' मा० ५.३८.५

चाहौं : चाहउँ। 'कही चाहौं बात।' गी० १.७२.२

चिंचिनी : सं०स्त्री० (सं०)। इमली। विन० ३३.२

चिंत : चिंता। सारसँभाल। 'सो करउ अघारी चिंत हमारी।' मा० १.१८६ छं०

चिंतत : वकृ०पुं० (सं० चिन्तयत्>प्रा० चिंतंत)। स्मरण या ध्यान करते। 'सारद सेस संभु निसि बासर चिंतत रूप।' गी० १.१०८.१०

चिंतहिं : आ०प्रब० (सं० चिन्तयन्ति>प्रा० चिंतंति>अ० चिंतहिं)। ध्यान में लाते हैं। 'जेहि चिंतहिं परमारथबादी।' मा० १.१४४.४

चिंताँ : चिन्ता से। 'चिंताँ जर छाती।' मा० ४.१२.३

चिंता : सं०स्त्री० (सं०)। (१) सारसँभाल, रक्षाव्यवस्था (दे० चिंत)। (२) सोच, खुटका, मानसिक अस्थिरता। 'चिंता अमित जाइ नहिं बरनी।' मा० १.५८.१ (३) उधेड़ बुन, उलायन। 'गाधि तनय मन चिंता ब्यापी।' मा० १.२०६.५ (४) चिन्तइ। सोच-विचार कर रहा है। 'कहँ गए नृप किसोर मनु मनु चिंता।' मा० १.२३२.१ (५) ध्यान (व्यवस्था का भार)। 'चिंता गुरहि नृपहि घर बन की।' मा० २.३१५.१

चिंतामनि : सं०स्त्री० (सं० चिन्तामणि)। (१) स्वर्ग की एक मणि जिससे अभीष्ट वस्तु की तत्काल प्राप्ति बताई गयी है। (२) ध्यान रूपी मणि, मणितुल्य प्रकाशकारी ध्यान। 'रामचरित चिंतामनि चारु।' मा० १.३२.१

चिउरा : सं०पुं० (सं० चिपिट>प्रा० चिविड)। उबले या भुने धान कूटकर बनाया हुआ विशेष चबेना, पोहा। मा० १.३०५.६

चिकनाई : सं०स्त्री० (सं० चिक्कणता>प्रा० चिक्कणया)। स्निग्धता। 'जिमि खगपति जल कै चिकनाई।' मा० ७.८६.८

चिकने : वि०पुं०ब० (सं चिक्कण)। स्निग्ध। 'चिकने राम सनेहँ।' दो० ६१

चिकार, रा : सं०पुं० (सं० चीत्कार>प्रा० चिक्कार)। (१) चिंघाड़। 'तब धावा करि घोर चिकारा।' मा० ६.७६.६ (२) नादविशेष का समूह। 'गजरथ तुरग चिकार कठोर।' मा० ६.८७.४ (३) चीं-चीं ध्वनि। 'परेउँ भूमि करि घोर चिकारा।' मा० ४.२८.४

चिकुर : सं०पुं० (सं०)। केश। गी० ७.५.३

चिकुरावली : सं०स्त्री० (सं०)। केशकलाप। गी० १.२५.५

चिक्कन : वि० (सं० चिक्कण) । स्निग्ध । मा० १.१९९.१०
चिक्करत : वक्र०पुं० (सं० चीत्कुर्वत्>प्रा० चिक्करंत) । (१) चिघाड़ते । 'गज चिक्करत भाजहिं ।' मा० ६.७८ छं० (२) चीखतें, चीं-चीं ध्वनि करते ।' 'चिक्करत लागत बान ।' मा० ३.२०.१०

चिक्करहिं : आ०प्रब० (सं० चीत्कुर्वन्ति>प्रा० चिक्करंति>अ०चिक्करहिं) । चीत्कार करते हैं, चिघाड़ते हैं । 'चिक्करहिं दिग्गज ।' मा० १.२६१ छं० (२) चिखते हैं, चिचियाते हैं । 'चिक्करहिं मर्कट भालु । मा० ६.८१ छं० १

चिक्करहीं : चिक्करहिं । मा० ५.३५.१०
चिच्छक्ति : (चित्+शक्ति—सं०) । चैतन्य, जीव, पुरुष तत्त्व । विन० ५४.२
चित : (१) चित्त । मा० १.३ क (२) सं० स्त्री० (सं० चित्) । चैतन्य, आत्मा । 'सीतानाथ नाम नित चितहू को चितु है ।' विन० २५४.३

चितइ : (१) पूक्र० (सं० चित्रयित्वा>प्रा० चित्तविअ>प्रा० चित्तवि) । विस्मय पूर्वक देखकर, ताक कर । 'प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि ।' मा० १.२५८ (२) चितई । । देखी । 'तुलसी प्रभु सुग्रीव की चितइ न कछू कुचालि ।' दो० १५७

चितइए, ये : आ०कवा०प्रए० (सं० चित्र्यते>प्रा० चित्तवीअइ) । देखिए । 'जो चितवनि सौंधी लगै, चितइये सबेरे ।' विन० २७३.३
चितइहौ : आ०भ०मब० (सं० चित्रयिष्यथ>प्रा० चित्तइहि>अ० चित्तइहिहु) । देखोगी । 'तुम अति हित चितइहौ नाथ तनू ।' गी० ५.५१.६
चितई : भूक्र०स्त्री०<सं० चित्रिता>प्रा० चित्रविआ) । देखी । 'चितइ सीय कृपायतन ।' मा० १.२६०

चितए : भूक्र०पुं०ब० । देखे । 'जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ।' मा० २.२१७.१
चितग्रंथि : सं०स्त्री० । चित्त की गाँठ, मनोग्रन्थि, कुण्ठा (जो मन की असामान्य निम्न अवस्था है); अनाचार की ओर ले जाने वाली मनोवृत्ति (जिसे मानस शास्त्र तथा दर्शन में गर्हित माना गया है) । 'भ्रमित पुनि समुझि चितग्रंथि अभिमान की ।' विन० २०९.४

चितवृत्ति : सं०स्त्री० (सं० चित्तवृत्ति) । अन्तःकरण के व्यापार—(१) मनोव्यापार=संकल्प-विकल्प, मनोवेग; (२) अहंकार-वृत्ति=बोध के साथ 'अहं' का केन्द्रीभूति प्रत्यय; (३) बुद्धि=निश्चयात्मक बोध व्यापार । विषयों के प्रति चित्त की प्रतिक्रियाओं का समवायात्मक व्यापार । विन० ५९.३ बिबिध चितवृत्ति खग निकर श्येनोलूक काक बक गृध्र आमिष अहारी । वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाः आक्लिष्टा । प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृतयः । योग १.५—६

('चित्त' उक्त तीनों—मन, अहंकार और बुद्धि की समदशा है जिसकी विषमता तीन व्यापारों में प्रकट होती है।)

चितभंग : सं०पुं० (सं० चित्तभङ्ग)। (१) चित्त की टूटन, समूचे अन्त:करण—मन अहंकार और बुद्धि—की शक्तियों का भङ्ग=उत्साह की पूर्ण हानि+(2) वदरिकाश्रम के मार्ग की एक पर्वतमाला जो यात्रियों का उत्साह भङ्ग करती है (चित्त को तोड़ देती है)। 'मान मनभंग, चितभंग मद, क्रोधलोभादि पर्वत दुर्ग।' विन० ६०.६

चितयउँ : आ०भूकृ०पुं०+उए०। मैंने देखा।' चितयउँ आँखि उघारि।' मा० ७.७९ क

चितयउ : भूकृ०पुं०कए०। देखा। 'नृपु चितयउ आँखि उघारि।' मा० २.१५४

√**चितव, चितवइ :** (सं० चित्रयति>प्रा० चित्तवइ—विस्मय आदि से देखना, ताकना) आ० प्रए०। साश्चर्य देखता है या देखती है। 'चकित चितव मुदरी पहिचानी।' मा० ५.१३.२

चितवत : वकृ०पुं० (सं० चित्रयत्>प्रा० चित्तवंत)। (१) देखता, देखते। 'चितवत चकित धनुष मखसाला।' मा० १.२६८.६ (२) देखते ही। 'चितवत कामु भयउ जरि छारा।' मा० १.८७.६

चितवति : चितवत+स्त्री०। देखती। 'चितवति चकित चहूँ दिसि सीता।' मा० १.२३२ १

चितवनि : सं०स्त्री० (सं० चित्रण>प्रा० चित्तवण)। ताकने या देखने की क्रिया जिसमें विस्मय का चित्र रंग हो। 'चितवनि चारु मार मनु हरनी।' मा० १.२४३.३

चितवनियाँ : चितवनि+ब०। चितवनें। गी० १.३४.५

चितवनिहारा : वि०पुं०। देखने वाला, ताकने वाला (दृष्टि डालने वाला)। 'को प्रभुसँग मोहि चितवनिहारा।' मा० २.६७.७

चितवहिं : आ०प्रब० (सं० चित्रयन्ति>प्रा० चित्तवंति>अ० चित्तवहिं) देखते-ती-हैं। 'जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना।' मा० १.५४.६

चितवा : भूकृ०पुं०। ताका, साश्चर्य निहारा। 'फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा।' मा० १.५४.५

चितवैं : चितवहिं। ताकते हैं। 'मृग चौंकि चकैं चितवैं चितु दै।' कवि० २.२७

चितहि : चित्त को। 'चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं।' मा० १.२१९.७

चिता : सं०स्त्री० (सं०)। शवदाह की काष्ठ रचना विशेष। मा० २.१७०.४

चितु : चित+कए०। अन्त:करण। 'रघुपति पद सरोज चितु राचा।' मा० १.२५९.४

चितरें : सं०पुं० कर्तृकारक (सं० चित्रकरेण>प्रा० चित्तयरेण>अ० चित्तयरें)। चित्रकार द्वारा। 'चित्रित जनु रतिनाथ चितेरें।' मा० १.२१३.५

चितेरे : (१) सं०पुं०ब० (सं० चित्रकराः>प्रा० चित्तयरा)। चित्रकार। (२) वि०पुं०ब० (सं० चित्रीकृता>प्रा० चित्तयरिया)। चित्रित, चित्र में उरेहे हुए। 'रहे नर नारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं।' कवि० २.१४

चितेरो : सं०+वि०पुं०कए० (सं० चित्रकरः>प्रा० चित्तयरो)। चित्रकार। 'पिय चरित सिय चित चितेरो लिखत नित हित भीति।' गी० ७.३५.४

चितै : (१) चितइ। देखकर। 'सैल सिखर चढ़ि चितै चकित चित अति हित बचन कह्यो बल भैया।' कृ० १९ (२) आ०-आज्ञा-मए०। तू देख। 'प्रात काल रघुबीर बदन छबि चितै चतुर चित मेरे।' गी० ७.१२.१

चितैहैं : आ०भ०प्रब०। देखेंगे। 'बार-बार प्रभु तुम्हहि चितैहैं।' गी० ५.५१.६

चितैहौं : आ०भ०उए०। देखूंगा। 'भूलि न रावरी ओर चितैहौं।' कवि० ७.१०२

चितैहौ : आ०भ०मब०। देखोगे। 'रघुबीर मोहू चितैहौ।' विन० २७०.१

चितौ : आ० आज्ञा-मए०। तू देख। 'नेकु सुमुखि चितलाइ चितौ री।' गी० १.७७.१

चित्त : सं०पुं० (सं०)। अन्तःकरण=संकल्पात्मक मन, अभिमानात्मक अहंकार और निश्चयात्मक बुद्धि का समवेत सम स्वरूप। शैवदर्शन में चित्त प्रकृति पर्याय है जो उक्त तीनों की साम्यावस्था है—तीनों अन्तःकरण चित्त में एकीभूत रहते हैं; विषय की प्रतिक्रिया के रूप में तीन व्यापार हो चलते हैं जो मन, अहम् और बुद्धि कहलाते हैं जो क्रमशः राजस, तामस तथा सात्त्विक हैं। 'अहंकार सिव, बुद्धि अज, मन ससि, चित्त महान्।' मा० ६.१५ क

चित्तनि : चित्त+सं०ब०। चित्तों (में)। हनु० ४

चित्र : (१) सं०पुं० (सं०)। आलेख्य। मा० १.२६० (२) आश्चर्य, विस्मयपूर्ण दृश्य। 'खगमृग चित्र बिलोकत बिच-बिच।' गी० १.५५.५ (३) वि०। चित्रपर्ण, विविध रंगों से युक्त। 'चित्र चारु चौकें रचीं।' गी० १.६.७

चित्रकूट : सं०पुं० (सं०)। विविध रंगों से युक्त विस्मयजनक शिखरों वाला= पर्वत विशेष। मा० १.३१

चित्रकेतु : एक निशाचर का नाम। मा० १.७९.२

चित्रलिखित : चित्र में बनाया हुआ। 'चित्रलिखित कपि देखि डेराती।' मा० २.६०.४

चित्रसार : चित्रसाला। कवि २.१४

चित्रसाला : सं०स्त्री० (सं० चित्रशाला)। वह शाला जिसमें चित्र बने हों। मा० ७.२७

चित्रित : भूकृ०वि० (सं०) । चित्र किया हुआ । 'चित्रित जनु । रतिनाथ चितेरें ।' मा० १.२१३.५

चिदबिलास : सं०पुं० (सं० चिद्विलास) । चैतन्य का विलास, आत्मतत्त्व का प्रसार । परमात्मा का प्रपञ्च रूप में लीला विस्तार । विन० १२४.५

चिदानंद : (चित्+आनन्द) । चैतन्य तथा आनन्द । 'चिदानंद सुखधाम सिव ।' मा० १.७५

चिदानंदमय : चैतन्य तथा आनन्द गुणों से परिपूर्ण । मा० २.१२७.५

चिदानंदु : चिदानंद+कए० । चैतन्य तथा आनन्द कल्याण गुणों वाला=ब्रह्म । 'चिदानंदु निरगुन गुनरासी ।' मा० १.३४१.६

चिनमय : वि० (सं० चिन्मय) । चैतन्यस्वरूप, चैतन्यपूर्ण । 'राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी ।' मा० १.१२०.६

चिन्तक : वि०पुं० (सं०) । ध्यान करने वाला । मा० ७ श्लो० १

चिन्ह : सं०पुं० (सं० चिह्न>प्रा० चिण्ह) पहचान, लक्षण । 'द्विज चिन्ह जनेउ ।' मा० ७.१०१.७

चिन्हारी : सं०स्त्री० (सं० चिह्नकारिः>प्रा० चिण्हारी) । परिचयक्रिया । 'असमय जानि न कीन्हे चिन्हारी ।' मा० १.५०.२

चिपिटि : पूकृ० । चिपटा हो (कर) । 'चारिइ चरन के चपेट चापें चिपिटि गो ।' कवि० ४.१

चिबुक : सं०पुं० (सं०) । ठोड़ी, ठुड्डी । मा० १.१४७.१

चिया : सं०स्त्री० । फली (इमली आदि की) । विन० ३३.२

चिर : अव्यय (सं०) । बहुत समय, सदा । 'सकल तनय चिर जीवहुं ।' मा० १.१९६

चिरजीबी : वि०पुं० (सं० चिरजीविन्) । दीर्घायुष्म । मा० २.२८६.७

चिराना : भूकृ०पुं० (सं० चिरायित>प्रा० चिराण) । अधिक समय ठहरा हुआ । 'सुखद सीत रुचि चारु चिराना ।' मा० १.३६.९

✓**चिराव, चिरावइ** : (सं० चिरायति—चिरि हिंसायाम्+प्रेरणा>प्रा० चिरावइ—चीरा लगवाना, शल्यक्रिया करवाना) आ० प्रए० । चीरा लगवाता-ती-है । 'मातु चिराव कठिन की नाईं ।' मा० ७.७४.८

चिरु : क्रि०वि० (सं० चिरम्>प्रा० चिरं>अ० चिरु) । सदैव, बहुत समय तक । 'चिरु जीवहुं सुत चारि ।' मा० १.२९५

चीखा : भूकृ०पुं० (प्रा० चक्खिअ) । चखा, स्वाद लिया । 'डारि सुधा विषु चाहत चीखा ।' मा० २.४७.३

चीठी : सं०स्त्री० । चिट्ठी, पत्र । 'राम लखन उर कर बर चीठी ।' मा० १.२९०.५

चीठे : सं०पुं०ब० । चिट्ठे, परवाने, आदेशपत्र, (उच्चपद के) नियुक्ति पत्र । 'नाम की लाज राम करुनाकर केहि न दिए कर चीठे ।' विन० १६९.३

चीत, ता : चित्त । 'जा को हरि बिनु कतहुं न चीता ।' वैरा० १४

चीन्हा : (१) चिन्ह । लक्षण, प्रतीक । 'मन कपटी तन सज्जन चीन्हा ।' मा० १.७९.४ (२) भूकृ०पुं० । पहचाना, चिन्हों से जाना । 'नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा ।' मा० १.२८२.२

चीन्ही : पूकृ० । पहचान कर । 'हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही ।' मा० ४.२.७

चीन्हें : पहचान लेने पर । 'कर्म कि होहिं स्वरूपहि चीन्हें ।' 'मा० ७.११२.३

चीन्हे : भूकृ०पुं०ब० । पहचाने, लक्षित किये । 'तिन्ह कहं कहिअ नाथ किमि चीन्हे ।' मा० १.२९२.३

चीन्हो : चीन्ह्यो । (१) पहचाना, लक्षित किया । 'चीन्हो री सुभाय तेरो ।' कृ० १५ (२) पहचान में आया हुआ । 'चीन्हो चोर जिय मारिहै ।' विन० २६६.४

चीन्ह्यो : भूकृ०पुं० कए० । पहचाना, जाना । 'तैं तउ न चीन्ह्यो । कवि ६.१८

चीर : सं०पुं० (सं०) (१) वस्त्र । मा० १.२९२ (२) वस्त्रखण्ड । 'पहिरे बलकल चीर ।' मा० २.१६५

चीरा : चीर । मा० १.१०६.६

चीरि : पूकृ० । चीरकर, फाड़कर । 'चीरि कोरि पचि रचे सरोजा ।' मा० १.२८८.४

चीरी : सं०स्त्री० (सं० चीरि, चीरिका=झींगुर) । पतिंगा । 'चीरी को मरनु खेल बालकन को सो है ।' हनु० २९ (बच्चे पतिंगे को तागे में बांध कर खेलते हैं ।)

चुंबत : वकृ०पुं० (सं० चुम्बत्>प्रा० चुंबंत) । चूमता, चूमते । 'धवल धाम ऊपर नभ चुंबत ।' मा० ७.२७.७

चुंबति : चुंबत+स्त्री० । चूमती । 'मुख चुंबति माता ।' मा० २.५२.३

चुआ : चौपाया (?) । चारु चुआ चहुं ओर चलैं ।' कवि० ७.१४३

✓**चुक, चुकइ** : (सं० च्युत्करोति>प्रा० चुक्कइ—चूकना, हुचना, लक्ष्य का असफल रह जाना) आ०प्रए० । चूकता-ती-है । 'चुकइ न घात मार मुठभेरी ।' मा० २.१३३.४

चुकाहीं : आ०प्रब० । चूकते हैं, अवसर खोते हैं । 'तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं ।' मा० २.४२.४

चुकें : समाप्त होने पर, चूक जाने पर, खोदने के बाद। 'समय चुकें पुनि का पछितानें।' मा० १.२६१.३

चुके : चुकें। 'चुके अवसर मनहुं सुजनहि सुजन सनमुख होइ।' गी० ५.५.४

चुकै : चुकइ। चूक जाय। 'अवसर कौड़ी जो चुकै, बहुरि दिएं का लाख।' दो० ३४४

चुचाते : वकृ०पुं०ब०। अतिशय स्राव करते, धारा बहाते। 'झूमत द्वार अनेक मतंग जंजीर जरे मद अंबु चुचाते।' कवि० ७.४४

चुचुकारि : पूकृ०। चू-चू ध्वनि करके। (१) बालक को दुलराने की ध्वनि। गी० १.११.२ (२) पशु को रोकने की ध्वनि। 'उतरि-उतरि चुचुकारि तुरंगनि सादर जाइ जोहारे।' गी० १.४६.१

चुचुकारे : भूकृ०पुं०ब०। मुख ध्वनि विशेष से दुलराए हुए। गी० २.८७.२

चुटकी : सं०स्त्री०। अंगुलियों से की हुई ध्वनि विशेष—चुटचुटाहट। 'किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि।' गी० १.३२.५

√चुन, चुनइ : (सं० चिनोति>प्रा० चुणइ—बीनना, चयन करना या चुगना) आ०प्रए०। चुनता-ती है। 'मुकुताहल गुनगन चुनइ।' मा० २.१२८

चुनि : पूकृ०। चुनकर, चयन करके। मा० ३.१.३

चुनिन : चुनी+संब०। चुनियों, जड़ाव की मूल्यवान् कणिकाओं। 'कनक चुनिन सों लसित नहरनी लिए कर हो।' रा०न० १० (सं० 'चूर्णि' मूलत: चूर्ण-पर्याय है। परन्तु उससे निष्पन्न 'चुन्नी' या 'चुनी' सोने-चाँदी आदि के उन दोनों का अर्थ आता है जो जड़े जाते हैं। उन दोनों से युक्त गोटे को भी 'चुनी' कहा जाता है।)

चुनौती : सं०स्त्री० (सं० चय+पत्री>प्रा० चुणवत्ती)—लड़ाई के लिए चयन करने की चिट्ठी, ललकार, आह्वान। 'ताके कर रावन कहुं मनहुं चुनौती दीन्हि।' मा० ३.१७

चुप : (१) वि० (सं० चुप—चुप मन्दायां गतौ)। मौन, वाचंयम। 'चुपहिं रहे रघुनाथ सकोची।' मा० २.२७०.३ (२) सं०स्त्री०। चुप्पी। 'देखि दसा चुप सारद साधी।' मा० २.३०७.२

चुपकि : पूकृ०। चुप्पी साध कर, मौन होकर। 'चुपकि न रहत, कह्यो कछु चाहत।' कृ० ११

चुपचाप : वि०+क्रि०वि० (सं० चुप मन्दायां गतौ+चप सान्त्वने)। मौन शान्त। सब चुपचाप चले मग जाहीं।' मा० २.३२२.२

चुपरि : पूकृ० । चुपड़कर । (१) घी आदि से स्निग्ध करके । 'रोटी चिकनी चुपरि कै तू दे री मैया ।' कृ० २ (२) तेल लगाकर । 'चुपरि उबटि अन्हवाइ कै ।' गी० १.१०.१

√चुव चुवइ : (सं० श्चोतते>प्रा०चुअइ—चूना, टपकना, स्राव करना) आ०प्रए० । चूता है, टपकती है । 'बोलत बोल समृद्धि चुवै ।' कवि० ७.१८०

चुवत : वकृ०पुं० । चूता, चूते । 'जलकन चुवत लोचन चारु ।' कृ० १४

चुवन : भूकृ० अव्यय । चूने, टपकने । 'लागे लोचन चुवन ।' गी० ५.४८.२

चुवाइ : पूकृ० (सं० श्चोतयित्वा>प्रा० चुआइअ>अ० चुआइ) । रस टपकाकर । 'सुचि बचन कहैं चुवाइ ।' कवि० ७.११९

चूक : सं०स्त्री० । (१) भूल । 'छमिअ देबि बड़ि चूक हमारी ।' मा० २.१६.८ (२) दोष, अपराध । 'रहति न प्रभु चित चूक किए की ।' मा० १.२९.५

चूका : भूकृ०पुं० (सं० चुत्कृत>प्रा० चुक्कअ) । चूक गया, खो बैठा । 'अहह मंद मैं अवसर चूका ।' मा० २.१४४.६

चूकिबो : भकृ०पुं०कए० । चूकना, खो देना । 'औसर को चूकिबो सरिस न हानि ।' गी० ५.७.२

चूकी : चूक । 'अजामिलकी चलिगै चल चूकी ।' कवि० ७.८९

चूको : भूकृ०पुं०कए० । चूक गया । 'कलिकाल कराल न चूको ।' कवि० ७.९०

चूडाकरन : सं०पुं० (सं० चूडाकरण) । चौलकर्म, बालक का मुण्डन संस्कार । मा० १.२०३.३

चूड़ामनि : सं० स्त्री० । (१) शिरोभूषण विशेष । मा० ५.२७.२ (२) शिरोमणि =श्रेष्ठ । 'उदार-चूड़ामनि ।' विन० १८५.६

चूनरी : सं०स्त्री० । नव बधू का परिधान विशेष । गी० १.१०५.३

चूमि : पूकृ० (सं० चुम्बित्वा>प्रा० चुंबिअ>अ० चुंबि) । चूमकर, चुम्बन लेकर । गी० १.११.२

चूरन : सं०पुं० (सं० चूर्ण) । (१) धूलि । विन० ३१.४ (२) धूलि बनाया हुआ औषध । 'अमिअ मूरिमय चूरन चारू ।' मा० १.१.२

चेटक : सं०पुं० (सं०) । (१) दास, कर्मचारी (२) जार, उपपति (३) बाजीगर । 'नटुज्यों जनि पेट कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो ।' कवि० ७.८६ (चेटक कौतुक=इन्द्रजाल)

चेटकी : सं०स्त्री० । चेटक कौतुक । इन्द्रजाल । कवि० ७.९६

चेटुवा : सं०पुं० । अण्डे से निकला नवजात शिशु । 'अंड फोरि कियो चेटुवा ।' दो० ३०३

चेत : सं०पुं० (सं० चेतस्) । संज्ञा, बोध, होश (स्मरण) । 'भ्रम बस रहा न चेत ।' मा० १.१७२

चेतन : वि० (सं०) । चेतनायुक्त । 'जे जड़ चेतन जीव जहाना ।' मा० १.३.४

चेतनहिं : चेतन में । 'जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई ।' मा० ७.११७.६

चेता : (१) चेत । 'पठवन चले भगत कृत चेता ।' मा० ७.१९.१ (२) भूकृ०पुं० । सोचा हुआ, चाहा हुआ । 'होइ चित चेता ।' मा० २.११.५

चेति : पूकृ० । चेत कर, चेतना में आकर । 'अब चित चेति चित्रकूटहि चलु ।' विन० २४.१

चेतु, तू : (१) चेत+कए० । 'रहत न आरत के चित चेतू ।' मा० २.२६९.४ (२) आ०—आज्ञा—मए० । तू चेत, होश कर, स्मरण कर । 'चित्रकूट को चरित्र चेतु चित्त करि सो ।' विन० २६४.५

चेते : भूकृ०पुं०ब० (सं० चेतित) । चेतना में आये । ध्यानयुक्त हुए । 'हौं अब लौं करतूति तिहारिय चितवत हुतो, न रावरे चेते ।' विन० २४१.५ (२) सावधान हुए । 'सेवहि ते जे अपनपौ चेते ।' विन० १२६.२

चेन : चैन । आमोद-प्रमोद, सुख । 'सुभटन्ह के मन चेन ।' मा० ६.८७

चेरा : सं०पुं० (सं० चेटक>प्रा० चेडअ) । दास । मा० २.१३१.८

चेराई : सं०पुं० । दासता, सेवा भाव । 'जौ पै चेराई राम की करतो न लजातो ।' विन० १५१.१

चेरि : चेरी । मा० २.१३.८

चेरी : सं०स्त्री० (सं० चेटी>प्रा० चेडी) । दासी । मा० २.२२.५

चेरे : चेरा का रूपान्तर (ब०) । दास । मा० १.१८.४

चेरो : चेरा+कए० । दास । 'चेरो रामराय को ।' कवि० ७.१६६

चैत : सं०पुं० (सं० चैत्र>प्रा० चइत्त) । मासविशेष जिसकी पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र रहता है । गी० १.२.२

चैतन्य : सं०पुं० (सं०) । चेतना, संज्ञा । 'जड़हि करइ चैतन्य ।' मा० ७.११९ख

चैन : सं०स्त्री० (सं० चेतना>प्रा० चेअणा) । सुख, आनन्द, हर्षोल्लास । 'मनु बूड़न लग्यो सहित चित चैन ।' गी० ५.२१.२

चैल : सं०पुं० (सं०) । वस्त्र । 'चैल चारु भूषन पहिराईं ।' मा० १.३५३.४

चोंच : सं०स्त्री० (सं० चञ्चु) । टोंट । मा० ३.१.७

चोंचन्ह : चोंच+संब० । चोंचों (से) । 'चोंचन्ह मारि बिदारेसि देही ।' मा० ३.२९.२०

चोंथे : भूकृ०पुं० (सं० चुण्टित>प्रा० चुंटिय) नोचे हुए (नोच डालने पर) । 'आयो सरन सुखद पद पंकज चोंथे रावन बाज के ।' गी० ५.२९.३

चोखा : वि०पुं० (सं० चोक्ष>प्रा० चोक्ख) । उत्तम, विचित्र, मनोहर, दक्ष । 'चला बिमान तहाँ तें चोखा ।' मा० ६.१२०.४

चोखी : वि०स्त्री० (सं० चोक्षा>प्रा० चोक्खी) । उत्तम, विलक्षण । 'ये अब लही चतुर चेरी पै चोखी चालि चलाकी ।' कृ० ४३

चोखें : चोखे···से । 'लेखें जोखें चोखें चित··· ।' कवि० ७.२४

चोखे : चोखा+ब० । (१) दक्ष, उत्तम, विलक्षण । 'असि चमकत चोखे हैं ।' गी० १.६५.१ (२) तीखे, नुकीले । 'बिसिख काल दखननि तें चोखे ।' गी० ५.१२.१

चोट : सं०स्त्री० (सं० चुट छेदने) । आघात । 'चपेट कीं चोट चटाक दै फोरौं ।' कवि० ६.१४

चोटिया : सं०स्त्री० (सं० चोटिका ?>प्रा० चोट्टिया) । छोटी शिखा, केश शिखा । कृ० १३

चोटी : चोटिया । (१) शिखा (२) (लक्षणा से) मर्यादा, प्रतिष्ठा । 'हाथ कपिनाथ ही के चोटी चोर साहु की ।' हनु० २८

चोप : सं०पुं०+स्त्री० । उत्साह । 'सिघ किसोरहि चोप ।' मा० १.२६७

चोर : सं०+वि० (सं०) । तस्कर । मा० १.२४२

चोरऊ : चोर भी । 'नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहरु ।' विन० २५०.३

चोरत : वकृ०पुं० (सं० चोदयत्>प्रा० चोरंत) । चुराता, चुराते । 'चोरत चितहि सहज मुसुकात ।' गी० २.२

चोरति : वकृ०स्त्री० (सं० चोरयन्ती>प्रा० चोरंती>अ० चोरंति) । चुराती, अपहरण करती । 'चोरति चितहिचारु चितवनियाँ ।' गी० १.३४.५

चोरहिं, हीं : आ०प्रब० (सं० चोरयन्ति>प्रा० चोरंति>अ० चोरहि) । चुराते हैं । 'अंग सब चित चोरहीं ।' मा० १३२७.छं०

चोरा : चोर । मा० ५.४.३

चोराइ : पूकृ० । चुराकर । 'लेत चितहि चोराइ ।' गी० ७.३३.५

चोराई : चोराइ । 'लेहिं न बासन बसन चोराई ।' मा० २.३५१.३

चोराए, ये : भूकृ०पुं० । अपहृत किये । 'अरुन अधर चित लेत चोराये ।' गी० १.३२.३

चोरि : चोराइ (सं० चोरयित्वा>प्रा० चोरिअ>अ० चोरि) । (१) चुराकर, अपहृत कर । 'लिए चोरि चित राम बटोहीं ।' मा० २.१२३.८ (२) छिपाकर । 'अघ हृदयँ राखे चोरि ।' विन० १५८.३

चोरी : सं०स्त्री० (सं० चौर्य=चौरी>प्रा० चोरी) । चोर-कर्म, अपहरण । 'चंदिनि कर कि चंडकर चोरी ।' मा० २.२६५.६ (२) गोपन । 'औरउ एक

कहउँ निज चोरी ।' मा० १.१६६ (३) चोरि । चुराकर । 'लेत चितवत चित चोरी ।' गी० ७.७.७

चोरु : चोर+कए० । 'ऐसे हू साहब की सेवा सों होत चोरु रे ।' विन० ७१.१

चोरें : चुराकर, चुराए हुए । 'चले लै चितु चोरें ।' कवि० २.२६

चोरे : भूकृ०पुं०ब० । चुराये । गी० ३ २.३

चोर्‌यो : भूकृ०पुं०कए० । चुरा लिया । 'चोर्‌यो है चित चहुं भाई ।' गी० १.१५.३

चोलना : सं०पुं० (सं० चोल) । अंगरखा, परिधान विशेष । गी० १.७४.१

✓**चौंक, चौंकइ** : (सं० चमत्करोति>प्रा० चमक्कइ>अ० चवँक्कइ— चमत्कृत होना, विस्मित होना, चकपकाना) आ०प्रए० । चौंकता है, विस्मय पाता है । 'कौन की हांक पर चौंक चंडीसु ।' कवि० ६.४५

चौंकि : पूकृ० । आश्चर्यचकित होकर । 'चौंकि चकैं चितवैं चितु दै ।' कवि० २.२७

चौंके : भूकृ०पुं० (सं० चमत्कृत>प्रा० चमक्किय>अ० चवँक्किय) ब० । चकित हो गये । 'चौंके बिरंचि संकर सहित ।' कवि० १.११

चौंधी : चकचौंधी । 'चितवत मोहि लगी चौंधी सी ।' गी० २.३५.३

चौक : सं०स्त्री० (सं० चतुष्क>प्रा० चउक्क) । चौकोर रचना विशेष । रँगोली आदि । 'गजमनि रचि बहु चौक पुराईं ।' मा० ७.९.३

चौकी : सं० स्त्री० (सं० चतुष्किका>प्रा० चउक्किआ>अ० चउक्की) । चौकोर रचनाविशेष जो आभूषण आदि में बनायी जाती है । कवि० ७.१४७

चौकें : चौक+ब० । रँगोलियाँ । मा० १.२९६

चौगान, ना : सं०पुं० । गेंद का एक खेल । 'खेलहिं भालु कीस चौगाना ।' मा० ६.२६.५ (फ़ा० चौगान बल्ले या तिरछे डंडे का अर्थ देता है । उसका प्रयोग पोलो की कन्दुकक्रीडा के लिए हुआ है ।)

चौगानैं : चौगान+ब० । बल्ले, गेंद खेलने की तिरछी लकड़ियाँ । 'करकमलनि बिचित्र चौगानैं ।' गी० १.४५.२

चौगुन : वि०पुं० (सं० चतुर्गुण>प्रा० चउग्गुण) । चौगुना । मा० २.५१.८

चौगुने : 'चौगुन' का रूपान्तर (प्रा० चउग्गुणय) । 'चंचलता चौगुने चाय ।' विन० ८३.२

चौगुनो : चौगुन+कए० । गी० १.१०४.१

चौतनि : चौतनी । 'चौतनि सिरनि, कनक कली काननि ।' गी० १.६२.२

चौतनियाँ : चौतनी । गी० १.३४४

चौतनीं : चौतनी+ब० । चौकोर टोपियाँ । 'रुचिर चौतनीं सुभग सिर ।' मा० १.२१९

चौतनी : सं०स्त्री० । चार बन्दों वाली चौकोर टोपी । 'कल कुंडल चौतनी चारु अति ।' गी० १.६३.३

चौथ : वि०पुं० (सं० चतुर्थ>प्रा० चउत्थ) । चौथा । मा० १.१४२

चौथि : चउथि । चौथी । मा० ३.३५

चौथें : चौथे……में । 'चौथेंपन जेहिं अजसु न होई ।' मा० २.४२.५

चौदसि : सं०+वि०स्त्री० (सं० चतुर्दशी>प्रा० चउद्दसी>अ० चउद्दसि) । (१) चौदस तिथि+(२) चौदहवीं । विन० २०३.१५

चौदह : संख्या (सं० चतुर्दशन्>प्रा० चउद्दह) । मा० २.२८.३

चौपट : सं०+वि० (सं० चतुष्पट्ट>प्रा० चउप्पट्ट) । चौरस, समतल (ध्वंस से किया हुआ समतल भूतल) । मा० ६.३०

चौपाईं : चौपाई+ब० । चौपाइयाँ । 'सत पंच चौपाईं मनोहर ।' मा० ७.१३० । छं०

चौपाई : सं०स्त्री० (सं० चतुष्पादिका>प्रा० चउप्पाइआ>अ० चउप्पाई) । एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएं होती हैं । मा० १.३७.४

चौबारे : सं०पुं०ब० (सं० चतुर्द्वारक>प्रा० चउव्वारय) । चार दरवाजों वाले हवादार बँगले । 'मनिमय रचित चारु चौबारे ।' मा० २.९०.८

चौरासी : संख्या (सं० चतुरशीति>प्रा० चउरासीइ) । मा० १.८.१

चौर : चोर । विन० २८.४

चौहट : चउहट्ट । चौक, चौराहा । मा० ७.२८.८

च्वै : पूकृ० । चू कर, स्राव करके, बह (कर) । 'अंखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै ।' कवि० २.११

च्वैहैं : आ०भ०प्रब० (सं० श्चोतिष्यन्ते>प्रा० चुइहिति>अ० चुइहिंहि) । चुलाएंगे, बहाएंगे, स्राव करेंगे, चुयेंगे । 'खग मृग मुनि लोचन जल च्वैहैं ।' गी० ६.१८.३

छ

छँगनमँगन : (दे०छगन) क्रि०वि० । बालगणों के बीच क्रीडा में मग्न । 'छँगनमँगन अँगना खेलत ।' गी० १.३०.१

छँटि : भू०कृ०पुं०ब० । छँटे हुए, चुने हुए । 'साजि चढ़े छँटि छैल छबीले ।' कवि० ६.३२

छ : संख्या (सं० षष्>प्रा० छ) । छह । 'साथ किरात छ सातक दीन्हे ।' मा० २.२७२.८

छंडै : छाँड़इ । छोड़ दे, त्याग करे । 'जाय सो जती कहाय बिषय बासना न छंडै ।' कवि० ७.११६

छंद, दा : सं०पुं० (सं० छन्दस्) । (१) पद्य । 'जनु तनु धरैं सकल श्रुति छंदा ।' मा० १.३००.४ (२) पद्य विशेष—हरिगीतिका आदि । 'छंद सोरठा सुन्दर दोहा ।' मा० १.३७.५ (३) (सं० छन्द) अभिप्राय, स्वेच्छा । 'रिषिबर तहँ छंद बास ।' गी० २.४३.२

छई : (१) भू०कृ०स्त्री० । छा गई, व्याप्त हुए । 'अंग पुलकावलि छई ।' मा० १.३१८.छं० (२) छय (सं० क्षय) । राजयक्ष्मा रोग । 'पर सुख देखि जरनि सोइ छई ।' मा० ७.१२१.३४

छए : छये ।

छगन : सं०पुं० (सं० छ=शिशु+गण) । बालक (दुलराने में प्रयुक्त) । 'छगन छबीले छोटे छैया ।' गी० १.२०.२

छगनमगन : क्रि०वि०+वि० (सं० छगण—मग्न) । शिशुगण के मध्य क्रीडारत । 'छगनमगन अँगना खेलिहौ मिलि ।' गी० १.८.३

छछुंदरि : सं०स्त्री० (सं०) । मूषिक जातीय जन्तुविशेष जो छू-छू ध्वनि करता है और कहा जाता है कि उसे साँप निगल ले तो मर जाता है तथा पकड़ने के बाद छोड़ दे तो अन्धा हो जाता है । 'भइ गति साँप छछुंदरि केरी ।' मा० २.५५.३

छटनि : छटा+संब० । छटाओं । 'बिधि बिरचैं बरुथ बिद्युत छटनि के ।' कवि० २.१६

छटा : सं०स्त्री० (सं०) । (१) द्युति, आभा—पुञ्ज (२) समवाय (३) निरन्तर रेखा, श्रेणी ।

छटानि : छटनि । छटाओं (से) । 'श्रोनित छीट छटानि जटे ।' कवि० ६.५१

छठ : वि० (सं० षष्ठ>प्रा० छट्ठ) । छह संख्या का पूरक, छठा । मा० ३.३६.२

छठी : छठ+स्त्री० । (१) छह संख्या की पूरणी । (२) तिथिविशेष । (३) कार्तिकेय-पत्नी=देवसेना देवी जो नवजातकों की रक्षिका तथा प्रसव—देवी मानी गयी हैं=षष्ठी देवी । (४) जन्म से छठे दिन षष्ठी देवी के उपलक्ष में किया जाने वाला उत्सव । गी० १.४.१२

छठें : छठे...में । 'छठें श्रवन यह परत कहानी ।' मा० १.१६६.२

छड़ाइ : पूकृ० (सं० छर्दयित्वा=मोचयित्वा>प्रा० छड्डाविअ>अ० छड्डावि)। छुड़ा (कर), छीन (कर)। 'लेहु छड़ाइ सीय कहँ कोऊ।' मा० १.२६६ ३

छड़ाइसि : आ०-भूकृ०स्त्री०+प्रए (मए)। तूने (उसने) छुड़ा दी। 'सठ रच भूमि छड़ाइसि मोही।' मा० ६.१००.८ ('शठ ने छुड़ा दी' या 'ऐ सठ तूने छुड़ा दी')

छड़ाई : छड़ाइ। (१) छीन कर। 'जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई।' मा० १.१५८.२ (२) वियुक्त कर, अलग कर। 'तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई।' मा० १.२५२.२ (३) मुक्त करा (कर)। 'भरतु दयानिधि दीन्हि छड़ाई।' मा० २.१६३.८

छड़ावा : भूकृ०पुं०। छुड़ाया, हटाया, दूर किया। 'देह जनित अभिमान छड़ावा।' मा० ४.२८.६

छत : सं०पुं० (सं० क्षत)। व्रण, घाव। 'पाकें छत जनु जाग अँहारू।' मा० २.१६१.५

छतज : सं०पुं० (सं० क्षतज)। (घाव से निकला ताज: रुधिर) रक्त (लाल)। 'छतज नयन उर बाहु बिसाला।' मा० ६.५३.१

छति : सं०स्त्री० (सं० क्षति)। (१) हानि। 'का छति लाहु जून धनु तोरें। मा० १.२७२.२ (२) भङ्ग, नाश। 'टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की।' विन० ६०.३

छत्र : (१) सं०पुं० (सं०)। छाता, आत पत्र। 'छत्र मेघ डंबर सिर धारी।' मा० ६.१३.५ (२) (सं० क्षत्र) क्षत्रिय। 'छत्र जाति कर रोष।' मा० ६.२३ घ

छत्रक : सं०पुं० (सं०)। छत्राकार उद्भिज्जविशेष, कुकुरमुत्ता। 'तोरौं छत्रक दंड जिमि।' मा० १.२५३

छत्रबंधु : सं०पुं० (सं० क्षत्रबन्धु)। क्षत्रियाधम, नीच क्षत्रिय। 'छत्रबंधु तैं बिप्र बोलाई।' मा० १.१७४.१

छत्रि : छत्रिय। 'छत्रि जति रघुकुल जनम।' मा० २.२२६

छत्रिय : सं०पु० (सं० क्षत्रिय)। क्षत्र वंशज (क्षत्र जातीय माता-पिता की सन्तान)। मा० ३.१६.६

छत्री : छत्रिय। 'बैरी पुनि छत्री पुनि राजा।' मा० १.१६०.६

छत्रु : छत्र+कए० राजा का छत्र। 'एकु छत्रु एकु मुकुटमनि।' मा० १ २०

छन : सं०पुं० (सं० क्षण)। लघुतम कालखण्ड। 'छन महुं मिटे सकल श्रुति सेतू।' मा० १.८४.६ (२) (दे० √छन)

√छन, छनइ : आ०प्रए०। छनता-ती है (झँझरे अवकाश में से निकलती है)। 'घन छाँह छन प्रभा न भान की।' गी० २.४४.२

छनभंगु, गू : छनभंग (सं० क्षणभङ्ग)+कए०। क्षणिक, क्षणविनाशी, क्षणों में परिवर्तन लेकर नष्ट होने वाला ,क्षणभंङ्गुर। मा० २.१६०.३, २११.७

छपत : व०कृ०पुं० (सं० क्षप्यमाण>प्रा० छप्पंत)। नष्ट होते। (२) छिपते। 'कलिमल छल छपत।' विन० १३०.१

छपद : सं०पुं० (सं० षट्पद)। भ्रमर। 'छपद सेनहु बर बचन हमारे।' कृ० ५७

छपदु : छपद+कए०। भ्रमर (प्रतीकरूप में उद्धव)। 'पठयो है छपदु छबीलें कान्ह काहूं कहूं।' कवि० ७.१३५

छपन : वि०पुं० (सं० क्षपण)। नाशक। 'छोनिप छपन बाँको बिरदु बहुत हौं।' कवि० १.१८

छपनिहार : वि०पुं०=छपन। विनाशकर्ता। 'कीन्ही छोनी छत्री बिनु छोनिप छपनिहार।' कवि० ६.२६

छपा : सं०स्त्री० (सं० क्षपा)। रात्रि। गी० १.१६.३

√छपा, छपाइ, ई : (छिपना, अन्तर्हित होना) आ०प्र०ए०। छिपता है, अन्तर्धान हो जाता है। 'कबहुंक प्रगटइ कबहुं छपाई।' मा० ३.२७.१२

छपाइ, ई : पूकृ०। छिप (कर)। 'उठी रेनु रषि गयउ छपाई।' मा० ६.७६.७

छपाए : भूकृ०पुं०ब०। छिपा लिए, ढक लिए। 'नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मानो तड़ित छपाए।' गी० १.२६.६

छप्यौ : भूकृ०पुं०कए०। छिपा हुआ। कवि० १.१८

छबि, बी : सं०स्त्री० (सं० छबि)। आभा, कान्ति, दीप्ति। 'जैसें दिवस दीप छबि छूटे।' मा० १.२६३ ५

छबीलीं : छबीली+ब०। आभा युक्त। 'अँगुरियाँ छबीलीं छोटी।' गी० १.३३.१

छबीलें : छबीले···ने। 'पठयो है छपदु छबीलें कान्ह।' कवि० ७.१३५

छबीले वि०पुं० (सं० छविमत्>प्रा० छविल्ल=छविल्लय) ब०। आभायुक्त, सौन्दर्यच्छटा सम्पन्न, शोभाशील। 'छरे छबीले छयल सब।' मा० १.२६८

छबीलो : वि०पुं०कए० (सं० छविमान्>प्रा० छविल्लो)। शोभाशाली। गी० १.१६.५

छम : वि०पुं० (सं० क्षम)। समर्थ। 'ब्रह्मांड दहन-छम।' विन० २३६.४ 'दुख दोष दलन छम।' विन० २७५.१

छमत : सं०पुं० (सं० षट्√प्रा० छ+मत)। षड्दर्शन—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त। 'पढ़िबो पर्‌यो न छठी छमत।' विन० १५५.२ 'छ-मत बिमत न पुरान मत एकमत।' विन० २५१.४

छमब : भूकृ०पुं० (सं० क्षन्तव्य>प्रा० छनिअव्व)। क्षमा करना (चाहिए)। 'अनुचितु छमब जानि लरिकाई।' मा० १.४५.६

छमबि : छमब+स्त्री० । छमा करनी (चाहिए) । 'छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी ।' मा० २.६४.५

छमहु : आ०मब० (सं० क्षाम्यत>प्रा० छमह>अ० छमहु) । क्षमा करो । 'छमहु चूक अनजानत केरी ।' मा० १.२८२.४

छमहूं : आ०—प्रार्थना—प्रब० । (वे) क्षमा करें । 'लघुमति चापलता कबि छमहूं ।' मा० २.३०४.१

छमाँ : क्षमा से । 'तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै ।' मा० ७.११७.१४

छमा : सं०स्त्री० (सं० क्षमा) । (१) सहिष्णुता, दूसरे के अपराध के प्रति सहन शीलता । 'छमा दया दमलता बिताना ।' मा० १.३७.१३ (२) पृथ्वी । 'बिस्व भार भर अचल छमासी ।' मा० १.३१.१० (३) शक्ति, सामर्थ्य—'नीति सुनहि करहि छमा ।' मा ६.६०

छमाइ : पूकृ० । क्षमा करवा कर । 'छमि अपराध छमाइ कृपा करि ।' विन० १००.५

छमासील : वि०(सं० क्षमा शील) । क्षमा की प्रकृति वाला । मा० ७.१०६.५

छमि : पूकृ० । क्षमा करके । 'छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी ।' मा० २.१८३.४

छमिअ, य : छमिए । 'कौसिक कहा छमिअ अपराधू ।' मा० १.२७५.५

छमिए : आ०—कवा०—प्रए० (सं० क्षम्यते>प्रा० छमीअइ) । क्षमा किया जाय, क्षमा कीजिए ।' छमिए अघ औगुन मेरे ।' गी० २.७६.२

छमिबो : भूकृ०पुं०कए० (सं० क्षन्तव्यः>प्रा० छमिअव्वो>अ० छमिअव्वउ) । क्षमा करना । 'अपराधु छमिबो ।' मा० १.३२६.छं

छमिहहिं : आ०भ०प्रब० (सं० क्षंस्यति>प्रा० छमिहिंति>अ० छमिहिहिं) क्षमा करेंगे । 'छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई ।' मा० १.८.८

छमिहि : आ०भ०प्रए० (सं० क्षंस्यति>प्रा० छमिहिइ) । क्षमा करेगा । 'छमिहि देउ अति आरति जानी ।' मा० २.३००.८

छमिहैं : छमिहहिं ।' सोचैं सब, या के अघ कैसे प्रभु छमिहैं ।' कवि ७.७१

छमुख : षण्मुख । कार्तिकेय । कवि० ७.१७६६

छमेहु : आ०—भ०+प्रार्थना—मब० । तुम क्षमा करना । 'छमेहु सकल अपराध अब ।' मा० १.१०१

छमैया : वि० (सं० क्षन्तक>प्रा० छमिइय) । क्षमा करने वाला । 'अपराध सबै छलु छाड़ि छमैया ।' कवि० ७.५३

छय : सं०पुं० (सं०) । (१) विनाश । 'जेहिं रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाई ।' मा० १.१७०.८ (२) रोगविशेष—दे० छई

छयल : वि०पुं० (प्रा० छइल्ल=विदग्ध) । चतुर, दक्ष, निपुण, कुशल । 'छरे छबीले छयल सब ।' मा० १.२९८

छये : भूकृ०पुं०ब० । आच्छादन किये हुए । 'ब्योम विमाननि बिबुध बिलोकत खेलक पेषक छाँह छये ।' गी० १.४५.३

छर : सं०पुं० (सं० छल) । (१) ब्याज, बहाना, कपट । (२) धान कूटने की क्रिया विशेष । 'तहाँ तहाँ नर नारि बिन छर छरिगे ।' गी० २.३२.१ (जैसे धान बिना कूटे ही कुट जाय, उसी प्रकार बिना जपतप आदि का ब्याज लिए ही लोग कलुषमुक्त हो गये ।)

छरनि : सं०स्त्री० (सं० छलता) (१) प्रवञ्चना, प्रतारण । (२) कूटने की क्रिया । 'बीच पाइ एहि नीच बीच ही छरनि छर्‌यो हौं ।' विन० २६६.२

छरभार : (दे० छरुभारु) उत्तरदायित्व । 'यह छरभार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं ।' विन० १०४.४

छरस : (सं० षड्‌रस>प्रा० छरस) छह प्रकार के स्वाद—मधुर, अम्ल, लवण, कटू, कषाय और तिक्त । मा० १.१७३.१

छरि : पूकृ० (१) छले हुए हो (कर) । (२) धान कूटे जाकर । 'जेहि जेहि मग सिय राम लखन गए, तहँ तहँ नर नारि बिनु छर छरि गे ।' गी० २.३२.१ (जैसे धान बिना कुटे ही भूसी से मुक्त हो जाय उसी प्रकार बिना जप-तप के व्याज के ही लोग मायावरण-मुक्त हो गये)

छरी : सं०स्त्री० । छड़ी, पतली यष्टि । 'लिये छरी बेंत सोधैं विभाग ।' गी० ७.२२.५

छरु : सं०पुं० (सं० त्सरु=तलवार की मूठ>प्रा० छरु) । (लक्षणा से) युद्धकार्य, संघर्ष—कार्य का कठिन उत्तरदायित्व; विपत्ति में उलझा कार्य भार । मा० २.३१५.७

छरुभारू : (दे० छरु तथा भारु) । सम्पूर्ण कठिन उत्तरदायित्व । 'लखि अपने सिर सब छरु-भारू ।' मा० २.२६.२

छरे : वि०पुं०ब० । (सं० छलिक>प्रा० छलिय) । चुस्त, चतुर, सतर्क, विदग्ध । 'छरे छबीले छयल सब ।' मा० १.२९८

छरैगी : आ०भ०स्त्री०प्रए० । (१) छलेगी, ठगेगी । (२) कुचल डालेगी, धान के समान कूटेगी । 'बाहुबल बालक छबीले छोटे छरैगी ।' हनु० २५

छरो : छर्‌यो । छल लिया, ठगा । 'निगम नियोग तें सो केलिडी छरो सो है ।' कवि० ७.८४

छर्‌यो : भूकृ०पुं०कए० (सं० छलितः>प्रा० छलिओ) । (१) छला हुआ, ठगा गया (२) कूटा गया, कुचला हुआ । 'बीच पाइ एहि नीच बीच ही छरनि छर्‌यो हौं ।' विन० २६६.२

छल : सं०पुं० (सं०) । छद्म, धूर्तता, वञ्चना, व्याज=बहाना । 'सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू ।' मा० १.८.३ 'बोले मधुर बचन छल सानी ।' मा० १.९८.८

छलक : सं०स्त्री० । (द्रव पदार्थ का) उबरा कर उछलना, तरङ्ग लेकर बाहर बह चलना । 'बूड़ि गयो जा के बल बारिधि छलक मैं ।' कवि० ६.२५

छलकारी : छल करने वाला । मा० ३.२५.२

छलकिहै : आ०भ०प्रए० । छलकेगी, उबर कर लहरायगी । 'छबि छलकिहै भरि अँगनैया ।' गी० ५.६.३

छलकैं : आ०प्रब० । छलकते-ती हैं । उबर कर लहराते-ती हैं 'मनहुं उमगि अँग अँग छबि छलकैं ।' गी० १.३१.२

छलग्यानी : कपट से ज्ञानी बना हुआ, धूर्त । मा० १.१७०.१

छलन : वि०पुं० । छलने वाला । 'छलन बलि ।' विन० ५२.५

छलहिं, हीं : आ०प्रब० । छलते हैं, ठगते हैं । 'बंचक बिरचि बेषु जगु छलहीं ।' मा० २.१६८.७

छलाईं : छलना में, धोखा देने में । 'सुजोधन भो कलि छोटो छलाईं । कवि० ७.१३१

छलि : पूकृ० (सं० छलित्वा>प्रा० छलिअ>अ० छलि) । छल करके, छद्म अपना कर । 'कहै काह, छलि छुअति न छाँही ।' मा० २.२८८.५

छलिन : छली+संब० । छलियों । 'छलिन की छोड़ी ।' कवि० ७.१८

छली : वि०पुं० (सं० छलिन्) । छलनायुक्त, धूर्त, कपटी । 'छली मलीन कतहुं न प्रतीती ।' मा० २.३०२.२

छलु : छल+कए० । अद्वितीय छल । 'करि छलु मूढ़ हरि बैदेई ।' मा० १.४६.५

छले : भूकृ०पुं० (सं० छलित>प्रा० छलिय) ब० । ठगे, प्रवञ्चित किये । 'सिव बिरंचि बाचा छले ।' गी० ५.४१.२

छलो : भू०कृ०पुं०कए० । प्रवञ्चित किया (ठगा) । 'बिबुध काज बावन बलिहि छलो भलो जियँ जानि ।' दो० ३९६

छवनी : सं०स्त्री० । छौनी, बालिका । 'भई है प्रगट अति दिव्य देह धरि मानो त्रिभुवन छबि छवनी ।' गी० १.५८.१

छवा सं०पुं० । (१) पैर, चरणतल । (२) (सं० सव=प्रसव) शावक, शिशु । 'बिदले अरि कुंजर छैल छवा से ।' हनु० १८

छहु, छहूं : (छ+हूं) छहों, सभी छह । 'कीरति सरित छहूं रितु रूरी ।' मा० १.४२.१

√छाँड़ छाँड़इ : (√छाड़+छाड़इ) छोड़ता है, फेंकता है, चलता है । 'सर छाँड़इ होइ लागहिं नागा ।' मा० ६.७३.१०

छाँड़त : वकृ०पुं० (√छाड़त) । छोड़ता । 'भूमि न छाँड़त कपि चरन ।' मा० ६.३४

छाँड़हु : (छाड़हु) । 'छाँड़हु तात मृषा जल्पना ।' मा० ६.५६.५

छाँड़ि : (छाड़ि) । छोड़ (कर) । 'सब छूछे कै कै छाँड़ि गो ।' कवि० ६.२४

छाँड़िअ, य, ए : (छाड़िअ) । छोड़ा जाय । 'का छाँड़िअ का संग्रहिअ) ।' दो० ३५१

छाँड़ियो : आ०—भवि०+प्रार्थना—मब० । तुम छोड़ना । 'तहँ तहँ जनि चित छोह छाँड़ियो ।' विन० १०३.३

छाँड़िहि : (छाड़िहि) छोड़ेगा । 'मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा ।' मा० ३.२९.१४

छाँड़ी : (छाँड़ी) छोड़ी, चलायी । 'छाँड़ी सक्ति प्रचंड ।' मा० ९३

छाँड़ु : आ०—आज्ञा—मए० । तू छोड़ दे । 'तुलसी राम नाम जपु आलस छाँड़ु ।' बर० ६६

छाँड़े : (छाड़े) (१) छोड़े, चलाये, फेंके । 'खैंचि सरासन छाँड़े सायक ।' मा० ६.९२.६ (२) छोड़े हुए (त्याग कर) । 'चलहिं कुपंथ बेद मग छाँड़े ।' मा० १.१२.२

छाँड़ेउँ : आ०—भूकृ०पुं०+उए० । मैंने छोड़ा, मुक्त किया । 'बूढ़ जानि सठ छाँड़ेउँ तोही ।' मा० ६.७४.५

छाँड़ेउ : (छाँड़ेउ) छोड़ा, चलाया । 'पावक सर छाँड़ेउ रघुबीरा ।' मा० ६.९१.३

छाँड़ेसि : (छाड़ेसि) (१) उसने चलाया, फेंका । 'प्रभु कहँ छाँड़ेसि सूल प्रचंडा ।' मा० ७.७६.७ (२) उसने फेंके । 'अस्त्र सस्त्र छाँड़ेसि बिधि नाना ।' मा० ६.९२.३ (३) छोड़े, त्यागे । 'अस कहि छाँड़ेसि प्रान ।' मा० ६.७६

छाँड़ै : (छाड़ै) । छोड़ने, फेंकने । 'कुलिस समान लाग छाँड़ै सर ।' मा० ६.९१.१

छाँड़्यौं : (छाँड़ेउँ) । मैंने छोड़ दिया, त्याग दिया । 'इन्ह के लिए खेलिबो छाँड़्यौं तऊ न उबरन पावहिं ।' कृ० ४

छाँह : सं०स्त्री० (सं० छाया>प्रा० छाहा>अ० छाह) । प्रतिबिम्ब । 'तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी ।' मा० २.९७.५

छाँही : छाँह (प्रा० छाही) । मा० २.२८८.५

छाँहू : छाया भी । 'सकुचत छुइ सब छाँहू ।' विन० २७५.२

छाइ : पूकृ० (सं० छादयित्वा>प्रा० छाइअ>अ० छाइ) । (१) छप्पर आदि से छाया करके । 'रहे परनगृह छाइ ।' मा० ३.१३ (२) व्याप्त होकर, आच्छादित कर । 'रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू ।' मा० ६.९२.१४ (३) आ०—आज्ञा—मए० । तू छा । 'तुलसी घर बन बीचहीं प्रेम पुर छाइ ।' दो० २५६

छाईं : भू०कृ०स्त्री०ब० । फैल गयीं, व्याप्त थीं । 'सकल सिद्धि संपति तहं छाईं ।' मा० १.६५.७

छाई : (१) छाइ । 'रह्यो उर नभ पर छाई ।' कृ० २९ (२) भूकृ०स्त्री० । आवृत हो गयी । 'फूलें कास सकल महि छाई ।' मा० ४.१६.२ (३) व्याप्त हुई, भर गयी । 'मूक बदन जन सारद छाई । मा० १.३५०.८ (४) सजाई । 'पुरी रुचिर करि छाई ।' गी० १.१.६

छाउ : छाए+कए० (सं० छाद:>प्रा० छाओ>अ० छाउ) । आवरण, दुराव । 'तिन न तज्यो छल छाउ ।' विन० १००८

छाए : भूकृ०पुं० (सं० छादित>छाइय) ब० । (१) भर गये । 'आश्रमु देखि नयन जल छाए ।' मा० १.४९.६ (२) फैल गये, व्याप्त कर रहे । 'जथा जोगु जहं तहं सब छाए ।' मा० १.६४.७ (३) परिपूर्ण हुए । 'सकल लोक सुख संपति छाए ।' मा० १.१९०.६ (४) आवृत । 'मनहुं मनोहरता छबि छाए ।' मा० १.२४१.१ (५) घेरे हुए । 'मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए ।' मा० १.३२७.२ (६) रहे, विराजमान हुए । 'चित्रकूट रघुनंदनु छाए । मा० २.१३४.५ (७) छावनी डाल कर रहे । 'जनु भट बिलग-बिलग होइ छाए ।' मा० ३.३८.४ (८) (छप्पर आदि) डाल कर बनाए । 'ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए ।' मा० ३.४०.५

छाक : सं०स्त्री० (सं० चक्षा>प्रा० चक्खा) । तृप्तिकारी भोजन । 'बलदाऊ देखियत दूरि ते आवति छाक पठाई मेरी मैया ।' कृ० १९ (सं० चक्षण दो अर्थ देता है—(१) भूख उद्दीप्त करने वाला खाद्य पदार्थ, चटनी आदि । इसी 'चखना' या 'चीखना' हिन्दी में चलता है जिसका 'चक तृप्तौ' से भी सम्बन्ध है । (२) मदिरा पीने के साथ जो नमकीन आदि खाते हैं उसे भी 'चक्षण' कहा गया है । इस 'चक्ख>छक्क>छाक' मद्य, मद्यपान तथा मद के अर्थों में ब्रजभाषा में चलता है—'छाके' में इसी का प्रयोग है ।)

छाके : भूकृ०पुं०ब० (दे० छाक) । नशे में धुत्त, मत्त, पान किये हुए । 'जाहिं सनेह सुरा सब छाके ।' मा० २.२२५.३

छाछी : सं०स्त्री० । छाछ, दही का तोड़, तक्र । 'चहिअ, अमिअ जग जुरइ न छाछी ।' मा० १.८.७

छाज, छाजइ : (सं० छाद्यते—विराजते>प्रा० छज्जइ—सुशोभित होना, विराजना) आ०प्रए० । सोहता है, फबता है, फबती है । 'छोनी में के छोनीपति, छाजै जिन्हैं छत्र छाया ।' कवि० १.८

छाजति : वकृ०स्त्री० । सुशोभित होती । 'पीत दुकूल अधिक छबि छाजति ।' गी० ७.१७ ९

छाजा : छाजइ । फबता है । 'जो कछु करहिं उन्हहि सब छाजा ।' मा० ३.१७.१४

छाड़ : आ०-आज्ञा-मए० । तू छोड़ दे । 'नाहिं त छाड़ कहाउब रामा ।' मा० १.२८१.२

√छाड़, छाड़इ : (सं० छर्दयति-मुच्चति>प्रा० छड्डइ—छोड़ना, फेंकना, बाहर करना) आ०प्रए० । छोड़ता या छोड़ती है (उगलती है) । 'छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि ।' मा० २.१३.८

छाड़त : वकृ०पुं० (सं० छर्दयत्>प्रा० छड्डंत) । छोड़ता, छोड़ते । हनु० ३२

छाड़न : सं०पुं० (सं० छर्दन>प्रा० छड्डण) । छोड़ना, फेंकना । 'मिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकर बाजु ।' मा० २.२८

छाड़ब : भकृ०पुं० (सं० छर्दितव्य >प्रा० छड्डिअव्व) । छोड़ना (चाहिए) । 'देबि न हम पर छाड़ब छोहू ।' मा० २.११८.१

छाड़हिं : आ०प्रब० (सं० छर्दयन्ति>प्रा० छड्डंति>अ० छड्डहिं) । छोड़ते-ती-हैं । 'छाड़हिं नचाइ हाहा कराइ ।' गी० ७.२२.७

छाड़हु : आ०मब० (सं० छर्दयत>प्रा० छड्डह>अ० छड्डहु) । छोड़ो । 'अस बिचारि उर छाड़हु कोहू ।' मा० २.५०.१

छाड़ा : भूकृ०पुं० (सं० छर्दित>प्रा० छड्डिअ) । छोड़ा, फेंका । 'छाड़ा बान, माझ उर लागा ।' मा० ६.७६.१६

छाड़ि : पूकृ० (सं० छर्दयित्वा>प्रा० छड्डिअ>अ० छड्डि) । (१) त्याग कर । 'सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू ।' मा० १ ८.३ (२) मुक्त कर । 'लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हे ।' मा० १.१५४.७ (३) अतिरिक्त, बिना । 'रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू ।' मा० २.१४.२

छाड़िअ, य : आ०कवा०प्रए० । छोड़िए, त्यागा जाय । 'लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि ।' मा० २.६६.७

छाड़िसि : आ०-भूकृ०स्त्री०+प्रए० । उसने छोड़ी, फेंकी । 'बीरघातिनी छाड़िसि साँगी ।' मा० ६.५४.७

छाड़िहउँ : आ०भ०उए० (सं० छर्दयिष्यामि>प्रा० छड्डिहिमि>अ० छड्डिहिउँ) । छोड़ूंगा । 'तब मारिहउं कि छाड़िहउं ।' मा० १.१८१

छाड़िहि : आ०भ०प्रए० (सं० छर्दयिष्यति>प्रा० छड्डिहिइ) । छोड़ेगा । 'सील सनेह न छाड़िहि भीरा ।' मा० २.७९.३

छाड़ी : भूकृ०स्त्री० । त्यागी । 'सेवक छोह तें छाड़ी छमा ।' कवि० ७.३

छाड़े : भूकृ०पुं० (सं० छर्दित>प्रा० छड्डिअ) । छोड़े, फेंके । 'छाड़े सर एक तीस ।' मा० ६.१०२

छाड़ेउ : भूकृ०पुं०कए० । छोड़ दिया । 'प्रभु छाड़ेउ करि छोह ।' मा० ३.२

छाड़ेन्हि : आ०-भूकृ०पुं०+प्रब० । उन्होंने छोड़े, चलाये, फेंके । 'छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह ।' मा० ६.६६

छाड़ेसि : आ०—भूकृ०पुं०+प्रए० । (१) उसने छोड़े, त्यागे । 'राम राम कहि छाड़ेसि प्राना ।' मा० ६.५८.६ (२) चलाये, फेंके, फेका । 'संधानि धनु सर निकर छाड़ेसि ।' मा० ६.८२ छं० ।

छाड़ै : (१) छाड़इ । छोड़ दे । 'सहज छमा बरु छाड़ै छोनी ।' मा० २.२३२.२ (२) भकृ० । छोड़ने । 'सर समूह सो छाड़ै लागा ।' मा० ६.५०.५

छाड्यौ : छाड़ेउ । 'छोनी में न छाड्यौ छप्यौ छोनिप को छोना छोटो ।' कवि० १.१८

छाता : छत्र (प्रा० छत्तअ) । रा०न० ८

छाती : सं०स्त्री० । (१) वक्षःस्थल । 'नारि बंद कर पीटहिं छाती ।' मा ६.४४.४ (२) अन्तःकरण, मन-प्राण । 'हृदयँ लगाइ जुड़ावहिं छाती ।' मा० १.२९५.५ (३) कलेजा । 'बिटरति नहिं छाती ।' मा० ६.३३.४

छानि, नी : पूकृ० । (१) छान कर, छन्ने से शुद्ध करके । 'मज्जन पान कियो कै सुरसरि कर्मनास जल छानी ।' कृ० ४६ (२) भटक कर, इधर-उधर निरुद्देश्य घूमघाम कर, थक कर । 'कोटिक कलेस करौ मरौ छार छानि सो ।' कवि० ७.१६१

छाम : वि०पुं० (सं० क्षाक) । क्षीण, कृश । 'राम छाम लरिका लखन ।' गी० ५.२३.२

छाय : सं०पुं० (सं० छाद>प्रा० छाय) । आवरण, छिपख-दुराव । 'राम राज न चले मानस मलिन के छल छाय ।' विन० २२०.३

छायउ : भूकृ०पुं०कए (सं० छादितम्>प्रा० छाइयं>अ० छाइयउ) । छा गया, व्याप्त हुआ । 'जग जनु छायउ ।' जा०मं० १८०

छायाँ : छाया में । 'बट छायाँ बेदिका बनाई ।' मा० २.२३७.८

छाया : सं०स्त्री० (सं०) (१) प्रतिबिम्ब । 'त्रिबिध समीर सुसीतलि छाया ।' मा० १.१०६.३ (२) छाता आदि । 'नहिं पदत्रान सीस नहिं छाया ।' मा० २.२१६.५ (३) झलक, आभा । 'केहि छाया कबि मति अनुसरई ।' मा० २.२४१.३ (४) संस्कार, अवशेष, छाप । 'अजहुं न छाया मिटति तुम्हारी ।' मा० १.१४१.५ (५) छाय । आवरण । 'पालु बिबुधकुल करि छल छाया ।' मा० २.२९५.२

छायो : छायउ । (१) व्याप्त । 'सब सनेह छल छायो ।' विन० २००.२ (२) व्याप्त हुआ, भर गया । 'हरष उर छायो ।' मा० ६.१०७.८ (३) आवृत हुआ । 'बिपति जाल जग छायो ।' विन० २४३.४

छार, रा : सं०पुं० (सं० क्षार) । (१) भस्म, राख । 'तन छार ब्याल कपाल भूषन ।' मा० १.९५.छं० 'चितवत कामु भयउ जारि छारा ।' मा० १.८७.६ (३) धूल, मिट्टी । 'छार तें संवारि कै पहारहूं तें भारी कियो ।' कवि० ७.६१

छारै : छार को, मिट्टी को । 'पब्बय तें छार, छारै पब्बय पलकहीं ।' कवि० ७.९८

छाल : सं०पुं० (सं० छल्ल) । चर्म, त्वचा । पा०मं०छं० १२

छाला : छाल। 'एहि मृग कर अति सुन्दर छाला।' मा० ३.२७.४

छालि : पूकृ०। छाल निकाल कर। 'गढ़ि गुढ़ि छोलि छालि कुंद भीसी भाईं बातें।' कवि० ७.६३ (२) प्रक्षालन करके, स्वच्छ कर

छालिका : वि०स्त्री० (सं० क्षालिका)। धो बहाने वाली, स्वच्छ करने वाली। 'पाप छालिका।' विन० १७.१

छालित : भूकृ०वि० (सं० क्षालित)। धो कर स्वच्छ किया हुआ। 'रघुपति भगति बारि छालित चित।' विन० १२४.५

छावत : वकृ०पुं०। आच्छादित करता-ते, आपूरित करता-ते। 'जनु सुनरेस···प्रजा सकल सुख छावत।' गी० २.५०.२

छावन : भकृ०। छाने को, आच्छादन करने, 'गुनिगन बोलि कहेउ नृप माँड़व छावन।' जा० मं० ११३

छावहिंगे : आ०भू०कृ०पुं०प्रब०। भर देंगे, व्याप्त करेंगे। 'अंग-अंग छबि भिन्न-भिन्न सुख निरखि निरखि तहँ तहँ छावहिंगे। गी० ५.१०.२

छावा : भूकृ०पुं० (सं० छादित>प्रा० छाविअ)। छाया हुआ, आवृत किया। 'ध्वज पताक तोरन पुर छावा।' मा० १.१९४.१ (२) छा गया, व्याप्त हुआ, फैला। 'सुजसु पुनीत लोक तिहुं छावा।' मा० १.३६१.४ (३) छावइ। व्याप्त होता है, फैलेगा। 'धरमु···तजें तिहूं पुर अपजसु छावा।' मा० २.९५.६

छावौं : आ०उए० (सं० छादयामि>छावमि>अ० छावउँ)। छाता हूं, छप्पर बनाता हूं। 'कपट दल हरित पल्लवनि छावौं।' विन० २०८.२

छाहँ : छाया में। 'परिखौ पिय छाहँ घरीक है ठाढ़े।' कवि० २.१२

छाहीं : (१) (सं० छायायाम्>प्रा० छाहीहिं)। छाया में। 'पाय पखारि बैठि तरु छाहीं।' मा० २.६७.३ (२) छाँही। आभा, दीप्ति, छटा। 'जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं।' मा० २.३४४.४ (३) प्रतिबिम्ब। 'सुन्दर सिला सुखद तरु छाहीं।' मा० २.२४९.८

छाहैं : (१) छाँह+बहु०। छायाएँ। 'आरत दीन अनाथन को रघुनाथ करैं निज हाथ की छाहैं।' कवि० ७.११ (२) छाहीं। छायाओं में। 'बिलमु न छिन छिन छाहैं।' विन० ६५.५

छिटकि : पूकृ०। छटा बिखेरकर। 'छपा छिटकि छबि छाई।' गी० १.१९.३

छिति : सं०स्त्री० (सं० क्षिति)। (१) भूलोक। 'बनचर देह धरी छिति माहीं।' मा० १.१८८.३ (२) पृथ्वी, भूतल। 'कूदहिं गगन मनहुं छिति छाँड़े।' मा० २.१९१.६ (३) पञ्च महाभूतों में पृथ्वी तत्व। 'छिति जल पावक गगन समीरा।' मा० ४.११.४

छितिपाल : राजा। कवि० ७.१८१

छिद्‌यो : भूकृ०पुं० कए०। (सं० छिद्रित:>प्रा० क्षिद्दिओ)। विद्ध हुआ। 'छिद्‌यो न तरुनि कटाच्छ सर।' दो० ४३८

छिद्र : सं०पुं० (सं०)। (१) छेद, रन्ध्र, सन्धि। 'छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं।' मा० ६.१२.८ (२) दुराव—छिपाव। 'मोहि कपट छल छिद्र न भावा।' मा० ५.४४.५ (३) गुप्ताङ्ग (४) गोपनीय बात। 'जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा।' मा० १ २.६ (५) घात करने का अवसर। 'अखिल खल···छिद्र निरखत सदा।' विन० ५९ ३

छिन : सं०पुं० +क्रि०वि० (सं० क्षण>प्रा० खण=छण) समय का अत्यन्त सूक्ष्म भाग जो क्रियाखंड के संयोग-विभाग से नापा जाता है। 'बिलमु न छिन छिन छाहैं।' विन० ६५.५

छिनि : छीनि। छुड़ा (कर)। 'देखि बधिक बस राजन्मरालिनि लखन लाल छिनि लीजै।' गी० ३.७.२

छिनु : छिन+कए०। क्षण भर, एक क्षण। प्रतिक्षण। मा० २.६९.४

छिनुकु : छिनु। एक क्षण, क्षण भर, थोड़ा-सा। 'कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रम।' मा० २.११४

छिपाइ : छपाइ। छिपा कर, छिप कर। गी० १.८४.४

छिया : (१) सं०स्त्री० (सं०)। विनाश। (२) अव्यय (सं० छि:)। धिक्कार। (३) (अवधी में घृणार्थक) निष्ठा। 'हौं समुझत साईं द्रोह की गति छार छिया रे।' विन० ३३.६

छिरकत : वकृ०पुं० (सं०क्षरत्+कुर्वत्>प्रा० छरक्कंत)। छिड़कते। 'मनहुं अरगजा छिरकत, भरत गुलाल अबीर।' गी० २.४७.१६

छिरकहिं : आ०प्रब०। छिड़कते हैं। 'कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं।' गी० १.२.१६

छिरकैं : छिरकहिं। 'छिटकैं सुगंध भरे मलय रेनु।' गी० ७.२२.३

छींक : सं०स्त्री० (सं० छिक्का)। अकस्मात् नाक से तीव्र वायु-नि:सरण। 'एतना कहत छींक भइ बाएँ।' मा० २.१९२.४

छीके : सं०पुं० अधिकरण (सं० शिक्ये>प्रा० सिक्के)। सिकहर पर। 'यों कहि मागत दहिउ धर्‌यो जो है छीके।' कृ० १०

✓**छीज छीजइ** : (१) (सं० छिछते>प्रा० छिज्जइ) आ०प्रए०। विछिन्न या खंडित होता है, कटता या टूटता है। 'सखि सरोष प्रिय दोष बिचारत प्रेम पीन पन छीजै।' कृ० ४५ (२) (सं० क्षीयते>प्रा० छिज्जइ)। क्षीण या कृश होता है। 'कौन दिनहुं दिन छीजै।' कृ० ७

छीजहिं, हीं : आ०प्रब० (सं० छिद्यन्ते, क्षीयन्ते>प्रा० छिज्जंति>अ० छिज्जहिं) । कटते-मिटते हैं । 'छीजहिं निसिचर दिन अरु राती ।' मा० ६.७२.३

छीजे, जै : छीजइ । (१) विच्छिन्न हो (सं० छिद्यते । 'जेहिं छीजै निसिचर समुदाई ।' मा० ६.७५.६ (२) क्षीण हो (सं० क्षीयते) । 'मज्जनु करिअ समरश्रम छीजे ।' मा० ६.११६.५ (३) क्षीण+विछिन्न हो । 'प्रौढ अभिमान चितवृत्ति छीजै ।' वि०न ४७.२

छीट : सं०स्त्री० । छींट, बूंदों की श्रेणी । 'श्रोनित छीट छटानि जटे ।' कवि० ६.५१

छीन : वि०पुं० (सं० क्षीण, छिन्न>प्रा० क्षीण, छिन्न) । दुर्बल तथा विच्छिन्न= व्यग्रचित्त । 'छुधा छीन बलहीन सुर ।' मा० १.१८१

छीनत : व०कृ०पुं० । दूसरे से बलात् लेते; छीनते, झपट लेते । 'खेलत खात परसपर डहकत छीनत ।' कृ० १६

छीनता : सं०स्त्री० (सं० क्षीणता+छिन्नता) । अल्पता+नाश । 'सुमिरत होत कलिमल छल छीनता ।' विन० २६२.५

छीना : छीन । रहित, शून्य । 'उदासीन सब संसय छीना ।' मा० १.६७.८

छीनि : पूकृ० । छीन कर, झपट-लेकर । 'एक ते एक छीनि लै खाहीं ।' मा० ६ ८८.२

छीनी : भूकृ०स्त्री० । छीन ली, बलात् स्वायत् कर ली । 'दामिनी की छबि छीनी ।' गी० १.४४.१

छीने : भकृ०पुं० । (१) छीने हुए, झपटकर स्वायत्त किए हुए । 'लेत जनु छीने ।' मा० २.११८.७ (२) छीने हुए, क्षीण किये हुए । 'बिकल मनहुं माखी मधु छीने ।' मा० ७६.४ (३) काट दिए, छिन्न कर दिये । 'राम बहोरि भुजा सिर छीने ।' मा० ६ ९.११

छीबो : भकृ०पुं०कए० (सं० छोप्तव्यम>प्रा० छिविअव्वं>अ० छिविअव्वउ) । छूना, स्पर्श करना । 'भलो न भूमि पर बादर छीबो ।' कृ० ६

छीर : सं०पुं० (सं० क्षीर) । दूध । मा० २.६१.१

छीरनिधि : छीर सागर ।

छीरसागर : सं०पुं० (सं० क्षीरसागर) । पुराण प्रसिद्ध समुद्र विशेष जिसमें जल के स्थान पर दूध माना गया है और जिसमें प्रलय में विष्णु शयन करते हैं । मा० १.०.३

छीरसिंधु : छीरसागर । मा० २.२३१

छीरु : छीर+कए० । दूध । मा० २.१५१.२

√छुअ, छुअइ : (सं० छुपति—छुप स्पर्शे>प्रा० छुअइ=छुवइ) आ०प्रए० । छूता है, छुती है । दे० छुऐ ।
छुअत : वकृ०पुं० (सं० छुपत्>प्रा० छुअंत) । छूता, छूते: छूते ही । 'छुअत टूट रघुपतिहि न दोषू ।' मा० १.२७२.३
छुअतहिं : छूते ही । 'छुअतहिं टूट पिनाक पुराना ।' मा० १.२८३.८
छुअति : वकृ०स्त्री० । स्पर्श करती । 'कहै काह, छलि छुअति न छाँही ।' मा० २.२८८.५
छुआ : भूकृ०पुं० (सं० छुप्त>प्रा० छुविअ=छुइअ) । स्पर्श किया । 'रावन बान छुआ नहिं चापा ।' मा० १.२५६.३
छुइ : पूकृ० छूकर । 'जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा ।' मा० २.१९४.३
छुएँ : छू जाने से । 'जा की छाँह छुएँ सहमत व्याध बाधको ।' कवि ७.६८
छुए : भूकृ०पुं०ब० । स्पर्श किए हुए । 'जनक बचन छुए बिरवा लजारू कैसे बीर रहे सकल सकुचि सिर नाइ कै ।' गी० १.८४.६
छुऐ : छुअइ । रा०न० १३
छुऔ : आ०मब० (सं० छुपत>प्रा० छुअह>अ० छुअहु) स्पर्श करो । 'छुऔ माथे हाथ अमी के ।' गी० १.१२.३
√छुट, छुटइ : (सं० छुटति—छुटछेदे>प्रा० छुट्टइ—छूटना, मुक्त होना, बन्धन हटना) आ०प्रए० । छूटता-ती है । 'छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति ।' विन० ८७.४
छुटकाये : छुड़ाने से । 'डरपति जननि पानि छुटकाये ।' गी० १.३२.५
छुटि : पू०कृ० । विच्छिन्न हो (कर) । 'छुटि जाइहि तव ध्यान ।' मा० ६.९९
छुटिहहिं : आ०भ०प्रब० । छूटेंगे, मुक्त हो चलेंगे । 'छुटिहहिं अति कराल बहु सायक ।' मा० ६.२७.६
छुटिहि : आ०भ०प्रए० । छूटेगा-गी । 'मोह शृंखला छुटिहि तुम्हारे छोरे ।' विन० ११४.५
छुड़ाइ : पूकृ० (सं० छोटयित्वा>प्रा० छुड़ाविअ>अ० छुड़ावि) । छुड़ा कर । 'लियो छुड़ाइ चले कर मींजत ।' विन० २४१.२
छुद्धित : छुधित । मा० १.१५७
छुद्र : वि० (सं० क्षुद्र) । तुच्छ, नि:सार, अल्प, लघु, अधम । मा० ३.२८.१५
छुधा : सं०स्त्री० (सं० क्षुध) । बुभुक्षा, भूख । मा० ७.१०२ छं०
छुधावंत : वि०पुं० । भूखा, भूखे । मा० ६.४०.३
छुधित : भूकृ०पुं० (सं० क्षुधित) । बुभुक्षित, भूखे । मा० २.२३५.२

छुभित : भूकृ०वि० (सं० क्षुभित) । विचलित उत्तरङ्गित । 'छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं ।' मा० ६.७९.६

छुरा : सं०पुं० (सं० छुर, क्षुर) । चाकू, कटार । 'मेलें गरे छुरा धार सों ।' कवि० ५.११

छुरी : सं०स्त्री (सं० क्षुरिका, छुरिका) । कटार, कतरनी, चाकू । 'कपट छुरी उर पाहन टेई ।' मा० २.२२.१

छुवत : छुअत । 'सिला छोर छुवत अहल्या भई दिब्य देह ।' गी० १.६७.३

छुवन : भकृ० (सं० छोटतुम्>प्रा० छुविउं>अ० छुवण) । छूने (को) । 'मन के करन चाहैं चरन छुवन ।' गी० ५.४८.२

छुहे : वि०पुं० (सं० सुधित=सुधालिप्त>प्रा० छुहिअ=लिप्त) ब० । रोचना आदि के लेप से युक्त । 'छुहे पुरट घर सहज सुहाए ।' मा० १.३४६.६

छूंछा : छूछा । वि०पुं०ए० (सं० तुच्छ>प्रा० छुच्छ) । सार शून्य, सूना, रिक्त । 'प्रेम भरा मन निज गति छूंछा ।' मा० २.२४२.७

छूछी : छूछा+स्त्री० । 'बोली असुभ भरी सुभ छूछी ।' मा० २.३८.८

छूछें : रिक्त में, अभाव में, शून्य में । 'परेउ मनोरथु छूछें ।' मा० २.३२.२

छूछे : छूछा+ब० । रिक्त, सार शून्य । 'सब छूछे कै कै छाँड़ि गो ।' कवि० ६.२४

छूछो : छूछा+कए० । निस्सार । 'कह्यो है पछोरन छूछो ।' कृ० ४३

छूट : (१) छूटइ । 'हठ न छूट छूटै बरु देहा ।' मा० १.८०.५
(२) भूकृ०पुं० । छूटा हुआ, मुक्त । 'छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान ।' मा० १.५१

✓छूट, छूटइ : (१) सं० छुटति—छुट छेदे>प्रा० छुट्टइ—विच्छिन्न होना; (२) सं० क्षोटति—क्षोट क्षये>प्रा० छुट्टइ—क्षीण या समाप्त होना) आ० प्रए० । (१) समाप्त होता है । 'छूटइ मल किमलहि के धोएँ ।' मा० ७.४९.३
(२) विछिन्न होता-ती-है । 'छूटइ राम करहु जब दाया ।' मा० ४.२१.२४
(३) मुक्त तीव्र गति लेता है । 'छूटइ पबि परबत कहुं जैसें ।' मा० ३.२९.८

छूटउ : आ०--आशंसा, कामना—प्रए० (सं० छुटतु>छुट्टउ) । छूटे, समाप्त हो । 'छूटउ बेगि देह यह मोरी ।' मा० १.५९.७

छूटत : वकृ०पुं० । (१) छूटत, छूटते । 'अति मचत छूटत कुटिल कच ।' गी० ७.१९.४ (२) छूटते हुए (छूटने में) । 'जदपि मृषा छूटत कठिनई ।' मा० ७.११७.४

छूटति : छूटत+स्त्री० । छूटती । 'छूटति छोड़ाए तें ।' विन० २४६.३

छूटहिं : आ०प्रब० । (१) भङ्ग हो जाते हैं । 'छूटहिं मुनि ध्याना ।' मा० १.६१.४
(२) त्यक्त या समाप्त होते हैं । 'जासु कृपा छूटहिं मद मोहा ।' मा०

४.१८.६ (३) मुक्त होते हैं। 'भव बंधन ते छूटहिं।' मा० ७.५८ (४) खुलते हैं। 'छूटहिं भव पासा।' मा० ७.१२६.१

छूटि : (१) छूटी। भङ्ग हुई। 'छूटि समाधि संभु तब जागे।' मा० १.८७.३ (२) खुल गयी। 'मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी।' मा० १.१३५.५ (३) पूकृ०। मुक्त होकर, छूट कर। 'चलिहैं छूटि पुंज पापिन के।' विन० ६५.२

छूटिबे : भ०कृ०पुं०। छूटने। 'छूटिबे के जतन बिसेष बाँधो जाय गो।' विन० ६८.४

छूटीं : छूटी+ब०। छोड़ी गयीं। 'कुसुमांजलि छूटीं।' मा० १.२६५.५

छूटी : भू०कृ०स्त्री०ए०। (१) समाप्त हुई। 'छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी।' मा० ७.११०.१३ (२) बच रही। 'रत्यौ रची बिधि जो छोलत छबि छूटी।' गी० २.२१.१

छूटे : भूकृ०पुं०ब०। (१) खुले। 'मुक्त भए छूटे भव बंधन।' मा० ६.११४.७ (२) बन्धन से विमुक्त हुए। 'छूटे कच नहिं देह सँभारा।' मा० ६ १०४.३ (३) मुक्त होकर तीव्रता से चले। 'छूटे तीर सरीर समाने।' मा० ६.७०.७ (४) छूटइ। समाप्त हो जाती है। 'जैसें दिवस दीप छबि छूटे।' मा० १.२६३.५

छूटै : छूटइ। (१) समाप्त हो सकता है, व्यक्त हो जाय। 'हठ न छूट छूटै बरु देहा।' मा० १.८०.५ (२) खुल सकता-ती-है। 'अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै।' विन० ११५.१

छूट्यो : भूकृ०पुं०प्रए०। छूट गया, समाप्त हो गया। 'सतु सब को छूट्यो।' कवि० ६.४६

छूति : सं०स्त्री० (सं० छुप्ति>प्रा० छुत्ति)। अस्पृश्यता, अशुद्धि। 'करतब छल छूति।' दो० ४११

छेंका : भूकृ०पुं०। घेर लिया। 'गुढ़ पुनि छेंका आइ।' मा० ६.४६

छेंकी : भूकृ०स्त्री०। (१) रुद्ध कर दी, रोक दी। 'सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी।' मा० २.२५५.८ (२) रोकी हुई। 'तनु तजि रहति छांह किपि छेंकी।' मा० २.६७.५

छेत्रु : सं०पुं०कए० (सं० क्षेत्रम्>प्रा० छेत्तं>अ० छेत्रु)। (१) रक्ष क्षेत्र (२) तीर्थ स्थल (३) भू-भाग। 'छेत्रु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा।' मा० २.१०५.५

छेदन : सं० पुं० (सं०)। काटना। 'भव खेद छेदन दच्छ।' मा० ७.१३ छं० २

छेदनिहारा : वि०पुं०। काटने वाला। 'सहसबाहु भुज छेदनिहारा।' मा० १.२७२.८

छेदे : भूकृ०पुं०ब० (सं० छेदित) । काट डाले । 'एक एक सर सिर निकर छेदे ।' मा० ६.६२ छं०

छेम : सं०पुं० (सं० क्षेम) । (१) शुभ, कल्याण । 'छेमकरी कह छेम बिसेषी ।' मा० १.३०३.७ (२) 'योग-क्षेम' के युग्म में क्षेम का अर्थ 'प्राप्त वस्तु की रक्षा' होता है । 'जोग जाय बिनु छेम ।' दो० १०३

छेमकरी : सं०स्त्री० (सं० क्षेमकरी) । मङ्गल सूचक लाल रङ्ग की, चमकीली चील (जिसका उत्तम वर्णन कवि० ७.१८० में हुआ है) । 'छेमकरी कह छेम बिसेषी ।' मा० १.३०३.७

छेमा : छेम । मा० ७.६५.६

छेरी : सं०स्त्री० (सं छेली, छेलिका, छगली) । बकरी । कवि० ५.६

छैया : सं०पुं० । छौना, दुलारा शिशु । 'छगन छबीले छोटे छैया ।' गी० १.२०.२

छैल : छयल । कवि० ६ ३२

छैहै : आ०भ०प्रए० । छा जाएगा, व्याप्त होगा । 'नभ तल बिमल बिमाननि छैहै ।' गी० ५.५०.३

छोट : वि०पुं० । छोटा, ह्रस्व, लघु । मा० १.२१.३

छोटाई : सं०स्त्री० । छुटपना, लघुता । विन० २६२.१

छोटि : छोटी । 'आपु छोटि महिमा बड़ि जानी ।' मा० २.३०३.७

छोटिऐ : छोटी ही । 'छोटिऐ कछौटी कटि, छोटिऐ तरकसी ।' गी० १.४४.१

छोटी : वि०स्त्री० । कवि० ७.१८

छोटे : 'छोट' का रूपान्तर । 'छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता ।' मा० २.२९३.६

छोटेउ : छोटे भी । 'छोटेउ बाढ़े ।' कवि० ७.१२७

छोटो : छोट+कए० । एकमात्र छोटा । 'राम सों बड़ो है कौन, मो सों कौन छोटो ।' विन० ७२.२

छोड़उं : आ०उए० । छोड़ता हूं । बचा देता हूं । 'उतर देत छोड़उं बिनु मारें ।' मा० १.२७५ ७

छोड़ति : वकृ०स्त्री० । छोड़ती, मुक्त करती । 'छोड़ति छोड़ाये तें गहाये तें गहति ।' विन० २४६.३

छोड़ाई : छड़ाई । छुड़ा, मुक्त करा । 'दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई ।' मा० ६.२३.१४

छोड़ाए : भूकृ०पुं०ब० । मुक्त कराये । 'दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए ।' मा० ५.५२.७

छोड़ाये : छोड़ाए । विन० २४६.३

छोड़ावा : भूकृ०पुं०ए०। मुक्त करा दिया। 'सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा।' मा० ६.२४.१६

छोडिए : आ०कवा०प्रए०। 'दोष दुःख दारिद दरिद्र कै कै छोड़िए।' कवि० ७.२५

छोड़ी : सं०स्त्री०। छोटी लड़की। 'छलिन की छोड़ी सो निगोड़ी भोंड़े भील की।' कवि० ७.१८

छोड़ो : भूकृ०पुं०कए०। छोड़ दिया। 'आपन छोड़ो साथ जब।' दो० ५३४

छोना : छौना। कवि० १.१८

छोनिप : सं०पुं० (सं० क्षोणीप)। राजा। मा० १.२४१.७

छोनी : सं०स्त्री० (सं० क्षोणी)। पृथ्वी। मा० २.२३२.२

छोनीपति : छोनिप (सं० क्षोणीपति)। कवि० १.८

छोभ : सं०पुं० (सं० क्षोभ)। खलबली, हलचल, अशान्ति, आवेग। 'मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुं छोभ।' मा० ३.३८

छोभा : भू०कृ०पुं०। क्षुब्ध हुआ, अशान्त हो गया। 'सहज पुनीत मोर मनु छोभा।' मा० १.२३१.३

छोभु : छोभ+कए०। 'संकर उर अति छोभु।' मा० १.४८ ख

छोर : (१) (समासान्त में) वि०पुं०। छोड़ने वाला, मुक्त करने वाला। 'बिबुध बन्दी छोर।' हनु० ६ (२) सं०पुं०। अन्तिम भाग, सिरा। 'सिला छोर छुअत अहल्या भई दिव्य देह।' गी० १.६७.३

✓**छोर, छोरइ** : (सं० क्षोरयति—क्षुर छेदे; छोरति—छुर छेदे>प्रा० छोरइ—काटना, बन्धन उच्छिन्न करना) आ०प्रए०। बन्धन मुक्त करता है। 'देखी भगति जो छोरइ ताही।' मा० १.२०२.४

छोरत : वकृ०पुं०। छोड़ते, खोलते, काटते। 'छोरत ग्रंथि जानि खगराया·····।' मा० ७.११८.६

छोरन : भकृ० अव्यय। खोलने, काटने। 'छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई।' मा० ७.११८.५

छोरि : (१) पूकृ०। खोलकर, निकाल कर। 'दीन्ही है असीस चारु चूड़ामनि छोरि कै।' कवि० ५.२६ (२) आ०—आज्ञा—मए०। तू काट, खोल। 'दुसह दाँवरी छोरि बावरी।' कृ० १५

छोरिबे : भकृ०पुं०। छोड़ने, मुक्त करने। 'छोरिबे को महाराज, बाँधिबे को कोटि भट।' विन० २६०.२

छोरी : (१) छोरि। 'कवन सकइ भव बंधन छोरी।' मा० १.१००.३ (२) भूकृ० स्त्री०। खोली, काट दी। 'गाँठि बिनु गुन की कठिन जड़ चेतन की छोरी अनायास।' गी० १.८८.३

छोरे : भू०कृ०पुं० । (१) खोले, आवरण मुक्त किये । 'प्रान कृपान बीर सी छोरे ।' गी० २.११.२ (२) अलग किये । 'सुदिनु सोधि कल कंकन छोरे ।' मा० १.३६०.१ (३) काटे (काटने या खोलने से) । 'मोह शृंखला छुटिहि तुम्हारे छोरे ।' विन० ११४.५ (४) छीने (छीनकर) । 'लेत सरद ससि की छबि छोरे ।' गी० ३.२.३

छोरै : छोरइ । खोल सकता है । 'जेहिं बाँध्यो सोइ छोरै ।' विन० १०२.५

छोरौ : आ०मब० । खोलो, बन्धनरहित करो । 'हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष वृषभ छोरौ ।' कवि० ५.६

छोलत : वकृ०पुं० । छीलते हुए, छीलते समय । 'रत्यौ रची बिधि जो छोलत छबि छूटी ।' गी० २.२१.१

छोलि : पूकृ० । छीलकर । 'गढ़ि गुढ़ि छोलि छालि कुंद कीसी भाईं बातैं ।' कवि० ७.६३

छोली : छोलि । 'गढ़ि छोली । अवध साढ़साती तब बोली ।' मा० २.१७.४

छोह : संपुं० । कृपापूर्ण ममत्व, दयाभाव, वात्सल्य । 'प्रभु छाड़ेउ करि छोह ।' मा० ३.२

छोहरा : सं०पुं० । लड़का, छोकरा, छोरा । कवि० ५.७

छोहा : छोह । मा० ४.३.२

छोहु, छोहू : छोह+कए० । 'करहिं छोहू सब ।' मा० २.३.४

छौना : सं०पुं० (सं० सवन) । शावक, शिशु । 'मनहुं बिनोद लरत छबि छौना ।' गी० १.२४.५

छ्वै : छुइ । छू कर । 'सकुचाति मही पद पंकज छ्वै ।' कवि० २.१८

ज

जंजीर : सं०स्त्री० (फा० जन्जीर) । लोह-शृंखला । कवि० ७.४४

जंभात : वकृ०पुं० (सं० जृम्भमाण+प्रा० जंभंत) । जँभाई लेते । 'हौ जंभात अलसात तात ।' गी० १.१६.४

ज : सर्वनाम (सं० यद्>प्रा० ज) । जो, जा, जिन आदि का मूल शब्द ।

जं : सर्वनाम (सं० यम्>प्रा० जं) । जिसे, जिसको । मा० ३.३२ छं० ४

जंगम : वि०पुं० (सं०) स्थावर का विलोम । (१) गतिशील, चलता-फिरता । 'जो जग जंगम तीरथराजू ।' मा० १.२.७ (२) परिव्राजक साधु जो चलते रहते हैं । 'जागें जोगी जंगम ।' कवि ७.१०९

जंघ, घा : सं०स्त्री० (सं०) । पैरों के टखने और घुटने के मध्य का मांसल अङ्ग । 'चरन सरोज, चारु जंघा, जानु, अरु, कटि ।' गी० ७.७३.३

जंजाल, ला : सं०पुं० । पाश, जाल, बन्धन, झंझट । मा० १.२११

जंतु : सं०पुं० (सं०) । (१) प्राणी । 'खग मृग जीव जंतु जहँ नाहीं ।' मा० १.११०.११ (२) छुद्र कीट-पतङ्ग । 'गूलरि फल समान तव लंका । बसहु मध्य तुम्ह जंतु असंका ।' मा० ६.३६.३

जंत्र : सं०पुं० (सं० यन्त्र) । (१) बन्धन, शृंखला । (२) बाँधने का स्तम्भ आदि । (३) शल्य आदि उपकरण । (४) ज्योतिष के चक्र आदि । (५) तन्त्र-शास्त्र के रहस्यलेख । 'जंत्र मंत्र' हनु० २६ (६) कोल्हू । 'सुकृत सुमन तिल मोद बासि बिधि जतन जंत्र भरि घानी ।' गी० १.४.१३

जंत्रित : भूकृ० (सं० यन्त्रित) । आबद्ध, नियन्त्रित, संसक्त । 'लोचन निज पद जंत्रित ।' मा० ५ ३०

जंत्री : भूकृ०स्त्री० (सं० यन्त्रिता>प्रा० जंतिआ>अ० जंत्री) । बाँध दी, कील दी, नियन्त्रित कर दी । 'भरत भगति सब कै मति जंत्री ।' मा० २.३०३.२

जंबु : सं०पुं० (सं०) । जामुन का वृक्ष, फरेंद वृक्ष । मा० २.२३७.२

जंबुक : सं०पुं० (सं०) । सियार । मा० ३.२० छं० १ (२) नीच मनुष्य ।

जंबुकनि : जंबुक+संब० । (१) सियारों (ने) । (२) नीच लुटेरों (ने) । 'हाट सी उठति जंबुकनि लूट्यो ।' कवि० ६.४६

जंबुकादि : सियार इत्यादि । कवि०६.२

जइहैं : आ०भ०प्रब० (सं० यास्यन्ति>प्रा० जाइहिंति>अ० जाइहिंहि) । जायंगे (नष्ट होंगे) । 'जइहैं सहित समाज ।' दो० ४१६

जए : (१) जय । 'सुर बिकल बोलहिं जय जए ।' मा० ६.१०२ छं०
(२) भूकृ०पुं०ब० । जीत गये । 'रिपु जनु रनु जए ।' जा०मं०छं० १७

जग : सं०पुं० (सं० जगत्) । (१) विश्वप्रपञ्च । 'जग जस भाजन चातक मीना ।' मा० २.२३४.३ (२) जंगम (स्थावर का विलोम) । 'अगजगमय सब रहित बिरागी ।' मा० १.१८५.७ (३) दोनों का एकत्र प्रयोग : 'अगजगमय जग मम उपराजा ।' मा० ७.६०.५

✓**जग जगइ** : (सं० जागर्ति>प्रा० जग्गइ—प्रबुद्ध होना, सोकर सचेतन होना, सावधान होना, जगमगाना) आ०प्रए० । जगमगाती है । 'जगै छबि मोतिन माल अमोलन की ।' कवि० १.५

जगजननि : सं०स्त्री० (सं० जगज्जननी)। जगदम्बा, परमात्मा की मूल शक्ति। मा० १.४८.२

जगजानी : वि०स्त्री०। विश्व में विदित। कृ० ४६

जगजाल : विश्वप्रपञ्च, विश्वविस्तार। 'को है जगजाल जो न मानत इताति है।' हनु० ३०

जगजोनी : (सं० जगद्योनि) विश्व की उत्पत्ति का मूल कारण। मा० २.२९७ ३

जगत् : सं०पुं० (सं०)। विश्व। मा० ५ श्लो० १

जगत : जगत्, जग। मा० १.३ ख।

जगतपति : (१) जगत्पति (२) (सं० जाग्रत्पति) जागने वालों में श्रेष्ठ। 'गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे राम सुजान।' मा० १.२२६

जगतबंध : विश्व भर के प्रणम्य। मा० १.५०.६

जगतमनि : जगत् में शिरोमणि, विश्व में सर्वोत्तम। कवि ७.११३

जगती : सं०स्त्री० (सं०)। पृथ्वी। 'जगती जामति बिनु बई।' गी० ५.३८.५

जगतीतल : भूतल। पृथ्वीमण्डल। मा० २.४६.१

जगतु : जगत+कए०। मा० २.२६२.१

जगत्पति : परमेश्वर। कवि० ७.२७

जगद् : जगत्। विन० १८.१

जगदंब : जगदंबा।

जगदंबा : (सं०) जगन्माता। दुर्गा, महालक्ष्मी, सीता। 'जगदम्बा जानहु जियँ सीता।' मा० १.२४६.२

जगदंबिका : जगदंबा। मा० १.२४७.१

जगदंबिके : जगदंबिका+सम्बोधन (सं०)। हे जगदीश्वरि! जय जय जगदंबिके भवानी।' मा० १.८१.४

जगदातमा : सं०पुं० (सं० जगदात्मन्)। अन्तर्यामी। 'जगदातमा महेस पुरारी।' मा० १.६४.५

जगदाधार : विश्व का आधार। शेषनाग=लक्ष्मण। 'जगदाधार सेष।' मा० ६.५४

जगदाधारा : जगदाधार। मा० ६.७७.४

जगदीस, सा : सं०पुं० (सं० जगदीश)। परमेश्वर। मा० २.१२१.४; १.६.७

जगदीसु : जगदीस+कए०। एक मात्र ईश्वर। 'हेतु जान जगदीसु।' मा० २ ३८

जगद्गुरु : वि०+सं० (सं०)। विश्व में श्रेष्ठ+विश्व का उपदेशक=परमेश्वर। मा० ३.४९

जगनिवास : जगन्निवास। मा० १.१९१

जगन्निवास : विश्व के अधिष्ठान=राम। 'भई आस सिथल जगन्निवास दील की।' कवि० ६.५२

जगपति : जगत्पति । विन० १३६.६

जगपावनि : वि०स्त्री० (सं० जगत्पावनी) । जगत् को पवित्र करने वाली । 'गए जहाँ जगपावनि गंगा ।' मा० १.२१२.१

जगमगत : वकृ०पुं० । जगमग प्रकाश करता, चमचमाता । 'जगमगत जीनु जराव ।' मा० १.३१६ छं०

जगमगति : वकृ०स्त्री० । जगमगाहट फैलाती, चमचमाती-सी । विद्यमान । 'जगमगति जोरी एक ।' कवि० १.१६

जगमगात : जगमगत । मा० १ ३२५ ३

जगमगि : पूकृ० । देदीप्यमान हो (कर) । 'मनि जटित दुति जगमगि रही ।' गी० ७.१६.३

जगमय : वि०पुं० (सं० जगन्मय) । विश्वरूप, विश्वव्याप्त । 'जगमय प्रभु का बहु कलपना ।' मा० ६.१५.८

जगमूला : जगत् का मूल कारण । मा० १.१४८.२

जगहि : जगत् को । 'जो माया सब जगहि नचावा ।' मा० ७.७२.१

जगाइ : पूकृ० । जगा कर । 'रावन भाइ जगाइ तब कहा प्रसंगु अचेत ।' रा०प्र० ५.७ १

जगाईबो : भकृ०पुं०कए० । जगाना, सावधान या सचेत करना । 'उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ ।' दो० ४८६

जगाई : भूकृ०पुं०ब० जगाये । गी० १.१०३.४

जगाएहि : आ० – भूकृ०पुं०+मए० । तू ने जगाया । 'अब मोहि आइ जगाएहि काहा ।' मा० ६.६३.१

जगायो : भूकृ०पुं०कए० । जगाया, उजागर किया । 'गोरख जगायो जोगु, भगति भगायो लोगु ।' कवि० ७.८४

जगावति, ती : वकृ०स्त्री० । जगाती, शयन से उठाती । 'कबहुं प्रथम ज्यों जाइ जगावति ।' गी० २.५२.२

जगावहु : आ०मब० (सं० जागरयत>प्रा० जग्गावह>अ० जग्गावहु) । जगावो, नींद से उठाओ ।' 'जाहु सुमंत्र जगावहु जाई ।' मा० २.३८.२

जगावा : भूकृ०पुं० (सं० जागरित>प्रा० जग्गाविअ) । जगाया । सचेत किया । 'मुनिहि राम बहु भाँति जगावा ।' मा० ३.१०.१७

जगावौ : जगावहु । 'सोवै सो जगावौ, जागि जागि रे ।' कवि० ५.६

जगु : जग+कए० । जगत् । मा० १.२१६

जगै : जगहृ । दे० √जग ।

जग्य : सं०पुं० (सं० यज्ञ) । हवन आदि वैदिक कर्म । मा० १.१८३.८

जग्यउपबीत : यज्ञोपवीत । जनेऊ । 'पीत जग्य उपबीत सुहाएं ।' मा० १.२४४.२
जग्यकुंडु : सं०पुं०कए० । यज्ञकुण्ड, गहरी हवन वेदी । 'तुलसी समिध सौंज लंक जग्यकुंडु लखि ।' कवि० ५.७
जग्योपबीत : जग्यउपबीत । गी० १.१०८.६
जच्छ : सं०पुं० (सं० यक्ष) । देवजाति विशेष । मा० १.१७९.४
जच्छपति : यक्ष जाति के राजा=कुबेर । मा० १.१७९.२
जच्छेस : जच्छपति (सं० यक्षेश) । कुबेर । कवि० ७.११५
जजाति, ती : सं०पुं० (सं० ययाति) । चन्द्रवंश का एक राजा । मा० २.१७३.८
जजाती : जजाति । 'सुरपुर तें जनु खसेउ जजाती ।' मा० २.१४८.६
जजुट : सं०पु० (सं० यजुर्—वेद) 'रिगु जजुट अथर्बन साम को ।' विन० १५५.२
जटजूट : जटाजूट । मा० ३.१८ छं०
जटनि : जटा+संब० । जटाओं । 'माथे मुकुट जटनि के ।' कवि० २.१६
जटा : सं०स्त्री० (सं०) । अप्रसाधित केशकलाप, लुटराये-उलझे केशों का पुञ्ज । मा० १.२६८.५
जटाइ : जटायु । 'सराधु कियो सबरी जटाइ को ।' कवि० ७.२२
जटाजूट : सं०पुं० (सं०) । जटाओं का जूड़ा, लुटराये केशकलाप का बंधा हुआ स्तूपाकार पुञ्ज । मा० २.३२४.३
जटापटल : सं०पुं० (सं०) । जटाओं का समूह, जटाजूट । गी० ५.२२.२
जटाय : जटायु । 'गीध जसी जटाय ।' गी० ७.३१.४
जटायु, यू : सं०पुं० (सं० जटायुष्) । रामायण कथा में एक गृध्र का नाम । मा० ३.२९.१४
जटित : वि० (सं०) । जड़ा हुआ, जड़ी हुई, खचित । 'किंकिनी कलित कटि हाटक जटित मनि ।' गी० १.३३.२
जटिल : वि०पुं० (सं०) । जटाधारी । 'जोगी जटिल अकाम मन ।' मा० १.६७
जटे : भूकृ०पुं० (सं० जटित) । जड़े हुए, गुम्फित । 'श्रोनित छीट छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं ।' कवि० ६.५१
जटो : भूकृ०पुं०कए० । जटित, जड़ा हुआ, जकड़ा हुआ, गुंफा हुआ । 'सबु लागत फोकट झूठ-जटो ।' कवि० ७.८६
जठर : सं०पुं० (सं०) । उदर, गर्भ । 'जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला ।' मा० १.१४२.६
जठरागी : सं०पुं०+स्त्री० (सं० जठराग्नि) । आमाशय की पाचक शक्ति । 'जिमि सो असन पचवै जठरागी ।' मा० ७.११९.९

जठेरि, री : वि०स्त्री० (सं० ज्येष्ठतरा>प्रा० जेट्ठयरी), श्रेष्ठ तथा वय में बड़ी। 'बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी।' मा० २.४६.३

जठेरिन्ह : जठेरि+संब०। वयस्काओं (ने)। बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों ने। 'जरठ जठेरिन्ह आसिरबाद दये हैं।' गी० १.११.४

जड़ : (१) वि०+सं० (सं०)। स्थिर, गतिहीन। कृ० २४ (२) मूर्ख। 'छीनि लेइ जानि जानि जड़।' मा० १.१२५ (३) अचेतन तत्त्व। 'जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।' मा० १.६ (४) महाभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश। 'जड़ पंच मिलै जेहिं देह करी।' कवि० ७.२७

जड़ता : सं०स्त्री० (सं०)। कठोरता, अचेतनता। मा० १.२५८.७

जड़ताईं : जड़ता से, व्यामोहवश। 'अपनी जड़ताईं—तुम्हहि सुगाइ।' मा० २.१८४.६

जड़ताई : जड़ता। मा० १.७८.४

जड़न्ह : जड़+संब०। जड़ तत्त्वों। 'जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी।' मा० १.८५.३

जड़मति : वि० (सं०)। मूढ़बुद्धि, दुर्बुद्धि। मा० ६.१०१ क

जड़हि : जड़ को, अचेतन को। 'जड़हि करइ चैतन्य।' मा० ७.११६ख

जत : वि०पुं०। जितना, जितने। 'जड़ चेतन जग जीव जत।' मा० १.७ग

जतन : सं०पुं० (सं० यतन, यत्न)। (१) उपाय। 'नाम निरूपन नाम जतन तें।' मा० १.२३.८ (२) प्रयास। 'करि देखा हर जतन बहु।' मा० १.६२ (३) युक्ति। 'करौं जादू सोइ जतन बिचारी।' मा० १.१३१.७ (४) साधना। 'जेहि कारन मुनि जतन कराहीं।' मा० १.१४६.४

जतनु : जतन+कए०। 'करेहु जाइ सोइ जतनु बिचारी।' मा० १.५२.३

जति, ती : (१) सं०पुं० (सं० यति)। संयमी, योगी। 'जतिहि अबिधा नास।' मा० २.२६ (२) सं०स्त्री० (सं० यति)। विराम, सीमा। 'जंघा कदली जाति।' गी० ७.१७.४

जतिन्ह : जाति+संब०। यतियों, योगियों। 'दंड जतिन्ह कर भेद जहँ।' मा० ७.२२

जती : जति। योगी। 'सोचिअ जती प्रपंचरत।' मा० २.१७२

जत्रु : सं० (सं०)। गले की दो हड्डियाँ जिन्हें हँसुली कहते हैं। 'गूढ जत्रु बनि पीन अंस तति।' गी० ७.१७.१०

जथा : अव्यय (सं० यथा)। जिस प्रकार, जैसा, जैसे। 'जथा बंस ब्यवहारु।' मा० १.२८६ (२) समान। 'सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी।' मा० १.५१.१

जथाजोग : क्रि०वि० (सं० यथायोग्य>प्रा० जहाजोग्ग) । योग्यतानुसार । 'जथा-जोग सनमानि प्रभु ।' मा० २.१३४ (२) यथोचित ।

जथाजोगु : जथाजोग (सं० यथायोग्यम्>प्रा० जहाजोग्गं>अ० जहाजोग्गु) । 'जथाजोगु निज कुल अनुहारी ।' मा० १.२२४.७

जथाथिति : क्रि०वि० (सं० यथास्थिति) । स्थिति के अनुरूप; जैसा था वैसा, पूर्ववत् स्थिति में । 'भयउ जथाथिति सब संसारू ।' मा० १.८६.२

जथाबिधि : क्रि०वि० (सं० यथाविधि) । विधिपूर्वक, विधान के अनुसार । 'मिले जथाबिधि सबहि प्रभु । मा० १.३०८

जथामति : क्रि०वि० । बुद्धि के अनुसार । मा० २.२७२.१

जथारथ : क्रि०वि० (सं० यथार्थ) । अर्थ के अनुसार, जैसा अर्थ है उसी के अनुरूप । 'बोध जथारथ बेद पुराना ।' मा० ३.४६.५

जथारथु : जथारथ । तत्त्वतः, वस्तु स्वभाव के अनुसार, यथार्थतः । 'नीति प्रीति परमारथु स्वारथु । कोउ न राम सम जान जथारथु ।' मा० २.२५४.५

जथारुचि : क्रि०वि० । रुचि के अनुरूप । 'अबिनय बिनय जथारुचि बानी ।' मा० २.३००.८

जथालाभ : क्रि०वि० । जितना मिले उतने में; लाभ के ही अनुसार । 'जथालाभ संतोषा ।' मा० ३.३६.४

जथाश्रुत : क्रि०वि० (सं० यथाश्रुत) । (१) आगमों के अनुसार (२) जैसा सुना है उसी के अनुसार । 'तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी ।' मा० १.११४.५

जथोचित : जथाजोगु (सं० यथोचित) । जैसा उचित हो तदनुसार । 'सबहि जथो-चित आसन दीन्हे ।' मा० १ १००.१

जदपि : क्रि०वि० अव्यय (सं० यदपि, यद्यपि) । मा० १.१५०.५

जदु : सं०पुं० (सं० यदु) । यादवों के पूर्वपुरुष=ययाति के पुत्र जिनके वंश में कृष्ण ने अवतार लिया था । मा० १.८८.१

जदुनाथ : यादवों के स्वामी+यदुवंश में श्रेष्ठ=श्रीकृष्ण ।

जदुराइ, ई : (दे० राई) । यदुराज श्रीकृष्ण । कृ० १

जद्यपि : जदपि । मा० १.२६४.२

जन : सं०पुं० (सं०) (१) लोग । 'जोगिजन'—मा० २.२७६ छं० (२) भक्त, दास । 'कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं ।' मा० १.१२२.१

√जन, जनइ : (सं० जनयति>प्रा० जणइ—उत्पन्न करना, प्रादुर्भूत करना) आ० प्रए० । जनन करता है । 'जो फल चारि चार्‌यौ जनै ।' गी० ५.४०.१

जनक : वि०+सं० (सं०) । (१) उत्पादक । 'तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी ।' मा० १.१५०.६ (२) पिता । 'जननी जनक बंधु सुखदाता ।' मा० २.४३.३

(३) मिथिला देश—जैसे, जनकपति। (४) मिथिला का राजा। (५) मिथिला नरेश=सीरध्वज जिनकी पुत्री सीता थीं। 'जनकतनया' मा० १.२३१.१

जनकपति : जनक देश का राजा=सीरध्वज=सीता के पिता। मा० २.२७५.२

जनकपुर : जनक देश की राजधानी। मा० १.२१८.१

जनकपुरु : जनकपुर+कए०। मा० १.३१४.४

जनकराज : जनकपति। मा०२.२८१ ३

जनकसुतहि : जानकी को। 'जनकसुतहि समुझाइ करि।' मा० ५.२७

जनकसुता : जानकी=सीता। मा० १ १८.८

जनकु : जनक+कए०। राजा सीरध्वज=जानकी के पिता। मा० १.२४४.४

जनको : जनक भी, पिता भी। 'हितू जननी न जनको।' कवि० ७.७७

जनकौर : सं०पुं० (सं० जनकपुर)। सिय नैहर जनकौर नगर नियराइन्हि।' जा० मं० १२०

जनकौरा : वि०पुं० (सं जनकपौर)। जनकपुर-वासी। 'कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोक बस बौरा।' मा० २.२७१.१

जनतेउँ : क्रियाति० पुं०उए०। (यदि) मैं जानता। 'जौं जनतेउँ बिनु भट भुबि भाई। तौ पनु करि होतेउँ न हँसाई।' मा० १.२५२.६

जननि : सं०+वि०स्त्री० (सं०)। जन्म देने वाली, माता। मा० १.१८.७

जननिन्ह : जननि+संब०। माताओं (ने)। 'जननिन्ह सादर बदन निहारे।' मा० १.३५८.८

जननिहि : माता को। मा० १.९७.५

जननीं : (१) जननी+ब० माताएं। 'निमखहिं छबि जननीं तृनतोरी।' मा० १.१९८.५ (२) जननी ने। 'बहु बिधि जननीं कीन्ह प्रबोधा।' मा० १.६३.८

जननी : जननि। मा० १.२०१.५

जनपद : सं०पुं० (सं०)। देश, राज्य, राष्ट्र। गी० १.४.३

जनपालक : भक्तों के तथा जनता के रक्षक, मा० ७.२८.७

जनम : सं०पुं० (सं० जन्मन्)। (१) उत्पत्ति, प्रसव। मा० १.३४.६ (२) सम्पूर्ण जीवन। 'जनम गयउ हरि भगति बिनु।' मा० १.१४२

✓**जनम, जनमइ** : जनम+प्रए०। जन्म लेता है। 'जग जनमइ बायस सरीर धरि।' मा० ७.१२१.२४

जनमत : जनम+वकृ०। (१) उत्पन्न होता। 'जनमत जगत जननि दुख लागी।' विन० १४०.३ (२) उत्पन्न होते ही। 'जनमत काहे न मारे मोही।' मा० २.१६१.७ (३) जन्म देती। 'सुन्दर सुत जनमत मैं ओऊ।' मा० १.१९५.१

जनमथल : जन्म का स्थान। कवि० ७.१३८

जनमपत्रिका : जन्मकुण्डली जिसमें जन्मकाल की ग्रहस्थिति आदि का ब्योरा रहता है। दो० २६८

जनमफलु : जनमफल+कए०। जीवन का एकमात्र फल, परम पुरुषार्थ। मा० २.१२१.८

जनमा : जनम+भू०कृ०पुं०। उत्पन्न हुआ। 'नहिं अस कोउ जनमा जग माहीं।' मा० १.६०.८

जनमि : (१) जनमी। उत्पन्न हुई। 'जौं जनमि त भइ काहे न बाँझा।' मा० २.१६४.४ (२) पूकृ०। जन्म लेकर, उत्पन्न होकर। 'भए जग जनमि जनकपुर बासी।' मा० १.३१०.४

जनमीं : जनमी+ब०। उत्पन्न हुईं। 'जनमीं पारवती तनु पाई।' मा० १.६५.६

जनमी : जनम+भूकृ०स्त्री०। उत्पन्न हुई। 'जनमी जाइ हिमाचल गेहा।' मा० १.८३.२

जनमु : जनम+कए०। 'जद्यपि जनमु कुमातु तें।' मा० २.१८३

जनमे : जनम+भूकृ०पुं०ब०। उत्पन्न हुए। 'जनमे एक संग सब भाई।' मा० २.१०.५

जनमेउं : आ०—भूकृ०पुं०+उए०। मैंने जन्म लिया। 'कवन जोनि जनमेउं जग नाहीं।' मा० ७.९६.८

जनमेउ : जनम+भूकृ०पुं०कए०। उत्पन्न हुआ। 'तब जनमेउ षटबदन कुमारा।' मा० १.१०३.७

जनम्यो : जनमेउ। कवि ७.३२

जनयत्री : वि०स्त्री० (सं० जनयित्री)। उत्पन्न करने वाली, जननशीला। 'द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री।' मा० ७.३८.६

जनवास : सं०पुं० (सं० जन्य=दूल्हा तथा सहयात्री+बास>प्रा० जन्नवास)। बारात ठहरने का स्थान। 'गईं जहाँ जनवास।' १.३०८

जनवासा : जनवास मा० १.३०८.६

जनवासे : (१) जनवासा का रूपान्तर। 'जनवासे कहुं चले लवाई।' मा० १.३०६.४ (२) (सं० जन्यवासे—प्रा० जण्णवासे)। जनवास में। 'गे जनवासे राउ।' जा०मं० १५८

जनवासेहिं : जनवास में। 'उबरा सो जनवासेहिं आवा।' मा० १.३२६.७

जनवासेहि : जनवासे को। 'जनवासेहि चले।' जा०मं० छं० २०

जनाइ : (१) पकृ० (सं०ज्ञापयित्वा>प्रा० जाणाविअ>अ० जाणावि। जता कर। 'कहिबी नाम दसा जनाइ।' विन० ४१.३ (२) जनाई। बतायी। 'आपनि बात जनाइ।' रा०प्र० ५.२.७

जनाई : (१) भूकृ०स्त्री० (सं० ज्ञापिता>प्रा० जाणाविआ)। निवेदित की, जताई। 'भूप द्वार तिन्ह खबरि जनाई।' मा० १.२६०.२ (२) विदित की हुई। 'अपराध अगाधनि में ही जनाई।' कवि० ७.४३ (३) जनाइ। जता कर। 'बोलेउ अधिक सनेह जनाई।' मा० १.१६१.७ (४) सं०स्त्री० (सं० ज्ञप्ति>प्रा० जाणाविई)। पहचान, परख, प्रकटीभाव। 'कपट चतुर नहिं होइ जनाई।' मा० २.१८.४

जनाउ : सं०पुं०कए० (सं० ज्ञाप:>प्रा० जाणावो>अ० जाणावु)। सूचना। 'भीतर करहु जनाउ।' मा० १.३३२

जनाएँ : (सं० ज्ञापितेन>प्रा० जाणाविएण>अ० जाणाविएँ) जताने से, विज्ञापित करने से। 'प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ।' मा० १.१६२.२

जनाए : भूकृ०पुं०(सं० ज्ञापित>प्रा० जाणाविअ) ब०। (१) जताए, प्रकट किये। 'लिखि नाम जनाए।' गी० १.६.७ (२) प्रकट हुए। 'राम सीय तन सगुन जनाए।' मा० २.७.४

जनायउ, ऊ : भूकृ०पुंकए० (सं० ज्ञापित>प्रा० जाणाविओ>अ० जाणावियउ)। जताया, सूचित किया। 'लखि रुख रानि जनायउ राऊ।' मा० २.२८७.८

जनायो : जनायउ। 'मख राखि जनायो आपु।' गी० ६.१.२

✓**जनाव, जनावइ** : (सं० ज्ञापयति>प्रा० जाणावइ—बताना, जतलाना, सूचित करना, प्रकट करना) आ०प्रए०। ज्ञापित या सूचित करता है। 'मन अति हरष जनाव न तेही।' मा० ३.२६.८

जनावउँ : आ०उए० (सं० ज्ञापयामि>प्रा० जाणावमि>अ० जाणावउँ)। जताता हूं, ज्ञापित करता हूं। 'मैं न जनावउँ काहु।' मा० १.१६१

जनावत : वकृ०पुं० (सं० ज्ञापयत्>प्रा० जाणावंत)। प्रकट करता, जान पड़ता। 'हरि निरमल मल ग्रसित हृदय असमंजस मोहि जनावत।' विन० १८५.३

जनावहिं : आ०प्रब० (सं० ज्ञापयन्ति>प्रा० जाणावंति>अ० जाणावहिं) प्रकट करते हैं। 'बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा।' मा० १.२५५.३

जनावहु : आ०मब० (सं० ज्ञापयत>प्रा० जाणावह>अ० जाणावहु)। जताओ, ज्ञात कराओ। 'तौ कहि प्रगट जनावहु सोई।' मा० २.५०.६

जनावा : भूकृ०पुं० (सं० ज्ञापित>प्रा० जाणाविअ)। जताया, व्यक्त किया। 'निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा।' मा० १.५४.३

जनावौं : जनावउँ। विन० १४२.७

जनि : निषेधार्थक अव्यय (अ० जाणि)। 'सोक कलंक कोठि जनि होहू।' मा० २.५०.१

जनिअहिं : आ०-कवा०-प्रब० (सं० ज्ञायन्ते>प्रा० जाणीअंति>अ० जाणीअहिं)।

(१) जान पड़ते हैं। 'पल सम होहिं न जनिअहिं जाता।' मा० २.२८०.८
(२) जाने जायें। 'रहत न जनिअहिं प्रान।' मा० २.६६

जनित : भूकृ० (सं०)। उत्पादित। 'देहजनित अभिमान छड़ावा।' मा० ४.२८.६

जनिबे : जानिबे। जानने। 'जनिबे को रघुराउ।' दो०२०२

जनियत : जानियत। जाने जाते रहे (हैं)। 'तुलसी राम जनमहिं तें जनियत।' गी० १.४६.३

जनिहैं : (१) जानिहैं। समझेंगे। (२) आ०प्रब० (सं० जनयिष्यन्ति>प्रा० जणिहिंत>अ० जणिहिहिं)। जनेंगे, उत्पन्न करेंगे। 'चलिहैं छूटि पुंज पापिन के, असमंजस जिय जनिहैं।' विन० ६५.२

जनी : (१) वि०स्त्री० (सं० जनि=जनी)। स्त्री+माता, जननी। 'सकल सुमंगल मनि जनी।' गी० ५ ३६.५ (२) भूकृ०स्त्री०। उत्पन्न की। 'पुरी···सुमति जननी जनु जनी।' गी० १.५१ (३) उत्पन्न हुई। 'सरस सुषमा जनी।' गी० ७ ५.३

जनु : (१) अव्यय (अ० जणु)। जैसे। 'जनु बहु मनसिज रति तनु धारी।' मा० १.१३०.१ (२) मानों। 'जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू।' मा० २ ३७.१ (३) जन+कए०। अनन्य जन। 'जब लगि जनु न तुम्हार।' मा० २.१०७

जनेउ : जनेऊ। 'चारु जनेउ माल मृग छाला।' मा० १.२६८.७

जनेऊ : सं०पुं० (सं० यज्ञोपवीत>प्रा० जण्णोवईअ)। द्विजों द्वारा धारणीय यज्ञ-सूत्र। मा० १.१४७.७

जनेत : सं०स्त्री० (१) (सं० जन्य यात्रा—जन्य=दूल्हा तथा उसके साथी>प्रा० जण्णयत्ता>अ० जण्णयत्त)। बरात। 'भूत पिसाच प्रेत जनेत ऐहैं साजि कै।' पा०मं०छं० ७ (२) (सं० जन्यायात्रा)। बधू को साथ लिए हुए बरात (जन्या=वधू)। 'पहुंची आइ जनेत।' मा० १.३४३

जनेषु : (सं० पद) लोगों में। 'अह मम मलिन जनेषु।' मा० २.२२५

जनेस : सं०पुं० (सं० जनेश)। राजा। 'हमरें जान जनेस बहुत भल कीन्हेउ।' जा० मं० ६७

जनेसु : जनेस+कए०। 'जेहि जनेसु देइ जुबराजू।' मा० २.१४.२

जनै : दे० √जन।

जनैगी : आ०भ०स्त्री०प्रए०। उत्पन्न करेगी+प्रसव करेगी। 'प्रभु की बिलंब अंब दोष दुख जनैगी।' विन० १७६.५

जन्म : जनम। मा० १.३४.८

जन्मत : जनमत। 'जन्मत भयउँ सूद्र तनु पाई।' मा० ७.६७.१

जन्म दरिद्र : जन्म से दरिद्र, दरिद्र होकर (दरिद्र माता-पिता से) उत्पन्न। मा० १.२८६ ३

जन्मभूमि : सं०स्त्री० (सं०) अपने जन्म का भूभाग। मा० ७.४.५

जन्मु : जन्म+कए०। 'पारबती कर जन्मु सुनावा।' मा० १.७६.७

जन्मौं : जन्म+उए०। जन्म लूं। 'जेहि जोनि जन्मौं कर्मबस तहँ राम पद अनुरागऊँ।' मा० ४.१० छं० २

जन्यो : भूकृ०पुं०कए० (सं० जनितः>प्रा० जणिओ>अ० जणियउ)। उत्पन्न किया। 'अदिति जन्यो जग भानु।' गी० १.२२.११

जप : सं०पुं० (सं०)। मन्त्र (आदि) का सूक्ष्म उच्चारण—जिसके तीन भेद किये गये हैं (१) किंचित् श्रव्य (२) उपांशु=जिसमें मुख के बाहर ध्वनि न निकले (३) मानस जप=जिसमें मंत्र के अक्षरों का ध्यान मात्र होता है। उत्तरोत्तर फल में अधिकता बताई गयी है। जपयज्ञ। मा० १.१३१.८

जपंत : जपत। मा० ३.३२ छं०

✓**जप, जपइ** : (सं० जपति>प्रा० जप्पइ—जप करना) आ०प्रए०। जपता-ती-है। 'जागिबो जो जीह जपै नीकें राम नाम को।' कवि० ७.८३

जपउं : आ०उए०। जपता हूं, जपा करता हूँ (था)। 'जपउँ मंत्र सिव मंदिर जाई।' मा० ७.१०५.८

जपजाग : अनुष्ठान के रूप में जपकर्म; जप का नियम से विधान के अनुसार अनुष्ठान। 'समन अमित उतपात सब भरत चरित उपजाग।' मा० १.४१

जपत : वकृ०पुं० (सं० जपत्>प्रा० जप्पंत)। जपता, जपते। 'उमा सहित जेहि जपत पुरारी।' मा० १.१०.२

जपति : जपत+स्त्री०। जपा करती। मा० ५.८.८

जपन : भकृ०। जप करने। 'अस कहि लगे जपन हरि नामा।' मा० १.५२ ८

जपने : भकृ०पुं०ब० (सं० जपनीय)। 'गौरि गिरापति नहिं जपने।' कवि० ७.७८

जपहिं : आ०प्रब० (सं० जपन्ति>प्रा० जप्पंति>अ० जप्पहिं)। जप करते हैं। 'साधक नाम जपहिं लय लाएं।' मा० १.२२.४

जपहि : जपु (सं० जप>प्रा० जप्पहि)। तू जप। 'मंत्र सो जाइ जपहि।' विन० २४.४

जपहु : आ०मब० (सं० जपत>प्रा० जप्पह>अ० जप्पहु)। जपो। 'जपहु जाइ संकर सत नामा।' मा० १.१३८.५

जपामि : आ०उए० (सं०)। जपता हूं। मा० ७.१४ छं० ६

जपि : पूकृ०। जप करके। 'जपि जेईं पिय संग भवानी।' मा० १.१९.६

जपिए, ये : आ०कवा०प्रए० (सं० जप्यते>प्रा० जप्पीअइ) । जपा जाय । 'महामंत्र जपिये सोई जेहि जपत महेस ।' विन० १०८.२

जपिहै : आ०भ० (१) प्रए० (सं० जपिष्यति>प्रा० जप्पिहिइ) । वह जपेगा । (२) मए० (सं० जपिष्यसि>प्रा० जप्पिहिसि>अ० जप्पिहिहि) । तू जपेगा । 'राम जीह जौ लौं तू न जपिहै ।' विन० ६८.१

जपु : आ०—आज्ञा—मए० (सं० जप>प्रा० जप्प>अ० जप्पु) । तू जप । 'जपु राम नाम षटमास ।' दो० ५

जपें : जपने से । 'जहाँ बालमीकि भए ब्याध ते मुनिद साधु 'मरा मरा' जपें ।' कवि० ७.१३८

जपे : जपें । 'राम नाम के जपे जाइ जिय की जरनि ।' विन० १८४.१

जपेउ : भूकृ०पुं०कए० । जपा, जप किया । 'ध्रुवं सगलानि जपेउ हरि नाऊँ ।' मा० १.२६.५

जपैं : जपहिं । 'हर से हरनिहार जपैं जाके नामै ।' गी० ५.२५.२

जपै : दे० √जप ।

जप्यो : जपेउ । 'जीहहू न जप्यो नाम ।' विन० ३६१.२

जब : अव्यय । जिस समय । मा० १.३.५

जबहिं, हीं : जभी, ठीक जिस समय, ज्योंही । 'आदि सृष्टि उपजी जबहिं ।' मा० १.१६२

जबहूं : जब भी, जो कभी । 'सुरपति सरिस होइ नृप जबहूं ।' मा० ७.१२८.५

जबै : जबहिं । कवि० ७.५१

जम : सं०पुं० (सं० यम) । (१) यमराज, मृत्युदेव । मा० १.१७५ (२) अष्टाङ्ग योग का प्रथम अङ्ग० जिसके पाँच भाग हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह । 'क्षम जम नियम फूल फल ग्याना ।' मा० १.३७.१४

जमकातरि : सं०स्त्री० (सं० यमकर्तरी>प्रा० जमकत्तरी>अ० जमत्तरि) । मृत्यु देव की तलवार, यमधारा (जमधार) । 'तोरि जमकातरि मदोदरी कढोरि आनी ।' हनु० २७

जमगन : सं०पुं० (सं० यमगण) । यमदूत । विन० ६६.३

जमघट : सं०पुं० । यमदूत । 'तौ जमघट साँसतिहेर हम से बृषभ खोजि खोजि बहते ।' विन० ६७.४ 'जमघट' समूह या जमाव का अर्थ भी देता है जिसे त्रिदोषज सन्निपात रोग का आशय भी निकलता है—'धक्का दै दै जमघट थके ।' विन० २६७.२

जमजातना : सं०स्त्री० (सं० यम-यातना) । नारकीय व्यथा । नरक । 'जमजातना सरिस संसारू ।' मा० २.६५.५

जम जातनामई : (दे० मई) । यमयातना से व्याप्त, नरक की प्रचुरता । 'कीजै मो को जम जातनामई ।' विन० १७१.१

जमदूत, ता : सं०पुं० (सं० यमदूत) । मृत्यु-सन्देशवाहक देवविशेष ।' मा० २.८३.७

जमधार : (१) सं०पुं० (सं० यमधार) । दुधारी तलवार । (२) सं०स्त्री० (सं० यमधारा) । यमराज की सेना, धारा प्रवाह यमदूतों की श्रेणी ।'जमधार सरिस निहारि सब नर नारि चलिहर्हि भाजि कै ।' पा०मं० छं० ७

जमधारि : जमधार । 'करि बिचार भव तरिय, परिय न कबहुं जमधारि ।' विन० २०३.१८

जमन : (१) यवन । मा० २.१९४ (२) मेच्छ, मुस्लिम । 'जमन महा महिपाल ।' दो० ५५९

जमनिका : सं०स्त्री० (सं० जवनिक=यमनिका) । आवरण, पर्दा, (नाटक का पर्दा) । 'हृदयँ जमनिका बहु बिधि लागी ।' मा० ७.७३.८

जमपास : सं०पुं० (१) सं० यमपाश>प्रा० जमपास) । मृत्यु जाल । (२) (सं० यमपार्श्व>प्रा० जमपास) । मृत्यु के समीप । 'नामु रटो, जम-पास क्यों जाउँ, को आइ सकै जम किंकरु नेरें ।' कवि० ७.९२

जमपुर : सं०पुं० (सं० यमपुर) । यमलोक । मा० १.२८०.६

जमराज : सं०पुं० (सं० यमराज) । यमदेव, मृत्युदेव । रा०प्र० ५.३.६

जमात : सं०स्त्री० (अरबी—जमाअत) । यूथ, समुदाय । 'जोगि जमात बरनत नहिं बनै ।' मा० १.९३ छं०

जमाति : जमात । 'जोगिनी जमाति कालिका कलाप तोषिहैं ।' कवि० ६.२

जमाती : (१) जमाति (२) जमात या मण्डली बनाकर रहने वाला । 'जती जमाती ध्यान धरैं ।' कवि० ७.१०९

जमानो : सं०पुं०कए० (फा० जमानः) । युग, कालखण्ड, दौर । 'जाहिर जहान में जमानो एक भाँति भयो ।' कवि० ७.७९

जमालय : सं०पुं० (सं० यमालय) । यमलोक, नरक । विन० १४४.२

√जमाव जमावइ : (१) (सं० यम यति>प्रा० जमावइ—स्थिर करना, रोपना, घमीभूत करना (२) सं० जनयति—जन्मयति>प्रा० जम्मावइ—उत्पन्न करना) आ०प्रए० । स्थिर करे+घनीभूत करे (दूध से दही करने का उपक्रम करे) । 'धृति सम जावनु देइ जमावै ।' मा० ११७.१४

जमिहर्हि : आ०भ०प्रब० (सं० जनिष्यन्ते>प्रा० जम्मिर्हिति>अ० जम्मिहर्हि) । जमेंगे, उगेंगे । 'जमिहर्हि पंख करसि जनि चिंता ।' मा० ४.२८.९

जमी : वि०पुं० (सं० यमिन्>प्रा० जमी)। संयमी, योगी। 'देखि लोग सकुचात जमी से।' मा० २.२१५.५

जमु : जम+कए०। मृत्यु देवता। 'केहि जमु यह लीन्हा।' मा० २.२६.१

जमुन : जमुना। मा० १.१४७

जमुनहिं : यमुना पार, यमुना में 'बीच बास करि जमुनहिं आए।' मा० २.२२०.८

जमुनहि : यमुना को। 'जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी।' मा० २.११२.१

जमुना : सं०स्त्री० (सं० यमुना>प्रा० जमुणा)। नदी विशेष। मा० १.३१.११

जमुहात : वकृ०पुं० (सं० जृम्भमाण>प्रा० जंभंत>अ० जम्हंत)। जँभाई लेता-ते। 'राम कहत जमुहात। मा० २.३११

जमुहान : भूकृ०पुं० (प्रा० जम्माण>जम्हाण)। जँभाया (जंभाई ली)। 'कुंभकरनु जमुहान।' रा०प्र० ५ ७.२

जमुहाहिं, हीं : आ०प्रब०। जँभाते हैं। 'राम राम कहि जे जमुहाहीं।' मा० २.१९४.५

जम्यो : भूकृ०पुं०कए०। जम गया, घनीभूत हो गया। 'रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो।' मा० ६.५३

जय : सं०पुं०+स्त्री० (सं०)। (१) विजय, जीत। 'निज पुर गवने जय जसु पाई।' मा० १.१७५.८ (२) विष्णु के एक द्वारपाल का नाम। मा० १.१२२.४ (३) प्रणाम सूचक शब्द। जय हो। 'जय जय सुर नायक।' मा० १.१८६.१ (४) एक संवत्सर का नाम। 'जय संबत फागुन सुदि।' पा०मं० ५ (५) अभ्युदय कामना में जय शब्द। 'जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा।' मा० ६.१०३.१० (६) दे० जयति।

जयंत, ता : सं०पुं० (सं० जयन्त)। इन्द्र का पुत्र। मा० २.१४१; ३.२.६

जयऊ : भूकृ०पुं०कए०। जीत गया। 'भरत धन्य, तुम्ह जसु जग जयऊ।' मा० २.२१०.६ दे० जयति।

जयकर : वि० (सं०)। विजेता। 'जय जयंत जयकर।' कवि० ७.११३

जयकार, जय जयकार : जयध्वनि, जयघोष, 'जयजय' ध्वनि। ६.७६

जयजीव : (जय=विजयी हो, सर्वोपरि रहो+जीव=जिओ)। ब्राह्मण द्वारा राजा को कहा हुआ आशीर्वाद—विजय प्राप्त करो और चिरंजीवी होओ। 'कहि जयजीव बैठ सिरु नाई।' मा० २.३८.६

जयति : आ०प्रए० (सं० जयति=सर्वोत्कर्षेण वर्तते)। सर्वोपरि सत्तावान् है, परात्पर रूप में विद्यमान है। 'जयति सच्चिदानंदा।' मा० १.१८५ छं० ४ (सर्वोपरि सत्ता से प्रणाम अर्थ की स्वतः व्यञ्जना होती है।)

जयमय : वि० (सं०)। विजयपूर्ण, अभ्युदयसूचक। 'जय' शब्द सहित नाम युक्त। 'जयमय मंजुल माल उर।' रा०प्र० ४.७.३

जयमाल : जयमाला । मा० १.१३१

जयमाला : सं०स्त्री० (सं०) । (१) विजेता को विजयोपलक्ष में पहनाई जाने वाली माला । 'सोहत जनु जुग जलज सनाला । ससिहि सभीत देत जयमाला ।' मा० १.२६४.७ (२) वरमाला जो स्वयंवर में कन्या वर को पहनाती है । 'कुआँरी हरषि मेलेउ जयमाला ।' मा० १.१३५.३

जयसील : वि० (सं० जयशील) । विजेता, विजयी । 'कपि जयसील राम बल ताते ।' मा० ६.८१.३

जये : भूकृ०पुं०ब० । जीत लिये गये (हारे हुए) । 'प्रभु खात·········आदर जनु जये ।' गी० ३.१७.५

जयो : जयऊ । (१) विजयी हुआ । 'जनक को पनु जयो ।' कवि० १.१४ (२) पूर्ण किया । 'चहत महामुनि जाग जयो ।' गी० १.४१.१

जर : (१) सं०पुं० (सं० ज्वर>प्रा० जर) । रोग विशेष+संताप । 'जरहिं दुसह जर पुर नर नारी ।' मा० २.२६२.२ (२) सं०स्त्री० (सं० जटा>प्रा० जडा >अ० जड) । मूल 'तहाँ क्रोध की जर जरि गई ।' वैरा० ५१ (३) जरइ । जलता-ती है । 'चिताँ जर छाती ।' मा० ४.१२.३

✓**जर जरइ, ई :** (१) (सं० ज्वलति>प्रा० जलइ—दग्ध होना, जलना) आ०प्र० । जलता है, भस्म हो रहा है । 'जरइ नगर या लोग बिहाला ।' मा० ५.२६.२ (२) (सं० ज्वरति—ज्वर संतापे>प्रा० जरइ—सन्तप्त होना, ज्वर ग्रस्त होना, आर्त होना) 'सूखहिं अधर जरइ सब अंगू ।' मा० २.३८.१ (३) (सं० जीर्यति जॄ वयोहानौ>प्रा० जरइ—जीर्ण होना, क्षीण होना) 'रिस तन जरइ होइ बल हानी ।' मा० १.२७८.६ (यहाँ तीनों अर्थ एक साथ हैं) । (४) जलता है+सन्तप्त होता है+क्षय ग्रस्त होता है । 'महाघोर त्रयताप न जरई ।' मा० १.३९.६ 'राम रोष पावक सो जरई ।' मा० २.२१८.५

जरउँ : आ०उए० । दग्ध+सन्तप्त+क्षीण होता हूं (था) । 'हरिजन द्विज देखें जरउँ ।' मा० ७.१०५

जरउ : आ०—संभावना—प्रए० (सं० ज्वलतु>प्रा० जलउ+सं० जीर्यतु>प्रा० जरउ) । जल जाय, नष्ट हो जाय । 'जरउ सो संपति सदन सुखु ।' मा० २.१८५

जरकसी : वि०स्त्री० (सं० जट संघाते+कस बन्धने) । जड़ाऊ, हीरक-मण्डित, जड़ाव से खचित । 'सुन्दर बदन सिर पगिया जरकसी ।' गी० १.४४.१

जरजर : जर्जर । हनु० ३८

जरठ : वि० (सं०) । (१) वृद्ध । 'बाल जुवान जरठ नर नारी ।' मा० १.२४०.६ (२) जराग्रस्त, जर्जर । 'जाना जरठ जटायू एहा ।' मा० ३.२९.१४

(३) कठोर (४) परिपक्व। 'मिलहिं जोगी जरठ तिन्हहि दिखाउ निरगुन खानि।' कृ० ५२ (सभी अर्थ मिले रहते हैं।)

जरठपनु : (जरठ+पनु—दे० पन) कए०। बुढ़ापा। 'मनहुं जरठपनु अस उपदेसा।' मा० २.२.७

जरठाइ, ई : सं०स्त्री० (सं० जरठता)। बुढ़ापा। 'जरठाइ—दिसाँ रबि कालु उग्यो।' कवि० ७.३१

जरत : वकृ०पुं० (१) (सं० ज्वरत्>प्रा० जरंत)। संतप्त। 'अय इव जरत परत पग धरनीं।' मा० १.२९८.५ (२) (सं० ज्वलत्>प्रा० जलंत)। प्रज्वलित होता-ते। 'पावक जरत देखि हनुमंता।' मा० ५.२५.८ (३) दग्ध होता-ते। 'जरत निकेतु धावौ धावौ लागि आगि रे।' कवि० ५.६ (४) संतप्त +दग्ध हो रहा है। 'अजहूं हृदउ जरत तेहि आँचा।' मा० २.३२.५ (५) जाज्वल्यमान, ज्वालाकुल+संतप्त 'आगें दीखि जरत रिसि भारी।' मा० २.३१.३

जरती : क्रियाति०स्त्री०प्रए०। 'यदि जलती+सन्तप्त होती+क्षीण होती रहती। 'घरहीं सती कहावती जरती नाह बियोग।' दो० २५४

जरनि, नी : सं०स्त्री० (दे० √जर—सं० ज्वलन>प्रा० जलण+सं० जरण, जरण >प्रा० जरण)। (१) दाह। 'जिय कै जरनि न जाइ। मा० २.१८२ (२) सन्ताप। 'राम स्याम सावन भादौ बिनु जिय कै जरनि न जाई।' कृ० २९ (दोनों प्रयोगों में तीनों अर्थ गुँथे मिलते हैं) (३) परसन्ताप, ईर्ष्या। 'पर सुख देखि जरनि सोइ छई।' मा० ७.१२१.३४ (यहाँ तीनों अर्थ सम्पृक्त हैं—क्षीण होना+सन्तप्त होना+दग्ध होना)

जरहिं : आ०प्रब० (१) (सं० ज्वलन्ति>प्रा० जलंति>अ० जलहिं)। दग्ध होते हैं। 'जरहिं पतंग मोह बस।' मा० ६.२९ (२) (सं० ज्वरन्ति>प्रा० जरंति >अ० जरहिं) सन्तप्त होते हैं। 'जरहिं बिषमजर लेहिं उसासा।' मा० २.५१.५ (३) दग्ध+सन्तप्त+क्षीण होते हैं=ईर्ष्याग्रस्त हो जाते हैं। 'सुरत जरहिं खल रीति।' मा० १.४

जराँ : जरा से, बुढ़ापे के कारण। 'आँधरो अधम जड़ जाजरो जराँ जवनु।' कवि० ७.७६

जरा : (१) सं०स्त्री० (सं०)। बुढ़ापा। 'जरा मरन दुख रहित तनु।' मा० १.१६४ (२) भूकृ०पुं० (सं० ज्वलित+ज्वरित>प्रा० जलिअ+जरिअ)। भस्म हो गया+सन्तप्त हुआ। 'सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी।' मा० ३.२६.१

जराए, ये : दे० जराय। जड़ाऊ। नगों से खचित।' गी० १.३२.२

जराय : सं०पुं०। जवाव, नगों की पच्चीकारी। 'हिएँ जग जीति जराय की चौकी।' कवि० ७.१४३

जराव : वि०पुं० । जड़ाऊ, नग जटित । 'जगमगत जीनु जराव ।' मा० १.३१६ छं०

जरि : (१) सं०स्त्री० । जड़, मूल । जरि तुम्हारि चह सवति उखारी ।' मा० २.१७.८ (२) पूकृ० (सं० ज्वलित्वा>प्रा० जलिअ>अ० जलि) । दग्ध होकर । 'चितवत कामु भयउ जरि छारा ।' मा० १.८७.६ (३) (सं० ज्वरित्वा >प्रा० जरिअ>अ० जरि) । सन्तप्त होकर । 'तुलसी कान्ह बिरह नित नव जर जरि जीवन भरिबे हो ।' कृ० ३९ (४) (सं० जीर्त्वा>प्रा० जरिअ>अ० जरि) जीर्ण होकर, क्षीण होकर । 'अब जोर जरा जरि गातु गयो ।' कवि० ७ २८

जरिए, ये : (दे० √जर) आ०—कवा०—प्रए० । दग्ध+सन्तप्त+क्षीण हुआ जाय । 'देखि पर सुख बिनु कारन ही जरिये ।' विन० १८६.३

जरित : भूकृ०वि० (सं० जटित) । जड़ाऊ । 'जरित कनक मनि पलँग डसाए ।' मा० १.३५६ १

जरिबे · भकृ०पुं० (सं० ज्वलितव्य>प्रा० जलिअव्वय) । जलने । 'तनु जरिबे कहँ रही न कछू सक ।' गी० ५.९.२

जरिहिं : आ०भ०प्रब० (सं० ज्वलिष्यन्ति+ज्वरिष्यन्ति>प्रा० जलिहिंति+ जरिहिंति>अ० जलिहिंहिं+जरिहिंहिं) । दग्ध एवं सन्तप्त होंगे । 'जौं पै कृपाँ जरिहिं मुनि गाता ।' मा० १.२८०.५

जरिहि : आ०प्रए०भ० (सं० ज्वलिष्यति+ज्वरिष्यति>प्रा० जलिहिइ+ जरिहिइ) । जलेगी, सन्तप्त रहेगी । 'नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती ।' मा० २.२४.८

जरीं : जरी+ब० । दग्ध हुईं, जलीं । 'पितु कें जग्य जोगानल जरीं ।' मा० १.९८ छं०

जरी : (१) भूकृ०स्त्री० । जली, दग्ध हुई । (२) जर । जड़, मूल । (३) जड़ी जो औषधि के काम आए । 'अवधि जरी जोरति हठि पुनि-पुनि ।' कृ० ५६ (३) अभिमन्त्रित बूटी जिससे वशीकरण, मोहन आदि किया जाता है । 'जरी सुंघाइ कूबरी कौतुक जोगी बधा जुड़ानी । कृ० ४७

जरे : (१) भूकृ०पुं० (सं० ज्वलित>प्रा० जलिअ) । जल गये । 'छन महुं जरे निसाचर तीरा ।' मा० ६.९१.३ (२) (सं० ज्वरित+ज्वलित) । सन्तप्त+ दग्ध हो गये । 'सुता बिलोकि जरे सब गाता ।' मा० १.६३.३ (३) (सं० जटित>प्रा० जड़िय) । जड़े, जकड़े, बँधे । 'झूमत द्वार अनेक मतंग जंजरि जरे मद अंबु चुचाते ।' कवि० ७.४४

जरैं : भकृ० अव्यय । जलने । 'जरैं न पाव देह बिरहागी ।' मा० ५.३१.८

जरै : जरइ। जले तथा सन्तप्त होवे। 'सो नित मान अगिनि में जरै।' वैरा० ४१ (२) सन्तप्त तथा ज्वरग्रस्त होता है 'जरै बरै अरु खीझि खिझावै।' वैरा० ५७

जरैगो : आ०भ०पुं०प्रए०। जल जायगा। 'स ासन सलभ जरैगो।' गी० १.६८ ११

जरौं : जरउँ। जल जाऊँ। 'पावक जरौं, जलनिधि महुं परौं।' मा० १.६६ छं०

जर्जर : वि० (सं०)। झाँझर, क्षतविक्षत, जीर्ण शीर्ण। 'तन जर्जर भए।' मा० ६.४६ छं०

जर्‍यो : भूकृ०पुं०कए०। (१) जला हुआ। 'दूध को जर्‍यो पियत फूंकि-फूंकि मह्यो हौं।' विन० २६०.३ (२) जला। 'गर्भ न नृपति जर्‍यो।' विन० २३६.४

जल : सं०पुं० (सं०)। पानी। १.७.६

जलंधर : सं०पुं० (सं० ालंधर)। एक असुर का नाम। मा० १.१२३.५

जलकुक्कुट : सं०पुं० (सं०)। बन मुर्गी, पक्षिविशेष। मा० ३.४०.२

जलखग : जलाश्रयवासी पक्षी। मा० १.२२७.८

जलचर : सं०पुं० (सं०)। जल जन्तु। मा० १.३४

जलचरकेतू : जलचर=मकर रूपी पताका वाला=मकरध्वज=कामदेव। मा० १.१२५.६

जलचरन्हि : जलचर+सं०ब०। जलचरों (के)। अन्य जल चरन्हि ऊपर।' मा० ६.४

जलच्चर : जलचर। 'कोटि जलच्चर दंत टेवैया। कवि० ७.५२

जलज : सं०पुं० (सं०)। कमल। मा० २.२६६

जलजन्तु : जलचर। मा० ६.८७ छं०

जलजाए : सं०पुं० (सं० जलजात>प्रा० जल जाय)। कमल। 'लोचन मनहुं जुगल जलजाए।' गी० १.२६.४

जलजात : सं०पुं० (सं०)=जलज। कमल। मा० ७.१ ख

जलजाता : जलजात मा० ५.४२.५

जलजान, ना : सं०पुं० (सं० जलयान>प्रा० जलजाण)। पोत, जहाज। 'उपल किए जलजान।' मा० १.२०

जलजानू : जलजान+कए०। (कोई एक) जहाज। 'करनधार बिनु जिमि जल-जानू।' मा० २.२७७.५

जलजाभ : वि० (सं०) कमल की आभातुल्य आभा वाला, कमल समान। 'नील पीत जलजाभ सरीरा।' मा० १.२३३.१

जलजारुन : कमल के समान अरुण वर्ण। मा० ६.१११ छं०

जलजु : जलज+कए० मा० १.३२५.६

जलठाउँ : (दे० ठाउँ) । जलाश्रय (स्थान जहाँ जल मिल सकता है) । मा० २.१३५.७

जलद : सं०पुं० (सं०) मेघ । मा० १.२३२

जलदाता : (१) जल देने वाला+(२) जलदान=तर्पण आदि प्रेतकर्म करने वाला (वंशधर) । 'जलदाता न रहिहि कुल कोऊ ।' मा० १.१७४.३

जलदाभ : जलद=मेघ की आभातुल्य आभा वाला=मेघ सदृश । 'नील जलदाभ तनु स्याम ।' विन० ४६.४

जलदु : जलद+कए० । 'जलदु जनम भरि सरति बिसारउ ।' मा० २.२०५.३

जलधर : सं०पुं० (सं०) । मेघ । मा० १.३२.१०

जलधरनि : जलधर+संब० । मेघों (को) । 'निरखत बिबुध·····ओट दै जल-धरनि । गी० १.२८.५

जलधार : (१) सं०पुं०=जलधर (२) सं०स्त्री० जल प्रवाह । मा० १.२११ छं०

जलधारा : (१) जलधार । मेघ । 'उठइ धूरि मानहुं जलधार । बान बुंद भइ बृष्टि अपारा ।' मा० ६.८७.६ (२) जल प्रवाह (दे० धार) । 'जेहि तें प्रगट होहिं जलधारा ।' मा० ६.५२.१

जलधि : सं०पुं० (सं०) । समुद्र । मा० १.५.६

जलनाथ : समुद्र । 'जेहिं जलनाथ बंधायउ हेला ।' मा० ६.३७.१ ('जलनाथ' वरुण का नाम है जो 'पाशधर' हैं । उन्हें भी बाँध डाला—इस अर्थ की व्यञ्जना है ।)

जलनिधि : जलधि । मा० १ ६६ छं०

जलपति : जल्पति । वकृ०स्त्री० (सं० जल्पन्ती) । बक रही, प्रलाप करती । 'जल-पति जननि दुख मानई ।' पा०मं०छं० १३

जलपात्र : कमण्डलु (घड़ा आदि) । विन० १८.२

जलपाना : (सं० जलपान) जल पीने की क्रिया । मा० ७.६३.३

जलपानु : जलपान+कए० । (१) एक बार जल पीना (२) केवल जल पीना (निराहार) । 'न्हाइ रहे जलपानु करि ।' मा० २.१५०

जल बिहग : जल खग । मा० १.३७.११

जलमल : सं०पुं० (सं०) । कीचड़, पङ्क । मा० १.४१

जलयान : जलजान (सं०) । विन० २६.५

जलरथ : जलयान । विन० १३६.६

जलरासी : सं०पुं० (सं० जलराशि) । समुद्र । मा० २.२५७.२

जलरुह : सं०पुं० (सं०) कमल । मा० २.१५६.२

जलाश्रय : सं०पुं० (सं०)। सरोवर, नदी, कूप आदि। 'पुन्य जलाश्रय भूमि बिभागा।' मा० २.३१२.२

जलासय : सं०पुं० (सं० जलाशय)। सरोवर आदि। मा० २.२१५.४

जलु : जल+कए०। 'सगुनु खीरु अवगुनु जलु ताता।' मा० २.२३२.५

जले : जरे। दग्ध हुए। गी० ५.४१.३

जलो : जल भी। 'जो न लहै जाचे जलो।' गी० ५.४२.२

जल्पक : वि० (सं०)। बकवास करने वाला। बाचाल। मा० ६.३३

जल्पत : वकृ०पुं० (सं० जल्पत्)। बकता, बकते। एहि बिधि जल्पत भयउ बिहाना।' मा० ६.७२.६

जल्पना : सं०स्त्री० (सं०)। बकवास। 'छाँड़हु नाथ मृषा जल्पना।' मा० ६.५६.५

जल्पसि : आ०मए० (सं०)। (१) तू बक रहा है। 'कटु जल्पसि जड़ कपि।' मा० ६.३१.८ (२) तू बकवास कर। 'जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि।' मा० ६.२२

जल्पहिं : आ०प्रब०। बकते रहते हैं। 'जल्पहिं कल्पित बचन अनेका।' मा० १.११५.५

जव : सं०पुं० (सं० यव)। अन्न विशेष=जौ। मा० ५.५३.५ (कभी- भी यवाका अङ्गुष्ठ रेखा के अर्थ में आया है।)

जवन : (१) सर्वनाम। जो, जौन। (२) सं०पुं० (सं० यवन>प्रा० जवण)। मेच्छ जाति विशेष। जवन कवन सुर तारे।' विन० १०१.२

जवनि : जवन+स्त्री०। जो। 'बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा।' मा० १.१३७.६

जवनु : जवन+कए०। म्लेच्छ विशेष। कवि० ७.७६

जवारु : सं०पुं०कए० (फा० जवाल=मानव शरीर, लदी या बोझ, गुदड़ी)। जंजाल, झंझट। जगु जीव को जवारु है।' कवि० ७.६७

जवास, सा : सं०पु० (सं० चवास, जवास)। एक प्रकार का छोटा पौधा जो ग्रीष्म में हराभरा रहता और वर्षा में सूख जाता है। मा० २.५४.२

जवासे : जवासा का रूपान्तर। 'जरिए जवासे सम।' हनु० ३५

जस : (१) सं०पुं० (सं० यशस्>प्रा० जस)। कीर्ति। 'सोइ जस गाइ भगत भव नरहीं।' मा० १.१२२.१ (२) वि०पुं० (सं० यादृश>प्रा० जरिस>अ० जइस)। जैसा, जैसे। 'जो जस करइ सो तस फलु चाखा।' मा० २.२१९.४ (३) क्रि०वि०। ज्यों, जैसे। 'जस जस चलिअ दूरि तस तस।' विन० १८९.४

जसि : जस+स्त्री० (अ० जइसी)। जैसी। 'तुलसी जसि भवतव्यता तैसी मिलइ सहाइ।' मा० १.१५९

जसी : वि०पुं० (सं० यशस्वी>प्रा० जसी)। कीर्तिशाली। 'गीध जसी जटाय।' गी० ७.३१.४

जसु : जस+कए० । कीर्ति । 'निज पुर गवने जय जसु पाई ।' मा० १.१७५.८

जसुमति : जसोमति ।

जसोदा : सं०स्त्री० (सं० यशोदा) । कृष्ण की उपमाता=नन्द पत्नी ।

जसोमति : (सं० यशोमति=यशोदा) जसोदा । मा० १.२०.८

जहँ : अव्यव (सं० यत्र>प्रा० जहं, जहिं) । जहाँ, जिस स्थान पर । मा० १.१.८

जहर : सं०पुं० (फा० जहर) । विष । 'सुधा तजि पीवनि जहर की ।' कवि० ७.१७०

जहरु : जहर+कए० । 'सुधा सो भरोसो । 'एहु दूसरो जहरु ।' विन० २५०.२

जहवाँ : जहाँ । मा० ३.२३.७

जहाँ : जहँ । मा० १.३.५

जहाज : सं०पुं० (फा० जहाज) । समुद्री पोत । 'चढ़े विबेक जहाज ।' मा० २.२२०

जहाजु, जू : जहाज+कए० । एक मात्र जहाज । 'संकर चापु जहाजु ।' मा० १.२६१

जहान : सं०पुं० (फा०) विश्व । 'जाहिर जहान में ।' कवि० ७.७६

जहाना : जहान । मा० १.३.४

जहानु : जहान+कए० । 'जाँगरु जहानु भो । कवि० ५.३२

जहि : वि० (सं० जहक) । त्यागने वाला । 'नमत राम अकाम ममताजहि ।' मा० ७.३०.५

जहिआ : समय बोधक अव्यय (सं० यदा>प्रा० जइआ) । जब 'भुज बल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ ।' मा० १.१३९.६

जह्नु : सं०पुं० । मुनि विशेष जिन्होंने गङ्गा जी को पी लिया था और देवों की प्रार्थना से छोड़ा तो जाह्नवी=जह्नुपुत्री नाम से प्रसिद्धि मिली । 'जय जह्नुबालिका ।' विन० १७.१

जाँगरु : जाँगरु+कए० (सं० जङ्गल=निर्जन प्रदेश>प्रा० जंगल>अ० जंगलु) । शून्य, जन-धन रहित (अवधी में उड़द, चना आदि के पुआल को कहते हैं जो मड़नी के बाद उलझा हुआ बच रहता है—जाँगर, जँगरा—अन्नरहित (खण्डित पुआल) । 'तुलसी तिलोक की समृद्धि सौंज, संपदा, सकेलि चाकि राखी रासि, जाँगरु जहानु भो ।' कवि० ५.३२

जाँघ : जंघ । (१) गुल्फ और जानु का मध्याङ्ग (२) जानु के ऊपर का भाग=ऊरु । 'महाराज लाज आपु ही निज जाँघ उघारे ।' विन० १४७.१

जाँचत : जाचत । गी० ३.५.४

जाचिए, ये : आ०—कवा०—प्रए० । प्रार्थित किया जाय । 'जाँचिये गिरिजापति कासी ।' विन० ६.१

जाँची : भूकृ०स्त्री० । माँगी । 'आयसु जाँची जननि ।' गी० २.११.३

जाँचौं : आ०उए० । माँगूं, माँगता हूं । 'जाँचौं जलु जाहि, कहै, अमिअ पियाउ सो ।' विन० १८२.३

जा : (१) 'ज' सर्वनाम का रूपान्तर । जिस जो । 'जा बस जीव परा भवकूपा ।' मा० ३.१५.५ जा के, जासों, जा तें, जाहि, जा की, जा को आदि में परसर्ग सहित प्रयोग में द्रष्टव्य हैं । (२) (समासान्त में) वि०स्त्री० (सं०) । उत्पन्ना । 'बिस्नु पद सरोज-जासि ।' विन० १७.१ । पुत्री । 'बाम दिसि जनकजा ।' विन० ५१.६

✓**जा जाइ, ई** : (१) (सं० याति>प्रा० जाइ) आ०प्रए० । जाता है । 'जाइ मृग भागा ।' मा० १.१५७.४ (२) कर्मवाच्य सूचक प्रयोग—सकता है । 'सदा एकरस बरनि न जाई ।' मा० १.४२.८ (३) बीतता है । 'एकनिमेष बरष सम जाई ।' मा० २.१५८ ३ (४) पहुचता है । 'ताहि तहाँ लै जाइ ।' मा० १.१५९ (५) (सं० जायति—जै क्षये>प्रा० जाइ) । समाप्त होता-ती है, मिटता-ती है । 'जिय कै जरानि न जाइ ।' मा० २.१८२ (६) (सं० याति—या प्रापणे>प्रा० जाइ) पाता है । 'आत्माहन गति जाइ ।' मा० ७.४४ (७) (सं० जायते >प्रा० जाइ) पैदा होता-ती है । 'दरार न जाई ।' गी० ६.६.३

जाइँ : क्रि०वि० । जिससे । 'सकुच स्वामि मन जाइँ न पावा ।' मा० २.२६९.७

जाइ : पूकृ० । जाकर (/\जा के सभी अर्थ यथावसर) । 'सुरपति सभाँ जाइ सब बरनी ।' मा० १.१२७.३

जाइअ : आ०भावा० । जाइए , जाना चाहिए । 'जाइअ बिनु बोलेहुं न सँदेहा ।' मा० १.६२.५

जाइहि : आ०भ०प्रए० । (१) जायगा-गी । 'न जाइहि काऊ ।' मा० २.३६.५ (२) जाना चाहिए । 'चौथें पन जाइहि नृप कानन ।' मा० ६.७.३ (३) जा सकेगा । 'नाथ वेगि पुनि जाति न जाइहि ।' मा० ६.७५.५ (४) मिटेगा । 'जाइहि सुनत सकल संदेहा ।' मा० ७.६१.८

जाईं : भूकृ०स्त्री०ब० । उत्पन्न हुईं । 'उमा सैल गृह जाईं ।' मा० १.६५ ७

जाई : (१) जाइ । 'गदगद कंठ न कछु कहि जाई ।' मा० १.७२.७ (२) जाइअ । जाया जाय । 'कहाँ जाई का करी ।' कवि० ७.९७ (३) जाइ । जाकर । 'बैठे मुनि जाई ।' मा० १.१३४.१ (४) जाइहि 'राम स्याम सावन भादौं बिनु जिय कै जरनि न जाई ।' कृ० २९ (५) भूकृ०स्त्री० (सं० जाता>प्रा० जाया =जाई) । उत्पन्न हुई । 'जाई राजघर ब्याहि आई राजघर माहँ ।' कवि० २.४

जाउँ, ऊँ : आ०उए० । 'हौं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा ।' मा० २.७१.३

जाऊँगो : आ०भ०पुं०उए० । जाऊँगा । गी० ५.३०.१

जाउ, ऊ : आ०—संभावनादि—प्रए० (सं० यातु>प्रा० जाउ) । जाय, मिट जाय (आदि—दे० √जा) । 'घरु जाउ अपजसु होउ ।' मा० १.६६ छं०

जाएँ : जायँ । वृथा । 'तात गलानि करहु जनि जाएँ ।' मा० २.११०.२

जाए : (१) सं०पुं० (सं० जातक>प्रा० जायय) । पुत्र । 'कोसलेस दसरथ के जाए ।' मा० ४ २.१ (२) भूकृ०पुं० (सं० जात>प्रा० जाय) । उत्पादित, उत्पन्न । 'कोखि के जाए सों रोषु केतो बड़ो कियो है ।' कृ० १६ (३) उत्पन्न किए । 'दुइ सुत सुंदर सीताँ जाए ।' मा० ७.२५.६

जाएहु : आ०—आज्ञा+भ०—मब० । तुम जाना । 'जाएहु होत बिहान ।' मा० १.१५६

जाग : सं०पुं० (सं० याग) । यज्ञ । मा० १.१५५

✓**जाग जागइ** : (सं० जागर्ति>प्रा० जग्गइ—सोकर उठना, सावधान या जागरूक होना, प्रकट होना) आ०प्रए० । जागता है । 'जागइ मनोभव मुएहुँ मन ।' मा० १.८६ छं०

जागत : वकृ०पुं० (सं० जाग्रत्>प्रा० जग्गंगत) । (१) जागता, जागते । 'जागत रहै जो जो सोइ ।' दो० ४८६ (२) जगते ही । 'जागत होइ तिहूं पुर त्रासा ।' मा० १.१८०.४ (३) उजागर होता, दीप्त हो रहा । 'जग जगत जासु पवाँरो ।' कवि० ६.३८

जागति : वकृ०स्त्री० (सं० जाग्रती>प्रा० जग्गंती) । जग रही, जगा रही । 'जागति मनहूं मसानु ।' मा० २.३६ (२) प्रकाशमान हो रही । 'कासी करामाति जोगी जागति मरद की ।' कवि० ७.१५८

जागन : (१) भकृ० अव्यय (सं० जागतुंम्>प्रा० जाग्गीउँ>अ० जग्गण) । जगने । 'जागन लगे बैठि बीरासन ।' मा० २.९०.२ (२) सं०पुं० (सं० जागरण>प्रा० जग्गण) । जगने की क्रिया । 'आजु कालिहु परहुं जागन होहिंगे ।' गी० १.५.५

जागबलिक : सं०पुं० (सं० याज्ञबल्कि) । मुनिविशेष । मा० १.३०

जागरन : सं०पुं० (सं० जागरण) । मा० १.३५८.२

जागहिं : आ०प्रा० (सं० जाग्रति>प्रा० जग्गंति>अ० जग्गहिं) । जगते हैं, जागरूक रहते हैं (तत्त्व ज्ञान के प्रभात में जागरण करते हैं) । 'नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी ।' मा० १.२२.१

जागहि : आ०मए० (सं० जागर्षि, जागृहि>प्रा० जग्गहि) । तू जागता है,जगे । 'अजहूं जड़ जीव न जागहि रे ।' कवि० ७.३१

जागहु : आ०मब० (सं० जागृत>प्रा० जग्गह>अ० जग्गहु) । जगो, जागरू होओ (संज्ञा लाभ करो) । 'अस बिचारि जियँ जागहु ताता ।' मा० ६.६१.८

जाग : (१) जाग । यज्ञ । 'सतीं जाइ देखेउ तब जागा ।' मा० १.६३.४ (२) भूकृ० पुं० (सं० जागरित>प्रा० जग्गिअ) । जग उठा । 'देखि मुएहुं मन मनसिज जागा ।' मा० १.८६.८ (३) जागरूक हुआ । 'जानिअ तबहिं जीव जग जागा ।' मा० २.९३.४

जागि : (१) पूकृ० (सं० जागरित्वा>प्रा० जग्गिअ>अ० जग्गि) । जगकर । 'जागि करहिं कटु कोटि कलपना ।' मा० २.१५७.६ (२) आ०—आज्ञा—मए० (सं० जागृहि>प्रा० जग्ग>अ० जग्गि) । तू जग उठ । 'सोवै सो जगावौ, जागि जागि रे ।' कवि० ५.६

जागिए, य, ये : आ०—भावा० । जाग जाय । 'जागिए न सोइए बिगोइए जनमु जायँ ।' कवि० ७.८३

जागिबो : भकृ०पुं०कए० (सं० जागरितव्यम्>प्रा० जग्गिअव्वं>अ० जग्गिव्वउ) । जागना । 'जागिबो जो जीह जपै नीकें राम नाम को ।' कवि० ७.८३

जागिहै : आ०भ०प्रए० (सं० जागीरिष्यति>प्रा० जग्गिहिइ) । जग उठेगा । 'राम नाम सों विराग जोग जप जागिहै ।' विन० ७०.३

जागीं : जागी+ब० । जग उठीं । 'सुदसा जनु जागीं ।' गी० १.६.१३

जागी : भूकृ०स्त्री० । (१) संज्ञा मिली, सजगता में परिणत हुई । 'मेघनाद कै मुरुछा जागी ।' मा० ६.७४.१ (२) प्रकट हुई, विख्यात हुई । 'धरमसीलता तब जग जागी ।' मा० ६.२२.८ (३) दीप्त हुई । 'जीवन तें जागीं आगि ।' कवि० ५.१९

जागु : (१) जाग+कए० । यज्ञ । 'पुत्र जागु करवाइ रिषि राजहि दीन्ह प्रसाद ।' रा०प्र० १.२.५ (२) आ०—आज्ञा—मए० (सं० जागृहि>प्रा० जग्ग>अ० जग्गु) । तू जग, सावधान हो । 'जागु जागु जीव जड़ ।' विन० ७३.१

जागू : जागु । जग जा, जागरूक हो जा । 'महामोह निसि सूतत जागू ।' मा० ६.५६.७

जागें : जगने पर । 'जगें जथा सपन भ्रम जाई ।' मा० १.११२.२

जागे : (१) जागें । 'दोष दुख सपने के जागे ही पै जाहिं रे ।' विन० ७३.३ (२) भूकृ०पुं० (सं० जागरित>प्रा० जग्गिय) ब० । सो उठे । 'जागे रामु सुजान ।' मा० १.२२६

जागेउ, गो, ग्यो : भूकृ०पुं०कए० (सं० जागरितः>प्रा० जग्गिओ>अ० जग्गियउ) । जगा, सोकर उठा । 'जागेउ नृप अनभएँ बिहाना ।' मा० १.१७२.२

जागैं : जागहिं । कवि० ७.१०६

जागै : जागइ । (१) जागरण करे । 'काहे को अनेक देव सेवत जागै मसान ।' कवि० ७.१६२ (२) उजागर हो जाय । 'अजसु जग जागै ।' जा०मं० ७० (३) जगता है । 'कृपापात्र जन जागै ।' विन० ११६.३ (४) प्रकाशमान है । 'बेद पुरान प्रगट जस जागै । विन० २.५

जागो : जाग्यो । 'निसि जागो है मसानु सो ।' कवि० ५.२८

जाग्यो : जागेउ । 'मुरुछित भूप न जाग्यो ।' गी० २.१२.३

√जाच जाचइ : (सं० याचते>प्रा० जाचइ—माँगना) आ०प्रए० । माँगता है । 'जाँचै बारह मास, पिऐ पपीहा स्वाति जल ।' दो० ३०७

जाचक : वि० (सं० याचक) । प्रार्थी, मँगता । मा० १.२६५

जाचकता : सं०स्त्री० (सं० याचकता) । मँगतापन, भिखारीपन । 'जेहि जाचक जाचकता जरि जाइ ।' कवि० ७.२८

जाचकनि, न्हि : जाचक+संब० । याचकों (को) । 'दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा ।' मा० १.३२६.७

जाचत : वकृ०पुं० । (१) माँगता, माँगते । 'गति दीन्ही जो जाचत जोगी ।' मा० ३.३३.२ (२) माँगने पर, माँगते समय । 'जाचत जलु पबि पाहन डारउ ।' मा० २.२०५.३ (३) माँगते ही । 'जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ ।' कवि० ७.२८

जाचति : वकृ०स्त्री० । माँगती । 'अवनि जमहि जाचति कैकेई ।' मा० २.२५२.६

जाचन : भकृ० अव्यय । माँगने । 'मैं जाचन आयउँ नृप तोही ।' मा० १.२०७.९

जाचहिं, हीं : आ०प्रब० । मांगते हैं । 'जाचक जन जाचहिं जोइ जोई ।' मा० १.३५१.७

जाचा : भूकृ०पुं० । माँगा । 'रावन मरन मनुज कर जाचा ।' मा० १.४९.१

जाचिअ : आ०—कवा०—प्रए० । माँगिए, माँगा जाय । 'जग जाचिअ काहु न, जाचिअ जौं, जियँ जाचिअ जानकी जानहि रे ।' कवि० ७.२८

जाचे : भूकृ०पुं० । माँगे (माँगने पर) । 'जो न लहै जाचे जलो ।' गी० ५.४२.२

जाचै : जाचइ । माँगे 'जाचै को नरेस ।' कवि० ७.२५

जाच्यो : भूकृ०पुं०कए० । मांगा, प्रार्थित किया । 'जोइ जाच्यो सोइ जाचकताबस ।' विन० १६३.१

जाजरो : वि०पुं०कए० (सं० जर्जरः>प्रा० जज्जरो) । झांझर, जीर्ण-शीर्ण, शिथिलाङ्ग । 'आँधरो अधम जड़ जाजरो जराँ जवनु ।' कवि० ७.७६

जाड़ : सं०पुं० (सं० जाड्य>प्रा० जड्ड) । जाड़ा, शीत । 'जड़ता जाड़ बिषम उर लागा ।' मा० १.३९.२

जात : (१) भूकृ०वि० (सं०) । उत्पन्न । जल जात आदि । (२) वकृ०पुं० (सं० यात्>प्रा० जंत) । जाता, जाते । 'होइहि जात गहरू अति भाई ।' मा० १.१३२.१ (३) सं०पुं० (सं०) । समूह । एक बान बेगि ही उड़ाने जातु धान-जात ।' गी० १.६७.२

जातक : सं०पुं० (सं०) । शिशु । 'नैन सु खंजन जातक से ।' कवि० १.१

जातकरम : सं०पुं० (सं० जातकर्म) । षोडश संस्कारों में अन्यतम=पुत्र-जन्म सम्बन्धी कर्णकाण्ड विशेष । मा० १.१९३

जातना : सं०स्त्री० (सं० यातना) । (१) यन्त्रणा, पीडा । 'जमजातना सरिस संसारू ।' मा० २.६५.५ (२) नरक । 'उदर उदधि अधगो जातना ।' मा० ६.१५.८ ('याचना' मूलत: यातित या चुकता करने— निर्यातन—का अर्थ देता है । पापों के भुगताक का मूल अर्थ है अत: 'नरक' का पर्याय-सा बन गया है ।)

जातरूप : सं०पुं० (सं०) । सुवर्ण । मा० ७.२७.३

जातहिं : जाते ही । 'जातहिं नींद जुड़ाई होई ।' मा० १.३९.१

जातहि : जातहिं । 'जिन्ह जातहि जदुनाथ पढ़ाए ।' कृ० ५०

जाता : जात । (१) दे० जल जाता । (२) 'चले मग जाता ।' मा० २.२३४.४ (३) जाते हुए, जाते समय । 'सतीं दोख कौतुक मग जाता ।' मा० १.५४.४

जाति, ती : सं०स्त्री० (सं० जाति) । (१) काव्य कल्पना विशेष जिसमें दोष न होने पर भी दोष का आभास होता है । 'कवित गुन जाती ।' मा० १.३७.८ (२) वर्ग विभाग । 'गनै को पार निसाचर जाती ।' मा० १.१८१.३ (३) जन्म । 'अबला अबल सहज जड़ जाती ' मा० ७.११५.१६ (४) उत्तम जाति । 'सब जाति कुजाति भए भगता ।' मा० ७.१०२.६ (५) (सं० ज्ञाति) । बन्धु वर्ग, सजातीय । 'जनक जाति अवलोकहिं कैसें ।' मा० १.२४२.२ (६) वकृ०स्त्री० । जाती (है) । 'सोभा किमि कहि जाति ।' मा० १.२१३ (७) क्रियाति० स्त्री० । 'मनुज दसा कैसें कहि जाती ।' मा० १.३३८.३

जाति जन : स्वजातीय जन तथा ज्ञाति जन=बन्धु जन । मा० १.३०८

जाति पाँति : (दे० पाँति) जाति तथा जेवनार की पंगत में स्थान । 'मेरें जाति-पाँति न चहौं काहू की जाति-पाँति ।' कवि० ७.१०७ (एक जाति होने पर भी जेवनार की पाँति में स्थान नहीं मिलता—अत: दोनों का युग्मक चलता है)

जातुधान : सं०पुं० (सं० यातुधान) । राक्षस (मायावी) । मा० ३.१८.३

जातुधाननि : जातुधान+संब० । राक्षसों । 'जातुधाननि सों रनु भो ।' गी० १.६६.३

जातुधानीं : जातुधानी+बहु० । राक्षसियाँ । सुनत जातुधानीं सब लागीं करन विषाद ।' मा० ६.१०८

जातुधानेस : रावण। गी० ५.४२.३

जाते : (१) (जा+ते) जिससे। 'जा ते लाग न छुधा पिपासा।' मा० १.२०६.८ (२) क्रियाति० पुं०बहु० (सं० अयास्यन्>प्रा० जंतया)। चाहे जाते हों। पौन के गौनहुं तें बढ़ि जाते।' कवि० ७.४४ (३) यदि···तो जाते। 'जौ मोहि राम लागते मीठे। तौ नवरस षटरस अनरस रस ह्वै जाते सब सीठे।' विन० १६६.१

जातेउँ : क्रियाति० पुं०उए०। (तो) मैं जाता। 'लै जातेउँ सीतहि बरजोरा।' मा० ६.३०.५

जातो : क्रियाति० पु०ए०। यदि···तो जाता। 'जौ पै चेराई राम की करतो न लजातो···(तौ)···सो जड़ जाय न जातो!' विन० १५१.८

जादव, दौ : सं०पुं० (सं० यादव)। यदुवंशी क्षत्रिय। विन० २१४.२

जादौ : जादव। दो० ४२५

जान : (१) सं०पुं० (सं० यान>प्रा० जाण)। वाहन, सवारी। 'चले जान चढ़ि।' मा० १.३००.५ (२) भकृ० अव्यय। जाने को। 'पुर बैकुंठ जान कह कोई।' मा० १.१८५.२ (३) सं०पुं० (सं० ज्ञान>प्रा० जाण)। बोध, समझ। मेरे जान और कछु न मान गुनिए।' कृ० ३७ (४) वि०पुं० (सं०ज्ञ>प्रा० जाण)। जानकार, ज्ञानी, प्रबुद्ध। 'जेहि जान्यो सो जान।' दो० ६० 'जानसिरोमनि कोसलराऊ।' मा० १.२८.१० (५) जानइ। 'सुर बिजई जग जान।' मा० १.१२२ (६) दे० जानकी-जान।

✓**जान जानइ** : (सं० जानाति>प्रा० जाणइ—जानना, समझना) आ०प्रए०। जानता है, ज्ञान पाता है। 'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।' मा० २.१२७.३ (२) समझता है, संभावना करता है। 'सोइ जानइ जनु आइ खुटानी।' मा० १.२६८.३

जानउँ : आ०उए० (सं० जानामि>प्रा० जाणामि>जाणउँ)। जानता-ती-हूं। 'कह तापस, नृप जानउँ तोही।' मा० १.१६३.८

जानकि : जानकी। मा०२.७३.४

जानकिहि : जानकी को, के लिए। 'जोगु जानकिहि यह बरु अहई।' मा० १.२२२.१

जानकीं : जानकी ने। 'सुनि जानकीं परम सुखु पावा।' मा० ३.६.१

जानकी : सं०स्त्री० (सं०)। जनकराज की पुत्री=सीता। मा० १.१८.७

जानकीजान : जानकी जानि। 'जियँ जाचिअ जानकी जानहि रे।' कवि० ७.२८

जानकीजानि : वि०पुं० (सं०—जानकी जाया यस्य। जानकी जानि:)। जानकी जिनकी पत्नी हैं=राम। 'गूढ़ गति जानकी-जानि जानी।' विन० ३९.४ (जायार्थक 'जानि' समासान्त में ही आता है)

जानकी जीवन : सीता के प्राणाधार=राम। कवि० ७.४२

जानकी जीवनु : कए०। एक मात्र राम। :जानकीजीबनु जान न जान्यो। कवि० ७.३९

जानकीस : (सं० जानकीश)। राम। हनु० १२

जानकीसु : कए०। कवि० ७.१२१

जानत : वकृ०पुं० (सं० जानत्>प्रा० जाणंत)। जानता, जानते। 'जानत हौं कछु भल होनिहारा।' मा० १.१५९.७

जानती हूं : जानते हुए भी। 'जानत हूं पूछिअ कस स्वामी।' मा० ३.९ ७

जानति : जानत+स्त्री० (सं० जानती>प्रा० जाणंती)। मा० ७.२४.४

जानन : सं०पुं० (सं० ज्ञान>प्रा० जावण)। प्रत्यय, बोध। 'जानें जानन जोइये।' दो० ९८

जाननिहार, रा : वि०पुं०। जानकार, जानने वाला। 'औरु तुम्हहि को जाननिहारा।' मा० २.१२७.२

जाननिहारी : वि०स्त्री०। जानने वाली। 'पिय हिय की 'सिय जाननिहारी।' मा० २.१०२.३

जाननिहारे : वि०पुं०ब०। जानने वाले। 'जे महातम जाननिहारे।' कवि० ७.१४५

जानपनी : सं०स्त्री० (सं० ज्ञत्व>प्रा० जाणत्तण>अ० जाणप्पण=जाणप्पणी)। विवेकशीलता। 'दम दान दया नहिं जानपनी।' मा० ७.१०२.९

जानब : भकृ०पुं० (सं० ज्ञातव्य>प्रा० जाणिअव्व)। जानना। (१) जानना चाहिए। 'सो जानब सतसंग प्रभाऊ।' मा० १.३.६ (२) जाना जायगा, समझ में आयगा। 'जानब तैं सब ही कर भेदा।' मा० ७.८५.८

जानबि : जानिबी। जाननी चाहिए। 'गौरि सजीवन भूरि भोरि जियँ जानबि।' पा०मं० १४२

जानमनि : दे० जान तथा मनि) ज्ञानियों में श्रेष्ठ। कवि० ७.१५

जानराय : (दे० जान तथा राय) ज्ञानियों में श्रेष्ठ। गी० १.३८.१

जानसि : आ०मए० (सं० जानासि>प्रा० जाणसि)। तू जानती-ती-है। 'जानसि मोर सुभाउ बरोरू।' मा० २.२६.४

जानसिरोमनि : ज्ञानियों में श्रेष्ठ। मा० १.२८.१०

जानहिं : आ०प्रब० (सं० जानन्ति>प्रा० जाणंति>अ० जाणहिं)। जानते हैं। 'ते जानहिं सब भेउ।' मा० १.१३३

जानहि : जानसि (अ० जाणहि) । तू जानता है । 'केवल मुनि जड़ जानहि मोही।' मा० १.२७२.५

जानहुँ : आ०—संभावना—प्रब० । चाहे वे जानें । 'जानहुं रामु कुटिल करि मोही।' मा० २.२०५.१

जानहु : आ०मब० (सं० जानीथ, जानीत>प्रा० जाणह>अ० जाणहु) । (१) तुम जानते हो । 'सो तुम्ह जानहु अंतरजामी।' मा० १.१४६.७ (२) तुम जानो । 'अग जग नाथ अतुल बल जानहु।' मा० ६.३६.८

जाना : (१) भूकृ०पुं० । जान गया, समझा, पहचाना । 'देखि सुबेष महामुनि जाना।' मा० १.१५८.७ (२) क्रियाति० । यदि जाना होता । 'जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना । तौ कि बराबरि करत अयाना।' मा० १.२७७.२ (३) जान । जाने हेतु । 'रामहि रायँ कहेउ बन जाना।' मा० २.२९२.३ (४) जान (यान) । 'खग मृग हय गय बहु बिधि जाना।' मा० १.३०५.४ (५) जानइ । 'तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना।' मा० १.१६०.५ (६) ज्ञान, बोध । समझ । 'हमरें जाना······सब धनुष समाना।' मा० १.२७२.१

जानामि : आ०उए० (सं०) । जानता हूं । मा० ७.१०८.८

जानि : (१) पूकृ० । जानकर, ज्ञात कर । 'करहु कृपा जन जानि मुनीसा।' मा० १.१८.६ (२) आ०—आज्ञा—मए० । तू जान । 'जूझ जुआ जय जानि।' रा०प्र० २.४.२ (३) (समासान्त में)=जाया । पत्नी । दे० जानकी जानि ।

जानिअ : आ०—कवा०—प्रए० (सं० ज्ञायते>प्रा० जाणीअइ) । जान पड़ जाता है, ज्ञात रहता है । 'गुर प्रसाद सब जानिअ राजा।' मा० १.१६४.२

जानिउँ : आ०—भूकृ०स्त्री०+उए०। मैं ने जानी । 'जानिउँ प्रिया तोरि चतुराई।' मा० ६.१६.६

जानिए : जानिअ । जानना चाहिए । 'संतराज सो जानिए।' वैरा० ३३

जानिऐ : जानिए । 'मोहि जानिऐ निज दास।' मा० ६.११३.८

जानिबी : भकृ०स्त्री० (सं० ज्ञातव्या>प्रा० जाणिअव्वा>अ० जाणिव्वी) जाननी (चाहिए, होगी) । 'प्रान प्रिय सिय जानिबी।' मा० १.३३६ छं०

जानिबे : भकृ०पुं० (सं० ज्ञातव्य>प्रा० जाणिअव्वय) । जानने (चाहिएँ) । 'सेवक जानिबे बिन गथ लएँ।' मा० १.३२६ छं० २ (२) जान पड़ेंगे । 'दिवस छसात जात जानिबे न मातु।' कवि० ५.२७

जानिबो : भकृ०पुं०कए० (सं० ज्ञातव्यः>प्रा० जाणिअव्वो) । जानना (चाहिए) । 'नीच गुड़ी लौं जानिबो।' दो० ४०१

जानिय, ये : जानिअ । 'धान को गाँव पयार तें जानिय।' कृ० ४४

जानियत : वकृ० (सं० ज्ञायमान>प्रा० जाणी अंत)। ज्ञात होते (ती)। 'जानिमत सबहीं की रीति राम रावरे।' हनु० ३७

जानिहहिं : आ०भ०प्रब० (सं० ज्ञास्यन्ति>प्रा० जाणिहिंति>अ० जाणिहिंहि)। जानेंगे, समझ लेंगे। 'थोरे महुं जानिहहिं सयाने।' मा० १.१२.६

जानिहि : आ०भ०प्रए० (सं० ज्ञास्यति>प्रा० जाणिहिइ)। जानेगा। 'परम तुम्हार राम कर जानिहि।' मा० २.१७५.७

जनिहैं : जानिहहिं। 'कहिबो जानिहैं लघु लोइ। गी० ५.५.६

जानिहौं : आ०भ०उए० (सं० ज्ञास्यामि>प्रा० जाणिहिमि>अ० जाणिहिउँ)। जानूंगा-गी। 'तौ जानिहौं सही सुत मेरे।' गी० २.११३

जानिहौ : आ०भ०मब० (सं० ज्ञास्यथ—प्रा० जाणिहिह>अ० जाणिहिहु)। जानोगे। 'आपनो कबहुँ करि जानिहौ।' विन० २२३.१

जानी : (१) भूकृ०स्त्री०। जान ली, समझी। 'चतुराई तुम्हारि मैं जानी।' मा० १.४७.३ (२) जानि। जानकर। 'तजिअ बिषादु काल गति जानी।' मा० २.१७६.२ (3) पूर्व-निर्धारित। 'सकल सभा लै उठी, जानी रीति रही है।' विन० २७९.२ (४) जानिअ। जाना जाय। 'महाबल बीर हनुमान जानी।' कवि० ६.२० (५) वि० स्त्री०। ज्ञानवती, बुद्धिमती। 'जानी ह्वै ग्वालि परी फिरि फीके।' कृ० १०

जानु : (१) सं०पुं० (सं०)। पैर का घुटना। मा० १.१९९.११ (२) आ०—आज्ञादि—मए०। तू जान।

जानू : जानु। तू जान। 'चाप सुवा सर आहुति जानू।' मा० १.२८३.२

जानें : जानने पर, जानने से। 'जेहि जानें जग जाइ हेराई।' मा० १.११२.२

जाने : भूकृ०पुं०ब०। ज्ञात किये। 'सिसु सब राण प्रेमबस जाने।' मा० १ २२५.१ (२) जाने-माने हुए, प्रबुद्ध। कृ० ४६ (३) जानें। जानकर। 'फिरी अपनपउ पितु बस जाने।' मा० १.२३४.८ (४) जानना, ज्ञान। 'सोउ जाने कर फल यह लीला।' मा० ७.२२.५

जानेउँ : आ०—भूकृ०पुं०+उए०। मैं ने जाना। 'जानेउँ मरमु राउ हँसि कहई।' मा० २.२८.१

जानेउ : भूकृ०पुं०कए० (सं० ज्ञातम्>प्रा० जाणिअं>अ० जाणियउ)। जाना, ज्ञात किया। 'जब तेहिं जानेउ मरमु तब।' मा० १.१२३

जानेसि : आ०भूकृ०पुं०+प्रए०। उसने जाना। 'जानेसि निपट अकेल।' मा० ३.३७

जानेसु : आ०-भ०+आज्ञा—मए०। तू जानना। 'नहिं आवौं तौ जानेसु मारा।' मा० ४.६.६

जानेहि : आ०-भू०कृ०पुं०+मए० । तू ने जाना । 'निर्भय चलेसि न जानेहि मोही ।' मा० ३.२९.११

जानेहु : (१) आ० भ+आज्ञा—मब० । तुम जानना । 'ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ।' मा० १.१८४.३ (२) भूकृ०पुं०+मब० । तुम ने जाना था । 'जानेहु लेइहि मागि चबेना ।' मा० २.३०.६

जानैं : (१) जानहिं । जानते हैं, जान लें । 'जुग जुग जानैं जग बेदहूं बरनि ।' विन० १८४.४ (२) भकृ० । जानने । जानैं कहुं बल बुद्धि बिसेषा ।' मा० ५.२.१

जानै : (१) जानइ । जान सके । 'को जानै केहि सुकृत सयानी ।' मा० १.३३५.४ (२) जानता हो । 'ता सों करहु चातुरी, जो नहिं जानै मरम तुम्हारा ।' विन० १८८.५ (३) जानहि । तू जान । 'प्रीति परखि जिय जानै । विन० ६५.३ (४) भ०कृ० । जानने । 'को जग जानै जोगु ।' मा० २.७७

जानो : (१) जान्यो । समझा । 'नहिं जानो बियोगु सो रोगु है आगें ।' कवि० ७.१३३ (२) जानहु । जानते हो, जान लो । 'झूठ क्यों कहौंगो जानो सब ही के मन की ।' विन० ७५.१

जानौं : जानउँ । (१) जानता हूँ । 'जानौं न बिग्यानु ग्यानु ।' कवि० ७.६२ (२) जानता होऊँ । 'जननी जौं जानौं यह भेऊ ।' मा० २.१६८.८

जान्यो : जानेउ । समझा । 'समय देव करुनानिधि जान्यो ।' मा० ६.७१.१

जाप : जप । 'मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा ।' मा० ३.३६.१

जापक : वि० (सं०) जप करने वाला । मा० १.२७

जापकी : सं०स्त्री० । जापक का कर्म=जप । 'जापकी न तपखपु कियो ।' कवि० ७.७७

जापु, पू : जाप+कए० । एक मात्र जप । 'भयउ सुद करि उलटा जापू ।' मा० १.१९.५

जाप्य : वि०पुं० (सं०) । जपनीय, मन्त्र देवता । 'वाच्य-वाचकरूप मंत्र जापक—जाप्य ।' विन० ५३.७

जाब : भकृ०पुं० (सं० यातव्य>प्रा० जाअव्व) । (१) जाना । 'मोर जाब तव नगर न होई ।' मा० १.१६७.३ (२) जाना होगा । 'जाब जहँ पाउब तहीं ।' मा० १.९७ छं०

जाबालि, ली : सं०पुं० । ऋषि विशेष का नाम । मा० २.३१९.६

जाम : सं०पुं० (सं० याम>प्रा० जाम) । पहर । मा० १.१७२.५

जामति : भू०कृ०स्त्री० । जमती, उगती, अङ्कुरितया अङ्कुर सम्पन्न होती ।' 'जगती जामति बिनु बई ।' गी० ५.३८.५

जामबंत : सं०पुं० (सं० जाम्बवत्>प्रा० जंबवंत) । सुग्रीव के सेना में ऋक्षराज=जाम्बवान् । मा० ५.१.१

जामवंतु : जामवंत+कए० । रा०प्र० ३.७.२

जामहिं : आ०प्रब० (सं० जायन्ते, जायन्ताम्>प्रा० जम्मंति, जम्मंतु>अ० जम्महिं) (१) उगते हैं । 'बए न जामहिं धान । मा० ७.१०१ (२) चाहे उगें । 'कमठ पीठ जामहिं बरु बारा ।' मा० ७.१२२.१७

जामा : (१) जाम । पहर । 'बैठेंहि बीति जात निसि जामा ।' मा० ५.८.७ (२) भूकृ०पुं० । जमा, उगा, अङ्कुरित हुआ । 'पाइ कपट जलु अंकुर जामा ।' मा० २.२३.६

जामाता : सं०पुं० (सं० जामातृ) । जमाई, पुत्री का पति, दमाद । मा० १.३४१.२

जामिक : सं०पुं० (सं० यामिक) । प्रहरी (रक्षक) । मा० २.३१६.५

जामिनि, नी : सं०स्त्री० (सं० यामिनी>प्रा० जामिणी>अ० जामिणि) । रात । मा० १.३३०.१; २.५० छं०

जामी : भूकृ०स्त्री० । (सं० जाता>प्रा० जम्मिआ) । अङ्कुरित (उत्पन्न) हुई । 'काहू सुमति कि खल सँग जामी ।' मा० ७.११२.४

जामु : जाम+कए० । एक पहर मात्र । 'दिस रहा भरि जामु ।' मा० १.२१७

जामो : भूकृ०पुं०कए० (सं० जातः, जातम्>प्रा० जम्मिओ, जम्मिअं>अ० जम्मियउ>जामियउ>जामेउ>जाम्यो) । उगा । 'सिला सरोरुह जामो ।' विन० २२८.३

जायँ : अव्यय । वृथा । 'नतरु जनमु जग जायँ ।' मा० २.७०

जाय : (१) जायँ । वृथा । 'जाय जोग बिनु छेम ।' दो० १०४ (२) जाइ । जाता है । 'जाय जीव जंजाल ।' रा०प्र० ६.३.६ (३) जाइ । जाकर । 'जाय माय पायँ परि कथा सो सुनाई है ।' गी० ५.२६.१ (४) जाहि । तू जा । 'तू कहूं जाय, तिहूँ ताप तपिहै ।' विन० ६८.१ (५) भूकृ०पुं० (सं० जात>प्रा० जाय) । उत्पन्न । दे० जायऊँ आदि ।

जायउँ : आ०—भूकृ०पुं०+उए० । मैं उत्पन्न हुआ । 'अहह दैव मैं कत जग जायउँ । मा० ६.६०.३

जायउ, ऊ : (१) सं०पुं०कए० (सं० जातकः>प्रा० जायओ>अ० जायउ) । पुत्र (२) वि०भूकृ०पुं० (सं० जातः>प्रा० जाओ>अ० जायउ) । उत्पन्न हुआ (३) सं०पुं०कए० (सं० याचकः=जातकः>प्रा० जायओ>अ० जायउ) भिखारी । 'तुलसी तिहारो घर, जायऊ है घर को ।' कवि० ७.१२२

जायगो : आ०भ०पुं० (१) प्रए० । वह जायगा (२) मए० । तू जायगा । 'छूटिबे के जतन बिसेष बाँधो जायगो ।' विन० ६८.४

जायहु : आ०—भूकृ०पुं०+मब० । तुम उत्पन्न हुए, तुमने जन्म लिया । 'गर्भ न गयहु व्यर्थ तुम्ह जायहु ।' मा० ६.२१.६

जाया : (१) सं०स्त्री० (सं०)। पत्नी। 'उदासीन धन धामु न जाया।' मा० १.९७.३ (२) सं०पुं० (सं० जातक>प्रा० जायअ)। पुत्र। 'जीति न जाइ प्रभंजन जाया।' मा० ५.१९.६ (३) भूकृ०पुं० (सं० जात>प्रा० जाय)। उत्पन्न हुआ। 'जेहि न मोह अस को जग जाया।' मा० १.१२८.८

जाये : (१) जाए। उत्पन्न किये। 'पूत जाये जानकी है।' गी० ७.३४.१ (२) उत्पन्न हुए। 'सब के समान जग जाये।' विन० २०१.४ (३) जायँ। वृथा। 'ते नर जड़ जीवत जग जाये।' गी० १.३२.७

जायो : जायउ। (१) पुत्र। 'असकहि चल्यो बालि नृप जायो।' मा० ६.३५.१० (२) उत्पन्न हुआ। 'जायो कुल मंगन।' कवि० ७.७३ (३) उत्पन्न किया। 'पूत सपूत कौसिला जायो।' गी० १.२.१

✓**जार जारइ :** (सं० ज्वलयति>प्रा० जालइ—जलाना, दग्ध करना, सन्तप्त करना) आ०प्रए०। जलाता है, जला सकता है। 'जारइ भुवन चारिदस आसू।' मा० ६.५५.१

जारत : वकृ०पुं०। जलाता, जलाते हुए। 'जारत नगर कस न धरि खाहू।' मा० ७.९.३ (२) जला रहा (है)। 'जारत पचारि फेरि फेरि सो निसंक लंक।' कवि० ५.२२

जारति : वकृ०स्त्री०। जलाती। 'जो जारति जोर जहानहि रे।' कवि० ७.२८

जारनिहारे : वि०पुं०ब०। जलाने वाले। कृ० ५६

जारा : (१) जाल। 'अस्थि सैल सरिता नस जारा।' मा० ६.१५.७ (२) जारइ। जलाता, संताप देता। 'क्रोध पित्त नित छाती जारा।' मा० ७.१२१.३० (३) भूकृ०पुं०। जला दिया। 'अस कहि जोग अगिनि तनु जारा।' मा० १.६४.८

जारि : पूकृ०। जलाकर। 'कामु जारि रति कहुं बरु दीन्हा।' मा० १.८९.२

जारिउँ : आ०—भूकृ०स्त्री०+उए०। मैंने जलाई, सन्तप्त की। 'जारिउँ जायँ जननि कहि काकू।' २.२६१.६

जारिए, ये : आ०कवा०प्रए०। जलाइए, जलाया जाय। 'जारिये जवासे जस।' हनु० ३५

जारी : (१) भूकृ०स्त्री०। जला दी। 'सपनें बानर लंका जारी।' मा० ५.११.३ (२) जारि। जलाकर। 'करत बिबिध जोग, काम क्रोध लोभ जारी।' गी० १.२५.६

जारें : जलाने से। 'गाइ गोठ महिसुर पुर जारें।' मा० २.२६७.५

जारे : भूकृ०पुं०ब०। (१) जलाये। 'जारे हैं लंक से बंक मवासे।' हनु० १७ (२) जलाये हुए। 'नृपति लाज ज्वर जारे।' गी० १.६८.४

जारेउ : भूकृ०पुं०कए० । जला डाला ।' 'जारेउ कामु महेस ।' मा० १.८९

जारेहुं : जलाने पर भी । 'जारेहुं सहज न पीहर सोई ।' मा० १.८०.६

जारें : आ०प्रब० । जलाते हैं । 'छाती पराई औ आपनी जरें ।' कवि० ७.१०४

जारै : भकृ० अव्यय । जलाने । 'जारै जोगु कपारु अभागा ।' मा० २.१६.७

जारो : जार्यो । 'नामहुं पाप न जारो ।' विन० ९४.६

जार्यो : जारेउ । 'उतरि सिंधु जार्यो पचारि पुर ।' गी० ६.१.६

जाल, ला : सं०पुं० (सं० जाल=जालक>प्रा० जाल=जालअ) । (१) जाली, झालर आदि । 'कनक कलस तोरन मनि जाला ।' मा० १.२९६.८ (२) पाश, फँसाने वाला बागुर । 'जलचर बृंद जाल अंतर गत होत सिमिटि इक पासा ।' विन० ९२.६ (३) बन्धन । 'सुमिरत समन सकल जग जाला ।' मा० १.२७.५ (४) लपेट, लपट । 'उगिलत ज्वाला जाल ।' दो० ३७५ (५) समूह । 'बिथकीं सुनि जुवति जाल ।' गी० २.१७.३ (६) फैलाव, बौंड़' प्रतान । 'श्रीफल कुच, कंचुकि लता जाल ।' विन० १४.५

जालिका : जाल (सं०) । जाली । (१) पाश, बागुरा । 'भूत ग्रह बेताल खग-मृगालि-जालिका ।' विन० १६.२ (२) समुदाय । 'प्रनत जन कुमुद बन इंदु कर जालिका ।' विन० ४८.५

जालु, लू : जाल+कए० । 'जरमु मरनु जहँ लगि जग जालू ।' मा० २.९२.६

जाले : जाला+ब० । 'मकरी के से जाले ।' हनु० १७

जावक : सं०पुं० (सं० यावक) । महावर, लाक्षानिर्मित रंग विशेष जिसे सौभाग्यवतियाँ पावों में रचाती हैं । विवाहादि में वर के पैरों में लगाया जाता है । 'जावक जुत पद कमल सुहाए ।' मा० १.३२७.२

जावनु : सं०पु०कए० । जावन=दही बनाने हेतु दूध में डाला जाने वाला दावन । मा० ७.११७.१४

जासु, सू : सर्वनाम-संबन्ध ए० (सं० यस्य>प्रा० जस्य>अ० जासु) । जिसका-की-के । 'जासु गुन······।' मा० १.१२ 'बड़ रखवार रमापति जासू ।' मा० १.१२६.८

जाहिं, हीं : आ०प्रब० (सं० यान्ति>प्रा० जांति>अ० जाहिं) । (१) जाते हैं । 'जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ ।' मा० १.२२३ (२) जा सकते हैं (कर्म-वाच्यार्थक) । 'पद राजीव बरनि नहिं जाहीं ।' मा० १.१४८.१ (३) आ०उब । हम जाते हैं, जायँ । 'नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं ।' मा० २.१०९.१ (४) सर्वनाम—जिसमें, जहाँ । 'सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राचा ।' मा० १.२३६.८

जाहिंगे : आ०भ०पुं०प्रब० । जायँगे । 'नीच जाहिंगे कालि ।' दो० १४५

जाहि, ही : (१) सर्वनाम । जिसे, जिसको । 'बरइ सीलनिधि कन्या जाही ।' मा० १.१३१.४ 'जाहि दूसरो भावै । कृ० ३३ (२) आ०—आज्ञा—मए० (सं० याहि प्रा०>जाहि) । तू जा । 'करिआ मुह करि जाहि अभागे ।' मा० ६.४६.३ 'अब जनि नाथ कहहु, गृह जाही ।' मा० ७.१८.८

जाहिगो : आ०भ०पुं०मए० । तू (नष्ट हो) जायगा । देहि सिय, ना तौ पिय, परमाल जाहिगो ।' कवि० ६.२३

जाहिर : वि० (अरबी—जाहिर) । प्रसिद्ध । कवि० ७.७६

जाहुं : आ०प्रब० । जायें । 'अब ए नयन जाहुं जित एरी ।' गी० १.७८.२

जाहु : आ०मब० (सं० याथ, यात>प्रा० जाह>अ० जाहु) । (१) जाते हो । 'खलहु जाहु कहँ मोरें आगे ।' मा० ६.६७.७ (२) जाओ । 'सहित सहाय जाहु मम हेतू ।' मा० १.१२५.६

जाहू : (१) जाहु । 'बिप्र बृंद उठि उठि गृह जाहू ।' मा० १.१७३.६ (२) जा+हू । 'जिसके । 'सकइ न बरनि सहस मुख जाहू ।' मा० १.३३१.८

√**जिअ जिअइ** : (सं० जीवति—जीव प्राणधारणे>प्रा० जिअइ) आ०प्रए० । जीता-ती है; जी सकता-ती है । 'जिअइ कि लवन पयोधि मराली ।' मा० २.६३.६

जिअत : वकृ०पुं० (सं० जीवत्>प्रा० जिअंत) । जीता, जीते (जीवन धारण करते हुए) । 'देखउँ जिअत बैरी भूप किसोर ।' मा० १.२७६ (२) जीता (है), जीते (हैं) । 'जिअत अवधि कीं आस ।' मा० २.३२२

जिअन : सं०पुं० (सं० जीवन>प्रा० जिअण) । (१) जीवन । 'जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ ।' मा० २.५६.६ (२) जीने की क्रिया । 'जिअन मरन फलु दसरथ पावा ।' मा० २.१५६.१

जिअनमूरि : जीवनमूलिका । जीवन-दायिनी जड़ी । जीवन का मूल तत्त्व । ऐसी जड़ जिसमें प्राण निहित हों (जिसके उखाड़े जाने पर प्राणहानि निश्चित हो) । दे० जिअन ।

जिअब : भकृ०पुं० (सं० जीवितव्य>प्रा० जिइअव्व) । (१) जीवन । 'भूपति जिअब मरब उरआनी ।' मा० २.२८२.७ (२) जीना होगा (जी सकना होगा =जिऊँगा) । 'मैं न जिअब जिनि जल बिनु मीना ।' मा० २.६६.८

जिअसि : आ०मए० (सं० जीवसि>प्रा० जिअसि) । तू जीता है । 'जिअसि सदा सठ मोर जिआवा ।' मा० ५.४१.३

जिअहिं : आ०प्रब० (सं० जीवन्ति>प्रा० जिअंति>अ० जिअहिं) । जीते हैं, जी जायँ । 'जिअहिं बिचारे निसिचर खाई ।' मा० ५.३७.३

जिअहुं : जीवहुं । जीवित रहें । 'चिर जिअहुँ जोरीं ।' मा० १.३२७ छं० ४

जिअहु : आ०—आशी:—मब० । जिओ । 'जिअहु जगतपति बरसि करोरी ।' मा० २.५.५

जिग्राइ, ई : पूकृ० । जिला, जीवित कर । 'प्रभु सक त्रिभुवन मारि जिआई ।' मा० ६.११४.४

जिआउ : आ०—आज्ञा—मए० (सं० जीवय>प्रा० जिआव>अ० जिआयु) । तू जीवित कर । 'सकल जिआउ सुरेस सुजाना ।' मा० ६.११४.१

जिआएँ : जिलाने से । 'मारें मरिअ जिआएँ जीजै ।' मा० ३.२५.४

जिग्राए : भूकृ०पुं०ब० । जीवित किये । 'सुधा बरषि कपि भालु जिआए ।' मा० ६.११४.५

जिआयउ : भूकृ०पुं०कए० । जिलाया, जीवित किया । 'मोहि जिआयउ जन सुख दायक ।' मा० ७.६३.७

जिआयो : जिआयउ । 'धिग बिधि मोहि जिआयो ।' गी० २.५६.३

✓**जिआव जिग्रावइ** : (√जिअ+प्रेरणा—सं० जीवयति>प्रा० जिआवइ—जिलाना) आ०प्रए० । जिलाता है, जीवित रखता है । 'सोइ बिधि ताहि जिआव न आना ।' मा० ६.६६.१०

जिआवत : वकृ०पुं० (सं० जीवयत्>प्रा० जिआवंत) । जिलाता, जिलाते । 'अरि बस दैउ जिआवत जाही ।' मा० २.२१.२

जिग्रावनि : सं०स्त्री० (सं० जीवनी>प्रा० जिआवणी) । संजीवनी, जीवनदात्री । 'मृतक जिआवनि गिरा सुहाई ।' मा० १.१४५.७

जिआवसि : आ०मए० (सं० जीवयसि>प्रा० जिआवसि) । तू जिलाता है । 'संकर बिमुख जिआवसि मोही ।' मा० १.५६.४

जिआवा : भूकृ०पुं० (सं० जीवित>जिआविअ) । जिला हुआ । 'जिअसि सदा सठ मोर जिआवा ।' मा० ५.४१.३ (२) जिआवइ । जिलाता है । 'जो एतेहुं दुख मोहि जिआवा ।' मा० २.१६५.८

जिआवै : जिआवइ । जीवित रखे । 'जौं जड़ दैव जिआवै मोही ।' मा० ६.६१.१०

जिइहहिं : आ०भ०प्रब० (सं० जीविष्यन्ति>प्रा० जिइहिंति>अ० जिइहिहिं) । जिएँगे । 'प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसें ।' मा० २.१००.१

जिइहि : आ०भ०प्रए० (सं० जीविष्यति>प्रा० जिइहिइ) । जियेगा । 'नृप कि जिइहि बिनु राम ।' मा० २.४६

जिउ : (दे० जीव) सं०पुं०कए० (सं० जीव:, जीवम्>प्रा० जिओ, जिअं>अ० जिउ) । (१) जीवन, प्राण । 'जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी ।' मा० २.१४५.४ (२) जीवात्मा । 'जिउ सुख कबहुं न पावै ।' विन० १२०.५ (३) जन्तु, प्राणी । 'गुह गरीब गत ग्याति जेहिं जिउ न भखा को ।' विन०

१५२.७ (४) (आशीर्वाद अर्थ में) जीव, जी। 'काहे राम जिउ साँवर लछिमन गोर हो।' रा०न० १२

जिएँ : जीने से। 'तुलसी जग में फलु कौन जिएँ।' कवि० १.२

जिए : भूकृ०पुं०ब०। जी उठे। 'जिए सकल रघुपति कीं ईछा।' मा० ६.११४.८

जिये : (१) जिअइ। जीता है। 'सोई जिऐ जग में तुलसी।' कवि० ७.३६ (२) जी सके, जीता रहे। 'जिऐ मीन बरु बारि बिहीना।' मा० २.३३.१ (३) भकृ०। जीना जाने को। 'जिऐ मरै भल भूपति जाना।' मा० २.१६६.८

जिऔं : आ०उए० (सं० जीवामि>प्रा० जिआमि>अ० जिअउँ)। जिऊँ, जीवित रहूं। 'जब लगि जिऔं।' मा० २.३६.७

जित : (१) वि० (सं० जित्) जीतने वाला। 'षट बिकार जित अनघ अकामा।' मा० ३.४५.७ (२) क्रि०वि० अव्यय (सं० यतः>प्रा० जत्तो)। जिधर, जिस ओर। 'ए नयन जाहुं जित हरी।' गी० १.७८.२

✓**जित जितइ** : (सं० जितं करोति=जितयति—जीतना, पराजित करना) आ० प्रए०। जीतता है।

जितई : भूकृ०स्त्री०। जितायी, विजययुक्त कर दी। 'सुकृत सेन हारत जितई है।' विन० १३६.११

जितन : भकृ०। जीतने। 'बलिहि जितन एक गयउ पताला।' मा० ६.२४.१३

जितने : जेते। 'रंक निरगुनी नीच जितने निवाजे हैं।' विन० १८०.८

जितब : भकृ०पुं०। जीतना, पराजित करना।' भुजबल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ।' मा० १.१३६.६

जितहिं : आ०प्रब०। जीतते हैं, जीत पाते हैं (थे)। 'तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी।' मा० १.१२३.८

जिता : (१) भूकृ०पुं०। जीत गया, जीत लिया। 'जिता काम अहमिति मन माहीं।' मा० १.१२७.५ (२) जित। जेता, जीतने वाला। 'धरम धुरधर धीर धुर गुन सील जिता को।' विन० १५२.६

जिताये : भूकृ०पुं०। विजयी बनाये। 'तेरे बल बानर जिताये रन रावन सों।' हनु० ३३

जितावहिं : आ०प्रब०। जिताते हैं, विजय दिलाते थे। 'हारेहुं खेल जितावहिं मोही।' मा० २.२६०.८

जिति : जीति। जीतकर। जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह।' मा० २.२८७.३

जितिहहिं : आ०भ०प्रब०। जीतेंगे। 'जितिहहिं राम न संसय या महिं।' मा० ६.५७.५

जिते : भूकृ०पुं० (ब०) । (१) जीत लिये, पराजित किये । 'जिते असुर संग्राम ।' मा० १.२१६ (२) विजयी हुए । 'हारि जिते रघुराउ ।' दो० ४३३ (३) जीतने पर । 'जिते सकुच सिर नयन नए ।' गी० १.४५.७

जितेउँ : आ०—भूकृ०पुं०+उए० । मैं ने जीता-जीते । 'भुजबल जितेउँ सकल दिगपाला ।' मा० ६.८.३

जितेहु : आ०—भूकृ०पुं०+मब० । तुमने जीत लिये । 'जितेहु चराचर झमरे ।' मा० ५.२१

जितै : जितइ । जीते, जीत सके । 'समर जितै जनि कोउ ।' मा० १.१६४

जितैया : वि० । जीतने वाला, विजेता । 'दले जातुधान जे जितैया विबुधेस के ।' कवि० १.२१

जितैहौ : आ०भ०मब० । जिताओगे; विजयी बनाओगे । 'जनम जनम हौं मन जित्यो, अब मोहि जितैहौ ।' विन० २७०.२

जितो : जित्यो ; जीत लिया, पराजित किया । 'कुंकुम रंग सु अंग जितो ।' कवि० ७.१८० (२) जितौ

जितौ : जेतो । जितना । 'कह्यो न परत सुख होत जितौ री ।' गी० १.७७.२

जितौंगो : आ०भ०पुं०उए० । जीतूंगा । 'कालिहीं जितौंगो रन, कहत कुचालि है ।' कवि० ७.१२०

जितौहैं : वि०पुं०ब० । विजयोन्मुख, विजिगीषु । 'तिन्हके जितौहैं मन ।' गी० १.८६.३

जित्यो : भूकृ०पुं०कए० । जीत लिया । 'बेगि जित्यो मारुत·········बड़ाई जित्यो बावनो ।' कवि० ५.६

जिन : जिन्ह । 'सुमिरत जिनहि रामु मन माहीं ।' मा० २.२१७.३

जिनस : सं०स्त्री० (फा० जिन्स) । जाति जथा उपजाति के भेदोपभेद तथा अवान्तर भेद । 'कामरूप खल जिनस अनेका ।' मा० १.१७६.७

जिनि : जनि । 'मेरो कह्यो मानि तात बाँधै जनि बेरै ।' गी० ५.२७.३

जिन्ह : सर्वनाम+संब० । जिन, जिन्हों । (१) जिन । 'परहित हानि लाभ जिन्ह केरें ।' मा० १.४.२ (२) जिन्होंने । 'जिन्ह सादर हरि चरित बखाना ।' मा० १.१४.२

जिन्हहि : जिनको । 'जिन्हहि न सपनेहुं खेद ।' मा० १.१४ ङ

जन्है : जिन्हहि । 'छाजै जिन्है छत्र छाया ।' कवि० १.८

जिमि : अव्यय (सं० यथा=अ० जिम) । ज्यों, जैसे, जिस प्रकार । मा० १.३ क

जियँ : जी में । 'अभय भई भरोस जियँ आवा ।' मा० १.१८७.६

जिय : सं०पु० (सं० जीव>प्रा० जिअ=जिय) । (१) जीव । 'बरन बिलोचन जन जिय जोऊ ।' मा० १.२०.१ (२) मन, चित्त, अन्तःकरण । 'बिधि बस

कुमति बसी जिय तोरें ।' मा० २.३६.१ (३) प्राण, जीवन । 'जिय बिनु देह, नदी बिनु बारी ।' मा० २.६५.७

जियत : जियत । दो० २२१

जियति : जियत+स्त्री० । जीती, जीवित । 'कैकेई जौलौं जियति रही ।' गी० ७.३७.१

जियबे : जिअब, जीबे । गी० २.१.२

जियरे : (सं० जीवे>प्रा० जिए>अ० जियडे) । जी में, हृदय में । 'कुंडल तिलक छबि गड़ी कबि जियरे ।' गी० १.४३.२

जिया : भूकृ०पुं० । (१) जी उठा, पुनर्जीवित हुआ । रा०प्र० ६.५.५ (२) जीता रहा । 'आजु लौं जग जागि जिया रे ।' विन० ३३.४

जियाइहौं : आ०भ०उए० (सं० जीवयिष्यामि>प्रा० जिआइहिमि>अ० जिआइहिउँ) । जिलाऊँगा, अजीविका दूँगा । 'लरिका केहि भाँति जियाइहौं जू ।' कवि० २.६

जिये : जिए । जीवित रहे । 'सभै सुख जीवन जिये ।' गी० १.५.५

जियें : जिअहिं । जीते हैं । 'असि देह धराइ कै जायँ जियैं ।' कवि० ७.३८

जियै : जिअइ । (१) जीता है । 'मनि लिये फनि जियै ब्याकुल बिहाल रे ।' विन० ६७.३ (२) जीवित रहे । 'जियै जग में तुम्हारो बिनु ह्वै ।' कवि० ७.४०

जियो : (१) आ०—आशी:—प्रए० । चिरजीवी होवे । 'जोरी जियो जुग जुग ।' कवि० १.१४ (२) जिया+कए० । जीवित रहा । बिछुरें कैसे प्रीतम लोगु जियो है ।' कवि० २.२०

जिव : जीव । 'होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ।' मा० ४.१४.८

जिवन : जीवन । 'अस मम जिवन बंधु बिनु तोही ।' मा० ६.६१.१०

जिवनु : जिवन+कए० । 'जिवनु जासु रघुबीर अधीना ।' मा० २.१४६.६

जिवौ : आ०—आशी:—प्रए० (सं० जीवतु>प्रा० जिवउ) । जीवित रहे । 'चिर जिवौ तनय सुखदाई ।' गी० १.१.७

जिष्णु : वि० (सं०) । विजयशील, सर्वोपरि सत्तावान्, सर्वशक्तिमान्=विष्णु ।

जिष्णो : जिष्णु+संबोधन (सं०) । विन० ५४.३

जिसु : जासु । जिसका । 'श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी ।' मा० १.१३०.४

जिहि : जेहि । जिसे । 'जरनि जाइ जिहि जोए ।' गी० २.६१.२

जी : जिय । जीवा । 'पूजीं सकल बासना जी की ।' मा० १.३५१.१

जीअत : जिअत (प्रा० जिअंत=जीअंत) । 'जीअत भवन जाहु द्वौ भाई ।' मा० ३.१६.६

जीजी : सं०स्त्री० (सं० आर्या+जीव>प्रा० अज्जा+जीव>अ० अज्जी+जीव)। बड़ी बहन के लिये प्रयुक्त आदर सूचक शब्द। कवि० २.४

जीजै : आ०भावा० (सं० जीव्यते>प्रा० जिइज्जइ)। (१) जिया जाता है, जीवित रहा जाता है। 'मारें मरिअ जिअएँ जीजै।' मा० ३.२५.४ (२) जीवित रहा जाय, जिया जा सकता है। 'ग्वालिनि तौ गोरस सुखी, ता बिनु क्यों जीजै।' कृ० ७

जीत : जीतइ। जीत सकता है। 'समर भूमि तेहि जीत न कोई।' मा० १.१३१.३

✓**जीत जीतइ** : (सं० जितयति>प्रा० जितइ—विजय करना) आ०प्रए०। जीतता है, जीत सकता है। 'एहि जीतइ रन सोइ।' मा० १.८२

जीतन : भकृ० अव्यय। जीतने। 'जीतन कहुं न कतहुं रिपु ता कें।' मा० ६.८०.११

जीतनिहार, रा : वि०पुं०। जीतने वाला। 'रामहि समर न जीतनिहारा।' मा० २.१८९.७

जीतहु : आ०मब०। जीत लो। 'जीतहु समर सहित दोउ भाई।' मा० १.२६६.५

जीता : भूकृ०पुं०। जीत लिया। 'ख्याल हीं बालि बलसालि जीता।' कवि० ६ १७

जीति : (१) पूकृ०। जीत कर। पुष्पक जानि जीति लै आवा।' मा० १.१७९.८ (२) सं०स्त्री० (सं० जिति>प्रा० जित्ति)। विजय। 'सुनै तिन्ह की कौन तुलसी जिन्हहि जीति न हारि।' कृ० ५३

जीतिअ : जीतिऐ। जीता जा सकता है। 'सपनेहुं समर कि जीतिअ सोई।' मा० ६.५६.८

जीतिऐ : आ०—कवा०—प्रए०। जीता जा सकता है। 'तुलसी तहाँ न जीतिऐ।' दो० ४३०

जीतिबो : भकृ०पुं०कए०। जीतना। 'प्रभु के हाथ हारिबो जीतिबो।' विन० २४६.४

जीतिहहिं : जितिहहिं। 'जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे।' मा० ६.४३.१

जीती : (१) भूकृ०स्त्री०। जीत ली। 'सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती।' मा० १.२२०.५ (२) जीति। जीतकर। 'एकहि एक सकइ नहिं जीती।' मा० ६.५४.१

जीतें : जीतने में। 'जीतें हारि निहारु।' दो० ४२९

जीते : भूकृ०पुं०ब०। जीत लिये। 'जीते सकल भूप बरिआईं।' मा० १.१५४.६

जीतेहु : जितेहु। तुमने जीते। 'जीतेहु लोकपाल सब राजा।' मा० ६.२०.४

जीतै : जीतइ। जीत सके। 'जो न तुम्हहि जीतै समाहीं।' मा० ५.५५.४

जीत्यों : जितेउँ। मैंने जीत लिए। 'जीत्यों अजय निसाचरराऊ।' मा० ६.११२.३

जीत्यो : भूकृ०पुं०कए० । (१) जीत लिया गया, पराजित हुआ । 'मातु समर जीत्यो दस सीसा ।' मा० ६.१०७.७ (२) जीता (जीतना) । 'चहत जीत्यो रारि रन में ।' गी० ५.२३.१

जीन : सं०पुं० (सं० जीन=चमड़े का थैला—फा० जीन) । घोड़े की काठी । 'रचि रचि जीन तुरग तिन्ह साजे ।' मा० १.२९८.४

जीनु : जीन+कए० । 'जगमगत जीनु जराव ।' मा० १.३१६ छं०

जीबिका : सं०स्त्री० (सं० जीविका) । जीवन-वृत्ति, जीवन यात्रा, जीवनयापन हेतु व्यवसाय, रोजी । 'जीबिका बिहीन लोग सीघमान ।' कवि० ७.९७

जीबे : भकृ०पुं० (सं० जीवितव्य>प्रा० जिइअव्वय) । जीने (को) । 'जीबे न ठाउँ, न आपन गाउँ ।' कवि० ७.९२

जीबो : भकृ०पुं०कए० । जीना (जिया जा सकता है) । 'है जग ठाउँ, कहूं ह्वै जीबो ।' कृ० ९

जीभ : सं०स्त्री० (सं० जिह्वा>प्रा० जिब्भा>अ० जिब्भ) । मा० १.६४.४

जीयँ : जियँ । जी में, मन या अन्तरात्मा में । 'जैसी मुख कहौं तैसी जीयँ जब आनिहौं ।' कवि० ७.६३

जीय : जिय । विन० २६३.१

जीव : सं०पुं० (सं०) । (१) प्राणी । 'जड़ चेतन जग जीव जत ।' मा० १.७ (२) चित् तत्त्व, ईश्वरांश आत्मा, (सांख्य में) पुरुष, जीवात्मा । 'ब्रह्म जीव बिच माया जैसें ।' मा० २.१२३.२ (३) जीवन । 'सुंदर जुबा जीव परहेलें ।' मा० १.१५९.३ (४) (सं० जीवति इति जीव: के अनुसार आशीर्वादार्थक) चिरंजीव, जी । 'कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए ।' मा० २.५.२

जीवजाल : (दे० जाल) जीव समूह । हनु० २४

जीवत : वकृ०पुं० (सं० जीवत्>प्रा० जीवंत) । जीता, जीते, जीते हुए । 'जीवत सकल जनम फल पाए ।' मा० २.१६१.३ (२) जीते-जी, जीवित रहते । 'जीवत हमहि कुअँरि को बरई ।' मा० १.२६६.४

जीवति : वकृ०स्त्री० । जीती, प्राणधारण करती । 'कतहुं रहउ जौं जीवति होई ।' मा० ४.१८.३

जीवन : सं०पुं० (सं०) । (१) प्राणधारण । 'मम जीवन तिमि तुम्हहिं अधीना ।' मा० १.१५१.६ (२) जीवन साधन । 'राम भगत जन जीवन सोई ।' मा० १.३६.७ (३) आयुष्य=जन्म से मरण तक का समय । 'लघु जीवन संबतु पंचदसा ।' मा० ७.१०२.४ (४) भकृ० (सं० जीवितुम्>प्रा० जीविउं>अ० जीवण) जीने । 'कवनि राम बिनु जीवन आसा ।' मा० २.५१.५ (५) जिलाने वाला । 'श्रीजानकीजीवनम् ।' मा० ४ श्लोक २ (६) जीव+संब० । जीवों

(को) । जीवन मुकुति हेतु जनु कासी ।' मा० १.३१.११ (७) जल । 'जीवन तें जागी आगि ।' कवि० ५.१६ (८) प्राणधारण+जल । 'होइ जलद जग जीवन दाता ।' मा० १.७.१२

जीवनतरु : जीवन रूपी वृक्ष+वह वृक्ष जिसमें जीवन रहता हो (लोक कथाओं में किसी राजा का जीवन एक वृक्ष में स्थित कहा जाता है, वहीं से जीवन वृक्ष की कल्पना है । उस वृक्ष को छलपूर्वक हटा देने पर राजा का मरण कथाओं में आता है ।) 'जीवनतरु जिमि जोगवइ राऊ ।' मा० २.२०१.१

जीवननाथू : जीवननाथ+कए० । जीवन के एकमात्र स्वामी । प्राणाधार । मा० २.५८.३

जीवनमुक्त : वि० (सं० जीवन्मुक्त) । जीवित दशा में ही ब्रह्मलीन रहने वाला यति । 'जीवनमुक्त ब्रह्म पर ।' मा० ७.४२

जीवनि : सं०स्त्री० (सं० जीवनी) । जीवनदात्री, जीवनबूटी, जिलाने वाली औषधि । 'अवधि आस सम जीवनि जी की ।' मा० २.३१७.१

जीवनु : जीवन+कए० । 'सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा ।' मा० २.३१.३

जीवन्ह : जीव+संब० । जीवों । 'मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा ।' मा० ७.७९.१

जीवहिं : आ०प्रब० (सं० जीवन्ति>प्रा० जीवंति>अ० जीवहिं) (१) जीते हैं । 'महरि महर जीवहिं सुख जीवन ।' कृ० ४८ (२) जियें (गे) । 'क्यों जीवहिं, मेरे राम लाड़िले, ते अब निपट बिसारे ।' गी० २.८७.२

जीवहि : (१) जीव को । 'जनु जीवहि माया लपटानी ।' मा० ४.१४.६ (२) जीव का । 'ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस ।' मा० ७.७८.५

जीवहुं : आ०—आशी:—प्रब० । जियें, चिरायु हों । 'सकल तनय चिर जीवहुं ।' मा० १.१९६

जीवहु : (१) जीवहुं । 'नृप सुत चारि चारु चिर जीवहु ।' गी० १.२.१० (२) जीवों के ही । 'सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई ।' मा० ७.८६.९

जीवा : जीव । मा० २.२३८.५

जीवै : जीवइ । जी सकता है । 'प्रतिग्राही जीवै नहीं ।' दो० ५३३

जीवौं : आ०उए० (सं० जीवामि>प्रा० जीवमि>अ० जीवउँ) । जीवित रहूं ।' 'जीवौं तौ बिपति सहौं निसि बासर ।' गी० २.५४.४

जीहँ : जीभ से । 'नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी ।' मा० १.२२.१

जीह : जीहा (अ०) । जीभ । 'जीह जसोमति हरि हरधर से ।' मा० १.२०.८

जीहा : सं०स्त्री० (सं० जिह्वा>प्रा० जीहा) । जीभ । 'हंसिनि जीहा जासु ।' मा० २.१२८

जु : (१) जो । यदि । 'राबन जु पै राम रन रोषे ।' गी० ५.१२.१ (२) जो । जिसको । 'को जु मोह कीन्हो जय न ।' कवि० ७.११७

जुआ : सं०पुं० (सं० द्यूत>प्रा० जूअ)। द्यूतक्रीडा। 'कहा भयो कपट जुआ जो हौं हारी।' कृ० ६०

जुआरा : वि०पुं० (सं० द्यूतकार>प्रा० जूआर)। द्यूत खेलने वाला। 'बाढ़े खल बहु चोर जुआरा।' मा० १.१८४.१

जुआरि, री : जुआरा (सं० द्यूतकारिन्>प्रा० जुआरी)। 'सूझ जुआरिहि आपन दाऊ।' मा० २.२५८.१

जुग : (१) संख्या (सं० युग्म>प्रा० जुग्ग—सं० युग) युगल, दो। 'सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी।' मा० १.१४६.१ (२) सं०पुं० (सं० युग)। प्रसिद्ध चार युग—कृत, त्रेता, द्वापर और कलि। 'जुग कलिजुग मलमूल।' मा० १.६६ ख 'चहुं जुग चहुं श्रुति नाम प्रभाऊ।' मा० १.२२.८

जुगम : संख्या (सं० युग्म)। युगल। 'भजहि पद जुगम।' विन० १६६.२

जुगल : संख्या (सं० युगल)। जोड़ा, युग्म, दो। मा० १.१५.१

जुग-षट : (युग+षट्=६×२)। बारह। 'जुग-षट भानु देखे।' कवि० ५.२० (प्रलय में उदय लेने वाले द्वादश आदित्यों से तात्पर्य है)

जुगति : (सं०स्त्री० (सं० युक्ति)। (१) उपाय। 'मम आधीन जुगुति नृप सोई।' मा० १.१६७.३ (२) योजना। 'जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ।' मा० १.१६८.४ (३) चातुरी। 'बोलेउ जुगुति समेत।' मा० १.१६० (४) तर्क, उपपत्ति। 'एकउ जुगुति न मन ठहरानी।' मा० २.२५३.७ (५) अनुमान। 'तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने।' मा २.११०.४ (६) बहाना। 'मैया इन्हहि बानि पर घर की नाना जुगुति बनावहि।' कृ० ४ (७) गुप्त मन्त्रणा आदि। 'इहां राम असि जुगुति बनाई।' मा० ३.२३.८ (८) कला-कौशल, काव्यगत औचित्य, काव्य-प्रबन्ध-निर्वाह, नाटकीय घटनाक्रम की सम्यक् योजना। 'जुगुति बेधि पुनि पोहिअहि राम चरित बर ताग।' मा० १.११

जुगुल : जुगल। कृ० २१

जुज्झहि : आ०प्रए० (सं० युध्यन्ते>प्रा० जुज्झंति>अ० जुज्झहिं)। लड़ते हैं, युद्ध कर रहे हैं। मा० ६ ८८ छं०

जुझाऊ : वि०पुं०। युद्ध सम्बन्धी, रणोत्तेजक। 'कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू।' मा० २.१६२.३

जुझारा : वि०पुं० (सं० योद्ध>प्रा० जुज्झार)। योद्धा। 'अपित सुभट सब समर जुझारा।' मा० १.१५४.३

जुटत : वकृ०पुं०। समुदाय में एकत्र होते, जुड़ते। 'मर्कट बिकट भट जुटत।' मा० ६.४६ छं०

जुठारि, री : पूकृ०। जूठा करके। 'सब उपमा कवि रहे जुठारी।' मा० १.२३०.८

जुड़ाई : सं०स्त्री० । ठण्ढ, शीत, जाड़ा, जूड़ी रोग, शीतज्वर । 'जातहि नींद जुड़ाई होई ।' मा० १.३६.१

जुड़ाउ, ऊ : आ०—आज्ञा—मए० । तू शीतल कर । 'नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ ।' मा० २.१६८.६

जुड़ाना : भूकृ०पुं० । शीतल हुआ । 'तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ।' मा० १.१८७.८

जुड़ानी : भूकृ०स्त्री० । शीतल हुई । 'देखि रामु सब सभा जुड़ानी ।' मा० १.३५६.२

जुड़ाने : भूकृ०पुं०ब० । शीतल हुए । 'प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने ।' मा० १.१३२.४

जुड़ायो : भूकृ०पुं०कए० । शीतल किया । 'काहु न हरि करि कृपा जुड़ायो ।' विन० २४३.३

जुड़ावउँ : आ०उए० । शीतल करता हूँ-करूँ-करूँगा । 'आजु निपाति जुड़ावउँ छाती ।' मा० ६.८३.२

जुड़ावहिं : आ०प्रब० । शीतल करते हैं । 'हृदयँ लगाइ जुड़ावहिं छाती ।' मा० १.२६५.५

जुड़ावहु : आ०मब० । शीतल करो । 'आजु जुड़ावहु छाती ।' मा० २.२२.५

जुड़ावा : भूकृ०पुं० । शीतल किया । 'निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ।' मा० ४.३.६

जुड़ावै : जुड़ावइ । आ०प्रए० । शीतल करे । 'तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै ।' मा० ७.११७.१४

जुत : वि० (सं० युक्त, युत>प्रा० जुत्त) । सहित, संयुक्त । मा० १.१६०.८

जुत्थ : जूथ । 'जुबति जुत्थ महँ सीय सुभाइ बिराजइ ।' जा०मं० १४१

जुद्ध : सं०पुं० (सं० युद्ध) । संग्राम । मा० ६.४४.१

जुन्हैया : सं०स्त्री० (सं० ज्योत्स्ना>प्रा० जुण्हा=जुण्हिया) । चाँदनी । गी० १.६.४

जुबति : जुवति । तरुणी । 'जग असि जुबति कहाँ कमनीया ।' मा० १.२४७.४

जुबतीं : जुबति, ती+ब० । युवतियाँ । 'जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं ।' मा० १.२२०.४

जुबती : सं०स्त्री० (सं० युवती) । स्त्री । 'पुत्रवती जुबती जग सोई ।' मा० २.७५.१

जुबतिन, न्ह : जुवति, ती+संब० । तरुणियों (ने), स्त्रियों (ने) । 'जहँ तहँ जुबतिन्ह मंगल गाए ।' मा० १.२६३.२

जुबराज, जा : (१) सं०पुं० (सं० यूवराज) । 'आपु अछत जुबराज पद रामहि देउ नरेसु ।' मा० २.१ (२) (सं० यौवराज्य>प्रा० जुव्वरज्ज) । युवराअपद । 'राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज ।' मा० ४.११ (३) किष्किन्धा के अनन्तर 'अङ्गद' के लिए प्रायः प्रयुक्त है ।

जुबराजु, जू : जुबराज+कए० । (१) युवराज । 'रामु होहिं जुबराजु ।' मा० २.४ (२) यौवराज्य, युवराजपद । 'जेहि जनेसु देइ जुबराजू ।' मा० २.१४.२

जुबा : सं०पु० (सं० युवन्>प्रा० जुवा) । युवक । मा० १५६.३

जुबान : जुबा (सं० युवन्>प्रा० जुवाण) । मा० १.२४०.६

जुबानू : जुबान+कए० । 'सरिस स्वान मघवान जुबानू ।' मा० २.३०२.८

जुर : सं०पुं० (सं० ज्वर) जर । (१) सन्ताप । 'जौबन जरत जुर ।' कवि० ७.९८ (२) दाह । 'कालकूट जुर जरत सुरासुर ।' विन० ३.२ (३) क्लेश, दुख—आध्यात्मिक, मानस तथा दैविक ताप । 'मन जरत त्रिबिध जुर ।' विन० ८१.१

✓**जुर जुरइ** : (सं० जुडति—जुड संघाते>प्रा० जुडइ—संचित होना, एकत्र होना, मिलना) आ०प्रए० । जुड़ता-ती है । 'चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी ।' मा० १.८.७

जुरन : भकृ० अव्यय । जुटने, इकट्ठा होने । 'लागी जुरन बरात ।' मा० १.२९९

जुरहिं : आ०प्रब० । एकत्र हों, जुटते हैं । 'सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा ।' मा० २.१८९.७

जुरा : भूकृ०पुं० । एकत्र हुआ । 'भोरन्हाइ सब जुरा समाजू ।' मा० २.३१३.१

जुरि : पूकृ० । जुटकर, समवेत होकर । 'बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं ।' कवि० १.१७

जुरिहि : आ०भ०प्रए० । (१) जुड़ेगा । 'टूट चाप नहिं जुरिहि रिसानें ।' मा० १.२७८.२ (२) मिलेगा । 'गिरिजा जोगु जुरिहि बरु अनुदिन लोचहिं ।' पा०मं० ९

जुरी : भूकृ०स्त्री० । जुड़ी, प्रीति बनी । 'करत जतन जा सो जोरिबे को जोगी जन, तासों क्योंहू जुरी, सो अभागो बैठो तोरि हौं ।' विन० २५८.१

जुरे : भूकृ०पुं०ब० । जुटे, समवेत हुए । 'परब जोग जनु जुरे समाजा ।' मा० १.४१.७

जुरै : जुरइ । 'सायर जुरै न नीर ।' दो० ७२

जुरैगो : आ०भवि०पुं०प्रए० । जुड़ेगा । 'टूट्यो न जुरैगो ।' कवि० १.१९

जुवति, ती : जुबति, ती ।

जुवा : जुबा । कवि० १.१७

जुवारि : सं०स्त्री० । ज्वार, अन्नविशेष । 'बगरे नगर निछावरि मनिगन जनु जुवारि जव धान ।' गी० १.२.१९

जुहारत : वकृ०पुं० (दे० जोहारु) । जोहार करता-ते । 'मिलत जुहारत भूप ।' रा०प्र० ६.२.७

जूँठनि : जूठनि । गी० १.३६.५

जू : जिउ, जीव । जी । 'बालक नृपाल जू के ।' कवि० १.१२

✓**जूझ जूझइ** : (सं० युध्यते>प्रा० जुज्झइ—लड़ना, संग्राम करना) आ०प्रए० । युद्ध करता है । भिड़ता है=लड़ता है । 'राढ़उ राउत होत फिरि कै जुझै ।' विन० १७६.६

जूझ : सं०पुं० (सं० युद्ध>प्रा० जुज्झ) । संग्राम । 'जूझ जूआ जय जानि ।' रा०प्र० २.४.२

जूझा : जूझ । 'करब कवन बिधि रिपु सौं जूझा ।' मा० ६.८.७

जूझिबे : भकृ०पुं० (सं० योद्धव्य>प्रा० जुज्झिअव्वय) । युद्ध करने । 'जूझिबे जोगु न ठाहरु नाठे ।' कवि० ६.२८

जूझिबो : भकृ०पुं०कए० (सं० योद्धव्यम्>प्रा० जुज्झिअव्वं>अ० जुज्झिव्वउ) । लड़ना । 'कै जूझिबो कि बूझिबो ।' दो० ४५१

जूझें : युद्ध करने से । 'बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझें ।' मा० २.१९२.८

जूझे : (१) भूकृ०पुं०ब० । लड़े, युद्ध में काम आये, लड़ मरे । 'जूझे सकल सुभट करि करनी ।' मा० १.१७५.६ (२) 'जूझा' का रूपान्तर । युद्ध । 'जूझे तें भल बूझिबो ।' दो० ४३१

जूझै : (१) भकृ० । जूझने, युद्ध करने । 'पुनि रघुपति सैं जूझै लागा ।' मा० ६.७३.१० (२) जूझइ । 'क्यों कबंध ज्यों जूझै ।' विन० २३८.१

जूट : सं०पुं० (सं०) । समूह, गुम्फ । जूड़ा । 'शिरसि संकुलित कल जूट पिंगल जटा ।' विन० ११.२

जूटीं : भूकृ०स्त्री०ब० । जुट गईं, एकत्र हुईं । 'लै कर खप्पर जोगिनि जूटीं ।' कवि० ६.५१

जूठन : जूठनि । विन० १७०.३

जूठनि : सं०स्त्री० (सं० जुष्टान्न>प्रा० जुट्ठण्ण) । अच्छिष्ट अन्न, खाते समय गिरे या फेंके हुए सीथ । 'जूठनि परइ अजिर महँ ।' मा० ७.७५

जूड़ी : (१) सं०स्त्री० । शीतज्वर, जाड़ा बुखार । 'स्वरस लेहिं जनु जूड़ी आई ।' मा० ७.४०.२ (२) ठंढक (३) ठंढी । 'राम नाम को प्रभाउ जानि जूड़ी आगि है ।' विन० ७०.२

जूड़े : वि०पुं०ब० । ठंढे । 'जूड़े होत थोरे, थोरे ही गरम ।' विन० २४९.१

जूथ, था : सं०पुं० (सं० यूथ) । (१) समूह । 'जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनीं ।' मा० १.२८६.२ (२) सेना की टुकड़ी । 'सुनहु सकल रजनीचर जूथा ।' मा० १.१८१.५

जूथप : वि०पुं० (सं० यूथप) । सेना-विभाग का नायक । 'आए जूथप जूथ ।' मा० ५.३४

जून : वि०पुं० (सं० जीर्ण=जूर्ण>प्रा० जुण्ण) । पुराना, सड़ियल । 'का छति लाहु जून धनु तोरें ।' मा० १.२७२.२

जूरी : सं०स्त्री० (सं० जूठिका>प्रा० जूड़िआ>अ० जूडी) । जुट्टी, पूली, आँटी, पुञ्ज । 'कंद मूल फल अंकुर-जूरी ।' मा० २.२५०.२

जूह, हा : जूथ (सं० यूथ>प्रा० जूह) । (१) समूह । 'छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह ।' मा० ६.६६ (२) सेना विभाग । 'पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा ।' मा० ४.१९.४

जे : (१) ये । जो लोग, जो सब । 'जे निज भगत नाथ तव अहहीं ।' मा० १.१५०.८ (२) जब, ज्यों ही । 'लखन सकोप बचन जे बोले । डगमगनि महि दिग्गज डोले ।' मा० १.२५४.१

जेईअ, य : आ०कवा०प्रए० । भोजन किया जाय । 'बंधु बोलि जेइँय जो भावै ।' गी० २.५२.३

जेईं : भूकृ०स्त्री०ब० । कृत भोजन हुईं (भोजन किया) । 'जपि जेईं पिय संग भवानी ।' मा० १.१९.६

जेई : (जे+इ) जो सब भी । 'बूड़हिं, आनहि बोरहिं जेई ।' मा० ६.३.८

जेऊ : (जे+उ) (सं० येऽपि>प्रा० जेवि) । जो लोग भी । 'जेठ कहावत हितू हमारे ।' मा० १.२५६.१

जेउ : जेउ । 'जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ ।' मा० १.२२.३

जेठ : वि०पुं० (सं० ज्येष्ठ>प्रा० जेट्ठ) । जेठा, सब में बड़ा । मा० १.१५३.५

जेठि : वि०स्त्री० (सं० ज्येष्ठा>प्रा० जेट्ठी>अ० जेट्ठि) (१) बुद्धि, वय आदि में श्रेष्ठ स्त्री । 'कौसल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो ।' रा०न० ९ (२) अग्रजा । 'जेठि भरत कहँ ब्याहि ।' जा०मं० १५३

जेठे : 'जेट' का रूपान्तर । बड़े । जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा ।' मा० १.१५३.८

जेतने : जेते । जितने । 'रबि तप जेतनेहि काज ।' मा० ७.२३

जेता : (१) वि०पुं० (सं० यावत्>प्रा० जेत्तिअ) । जितना । 'किमि कहि जात मोदु मन जेता ।' मा० १.३३०.३ (२) वि०पुं० (सं० जेतृ—जेता) । विजेता । 'गान गुन गर्व गंधर्व जेता ।' विन० २९.३

जेते : 'जेता'+ब० । जितने । 'रघुपति चरन उपासक जेते ।' मा० १.१८.३

जेन : (सं० येन>प्रा० जेण) जिस······से । 'जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान ।' मा० ७.१०३ (येन केन बिधिना=जिस किसी प्रकार से)

जेन्ह : जिन्ह । जिन । 'मुनि मन मधुप बसहिं जेन्ह माहीं ।' मा० १.१४८.१

जेरो : भूकृ०पुं०कए० । (फा० जेर=नीच, निर्बल) । दबोच लिया, निर्बल कर दिया । 'नाम ओट अब लगि बच्यो, मल-जुग जग जेरो ।' विन० १४६.४

√**जेवँ जवँइ** (सं० जेमति>प्रा० जेमइ>अ० जेवँइ—भोजन करना) आ०प्रए० । भोजन करता है, खाता है । 'पुनि तिन्ह कें घर जेवँइ जोऊ ।' मा० १.१६८.७

जेवँत : वकृ०पुं० । भोजन करता-करते । 'जेवँत देहिं मधुर धुनि गारी ।' मा० १.३२९.६

जेवँहिं : आ०प्रब० (सं० जेमन्ति>प्रा० जेमंति>अ० जेवँहिं) । भोजन करते हैं । 'बिबुध जन जेवँहिं ।' पा०मं० १३८

जेवन : भकृ० अव्यय । भोजन करने । 'पंच कवल करि जेवन लागे ।' मा० १.३२९.१

जेवनार : सं०स्त्री० (सं० जेमनकार>प्रा० जेमणार>अ० जेवँणार) । भोजन-व्यवस्था, भोजन की पंगत । 'दिनहिं करबि जेवनार ।' मा० १.१६८

जेवनारा : जेवनार । 'भाँति अनेक भई जेवनारा ।' मा० १.९९.४

जेवरी : सं०स्त्री० । रस्सी । 'खायो जेवरी को साँप···रे ।' विन० ७३.२

जेवाँइ : पूकृ० (पुं० जेमयित्वा>प्रा० जेमविअ>अ० जेवाँवि) । भोजन करा कर । 'बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना ।' मा० २.१२९.७

जेवाँइअ, य : आ०कवा०प्रए० । खिलाइए, भोजन कराइए । 'पेट भरि तुलसिहि जेवाँइय भगति सुधा सुनाजु ।' विन० २१९.५

जेवाँए : भूकृ०पुं०ब० । भोजन कराये । 'छरस असन अति हेतु जेवाँए ।' मा० १.३३६.३

जेहिं : सर्वनाम (१) जिसने । 'आदि सक्ति जेहिं जग उपजाया ।' मा० १.१५२.४ (२) जिस···में । 'जेहिं समाज बैठे मुनि जाई ।' मा० १.१३४.१ (३) जिससे । 'जेहिं न होइ पाछें पछिताऊ ।' मा० २.४.५

जेहि : सर्वनाम । (१) जिस, जिसे । 'जेहि जस रघुपति करहिं जब ।' मा० १.१२४ (२) जिसका-की-के । 'सेष जेहि आनन घने ।' मा० ६.७१ छं०

जेहीं : जेहिं । मा० २.४९.१

जेही : जेहि । मा० १.४.१०

जै : जय । 'जै जै जानकीस ।' कवि० ५.२७

जैए : जाइअ । चलिए, जाया जाय । 'हिंडोलना झूलन जैए ।' गी० ७.१८.१

जैबे : भूकृ०पुं० । जाने (को) । 'जैबे को अनेक टेक ।' कवि० ७.८२

जैसा : जस (अ० जइसअ) । मा० ३.१०.१५

जैसिए, ये : जैसी भी । 'तैसो मन भयो जाकी जैसिये सगाई है ।' गी० १.७१.४

जैसी : वि०स्त्री० (सं० यादृशी>अ० जइसी) । मा० १.२८९.६

जैसें : क्रि०वि० । जिस प्रकार से, यथा । 'सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें ।' मा० १.२४२.२

जैसे : (१) वि०पुं०ब० । जिस प्रकार के । 'जैसे होत आए हनुमान के निवाजे हैं ।' हनु० १५ (२) जैसें । 'जैसे कोउ एक दीन दुखित अति ।' विन० १२३.३

जैसेहिं : जैसे ही, जिस भी अवस्था में । 'जो जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं ।' मा० ७.३.७

जैसो : वि०पुं०कए० (अ० जइसउ) । जैसा, जिस प्रकार का । 'जैसो तैसो रावरो ।' दो० ८४

जैहउँ : आ०भ०उए० । जाऊँगा-गी । 'कब जैहउँ दुख सागर पारा ।' मा० १.५९.१

जैहसि : आ०भ०मए० । तू जायगा (मिट जायगा) । 'जैहसि तैं समेत परिवारा ।' मा० १.१७४.२

जैहहिं : आ०प्रब०भ० । जायँगे । 'न त मारे जैहहिं सब राजा ।' मा० १.२७१.५

जैहैं : जैहहिं । (१) वे जायँगे । 'अनुज सखा सिसु संग लै खेलन जैहैं ।' गी० १.२२.१३ (२) उब० । हम जायँगे । मा० ४.२६.६

जैहै : आ०भ०प्रए० । (१) जायगा-गी । 'कहिबे कछू कछू कहि जैहै ।' कृ० ४७ (२) मिटेगा-गी । 'राम नाम जपे जैहै जिय की जरनि ।' विन० २४७.१ (३) बिगड़ेगा । 'मेरो कहा जैहै ।' कवि० ६.११

जैहौं : जैहउँ । उर लाइ वारने जैहौं ।' गी० १.८.२

जोंक : सं०स्त्री० (सं० जलौका) । जल-जन्तु विशेष जो चिपक कर रक्त चूसता है । 'जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं ।' मा० १.५.५

जो : (१) सर्वनाम-कए० । 'गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक ।' मा० १.१.८ (२) जौं । यदि । 'स्याम बियोगी ब्रज के लोगनि जोग जोग जो जानौ । कृ० ३५ (३) यतः, जिससे । 'ग्लानि जियँ जोहौ जो न लागै मुहँ कारिखी ।' कवि० १.१५

जोइ : (१) (जो+इ) । जो भी, जो कुछ । 'मागहु बर जोइ भाव मन ।' मा० १.१४८ (२) पूकृ० । देखकर । 'सम भयो···ईस आयसु···जोइ ।' गी० ५.५.३ (३) आ० — आज्ञा — मए० । तू देख । 'तिमि प्रपंच जियँ जोइ ।' मा० २.९२

जोइऐ : आ०कवा०प्रए० । देखिए । 'जानें जानन जोइऐ ।' दो० ९८

जोइहि : आ०भ०प्रए । देखागा-गी । 'जननी जिअत बदन बिधु जोइहि ।' मा० २.६८.८

जोई : (१) भूकृ०स्त्री० । देखी । 'भरी क्रोध जल जाइ न जोई ।' मा० २.३४.२ (२) जोइ । जो । 'अगुन अरूप अलख अज जोई ।' मा० १.११६.२

जोउ : (१) (जो+उ)। जो भी। (२) आ० —आज्ञा—मए०। तू देख। 'सब बरननि पर जोउ।' मा० १.२०

जोऊ : जोऊ। (१) जो भी, जो कोई (जो कुछ)। 'पुनि तिन्ह कें गृहँ जे वइँ जोऊ।' मा० १.१६८.७ (२) तू देख। 'किसोर लोचन भरि जोऊ।' गी० २.१६.२

जोए : (१) भूकृ०पुं०ब०। देखे। 'जाहि न जोए।' मा० २.६१.३ (२) देखकर। 'अब ए गढ़त महरि मुख जोए।' कृ० ११

जोख : सं०स्त्री०। तौल। 'तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख।' दो० २८१

जोखें : तौल में, तौलने में। 'लेखें जोखें चोखें चित तुलसी स्वारथ हित।' कवि० ७.२४

जोखे : भूकृ०पुं०। तौले हुए, तौल लिये। 'बल इन को पिनाक नीके नापे जोखे हैं।' गी० १.६५.२

जोग : सं०पुं० (सं० योग)। (१) सम्बन्ध, सम्पर्क। 'देह-जीव-जोग।' विन० २७७.२ (२) प्राप्ति। 'मनहुं मीन गन नव जल जोगा।' मा० २.२६४.५ (३) अवसर, प्रसंग। 'परब जोग जनु जेरे समाजा।' मा० १.४१.७ (४) जीवनचर्या हेतु अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति (दे० जोग छेम)। जायँ जोग बिनु छेम।' दो० १०४ (५) ज्योतिष में तिथि और नक्षत्र के सम्बन्ध से बनने वाला योग। 'जोग लगन गृह बार तिथि।' मा० १.१६० (६) ज्योतिष में ग्रहयोग। मा० १.८ क (७) मिलन, संयोग (वियोग का विलोम)। 'कबहूं जोग बियोग न जा कें।' मा० १.४६.८ (८) चित्त की एकाग्रता=समाधि। 'धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना।' मा० ३.१६.१ (९) अष्टाङ्गयोग या राज-योग—जिसके यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये आठ अङ्ग हैं। मा० १.३७.१० (१०) आयुर्वेद में नुस्खा या औषधियों का मिश्रण। मा० १.७ क (११) वि० (सं० योग्य>प्रा० जोग्ग)। उपयुक्त, उचित। 'हँसिबे जोग हँसें नहिं खोरी।' मा० १.६.४ (१२) उपयुक्त प्राप्य। 'नेगी नेग जोग सब लेहीं।' मा० १.३५३.६ (१३) योगसाधन+चिकित्सा+उपयुक्त+प्राप्ति। 'जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ। 'फलइ तबहिं जब करिअ दुराऊ।' मा० १.१६८.४ (१४) पात्र, योग्य अधिकारी। 'पटतर जोग बनावै लागा।' मा० २.१२०.५

जोगछेम : (युग्मक—सं० योगक्षेम) योग=अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति+क्षेम=प्राप्त वस्तु की रक्षा। जीवनवृत्ति, जीविका का संचार जिसमें प्रयत्न से वस्तु प्राप्त करके प्रयत्न से ही रक्षित की जाती है। गी० १.६६.६

जोगपट : सं०पुं० (सं० योगपट्ट) । वस्त्र का पट्टा जिसे योगी लोग जनेऊ के समान गले में डाले रहते हैं (२) (सं० योगपट) योगियों के भँगवा वस्त्र । 'तुलसी ये नागरिन्ह जोगपट ।' कृ० ४१

जोगबिद : वि० (सं० योगविद्) । योगशास्त्र या समाधि सुख का ज्ञाता । विन० २३६.२

✓**जोगव जोगवइ** : (रक्षा या सार सँभाल करना) आ०प्रए० । बचाता है, प्रयास-पूर्वक रक्षा करता है । 'जीवन-तरु जिमि जोगवइ राऊ ।' मा० २.२०१.१

जोगवत : वकृ०पुं० । रक्षा करता-ते; रुचि का अनुसरण करता-ते । 'मन जोगवत रह नृपु रनिवासू ।' मा० १.३५२.७

जोगवति : वकृ०स्त्री० । रक्षा करती । 'मन जोगवति रहति रमासी ।' विन० २२.६

जोगवहिं : आ०प्रब० । सार-सँभाल करते हैं; सप्रयास रक्षित करते हैं । 'जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं ।' मा० २.६१.५

जोगा : जोग । मा० २.१७८.५

जोगानल : योग-शक्ति से उत्पन्न की हुई आग । मा० १.६८ छं०

जोगि : जोगी । मा० ६.१०४

जोगिनि :सं०स्त्री० (सं० योगिनी) । (१) दुर्गा की सहचरियाँ, देवी विशेष । 'सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि ।' मा० १.६५ छं० (२) श्मशानवासिनी प्रेत-साधिका । 'जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं ।' मा० ६.८८.७ (३) योग-साधिका ।

जोगिनीं : 'जोगिनि'+ब० । योगनियाँ । कवि० ६.५०

जोगिन्ह : जोगी+संब० । योगियों (को) 'जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा ।' मा० १.२४२.४

जोगीं : योगी ने । 'पावा परम तत्त्व जनु जोगीं ।' मा० १.३५०.६

जोगी : वि०+सं०पुं० (सं० योगिन्) । (१) योगसाधक (२) यौगिक समाधि को सिद्ध किये हुए यति । 'भए अकंटक साधक जोगी ।' मा० १.८७.८ (३) निर्गुणवादी हठयोगी । कृ० ४७ (४) श्मशानसाधक देव विशेष । मा० १.६३ छं० (५) योग्य । 'बिनु बानी बकता बड़ जोगी ।' मा० १.११८.६

जोगींद्र : (सं० योगीन्द्र) श्रेष्ठ योगी, सिद्ध योगी । मा० १.३२७ छं० ४

जोगीस : (सं० योगीश) जोगींद्र । 'भए काम बस जोगीस तापस ।' मा० १.८५ छं०

जोगीसनि : जोगीस+संब० । योगीश्वरों । विन० २४६.३

जोगीसु : जोगीस+कए० । कवि० ७.१५१

जोगु, गू : जोग+कए० । (१) । योग्य । 'राम सरिस सुत कानन जोगू ।' मा० २.५०.७ (२) योग । 'करतल भोगु जोगु जग जेहीं ।' मा० २.१६६.६

जोग्य : वि० (सं० योग्य) । उपयुक्त, उचित । विन० ११८.५

जोजन : सं०पुं० (सं० योजन) । चार कोस की लम्बाई या मार्ग । मा० १.१२९

जोटा : सं०पुं० । युगल, युग्म, जोड़ा । मा० १.२२१.३

जोति : सं०स्त्री० (सं० ज्योतिष्) । द्युति, आभा, प्रकाश । मा० १.२३८

जोतिरूपलिंग : जोतिर्लिग । कवि० ७.१८२

जोतिर्लिग : सं०पुं० (सं० ज्योतिर्लिङ्ग) । प्रकाश पुञ्जरूप शिवलिङ्ग विशेष जो सृष्टि के आदिकाल में उदित हुआ । ब्रह्म और विष्णु दोनों क्रमशः ऊपर और नीचे की ओर उसका अन्त खोजने चले परन्तु पार न पा सके ‘ विष्णु ने पराजय मान ली, परन्तु ब्रह्म ने छल किया—अन्त तक न पहुंच कर भी बीच में एक बिल्वपत्र पाकर बता दिया कि मस्तक पर से उसे ले आये हैं, फलतः उनको शिव ने यज्ञों में अपूज्य होने का शाप दिया । ‘जोतिर्लिग कथा सुनि ताको अंत पाए बिनु, आए बिधि हरि हारि, सोई हाल भई है ।’ गी० १.८६.२

जोतिषी : सं०+वि० (वि० ज्योतिषिन्) । दैवज्ञ, ज्योतिर्विद् । मा० १.३१२.८

जोती : जोति । ‘अरुन चरन पंकज नख जोती ।’ मा० १.१९९.२

जोते : (१) भू०कृ०पुं०ब० । जोत दिये, नद्धे । ‘ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते ।’ मा० १.२९९.५ (२) खेत में हल चलाये । ‘जोते बिनु, बए बिनु निफन निराए बिनु ।’ गी० २.३२.२

जोतो : भूकृ०पुं०कए० । जोता हुआ, हल चलाकर बोने योग्य किया हुआ । ‘तेरे राज राय दसरथ के, लयो बयो बिनु जोतो ।’ विन० १६१.४

जोधा : वि०+सं०पुं० (सं० योद्धा>प्रा० जोद्धा) । लड़ाकू, सुभट । मा० ३.२६.२

जोनि, नी : योनि । (१) जीवजाति । ‘जेंहि जेंहि जोनि करम बस भ्रमहीं ।’ मा० २.२४.५ (२) उत्पत्ति स्थान, उद्गम । ‘जगजोनी ।’ मा० २.२९७.३ (३) मूल कारण । ‘ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी ।’ मा० ७.३२.८

जोबन : सं०पुं० (सं० यौवन>प्रा० जोव्वण) । युवावस्था, जवानी । १५ वर्ष के अनन्तर का वय । ‘जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा ।’ मा० ७.७१.२ (२) स्त्रियों के वर्णन में वक्षस्थल के उभार का भी अर्थ देता है—दे० जोबनु ।

जोबनु : जोबन+कए० । जवानी+उरोज । ‘उनरत जोबनु देखि नृपति मन भावइ हो ।’ रा०न० ५

जोर : (१) सं०पुं० (फा० जोर) । बल, दृढ़ता । ‘सिला द्रवति जल जोर ।’ दो० १७३ (२) क्रि०वि० । बलात् । ‘जो जरति जोर जहानहि रे ।’ कवि० ७.२८ (३) वि० बलिष्ठ, दृढ़ । ‘अब जोर जारा जरि गातु गयो ।’ कवि० ७.८८ (४) जोड़, बराबरी । ‘न देखत सुहृद रावरे जोर को हौं ।’ विन० २२९.२

जोरत : वकृ०पुं० । जोड़ता-ते, सन्धान करता-ते । ।रघुपति चाप सर जोरत भए।' मा० ६.१०२ छं०

जोरहिं : आ०प्रब० । जोड़ते-ती हैं । 'सीय सहित सब सुता सौंपि कर जोरहिं।' जा०मं० १६७

जोरा : (१) जोर । बल, प्रबलता । उत साहिब सेवा बस जोरा।' मा० २.२४०.४ (२) सं०पुं० (सं० जोडक>प्रा० जोडअ) । युगल, जोड़ा, वस्त्र युगल आदि। 'दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो।' रा०न० ६

जोरि : पूकृ० · (१) जोड़कर, संपुटित करके । 'पानि जुग जोरि जन बिनती करइ सप्रीति।' मा० १.४ (२) एकत्र करके । 'सठ शाखामृग जोरि सहाई।' मा० ६.२८.१ (३) जोरी जोड़ी । दे० जोरिहि।

जोरिअ : आ०कवा०प्रए० । जोड़ा जाय, जोड़ लीजिए । 'जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई।' मा० ५.२७८.३

जोरिबे : भकृ०पूं० । जोड़ने, सम्बन्ध बनाने । 'करत जतन जा सो जोगी जन जोरिबे की।' विन० २५८.१

जोरिहि : (जोरी+हि) । जोड़ी के, बराबरी वाले के । 'भिरे सकल जोरिहि सन जोरी।' मा० ६.५३.४

जोरीं : जोरी+ब० । जोड़ियाँ, जोड़े, युगल । 'चिरु जिअहुं जोरीं चारु चार्यो।' मा० १.३२७ छं० ४

जोरी : (१) जोरि । जोड़कर । 'करि प्रनामु पूजा करि जोरी।' मा० १.३३०.५ (२) भू०कृ०स्त्री० । जोड़ी, बाँधी । 'बिधिवत गाँठि जोरी।' मा० १.३२४ छं० ४ (३) सं०स्त्री० । जोड़ी, युगल । 'स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी।' मा० १.१९८.५ (४) दम्पती । 'जाइ न बरनि मनोहर जोरी।' मा० १.३२५.२ (५) बराबरी वाला । 'भिरे सकल जोरहि सन जोरी।' मा० ६.५३.४

जोरु : जोर+कए० । पौरुष, तेजी । 'जानि कै जोरु करौ।' कवि० ७.१०२

जोरें : क्रि०वि० । जोड़े हुए । 'सतरूपहि बिलोकि कर जोरें।' मा० १.१५०.३

जोरे : (१) भूकृ०पुं० । जुटाए गये, जोते गये । 'बन मृग मनहुं आनि रथ जोरे।' मा० २.१४३.५ (२) सम्पुटित किये । 'भरत कर जोरे।' मा० २.२०४.५ (३) सम्बद्ध किये । 'जोरे नए नाते नेह फोकट फीके।' विन० १७६.२ (४) वि०पुं०ब० । जोड़े, युगल । 'राजहंस के से जोरे।' गी० २.८६.४ (५) जोरें । 'माँगत तुलसिदास कर जोरे । विन० १.४

जोरैं : जोरहिं। 'देबी देव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ।' हनु० १२

जोरो : भूकृ०पुं०कए० । जोड़ा हुआ, जुटाया । कवि० ७.१५३

जोलहा : सं०पुं० (फा० जोलाह, जोलाहः) । कपड़े बुनने वाली एक जाति। कवि० ७.१०६

√जोव जोवइ : (सं० द्योतते>प्रा० जोअइ—देखना) आ०प्रए०। देखता है।

जोनति : वकृ०स्त्री०। देखती। गी० ५.१७.३

जोवन : भकृ० अव्यय। देखने। 'गिरिराज मगु जोवन लगे।' पा०मं०छं० ११

जोवहिं : आ०प्रब०। देखते-ती हैं। 'नाचहिं नगन, पिसाच पिसाचिनि जोवहिं।' पा०मं० ५०

जोवहु, हू : आ०मब०। देखो। देखते हो। 'मधुर मुरति कस न सादर जोवहू।' जा०मं०छं० ८

जोवा : भूकृ०पुं०। देखा। 'कहत न बनइ जान जेहिं जोवा।' मा० १.३५६.४

जोषित जोषिता : (१) स्त्री, पुतली। 'दारुजोषित'=कठपुतली।' मा० ४.११.७ (२) सं०स्त्री० (सं० योषित्)। स्त्री। मा० १.११०.१

जोसि : (सं० योऽसि=यः+असि)। तू जो है। 'जोसि सोसि तव चरन नमामी।' मा० १.१६१.५

√जोह जोहइ : (√जोव) आ०प्रए। देखता है। 'रूप न जाइ बखानि, जान जोइ जोहइ।' पा०मं० १२

जोहत : वकृ०पुं०। देखता, देखते। 'तुलसी प्रभु जोहत पोहत चित।' गी० १.५१.३

जोहन : भकृ० अव्यय। देखने। 'चले···नारि नर जोहन।' पा०मं० ११३

जोहा : भूकृ०पुं०। (१) देखा-जाना हुआ। 'सब हमार प्रभु पग पग जोहा।' मा० २.१३६.६ (२) देखा। 'सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा।' मा० २.२८६.६

जोहारत : वकृ०पुं०। 'अभिवादन करता-ते। 'दीप दीप के नृप···जोहारत।' गी० ६.२३.३

जोहारन : भकृ० अव्यय। अभिवादन करने। 'पुरजन द्वार जोहारन आए।' मा० १.३५८.६

जोहारहिं : आ०प्रब०। अभिवादन करते हैं। 'गवँहिं जोहारहिं जाहिं।' मा० २.१५८

जोहरि, री : पूकृ०। अभिवादन करके। 'चले निषाद जोहारि जोहारी।' मा० २.१९१.३

जोहारीं : भूकृ०स्त्री०ब०। अभिवादिन कीं। 'सादा सकल जोहारीं रानीं।' मा० २.१९६.४

जोहारु : सं०पुं०कए०। अभिवादन। 'पुरजन करि जोहारु घर आए।' मा० २.८९.६

जोहारे : भू०कृ०पुं०ब०। अभिवादिन किये। 'पुरबासिन्ह तब राय जोहारे।' मा० १.३४८.५

जोहि : पूकृ० । देखकर, देखदाख कर । 'जोहि जातु धान सेना चल्यो लेत थाह सी ।' कवि० ६.४३

जोही : (१) जोहि । देखकर । 'बार बार मृदु मूरति जोही । लागिहि तात बयारि न मोही ।' मा० २.६७.६ (२) भूकृ०स्त्री० । देखी । 'मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही ।' मा० २.२६०.८

जोहें : देखने से । 'लंक जरी जोहें जियँ सोचु सो बिभीषन को ।' कवि० ७.२२

जोहे : (१) भूकृ०पुं०ब० । देखे । 'हरि हित सहित रामु जब जोहे ।' मा० १.३१७.३ (२) जोहें । देखने से, पर । 'जोहे जिय आवति सनेह की सरक सी ।' गी० १.४४.२

जोहेउ : भूकृ०पुं०कए० । 'देखा रामहि भाइन्ह सहित जबहिं मुनि जोहेउ ।' जा०मं० १८

जोहैं : आ०प्रब० । देख रहे हैं । 'जोरि जोरि हाथ जोधा जोहैं ।' हनु० ५

जोहै : (१) जोहइ । देखता है । 'भौंह जासु जन जोहै ।' विन० २३०.१ (२) आ०—आज्ञा—मए० । तू देख । 'जागु जागु जीव जड़ जोहै जग जामिनी ।' विन० ७३.१

जोहौ : आ०मब० । देखो । 'जानि जियँ जोहौ जो न लागै मुहँ कारिखी ।' कवि० १.१५

जौं : अव्यय । यदि, जो । 'जौं परिहास कीन्हि कछु होई ।' मा० २.५०.६

जौ : (१) जौं । यदि । 'तुलसी उचित न होइ रोइबो, प्रान गए सँग जौ न ।' गी० २.८३.३ (२) जब । 'जौ लगि करौं निसाचर नासा ।' मा० ३.२४.२

जौन : सर्वनाम । जो । 'बारि धारा उलदै जलदु जौन सावनो ।' कवि० ५.८

जौबन : जोबन । जवानी । 'जननी जौबन बिटप कुठारू ।' मा० २.१९०.८

जौबनु : जौबन+कए० । तनयँ जजातिहि जौबनु दयऊ ।' मा० २.१७४.८

जौलगि : (दे० जौ तथा लगि) । जब तक । मा० ३.२४.२

जौलौं : अव्यय । जब तक । कृ० ११

ज्ञान : (दे०ग्यान) । इसका प्रयोग भक्तिविरोधी शास्त्रज्ञान, वाक्यज्ञान तथा योग सम्बन्ध प्रत्यय के अर्थ में हुआ है । 'ज्ञान गाहक नाहिनै ब्रज ।' कृ० ५३

ज्याइबे : भकृ०पुं० (सं० जीवयितव्य>प्रा० जिआविअव्वय) । जिलाने, जीवित करने । 'ज्याइबे को सुधापान भो ।' हनु० ११

ज्याइये : आ०कवा०प्रए० । (सं० जीव्यते>प्रा० जिअवीअइ) । जिलाइए । 'ज्याइये तौ कृपा करि निरुज सरीर हौं ।' कवि० ७.१६६

ज्याए, ये : भूकृ०पुं०ब । जिलाये (पाले-पोसे) । 'सुक सरिका जानकी ज्याए ।' मा० १.३३८.१

ज्यायो : जिआयउ । जिलाया । 'को को न ज्यायो जगत में ।' दो० २६१

ज्यों : अव्यय (अ० जेवँ) जिमि । यथा, जिस प्रकार । मा० १.१० छं०

ज्योति : जोति । गी० ७.५.६

ज्योतिमय : वि०पुं० (सं० ज्योतिर्मय) : दीप्तिसम्पन्न । गी० ७.१६.८

ज्योतिषी : सं०पुं० (सं०) । दैवज्ञ, गणितज्ञ, ज्योतिर्विद्=नक्षत्र विद्यावान् । दो० २४६

ज्योतिषु : ज्योतिष+कए० । ज्योतिष विद्या, नक्षत्रशास्त्र । 'ज्योतिषु झूठ हमारें भाएँ ।' मा० २.११२.५

ज्वर : सं०पुं० (सं०) । (१) सन्ताप । 'नृपति लाज ज्वर जारे ।' मा० १.६८.४ (२) रोगविशेष । 'जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा ।' मा० ७.७१.२

ज्वाल : ज्वाला ।

ज्वाला : सं०स्त्री० (सं०) । अग्निशिखा, आग की लपट । 'उठि उदधि उर अंतर ज्वाला । मा० ५.५८.६

ज्वै : जोइ । जो भी । कवि० ७.१६३

झ

झँगा : सं०पुं० । बच्चों का परिधान विशेष; झबला । 'नव नील कलेवर पीत झँगा ।' कवि० १.२

झँगुलिया : सं०स्त्री० । छोटा झँगा । गी० १.३२.३

झँगुली : झँगुलिया । कृ० १३

झँगूलीं : झँगूली+ब० । झँगूलियाँ, झबले । गी० १.३१.४

झँगूली : झँगुली । गी० १.४४.१

झँड़ूले : वि०पुं०ब० (सं० झुण्ट>प्रा० झटुल्लय) । घुँघराले । 'झँड़ूले केस ।' गी० १.३३.३

झईं : पूकृ० (सं० ध्यामित्वा>प्रा० झमिअ>अ० झवि) । झुलस कर, कुँभला कर; विवर्ण होकर । 'मुरुछित अवनि परी झईं आई ।' मा० २.१६४.१

झकझोरा : सं०पुं० । वायुवेग, धचका, तीव्र धक्का । 'मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइअ दुख झकझोरा रे ।' विन० १८९.३

झकोर : सं०स्त्री० । झोंका, वेग । 'झरि झकोर खरि खीझ ।' दो० २८४

झगर : सं०पुं० (सं० झकट>प्रा० झगड) । विवाद, कलह । रा०प्र० ६.६.२

झगरत : झगर+वकृ० । विवाद करते । 'खग उलूक झगरत भए ।' रा०प्र० ६.६.२

झगेरा : झगर । 'गनतिक ए लंगरि झगरा ऊ ।' कृ० १२

झगरैं : झगर+प्रव० । कलह या विवाद करते-ती हैं । 'देखि चले झगरैं सुरनारि ।' कवि० ७.१४५

झगरो : झगरा+कए० । विवाद, वैमत्य । 'बहुमति मुनि, बहु पंथ, पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो ।' विन० १७३.५

झगलिया : झगुलिया । 'पीत झगुलिया तन पहिराए ।' मा० १.१९९.११

झगुली : झँगुली । 'पीत झीनि झगुली तन सोही ।' मा० ७.७७.७

झटिति : क्रि०वि० अव्यय (सं०) । झटपट, तत्काल, शीघ्र । 'कटत झटिति पुनि नूतन भए ।' मा० ६.९२.१२

झनकार : सं०स्त्री० (सं० झणत्कार>प्रा० झणक्कार) झनझनाहट, ध्वनिविशेष । 'कर कंकन झनकार ।' गी० १.२.१३

झपट : सं०स्त्री० (सं० झप्पा+अट गतौ, अट्ट अतिक्रमहिंसयोः>प्रा० झंप्पट्टा> अ० झंपट्ट) । झपट्टा, झप्पामार आक्रमण, दबोचने वाला आक्रमण । 'बाज झपट जनु लवा लुकाने ।' मा० १.२६८.३

✓**झपट झपटइ** : (सं० झप्प+अट्ट अतिक्रम हिंसयोः>प्रा० झंपट्टइ—झप्पा मारना, दबोचने हेतु टूट पड़ना) आ०प्रए० । झपटता है, दबोचने हेतु उछलकर टूट पड़ता है । 'झपटै भट कोटि मही पटकै ।' कवि० ६.३६

झपटहिं : आ०प्रब० । झपट कर टूट पड़ते हैं । 'पुनि उठि झपटहिं सुर आराती ।' मा० ६.३४.१३

झपटि : पूकृ० । आक्रान्त कर, झपट्टा मारकर । 'इत उत झपटि दपटि कपि जोधा । मर्दै लाग ।' मा० ६.८२.५

झपटे : भूकृ०पुं०ब० । टूट पड़े । 'लखि कै गज केहरि ज्यों झपटे ।' कवि० ६.३२

झपटेउ : भूकृ०पुं०कए० । झपट कर आक्रमण किया । 'जनु सचान बन झपटेउ लावा ।' मा० २.२९.५

झपटैं : झपटहिं । 'झपटैं भट जे सुरदावन के ।' कवि० ६.३४

झपटै : झपटइ ।

झपेटें : झपटने से, पर । 'लवा ज्यों लुकात तुलसी झपटें बाज के ।' कवि० ६.९

✓**झर झरइ** : (सं० क्षरति>प्रा० झरइ—ऊपर से लम्बी धार में बहना) आ०प्रए० । झरता है । 'त्रिबिध समीर नीर झर झरननि ।' गी० २.४६.५

झरकत : झलकत । 'झरकत मरकत भौंर ।' गी० ७.१९.३

झरकैं : आ०प्रब० (सं० झट संघाते+अक गतौ=झट+अकन्ति>प्रा० झटक्कंति >अ० झडक्कहिं) । चोट करते चलते हैं, आघात देने चलते हैं । 'मुंड सों मुंड परे झरकैं ।' कवि० ६.३५

झरत : वकृ०पुं० (सं० क्षरत्>प्रा० झरंत) । धारासंपात करते, झड़ते । 'बोलत बचन झरत जनु फूला ।' मा० १.२८०.४

झरननि : झरना+संब० । झरनों (सें, से) । 'त्रिबिध समीर नीर झर झरननि ।' गी० २.४६.५

झरना : सं०पुं० (सं० झरण) । निर्झर), प्रपात । 'झरना झरहिं मत्त मग गाजहिं ।' मा० २.३३५.५

झरहिं : आ०प्रब० (सं० क्षरन्ति>प्रा० झरंति>अ० झरहिं) । धारा या समूह में गिरते हैं । 'झरना झरहिं सुधा सम बारी ।' मा० २.२४९.६

झरावति : वकृ०स्त्री० । झाड़-फूँक करती । 'ओझा से दृष्टिदोष आदि दूर कराती । गी० १.१२.४

झरि : सं०स्त्री० (सं० झटी>प्रा० झडी) । निरन्तर वृष्टि । 'देवन्ह सुमन वृष्टि झरि लाई ।' मा० ७.११.१

झरैं : झरहिं । 'झरैं बुँदिया सी ।' कवि० ५.१४

झरोखन्ह, न्हि : झरोखा+संब० । गवाक्षों (में) । 'जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं ।' मा० १.२२०.४; जा०मं० ७२

झरोखा : सं०पुं० । गवाक्ष, मोखा, छोटा वातायन । 'इंद्री द्वारा झरोखा नाना ।' मा० ७.११८.११

झरोखें : गवाक्ष में-से । 'झाँकतीं झरोखें लागीं ।' कवि० १.१३

झरोखे : झरोखा+ब० । 'समुझि हिताहित खोलि झरोखे ।' गी० ५.१२.४

झलक : (१) सं०स्त्री० (सं० झला, झल्लिका) । द्युति, चमक, आभा । 'तिलक झलक भालि भाल ।' विन० ४४.५ (२) झलकइ । 'मुकुता झालरि झलक जनु राम सुजस सिसु हाथ ।' दो० १९०

✓**झलक झलकइ** : आ०प्रए० । चमचमाता है, दीप्ति फेंकता है । 'नव नील कलेवर पीत झँगा झलकै ।' कवि० १.२

झलकत : वकृ०पुं० । चमकता-ते । 'झलका झलकत पायन्हि कैसें ।' मा० २.२०४.१

झलकति : वकृ०स्त्री० । चमकती । 'झलकति बाल बिभूषन झाँई ।' गी० १.२४.२

झलकनि : सं०स्त्री० । झिलमिलाहट, झलकने की क्रिया, चमक । गी० १.२२.३

झलका : सं०पुं० । फफोला । मा० २.२०४.१

झलकाहीं : आ०प्रब०। चमकते हैं। 'भाल बिसाल तिलक झलकाहीं।' मा० १.२४३.६

झलकि : पूकृ०। चमक कर, दीप्ति बिखेर कर। 'झलकि झलझलत सोभा की दीयटि।' गी० १.१०.३

झलकीं : भूकृ०स्त्री०ब०। चमचमा उठीं। 'झलकीं भरि भाल कनीं जल की।' कवि० २.११

झलकैं : जलकाहीं। 'तन दुति मोर चंद जिमि झलकैं।' गी० १.३१.२

झलकै : झलकइ।

झलमलत : वकृ०। झिलमिलाता-ते। गी० १.१०.३

झष : सं०पुं० (सं०)। मछली। मा० ६.४.५

झषकेतू : सं०पुं० (सं० झषकेतु) मीनकेतु=मकरध्वज=कामदेव। मा० १.८३.८

झषराज : सं०पुं०। मगर, ग्राह। 'झषराज ग्रस्यो गजराज।' कवि० ७.८

झहराने : भूकृ०पुं०ब०। झुलस गये। 'लपट झपट झहराने।' कवि० ५.८

✓**झहराव झहरावइ** : आ०प्रए०। झिटकारता है, झुलसाता है। 'बालधी फिरावै बारबार झहरावै।' कवि० ५.१४

झाँई : (१) सं०स्त्री (सं० ध्यामिका>प्रा० झामिआ>अ० झावीं)। कालिमा, काला धब्बा, छाया। 'ससि महुं प्रगट भूमि कै झाँई।' मा० ६.१२.५ (२) आभा, प्रतिच्छवि, प्रतिबिम्ब। 'तन मृदु मंजुल मेचकताई। झलकति बाल बिभूषन झाँई।' गी० १.२४.२

झाँकत : वकृ०पुं०। ओट से ताकता-ताकते। 'झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि।' गी० १.३१.६

झाँकतीं : वकृ०स्त्री०ब०। आड़ में से ताकतीं। 'झाँकतीं झरोखें लागीं।' कवि० १.१३

झाँकनि : सं०स्त्री०। झाँकने की क्रिया, आड़ से देखने की रीति। गी० १.२८.३

झाँकहिं : आ०प्रब०। आड़ से देखते-ती हैं। 'लागि झरोखन्ह झाँकहिं भूपति भामिनि।' जा०मं० ७२

झाँकी : पूकृ०। झाँक कर। कवि० ६.४४

झाँखा : भूकृ०पुं०। झींखा, बड़बड़ाया, व्याकुल प्रलाप करता रहा। 'अस कहि राउ मनहिं मन झाँखा।' मा० २.३०.१

झाँझ, झि : सं०स्त्री० (सं० झाञ्झा)। वाद्यविशेष। मा० १.२६३.१

झाँपेउ : भूकृ०पुं०कए० (सं० झम्पितः>प्रा० झंपिओ>अ० झंपियउ)। आच्छादित हो गया। 'झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी।' मा० १.११७.२

झाँवरे : वि०पुं०ब० (सं० ध्यामतर>प्रा० झामर>अ० झावँर)। झुलसे, कुँभलाये हुए, बेरंग। 'तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे मनहुं कमल हिम मारे।' गी० २.८७.३

झार : सं०स्त्री० (सं० झल्ला=ज्वाला)। आँच, आग की लपट। 'तात तात तौंसिअत झौंसिअत झार हीं।' कवि० ५.१५ (झारहीं=झार में)

झारि, री : वि०+क्रि०वि०। (१) सम्पूर्ण, सबके सब। 'जितेउँ चराचर झारि।' मा० ६.२७ (२) निरन्तर, नितान्त। 'झरना झरत झारि सीलत पुनीत बारि।' कवि० ७.१४१

झारी : झरि। सब-के-सब। 'एक नारि ब्रत रत सब झारी।' मा० ७.२२.८

झारौं : आ०उए०। झाड़ दूं। 'झारौं हौं चरन सरोरुह धूरि।' गी० १.१३.२

झालरि : सं०स्त्री० (सं० झल्लरी=कुञ्चित केश रचनाविशेष)। झलकों के समान कुञ्चित माला रचना, बन्दनवार, माङ्गलिक कार्यों में पुष्प रचना तथा पत्र रचना। रा०न० ३ (२) माला, हार। 'मुकुता झालरि झलक जनु राम सुजस सिसुहाथ।' दो० १६०

झिग : ध्वनिविशेष। 'झरना झरत झिग झिग झिग जल तरंगिनी।' गी० २.४७.१०

झिलि झिल्ली : सं०स्त्री० (सं० झल्लिका)। झींगुर, कीटविशेष। गी० २.४७.१०

झीनि, नी : वि०स्त्री० (सं० झीर्णा>प्रा० झिण्णी)। झाँझर बुनावट वाली। 'पीत झीनि झुगुली तन सोही।' मा० ७.७७.७

झुँझुनु : घुँघुरी आदि का रवविशेष। 'झुँझुनु झुँझुनु पायँ पैंजनी मृदु मुखर।' गी० १.३३.१

झुंड : सं०पुं० (सं० झुण्ट)। समूह। कवि० ६.३१

झुंडनि : झुंड+संब०। झुन्डों (में)। 'चलीं झुंडनि झारि।' गी० ७.१८.४

झुकनि : सं०स्त्री०। झुकने की क्रिया, नत होना। गी० १.२८.३

झुकरे : वि०पुं०ब०। मण्डलाकार गति में झूंक भरे हुए+झुके हुए। 'रुंडन के झुंड झूमि झूमि झुकरे से नाचैं।' कवि० ६.३१

झुकि : पूकृ०। झुक कर, नत होकर। 'झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि।' गी० १.३१.६

झुकी : भुकृ०स्त्री०। (१) नत हुई। कवि० ७.१३३ (२) आक्रामक मुद्रा में नत खड़ी हुई। 'झुकी रानि अब रहु अरगानी।' मा० २.१४.७

झुके : भूकृ०पुं०ब०। नत हुए, आक्रामण हेतु उद्यत हुए। 'तुलसी उत झुंड प्रचंड झुके।' कवि० ६.३४

झुटुंग : झोटिंग (सं० जूटिंग)। झोंटाधारी+समूहवद्य। कवि० ६.५०

झुठाई : सं०स्त्री०। झूठापन, मिथ्यावाद। 'मूढ़ सिखिहि वहँ वहुत झुठाई।' मा० ६.३४.५

झुलाइ : पूकृ० । झुला कर, झूले पर आन्दोलित कर । 'मथुर झुलाइ मल्हावहीं ।' गी० १.२२.१०

✓झुलाव झुलावइ : (सं० दोलयति>प्रा० झुल्लावइ—आन्दोलित करना) आ०प्रए० । झुलाता-ती है । 'कबहुं पालने घालि झुलावै ।' मा० १.२००.८

झुलावत : वकृ०पुं० । झूले पर आन्दोलित करता-ते । गी० १.१२.१

झुलावहिं : आ०प्रब० (सं० दोलयन्ति>प्रा० झुल्लावहिं>अ० झुल्लावहिं) । झुलाते-ती हैं । 'झूलहिं झुलावहिं ओसरिन्ह ।' गी० ७.१८.५

झुलावै : झुलावइ । 'पालने रघुपति झुलावै ।' गी० १.२३.१

झुलावौं : आ०उए० । झुलाऊँ । 'पौढ़िए लालन पालने हौं झुलावौं ।' गी० १.१८.१

झूँठ : झूठ । मिथ्यावचन । 'जो कह झूँठ मसखरी जाना ।' मा० ७.९८.६

झूठ : वि० (सं० जुष्ट>प्रा० झुट्ठ) । मिथ्या । मा० ७.३९.७

झूठइ : मिथ्या ही । 'झुठइ भोजन झूठ चबेना । मा० ७.३९.७

झूठा : झूठ । धोखे से भरा, मिथ्या । 'जेहिं कृत कपट कनक मृग झूठ ।' मा० ६.९९ ७

झूठि . झूठ+स्त्री० । झूठी, मिथ्या । 'झूठि न होइ देवरिषि बानी ।' मा० १.६८.७

झूठें : झूठे…से । 'झूठें अघ सिय परिहरी ।' दो० १६६

झूठे : वि०पुं०ब । निरर्थक, मिथ्या । 'देखे सुने भूपति अनेक झूठे झूठे नाम ।' गी० १.८७.२

झूठेउ : झूठ ही । 'झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें ।' मा० १.११२.१

झूठेहुं : झूठमूठ भी । 'झूठेहुं हमहि दोष जनि देहू ।' मा० २.२८.३

झूठेहु : झूठेहुं । 'मो कहँ झूठेहु दोष लगावहिं ।' कृ० ४

झूठो : झूठा+कए० । मिथ्या, निस्सार । 'झूठो है झूठो है झूठो सदा जग ।' कवि० ७.३९

झूने : वि०पुं० (सं० झूर्ण, जूर्ण>प्रा० झुण्ण=झुण्णय) । झीने, झाँझरे । 'ओढ़िबो झूने खेस को ।' कवि० ७.१२५

झूमक : सं०पुं० । रागविशेष, लोकगीत विशेष । 'चाँचरि झूमक कहैं सरस राग ।' गी० ७.२२.५

झूमत : वकृ०पुं० । झूमता-झूमते, घूर्णन करते । 'झूमत द्वार अनेक मतंग ।' कवि० ७.४४

झूमि : पूकृ० । घूर्णित होकर । कवि० ६.३१

झूरो : वि०पुं०कए० । सूखा । हनु० ३

झूलत : वकृ०पुं० । झूले पर आन्दोलित होते । 'झूलत राम पालने सोहैं ।' गी० १.२४.१

झूलन : भकृ० अव्यय। झूलने। 'राघौ के रुचिर हिंडोलना झूलन जैए।' गी० ७.१८.१

झूलहिं : आ०प्रब०। झूलते-ती हैं। 'झूलहिं झुलावहिं ओसरिन्ह।' गी० ७.१८.५

झोंटी : सं०स्त्री० (सं० झुण्ट>प्रा० झुंटी=झोंटी)। उलझा हुआ। केशसमूह। मा० २.१६३.७

झोटिंग : सं०पुं० (सं० जोटिङ्ग)। शिव, शिवोपासक श्मशानसाधक योगी+झोंटाधारी। 'प्रथम महा झोटिंग कराला।' मा० ६.८८.१

झोपरी : सं०स्त्री० (प्रा० झुंपड़ी)। झोंपड़ी, कुटी, तृणकुटीर। 'ख्याल लंका लाई कपि रांड़ की सी झोपरी।' कवि० ६.२७

झोरी : सं०स्त्री० (सं० झोलिका>प्रा० झोलिआ>अ० झोली)। लम्बी थैली। ओझरी की झोरी कांधें।' कवि० ६.५०

झोलिन्ह : झोली+संब०। झोलियों (में)। 'झोलिन्ह अबीर पिचकारि हाथ।' गी० ७.२२.२

झौंसिअत : वकृ०पुं०कवा०। झुलसे जाते। 'तात तात तौंसिअत झौंसिअत झारहीं।' कवि० ५.१५

ट

टंकोर, रा : सं०स्त्री० (सं० टं+कोर=कुर शब्दे+घञ्)। टंकार ध्वनि। मा० ३.१९ छं०

टंकोरा : टंकोर। मा० ६.६८.२

टंकिका : सं०स्त्री० (सं०)। टांकी, पत्थर आदि काटने की छेनी। दो० ३४२

टई : (१) सं०स्त्री० (सं० तय गतौ)। चाल, चालाकी। 'करत फिरत बिनु टहल टई है।' विन० १३९.७ (२) बाधा, आतङ्क। 'भृगुपति की टारी टई।' गी० ५.३७.४

टकटोरि : पूकृ०। टटोल कर, स्पर्श से देखभाल कर। 'टकटोरि कपि ज्यों नारियरु सिरु नाइ सब बैठत भए।' जा०मं०छं० ११

टकोर : टंकोर। 'ट' ध्वनि। 'प्रभु कीन्हि धनुष टकोर।' मा० ३.१९ छं०

√टर, टरइ, ई : (सं टलति—टल वैक्लव्ये>प्रा० टलइ—चलित होना, खिसकना, हटना) आ०प्रए०। टलता है। (१) स्थान से हटता है। 'लगे उठावन टरइ

न टारा।' मा० १.२५१.१ (२) मुकरता है, मुकर सके। 'तब मागेहु जेहिं बचनु न टरई।' मा० २.२२.७

टरत : वकृ०पुं०। टलता-ते। 'नेम को निबाहु एक टेक न टरत।' विन० २५१.२

टरति : वकृ०स्त्री०। टलती, हटती। 'नयननि आगे तें न टरति मोहन मूरति।' कृ० २८

टरहिं, हीं : आ०प्रब०। टलते हैं, हटते हैं। 'प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे।' मा० ६.४.७; ३.४०.६

टरिहै : आ०भ०प्रए० (१) (सं० टलिष्यति>प्रा० टलिहिइ)। टलेगा। 'चातक ज्यों एक टेक ते न टरिहै।' विन० २६८.२ (२) (सं० टालयिष्यति>प्रा० टालिहिइ)। टालेगा, हटायेगा। 'थपिहै तेहि को हरि जो टरिहै।' कवि० ७.४७

टरी : भूकृ०स्त्री०। टली, विचलित हुई (टूटी)। 'घोर धुनि सुनि सिव की समाधि टरी है।' गी० १.९२.५

टरे : भूकृ०पुं०। टले, हटे। मा० ५.३५ छं० १

टरै : टरइ। 'टरै न कपि चरन।' मा० १.३४ क

टर्‌यो : भूकृ०पुं०कए०। टला, हटा। मा० ६.४७.६

टसकतु : वकृ०पुं०कए०। टस-से-मस होता, स्थान से हिलता। 'न नेकु टसकसु है।' कवि० ६.१६

टहल : (१) सं०स्त्री०। घरेलू कामकाज। 'नीचि टहल घर कै सब करिहौं।' मा० ७.१८.७ (२) कार्य, प्रयोजन। 'करत फिरत बिनु टहल टई है।' विन० १३९.७

टांकी : टंकिका। 'जो पय फेनु फोर पबि टाँकी।' मा० २.२८१.८

टांच : सं०स्त्री० (सं० तञ्चा—तञ्चु गतौ)। चाल, चालाकी।

टांचन : टांच+संब०। चालाकियों, वञ्चनाओं (से)। 'देह-जीव-जोग के सखा सब टाँचन टाँचो।' विन० २७७.२

टांचो : भूकृ०पुं०कए०। ठगा, प्रतारित किया। विन० २७७.२

टांठे : क्रि०वि०। टाँठ=कठोर होकर, उग्रता के साथ। 'कोमल काज न कीजिए टाँठे।' कवि० ६.२८

टाक : सं०पुं० (सं० ट)। चौथाई खण्ड। 'राम नाम लेत मागि खात टूक-टाक हौं।' हनु० ४०

टाट : सं०पुं०। बोरा, सन का फट्टा। 'सिअनि सुहावनि टाट पटोरें।' मा० १.१४.११

टाटिका : (१) सं०स्त्री० (सं० तटिका>प्रा० तट्टी) । टट्टी, वृति । (२) छप्पर का ठाट जिस पर फूस छाया जाता है । 'बिरचि हरि भगति बर टाटिका कपट दल हरित पल्लवनि छावौं ।' विन० २०८.२

टाप : सं०स्त्री० । घोड़े का खुर । 'टाप न बूड़ बेग अधिकाईं ।' मा० १.२९९.७

टारति : वकृ०स्त्री० । हटाती (बिताती) । 'सीय निमेष कलप सम टारति ।' गी० ५.१९.१

टारन : भ०कृ० अव्यय । टालने (को); खिसकाने (को) । 'दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ।' मा० २.५९.६

टारा : भूकृ०पुं० । हिलाया-डुलाया, हटाया (हुआ) । 'टरइ न टारा ।' मा० १.२५१.१

टारि : पूकृ० । टाल, हटा (कर) । 'भ्रम न सकइ कोउ टारि ।' मा० १.११७

टारी : (१) टारि । 'जौं मम चरन सकसि सठ टारी ।' मा० ६.३४.९ (२) भूकृ० स्त्री० । हटाई । 'ईस अनेक करवरें टारी ।' मा० १.३५७.१

टारें : टालने, हटाने से । 'न चाप सज्जन बचन जिमि टारें टरै ।' जा०मं०छं० ११

टारे : भूकृ०पुं०ब० । हटाये । 'प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे ।' मा० ६.४.७

टारेउ : भूकृ०पुं०कए० । टाला, विचलित किया । 'छल करि टारेउ तासु ब्रत ।' मा० १.१२३

टार्‌यो : टारेउ । 'भवतरु टरै न टार्‌यो ।' विन० २०२.२

टाहली : वि०पुं० । टहलुआ, टहल करने वाला, घरेलू सेवक । 'सबनि सोहात है सेवा सुजान टाहली ।' कवि० ७.२३

टिट्टिभ : सं०पुं० (सं०) । टिटिहरी पक्षी । मा० ६.४०.६

टिपारे : सं०पुं०ब० । चौतनियाँ, टोपियाँ । 'सीसनि टिपारे, उपबीत पीत पट कटि ।' गी० १.७१.१

टिपारो : सं०पुं०कए० । टोपी, चौतनी । गी० १.४३.२

टीका : (१) सं०पुं० (प्रा० टिक्क) । तिलक (राजतिलक, राज्याभिषेक) । 'करहु हरषि हियँ रामहि टीका ।' मा० २.५.३ (२) श्रेष्ठ, सर्वोत्तम (तिलक के समान सुशोभित) । 'रावनु जातुधान कुल टीका ।' मा० ६.३८.६

टीड़ी : सं०स्त्री० । टिड्डी; पतिंगा विशेष जो समूह में उड़कर खेती आदि पर टूटता और खा जाता है । मा० ६.६७.२

टुक, टूक : वि० (सं० स्तोक) । थोड़ा, छोटा, खण्ड । 'पंख करौ टुक टूक ।' दो० २८२, टुक । (१) टुकड़ा, खण्ड । दो० २८२ (२) रोटी का टुकड़ा, चौथाई रोटी । 'खाए टूक सब के ।' कवि० ७.७३

टूकनि, न : टूक+संब० । टुकड़ों. रोटी के खण्डों । 'कूकर टूकनि लागि ललाई ।' कवि० ७.५७

टूका : टूक । खण्ड । 'अजहुं न हृदय होत दुइ टूका ।' मा० २.१४४.६

टूकु : टूक+कए० । एक टुकड़ा, एक भी खण्ड । 'चाहै चारु चीर पै लहै न टूकु टाट को ।' कवि० ७.६६

टूट : (१) भूकृ०पुं० (सं० त्रुटित>प्रा० तुट्ट) । भग्न हो गया । 'छुअत टूट रघुपतिहि न दोषू ।' मा० १.२७२.३ (२) टूटइ । 'टूट न द्वार परम कठिनाई ।' मा० ६.४३.४

✓**टूट, टूटइ** : (सं० त्रुट्यति>प्रा० तुट्टइ—टूटना, विच्छिन्न होना) आ०प्रए० । टूटता है ।

टूटत : वकृ०पुं० । (१) भग्न होता, होते । 'टूटत ही धनु भयउ बिबाहू ।' मा० १.२८६.८ (टूटते ही) (२) आक्रमण करता-ते । 'टूटत अति आतुर अहार बस ।' विन० ९०.३

टूटि : (१) पूकृ० । टूट कर । गी० २.५८.२ (२) भूकृ०स्त्री० । टूटी हुई ।

टूटियौ : टूटी हुई भी । 'टूटियौ बाँह गरे परै ।' विन० २७१.४

टूटिहि : आ०भ०प्रए० । टूटेगा । 'अवसि राम के उठत सरासन टूटिहि ।' जा०मं० ६१

टूटें : टूटने से, टूटने पर । 'होइहहिं टूटें धनुष सुखारे ।' मा० १.२३९.३

टूटे : (१) भूकृ०पुं०ब० । भग्न हुए । 'उर लागत मूलक इव टूटे ।' मा० ६.२५.६ (२) टूटें । टूटने पर । 'श्रीहत भए भूप धनु टूटे ।' मा० १.२६३.५

टूटेउ : भूकृ०पुं०कए० । भग्न हो गया । 'टूटेउ कूबर फूट कपारू ।' मा० २.१६३.५

टूटै : टूटइ । टूट सके । 'माधव मोह फाँस क्यों टूटै ।' विन० ११५.१

टूट्यौ : टूटेउ । कवि० १.१०

टेंक : टेक । मा० २.३२४

टेई : भूकृ०स्त्री० । तेज की, पैनाई । 'कपट छुरी उर पाहन टेई ।' मा० २.२२.१

टेक, टेका : सं०स्त्री० । (१) दृढ़ आग्रह । 'सकइ को टारि टेक जो टेकी ।' मा० २.२५५.८ (२) स्थिरता । 'साधन कठिन न मन कहुं टेका ।' मा० ७.४५.३ (३) आश्रय, आधार, अवलम्ब । 'सोक सरि बूड़त करीसहि दई काहु न टेक ।' विन० २१७.३ (४) उपाय (मार्ग) । 'जैबे को अनेक टेक, एक टेक ह्वैबे की ।' कवि० ७.८२

टेकि : पूकृ० । सहारा लेकर । 'जानु टेकि कपि भूमि न गिरा ।' मा० ६.८४.१

टेकी (१) टेकि । पकड़ कर (आग्रह करके, ग्रहण करके) । 'भरद्वाज राखे पद टेकी ।' मा० १.४५.४ (२) भूकृ०स्त्री० । पकड़ी, ग्रहण की । 'सकइ को टारि टेक जो टेकी ।' मा० २.२५५.८

टेढ़ : वि०पुं (सं० तिर्यक+अर्ध>प्रा० तियड्ढ) । वक्र, कुटिल । 'टेढ़ जानि सब बंदइ काहू ।' मा० १.२८१.६

टेढ़ी : वि०स्त्री० । वक्र । 'तिलक भाल टेढ़ी भौहैं ।' गी० १.६३.३

टेढ़े : वि०पुं० (बहु०) । 'सूधे टेढ़े सम बिषम ।' दो० ५००

टेपारो : टिपारो । 'तनियाँ ललित कटि बिचित्र टेपारो सीस ।' कृ० २

टेरत : वकृ०पुं० । पुकारता, पुकारते । 'भुज उठाइ ऊँचे चढ़ि टेरत ।' गी० २.१४.१

टेरि : (१) पूकृ० । पुकार कर । 'अरु हौंहु कहत हौं टेरि ।' विन० १९०.७ (२) आ०—आज्ञा—मए० । तू पुकार । 'टरि कान्ह गोबर्धन चढ़ि गैया ।' कृ० १९

टेरी : भूकृ०स्त्री० । पुकारी । 'प्रानबल्लभा टेरी ।' गी० ३.१०.२

टेरें : पुकार कर । 'तेहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें ।' मा० १.१६१.३

टेरे : (१) भूकृ०पुं०ब० । पुकारे, बुलाये । मा० १.९३.४ (२) टेरें । पुकारने से । 'अभय किये···बारक बिबस नाम टेरे ।' विन० १३८.१ (३) पुकार कर । 'भुज उठाइ कहौं टेरे ।' विन० २२७.१

टेव : सं०स्त्री० । स्वभाव, प्रकृति । 'या की टेव लरन की ।' कृ० ८

टेवैया : वि० । देने वाला, पैना करने वाला, तेज करने वाला ।' 'कोटि जलच्चर दंत टेवैया ।' कवि० ७.५२

टोटक : सं०पुं० (सं० त्रोटक) । रोगनिवारण आदि के हेतु ओझा आदि द्वारा कराया हुआ तान्त्रिक उपायविशेष जिसमें भोजन आदि कोई अभिमन्त्रित वस्तु को चौराहे आदि पर रख आते हैं, फिर घूम कर नहीं देखते । 'स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजरा को सो टोटक, औचट उलटि न हेरो ।' विन० २७२.२

टोटकादि : त्रोटक आदि तान्त्रिक उपाय । हनु० ३०

टोने : 'टोना' का रूपान्तर । हिमालय की थारू जाति के जन्तर-मन्तर को 'टोना' कहते हैं जिसमें मारण, वशीकरण आदि की क्रिया होती है । वशीकरण आदि का मन्त्रविशेष । 'प्रभु किधौं प्रभु को प्रेम पढ़े प्रगट कपट बिनु टोने ।' गी० २.२३.३

टोलू : सं०पुं० (टोल+कए०) । टोली, सजातीय दल । 'देखि निषादनाथ निज टोलू ।' मा० २.१९२.३ (प्रा० 'टोल' टिड्डीदल का अर्थ देता है)

ठ

ठई : भूकृ०स्त्री० (सं० स्थापिता>प्रा० ठविआ)। (१) स्थिर की, ठहरायी। 'को जानै चित कहा ठई है।' विन० १३९.७ (२) रखी। 'सो तौ कछु एकौ चित न ठई।' कृ० ३६ (३) स्थित हुई, ठनी। 'ठवनि भली ठई है।' गी० १.९६.२

ठए, ये : भूकृ०पुं०ब०। ठाने, आरम्भ किये। 'समय सम गान ठए।' गी० १.३.२

ठकुरसोहाती : सं०स्त्री०। स्वामी (ठाकुर) को अच्छी लगती (सोहाती) हुई बात = चाटुकारिता, चापलूसी। 'हमहुं कहबि अब ठकुरसोहाती।' मा० २.१६.४

ठकुराइनि : ठाकुर+स्त्री०। स्वामिनी। कवि० ७.१७०

ठकुराई : सं०स्त्री०। स्वामित्व, राज्य। 'अब तुलसी गिरिधर बिनु गोकुल कौन करिहि ठकुराई।' कृ० ३२

ठग : सं०पुं० (सं० ठक>प्रा० ठग)। वञ्चक, धोखा देकर लूटने वाला। मा० १.७९.७

ठगति : ठग+वकृ०स्त्री०। ठगती, वञ्चित करती। गी० २.८२ ३

ठगि : (१) पूकृ०। लुटकर, ठगे जाकर, ठक्क होकर, निस्तब्ध होकर। 'तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं।' मा० ७.९.९ (२) ठगी। 'ठगि सी रहो।' कवि० १.१ (३) ठगे। 'रहे ठगि से नृपति।' गी० १.५१.१

ठगिनि, नी : ठग+स्त्री०। गी० २.८२.३

ठगी : ठग+भूकृ०स्त्री०। ठग ली गई, धोखा खा गई, स्तब्ध रह गई। 'तुलसिदास ग्वालिनी ठगी।' कृ० ८

ठगु : ठग+कए०। अद्वितीय वञ्चक। 'भलो ठग्यौ ठगु ओही।' कृ० ४१

ठगे : भूकृ०पुं०ब०। लुट गये, स्तब्ध (लुटे-से)। 'बिलोकि सुर नर मुनि ठगे।' मा० १.३१६ छं०

ठगोरी ठगौरी : ठगौरी। 'तुलसिदास ग्वालिनी ठगी-सी, आयो न उतर कछु, कान्ह ठगोरी लाई।' कृ० ८ सं०स्त्री० (सं० ठक-पुटी>प्रा० ठगउड़ी)। ठग द्वारा दी हुई बिसैली पुड़िया जिससे मूर्छित करके ठगी का काम करता है। मोहनी। 'नखसिख अंगनि ठगौरी ठौर ठौर हैं।' गी० १.७३.४

ठग्यौ : भूकृ०पुं०कए०। ठग लिया, धोखे में डालकर लूट लिया। 'भलो ठग्यौ ठगु ओही।' कृ० ४१

ठट : सं०पुं० (प्रा० थट्ट=समूह)। झुंड। 'उनेह सिथिल गोप गाइन्ह के ठट हैं।' कृ० २०

ठटहिं : आ०प्रब० । सजाते हैं, जुगाड़ बनाते हैं । 'ठटहिं जे कूर कुठाट ।' दो० ४१७

ठटु : ठट+कए० । बनाव, साजसवाँर । गी० १.८०.३

ठटुकि : पूकृ० । अचानक रुके रह कर, ठहर कर । 'ठटुकि रहे एक टक पल रोकी ।' मा० ५.४५.३

ठटो : आ०—आज्ञा—मब० । बनाओ । 'नट ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो ।' कवि० ७.८६

ठट्टा : ठट । 'मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा ।' मा० ६.७६.११

ठठई : सं०स्त्री० । ठट्टापन, हँसोड़पन, परिहास+निःसार तथा रूक्ष व्यवहार । 'हरि परे उघरि सँदेसहु ठठई ।' कृ० ३६

ठठाइ : पूकृ० । ठट्ठा मारकर, ठहाका लगाकर । 'हँसब ठठाइ फुलाउब गालू ।' मा० २.३५.५

ठठाइयत : वकृ०—कवा०—पुं० । ठोंका जाता, ठोंके जाते; आहत किये जाते । 'खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं ।' कवि० ७.१०१

ठनियत : वकृ०पुं०—कवा । ठाना जाता, किया जा रहा । 'दीनबंधु द्वारे हठ, ठनियत है ।' विन० १८३.३

ठनी : भूकृ०स्त्री० । ठन गयी, होने लगी । 'राम कृपा औरै ठनी ।' गी० ५.३६.२

ठयऊ : भूकृ०पुं०कए० (सं० स्थापितम्>प्रा० ठवियं>अ० ठवियउ) । ठाना, आरम्भ किया, स्थापित किया, निश्चित किया । 'एहि बिधि हितु तुम्हार मैं ठयऊ ।' मा० १.१३३.२

ठयो : ठयऊ । (१) ठाना, निश्चित किया । 'तब यह मंत्र ठयो ।' गी० १.४७.२ (२) सजाया, बनाया । 'चतुर जनक ठयो ठाट इतौ री ।' गी० १.७७.३

ठवनि : सं०स्त्री० (सं० स्थापना>प्रा० ठवणा>अ० ठवणी=ठवणि) । (१) खड़े होने में पैरों की विशेष स्थिति । 'ठवनि जुबा मृगराज लजाएँ ।' मा० १.२५४.८ (२) बनाव, साज सँवार । 'समय समाज की ठवनि भली ठई है ।' गी० १.६६.२ (३) सदृश स्थिति । 'लंक मृगपति ठवनि ।' गी० ७.५.२

ठहर : सं०पुं । स्थान । 'ठहर ठहर परे कहरि कहरि उठें ।' कवि० ६.४२

ठहरानी : भूकृ०स्त्री० । ठहरी, स्थिर हुई, निश्चित की जा सकी । 'एकउ जुगुति न मन ठहरानी ।' मा० २.२५३.७

ठहरु : ठहर+कए० । एक भी ठिकाना, आश्रय ! 'जो पै मो को होतो कहूं ठाकुर ठहरु ।' विन० २५०.१

ठही : भूकृ०स्त्री०=ठई । ठहरी, व्याप्त हो रही । 'लागि दवारि पहार ठई ।' कवि० ७.१४३

ठाँव : ठावँ । विन० १५१.३

ठाउँ, ऊँ : (१) सं०पुं०कए० (सं० स्थाम>प्रा० ठामं>अ० ठावुँ)। स्थान। 'लै रघुनाथहिं ठाउँ देखावा।' मा० २.८९.५ (२) पद। 'पायउ अचल अनूपम ठाऊँ।' मा० १.२६.५ (३) आश्रय, सहारा। 'जग दूसरो न ठाकुर न ठाकुर ठाऊँ।' विन० १५३.१

ठाकुर : सं०पुं० (सं० ठक्कुर)। स्वामी, राजा। कवि० ७.१७०

ठाट : ठट। (१) समूह, प्रबन्ध, बन्धान। 'चेटक कौतुक ठाट ठटो।' कवि० ७.८६ (२) बनाव, साज। 'चतुर जनक ठयो ठाट इतौ री।' गी० १.७७.३

ठाटहु : आ०मब०। ठीक-ठाक करो, जमाओ, सजाओ। 'ठाटहु सकल भरै के ठाटा।' मा० २.१९०.१

ठाटा : (१) भूकृ०पुं०। गूँथ दिया, जमा दिया। 'सुख महुं सोक ठाटु धरि ठाटा।' मा० २.४७.५ (२) ठाट। 'ठाटहु सकल भरै के ठाटा।' मा० २.१९०.१

ठाटिबो : भकृ०पुं०कए०। सजाना, रचना, ठाट बनाना। 'काया नहिं छाड़ि देत ठाटिबो कुठाट को।' कवि० ७.६६

ठाटु, टू : ठाट+कए०। (१) साजबाज, बन्धान। 'सुख महुं सोक ठाटु धरि ठाटा।' मा० २.४७.५ (२) प्रबन्ध, तैयारी। 'करहु कतहुं अब ठाहर ठाटू।' मा० २.१३३.१

ठाढ़ : भूकृ०पुं० (सं० स्तब्ध>प्रा० ठड्ढ)। खड़ा, खड़े। 'ठाढ़ भए उठि सहज सुभाएँ।' मा० १.३६०.५

ठाढ़ा : ठाढ़+कए०। 'अहमिति मनहुं जीति जगु ठाढ़ा।' मा० १.२८३.६

ठाढ़ि : ठाढ़ी। 'सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछितातीं।' मा० २.१२.१

ठाढ़ीं : ठाढ़ी+ब०। खड़ी हुईं। 'मंगल द्रब्य लिएँ सब ठाढ़ीं।' मा० १.२८८.६

ठाढ़ी : ठाढ़+स्त्री० (सं० स्तब्धा>प्रा० ठड्ढी)। खड़ी। 'नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी।' मा० १.१०४.२

ठाढ़ें : क्रि०वि०। खड़े-खड़े, स्तब्ध होकर। 'काहुं न लखा देख सबु ठाढ़ें।' मा० १.२६१.७

ठाढ़े : भूकृ०पुं०ब०। खड़े। मा० १.१४५.१

ठाढ़ेइ : खड़े ही। 'पंचबटी पहिचानि ठाढ़ेइ रहे।' गी० ३.१०.१

ठाढ़ो : ठाढ़ा। 'रावन भवन चढ़ि ठाढ़ो तेहि काल भो।' कवि० ५.४

ठाना : भूकृ०पुं०। चालू किया। 'सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना।' मा० १.१९२ छं०

ठानि : (१) पूकृ०। ठान कर, निश्चित कर। 'मरनु ठानि मन रचेसि उपाई।' मा० १.९६.५ (२) आ०—आज्ञा—मए०। तू ठान कर। 'भजहि ऐसे प्रभुहि तुलसी कुटिल कपट न ठानि।' विन० २१५.७

ठानी : (१) भूकृ०स्त्री० । आरम्भ की । 'अति निर्मल बानीं अस्तुति ठानी ।' मा० १.२११ छं० २ (२) ठानि । ठान कर । गी० १.४.२

ठायँ : स्थान पर । 'ते लजात होत ठाढ़े ठायँ ।' विन० ८३.६

ठालीं : ठाली+ग० । 'ठालीं ग्वालि जानि पठए अलि कह्यो है पछोरन छूछो ।' कृ० ४३

ठाली : वि०स्त्री० । निठल्ली, ठलुई, निकम्मी (जिसे कुछ काम न हो) । 'ठाली ग्वालि ओरहने के मिस आइ बकहि बेकामहिं ।' कृ० ५

ठावँ : ठायँ । स्थान पर । 'ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती ।' मा० २.९०.३

ठाव : सं०पुं० (सं० स्थाम=स्थान>प्रा० ठाम>अ० ठावँ) स्थान । 'ठावहिं ठाउँ बझाऊ रे ।' विन० १८९.४ (ठावहिं ठाउँ=स्थान ही स्थान=प्रत्येक स्थान)

ठाहर : ठहर । ठहराव, स्थान । 'करहु कतहुं अब ठाहर ठाटू ।' मा० २.१३३.१

ठाहरु : ठाहर+कए० । (१) स्थान (अङ्ग, भाग) । 'मरम ठाहरु देखई ।' मा० २.२५ छं० (२) अवसर । 'जूझिबे जोगु न ठाहरु ।' कवि० ६.२८ (३) आश्रय, अवलम्ब । 'तुम्ह ही बलि हौ मो को ठाहरु हेरें ।' कवि० ७.९२

ठीक : (१) सं०स्त्री० । ठेका, ठहराव, स्थिरता, विराम, निश्चय । 'नीकें कै ठीक दई तुलसी ।' कवि० ७.८८ (२) वि० । स्थिर, निश्चित, उचित । 'ठीक प्रतीति कहै तुलसी ।' कवि० ७.१३१ (३) व्यवस्थित, समञ्जस । 'करम बचन मन ठीक लेहि, तेहि न सकै कलि धूति ।' दो० ८८

ठीका : ठीक (सं० स्थितिका>प्रा० ठिइक्का) । ठहराव, धैर्य, निश्चय, दृढ़ता । 'करि बिचारु मन दीन्ही ठीका ।' मा० २.२६६.७

ठुमुकु : बच्चों की गति चेष्टानुकरण, ठहर ठहर कर कर निरन्तर चाल । 'ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई ।' मा० १.२०३.७

ठूँठ : सं०पुं० । स्थाणु, पत्रादिरहित वृक्ष । 'सेवत कलि तरु ठूँठ ।' दो० ७६

ठेकाने : 'ठेकाना' का रूपान्तर । टिकाव, आधार, स्थान । 'बड़े ठेकाने ठौर को हौं ।' विन० २२९.३

ठेलि : पूकृ० । ठेल कर, धकिया कर, धक्का दे देकर । 'ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि ।' कवि० ५.८

ठोंकि : पूकृ० । ठोंक बजा कर, पात्रादि पर 'ठों' ध्वनि के साथ आघात देकर, परीक्षा करके । 'ठोंकि बजाइ लखे गजराज ।' कवि० ७.५४ (२) आघात देकर । 'ठोंकि ठोंकि खये ।' गी० १.४५.२

ठोरी : क्रि०वि० । संगम दशा में, स्थान पर । 'छबि सिंगार मनहुं एक ठोरी ।' मा० १.२६५.७

ठोसु : ठोस+कए० । अन्त:सार युक्त, दृढ़, भरा हुआ । 'राम प्रीति प्रतीति पोली, कपट कर तब ठोसु ।' विन० १५९.१

ठौर : सं०पुं० । (१) स्थान । 'ठौर ठौर दीन्ही आगि ।' कवि० ५.३ (२) आश्रय । 'नाहिन ठौर कहूं ।' विन० ८६.१

ठौरी : ठौरी । 'लोचन लाहु लह्यो एक ठौरी ।' गी० १.१०४.३

ठौरु : ठौर+कए० । एक भी स्थान, आश्रय । 'और कहाँ ठौरु रघुबंसमनि मेरे ।' विन० २१०.१

ड

डग : सं०पुं० । पदविक्षेप, एक पदक्रम । 'धरि धीर दए मग में डग द्वै ।' कवि० २.११

√डग, डगइ : आ०प्रए० । चलित होता है, हिलता है, स्थान से कुछ चलता है । 'डगइ न संभु सरासन कैसें ।' मा० १.२५१.२

डगत : वकृ०पुं० । विचलित होता-ते, लड़खड़ाता-ते । 'बूड़त लखि पग डगत लखि ।' दो० ५२०

डगति : डगत+स्त्री० । हिलती । 'डोलति नहिं डगति ।' गी० २.८२.२

डगमगत : वकृ०पुं० । लड़खड़ाता-ते, हिलता-ते । मा० ६.७०.८

डगमगहिं, हीं : आ०प्रब० । हिलते-डोलते हैं । 'छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं ।' मा० ६.७.६

डगमगानि : भूकृ०स्त्री० । हिल-डोल गयी; काँप उठी । 'डगमगानि महि दिग्गज डोले ।' मा० १.२५४.१

डगमगाहिं : डगमगहिं । मा० ५.३५.१०

डगमगे : भूकृ०पुं०ब० । डाँवाडोल हो गये । मा० ६.८६ छं०

डगरि : पूकृ० । डगर पर चलकर, राह पकड़ कर, अपना रास्ता लेकर । 'डगरि चले हँसि खेलि ।' कृ० २६

डगरो : सं०पुं०कए० । मार्ग । 'रामभजन······मोहि लगत राज-डगरो सो ।' विन० १७३.५

डगहिं, हीं : आ०प्रब० । चलित या च्युत होते हैं । 'डगहिं न ताल बँधान ।' मा० १.३०२ (२) कम्पित होते हैं, लड़खड़ाते हैं । 'चलत कटक दिगसिंधुर डगहीं ।' मा० ६.७६.६

डगि : पूकृ० । डगमगा कर, लड़खड़ा कर । 'सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं ।' मा० २.२२५.४

डगे : भूकृ०पुं०ब० । हिले, डगमगाए । 'डगे दिगकुंजर ।' कवि० ६.७

डग्यौ : भूकृ०पुं०कए० । हिला । 'डग्यौ न धनु ।' गी० १.८६.७

डटैया : वि० । डाँटने वाला । 'कौन सुनै चहुं ओर डटैया ।' कवि० ७.५१

डफ : सं०पुं० । ढपली, वाद्य विशेष । खँजड़ी जैसा एक बाजा ।

डफतार : डफ । ताल देने वाली ढपली । गी० १.२.१३

डफोरि : पूकृ० । डफार लगाकर, हाँक देकर, ललकार भरी पुकार देकर । 'तुलसी त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै ।' कवि० ५.२७

डमरु, रू : सं०पुं० (सं०) । वाद्य विशेष । मा० १.६२.५

डमरुआ : सं०पुं० (सं० डमरूक) । एक रोग जिसमें गाँठें सूज कर डमरू के समान हो जाती हैं । 'अहंकार अति दुखद डमरुआ ।' मा० ७.१२१.३५

डर : सं०पुं० (सं० दर>प्रा० डर) । मा० १.२१८.५ (२) भय का कारण । 'एकहिं डर डरपत मन मोरा ।' मा० १.१६६.८

✓**डर, डरइ** : आ०प्रए० । डरता है । 'कान्ह डरै तेरे डर तें ।' कृ० १७

डरउँ, ऊँ : आ०उए० । डरता-ती-हूं । 'बसउ भवनु उजरउ, नहिं डरऊँ ।' मा० १.८०.७

डरत : वकृ०पुं० । डरता, डरते । 'तव भयँ डरत सदा सोउ काला ।' मा० ३.१३.८

डरनि : (१) सं०स्त्री० । डरने की क्रिया । (२) डर+कए० । डरों (से) । हार्‌यो हिय खारो भयो भूसुर डरनि ।' विन० २४७.३

डरपत : वकृ०पुं० (सं० दर+आत्मन्>प्रा० डरप्प) । अपने आप में डरता-डरते । 'एकहिं डर डरपत मन मोरा ।' मा० १.१६६.८

डरपति : वकृ०स्त्री० । अपने-आप में भय खाती । 'ता तें तेहि डरपति अति माया ।' मा० ७.११६.५

डरपसि : आ०मए० । तू स्वतः डरे । 'जनि सनेह बस डरपसि भोरें ।' मा० २.५३.८

डरपहिं : आ०प्रब० । स्वतः डर जाते हैं । 'डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ । मा० २.८३.४

डरपहि : डरपसि । 'जनि डरपहि ।' विन० ८४.४

डरपहु : आ०मब० । स्वतः (अपने आप ही—अकारण) डरो । 'जनि डरपहु सुर सिद्ध सुरेसा ।' मा० १.१८७.१

✓**डरपाव, डरपावइ** : आ०प्रए० । अपने आप ही, अकारण, भय देता है । 'डरपावै गहि स्वल्प सपेला ।' मा० ६.५१.८

डरपे : भूकृ०ब० । स्वतः डर गये । 'डरपे सुर भए असुर सुखारी ।' मा० १.८७.७

डरहिं, हीं : आ० (१) प्रब० । (वे) डरते-ती-हैं । 'कालहु डरहिं न रन रघुबंसी ।' मा० १.२८४.४ (२) उब० । (हम) डरते-ती-हैं । 'तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं ।' मा० २.११६.६

डरहि, ही : आ०मए० । तू डरता है । 'बायस इव सब ही तें डरही ।' मा० ७.११२.१४

डरहु : आ०मब० । तुम डरते हो । 'डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ ।' मा० २.२१०.२

डरहुगे : आ०भ०पुं०मब० । डरोगे । 'कुटिल मन मलिन जिय जानि जो डरहुगे ।' विन० २११.४

डरि : पूकृ० । भय खा कर । 'बिदा भई देबी सों जननि डर डरि कै ।' गी० २.७२.४

डरिबे : भकृ०पुं० डरना । 'लौकिक डर डरिबे हो ।' कृ० ३६

डरिये : आ०भावा० । डरा जाय, डरना पड़ता है । 'निज आचरन बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिये ।' विन० १८६.१

डरिहैं : आ०भ०प्रब० । डरेंगे । 'डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि ।' कृ० १३

डरिहै : आ०भ० प्रए० । डरेगा । 'सपनें नहिं कालहु तें डरिहै ।' कवि० ७.४७

डरीं : भूकृ०स्त्री०ब० । डर गयीं । 'तासु बचन सुनि ते सब डरीं ।' मा० ५.११.८

डरु : (१) डर+कए० । एकमात्र भय । 'मन डरु लोचन लालची ।' मा० १.४८ (२) आ०-आज्ञा-मए० । तू डर । 'रामहि डरु करु राम सों ममता प्रीति प्रतीति ।' दो० ६५

डरे : भकृ०पुं०ब० । डर गये । 'डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी । मा० १.२४१.६

डरेउँ : आ०-भूकृ०पुं०+उए० । मैं डर गया । 'अपभयँ डरेउँ न सोच समूलें ।' मा० २.२६७.३

डरेउ : भूकृ०पुं०कए० । डर गया । 'निज भयँ डरेउ मनोभव पापी ।' मा० १.१२६.७

डरें : डरहिं । 'कबहूं प्रतिबिंब निहारि डरें ।' कवि० १.४

डरै : डरइ । 'सो परि डरै मरै रजु अहि तें ।' विन० १८८.५

डरैगी : आ०भ०स्त्री०प्रए० । भयभीत होगी । हनु० २५

डरौं : डरउँ । (१) डरता हूँ । 'तेहि तें बूझत काजु डरौं ।' जा०मं० २२ (२) डरूँ, डरता होऊँ । 'अनद्य नाम अनुमानि डरौं ।' विन० १४१.१

डर्यो : डरेउ । 'भव भय बिकल डर्यो ।' विन० ६१.४

डसत : वकृ०पुं० (सं० दशत् >प्रा० डसंत) । दंश करता, डसता, डसते रही । 'भव भुअंग तुलसी नकुल डसत ग्यान हरि लेत ।' दो० १८०

डसाई : (१) भू०कृ०स्त्री० । बिछायी । 'गुहँ सवाँरि सांथरी डसाई ।' मा० २.८६.७ (२) पूकृ० । बिछाकर । 'बैठे कपि सब दर्भ डसाई ।' मा० ४.२६.१०

डसाए : भूकृ०पुं०बहु० । बिछाये । 'पलँग डसाए ।' मा० १.३५६.१

डसैहौं : आ०भ०उए० । बिछाऊँगा । ' जागें फिरि न डसैहौं ।' विन० १०५.१

डहकत : वकृ०पुं० । (१) ठगता, प्रवञ्चित करना । 'बहु बिधि डहकत लोग फिरौं ।' विन० १४१.३ (२) छीना झपटी करता-ते । 'खेलत खात परसपर डहकत ।' कृ० १९ (३) विश्वासघात करते । 'डहकत एकहि एक ।' दो० ५४७

डहकति : वकृ०स्त्री० । (१) छल करती+(२) दहकता, जल जलाती । 'डहकति है उजिअरिआ निसि नहिं घाम ।' बर० ३७

डहकाइबो : भकृ०पुं०कए० । ठगाना, (अपने को) प्रतारित करा लेना । 'डहके तें डहकाइबो भलो ।' दो० ४३१

डहकायो : भूकृ०पुं०कए० । (अपने को) ठगाया । 'अजहुं विषय कहँ जतन करत, जद्यपि बहु बिधि डहकायो ।' विन० १९९.४

डहकि : पूकृ० । वञ्चना करके । 'डहकि डहकि परिचेहु सब काहू ।' मा० १.१३७.३ (२) होड़ लगाकर, अवज्ञा करके । 'बाल बोलि डहकि बिरावत ।' कृ० २

डहके : भूकृ०पुं०ब० । (१) ठग गये, ठग लिये, प्रतारित किये । 'कलि डहके कहु को न ।' दो० ५४६ (२) ठगने । 'डहके तें डहकाइबो भलो ।' दो० ४३१

डहार : सं०पुं० (सं० दहर>प्रा० डहर । बालक । 'कायर कूर कपूत कलि घर घर सहस डहार ।' दो० ५६०

डाँग : सं०पुं० । पशु विशेष । गी० २.४७.१२

डाँटति : डाटति । 'निपटहि डाँटति निठुर ज्यों ।' कृ० १४

डाँटे : डाटे । 'डाँटे बानर भालु सब ।' रा०प्र० ३.६.५

डाँड़ि : पूकृ० (सं० दण्डयित्वा>प्रा० डंडिअ>अ० डंडि) । दण्डित कर । 'केसरी कुमारु सो अदंड कैसो डाँड़ि गो ।' कवि० ६.२४

डाँड़ियत : वकृ०पुं०कबा० (सं० दण्ड्यमान>प्रा० डंडीअंत) । दण्डित किया जाता-किये जाते । 'डाँड़ियत सिद्ध साधक पचारि ।' गी० २.४९.६

डाँड़ी : सं०स्त्री० (सं० दण्डिका>प्रा० डंडिआ>अ० डंडी) । छोटा डाँडा । 'मरकत भँवर डाँड़ी कनक मनि जटित ।' गी० ७.१९.३

डाँड़ो : सं०पुं०कए० (सं० दण्डः>प्रा० डंडो) । छड़ी, दण्ड, छत्र आदि का दण्डाकार भाग । गी० ७.१८.२

डाकिनि, नी : सं०स्त्री० (सं० डाकिनी) । श्मशानादि की देवी, शिशु भक्षिणी पिशाची, डायन । मा० २.१३२.६

डाटत : वकृ०पुं० । डाँटता-ते, भर्त्सना करता-ते । 'खिझे तें डाटत नयन तरेरे ।' कृ० ३

डाटति : वकृ०स्त्री० । भर्त्सना करती, फटकारती । 'मातु काज लागी लखि डाटति ।' कृ० १०

डाटन : भकृ० अव्यय । डाटने, भर्त्सना देने । 'मोहि दास ज्यों डाटन आयो ।' गी० ६.६.१

डाटहिं : आ०प्रब० । डाटते हैं, भर्त्सना देते हैं । 'कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं ।' मा० ६.५३.५

डाटि : पूकृ० । डपट कर, भर्त्सित करके । 'आँखि देखावहिं डाटि ।' मा० ७.९९ ख

डाटे : भूकृ०पुं०ब० । डपटे हुए, भर्त्सित हुए (पर) । डाटे नवहिं अचेत ।' रा०प्र० ५.५.६

डाटेंहि : डाटने पर ही, डपटने से ही । 'डाटेंहि पै नव नीच ।' मा० ५.५८

डाढ़ : सं०स्त्री० (सं० दाढ़ा=दंष्ट्रा) । दाढ़ । जबड़ा ।

डाढ़त : वकृ० (सं० दग्ध>प्रा० डड्ढ+वकृ०=डड्ढंत) । जलता-ते । कवि० ५.१२

डाढ़न : भकृ० अव्यय (अ० डड्ढ+अण=डड्ढण) । जलाने । 'तुलसीदास जगदध जवास ज्यों अनघ मेघ लगे डाढ़न ।' विन० २१.२

डाढ़नि : डाढ़+संब० । दाढ़ो, दंष्ट्राओं, जबड़ों । 'बैठो काज डाढ़नि बीच ।' गी० ५.६.२

डाढ़ा : सं०पुं० । दाहक अग्नि जो दूर.दूर तक तिनकों में फैल जाती है । 'जिमि तॅन पाइ लाग अति डाढ़ा ।' मा० ६.७२.२

डाढ़े : भूकृ०पुं०ब० । दग्ध हुए, जले । 'तुलसी तिहुं ताप न डाढ़े ।' कवि० ७.१२७

डाढ़ो : भूकृ०पुं०कए० (सं० दग्धः>प्रा० डड्ढो) । जल गया । 'सब असबाबु डाढ़ो ।' कवि० ५.१२

डाबर : सं०पुं० । पोखर, क्षुद्र तालाब । मा० २.१३९.७

डार : (१) सं०स्त्री० (सं० दाला>प्रा० डाला>अ० डाल) । शाखा । 'प्रभु तरु तर कपि डार पर ।' मा० १.२९ क (२) डारि । फेंक कर । 'निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी ।' कवि० ७.१८३

✓डार, **डारइ**, ई : (सं० दालयति, द्राडयति—दल विशरणे, द्राड्ट विशरणे>प्रा० डालइ) आ०प्रए० । डालता है, फेंकता है, गिराता है । 'डारइ परसु परिघ पाषाना ।' मा० ६.७३.२; ८५ छं०

डारउ : आ०—आशंङ्का, संभावना—प्रए० (सं० द्राडयतु>प्रा० डालउ) । गिराये, डाले । 'जाचत जलु पबि पाहन डारउ ।' मा० २.२०५.३

डारत : वकृ०पुं० (सं० द्राडयत्>प्रा० डालंत) । गिराता-ते । 'डारत कुलिस कठोर ।' दो० २८३

डारन : डार+संब० । डालों, शाखाओं (पर) । 'अवनि कुरंग बिहग द्रुम डारन ।' गी० २.१४.२

डारहिं, हीं : आ०प्रब० (सं० द्राडयन्ति>प्रा० डालंति>अ० डालहिं)। गिराते हैं, फेंकते हैं। 'जहँ तहँ अवनि पटकि भट डारहिं।' मा० ६.८१.६, ३.२० छं० ३

डारा : भूकृ०पुं०। डाला, फेंका। 'अति रिस मेघनाद पर डारा।' मा० ६.५१.२

डारि : (१) पूकृ०। डाल (कर)। 'दीन्हि मुद्रिका डारि तब।' मा० ५.१२ (२) डारु। तू डाल। 'रोम रोम छबि निहारि आलि वारि फेरि डारि।' गी० २.१७.१

डारिए : आ०कवा०प्रए०। डालिए, डाला जाय। 'नीच को डारिए मारि।' विन० २५८.४

डारिबी : भकृ०स्त्री०। डालनी, छोड़ देनी।' निपटहि डारिबी न बिसारि।' गी० ७.२९.३

डारियत : वकृ०कवा०पुं०। डाला जाता। 'रोगसिंधु क्यों न डारियत गाय खुर कै।' हनु० ४३

डारिये : डारिए।

डारिहउँ : आ०भ०उए०। डालूंगा। 'बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी।' मा० १.१२९.५

डारी : (१) डारि। 'मम दिसि देखि दीन्ह पट डारी।' मा० ४.५.४ (२) भूकृ० स्त्री०। डाल दी। 'ठगौरी डारी।' गी० १.१००.१

डारु : आ०-आज्ञा-मए० (सं० द्राडय>प्रा० डाल>अ० डालि, डालु)। फेंक, छोड़ दे। 'लकुट कर तें डारु।' कृ० १४

डारे : (१) भूकृ०पुं०ब०। डाले, फेंके। 'कोटिन्ह आयुध रावन डारे।' मा० ६.८३.४ (२) डारइ। (३) डाल देवे। 'रुचिर काँचमनि देखि मूढ़ ज्यों कर तल तें चिंतामनि डारे।' गी० २.२.३

डारेन्हि : आ०-भूकृ०पुं०+प्रब०। उन्होंने डाला-डाले। 'डारेन्हि ता पर एकहिं बारा।' मा० ६.८२.२

डारेसि : आ०-भूकृ०पुं०+प्रए०। उसने डाला-डाले। जहँ तहँ पटकि पटकि भट डारेसि।' मा० ६.६५.९

डारो : डार्यो। 'डेल सो डारो।' कृ० ३४

डारौं : आ०उए०। डालूं, डालता हूँ, डाल सकता हूँ। 'काचे घट जिमि डारौं फोरी।' मा० १.२५३.५

डार्यो : भूकृ०पुं०कए०। डाला, फेंक दिया। दो० ३०३

डावर : सं०पुं०। पुत्र, लड़का।

डावरे : डावर ने, लड़के ने। 'सोई बाँह गही जो गही समीर डावरे।' हनु० ३७

डाँवाडोल : वि० (सं० दाम+दोल>प्रा० दामाडोल>अ० दावाँडोल ?)। (रस्सी में पड़े झूले के समान) कम्पित, विचलित। 'कालु लोकपाल मेरे डर डावाँडोल हैं।' कवि० ५.२१

डासत : वकृ०पुं० (सं० दाशयत्>प्रा० डासंत) । बिछाता, बिछाते । 'डासत ही गई बीति निसा सब ।' विन० २४५.४

डासन : सं०पुं० (सं० दाशन>प्रा० डासण) । बिछौना । 'लोभइ ओढ़न लोभइ डासन ।' मा० ७.४०.१

डासि : पूकृ० । बिछाकर । 'ए महि परहिं डासि कुस पाता ।' मा० २.११६.७

डासी : डासि । मा० २.६७.५

डिंडिम : (१) । सं०पुं० । ध्वनि विशेष । (२) डिमडिम ध्वनि से बजने वाला वाद्यविशेष (सं०) । 'तांडवित नृत्य पर डमरु डिंडिम प्रवर ।' विन० १०.५

डिंडिमीं : सं०स्त्री०ब० । डिंडिमियाँ, डौंड़ी बाजे । मा० १.३४४.२

डिंब : सं०पुं० (सं०) । शिशु । 'अनुकूल अंबक अंब ज्यों निज डिंब हित सनमानि कै ।' गी० ३.१७.३

डिंभ : सं०पुं० (सं०) डिंब । कवि० ७.८१

डिगति : डगति । 'डिगति उर्बि अति गुर्बि ।' कवि० १.११

डिठि : डीठि । नजर (दृष्टि दोष) । 'डिठि मुठि निठुर नसाइहौं ।' गी० १.२१.२

डिठिआरो : वि०पुं०कए० । दृष्टि वाला, नेत्रयुक्त । 'अंध कहें दुख पाइहै, डिठिआरो केहिं डीठि ।' दो० ४८१

डीठ : भूकृ०पुं० (सं० दृष्ट>प्रा० दिट्ठ) । देखा, देखे । 'दई पीठ बिनु डीठ मैं ।' विन० १४६.४

डीठा : डीठ । देखा । 'पितु बैभव बिलास मैं डीठा ।' मा० २.६८.१

डीठि : सं०स्त्री० (सं० दृष्टि>प्रा० दिट्ठि) । 'नेत्र नेत्र ज्योति । 'लोचन सजल डीठि भइ थोरी ।' मा० २.१४५.३

डीठी : डीठि । मा० १.२३१.७

डीठे : भूकृ०पुं०ब० । देखे । 'अनुभवे सुने अरु डीठे ।' विन० १६६.२

डेरा : सं०पुं० (सं० द्वार>प्रा० देर ?) । शिविर, पड़ाव (मुकाम) । 'राम करहु तिन्ह कें उर डेरा ।' मा० २.१३१.८ (२) शिविर के लोग तथा सामान । 'डेरा चले लवाइ ।' मा० २.१८७

✓**डेरा डेराइ, ई** : (सं० दरायते>प्रा० डराइ—भय करना, डरना) आ०प्रए० । (१) डरता-ती है । 'अभय होइ जो तुम्हहि डेराई ।' मा० १.२८४.५ (२) डरे, डर जाय । 'जब सिय कानन देखि डेराई ।' मा० २.८२.३

डेराऊँ : आ०उए० । डरता हूं । 'तुम्ह पूछहु मैं कहत डेराऊँ ।' मा० २.१७.३

डेरात : वकृ०पुं० । डरता । 'तैसो कपि कौतुकी डेरात ढीले गात कै कै ।' कवि० ५.३

डेराति, ती : वकृ०स्त्री० । डर जाती । 'चित्र लिखित कपि देखि डेराती ।' मा० २.६०.४

डेराना : भू०कृ०पुं० । डर गया । 'मुनि गति देखि सुरेस डेराना ।' मा० १.१२५.५

डेराने : भूकृ०पुं०ब० । डर गये । 'उग्र बचन सुनि सकल डेराने ।' मा० ६.४२.६

डेरावहिं : आ०प्रब० । डराते हैं, भय दिखाते हैं, भयभीत करते हैं । 'कपि लीला करि तिन्हहि डेरावहिं ।' मा० ६.४४.५

डेराहिं, हीं : आ०प्रब० । डरते हैं । भय खाते हैं । 'कुटिल काक इव सबहि डेराहीं ।' मा० १.१२५.८

डेराहु, हू : आ०मब० । डरो, भयभीत होओ । 'जनि हृदयँ डेराहू ।' मा० ६.३२.६

डेरे : 'डेरा' का रूपान्तर । शिविर, रुकाव, आश्रय (द्वार) । 'दीन बित्तहीन हौं बिकल बिनु डेरे ।' विन० २१०.४

डेरो : डेरा+कए० । निवास । 'हृदय करहु तुम डेरो ।' विन० १४३.८

डेल : सं०पुं० । ढेला, मिट्टी या पत्थर का लोंदा (निरर्थक वस्तु) । 'नाहिन रास रसिक रस चाख्यो ता तें डेल सो डारो ।' कृ० ३४

डेवढ़ : वि० (सं० द्व्यर्ध>प्रा० देवड्ढ) । ड्योढ़ा, ड्योढ़े । 'बिधि तें डेवढ़ लोचन लाहू ।' मा० १.३१७.५

डोंगर : सं०पुं० (प्रा० डुंगर=डोंगर) । पर्वत, पहाड़ी 'चित्र बिचित्र बिबिध मृग डोलत डोंगर डाँग ।' गी० २.४७.१२

डोरि : डोरी रस्सी । 'लसति पाटमय डोरि ।' मा० १.२८८

डोरिआए : भूकृ०पुं०ब० । डोरी में बाँधे हुए । 'कोतक संग जाहिं डोरिआए ।' मा० २.३०३.४

डोरी : सं०स्त्री० (सं० दोरी>प्रा० डोरी) । रस्सी । 'मम पद मनहि बाँध बरि डोरी ।' मा० ५.४८.५

डोल : (१) डोलइ । 'चिक्करहिं दिग्गज डोल महि ।' मा० १.२६१ छं० (२) हिलती थी । 'तब बल नाथ डोल नित धरनी ।' मा० ६.१०४.५

✓**डोल डोलइ** : (सं० दोलते-दुल उत्क्षेपे>प्रा० डोल्लइ—हिलना, आन्दोलित होना, डगमगाना, चलित होना) आ०प्रए० । आन्दोलित होता-ती है । 'अचल-सुता मनु अचल बयारि कि डोलइ ।' पा०मं० ५८

डोलत : वकृ०पुं० । (१) हिलते, घूमते, भटकते । 'दीन मलीन छीन तनु डोलत ।' कृ० ३५ (२) काँपते (में), आन्दोलित होते (समय) । 'डोलत धरनि सभासद खसे ।' मा० ६.३२.४

डोलति : वकृ०स्त्री० । हिलती, काँपती । 'चलत दसानन डोलति अवनी ।' मा० १.१८२.५

डोलहिं : आ०प्रब० (सं० दोलन्ते>प्रा० डोल्लंति>अ० डोल्लहिं) । (१) विचल

होते हैं। 'समदम नियम नीति नहिं डोलहिं।' मा० ७.३८.८ (२) चलते-फिरते हैं (अचेतनवत् गति लेते हैं)। 'सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं।' मा० २.२२५.४

डोलहि : आ०मए०। तू डोल, भटकता रह। 'जनि डोलहि लोलुप कूकुरु ज्यों।' कवि० ७.३०

डोला : (१) भू०कृ०पुं०। कांपा, हिला, चलित हुआ। 'पीपर पात सरिस मनु डोला।' मा० २.४५.३ (२) स०पुं० (सं० दोल>प्रा० डोल=डोलअ)। झूला, पालकी। 'हमहि दिहल करि कुटिल करमचँद मंद मोल बिनु डोला रे।' विन० १८९.२

डोलावा : भूकृ०पुं० (सं० दोलित>प्रा० डोल्लाविअ)। हिलाया, विचल किया। 'काहि न सोक समीर डोलावा।' मा० ७.७१.३

डोलावौं : आ०उए०। चलाता हूं। 'जहँ तहँ चितहि डोलावौं।' विन० २३२.२

डोलावौंगी : आ०भ०स्त्री०उए०। 'हिलाऊँगी। 'अम भए बाउ डोलावौंगी।' गी० २.६.२

डोलिहैं : आ०भ०प्रब०। हिलेंगे, कांप जायँगे। 'भूलिहैं दस दिसा सीस पुनि डोलिहैं।' कवि० ६.२०

डोली : (१) सं०स्त्री० (सं० दोला>अ० डोली)। पालकी। 'जाइ समीप राखि निज डोली।' मा० २.१८८.४ (२) भूकृ०स्त्री०। विचल हो गयी। 'सो मति डोली।' मा० १.१९२ छं० (३) हिल गयी। 'डोली भूमि गिरत दसकंधर।' मा० ६.१०३.५

डोले : भूकृ०पुं०ब०। (१) हिले, कांप उठे। 'डगमगानि महि दिग्गज डोले।' मा० १.२५४.१ (२) विचलित (च्युत) हुए। 'जे सपनेहुं निज धरम न डोले।' मा० २.१८६.६

डोलै : डोलइ। कवि० ७.१४८

डोल्यो : भूकृ०पुं०कए०। हिला। 'परम धीर नहिं डोल्यो।' गी० ३.१३.३

डोल्लहिं : डोलहिं। भटक रहे हैं, घूम-घाम रहे हैं। 'कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोल्लहिं।' मा० ६.८८.१०

डौआ : सं०पुं०। बड़ा चमचा। 'लकड़ी डौआ करछुली।' दो० ५२६

ढ

ढँढोरी : भूकृ०स्त्री० (सं० ढुण्ढिता=गवेषिता>प्रा० ढंढोली)। ढूंढ़ी, खोजी। 'सारद उपमा सकल ढँढोरी।' मा० १.३४९.७

ढंग : सं०पुं०। रीति, शैली, प्रकार। गी० १.२.१४

ढकनि : ढका+संब०। धक्कों (से)। 'ढकनि ढकेलि।' कवि० ५.८

ढकाँ : धक्के से। 'ढकाँ ढकेलि ढाहि गो।' कवि० ६.२३

ढका : (१) सं०पुं०। धक्का। 'नेकु ढका दैहैं ढैहैं ढेलन की ढेरी सी।' कवि० ६.१० (२) घेरा। 'बासर ढासनि के ढका।' दो० २३९

ढकेलि : पूकृ० धकेल कर, धक्का देकर। 'ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि।' कवि० ५.८

ढकेल्यो : भूकृ०पुं०कए०। धक्का देकर गिराया। कवि० ७.७६

ढनमनी : भू०कृ०स्त्री०। ढुलमुला गई, लुढ़क गयी, अस्त-व्यस्त होकर पसर गयी। 'रुधि बमत धरनीं ढनमनी।' मा० ५.४.४

ढरकें : ढलने पर। 'गए कोस दुइ दिनकर ढरकें।' मा० २.२२६.१

ढरत : वकृ०पुं०। ढल रहा। (१) साँचे में ढलता। 'जोबन नव ढरत ढार।' गी० २.४३.३ (२) अनुकूल प्रवाह में चल रहा। 'राम सब को सुढर ढरत।' विन० १३४.६ (३) मय ढलता।

ढरनि : सं०स्त्री०। ढलने की क्रिया। बहाव। (१) चाल, शैली, रीति। 'तुलसी ढरैंगे राम आपनी ढरनि।' विन० १८४.५ (२) ढर्रा, मार्ग, स्वभाव। 'तौ मथुराहिं महा महिमा लहि सकल ढरनि ढरिबे हो।' कृ० ३९ (यहाँ उचित मार्ग से तात्पर्य है)

ढरहिं, हीं : आ०प्रब०। ढलते हैं, चलाए जाते हैं। 'ब्यजन चारु चामर सिर ढरहीं।' मा० १.३५०.४

ढरिए, ये : आ०भावा०। ढलिए, गति लीजिए, चलिए। 'ढरनि आपनी ढरिए।' विन० २७१.१

ढरिबे : भूकृ०पुं०। ढलने, प्रवाहित होने, चलने। 'सकल ढरनि ढरिबे हो।' कृ० ३९

ढरिहै : आ०भ०प्रए०। ढलकेगा, बहेगा। 'नीर नयननि ढरिहै।' विन० २६८.४

ढरे : भूकृ०पुं०ब० । ढले, चले, पड़े । 'पासे सुढर ढरे री ।' गी० १.७६.३

ढरैंगे : आ०भ०पुं०प्रब० । ढलेंगे, गति लेंगे । 'ढरैंगे राम आपनी ढरनि ।' विन० १८४.५

ढहा : भूकृ०पुं० । ध्वस्त हो गया , 'राज समाज ढहा है ।' गी० २.६४.२

ढहाए : भूकृ०पुं०ब० । गिराये । 'गढ़ ते पर्बत सिखर ढहाए ।' मा० ६.४६.१०

ढहावहिं, हीं : आ०प्रब० । (१) ध्वस्त करते हैं । 'सुभट भटन्ह ढहावहीं ।' मा० ६.८८ छं० (२) गिराते हैं । 'निसिचर सिखर समूह ढहावहिं ।' मा० ६.४१.८

ढहावा : भूकृ०पुं० । ध्वस्त कर धराशायी किया । 'भवनु ढहावा ।' मा० ६.४४.३

ढहे : भूकृ०पुं०ब० । ध्वस्त हुए । 'ढहे समूल बिसाल तरु ।' रा०प्र० ६.३.५

ढाँकी : पूकृ० । ढाँक कर, आवृत कर । मा० २.११७.६

ढाके : भूकृ०पुं०ब० । (प्रा० ढक्किय=ढंकिय) । आवृत किये । 'भीमता निरखि कर नयन ढाँके ।' कवि० ६.४५

ढाबर : वि०पुं० । गँदला, कँदैला, मलिन । 'भूमि परत भा ढाबर पानी ।' मा० ४.१४.६

ढार : सं०स्त्री० । (१) ढाल, ढलकाव, बहाव । (२) मदिरा ढालने की क्रिया । (३) साँच लेने की क्रिया । 'जोबन नव ढरत ढार दुत्त मत्त मृग मराल ।' गी० २.४३.३ (नये साँचे में यौबन-मदिरा ढल रही है जिससे मृग आदि मतवाले हो रहे हैं)

✓**ढार, ढारइ** : (सं० ध्राडययि—ध्राड्ढ विशरणे>प्रा० ढालइ—ढालना, बहाना, उँडेलना, प्रतिमा आदि को साँचा देना) आ०प्रए० । ढालता-ती है । 'नारि चरित करि ढारइ आँसू ।' मा० २.१३.६ (मन्थरा आँसू साँचे में मानों ढाल कर बहा रही है जैसे कोई स्त्री मदिरा ढलका रही हो)

ढारत : वकृ०पुं० । ढलकाता-ते; बहाते । 'दूध दह्यो माखन ढारत है ।' कृ० ६

ढारति : वकृ०स्त्री० । ढालती, बहाती । 'बरत बारि उर ऊपर ढारति ।' गी० ५.१६.२

ढारि : (१) पूकृ० । उँडेल (कर) । 'ऊपर ढारि देहिं बहु बालू ।' मा० ६.८१.७ (२) प्रतिमा गढ़ कर । 'सोभा को साँचो सँवारि, रूप जातरूप ढारि, नारि बिरचो बिरंचि, संग सोही ।' गी० २.२०.३ (३) आ०—आज्ञा—मए० । तू ढाल, ढलका । 'जोगि जन मुनि मंडली में जाइ रीती ढारि ।' कृ० ५३

ढारीं : भूकृ०स्त्री०ब० । ढाली गईं, ढाल कर बनाई गईं । 'नाना रंग रुचिर गच ढारीं ।' मा० ७.२७.३

ढारी : भूकृ०स्त्री०ए० । ढाली गयी । 'अति बिस्तार चारु गच ढारी ।' मा० १.२२४.२

ढारो : ढार्‌यो । 'मैं ढारो बिगारो तिहारो कहा ।' कवि० ७.१०१

ढार्‌यो : भूकृ०पुं०कए० । ढाल दिया, ढलका कर फेंक दिया, हानि कर डाली । 'खायो कै खवायो कै बिगार्‌यो ढार्‌यो लरिकारी ।' कृ० १६

ढसनि : ढास+संब० । ढासों, ठगों, लुटेरों । 'बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुंदिसि चोर ।' दो० २३६

ढाहत : वकृ०पुं० । ढहाता-ते, ध्वस्त कर गिराता-ते । मा० २.३४.४

ढाहि : पूकृ० । ढहाकर, ध्वस्त-धराशायी करके । 'बंक गढ़ लंक सो ढकाँ ढकेलि ढाहि गो ।' कवि० ६.२३

ढाहिबे : भकृ०पुं० । ढहाने, ध्वस्त करने । कवि० ६.२६

ढाहे : भूकृ०पुं०ब० । ध्वस्त कर गिरा दिये । 'ढाहे महीधर ।' मा० ६.४६ छं०

ढिग : क्रि०वि० । समीप में । 'अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी ।' मा० ६.४६.३

ढिठाईं : ढिठाई से, धृष्टता करने से । 'सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाईं ।' मा० २.२२७.७

ढिठाई : सं०स्त्री० । धृष्टता । 'सो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई ।' मा० २.२९८.८

ढीठ : वि०पुं० (सं० धृष्ट>प्रा० धिट्ठ) । हठी, दुराग्रही, अशिष्ट । निर्भय । मा० २.२२७.७

ढीठु : ढीठ+कए० । अद्वितीय धृष्ट । 'दिहुं मिलि कीन्ह ढीठु हठि मोहू ।' मा० २.३१४.६

ढीठे : ढीठ+ब० । धृष्टतापूर्ण । 'बचन कहत अति ढीठे ।' विन० १६९.३

ढीठो : सं०स्त्री० । धृष्टता भी । 'प्रभु सों मैं ढीठो बहुत दई है ।' गी० २.७८.१

ढीठ्यो : ढीठो । 'बहुत हौं ढीठ्यो कई ।' मा० १.३३६ छं० ३

ढील : (१) वि०पुं० (सं० शिथिल>प्रा० सिढिल्ल=ढिल्ल) । सुस्त । 'पील उद्धरन सील सिंधु ढील देखियतु ।' विन० २४८.४ (२) सं०स्त्री० । शिथिलता । 'मेरी बार मेरें ही अभाग नाथ ढील की ।' कवि० ७.१८

ढीलि : (१) ढील । शिथिलता । (२) पूकृ० । शिथिल करके, ढीला करने पर । 'ढीलि दिएँ गिरि परत महि ।' दो० ४०१

ढीली : वि०स्त्री० । शिथिल । 'ढीली करि दाँवरी बावरी ।' कृ० १६

ढीले : वि०पुं०ब० । शिथिल । 'डेरात ढीले गात कै कै ।' कवि० ५.३

ढेक : सं०पुं० । पक्षिविशेष । मा० ३.३८.५

ढेर : सं०पुं० । राशि । कवि० ७.४६

ढेरी : ढेर । मा० २.११४.५

ढेरु : ढेर+कए० । एकीभूत राशि । 'सुषमा को ढेरु कैधौं ।' कवि० ७.१३९

ढेरैं : ढेरहि । ढेर को । 'रंक लूटिबे को मानो मनिगन ढेरैं ।' गी० ५.२७.३

ढेलन : ढेला+संब० । ढेलों, मृत्पिण्डों । 'ढेलन की ढेरी सी ।' कवि ६.१०

ढैहैं : आ०भ०प्रब० । ढहा देंगे, ध्वस्त कर भूमिसात् करेंगे । कवि० ६.१०

ढोटनि : ढोटा+संब० । बालकों । 'जस रावरो लाभ ढोटनि हूं ।' गी० १.५०.१

ढोटा : सं०पुं० । बालक । 'तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा ।' मा० १.३११.३

ढोटो : ढोटा+कए० । यह एक बालक । 'कौसिक, छोटो से ढोटो है काको ।' कवि० १.२०

ढोल : सं०पुं० (सं०) । वाद्यविशेष । मा० १.२६३.१

ढोलू : ढोल+कए० । 'कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू ।' मा० २.१९२.३

ढोव : सं०पुं० (सं० ढौक>प्रा० ढोव=भार) । उपहार-संभार । 'लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले ।' गी० १.२.११

त

तँबोलिनि : सं०स्त्री० (सं० ताम्बूलिनी>प्रा० तंबोलिणी>अ० तंबोलिणि) । ताम्बूल व्यवसायी स्त्री । रा०न० ६

त : (१) अव्यय (सं० तु) । तो । 'नयन मूदि न त चलिअ पराई । मा० १.६४.४ (२) (सं० तदा, तर्हि) तब, तो । 'जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि ।' मा० १.१०८ 'कहहु न हमहि न खोरि ।' मा० १.१६५ (३) (सं० तद्>प्रा० त) सर्वनाम । तिन्ह, ता, ते आदि का मूलरूप

तंतु : सं०पुं० (सं०) तागा, सूत्र । विन० ५४.४

तई : भूकृ०स्त्री० (सं० तप्ता>प्रा तविई) । तची हुई । 'काल कें प्रताप कासी तिहुं ताप तई है ।' कवि० ७.१७५

तउ, ऊ : अव्यय (सं० तदपि>प्रा० तयि) तो भी, तथापि । 'तउ न तजा तनु प्रान अभागें ।' मा० २.१६६.६ 'तऊ न उबरन पावहिं ।' कृ० ४

तए : भूकृ०पुं०ब० (सं० तप्त>प्रा० तविय) । तचे हुए । 'सब अँग परिताप तए हैं ।' गी० ६.५.१

तक : सं०पुं० (सं० तर्क>प्रा० तक्क) । ताकने की क्रिया । 'दोउ लोचन दिन अरु रैनि रहत एकहि तक ।' गी० ५.९.२ (एकहि तक=एक टक ही) ।

√तक, तकइ : (सं० तर्कयति>प्रा० तक्कइ—ताकना, टकटकी लगाना, लक्ष्य साधना, घूरना, लक्षित करना) । प्रा० प्रए० । ताकता-ती है । 'जिमि गवँ तकइ जेउँ केहि भाँति ।' मा० २.१३.४

तकत : वकृ० (सं० तर्कयत्>प्रा० तक्कंत) । ताकता-ते । 'तरनि तकत उलूक ज्यों ।' विन० २२२.२

तकहिं, हीं : आ०प्रब० (सं० तर्कयन्ति>प्रा० तक्कंति>अ० तक्कहिं) । ताकते हैं । 'भूप बचन सुनि इत उत तकहीं ।' मा० १.२६७.८

तकहु : आ०मब० (सं० तर्कयत>प्रा० तक्कह>अ० तक्कहु) । ताको, देखो, खोजो । 'तकहु गिरि कंदर ।' मा० ६ ६६.७

तकि : पूकृ० । ताक कर (लक्ष्य साध कर) । 'तकि तकि तीर महीप चलावा ।' मा० १.१५६.३

तकिया : सं०स्त्री० (फा० तकिय:—आराम की जगह, सिरहाने रखने की चीज) । उपधान, आश्रय । 'मोसे दीन दूबरे को तकिया तिहारियै ।' हनु० २२

तकु : आ०-आज्ञा-मए० (सं० तर्कय>प्रा० तक्क>अ० तक्कु) । तू देख, खोज, लक्ष्य कर । 'तुलसी तकु ताहि सरन ।' विन० १३३.५

तके : भूकृ०पुं०ब० (सं० तर्कित>प्रा० तक्किय) । खोजे, लक्ष्य कर चले । 'देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा ।' मा० १.१८२.६

तकेउ : भूकृ०पुं०कए० । ताका, लक्ष्य किया । 'सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें ।' मा० १.२५९.८

तकैं : तकहिं । 'बनिता सुत भौंह तकैं सब वै ।' कवि० ७.४१०

तकै : तकइ । 'तकै नीचु जो मीचु साधु की ।' विन० १३७.२

तक्यो : तकेउ । 'जनु तक्यो तड़ाग तृषित गज ।' गी० २.६८.३

तग्य, रा : वि० (सं० तज्ज्ञ) । उस विषय का ज्ञाता, तत्त्व द्रष्टा । 'सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित ।' मा० ७.४९.६

तज : तजु । तू छोड़ दे । 'तौ तज बिषय बिकार ।' विन० २०५.१

√तज, तजइ, ई : (सं० त्यजति>प्रा० तजइ—छोड़ना) आ०प्रए० । छोड़ता है । 'तदपि न मृग मग तजइ नरेसू ।' मा० १.१५७.६ (२) छोड़ सकता है । 'परंतु पनु राउ न तजई ।' मा० १.२२२.४

तजउँ : आ०उए० । छोड़ता-ती हूं; छोड़ सकता-ती हूं । 'तजउँ न नारद कर उपदेसू ।' मा० १.८१.६

तजउ : आ०—आज्ञा, संभावना—प्रए० । वह छोड़ दे (उसे छोड़ देना चाहिए) । 'सो पर नारि······तजउ ।' मा० ५.३८.६

तजत : वकृ०पुं० । छोड़ता, ते । 'तजत बमन जिमि जन बड़ भागी ।' मा० २.३२४

तजन : भकृ० । छोड़ना, छोड़ने को । 'तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ।' मा० २.६४.३

तजब : भकृ०पुं० । छोड़ना (चाहिए) । 'तजब छोभु ।' मा० २.६९.५

तजहिं, हीं : आ०प्रब० । छोड़ते हैं । 'जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना ।' मा० २.८१.७

तजहि : आ०—प्रार्थना, आज्ञा—मए० । तू छोड़ दे । 'सुंदरि तजहि संसय महा ।' मा० ६.६६ छं०

तजहु : आ०मब० । (१) छोड़ो । 'संसय तजहु गिरीस ।' मा० १.७० (२) छोड़ देते हो । 'तुम्ह तजहु त काह बसाइ ।' मा० २.७१

तजा : भूकृ०पुं० । छोड़ा । 'राज तजा सो दूषन काहीं ।' मा० १.११०.६

तजि : पूकृ० । छोड़कर । 'तब तजि दोष गुनहिं मनु राता ।' मा० १.७.१

तजिअ, ए, तजिय, ये : आ०-कवा०प्रए० । छोड़िए, छोड़ दिया जाय, छोड़ना चाहिए । 'नीति न तजिअ राजपदु पाएँ ।' मा० २.१५२.३ 'तुलसी तजिय कुचालि ।' कृ० ४६ 'तजिये ताहि कोटि बैरी सम ।' विन० १७४.१

तजिहउँ : आ०भ०उए० । छोड़ूंगा-गी । 'तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू ।' मा० १.६४.७

तजी : भूकृ०स्त्री० । छोड़ी । 'तजी समाधि संभु अबिनासी ।' मा० २.६०.२

तजु : आ०-आज्ञा-मए० । तू छोड़ । 'तजु संसय भजु रामपद ।' मा० १.११५

तजें : छोड़ने से, पर । 'प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ ।' मा० ३.२३.४

तजे : भूकृ०पुं०ब० । छोड़ दिये । 'निमि तजे दिगचल ।' मा० १.२३०.४

तजेउँ : आ०-भकृ०पुं०+उए० । मैंने छोड़ा । 'सो तनु तजेउँ ।' मा० ७.१०६ ख

तजेउ : भूकृ०पुं०कए० । छोड़ा, छोड़ गया । 'कोउ न मान मद तजेउ निबेही ।' मा० ७.७१.१

तजेहि : छोड़ने से-में-पर ही । 'हरि बियोग तनु तजेहि परम सुख ।' कृ० ५६

तजेहु : आ० (१) भूकृ०पुं०+मब० । तुमने छोड़ा-छोड़े । 'मम हित लागि तजेहु पितु माता ।' मा० ६.६१.४ (२) भवि०+प्रार्थना+मब० । तुम छोड़ना । 'सेवक जानि तजेहु जानि तजेहु जनि नेहू ।' मा० ३.६.३

तजैंगे : आ०भ०पुं०प्रब० । छोड़ देंगे । 'अंतहु तोहि तजैंगे पामर ।' विन० १९८.३

तजै : तजइ । (१) छोड़ता है । 'मीन जल बिनु तलफि तनु तजै ।' कृ० ५४ (२) छोड़े, छोड़ सके । 'चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुं तजै मति मोरि ।' मा० ३.४ (३) तजहि । तू छोड़ता है । 'तू न तजै अब ही ते ।' विन० १९८.३

तजौं : तजउँ । छोड़ दूं । 'भागौ तुरत तजौं यह सैला ।' मा० ४.१.५

तज्ञ : तग्य । विन० १२.५

तज्यौ : तजेउ । 'हौं तज्यौ लखन सो भ्राता ।' गी० ६.७.२

तट : सं०पुं० (सं०) । तीर, किनारा । मा० ३.२३.७

तटन्हि : तट+संब० । तटों (पर) । 'डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं ।' मा० ७.२३.६

तटिनी : सं०स्त्री० (सं०) । नदी । कृ० २०

तड़ाग; गा : सं०पुं० (सं० तटाक=तडाग) । ताल, सरोवर । मा० ७.३१.७ ७.२३.१०

तड़ागु : तड़ाग+कए० । वह एक सरोवर । 'बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे ।' मा० १.२२७

तड़ित : सं०स्त्री० (सं० तडित्) । बिजली । मा० १.१४७

तत्, द् : सर्वनाम (सं०) । वह, उसे । मा० ७.१३० श्लो० १

ततकाला : क्रि०वि० (सं० तत्काल) । उसी समय, तत्क्षण, तुरन्त । 'मज्जन फलु पेखिअ ततकाला ।' मा० १.३.१

तत्पर : वि० (सं०) । उसी एक में संलग्न । मा० ४ श्लो० १

तत्र : क्रि०वि० अव्यय (सं०) । वहाँ । 'यत्र हरि तत्र नहि भेदमाया ।' विन० ४७.५

तत्रैव : (तत्र+एव—सं०) । वहीं, वहाँ ही । विन० ५७.५

तत्त्व : सं०पुं० (सं०) । (१) निष्कर्ष, सार, मर्म । 'तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोर ।' मा० ५.१५ (२) रहस्य, अन्तर्निहित वस्तु स्वरूप । 'गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं ।' मा० १.११०.२ (३) सांख्य भाव जो सर्वान्तिर्यामी हो । 'वेद तत्त्व नृप तव सुत चारी ।' मा० १.१९८.१ (५) वैष्णव दर्शन में तीस तत्त्व—दे० तत्त्व विभाग ।

तत्त्वदरसी : वि०पुं० (सं० तत्त्वदर्शिन्) । तत्त्व द्रष्टा, मर्मज्ञ, विश्व रहस्य का ज्ञाता, ब्रह्मज्ञानी । विन० ४७.६

तत्त्वाबिभाग : सांख्यशास्त्र के २५ तत्त्वों का वर्गीकरण—प्रथमत: प्रकृति और पुरुष (चेतन तत्त्व) ; फिर प्रकृति का परिणाम महत्तत्त्व (बुद्धि); उसका विकार अहंकार । प्रकृति और पुरुष अव्यक्त तत्त्व हैं । प्रकृति के विकारों से व्यक्ततत्त्व बनते हैं । जो २३ हैं जिनमें से दो ऊपर आ चुके हैं । अहंकार के सात्त्विक (वैकृत), राजस (तैजस) और तामस (भूतादि) भेद होते हैं जिनसे आगे के २१ परिणाभ बनते हैं—राजस या तैजस अहंकार शेष दोनों के साथ रहता है । सात्त्विक+राजस से ११ तत्त्वों का परिणाम होता है—मन, ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक तथा कर्मेन्द्रियपञ्चक । तामस+तैजस अहंकार से पाँच तन्मात्र (शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्ध) परिणत होते हैं जिन्हें सूक्ष्मभूत कहा गया है । इन्हीं सूक्ष्म भूतों का परिणाम स्थूल महाभूत हैं—आकाश, तेज, जल, वायु और पृथ्वी । 'बरनहिं तत्त्वबिभाग ' मा० १ ४४ वैष्णव दर्शन में ईश्वर काल, कर्म, गुण और स्वभाव मिलाकर ३० तत्त्व हैं । मा० ७.२१

तत्त्वमय : वि० (सं०) तत्त्व स्वरूप, निगूढ रहस्यरूप (ब्रह्मस्वरूप) । 'जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा ।' मा० १.२४२.४

तथा : क्रि०वि० अव्यय (सं०) । उस प्रकार, वैसे । मा० १.११४.४

तथापि : क्रि०वि० अव्यय (सं०) । उस प्रकार से भी, फिर भी, वैसे भी । मा० १.१६४.८

तदपि : (तद्+अपि—सं०) तो भी, तथापि । मा० १.६.६

तद्भ्रात : उसका भाई। विन० ५८.३

तद्यपि : तदपि (यद्यपि के सादृश्य पर बनाया हुआ शब्द) । 'परम प्रबल रिपु सीस पर तद्यपि सोच न त्रास ।' मा० ६.१०

तन : (१) तनु (फा०) । शरीर । मा० १.१.३ (२) अव्यय । ओर, प्रति । 'चितइ जानकी लखन तन ।' मा० २.१००

तनक : वि० (सं० तृणक) । स्वल्प, तुच्छ । 'बातहू केतिक तिन तुलसी तनक की ।' कवि० ७.२०१

तनको : तनक भी, थोड़ा-सा भी । 'जाग न बिराग त्याग तीरथ न तनको ।' कवि० ७.७७

तनयँ : तनय ने, पुत्र ने । 'तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे ।' मा० ५.२२.५

तनय : सं०पुं० (सं) । पुत्र । मा० १.८८.१

तनरुह : तनोरुह (सं० तनुरुह) । रोम, रोएँ । गी० १.१.२

तनाए : भूकृ०पुं०ब० (सं० तानित>प्रा० तणाविय) । फैलाए, विस्तार में लगवाये । 'धुजा बितान तनाए ।' गी० १.६.६

तनियाँ : सं०स्त्री० (सं० तनी) । (१) परिधान कसने-बाँधने का सूत्र, कमरबंद आदि । 'कटि किंकिनी कलित पीत पट तनियाँ ।' गी० १.३४.२ (२) करधनी, कटिसूत्र । 'तनियाँ ललित कटि ।' कृ० २

तनी : भूकृ०स्त्री० । विस्तृत की, फैलायी । गी० ७.५.५

तनु : तन+कए० । शरीर । 'प्रिय तनु तून इव परिहारेउ ।' मा० १.१६ (२) सं०स्त्री० (सं०) । शरीर । 'बिष्नु जो सुर हित नर तनु धारी ।' मा० १.५१.१

तनुजा : सं०स्त्री० (सं०) । पुत्री । मा० १.१७८.२

तनूज : सं०पु० (सं०) । पुत्र ।

तनूजो : पुत्र भी । 'पाल्यो ज्यों काहुं न बाल तनूजो ।' कवि० ७.५ (तनू=शरीर से जना हुआ भी)

तनै : तनय । पुत्र । 'भए राजहँस बायस तनै ।' गी० ५.४०.३

तनोतु : आ०—प्रार्थना—प्रए० (सं०) । करे, फैलाए । मा० ३.११.१६

तनोरुह : सं०पुं० (सं० तनूरुह, तनुरुह) । रोम । मा० ७.५.३

तप : (१) तपइ । 'रबि तप जेतनेहि काज ।' मा० ७.२३ (२) सं०पुं० (सं० तपस्) । तपस्या, साधना । 'भृगुपति गए बनहि तप हेतू ।' मा० १.२८५.७ (३) (सं० तप) ग्रीष्म । 'बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा ।' मा० ७.९०.५ (तप=तपस्या+ग्रीष्म)

✓**तप तपइ** : (१) (सं० तपति—तप दाहे>प्रा० तप्पइ—जलाना) (२) सं० तपति, तप्यते—तप सन्तापे>प्रा० तप्पइ—तचना, सन्तप्त होना, जलना) आ०प्रए० । जलता है, तचता है । 'तपइ अवाँ इव उर अधिकाई ।' मा० १.५८.४

तपत : (१) वकृ०पुं० । जलाता, दाहक तेज फेंकता । 'काल करम गुन सुभाउ सब के सीस तपत ।' विन० १३०.३ (२) तचता, जलता । 'तुलसी तपत तिहु ताप जग ।' गी० १.५.६ (३) (सं० तप्त) । तचा हुआ, गर्म, तपाया हुआ । 'बारिद तपत तेल जनु बरिसा ।' मा० ५.१५.३

तपन : सं०पुं० (सं०) । सूर्य । विन० ५५.४

तपनि : सं०स्त्री० । तपने की क्रिया, दाह, सन्ताप । 'तुलसी कोटि तपनि हरै ।' वैरा० २१

तपसानल : तपस्या रूपी अग्नि । कवि० ७.५५

तपसालि : वि०पुं० (सं० तपः शालिन्) । तपस्वी । मा० १.३३०

तपसिन्ह : तपसी+संब० । तपस्वियों । 'मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीति ।' मा० ५.४१.५

तपसी : वि०पुं० (सं० तपस्वी) । तपस्या करने वाला । मा० ७.१०१ छं०

तपस्या : सं०स्त्री० (सं०) । समाधि आदि की निष्ठा के साथ कठोर संयम जीवन-चर्या ।' मा० १.७८.१

तपस्वी : तपसी (सं०) । तापस । विन० ५५.४

तपहिं : तप में । 'बिसरी देह तपहिं मनु लागा ।' मा० १.७४.३

तपिहै : आ०भ०मए० । तू तपेगा, सन्तप्त होगा । 'तौ लौं तू कहूं जाय तिहूं ताप तपिहै ।' विन० ६८.१

तपी : वि०पुं० । तपस्वी । 'द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी ।' मा० ७.१०१ छं०

तपु : तप+कए० । वही एकमात्र तपश्चर्या । 'करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू ।' मा० १.७२.२

तपोधन : वि० (सं०) । तपस्ती (जिसका तप धन धन है) । मा० १.१०५

तप्त : भूकृ०वि० (सं०) । तपा हुआ । 'तप्त कांचन ।' विन० ५०.२

तब : अव्यय । उस समय । मा० १.७.१

तबहिं, हीं : तभी, उसी समय । मा० १.७७.८

तबहुं, हूं : तब भी, उस समय भी । मा० १.१२७.८

तम् : सर्वनाम (सं०) । उसे, उसको मा० १.श्लोक ६

तम : सं०पुं० (सं० तमस्) । (१) अन्धकार । 'सम प्रकास तम पाख दुहुं । मा० १.७ ख (२) प्रकृति के तीन गुणों में अन्यतम=तमोगुण । (३) अविद्या, अज्ञान, अविवेक । 'जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी ।' मा० ७.११७.७

तमकि : पूकृ० । तमतमाकर, आवेशयुक्त होकर, क्रुद्ध होकर । 'तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप ।' मा० १.२५०

तमकूप : सं०पुं० (सं० तमःकूप=अन्धकूप) । अन्धा कुआ, इतना गहरा कि उसके भीतर कुछ सूझता न हो (२) अज्ञान रूपी कूप । 'पर्‌यो भीम तम-कूप ।' विन० १४४.५

तमकूपक : तमकूप ।

तमके : भूकृ०पुं०ब० । तमतमा उठे, रोषावेश से भर गये । 'तमके घननाद से बीर पचारि कै ।' कवि० ६.१५

तमक्यो : भू०कृपुं०कए० । तमतमा उठा, रोषाविष्ट हुआ । 'दुसासन दुरजन तमक्यो तकि दुहुं कर गहि सारी ।' कृ० ६०

तमचुर : सं०पुं० (सं० ताम्रचूड>प्रा० तंब चूड) । मुर्गा, कुक्कुट (पक्षिविशेष) । गी० १.३६.१

तमतोम : सं०पुं० (सं० तमःस्तोम>प्रा० तमत्थोम) । अन्धकार समूह । गी० १.१६.३

तमपर : वि० (सं० तमःपर) । अन्धकार, अविद्या तथा तमोगुण से परे—त्रिगुणातीत, मायातीत । विन० ५५.४

तमसा : सं०स्त्री० (सं०) । नदीविशेष । मा० २.८४

तमाइ : सं०स्त्री० (अरबी—तमअ=ख्वाहिश, लालच) । लोभ, इच्छा । 'लोक परलोक को बिसोक सो तिलोक, ताहि तुलसी तमाइ कहा काहू बीर बान की ।' हनु० १३

तमारि, री : सं०पुं० (सं० तमोरि) । अन्धवार का शुभ=सूर्य । मा० २.८६; २७२.४

तमाल : सं०पुं० (सं०) । वृक्षविशेष जिसकी शाखाएँ नीली होती हैं । मा० २.११५.६

तमाला : तमाल । नील जलज तनु स्याम तमाना ।' मा० १.२०९.१

तमी : सं०स्त्री० (सं०) । रात्रि । मा० ५.४७.३

तमीचर : निशाचर । मा० ६.७४ ख

तये : तए ।

तयो, यो : भूकृ००पुं०कए० (सं० तप्तः>प्रा० तविओ) । सन्तप्त । 'तयो है तिहूं ताव रे ।' हनु० ३७

तर : सं०+क्रि०वि० (सं० तल) । नीचे, निचला भाग । 'प्रभु तरु तर कपि डरि पर ।' मा० १.२९ क (२) समीप, सामने । 'अब न आँखि तर आवत कोऊ ।' मा० १.२९३.५ (३) नीचे=में । 'पर्नकुटी तर बैठे हैं ।' कवि० ३.१ (४) अल्प, अवर, लघु । 'पुन्य सिलोक तात तर तोरें ।' मा० २.२६३.६ (५) अधीनता में, वश में । 'सो कि बंध तर आवइ ।' मा० ६.७३ (६) तरइ । पार करता है । 'भव निधि तर नर बिनहिं प्रयासा ।' मा० ७.५५.९ (७) (अतिशयार्थक संस्कृत प्रत्यय) अधिक, बढ़कर । 'होहिं बिषयरत मंद मंद तर ।' मा० ७.१२१.११

तरंग, गा : (१) सं०स्त्री० (सं० तरङ्ग—पुं०)। लहर। मा० १.३२.१४ (२) स्वर-लहरी। 'करहिं गान बहु तान तरंगा।' मा० १.१२६.५ (३) उल्लास। 'नाचहिं नाना रंग तरंग बढ़ावहिं।' पा०मं० ९३

तरंगिनि, नी : सं०स्त्री० (सं० तरङ्गिणी)। नदी। मा० २.३४.१

तरंगी : वि०पुं० (सं० तरङ्गिन्)। मानसिक तरंगों वाला, उल्लासयुक्त, स्वतन्त्र, सनकी, नशे में धुत्त। 'परम तरंगी भूत सब।' मा० १.९३

तरंति : आ०प्रब० (सं० तरन्ति>प्रा० तरंति) पार करते हैं। 'दुस्तरं तरंति ते।' मा० ७.१२३ श्लोक १

✓**तर तरइ** : (सं० तरति—तॄ पल्वन-तरणयोः>प्रा० तरइ—उतरना, उतराना, आल्पावित होना, पार जाना, तैरना) आ०प्रए०। पार जाता है। 'गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई।' मा० ७.९३.५

तरउँ, ऊँ : आ०उए०। पार करूँ। 'प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ।' मा० ३.२३.४

तरक : सं०स्त्री० (सं० तर्क—पुं०)। (१) युक्ति। 'तासु तरक तिय गन मन मानी।' मा० २.२२२.५ (२) अनुमान। 'मन महुं तरक करै कपि लागा।' मा० ५.६.२ (३) वाद-विवाद, सन्देहवाद, वितर्क—दे० तरका

तरकस : सं०पुं० (फा० तरकश)। तूणीर, तीर रखने का चोंगा। मा० २.१९०

तरकसी : छोटा तरकस। गी० १.४२.२

तरका : तरक। विवाद। 'दूषहिं श्रुति करि तरका।' मा० ७.१००.४

तरकि : पूकृ०। (१) तर्क कर, युक्ति लगा (कर)। 'तरकि न सकहिं सकल अनुमानी।' मा० १.३४१.७ (२) तड़क कर, कूदकर। 'तरकि चढ़ेउ कपि खेल।' मा० ६.४३

तरकी : भूकृ०स्त्री०। तर्क की (हुई), युक्ति या अनुमान से जानी (हुई)। 'प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी।' मा० २.२८९.५

तरकेउ : भूकृ०पुं०कए०। तड़क गया, फांद गया। 'तरकेउ पवन तनय बल भारी।' मा० ५.१.६

तरजत : तर्जत।

तरजति : वकृ०स्त्री०। डाँटती। 'तरजनिन्ह तरजति।' कृ० ११

तरजनिन्ह : तरजनी+सं०ब०। तर्जनियों से (कई वार तर्जनी अँगुली चमकाने से)। 'गरजति कहा तरजनिन्ह तरजति।' कृ० ११

तरजनी : सं०स्त्री० (सं० तर्जनी)। हाथ के अँगूठे के पास की अँगुली (जिससे तर्जन किया जाता है)। मा० १.२७३.३

तरजि : पूकृ०। तर्जन करके, डाँटकर, भय दिखाकर। 'उपल बरषि गरजत तरजि।' दो० २८३

तरजिए, ये : आ०कवा०प्रए० । डाँटिए । 'सरुष बरजि तरजिये तरजनी कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है ।' विन० १३६.८

तरत : वकृ०पुं० । पार करता-करते । 'यह लघु जलधि तरत कति बारा ।' मा० ६.१.१

तरन : (१) संपुं० (सं० तरण) । पार जाना । 'सिंधु तरन कपि गिरि हरन ।' दो० ४४५ (२) वि०पुं० । पार करने वाला । 'होत तरन तारन नर तेऊ ।' मा० २.२१७.४ (३) भकृ० अव्यय (सं० तर्त्तुम् > प्रा० तरिउं > अ० तरण) । पार करना । 'भव सागर चाहै तरन ।' विन० १७३.६ (४) सं०पुं०—नौका । गी० ५.४३.५

तरनि : (१) सं०पुं० (सं० तरणि) । सूर्य । 'तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ।' मा० २.२६५.७ (२) सं०स्त्री० । नाव । 'हथवाँसहु बोरहु तरनि ।' मा० २.१८६

तरनिउ : नाव भी । 'तरनिउ मुनि घरनी होइ जाई ।' मा० २.१००.६

तरनी : तरनि । (१) सूर्य । 'भे पुनीत पातक तम तरनी ।' मा० २.२४८.१ (२) नाव । 'करउँ कथा भव सरिता तरनी ।' मा० १.३१.४ (३) पार करने वाली ।

तरनु : तरन+कए० । पार जाना । 'सेत सागर तरनु भो ।' कवि० ६.५६

तरपन : सं०पुं० (सं० तर्पण) । देवों तथा पितरों को जल देने की धार्मिक क्रिया । मा० २.१२६.७

तरपहिं : आ०प्रब० । तड़पते हैं; बिजली की फुर्ती से गति लेते हैं । 'अति तरल तरुन प्रताप तरपहिं ।' मा० ६.४१ छं०

तरल : वि० (सं०) । चञ्चल, फुर्तीला, वेगशील । 'अस कहि तरज त्रिसूल चलायो ।' मा० ६.७४.६ (२) द्रवीभूत ।

तरवारि : सं०स्त्री० (सं०) । तलवार । मा० २.३१.१

तरसत : वकृ०पुं० (सं० तर्षत् > प्रा० तरिसंत) । तृषाकुल होता-ते । इच्छापूर्ति के बिना क्लेश पाते । 'हम पँख पाइ पींजरन तरसत ।' गी० २.६६.४

तरस्यौ : भूकृ०पुं०कए० (सं० तृषितः > प्रा० तरिसिओ) । तृष्णाकुल हुआ, ललचाया । 'त्यों रघुपति पद पदुम परस को तनु पातकी न तरस्यौ ।' विन० १७०.४

तरहिं, हीं : आ०प्रब० (सं० तरन्ति > प्रा० तरंति > अ० तरहिं) । पार करते हैं । 'तरहिं भव प्रानी ।' मा० ७.१०३.१ 'भव बारिधि गोपद इव तरहीं ।' मा० १.११६.४

तरहि : आ०मए० । तू पार जा । 'तुलसीदास भव तरहि ।' वि० २३७.५

तराक : तड़-तड़ ध्वनि के साथ । 'बैठो तोरि तरकि तराक हौं ।' हनु० ४०

तरि : (१) पूकृ०। पार कर, तैर (कर)। 'तरि सकै सरित सनेह की।' मा० २.२७६ छं० (२) सं०स्त्री० (सं०)। छोटी नाव। 'बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरि बिनु बेरे।' विन० २७३.२

तरिअ, ए : आ०कवा०प्रए० (सं० तीर्यते>प्रा० तरीअइ)। पार किया जाय। 'केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा।' मा० ५.५०.५

तरित : क्रियाति०। तरता, पार पाता। 'घोर भव अपार सिंधु तुलसी किमि तरित।' विन० १९.३

तरिबे : भकृ०पुं०। पार करने (योग्य)। 'नेह निधि निज भुजबल तरिबे हो।' कृ० ३९

तरिय, ये : तरिअ। 'पर हित कीन्हें तरिये।' विन० १८६.३

तरिहउँ : आ०भ०उए० (सं० तरिष्यामि>प्रा० तरिहिमि>अ० तरिहिउँ। तरूँगा, पार करूँगा। 'पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ।' मा० ७.१८.७

तरिहहिं : आ०भ०प्रब०। पार करेंगे। 'गाइ गाइ भव निधि नर तरिहहिं।' मा० ६.६६.३

तरिहि : आ०भ०प्रए० (सं० तरिष्यति>प्रा० तरिहिइ=तरिही)। पार करेगा-गी। 'बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि।' मा० ५.५० 'सो श्रम बिनु भव सागर तरिही।' मा० ६.३.४

तरिहैं : तरिहहिं। पार जायँगे। 'ते कुल जुगल सहित तरिहैं भव।' गी० १.१६.४

तरी : भूकृ०स्त्री०। पार गई, तर गई। 'जे पद परसि तरी रिषि नारी।' मा० ५.४२.६

तरीवन : सं०पुं०। तर्योना, कान का बाला, कर्णाभरणविशेष। रा०न० ११

तरु : सं०पुं० (सं०)। वृक्ष। मा० १.२९ क

तरुजीबी : वि० (सं० तरुजीविन्)। वृक्ष व्यवसायी। दो० ३४१

तरुन : वि०पुं० (सं० तरुण)। (१) युवक। 'तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी।' मा० ४.२९.८ (२) प्रौढ़, पुष्ट, प्रखर।। 'तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई।' मा० २.२३२.१ (३) विकसित, पूर्ण विकास युक्त। तरुन अरुन अंबुज सम चरना।' मा० १.१०६.७

तरुनतर : अत्यन्त तरुण। विन० २१८.२

तरुनता : सं०स्त्री० (सं० तरुणता)। जवानी। विन० १६४.७

तरुनाई : तरुनता। मा० ४.२८.२

तरुनि : तरुनी। दो० ४३८

तरुनी : वि०स्त्री० (सं० तरुणी)। युवती। मा० १.११.२

तरुवर : श्रेष्ठ वृक्ष। मा० २.११९.८

तरुवरन्ह : तरुवर+संब० । तरुवरों । 'जिन्ह तरुवरन्ह मध्य बटु सोहा ।' मा० २.२३७.३

तरु : तरु । मा० ७.१२१.१६

तरे : भूकृ०पुं०ब० । (१) तैरे, उतराये । 'सिंधु तरे पाषान ।' मा० ६.३ (२) उतर गये, पार पा गये । 'खल नर तरे ।' विन० २११.१

तरेरी : पूकृ० । तरेर कर, अमर्षपूर्वक तिरछा करके । 'कहत दसानन नयन तरेरी ।' मा० ६.२२.३

तरेरे : भूकृ०पुं०ब० । (१) वक्र किये । 'नयन तरेरे राम ।' मा० १.२७८ (२) वक्र किये हुए (मुद्रा में) । 'खिझे तें डाटत नयन तरेरे ।' कृ० ३

तरैं : तरइ । पार जाय । 'जो न तरैं भवसागर ।' मा० ७.४४

तरैंगी : आ०भ०स्त्री०प्रए० । तर जायगी । 'गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैंगी मेरी ।' कवि० २.८

तरो : (१) तर्यो । 'कपि कटक तरो ।' विन० २२६.४ (२) आ०—संभावना—प्रए० (सं० तरतु>प्रा० तरउ) । तर जाय, पार उतर जाय । 'राम नाम बोहित, भव सागर चाहै तरन तरो सो ।' विन० १७३.६

तरौं : तरउँ । पार कर जाऊँ । 'गोपद ज्यों भवसिंधु तरौं ।' विन० १४१

तर्क : सं०पुं० (सं०) । (१) उलझी युक्ति । 'खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई ।' मा० ७.५९.२ (२) न्याय में अपुष्ट अनुमान । 'दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई ।' मा० ७.४६.८ (३) आनुमानिक कल्पना । 'रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी ।' मा० ६.७४.२ (४) युक्ति ।

तर्कि : पूकृ० । तर्क द्वारा ज्ञात कर ; 'तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी ।' मा० ६.७४.१

तर्जत : वकृ०पुं० । डाँटता-डराता । 'गर्जत तर्जत सन्मुख धावा ।' मा० ६.९०.२

तर्जन : वि०पुं० । तरजने वाला । भय दिखाने वाला । मा० ३.११.१३

तर्जहिं, हीं : आ०प्रब० । डाँटते-डराते हैं । मा० ३.१८.८; ५.३ छं० २

तर्जा : भूकृ०पुं० । तर्जन किया, डाँटा । 'बाली अति तर्जा ।' मा० ४.८.२

तर्पन : तरपन । दो० ३०४

तर्यो : भूकृ०पुं०कए० । (सं० तीर्णः>प्रा० तरिओ) । तर गया । 'मुनि मुनि लोक तर्यो ।' विन० २३९.२

तर्ष : सं०पुं० (सं०) । तृषा, तृष्णा, वासना, विषय-लालसा, तरसना । 'तम तर्ष गण···विच्छेदकारी ।' विन० ५७ ७

तल : सं०पुं० (सं०) । (१) चौरस भाग, ऊपरी भाग । 'परेउ धरनि तल सुधि कछु नाहीं ।' मा० ६.८३.७ (२) प्रदेश । 'नभ तल ।' हनु० ५ (३) अधोभाग । 'काम तून तल सरिस जानु जुग ।' गी० ७.१७.५ (४) पर, में, नीचे (दे० तर) । 'सकल सिद्धि करकमल तल ।' रा०प्र० ६.४.१

तलफत : वकृ०पुं० (अरबी—तलफ़=हलाक)। छटपटाता, तिलौंछता, तिलमिलाता, तड़फड़ाता। 'तलफत मीन पाव जिमि बारी।' मा० ५.२८.५

तलफति : वकृ०स्त्री०। (आँच में) छटपटाती, खोलती। 'कनक कराही लंक तलफति ताय सों।' कवि० ५.२४

तलफि : पूकृ०। तड़फड़ा कर, छटपटा कर, (मरणासन्न) तिलमिलाकर। 'मीन जल बिनु तलफि तनु तजै।' कृ० ५४

तलईं : तलाई+ब०। तलैयाँ, पोखरियाँ। 'संगम करहिं तलाव तलाईं।' मा० १.८५.२

तलाव, वा : सं०पुं० (सं० तडाग>प्रा० तलाय)। ताल, पोखर, जलाशय। 'बन सागर सब नदीं तलावा।' मा० १.६४.४

तलु : तल+कए०। 'जगती तलु।' विन० २४.६

तल्प : सं०पुं० (सं०)। शय्या। विन० ५४.६

तव : सम्बन्धार्थक सर्वनाम (सं०)। तेरा-तेरी-तेरे। मा० १.५१.६

तवा : सं०पुं० (सं० तपक>प्रा० तवअ)। लेहि आदि का छिछला पात्रविशेष। 'तुलसी यह तनु तवा है, तपत सदा त्रयताप।' वैरा० ६

तवानन : तेरा मुख। मा० ७.५२ ख

तस : वि०पुं० (सं० तादृश>प्रारिस>अ० तइस)। वैसा। 'जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छन होइ।' मा० १.१२४

तसकर : सं०पु० (सं० तस्कर)। चोर। विन० १२५.८

तसि : बि००स्त्री० (सं० तादृशी>अ० तइसी=तइसि)। वैसी। 'तसि पूजा चाहिअ जस देवता।' मा० २.२१३.७

तहँ : अव्यय (सं० तत्र>प्रा० तहिं, तहं)। वहाँ। मा० १.५५.१

तहँइँ : वहाँ ही। 'तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू।' मा० २.७४.३

तहँउँ : तहँहुं। 'तहँउँ तुम्हार अलप अपराधू।' मा० २.२०७.७

तहँहुं : वहाँ भी। 'तहँहुं सती संकरहि बिबाहीं।' मा० १.६८.६

तहवाँ : तहँ। वहाँ। 'बहुरि मातु तहवाँ चलि आई।' मा० १.२०१.४

तहसनहस : नष्ट-भ्रष्ट, सत्यानास। कवि० ५.२

तहाँ : तहँ। मा० १.१३.२

तहिआ : क्रिवि० अव्यय (सं० तदा>प्रा० तइआ)। तब। 'धरिहहिं बिस्नु मनुज तनु तहिआ।' मा० १.१३९.६

तहीं : तहँइँ। वहीं। 'जाब जहँ पाउब तहीं।' मा० १.९७ छं०

तहूं : (१) तहँउँ। वहाँ भी। 'खेलउँ तहूं बालकन्ह मीला।' मा० ७.११०.४ (२) तू भी। 'तहूँ बंधु सम बाम।' मा० १.२८२

ताँति, ताँती : सं०स्त्री० (सं० तन्त्री>प्रा० तंती)। तारों वाला वाद्य=वीणा आदि। 'बाज सुराग कि गाँड़र ताँती।' मा० २.२४१.६

ता : 'त' सर्वनाम का रूपान्तर। उस। 'ता कहँ यह बिसेष सुखदाई।' मा० ७.१२८.८ ताको, तातें, तासो, ताकी, तामहिं आदि परसर्गीय प्रयोग द्रष्टव्य हैं।

तांडव : सं०पुं० (सं०)। उद्धत नृत्य, उग्र नर्तन (जो शिव के लिए प्रसिद्ध है)

तांडवित : वि० (सं०)। ताण्डवयुक्त। विन० १०.५

तांबूल : सं०पुं० (सं०)। पान। विन० ४७.३

ताइ : पूकृ० (सं० तापयित्वा=प्रा० ताविअ>अ० तावि)। तपा कर, आँच देकर (खरी परीक्षा लेकर)। 'और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत।' कवि० ७.२४

ताउ : ताय+कए०। ताव, रोषावेश। 'भृगुनाथ खाइ गए ताउ।' विन० १००.५

ताए : भूकृ०पुं०ब०। (सं० तापित>प्रा० ताइय=ताविय)। तचाए हुए, सन्तापित, क्लेशित। 'नाथ बियोग ताप तन ताए।' मा० २.२२६.४

✓**ताक, ताकइ** : तकइ। देखता है, बिचारता या चाहता है। 'ताकै जो अनर्थ सो समर्थ एक आँक को।' हनु० १२

ताकत : (१) वकृ०पुं०=तकत। देखता, देखते। (२) सं०स्त्री० (अरबी—ताकत) शक्ति। 'उपमा तकि ताकत है कबि कौं की।' कवि० ७.१४३

ताकर : (ता+कर) उसका। मा० १.१९७.७

ताकहिं : तकहिं। देखते हैं, लक्ष्य करते। 'जे ताकहिं पर धन पर दारा।' मा० २.१६८.३

ताका : भूकृ०पुं० (सं० तर्कित>प्रा० तक्किअ)। देखा, लक्ष्य किया, सोचा-बिचारा, चाहा। 'जस कौसिलाँ मोर भल ताका।' मा० २.३३.८

ताकि : तकि। लक्ष्य करके, सोच-समझकर। 'तमकि ताकि तकि सिव धनु धरहीं।' मा० १.२५०.७

ताकिसि : आ०—भूकृ०स्त्री०+प्रए०। उसने लक्षित की, निश्चित की। 'तब ताकिसि रघुनायक सरना।' मा० ३.२६.५

ताकिहै : आ०भ०प्रए०। ताकेगा, घूर कर देखेगा। 'ताकिहै तमकि ताकी ओर को।' विन० ३१.१

ताकी : (१) ताकि। मा० २.२२८.४ (२) (ता+की) उसकी। 'कौन ताकी कानि।' विन० २१५.२

ताकें : (१) (सं० तर्कितेन>प्रा० तक्किएण>अ० तक्किएँ) ताकने से। 'जिमि गज हरि किसोर के ताकें।' मा० १.२९३.४ (२) (ता+कें) उसके प्रति, उसके लिए। 'मंगल सगुन सुगम सब ताकें।' मा० १.३०४.१

ताके : (१) (ता+के) उसके। 'ताके जुग पद कमल मनावउँ।' मा० १.१८.८ (२) भूकृ०पुं०ब०। देखे, लक्षित किये। 'सरन को समरथ तुलसिउ ताके हैं।' गी० १.६४.४

ताकेउ : तकेउ । लक्ष्य किया । 'ताकेउ हर कोदंडु ।' मा० १.२५९

ताकै : ताकइ

ताको : (१) आ०—आज्ञा—मए० । देखो । 'साखी बेद पुरान हैं, तुलसी तन ताको ।' विन० १५२.१३ (२) (ता+को) उसका । 'तहँ ताको काज सरो ।' विन० २२६.५

ताग : सं०पुं० (प्रा० तग्ग) । धागा, सूत्र, डोरा । मा० १.११

ताज : सं०पुं०+स्त्री० (फा०) । मुकुट, टोपी । 'मानो खेलवार खोली सीस ताज बाज की ।' कवि० ६.३०

ताजी : सं०पुं० (सं० ताजीय) । ताज देश का घोड़ा, तुर्की या ईरानी अश्व । मा० ३.३८.६

ताटंक : सं०पुं० (सं०) । तरकी, कर्णाभरण, कर्णपूर । मा० ६.१३ क

ताटंका : ताटंक । मा० ६.१३.६

ताड़का : सं०स्त्री० (सं०) । एक राक्षसी जो सुबाहु और मारीच की माता थी । मा० १.२०९.५

ताड़त : वकृ०पुं० (सं० ताडयत्>प्रा० ताडंत) । ताड़न (प्रहार) करता-ते । मा० ३.३४.१

ताड़न : सं०पुं० (सं०) । प्रहार, पीटना । 'उर ताड़न बहु भाँति पुकारी ।' मा० ६.७७.७

ताड़ना : सं०पुं० (सं०) ताड़ना । 'उर ताड़ना करहिं ।' मा० ६.१०४.४ थाप या ताल, करतल प्रहार; फटकार; प्रशिक्षण परक वाचिक व्यापार; कामशास्त्री प्रहजन—ढोल गँवार सूद्र पसु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी । मा० ५.५९.६

ताड़ुका : ताड़का ।

तात : सं०पुं० (सं०) । (१) पिता । 'तात मात गुर सखा तूं सब बिधि हितु मेरो ।' विन० ७९ (२) सम्मान्य, माननीय । 'बिनती करउँ तात कर जोरें ।' मा० २.९६.१ (३) स्निग्ध जन, प्रिय बन्धु आदि । 'नतरु तात होइहि बड़ दोषू ।' मा० २.७१.५ (४) ममता भाजन । 'तात जाउँ बलि बेगि नहाहू ।' मा० २.५३.१ (५) क्लेशादि सूचक प्रयोग में—बाप—रे—बाप । 'तात तात तौं सिअत ।' मा० ५.१५ (६) वि०पुं० (सं० तप्त>प्रा० तत्त) । उष्ण

तातप्यमाव : वकृ०पुं० (सं०) । बार बार अतिशय सन्ताप पाता हुआ । मा० ७.१०८ छं० १६

ताता : तात । (१) पिता, स्निग्ध, प्रिय, सम्मान्य आदि । 'मागहु बर प्रसन्न मैं ताता ।' मा० १.१७७.२ (२) उष्ण । 'सब जगु ताहि अनल हुंते ताता ।' मा० ३.२.८

ताति : वि०स्त्री० (सं० तप्ता>प्रा० तत्ती>अ० तत्ति) । उष्ण। 'भुइँ तरनिहुं ते ताति ।' विन० २२१.३

तातें · (ता+तें) इससे, इस कारण । 'तातें मैं तेहि बरजउँ राजा ।' मा० १.१६६.१

ताते : (१) तातें । 'ताते मैं अति अलप बखाने ।' मा० १.१२.६ (२) (दे० तात) उष्ण, दाहक । पिय बिनु तियहि तरनिहुंते ताते ।' मा० २.६५.३

तातो : (१) तात+कए० । उष्ण (२) क्रियाति०पुं०ए० । तो सन्तप्त होता । 'तुलसी राम प्रसाद सों तिहुं ताप न तातो ।' विन० १५१.६

तान : सं०पुं० (सं०) । (१) विस्तार (२) संगीत के रागों में स्वरालाप या स्वर विस्तार । 'करहिं गान बहु तान तरंगा ।' मा० १.१२६.५

तानत : वकृ०पुं० । फैलाता, फैलाते । 'लख्यो न चढ़ावत, न तानत, न तोरतहू ।' गी० १.६२.५

तानि : पूकृ० । खींचकर, फैलाकर । 'पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक ।' मा० ६.६६ ५

तानिहैं : आ०भ०प्रब० । खींचेंगे, फैलाएँगे । 'बय किसोर बरजोर बाहुबल मेरु मेलि गुन तानिहैं ।' गी० १.८०.६

तानी : (१) तानि । 'धायउ दसहु सरानन तानी ।' मा० ६.६३.२ (२) आ०भ० प्रए० (सं० तानयिष्यति>प्रा० ताणिटी) । खींचेगा, संधान करेगा । 'कोपि रघुनाथु जब बान तानी ।' कवि० ६.२०

ताने : भूकृ०पुं०ब० । चढ़ाए, फैलाये, खींचे । मा० ६.५०.४

तानेउ : भूकृ०पुं०कए० । ताना, खींचा । 'तानेउ चाप श्रवन लगि ।' मा० ६.६१

तान्यो : तानेउ । विन० ८८.१

ताप : सं०पुं (सं०) । (१) दाह, ऊष्मा । 'नाथ बियोग ताप तन ताए ।' मा० २.२२६.४ (२) त्रिताप । 'तुलसी यह तनु तवा है तपन सदा त्रय ताप ।' वैरा० ६

तापघ्न : वि० (सं०) । सन्ताप-नाशक । विन० ५५.४

तापत्रय : तीन प्रकार के क्लेश— (१) आध्यात्मिक=शारीरिक पीडा आदि तथा मानसिक चिन्ता आदि (आधि-व्याधि); (२) दैविक=शीत, उष्ण आदि; (३) भौतिक=प्राणियों से मिलने वाले दुःख । 'बदन मयंक तापत्रय मोचन ।' मा० १.२१६.६

तापस : वि० (सं०) । तपस्वी । मा० १.२३.३

तापसनि : तापस+संब० । तपस्वियों । 'पालिबी सब तापसनि ज्यों ।' गी० ७.२६.३

तापसीं : तापसी+ब० । तपस्विनियाँ ! कवि० ६.५०

तापसी : तापस+स्त्री० । तपस्विनी । गी० ७.२६.२

तापसु : तापस+कए० । वह तपस्वी । 'जिमि तापसु कथइ उदासा ।' मा० ७.१६२.५

तापह : (दे० ह) तापघ्न । मा० ३ श्लोक १

तापहर : वि० (दे० हर) । ताप हरण करने वाला, तापनाशक । मा० २.२४६.६

तापहिं : आ०प्रब० । तापते हैं, शीत से बचने हेतु अपने को उष्ण बनाते हैं । 'हरे चरहिं तापहिं बरे ।' दो० ५२

तापा : ताप । 'दैहिक दैविक भौतिक तापा ।' मा० ७.२१.२

तामरस : सं०पुं० (सं०) । कमल । मा० ३.११.३

तामरसु : तामरस+कए० । 'परसत तुहिन तामरसु जैसें ।' मा० २.७१.८

तामस : (१) सं०पुं० (सं०) । तमोगुण (अज्ञानकारी प्रकृति का गुण जिससे ज्ञान पर आवरण पड़ जाता है) । 'तामस बहुत रजोगुण थोरा ।' मा० ७.१०४.५ (२) वि०पुं० । तमोगुणी, अज्ञानावरणयुक्त, मोहग्रस्त । 'तामस असुर देह तिन्ह पाई ।' मा० १.१२२.५

तामसो : तामस भी, तमोगुणी भी । 'जाके भजे तिलोक तिलक भए त्रिजग जोनि तन तामसो ।' विन० १५७.४

ताय : सं०पुं० (सं० ताप>प्रा० ताय) । (१) संताप 'दाह, आँच । 'कनक कराही लंक तलफति ताय सों ।' कवि० ५.२४ (२) सन्ताप की अनुभूति, तचन की वेदना । 'तुलसी जागे तें जाय ताप तिहूं-तिहूं ताय रे ।' विन० ७३.४

तायो : भूकृ०पुं०कए० । तचाया, जलाया हुआ । 'ग्रीषम के पथिक ज्यों धरनि तरनि तायो ।' गी० ५.१५.२

तार : ताल (संगीत में) । 'काम करतल तार ।' गी० ७.१८.५

तारक : सं०पुं० (सं०) । (१) नक्षत्र (२) एक असुर जिसे कार्तिकेय ने मारा था (३) आँख की पुतली । 'रुचिर पलक लोचन जुग तारक स्याम ।' गी० ७.१२.१ (४) वि०पुं० (सं०) । तारने वाला, पार पहुंचाने वाला । 'भवतारक ।' विन० १४५.६

तारकमै : वि० (सं० तारकमय) । नक्षत्रों से पूर्ण । 'मनो रासि महातम तारकमै ।' कवि० २.१३

तारकु : तारक+कए० । तारकासुर । मा० १.८२.५

तारति : वकृ०स्त्री० (सं० तारयन्ती>प्रा० तारंती) । आप्लावित करती, भिगोती, धोती । गी० ५.१६.२

तारन : वि० । तारने वाला, पार पहुंचाने वाला । 'होत तरन तारन नर तेऊ ।' मा० २.२१७.४

तारनतरन : (दे० तरन) । पार ले जाने की नौका । 'पाहि कहें काहि कीन्हो न तारनतरन ।' गी० ५.४३.५ (तारनतरन=पार ले जाने वाली नाव=वे स्वयं दूसरों के लिए नाव बन गये ।)

तारय : आ०—प्रार्थना—मए० (सं०)। पार पहुंचाओ। 'तारय संसृति दुस्तर।' मा० ६.११५.६

तारा : (१) सं०पुं० (सं० तारक>प्रा० तारअ)। नक्षत्र। 'अवनि न आवत एकउ तारा।' मा० ५.१२.८ (२) सं०स्त्री० (सं०)। नक्षत्र। 'मंदिर मनि समूह जनु तारा।' मा० १.१९५.६ (३) आँख की पुतली (४) वानर-राज बालि की पत्नी। मा० ४.११.२

तारागन : नक्षत्र समूह। मा० ६.३

तारि : पूकृ०। तार कर, सद्गति देकर। 'सिला तारि पुनि केवट मीत कियो।' गी० ५.४६.२

तारिबो : भकृ०पुं०कए०। तारना (चाहिए)। 'तुलसी औ तारिबो।' कवि० ७.१८

तारिहौ : आ०—भ०—मब०। तारोगे, पार पहुंचाओगे। 'तौ तुलसिहि तारिहौ बिप्र ज्यों।' विन० ९६.३

तारी : (१) भूकृ०स्त्री० (सं० तारिता)। पार पहुंचाई (संसारमुक्त की)। 'राम एक तापस तिय तारी।' मा० १.२४.६ (२) सं०स्त्री० (सं० ताली)। हथेली, हथेली से ताल देने की क्रिया, थपेड़ी। 'बाजहिं ढोल देहिं सब तारी।' मा० ५.२५.७

तारु : आ०—आज्ञा—मए०। तू उतार, (तौल कर तराजू से उतार)। 'पन औ कुवँर दोऊ प्रेम की तुला धौं तारु।' गी० १.८२.३

तारुण्य : सं०पुं० (सं०) तरुनाई। तरुण अवस्था। विन० ५१.१

तारे : (१) भूकृ०पुं०ब० (सं० तारिताः>प्रा० तारिया)। पार पहुंचाये। 'गजादि खल तारे घना।' मा० ७.१३० छं० १ (२) सं०पुं०ब०। आँख की पुतलियाँ। 'एकटक लोचन चलत न तारे।' मा० १.२४४.३ (३) नक्षत्र। 'जनु राकेस उदय भएँ तारे।' मा० १.२४५.१

तारेहु : आ०—भूकृ०पुं०+मब०। तुमने तारे-पार पहुंचाये। 'तौ कत बिप्र ब्याध गनिकहि तारेहु, कछु रही सगाई।' विन० ११२.२

तारो : तारा+कए० (सं० तारकः>प्रा० तारओ>आ० तारउ)। एक नक्षत्र। 'टूटि तारो गगन मग ज्यों होत छिन छिन छीन।' गी० २.५८.२

तार्‌यो : भूकृ०पुं०कए० (सं० तारितः>प्रा० तारिओ)। पार पहुंचाया। 'निज आतमा न तार्‌यो।' विन० २०२.३

ताल : सं०पुं० (सं०) (१) संगीत का ताल। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा।' मा० २.२४१.४ (२) वाद्यविशेष जिस से ताल दिया जाता है। 'बाजहिं ताल पावाउज बीना।' मा० ६.१०.९ (३) करताल (वाद्य)। 'कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं।' मा० ३.२० छं० १ (४) ताड़ वृक्ष। 'कदलि ताल बर धुजा पताका।' मा० ३.३८.२ (५) ताली का शब्द। 'उड़त अघ बिहग सुनि ताल

करतालिका ।' विन० ४८.२ (६) (सं० तल्ल)=तलाव। सरोवर। 'गिरि बन नदीं ताल छबि छाए।' मा० ३.१४.२

तालऊ : ताड़ वृक्ष भी। 'तालऊ बिसाल बेधे।' कवि० ६.११

ताला : ताल। सरोवर। मा० ७.५७.६

तालिका : सं०स्त्री० (सं०)। हथेली। हाथ का चिकना प्रसृत भाग। विन० ४८.२

तालू : (१) ताल+कए०। एक ताड़ वृक्ष। 'दामिनि हनेउ मनहुं तरु तालू।' मा० २.२९.६ (२) सं०पुं० (सं० तालु)। मुख के भीतर ऊपरी भाग। 'निज तालू गत रुधिर पान करि मन संतोष धरै।' विन० ९२.४

ताव : सं०पुं० (सं० ताप>ताव)। (१) सन्ताप, दुःख। 'तयो है तिहूं ताव रे।' हनु० ३७ (२) क्रोध। 'भृगुनाथ खाइ गए ताव।'

तावत् : अव्यय (सं०)। तब तक। मा० ७.१०८ १४

तावौं : आ०उए० (सं० स्तायति—ष्टै वेष्टने; तायति—तायृ संवरणे>प्रा० तायमि>अ० तायउँ)। ढक दूँ, लेइ से मूँद दूँ, संवृत कर दूँ। 'भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं।' गी० ६.८.२

तासु : सर्वनाम (सं० तस्य>प्रा० तस्स>अ० तासु)। उसका-की-के। 'तासु नास कल्पांत न होई।' मा० ७.५७.१

तासू : तासु। 'नित नूतन मंगल गृह तासू।' मा० १.६६.४

ताहि, ही : उसको। 'सर निंदा करि ताहि बुझावा।' मा० १.३९.४ 'काल धर्म नहिं ब्यापहिं ताही।' मा० ७.१०४.७

ताहु, हू : उसे भी। 'हरषु बिरहु अति ताहु।' मा० ७.४ ख 'आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू।' मा० ५.४४.१

तिकाल : त्रिकाल। कवि० ७ १२१

तिक्खन : वि०पुं० (सं० तीक्ष्ण>प्रा० तिक्ख)। (१) तीव्र। 'ते रन तिक्खन लक्खन लाखन।' कवि० ६.३३ (२) नुकीला। प्रवेश करने वाला। 'लक्ख मैं पक्खर तिक्खन तेज।' कवि० ६.३९

तिजरा : सं०पुं० (सं० त्रिज्वर>प्रा० तिज्जर=तिज्जरअ)। एक प्रकार का ज्वर जो तीसरे दिन आता है और स्थायी होता है। विन० २७२.२

तिजारी : सं०स्त्री० (सं० त्रिज्वारिका>प्रा० तिज्जारिअ>अ० तिज्जारी। तिजरा। मा० ६.१२१.१८

तितीर्षा : सं०स्त्री० (सं०)। पार जाने की इच्छा। मा० १ श्लो० ६

तिथि : सं०स्त्री० (सं०)। सूर्य और चन्द्र की गतियों के अन्तर से बनने वाला समयभागविशेष। मा० १.१९०

तिन : (१) सं०पुं० (सं० तृण>प्रा० तिण)। तिनका। 'बिलोकि सब तिन तोरहीं।' मा० १.३२७ छं० १ (२) घास। 'चरइ हरित तिन बलि पसु जैसें।' मा० २.२२.२ (३) तिन्ह। उन। 'सोध कीजे तिन को जो दोष दुख देत हैं।' हनु० ३२

तिनु : तिन+कए०। एक तिनका। 'गिरि सिर तिनु धरहीं।' मा० २.२८५.३

तिन्ह : त+संब० (सं० तेषाम्>प्रा० ताण)। उन। 'तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा।' मा० १.५.१ 'तिन्ह कहँ सुखद।' मा० १.६.३ (२) उन्होंने। 'तिन्ह पाती दीन्ही।' मा० १.२९०.३

तिन्हहि, ही : उन्हें। मा० १.६.५

तिन्हैं : तिन्हहि। 'तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली।' कवि० २.२२

तिपुरारि : त्रिपुरारि। मा० १.२७१

तिभुअन, तिभुवन : त्रिभुवन। मा० २.२६३.६; १६४.६

तिमि : (१) अव्यय (सं० तथा=अ० तिम)। उस प्रकार, वैसे, त्यों। 'तिमि सुरपतिहि न लाज।' मा० १.१२५ (२) सं०पुं० (सं०)। ह्वेल मछली। 'महामीनाबास तिमि तोमनि को थलु भो।' हनु० ७

तिमिर : सं०पुं० (सं०)। अन्धकार। मा० १.११६.४

तिमिरु : तिमिर+कए०। एक क्षुद्र अँधेरा। 'तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई।' मा० २.२३२.१

तिमुहानी : सं०स्त्री०। तीन धाराओं का संगम (जहाँ तीन मुहाने हों)। 'त्रिबिध ताप भासक तिमुहानी।' मा० १.४०.४

तिय : ती। स्त्री०। मा० १.१९.७ (२) पत्नी। 'राम एक तापस तिय तारी।' मा० १.२४.६

तियन, नि, न्हि : तिय+संब०। स्त्रियों। 'देखि तियनि के नयन सफल भए।' गी० १.१०७.३

तियमनि : स्त्रियों में शिरोमणि, श्रेष्ठ स्त्री। 'मैना तासु घरनि घर त्रिभुभव तिय-मनि।' पा०मं० ६

तिरछी : वि०स्त्री० (सं० तिरश्चीचला>प्रा० तिरिच्छी)। टेढ़ी; वक्र। रा०न० १४

तिरछे : वि०पुं०ब०। 'तिरछे करि नैन, दै सैन।' कवि० २.२२

तिरछौंहैं : क्रि०प० (सं० तिर्यङ्मुख>प्रा० तिरिच्छमुह)। तिरछे होकर, तिरछे प्रकार से। 'अचान दिष्टि परी तिरछौंहैं।' कवि० २.२५

तिरहुति : सं०स्त्री०=तेरहुति। 'भूमि तिलक सम तिरहुति।' जा०मं० ४

तिरहूति : तिरहुति।

तिरा : भूकृ०पुं०। तीर पर पहुंचा, तैर गया, पार हो गया। 'लोह लै लौका तिरा।' मा० २.२५१ छं०

तिरीछी : तिरछी। कवि० २.२१

तिरीछें : क्रि०वि०। वक्रता से, टेढ़े-टेढ़े। 'तिरीछें प्रियाहि चितै।' कवि० २.२६

तिरीछे : तिरछे (सं० तिरश्चीन>प्रा० तिरिच्छय)। आड़े-टेढ़े। 'खंजन मंजु तिरीछे नयननि।' मा० २.११७.७

तिल : सं०पुं० (सं०)। धान्य विशेष जिससे तेल निकलता है। मा० ३.१९ ख (२) शरीर में तिलाकार चिन्ह। 'चारु चिबुक तिल जासु।' दो० १९१

तिलक : सं०पुं० (सं०)। टीका। (१) मस्तक का ऊर्ध्वपुण्ड्र। 'किएँ तिलक गुन गन बस करनी।' मा० १.१.४ (२) राज्याभिषेक का टीका। 'रामहि तिलक कालि जौं भयऊ।' मा० २.१९.६ (३) तिलक के समान उत्तम (शिरोमणि); श्रेष्ठ। 'रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा।' मा० २.५२.१ (४) तिल का पुष्प—नासा तिलक को बरनै पारे। मा० १.१९९.८

तिलकु : तिलक+कए०। मा० १.३२७.९

तिल-तिल : (तिल के समान) थोड़ा-थोड़ा, धीरे-धीरे। 'जा के मन ते उठि गई तिल-तिल तृस्ना चाहि।' वैरा० २६

तिलांजलि : सं०स्त्री० (सं०)। पितृ कर्म में तिल सहित जल की अञ्जलि। 'देउँ तिलांजलि ताहि।' मा० ४.२७

तिलांजुलि : तिलांजलि। मा० २.१७०.५

तिली : तेली (प्रा० तेल्लिअ=तिल्लिअ)। 'पेरत कोल्हू मेलि तिल, तिली सनेही जानि।' दो० ४०३

तिलु : तिल+कए०। एक तिल (की मात्रा)। 'तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई।' मा० १.२५२.२

तिलोक : त्रिलोक। मा० २.२०९.३

तिलोकिए : त्रिलोकी भर में=तीनों ही लोकों में। 'मानहुं रह्यो है भरि बानरु तिलोकिए।' कवि० ५.१७

तिलोकु : तिलोक+कए०। एकीभूत सम्पूर्ण त्रैलोक्य। कवि० ६.५६

तिलोचन : कवि० ७.१५७

तिलौ : तिल भी, तिल भर भी, थोड़ा-सा भी। 'तुलसी तिलौ न भयौ बाहेर अगार को। कवि० ५.१२

तिष्टइ : आ० प्रब० (सं० तिष्ठति>प्रा० मागधी--तिस्टइ)। ठहरता है, रह सकता है। 'भूत द्रोहँ तिष्टइ नहिं सोई।' मा० ५.३८.७

तिष्ठन्ति : आ०प्रब० (सं०)। रहते हैं, स्थिति हैं। विन० ५७.५

तिसिरा : त्रिसिरा। मा० ३.२५

तिहारिय, ये : तेरी ही । 'मोसे दीन दूबरे को तकिया तिहारिये ।' हनु० २२
तिहारी : तेरी । कृ० ६
तिहारें : तेरे···से । 'सुजस तिहारें भरे भुअन ।' कवि० १.१६
तिहारे : तेरे । 'महरि तिहारे पायँ परौं ।' कृ० ७
तिहारो : बि०पुं०कए० । तेरा । 'सदा जन के मन बास तिहारो ।' हनु० १६
तिहारोइ : तेरा ही । 'तहरोइ नामु गयंद चढ़ायो ।' कवि० ७.६०
तिहुं, तिहु : तीनों । 'चहुं जुगतीनि काल तिहुं लोका ।' मा० १.२७.१ 'पुरुषसिंघ तिहु पुर उजिआरे ।' मा० १.२६२.१
तिहूँ : तिहुं+उ । तीनों ही । 'तजें तिहूं पुर अपजसु छावा ।' मा० २.६५.६
तिहुन : तिहूँ । 'प्रीति परिच्छा तिहुन की ।' दो० ३५२
ती : (१) हुती थी । (२) तिय । स्त्री । 'किय भूषन तिय ती को ।' मा० १.१६.७
तीखी : वि०स्त्री० (सं० तीक्ष्णा>प्रा० तिक्खी) । तीव्र । 'तीखी तुरा तुलसी कहतो, पै हिएँ उपमा को समाउ न आयो ।' कवि० ६.५४
तीखे : वि०पुं०ब० (सं० तीक्ष्ण>प्रा० तिक्ख=तिक्खय) । तीव्र, अति वेगशील । 'तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि ।' कवि० ६.३२
तीच्छन, तीछन : तिक्खन (सं० तीक्ष्ण>प्रा० तिच्छ) । विन० ५५.४ 'राम भजन तीछन कुठार ।' विन० २०२.२
तीछी : वि०स्त्री० (सं० तीक्ष्णा>प्रा० तिच्छी) । तीखी, तीव्र । 'तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी ।' मा० २.२६२.८
तीछें : (सं० तीक्ष्णेन>प्रा० तिच्छेण>अ० तिच्छें) तीक्ष्ण···से । 'राम बियोगि बिकल दुख तीछें ।' मा० २.१४३.६
तीज : सं०+वि० (सं० तृतीय, तृतीया>प्रा० तिइज्ज, तिइज्जा>अ० तिइज्ज=तिज्ज) । (१) पक्ष की तीसरी तिथि+(२) तीसरी (बात) । विन० २०३.४
तीजे : वि०पुं० (सं० तृतीये>प्रा० तिइज्जे) । तीसरे । 'मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे ।' मा० १.१६६.७
तीतर : सं०पुं० (सं० तित्तिरि) । पक्षिविशेष । कवि० ६.२६
तीतिर : तीतर । मा० ३.३८.७
तीनि : संख्या (सं० त्रीणि) । तीन । मा० १.२७.१
तीनिअवस्था : तुरीय को छोड़कर चेतन की शेष तीन दशाएँ :--(१) जाग्रत्=स्थूल शरीर=अन्नमय कोश=स्थूल देहाभिमानी जीवदशा । (२) स्वप्न=सूक्ष्मश-रीर=(क) पञ्चकर्मेन्द्रिय सहित प्राणपञ्चक का प्राणमय कोश (ख) पञ्चज्ञानेन्द्रिय सहित मन का मनोमय कोश (ग) ज्ञानेन्द्रिय सहित बुद्धि का विज्ञानमय कोश=सूक्ष्मशरीराभिमानी-जीवदशा (३) सुषुप्ति=कारणशरीर=

आनन्दमय कोश=आनन्द रूप आत्मा+सूक्ष्म मायावृत्ति का आवरण= आनन्दाभिमानी जीवदशा। 'तीनि-अवस्थी तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।' मा० ७.११७ ग। दे० तुरीय

तीनिउँ : तीनों ने। 'कीन्हि दंडवत तीनिउँ भाई।' मा० ७.३३.१

तीनिउ : तीनों। 'तीनिउ भाइ राम सम जानी।' मा० १.३२८.६

तीनिहुं : तीनिउँ। 'कीन्ह बिबिध तप तीनिहुं भाई।' मा० १.१७७.१

तीनी : तीनि। मा० ७.७१.६

तीनो : तीनिउ। दो० ५३८

तीव्र : वि० (सं० तीव्र)। तीक्ष्ण, वेगयुक्त। मा० ६.७१.४

तीय, या : तिय। मा० १.२४७.४

तीर : सं०पुं० (सं०) (१) तट। 'जनु सरि तीर तीर बन बागा। मा० १.४०.६ (२) (सं०+फा०) बाण। 'तकि तकि तीर महीस चलावा।' मा० १.१५७.३

तीरथ : सं०पुं० (सं० तीर्थ)। (१) पूज्य स्थानों के अधिदेव। 'तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं।' मा० १.३४.६ (२) पूज्य पावन भू-भाग। 'तीरथ बर नैमिष बिख्याता।' मा० १.१४३.२ (३) तीर्थाटन। 'आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू।' मा० २.१०७.५ (४) पूज्य जन के जन्म-कर्म का प्रसिद्ध स्थान। 'चरन राम तीरथ चलि जाहीं।' मा० २.१२९.५ (५) उत्तम जलाश्रय=नदी-सरोवर आदि। 'तीरथ·········निमज्जहिं।' मा० १.२२४.२ 'तीरथ-मज्जन।' मा० ७.४९.२

तीरथन्ह : तीरथ+संब०। तीर्थों। 'सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए।' मा० १.१५५.८

तीरथपति : तीरथराज। प्रयाग। मा० २.१०६.२

तीरथराऊ : (दे० राऊ)। एकमात्र तीर्थों का राजा, प्रयाग। मा० १.२.१३

तीरथराज, जा : प्रयाग। मा० १.२.११; ४४.७

तीरथराजु, जू : तीरथराज+कए०। एकमात्र तीर्थराज।' मा० १.२.७; २.१०५.२

तीरा : तीर। (१) तट। 'पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा।' मा० १.१४३.५ (२) बाण। 'छन महुं जरे निसाचर तीरा।' मा० ६.९१.३

तीर्थाटन : (तीर्थ+अटन—सं०) तीर्थ-यात्रा। मा० ७.१२६.४

तीस : संख्या (सं० त्रिशत्>प्रा० तीसा)। मा० ६.९२.१०

तीसर : वि०पुं०। तृतीय। मा० १.८७.६

तीसरि : वि०स्त्री०। तीसरी। मा० ३.३५

तीसरें : तीसरे···में, पर। 'तीसरें उपास·· एक दिन दानु भो।' कवि० ५.३२

तीसरे : 'तीसर' का रूपान्तर। 'भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेस प्रयाग।' मा० २.२०३

तु : अवधारणार्थक अव्यय (सं०) । तो । 'न तु कामी बिषया बस·········। मा० ७.११५ क 'तौ तु देहिं कबि खोरि ।' दो० ३१७

तुंग : वि० (सं०) । उत्तुङ्ग, ऊँचा । मा० ३.१०१ छं० १

तुंड : सं०पुं० (सं०) । (१) नासिका । (२) चोंच । 'सुक तुंड बिनिंदक सुभग सुउन्नत नासा ।' गी० ७.१२.७ (३) मुख । 'सारद ससि सम तुंड ।' गी० ७.१६.४

तुंबरि : सं०स्त्री० (सं० तुम्बी>अ० तुंबडी) । लौकी । मा० १.११३.४

तुअ, व : तव (प्रा०) । तेरा, तेरी, तेरे । मा० २.२१

तुपक : सं०स्त्री० । तोप । दो० ५१५

तुभ्यं : सर्वनाम (सं०) । तुझको, तेरे लिए । मा० ७.१०८ छं० १५

तुम : तुम्ह । मा० १.५६.३

तुम्ह : सर्वनाम (सं० युष्मद्>प्रा० तुम्ह) । तुम । मा० १.४६

तुम्हइ : तुम ही, तुम्ही । 'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ।' मा० २.१२७ ३

तुम्हउ : तुम भी, तुमको भी । 'हमरें बयर तुम्हउ बिसराईं ।' मा० १.६२.२

तुम्हरिहि : तुम्हारी ही । मा० २.१२७.४

तुम्हरीं : तुम्हारी···के । 'है तुम्हरीं सेवा बस राऊ ।' मा० २.२१.८

तुम्हरी : तुम्हारी । मा० १.१४.११

तुम्हरें : तुम्हारे···में, से । 'भरत भगति तुम्हरें मन आई ।' मा० २.२६६.२

तुम्हरे : तुम्हारे । 'तुम्हरे हृदयँ होइ संदेहू ।' मा० २.५६.६

तुम्हरेइँ : तुम्हारे ही । 'तुम्हरेइँ भजन प्रभाव ।' मा० ३.१३.५

तुम्हरेहिं : तुम्हरेइँ । मा० २.७५.३

तुम्हरो : तुम्हारो । तुम्हारा । कवि० ७.४१

तुम्हहि, ही : तुमको । 'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ।' मा० २.१२७.३

तुम्हहिं, हीं : तुम्हीं, केवल तुम ।

तुम्हहु, हूं, हु, हू : तुम भी । 'तुम्हहू तात कहहु अब जाना ।' मा० ५.२७.७

तुम्हार, रा : (सं० युष्मदीय>अ० तुम्हार) मा० १.७७.६; ४६.३

तुम्हारि, री : मा० १.४७.३

तुम्हारें : तुम्हरें । तुम्हारे लिए । 'सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें ।' मा० २.६६.२

तुम्हारे : मा० १.१४६.३

तुम्हारो : तुम्हारा+कए० । मा० ६.१०६ छं०

तुम्हैं : तुम्हारे । 'तुम्हैं बिद्यमान···कपि रोप्यो पाउ ।' कवि० ६.२२

तुम्है : तुम्हीं । 'परिनाम तुम्है पछितैहौ ।' कवि० ७.१०२

तुरंग : सं०पुं० (सं०) । अश्व । मा० २.१४३

तुरंगनि : तुरंग+सब०। घोड़ों (को)। 'चुचुकारि तुरंगनि सादर जाइ जोहारे।' गी० १.४६.१

तुरंगा : तुरंग। मा० १.३१६.५

तुरंत : वि०+क्रि०वि० (सं० त्वरमाण>प्रा० तुरंत)। द्रुत गति लेता हुआ (शीघ्र)। 'जैहउँ नाथ तुरंत।' मा० ६.६० क

तुरंता : तुरंत। मा० ५.१.७

तुरग : तुरंग (सं०)। मा० २.१८७.४

तुरगा : तुरग। मा० ६.६२.१

तुरत : तुरंत; तुरित। 'तुरत कपिन्ह कहुं आयसु दीन्हा।' मा० ५ ३४.७

तुरतहिं : शीघ्र ही। तत्काल ही। 'तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा।' मा० ५.३.४

तुरा : सं०स्त्री० (सं० त्वरा)। अति शीघ्रता, अति वेग। कवि० ६.५४

तुराईं : तुराई+ब०। तुलाइयाँ, गद्दे, दुलाइयाँ। 'बिबिध बसन उपधान तुराईं।' मा० २.९१.१

तुराई : सं०स्त्री० (सं० तूलिका)। रुई का गद्दा-दुलाई आदि। मा० २.१४.६

तुरित : क्रि०वि० (सं० त्वरित)। शीघ्र, तत्काल। 'तुरित गयउ कपि राम पहिं।' मा० ७.२ ख

तुरीय : सं०+वि० (सं०) (१) चतुर्थ। (२) चेतन की चतुर्थ दशा जो तीन अवस्थाओं—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—से परे अन्तर्यामी अवस्था होती है और जो ब्रह्म का ही सूक्ष्म रूप है—दे० 'तीनि अवस्था।' 'तूल तुरीय सँवारी पुनि।' मा० ७.११७ ग

तुरीयमेव : (सं०) चतुर्थदशामात्र (ब्रह्म)। मा० ३.४.९

तुलसि : तुलसी। क्षुपविशेष। मा० १.३४६.५

तुलसिका : तुलसी (सं०)। (१) क्षुपविशेष। 'उरन्हि तुलसिका माल।' मा० १.२४३ (२) जालन्धर असुर की पत्नी जो तुलसीक्षुप के रूप में अवतीर्ण मानी गयी है। 'अजहुं तुलसिका हरिहि प्रिय।' मा० ३.५ क

तुलसिदास : तुलसीदास। मा० १.१९६

तुलसीं : तुलसीदास ने। 'तुलसीं लख्यो राम सुभाउ तिहारो।' कवि० ७.३

तुलसी : सं०स्त्री० (सं०)। (१) तुलसी नामक पूज्य क्षुपविशेष। 'जो सुमिरत भयो भाँग ते तुलसी तुलसीदासु।' मा० १.२६ (२) जालन्ध की पत्नी जो तुलसी वृक्ष होकर अवतीर्ण हुई जब विष्णु ने उसका सतीत्व भङ्ग कर जालंधर को मारा; उसके सतीत्व के कारण विष्णु ने उसे अङ्गीकार किया। 'रामहिं प्रिय पावनि तुलसी-सी।' मा० १.३१.१२ (३) तुलसीदास कवि। मा० १.१० छं०

तुलसीक : तुलसीदास के लिए। 'तो नीको तुलसीक।' मा० १.२९ ख
तुलसीदास : कवि का नाम। मा० १.२८ ख
तुलसीदासु : तुलसीदास+कए०। मा० १.२६
तुलसीस : (सं० तुलसीश) तुलसीदास के स्वामी=राम। मा० १.३३६ छं०
तुलसीस्वरी : (सं० तुलसीश्वरी) तुलसीदास की आराध्या=सीता। कवि० ६.२
तुलाँ : तुला पर, तराजू पर (उपमा में)। 'भले सुकृती के संग मोहि तुलाँ तौलिए।' कवि० ७.७१
तुला : सं०स्त्री० (सं०)। (१) उपमा—जिसके उपमान और उपमेय दो मुख्य अङ्ग होते हैं। (२) तराजू—जिसके अङ्ग दो पल्ले होते हैं। 'धरिअ तुला एक अंग।' मा० ५.४
तुष : सं०पुं० (सं०)। भूसी, छिलका। दो० ३०३
तुषार : सं०पुं० (सं०)। पाला, हिम (बर्फ)। मा० ६.११५.५ (२) ओस।
तुषाराद्रि : सं०पुं० (सं०)। हिमालय। मा० ७.१०८.३
तुषारु : तुषार+कए०। ओस। 'मनहुं मरकत मृदु सिखर पर लसत बिसद तुषार।' कृ० १४
तुसार : तुषार। मा० २.१६३
तुसारु, रू : तुषारु। पाला। 'मनहुं कमल बन परेउ तुषारू।' मा० २.२६३.२
तुहिन : सं०पुं० (सं०)। तुषार, पाला, हिम। मा० २.७१.८
तुहिनगिरि : हिमाचल। मा० १.९७
तुहिनाचल : हिमाचल। मा० १.९४.६
तुही : तू ही। 'राम गुलाम तुही हनुमान।' हनु० ३६
तुहूं : तू भी। 'तुहूं सराहसि करसि सनेहू।' मा० २.३२.७
तूँ : मध्यम पुरुषीय सर्वनाम (सं० त्वम्>प्रा० तुं)। तू। 'जननी तूँ जननी भई।' मा० २.१६१
तू : तूँ (फ़ा०)। मा० २.१६२.७
तूठनि : सं०स्त्री०। तुष्ट (प्रसन्न) होने की क्रिया। 'रूठनि तूठनि किलकनि···।' गी० १.३०.३
तूठहिं : आ०प्रब। सन्तुष्ट होते हैं। 'तूठहिं निज रुचि काज करि।' दो० ४७६
तूणीर : सं०पुं० (सं०)। निषङ्ग, तरकस। मा० ३ श्लोक २
तून : तूणीर। (सं० तूण)। मा० १.२६८.८
तूनीर : तूणीर। मा० १.२४४.१
तूनीरा : तूनीर। मा० २.११५.८

तूर : सं०पुं० (सं० तूर्य)। वाद्य, वाद्यविशेष=तुड़हो। 'पाछें लागे बाजत निसान ढोल तूर हैं।' कवि० ५.३

तूरना : तूर। 'डोलै लोल बूझत सबद ढोल तूरना।' कवि० ७.१४८

तूरी : पूकृ०। तोड़कर। 'मन तन बचन तजे तिन तूरी।' मा० २.३२४.५

तूल : (१) सं०पुं०+स्त्री० (सं०)। रूई। मा० ७.११७ग (२) वि० (सं० तुल्य>प्रा० तुल्ल)। समान, सदृश। 'तून न तासु सकल मिलि।' मा० ५.४

तूला : तूल। (१) रूई। 'जासु नाम पावक अघतूला।' मा० २.२४८.२ (२) तुल्य। दे० समतुला। मा० १.११३.४

तृन : तिन। तिनका, घास। मा० १.१६७.७ (२) पापी से बात करने में तिनके का व्यवधान करके बात करने की परम्परा रही है दे० दूतवाक्यम् (भासकृत व्यायोग) श्लोक ३५

वासुदेवः—भोः कुरुकुलकलङ्कभूत अयशोलुब्ध

वयं किल तृणान्तराभि भाषकाः।

दुर्योधनः—भो गोपालक तृणान्तराभि भाष्यो भवान्—

अवध्यां प्रमदां हत्वा हयं गोवृषमेव च।

मल्लानपि सुनिलज्जो वक्तुमिच्छसि साधुभिः ॥३६॥

अतएव गोस्वामी जी का वचन है—

तृन धरि ओट कहति बैदेही। मा० ५

तृनासन : (१) (सं० तृणासन) तिनकों का आसन। (२) (सं० तृणाशन) घास का भोजन=सागपात। 'बार कोटि सिर काटि साटि लटि रावन संकर पै लई। सोइ लंका लखि अतिथि अनवसर राम तृनासन ज्यों दई।' गी० ५.३८.३

तृनु : तृन+कए०। घास की एक पत्ती। 'देह गेह सब सन तृनु तोरें।' मा० २.७०.६

तृपित : भूकृ०वि० (सं० तृप्त)। सन्तुष्ट, पूर्णकाम। मा० २.२६०

तृपिति : तृप्ति। मा० ७.११९.६

तृप्ति : सं०स्त्री० (सं०)। तुष्टि, अघाव, इच्छापूर्ति। 'तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा।' मा० १.१४८.६

तृषा : सं०स्त्री० (सं०)। प्यास। मा० ४.१७.५

तृषावंत : वि०पुं० (सं० तृषावत्) प्यासा। मा० ७.२.६

तृषित : वि० (सं०)। प्यासा। 'तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा।' मा० १.२६१.२

तृस्नां : तृष्णा ने। 'तृस्नां केहि न कीन्ह बौराहा।' मा० ७.७०.८

तृस्ना : सं०स्त्री० (सं० तृष्णा) । (१) तृषा, प्यास । (२) दृढ़ इच्छा, तीव्र लालसा । 'तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी ।' मा० ७.१२१.३६

तें : अव्यय (सं० तेन>प्रा० तेण>अ० तें) । से । 'तेहि तें कछु गुन दोष बखाने ।' मा० १.६.२

ते : (१) तें । से । 'अजहि मसक ते हीन ।' मा० ७.१२२ ख (२) हुते । थे । 'तिन्ह के काज साधु समाजु तजि कृपासिंधु उठि गे ते ।' विन० २४१.३ (३) प्रथम-पुरुषीय सर्वनाम (सं० ते) । वे । 'ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं ।' मा० १.८.१२ (४) मध्यम पुरुष सर्वनाम (सं० ते) । तुझे, तेरे लिए । 'राम नमामि ते ।' मा० ७.१३० छं० १

तेईं : उसने । 'एक मास तेइँ जात न जाना ।' मा० १.१६५.८

तेइ, ई : वे ही । 'तेइ रघुनंदनु लखनु सिय ।' मा० २.२६२ 'भए उपल बोहित सम तेई ।' मा० ६.३.८

तेउ, ऊ : वे भी । 'परम कौतुकी तेउ ।' मा० १.१३३ 'बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ ।' मा० १.७.५

तेज : सं०पुं० (सं० तेजस्) । (१) आतप (घाम) (२) ओज (आभा आदि) । 'बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा ।' मा० ७ ९०.५

तेजवंत : वि०पुं० । तेजस्वी, प्रतापी । 'तेजवंत लघु गनिअ न रानी ।' मा० १.२५६.६

तेजसी : वि०पुं० (सं० तेजस्वी) । प्रतापी, प्रभावशाली । मा० १.१७०

तेजहत : वि० (सं० तेजोहत) । प्रताप से रहित, निठप्रभ, प्रभावहीन । मा० ६.३५.४०

तेजायतन : (तेज+आयतन) । प्रतापागार, प्रभावशाली । विन० ४६ १

तेजी : वि०स्त्री० (फा० तेज) । महँगी । 'तेजी माटी मगहू की मृगमद साथ जू ।' कवि० ७.१६

तेजु : तेज+कए० । एकमात्र प्रताप । 'दुरे नखत जग तेजु प्रकासा ।' मा० १.२३६.४

तेते : वि०पुं०ब० । (सं० तावत्>प्रा० तेत्तिअ) । उतने । 'कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते ।' मा० ३.४६.८

तेन्ह : तिन्ह । 'तेन्ह कर मरन एक बिधि होई ।' मा० १.१८१.७

तेपि : (सं०) वे भी । 'तेपि कामबस भए बियोगी ।' मा० १.८५.८

तेरसि : सं०+वि०स्त्री० (सं० त्रयोदशी>प्रा० तेरसी) । (१) तेरहवीं (२) पक्ष की तेरहवीं तिथि ।' विन० २०३.१४

तेरहुति : सं०स्त्री० । जनक देश, मिथिला । मा० २.२७१

तेरहुति : तेरहुति । मा० २.२९२.८

तेरिये : तेरी ही । 'अवलंब मेरे तेरिये ।' हनु० ३४

तेरी : सार्वनामिक वि० (स्त्री०) । हनु० २८

तेरे : वि०पुं० । 'सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे ।' मा० ६.३०.४

तेरेउ : तेरे भी । 'कलि तेरेउ मन गुन गन कीले ।' विन० ३२.२

तेरो : वि०पुं०कए० । तेरा । हनु० २३

तेल : सं०पुं० (सं० तैल>प्रा० तेल्ल) । मा० २.१५७.१

तेला : तेल । मा० ५.२५.५

तेलि : सं०पुं० (सं० तैलिक>प्रा० तेल्लिअ) । तैल व्यवसायी जाति । मा० ७.१००.५

तेलु : तेल+कए० । माङ्गलिक तैलविशेष । 'करि कुलरीति कलस थपि तेलु चढ़ावहिं ।' जा०मं० ११५

तेषां : सर्वनाम (सं०) । उनका-की-के । मा० ७.१०८.९

तेहिं : (१) उसने । 'तेहिं अपने मन अस अनुमाना ।' मा० ६.४९.४ (२) उससे । 'तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन ।' मा० १.२.२ (३) उस पर । 'तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई ।' मा० १.१३.१०

तेहि : (१) उस । 'सनमुख होइ न सकै तेहि अवसर ।' मा० ६.५०.६ (२) उसे, उसके लिए, उसके प्रति । 'जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ।' मा० १.५.९

तेहीं : तेहिं । उसी । 'तेहीं समय बिभीषनु जागा ।' मा० ५.६.२

तेही : तेहि । उस, उसी । 'बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही ।' मा० १.४.१०

तैं : मध्यमपुरुष सर्वनाम (सं० त्वया>प्रा० तइ>अ० तइँ) । (१) तूने । 'सीता तैं मम कृत अपमाना ।' मा० ५.१०.१ (२) तू । 'तैं निसिचर पति गर्ब बहूता ।' मा० ६.३०.७ (३) परायेपन का भाव (अहंकार का रूप) । 'मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू ।' मा० ६.५६.७

तैलिक : तेली । विन० २५.७

तैसइ : वैसा ही । 'तैसइ सीलरूप सुबिनीता ।' मा० ३.२४.४

तैसिअ, य यै : वैसी ही । 'तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ।' मा० २.६५.७

तैसी : वि०स्त्री० (सं० तादृशी>प्रा० तारिसी>प्रा० तइसी) । वैसी । मा० २.२८९.६

तैसें : उस प्रकार से । 'तेज निधान लखनु पुनि तैसें ।' मा० १.२९३.३

तैसेइ : वैसे ही । 'तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा ।' मा० १.३११.३

तैसेहिं : उसी प्रकार से । मा० २.२३०.७

तैसो : वि०पुं०कए० । वैसा । 'मुखु तैसो रिस लाल भो ।' कवि० ५.४

तैहैं : आ०भ०प्रब० । (१) (सं० तप्स्यन्ति>प्रा० तविहिंति>अ० तविहिहिं) । सन्तप्त करेंगे (२) (सं० तायिष्यन्ते>प्रा० ताइहिंति>अ० ताइहिहिं) । संवृत करेंगे, छिपा देंगे । 'तनु छबि कोटि मनोजन्हि तैहैं ।' गी० ५.५०.४ (दे० तावौं)

तो : (१) तुअ । तव, तुझ । 'सपनेहुं तो पर को पुन मोही ।' मा० २.१५.१ (२) तु । 'अब तो दादुर बोलिहैं ।' दो० ५६४ (३) तौ (तर्हि) । 'तौ तुलसिहि तारिहौ ।' विन० ६६.३ (४) हुतो । था । 'मो तें कोउ न सबल तो ।' गी० ५.१३.५

तोतरात : वकृ०पुं० । तुतलाते, रुक-रुक कर शिशुवाणी बोलते, जीभ के व्याघात से अस्पष्ट उच्चारण करते । 'मुनिमन हरत बचन कहैं तोतरात ।' कृ० २

तोतरि : वि०स्त्री० । तुतली, लड़खड़ाती (ध्वनि) । 'जौं बालक कह तोतरि बाता ।' मा० १.८.६

तोतरे : वि०पुं०ब० । तुतले, लटपटाते । 'अति प्रिय मधुर तोतरे बोला ।' मा० १.१६६.६

तोपची : सं०पुं० (फा०) । तोप दागने वाला । दो० ५१५

तोपिहैं : आ०भ०प्रब० । पाट देंगे, (गर्त) भर देंगे । 'तुलसी बड़े पहार लै पयोधि तोपिहैं ।' कवि० ६.१

तोपैं : आ०प्रब । तोपे दे रहे हैं, पाट रहे हैं । 'तोपैं तोयनिधि, सुर को समाजु हरषा ।' कवि० ६.७

तोप्यो : भूकृ०पुं०कए० । तोप दिया, पाट दिया (ढक दिया) । 'बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो ।' मा० ६.६३.३

तोम : सं०पुं० (सं० स्तोत्र) । समूह । 'तीतर तोम तमीचर सेन ।' कवि० ६.२६

तोमनि : तोम+संब० । समूहों । 'महामीनाबास तिमि तोमनि को थलु भो ।' हनु० ७

तोमर : स०पुं० (सं०) । लोहे का बड़ा भारी भाला । मा० ३.१६ छं०

तोय : स०पुं० (स०) । जल । मा० २.३०६

तोयनिधि : समुद्र । मा० ६.५

तोर : वि०पुं० । तेरा । 'जदपि न दूषन तोर ।' मा० १.१७४ (२) परायेपन का भाव । 'मैं अरु मोर तोर तैं माया ।' मा० ३.१५.२

✓**तार, तोरइ** : (सं० तोडति—तुड छेदे>प्रा० तोडइ—तोड़ना, छिन्न करना) आ०प्रए० । तोड़ता हैं, तोड़ सकता है, तोड़े, तोड़ सके । 'धनु तोरै सो बरै जानकी ।' गी० १.८६.३

तोरत : वकृ०पुं० । तोड़ता-ते । तुलसी तोरत तीर तरु ।' दो० ४६८

तोरन : सं०पुं० (सं० तोरण) (१) बहिर्द्वार, फाटक। (२) मङ्गलोत्सव में बनाया-सजाया कृत्रिम द्वार। मा० १.१६४.१

तोरब : (१) भकृ०पुं० (सं० तोडितव्य>प्रा० तोडिअव्व)। तोड़ना। 'रहउ चढ़ाउब तोरब भाई।' मा० १.२५२.२ (२) तोड़ना होगा (तोड़ेंगे)। 'राम चाप तोरब, सक नाहीं।' मा० १.२४५.२

तोरहीं : आ०प्रब० (सं० तोडन्ति>प्रा० तोडंति>अ० तोडहिं)। तोड़ते हैं। 'बिलोकि सब तिन तोरहीं।' मा० १.३२७ छं० १

तोरहुं : आ०—कामना—प्रब० (ईश्वर करे कि) तोड़ डालें, तोड़ सकें। 'तौ सिव धनु मृनाल की नाईं। 'तोरहुं रामु गनेस गोसाईं।' मा० १.२५५.८

तोरा : (१) तोर। तोरा। 'कृष्न तनय होइहि पति तोरा।' मा० १.८८.२ (२) भूकृ०पुं०ए० (सं० तोडित>प्रा० तोडिअ)। तोड़ा, खण्डित किया। 'तेहि छन मध्य राम धनु तोरा।' मा० १.२६१.८

तोराइ : पूकृ० (सं० तोडयित्वा>प्रा० तोडाविअ>अ० तोडावि)। तुड़ा कर, बन्धनविच्छेद करके। 'बागुर बिषम तोराइ मनहुं भाग मृगु भागबस।' मा० २.७५

तोराई : वि०स्त्री० (सं० त्वरावती)। द्रुतगामिनी। (२) (सं० त्वरयित्वा>प्रा० तोराविअ>अ० तोरावि)। शीघ्रता करके। 'छुद्र नदी भरि चली तोराई।' मा० ४.१४.५ (यहाँ 'तोराइ' वाला अर्थ भी है—जिस प्रकार क्षुद्र स्त्री मर्यादा तोड़कर चलती है, उसी प्रकार नदी सीमा तोड़कर बह चली)

तोरावति : वि०स्त्री० (सं० त्वरावती)। द्रुतगामिनी+(सं० तोडयन्ती>प्रा० तोडावंती) मर्यादा भङ्ग करने वाली=सीमा तोड़कर शीघ्र गति लेती हुई। 'बिषम बिषाद तोरावति धारा।' मा० २.२७६.३

तोरि : (१) सार्वनामिक वि०स्त्री०। तेरी। 'भूपँ प्रतीति तोरि किमि कीन्ही।' मा० २.१६२.३ (२) पूकृ० (सं० तोडयित्वा>प्रा० तोडिअ>अ० तोडि)। तोड़कर। 'संभु सरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोधु।' मा० १.२८०

तोरिए : आ०कवा०प्रए० (सं० तोड्यते>प्रा० तोडीअइ)। तोड़ा जाय। 'तुलसीस तोरिए सरासन इसान को।' गी० १.८८.५

तोरिबे : भूकृ०पुं०। तोड़ने। 'मैं तव दसन तोरिबे लायक।' मा० ६.३४.१

तोरिहिं : आ०भ०प्रब० (सं० तोडिष्यन्ति>प्रा० तोडिहिंति>अ० तोडिहिहिं)। तोड़ेंगे। 'तमकि ताहि ए तोरिहिं कहब महेस।' बर० १५

तोरीं : भूकृ०स्त्री०ब०। तोड़ीं, उच्छिन्न कीं। 'बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं।' मा० १.२७१.७

तोरी : (१) तोरि। तेरी। 'अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं।' मा० १.१६३ छं०

(२) तोरि। तोड़कर। 'निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी।' मा० १.१९८.५
(३) भूकृ०स्त्री०। तोड़ डाली।

तोरें : (१) तुझमें। 'सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें।' मा० ३.३६.७ (२) तेरे···में। 'कर गत बेद तत्त्व सब तोरें।' मा० १.४५.७ (३) तेरे···से। 'अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें।' मा० १.२०५.२ (४) तोड़ने से (सं० तोडितेन>प्रा० तोडिएण >अ० तोडिएँ)। 'तोरें धनुषु चाड़ नहिं सरई।' मा० १.२६६.४ (५) तोड़े हुए (स्थिति में)। 'देह गेह सब सन तृनु तोरें।' मा० २.७०.६

तोरे : (१) सार्वनामिक वि०पुं०। तेरे। 'राम प्रताप नाथ बल तोरे।' मा० २.१९२.१ (२) भूकृ०पुं०ब० (सं० तोडित>प्रा० तोडिय)। उच्छिन्न किये। 'तुलसी जे तोरे तरु, किए देव, दिए बरु।' कृ० १७

तोरेउँ : आ०—भूकृ०पुं०+उए०। मैंने तोड़े। 'कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा।' मा० ५.२२.३

तोरेहुं : तोड़ने पर भी। 'तोरेहुं धनुषु ब्याहु अवगाहा।' मा० १.२४५.६

तोरैं : भकृ० अव्यय। तोड़ने। 'फल खाएसि तरु तोरैं लागा।' मा० ५.१८.१

तोरै : तोरइ।

तोरौं : आ०उए० (सं० तोडामि>प्रा० तोडमि>अ० तोडउँ)। तोड़ता हूं, तोड़ डालूं, तोड़ सकता हूं। 'तोरौं छत्रक दंड जिमि।' मा० १.२५३

तोर्‍यो : भूकृ०पुं०कए०। तोड़ डाला। 'बालक नृपाल जू के ख्याल ही पिनाकु तोर्‍यो।' कवि० १.१२

तोष : सं०पुं० (सं०)। सन्तोष, तुष्टि। 'तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै।' मा० ७.११७.१४

तोषक : वि० (सं०)। तुष्ट करने वाला। मा० १.४३.४

तोषन : वि०पुं०। तुष्ट करने (के शील) वाला। मा० ७.१०९.११

तोषनिहारा : वि०पुं०। तुष्ट करने वाला। मा० २.४१.८

तोषये : सन्तुष्ट करने के लिए। मा० ७.१०८.९

तोषा : तोष। मा० १.४३.४

तोषि : पूकृ०। सन्तुष्ट करके। 'पोषि तोषि थापि आपनो न अवडेरिए।' हनु० ३४

तोषिए, ये : आ०कवा०प्रए०। संतुष्ट कीजिए। 'तुलसिदास हरि तोषिये सो साधन नाहीं।' विन० १०९.५

तोषिहैं : आ०भ०प्रए०। तुष्ट करेंगे। 'जोगिनी जमति कालिका कलाप तोषिहैं।' कवि० ६.२

तोषु : तोष+कए०। 'बिनु अधार मन तोषु न साँती।' मा० २ ३१६.२

तोषे : भूकृ०पुं०ब०। तोषयुक्त हुए। 'तोषे राम सखा की सेवाँ।' मा० २.२२१.३

तोषेउ : भूकृ०पुं०कए०। तोषयुक्त हुआ। 'प्रभु तोषेउ।' मा० १.७७.६

तोहारा : (अ० तुहार) तेरा। मा० १.२८२.६

तोंहि : तोहि। 'तोंहि स्याम की सपथ जसोदा।' कृ० ३

तोहि : तुझे। 'सपन सुनावउँ तोहि।' मा० १.७२

तोही : तोहि। 'प्रिय बादिनि सिख दीन्हिउँ तोही।' मा० २.१५.१

तोहू : तुझे भी। 'तोहू है बिदित बलु।' कवि० ६.११

तौंकी : पूकृ०। तौंक कर, तमक कर, आँच से तमतमा कर। 'लपटैं झपटैं सो तमीचर तौंकी।' कवि० ७.१४३

तौंसिअत : वकृ०पुं०कवा० (तमस्+कर्मवाच्य कृ०)। (धुएँ के धुन्ध में) अँधराये जाते (हुए)। 'तात तात तौंसिअत झौंसिअत झारहीं।' कवि० ५.१५

तौ : अव्यय। (१) तो, उस दशा में, तब। 'तौ कहि प्रगट जनावहु सोई।' मा० २.५०.६ (२) तु। 'गंगाजल कर कलस तौ तुरित मँगाइय हो।' रा०न० ३ (३) (सं तावत्>प्रा० ताव)। पहले, सर्वप्रथम। 'प्रभु कर चरन पछालि तौ अति सुकुमारी हो।' रा०न० १५ (४) तउ। तो भी। 'ऐसे भए तौ कहा तुलसी।' कवि० ७.४४

तौलि : पूकृ०। तोलकर (आजमाकर) 'मनहुं तौलि निज बाहु बल चला।' मा० १.१७६

तौलिए, ये : आ०कवा०प्रए०। तोला जाय। 'भले सुकृती के संग मोहि तुलाँ तौलिये तौ नाम कें प्रसाद भारु मेरी ओर नमिहै।' कवि० ७.७१

तौलौं : तब तक। 'जौ लौं कान्ह रहौ गुन गोए। तौलौं तुम्हहि पत्यात लोग सब।' कृ० ११

तौल्यौ : भूकृ०पुं०कए०। तोल लिया (उठा लिया)। 'जेहिं तौल्यौ कैलास।' दो० १६७

त्यक्त : भूकृ० (सं०)। त्यागा हुआ-त्यागे हुए। विन० ५०.५

त्याग : सं०पुं० (सं०)। (१) परिहार, छोड़ना। 'संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने।' मा० १.६.२ (२) दान, सांसारिकता के प्रति विराग। 'ध्यान को भूषन त्याग।' वैरा० ४४

त्यागइ : त्याग+प्रए०। छोड़ता है। 'जलहीन मीन तनु त्यागइ।' पा०मं० ६०

त्यागत : त्याग+वकृ०पुं०। छोड़ता। मा० ७.१४ छं० ७

त्यागन : त्याज्य। 'त्यागन गहन उपेच्छनी।' विन० १२४.२

त्यागहिं : त्याग+प्रब०। छोड़ते हैं। 'मुनि ध्यान त्यागहिं।' मा० १.३२२ छं०

त्यागहु, हू : त्याग+मब०। (१) छोड़ते हो। 'यह सामरथ अछत मोहि त्यागहु।' विन० ९४.५ (२) छोड़ो। 'त्यागहु तम अभिमान।' मा० ५.२३

त्यागा : त्याग+भूकृ०पुं०। छोड़ दिया। 'सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा।' मा० १.६६.२

त्यागि : त्याग+पूकृ० । छोड़ (कर) । 'सकउँ पूत पति त्यागि ।' मा० २.२१
त्यागिहहिं : त्याग+भ०प्रब० । छोड़ेंगे । 'आपन जानि न त्यागिहहिं ।' मा० २.१८३
त्यागिहै : (१) त्याग+भ०प्रए० । छोड़ेगा । (२) मए० । तू छोड़ेगा । 'कुटिल कपट कब त्यागिहै ।' विन० २२४.१
त्यागी : (१) वि०पुं० । उदार, दानी । (२) छोड़ने वाला । 'माया त्यागी संत ।' वैरा० ३२ (३) त्यागि । 'सिव समाधि बैठे सबु त्यागी ।' मा० १.८३.३ (४) त्याग+भूकृ०स्त्री० । छोड़ दी । 'मन हौं तजी, कान्ह हौं त्यागी ।' कृ० २५
त्यागु, गू : (१) त्याग+कए० । दान आदि । 'आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू ।' मा० २.१०७.५ (२) त्याग+आज्ञा—मए० । तू छोड़ । 'मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू ।' मा० ६.५६.७
त्यागें : छोड़े हुए, छोड़ कर । 'तब चलि गयउ निकट भय त्यागें ।' मा० ६.५४.८
त्यागे : त्याग+भूकृ०पुं०ब० । छोड़ दिये । 'बारि अधार मूल फल त्यागे ।' मा० १.१४४.२
त्यागेउ : त्याग+भूकृ०पुं०कए० । छोड़ दिया । 'बरस सहस दस त्यागेउ सोऊ ।' मा० १.१४५.१
त्यागै : त्यागइ । छोड़ दे । 'जो पन त्यागै ।' जा०मं० ७०
त्यागौं : त्याग+उए० । छोड़ूँ, छोड़ सकता हूँ । 'हौं तौ नहिं त्यागौं ।' विन० १७७.१
त्यागौ : त्यागहु । 'जो तुम त्यागौ राम ।' विन० १७७.१
त्यों, त्यौं : (१) तिमि (अ० तेवँ) । उस प्रकार । 'तुलसी ज्यों ज्यों घटत तेज तन त्यों त्यों प्रीति अधिकाई ।' गी० २.७६.४ (२) ओर (तन) । 'चितै तुम्ह त्यों हमरो मन मोहैं ।' कवि० २.२१
त्रपा : सं०स्त्री० (सं०) । लज्जा । 'भए बिहाल नृपाल त्रपा हैं । गी० ७.१३.५
त्रय : सं०पुं० (सं०) । तीन का समूह (तीन) । 'तपत सदा त्रय ताप ।' वैरा० ६
त्रयताप : तापत्रय । मा० १.३६.६
त्रयी : सं०पुं० (सं०) । (१) तीन का समूह (२) वेदत्रयी=ऋक्, यजुः, साम । 'अदभुत त्रयी किधौं पठई है ।' गी० २.२४.३
त्रसित : भूकृ०वि० (सं० त्रस्त) । भयभीत । मा० १.१७४.८
त्रसे : त्रसित । डर गये । 'कमठ भू भूधर त्रसे ।' मा० ६.६१ छं०
त्रस्त : त्रसित । विन० ५६.६
त्रस्यो : भूकृ०पुं०कए० । डर गया । 'बली त्रास त्रस्यो हौं ।' विन० १८१.४
त्रातहि : त्राता को, रक्षक को । मा० ७.३०.३

त्राता : वि०पुं० (सं०) । रक्षक । मा० ७ ८३.२

त्रातु : आ०—प्रार्थना—प्रए० (सं० त्रायताम्=पातु) । रक्षा करे । मा० ३.११.६

त्रान : सं०पुं० (सं० त्राण) । रक्षा, रक्षा साधन । 'नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया ।' मा० २.२१६.५

त्राना : त्रान । मा० ६.८०.३

त्रास : सं०पुं०+स्त्री० (सं०) । भय । मा० १.६३.१

त्रासइ : त्रास+प्रए० । भयभीत करता है । 'तेहि बहु बिधि त्रासइ देस निकासइ ।' मा० १.१८३ छं०

त्रासक : वि० (सं०) । भयदायक । 'त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी ।' मा० १.४०.४

त्रासकु : त्रासक+कए० । एकमात्र भयदाता । 'तरनि त्रासकु ।' गी० ६.१४.५

त्रासन : (१) त्रास+संब० । त्रासों (से) । 'त्रासन चकित सो परावनो परो सो है ।' कवि० ७.८४ (२) सं०पुं० (सं०) । त्रस्त करना । 'बाँधि करि त्रासन दीन्हो ।' कवि० ७.११७

त्रासहु : त्रास+मब० । डराओ, भयभीत करो । 'सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई ।' मा० ५.१०.८

त्रासा : त्रास । 'भाजि भवन पैठीं अति त्रासा ।' मा० १.६६.५

त्रासित : भूकृ०वि० (सं०) । डराया हुआ, भयाक्रान्त किया हुआ । 'एक एक रिपु तें त्रासित जन ।' विन० ६३.५

त्राहि : आ०—प्रार्थना—मए० (सं० त्रायस्व=पाहि) । तू रक्षा कर । 'त्राहि त्राहि आरत जन त्राता ।' मा० ७.८३.२ (२) रक्षा हेतु कहा जाने वाला शब्द । त्राहि तीनि कह्यो द्रौपदी ।' दो० १६६

त्रिकाल : तीन काल=भूत, वर्तमान, भविष्यत् । 'तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनि नाथा ।' मा० २.१२५.७

त्रिकालग्य : (सं० त्रिकालज्ञ) । तीनों कालों के विषयों का ज्ञाता । मा० १.६६

त्रिकूट : सं०पुं० (सं०) । तीन शिखरों वाला पर्वत विशेष जिस पर लङ्का बसी थी । मा० १.१७८.५

त्रिकूटु : त्रिकूट+कए० । 'त्रिकूटु उपारि लै बारिधि बोरौं ।' कवि० ६.१४

त्रिगुन : माया (प्रकृति) के तीन गुण—(१) सत्त्व गुण=प्रकाश, सुख, ज्ञान । (२) रजोगुण=चपलता, दुःख । (३) तमोगुण=मोह, अज्ञान ।

त्रिगुनपर : माया के तीनों गुणों से परे=निर्गुण । 'त्रिपुरारि त्रिलोचन त्रिगुनपर ।' कवि० ७.१५०

त्रिजग : सं०पुं० (सं० तिर्यक्-ग्) । तमोगुणी सृष्टि=पशुपक्षी आदि । 'त्रिजग देव नर असुर समेते ।' मा० ७.८७.६

त्रिजटाँ : त्रिजटाने । 'त्रिजटाँ कहा ।' मा० ६.९९ छं०

त्रिजटा : (सं०) एक राक्षसी जो सीता की सखी हो गयी थी । मा० ५.११.१

त्रिताप : तापत्रय । हनु० २८

त्रिदस : सं०पुं० (सं० त्रिदश) । देव । कवि० ७.१५०

त्रिदोष : सं०पुं० (सं०) । आयुर्वेद वर्णित तीन तत्त्व—वात, पित्त और कफ जब कुपित होते हैं तो सन्निपात रोग (त्रिदोष) बनता है । हनु० २६

त्रिदोषदाह : सन्निपात रोग की जलन । कवि० ६.२५

त्रिदोषे : भूकृ०पुं०ब० । त्रिदोषग्रस्त, सन्निपात रोगी । 'कैधौं कूर काल बस तमकि त्रिदोषे हैं ।' गी० १.९५.२

त्रिपथ : तीन मार्ग (स्वर्ग, पाताल, मर्त्य) । 'त्रिपथ लससि नभ पताल धरनि ।' विन० २०.१

त्रिपथगा : सं०स्त्री० (सं०) । गङ्गा । विन० १७.१

त्रिपथगामिनि : त्रिपथगा । कवि० २.९

त्रिपुंड : सं०पुं० (सं० त्रिपुण्ड्र) । मस्तक पर भस्म आदि की तीन आड़ी रेखाएँ । मा० १.२६८.४

त्रिपुर : सं०पुं० (सं०) । (१) असुरविशेष के तीन नगर=स्वर्ण, चाँदी तथा लौह के पुर जो त्रिगुण के प्रतीक हैं (२) उन नगरों का स्वामी असुर=त्रिपुरासुर । मा० १.५७.८

त्रिपुरारि, री : त्रिपुर के शत्रु=शिवजी । मा० १.४६; ४८.६

त्रिबलि, ली : सं०स्त्री० (सं० त्रिवलि, त्रिवली) । उदर की तीन सिकुड़नें या रेखाएं । गी० ७.१६.३ 'नाभी सर त्रिबली निसेनिका ।' गी० ७.१७.६

त्रिबिक्रम : सं०+वि० (सं० त्रिविक्रम) । विष्णु, विराट् भगवान् जिन्होंने तीनों लोकों को तीन डगों=पादक्षेपों (विक्रमों) में नापा था (ऋग्वेद में त्रिलोक व्यापी परमात्मा) । मा० ४.२९.८

त्रिबिध : वि० (सं० त्रिविध) । तीन प्रकारों (विधाओं) वाला । 'त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी ।' मा० १.४०.४

त्रिबिधि : त्रिबिध । तीन विधियों (रीतियों=प्रकारों) वाला । 'त्रिबिधि ताप भव दाप नसावनि ।' मा० ७.३५.१

त्रिबेनिहिं : त्रिवेणी में । 'त्रिबेनिहिं आए ।' मा० २.२०४.३

त्रिबेनीं : त्रिवेणी में । 'सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं ।' मा० १.४४.४

त्रिबेनी : सं०स्त्री० (सं० त्रिवेणी) । प्रयाग में गङ्गा-यमुना-सरस्वती की त्रिधारा (तीन वेणियों) का संगम । मा० २.२०५.६

त्रिभंग : सं०पुं० (सं०)। खड़े होने की विशेष मुद्रा जिसमें घुटने, कटि और ग्रीवा टेढ़े रहते हैं। (२) उस मुद्रा में खड़ा होने वाला-ली (कृष्ण)। 'जो हैं मूरति त्रिभंग।' कृ० २०

त्रिभुअन : त्रिभुवन। मा० ६.८३ छं०

त्रिभुवन : सं०पुं० (सं०)। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोकों का समुदाय। मा० ६.११६.४

त्रिय : तिय। मा० १.६७.६

त्रिरेख : त्रिबली। 'उदर त्रिरेख मनोहर।' गी० ७.२१.११

त्रिलोक : त्रिभुवन। मा० ३.४ छं०

त्रिलोचन : वि०+सं० (सं०)। तीन नेत्रों वाला=शिव। कवि० ७.१४६

त्रिविधार्ति : (त्रिविध+आर्ति)=त्रिताप। विन० ४३.६

त्रिसंकू : सं०पुं० (सं० त्रिशङ्कु)। एक सूर्यवंशी राजा=हरिश्चन्द्र का पिता। मा० २.२२९.१

त्रिसिरा : सं०पुं० (सं० त्रिशिरस्—त्रिशिराः)। खर-दूषण बन्धु एक राक्षस। मा० ५.२१.९

त्रिसिरारि : (सं० त्रिशिरोऽरि) त्रिसिरा के शत्रु=राम। मा० ४.३० क

त्रिसिरु : त्रिसिरा+कए०। कवि० ६.४

त्रिसूल : सं०पुं० (सं० त्रिशूल)। (१) आयुध विशेष जिसमें तीन नोकें होती हैं। मा० ६.७६.४-६ (२) शिव का आयुध जो तापत्रय का प्रतीक है। मा० १.९२.५

त्रिसूलन्हि : त्रिसूल+संब०। त्रिशूलों (से)। 'व्याकुल किए भालु कपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि।' मा० ६.४२

त्रेताँ : त्रेता युग में। 'त्रेताँ ब्रह्म मनुज तनु धरिही।' मा० ४.२८.७

त्रेता : सं०स्त्री०+पुं० (सं०)। चतुर्युगी का दूसरा युग। 'सत्त्व बहुत, रज कछु, रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा।' मा० ७.१०४.३

त्रैकटक : (सं० त्रयकटक) तीन तत्त्वों की सेना। 'सत्त्वगुण-प्रमुख त्रैकटक कारी।' विन० ५८.२

त्रैनैन : त्रिनयन। त्रिलोचन=शिव। विन० ४९.५

त्रैलोक : त्रैलोक्य। मा० १.१९७.५

त्रैलोका : त्रैलोक। मा० १.८७.५

त्रैलोक्य : (सं०) तीनों लोकों का समूह—दे० त्रिभुवन। कृ० २१

त्रैवर्ग : (सं० त्रिवर्ग=वर्गत्रय) अर्थ, धर्म और काम पुरुषार्थों का गण जिसे 'अभ्युदय' कहते हैं (लौकिक मूल्य)। विन० ५७.२

त्रैव्याधि : (सं० व्याधित्रय)=त्रिविधार्ति—दे० तापत्रय। विन० ५७.९

त्रोन : सं०पुं० (सं० तूण) । तूणीर, तरकस । मा० ६.७१.३

त्वं : सर्वनाम (सं०) । तू । विन० ५४.४

त्वच : सं०स्त्री० (सं० त्वच्) । चमड़ी, छाल । मा० ७.१३ छं० ५

त्वदांघ्रि : (सं०) । तेरे चरण । मा० ३.४ छं०

त्वदीय : सार्वनामिक वि० (सं०) । तेरा, तेरी, तेरे । मा० ३.४ छं०

त्वद्भक्ति : (सं०) तेरी भक्ति । विन० ५७.८

त्वद्रूप : (सं०) तेरा रूप, तुझ से अभिन्न, तुझ से एकाकार । 'सर्व मेवात्र त्वद्रूप ।' विन० ५४.३

त्वयि : सर्वनाम (सं०) । तेरे······पर । 'गति त्वयि प्रसन्ने ।' विन० ५७.२

थ

थकि : पूकृ० (सं० स्तकित्वा—ष्टक प्रतिघाते, स्थित्वा>प्रा० थक्किअ>अ० थक्कि) । (१) परिश्रान्त होकर । 'जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना ।' मा० ४.१५.१२ (२) अकचका कर, स्थिर होकर । 'रामहि चितइ रहे थकि लोचन ।' मा० १.२६६.८

थकित : भूकृ० (सं० स्तकित, स्थित>प्रा० थक्किय) । (१) एक तान-स्थिर, (मुग्ध तथा अचंचल । 'सहज बिराग रूप मनु मोरा । थकित होत जिमि चंद चकोरा ।' मा० १.२१६.३ (२) रुका हुआ । 'चंडकर थकित फिरि तुरग हाँके ।' कवि० ६.४५ (३) परिश्रान्त, स्तब्ध । 'थकित रहे धरि मौन ।' मा० २.१६०

थकें : थकने पर, परिश्रान्त होने पर । 'पैरत थकें थाह जनु पाई ।' मा० १.२६३.४

थके : भूकृ०पुं०=थकित—ब० । एक तान-स्थिर, मुग्ध-स्तब्ध । 'थके नयन रघुपति छबि देखें ।' मा० १.२३२.५ (२) परिश्रान्त । 'थके बिलोकि पथिक हियँ हारे ।' मा० २.२७६.५

थन : सं०पुं० (सं० स्तन>प्रा० थण) । पयोधन, कुच । मा० २.१६६.५

✓**थप थपइ** : (सं० स्थापयति>प्रा० थप्पइ>स्थापित करना, स्थायी बनाना, प्रतिष्ठित करना) आ०प्रए० । स्थापित करता है 'उथपै तेहि को जेहि रामु थपै ।' कवि० ७.४७

थपत : वकृ०पुं० (सं० स्थापयत्>प्रा० थप्पंत)। स्थापित करता-ते। 'नाम सों प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत।' विन० १३०.५

थपति : सं०पुं० (सं० स्थपति)। थवई, वास्तु कलाकार। 'चले सहित सुर थपति प्रधाना।' मा० २.१३३.६

थपन : (१) वि०पुं०। स्थापित करने वाला। 'उथपे थपन थिर, थपे उथपनहार।' हनु० २२ (२) सं०पुं० (सं० स्थापन>प्रा० थप्पण)। प्रतिष्ठित करना, स्थायित्व देना। 'उथपे थपन थपे उथपन पन।' विन० ३१.३

थपि : थापि। स्थापित कर। 'करि कुलरीति कलस थपि तेलु चढ़ावहिं।' जा०मं० ११५

थपिहै : आ०भ०प्रए०। स्थापित करेगा, प्रतिष्ठ देगा। 'थपिहै तेहि को हरि जो टरिहै।' कवि० ७.४७

थपे : भूकृ०पुं०। स्थापित किये हुए (को)। 'तेरे थपे उथपै न महेस।' हनु० १७

थपै : थपइ। थाप सकता है। 'थपै थिर को कपि जे घर घाले।' हनु० १७

थप्यो : भूकृ०पुं०कए०। स्थापित किया। 'बालि सो बीरु बिदारि सुकंठु थप्यो।' कवि० ७.१

थर : थल।

थरथर : काँपने की चेष्टा। 'नयन सजल तन थर थर काँपी।' मा० २.५४.४

थरु : थर+कए०। स्थान। 'प्रतीति मानि तुलसी बिचारि काको थरु है।' कवि० ७.१३९

थल : सं०पुं० (सं० स्थल>प्रा० थल)। स्थान, भूभाग। मा० १.८.१

थलचर : स्थल (भूमि) पर रहने वाले जीव। मा० १.३.४

थलचारी : थलचर। मा० १.८५.४

थलरुह : सं०पुं० (सं० स्थलरुह)। पृथ्वी पर उगने वाले वृक्षादि। गी० २.४६.३

थलु : थल+कए०। वह स्थान। 'थलु बिलोकि रघुवर सुखु पावा।' मा० २.१३३.५

थहाइबी : भकृ०स्त्री०। अवगाहित करनी। 'धाइ न जाइ थहाइबी सर सरिता अवगाह।' दो० ४४९

थहावौं : आ०उए० (सं० स्ताधयामि>प्रा० थाहावमि>प्रा० थाहावउँ)। थाह लेता हूं। 'गोपद बुड़िबे जोग करम करि, बातनि जलधि थहावौं।' विन० २३२.३

थाका : भूकृ०पुं० (सं० स्थित, स्तकित>प्रा० थक्क) रुक गया, परिश्रान्त हुआ। 'गर्जा अ[illegible] अंतर बल थाका। मा० ६.९२.२

थाकु : सं०पुं०कए०। रोक टोक, कमी। 'मेरे कहा थाकु गोरस को।' कृ० ५

थाके : थके। 'पैरि पैरि थाके हैं।' गी० १.६४.३

थाकेउ : थाका+कए० । अचल हुआ, स्तब्ध रह गया । 'रबि समेत रथु थाकेउ ।' मा० १.१९५

थाको : थाकेउ । रुक गया, निष्ट चेष्ट हो गया, थक गया । 'मेरो सब पुरुषारथ थाको ।' गी० ६.७

थाक्यो : थाकेउ । रह गया, रुका पड़ा रहा । 'सो थाक्यो बरह्यो एकहिं तक ।' कृ० ५६

थाति, ती : सं०स्त्री० (प्रा० थत्ति) । (१) स्थायी निधि । 'अघ अवगुननि की थाति ।' विन० २२१.२ (२) धरोहर, न्यास । 'दुइ बरदान भूप सन थाती ।' मा० २.२२.५

थाना : सं०पुं० (सं० स्थानक>प्रा० थाणअ) । चौकी, पड़ाव । 'तहँ तहँ बैठे सुर करि थाना ।' मा० ७.११८.११

थानी : वि०पुं० (सं० स्थानिक>प्रा० थाणिअ) । किसी स्थान का स्वामी—दिक्पाल आदि । 'सुख सनेह सब दिये दसरथहि खरि खलेल थिर थानी ।' गी० १.४.१३

थापन : थपन । स्थापित करने वाला । 'तुम उथपन थापन ।' जा०मं० १७२

थापना : सं० स्त्री० (सं० स्थापना) । 'करिहउँ इहाँ संभु थापना ।' मा० ६.२.४

थापनो : थापन+कए० । एकमात्र स्थापन कर्ता । 'राय दसरथ के तू उथपन थापनो ।' विन० १८०.१

थापहिं : आ०प्रब० (सं० स्थापयन्ति>प्रा० थप्पंति>अ० थप्पहिं) । स्थिर प्रतिष्ठा देते हैं । 'असुर मारि थापहिं सुरन्ह ।' मा० १.१२१

थापि : थपि । 'लिंग थापि बिधिवत करि पूजा ।' मा० ६.२.६

थापिअ, ए, थापिय, ये : आ० कवा०प्रए० । स्थापित कीजिए । 'थापिअ जनु सब लोगु सिहाऊ ।' मा० २.८८.७

थापेउँ : आ०-भूकृ०पुं०+उए० । मैंने स्थापित किया । 'थापेउँ सिव सुखधाम ।' मा० ६.११९ क

थाप्यो : थप्यो । कवि० ७.१०

थार : सं०पुं० (सं० स्थाल>प्रा० थाल) । मा० १.९९.३

थारा : थार । मा० १.३०५.१

थारीं : थाली में । 'लिएँ आरती मंगल थारीं ।' मा० १.३०१.४

थारी : सं०स्त्री० (सं० स्थाली>प्रा० थाली) । छोटा थाल ।

थालिका : (१) थारी (सं० स्थालिका) । (२) आलबाल, थाला जो वृक्षों के आस-पास सींचने को बनाते हैं । 'भक्ति कल्प थालिका ।' विन० १७.२

थाह : सं०स्त्री० (सं० स्ताध>प्रा० थाह) । पानी में रुकने को भूमि । 'पैरत थकें थाह जनु पाई ।' मा० १.२६३.४

थाहत : वकृ०पुं० । थाह लेते । 'सरि थाहत जहँ तहँ घई ।' गी० ५.३८.४

थाहा : थाह । मा० ७.९१.६

थाहैं : थाह में । 'कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहैं ।' गी० ७.१३.१

थिति : सं०स्त्री० (सं० स्थिति) । (१) स्थिरता, धृति । 'प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं ।' मा० २.२२७.४ (२) रक्षा, धारण-पोषण । 'उतपति थिति लय ।' मा० २.२८२.५ (३) रहना । 'तुलसी किएँ कुसंग थिति होंहि दाहिने बाम । दो० ३६१

थिर : वि० (सं० स्थिर>प्रा० थिर) । दृढ़, अचल, टिकाऊ । 'मनु थिर करि तब संभु सुजाना ।' मा० १.८२.४

थिरता : सं०स्त्री० (सं० स्थिरता) । अचलता, दृढ़ता, स्थायित्व ।

थिरताइ : थिरता । 'राम भगति थिरताइ ।' दो० १४०

थिरथानी : (दे० थानी) अचल स्थान वाला—दिक्पाल, लोकपाल । गी० १.४.१३

थिरातो : क्रियाति०पुं०ए० । स्थिर हो जाता+निर्मल होता । 'जनम कोटि को काँदलो ह्रद हृदय थिरातो ।' विन० १५१.६

थिराना : भूकृ०पुं० । (१) स्थिर हुआ (२) निर्मल हुआ । 'भरेउ सुमानस सुथल थिराना ।' मा० १.३६.९

थिराने : 'थिराना' का रूपान्तर । (१) स्थिर हुए (२) निर्मल हुए । 'सदा मलीन पंथ के जल ज्यों कबहुं न हृदय थिराने ।' विन० २३५.३

थीरा : सं०पुं० (सं० स्थैर्य>प्रा० थीर) । दृढता, स्थिरता । 'निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा ।' मा० ७.९०.७ (२) थिर ।

थूनि, नी : सं०स्त्री० (सं० स्थूणा>प्रा० थूणा>अ० थूणी) । स्तम्भ । जा०मं० ८५

थैली : सं०स्त्री० (सं० स्थगिका>प्रा० थविआ=थइल्ली) । रुपया-पैसा आदि रखने का वस्त्र-पात्र । मा० १.२७६.४

थोर : वि०पुं० (सं० स्तोक>प्रा० थोअ>अ० थोअड=थोअडअ । थोड़ा । 'मोहि बुधि बल अति थोर ।' मा० १.१४ ख

थोरा : थोर । मा० ७.१०४.५

थोरि : थोरी । 'मति थोरि कठोरि न कोमलता ।' मा० ७.१०२.२

थोरिउ : थोड़ी भी । 'मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी ।' मा० २.१२.२

थोरिक : (थोरि+इक) । कुछ थोड़ी=अल्पतर । 'एहि घाट तें थोरिक दूरि अहै ।' कवि० २.६

थोरिहिं : थोड़ी ही । 'थोरिहिं बात पितहि दुखु भारी ।' मा० २.४२.६

थोरी : थोर+स्त्री० । थोड़ी, अल्प । मा० १.४३.९

थोरें : (१) थोड़े···से । 'सिथिल सरीरु सनेहु न थोरें । मा० २.१९८.५ (२) थोड़े में । 'रीझत थोरें ।' कवि० ७.४९

थोरे : 'थोर' का रूपान्तर । थोड़े । 'थोरे महुं जानिहहिं सयाने ।' मा० १.१२.६

थोरेहि : थोड़े ही । 'थोरेहि महुं सब कहउँ बुझाई ।' मा० ३.१५.१

थोरेहुँ : थोड़े में भी । 'जस थोरेहुं धन खल इतराई ।' मा० ४.१४.५

थोरो : थोरा+कए० । 'जनि मागिये थोरो ।' कवि० ७.१५३

द

दँतियाँ : सं०स्त्री०ब० । शिशु के दाँत । कवि० १.३

दँतुरियाँ : दँतियाँ । 'दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरीं ।' गी० १.३१.४

द : (समासान्त में) वि०पुं० (सं०) । देने वाला । नर्मद, जलद आदि ।

दंड : सं०पुं० (सं०) । (१) ध्वज आदि-सम्बन्धी लग्गी । 'रघुपति कीरति बिमल पताका । दंड समान भयउ जसु जाका ।' मा० १.१७.६ (२) डंडा, यष्टि । 'काल दंड गहि काहु न मारा ।' मा० ६.३७.७ (३) (समासान्त में) दृढ़, पुष्ट, समर्थ । 'उर बिसाल भुजदंड चंड ।' हनु० २ (४) नाल, डंठल । 'तोरौं छत्रक दंड जिमि ।' मा० १.२५३ (५) प्रणाम की साष्टाङ्ग विधि जिसमें दण्डाकार पृथ्वी पर गिरते हैं=दंडवत । 'लगे करन सब दंड प्रनामा ।' मा० १.२६९.२ (६) घड़ी भर का समय=६० पल । 'दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर काम कृत कौतुक अयं ।' मा० १.८५ छं० (७) अपराध की निष्कृति=सजा । 'आन दंड कछु करिअ गोसाईं ।' मा० ५.२४.८ (८) पराजित शत्रु से ग्राह्य धन आदि । 'लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हे ।' मा० १.१५४.७ (९) राजनीति में—साम, दान और भेद के अतिरिक्त—चतुर्थ उपाय=दण्डनीति=शत्रु पर आक्रमण की नीति । 'साम दान अरु दंड बिभेदा ।' मा० ६.३८.९

✓**दंड दंडइ** : (सं० दण्डयति>प्रा० दंडइ—दण्ड देना, डाँड़ना) आ०प्रए० । दण्ड देता है, डाँड़ता है । 'सरलै दंडै चक्र ।' दो० ५३७

दंडक : सं०पुं० (सं०) । पौराणिक राजा 'दण्ड' के नाम से प्रसिद्ध दक्षिण का वन प्रदेश-विशेष । मा० ३.१३.१६

दंडकारण्य : (दंडक+अरण्य) । दण्डक वन । विन० ५०.६

दंडकारि, री : वि० (सं० दण्ड-कारिन्) । दण्डाधिकारी, न्यायपाल, सजा देने वाला । 'काल नाथ कोतवाल, दंड-कारि दंडपानि ।' कवि० ७.१७१

दंडपानि : वि०+सं० (सं० दण्डपाणि) । (१) हाथ में दण्ड लिये हुए । (२) लठैत। (३) यमराज (४) कालभैरव, भैरवनाथ । कवि० ७.१७१

दंडवत : (सं० दण्डवत्=दण्डतुल्य) प्रणाम की रीतिविशेष जिसमें प्रणामकर्ता भूमि पर साष्टाङ्ग प्रणिपात करता हुआ दण्डाकार हो जाता है । मा० १.१४५

दंडै : दंडइ ।

दंत : सं०पुं० (सं० दन्त) । दाँत । कवि० १.५

दंतकथा : सं०स्त्री० (सं०) । किंवदन्ती, कहकूत, कही-कहावत, लोक-प्रचलित मनगढ़न्त कहानी । 'इति बेद बदंति न दंतकथा ।' मा० ६.१११.१६

दंतन : दंत+संब० । दाँतों । 'नख दंतन सों भुज दंड बिहंडत ।' कवि० ६.३५

दंति, ती : सं०पुं० (सं० दन्तिन्) । दन्तावल, हाथी । गी० १.६०.५

दंपति : सं०पुं० (सं०) । पति-पत्नी (का युगल) । मा० १.६८.७

दंभ : सं०पुं० (सं०) । (१) छलना (२) धर्म, सदाचार आदि का मिथ्या प्रदर्शन (३) धूर्तता (४) मिथ्याभिमान । 'लोभ कें इच्छा दंभ बल ।' मा० ३.३८ ख

दंभा : दंभ । मा० १.३५.६

दंभापहन : वि० (सं० दम्भापहन्) । दम्भनाशक । विन० ५६.१

दंभिन्ह : दंभी+संब० । दम्भियों, पाखण्डियों । 'जनु दंभिन्ह कर जुरा समाजा ।' मा० ४.१५.६

दंभिहि : दम्भी को । 'दंभिहि नीति कि भावई ।' मा० ७.१०५ ख

दंभी : वि०पुं० (सं० दम्भिन्) दम्भ-युक्त । मिथ्याचारी, पाखण्डी ।

दंस : सं०पुं० (सं० दंश) । एक प्रकार की बड़ी मक्खी जो तीव्र दंशन के लिए प्रसिद्ध है=डाँस । मा० ४.१७.८

दइअ : सं०पुं० (सं० दैव>प्रा० दइअ) । भाग्य, नियति, कर्मदेव । 'आह दइअ मैं काह नसावा ।' मा० २.१६३.६

दइउ : दइअ+कए० । भाग्य । 'दाहिन दइउ होइ जब सबही ।' मा० २.२८०.५

दईं : भूकृ०स्त्री०ब० । दीं । 'असीस सब काहूं दईं ।' मा० १.१०२ छं०

दई : भूकृ०स्त्री० । दी । 'बिधि···तुम्हहि सुंदरता दई ।' मा० १.९६ छं०

दए : भूकृ०पुं० । दिये, दिये हुए । 'जनु बंसी खेलत चित दए ।' मा० ६.८८.५

दक्ष : (१) सं०पुं० (सं०) । सती के पिता=शिव के श्वशुर=एक प्रजापति । 'दक्षमख अखिल विध्वंसकर्ता ।' विन० ४९.७ (२) वि० निपुण । 'यज्ञ रक्षण दक्ष ।' विन० ५०.४ (३) दक्षिण, दाहिना । 'दक्ष दिशि रुचिर वारीश कन्या ।' विन० ६१.७

दक्षिण : वि० (सं०) (१) दाहिना; (२) दिशाविशेष । विन० ५१.७

दखिन : दक्षिण (प्रा० दक्खिण)। 'देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं।' मा० २.१४२.८

दगा : सं०स्त्री० (फा० दगा)। धोखा, विश्वासघात। 'जब पलकनि हठि दगा दई।' कृ० २४

दगाई : दगा। 'नाम सुहेत जो देत दगाई।' कवि० ७.६३

दगाबाज : वि० (फा० दगाबाज)। विश्वासघाती, वञ्चक। कवि० ७.१३

दगाबाजि, जी : सं०स्त्री० (फा० दगाबाजी)। विश्वासघाती का कर्म, धोखा-धड़ी। 'सुहृद समाज दगाबाजिही को सौदा सूत।' विन० २६४.२

दगो : भूकृ०पुं०कए०। तोप के घोष के समान सर्वत्र विदित। 'लोक बेद हूं लौं दगो नाम भले को पोच।' दो० ३७३

दच्छ : दक्ष। (१) प्रजापतिविशेष। मा० १.६०.५ (२) निपुण। 'भवखेद छेदन दच्छ।' मा० ७.१३ छं० २ (३) दाहिना। 'दच्छ भाग अनुराग सहित इंदिरा अधिक ललिताई।' विन० ६२.१२

दच्छिन : दखिन। 'देखु बिभीषन दच्छिन आसा।' मा० ६.१३.१

दछिना : सं०स्त्री० (सं० दक्षिणा)। यज्ञादि में ब्राह्मणों को प्रदेय द्रव्य। 'बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई।' मा० १.२०३.३

दत्त : भूकृ० (सं०)। दिया हुआ, दी हुई। 'सो ब्रह्म दत्त प्रचंड सक्ति।' मा० ६.८३ छं०

ददाति : आ०प्रए० (सं०)। देता है। मा० ६ श्लोक ३

दधि : सं०पुं० (सं०)। दही। मा० १.२०३

दधिमुख : एक वानर-यूथप। मा० ५.५४

दधीच दधीचि : एक मुनि जिनकी अस्थियों से इन्द्र ने वज्र बनाया था। मा० २.६५.३; मा० २.३०.७

दनियाँ : दानी+ब०। देने वाले। 'नख सिख सुभग सकल सुख दनियाँ। गी० १.३४.१

दनुज : सं०पुं० (सं०)। कश्यप-पत्नी दनु के पुत्र=दानव जो दितिपुत्र दैत्यों के साथी थे। मा० १.७ घ

दनुजारि, री : दनुजों के शत्रु=विष्णु। मा० १.१३६.४

दनुजेश : दनुजों के स्वामी (हिरण्याक्ष आदि)। विन० ५२.२

दनुजेस : दनुजेश।

दपटि : पूकृ० (सं० दर्प+अट्ट अतिक्रमहिंसयोः>प्रा० दप्पट्ट)। डपट कर, डाँट कर। मा० ६.८२.५

दपट्टहिं : आ०प्रब० डपटते हैं। 'खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं।' मा० ६.८८.६

दबकि : पूकृ० । दबा कर, रौंद कर । 'दबकि दबोरे एक ।' कवि० ६.४१

दबत : वकृ०पुं० । धसकता, धसकते, दबाते । 'महाबली बालि कें दबत दलकति भूमि ।' कवि० ६.१६

दबाई : भूकृ०स्त्री० । दबा ली, दबोच रखी । 'दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबंधु ।' कवि० ७.९७

दबि : दाबि । 'मैं तौ दियो छाती पबि, लयो कलिकाल दबि ।' विन० २५९.२

दबोरे : भूकृ०पुं०ब० । दबोच लिये, कुचल डाले । कवि० ६.४१

दम : सं०पुं० (सं०) (१) दमन, नियन्त्रण । (२) इन्द्रियों तथा मन का निग्रह, वासनाओं से चित्त को हटाना जो वेदान्त की छह सम्पत्तियों में द्वितीय है । मा० १.३७.१३

दमंकहिं : दमकहिं । 'जनु दहुँ दिसि दामिनी दमंकहिं ।' मा० ६.८७.३

दमंका : दमक । 'सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका ।' मा० ६.१३.६

दमक : सं०स्त्री० । दमकने की क्रिया । चकचौंधने वाली तीखी दीप्ति; बिजली की तेज चमचमाहट । मा० १.१४.२

✓**दमक दमकइ** : दमक+प्रए० । दमकती है । 'कहत बचन रद लसहिं दमक जनु दामिनि ।' जा०मं० ७२

दमकति : वकृ०स्त्री० । दमकती, चमचमाती । कृ० १८

दमकहिं : आ०प्रब० । चमचमाती हैं, तीखी किरणें फेंकती हैं । 'चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि ।' मा० १.३४७.४

दमकेउ : भूकृ०पुं०कए० । चमचमा उठा । 'दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ ।' मा० १.२६१.६

दमकैं : दमकहिं । 'दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों ।' कवि० १.३

दमन : (१) वि० (सं०) । संचत करने वाला, दमन करने वाला । 'संसय समन दमन मन राम सुजस सुख मूल ।' मा० ३.६ क (२) सं०पुं० । दमन करने की क्रिया । 'दुवन दल दमन को कौन तुलसीस है ।' हनु० ३

दमनीय : भकृ०पुं० (सं०) । दमन-योग्य, खण्डनीय । 'रचेउ न धनु दमनीय ।' मा० १.२५१

दमनू : दमन+कए० । एकमात्र दमनकारी । 'मंगल मूल अमंगल दमनू ।' मा० २.९.५

दमसीला : वि० (सं० दमशील) । मन तथा इन्द्रियों का स्वभावत: निग्रह करने वाले, संयमी । मा० ७.२२.५

दमानक : सं०स्त्री० (फा० दमान=हाथी, अजगर, सिंह, मगर, नदी, बाढ़, जोश) । तीव्र आक्रमण, आक्रामक वेग । 'देव भूत पितर करम खल काल ग्रह मोहि पर दवरि दमानक सी दई है ।' हनु० ३८

दमि : पूकृ० । दमन करके, निग्रह द्वारा वश में करके । 'देह दमि करत बिबिध जोग जप ।' कवि० २.६

दमु : दम+कए० । इन्द्रियनिग्रह+मनोनिग्रह । 'दमु दुर्गम दान दया मख कर्म ।' कवि० ७.८७

दमैया : वि० । दमन करने वाला । 'कौन है दारुन दुक्ख दमैया ।' कवि० ७.५३

दयऊ : भूकृ०पुं०कए० । दिया । 'तनयँ जजातिहि जौबनु दयऊ ।' मा० २.१७४.८

दया : सं०स्त्री० (सं०) । एक मनोवृत्ति जो दूसरे के कष्ट में रक्षाभाव के साथ द्रवीभाव उत्पन्न करती है । कृपा, करुणा, अनुकम्पा । मा० १.३७.१३

दयाकर : (१) दया करने वाला (२) दया का आकार । मा० ७.१८.१

दयानिधि : दया का सागर । मा० २.१६३.८

दयाल : वि० (सं० दयालु) । दयायुक्त, दयाशील । मा० १.२१

दयाला : दयाल । मा० १.१९२ छं० १

दयालु : दयाल । मा० १.५६.६

दयावने : वि०पुं०ब० । दया उत्पन्न करने वाले=दयनीय, दीन । 'देबी देव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ ।' हनु० १२

दयावनो : वि०पुं०कए० । दीन । कवि० ७.१२५

दये : दए ।

दयो : दयऊ । दिया । गी० १.४७.३

दर : सं०पुं० (सं०) । (१) शङ्ख । 'कुंद इंदु दर गौर सरीरा ।' मा० १.१०६.६ (२) डर, भय । 'परम दर वारय ।' मा० ६.११५.६ (३) 'दारुन दुसह दर दुरित दरन ।' विन० २४८.१

दरकि : पूकृ० । विदीर्ण होकर । 'दरकि दरार न जाई ।' गी० ६.६.३

दरजिनि : दरजी+स्त्री० । रा०न० ६ (फारसी में 'दर्ज-जन' सिलाई करने वाली स्त्री को कहते हैं और 'दर्जन' सूई का नाम है; फलत: 'दर्जिन' शब्द सीधा फारसी से विकसित है जबकि 'दरजी' उसका उत्तर विकास (पुंलिङ्गीकृत रूप) है)

दरजी : सं०पुं० (फा० दरजी) । सिलाई का व्यवसाय करने वाली जाति विशेष । 'ब्योंत करै बिरहा दरजी ।' कवि० ७.१३३

दरन : वि०पुं० । (१) विदीर्ण करने वाला (२) दलन करने वाला । 'दीन दुख दोष दारिद दरन ।' गी० ५.४३.४

दरनि : दरन+स्त्री० । विन० २०.२

दरप : दर्प । विन० ९३.४

दरपन : सं०पुं० (सं० दर्पण) । शीशा, आरसी । दो० २४४

दरबार : सं०पुं० (फा० दर्बार) । राजसभा । मा० २.२३

दरबारा : दरबार । मा० २.७६.६

दरस : सं०पुं० (सं० दर्श>प्रा० दरिस) । (१) दर्शनीय रूप । 'देखिबो दरस दूसरेहु चौथेहु ।' कृ० ४८ (२) दर्शन । 'दरस परस मज्जन अरु पाना ।' मा० १.३५.१

दरसन : सं०पुं० (सं० दर्शन>प्रा० दरिसण) । देखना । मा० १.४८ ख

दरसनी : सं०स्त्री० (सं० दर्शनी>प्रा० दरिसणी) । दर्पण । दो० ४६०

दरसनु : दरसन+कए० । एक बार दर्शन । 'इन्ह कर दरसनु दूरि ।' मा० १.२२२

दरसाइ : दरस+प्रए० । देखने में आता है, दिखता है । 'यह प्रफुलित नित दरसाइ ।' बर० २६

दरसी : (समासान्त में) वि०पुं० (सं० दर्शिन्>प्रा० दरिसी) । देखने वाला । 'तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनि नाथा ।' मा० २.१२५.७

दरसु : दरस+कए० (१) एक बार दर्शन । 'कहँ यह दरसु पुन्य परिनामा ।' मा० २.२२३.७ (२) एकमात्र दर्शनीय रूप । 'दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा ।' मा० २.१३६.३

दराज : वि० (फा० दराज=लम्बा) । दीर्घ । 'उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए ।' कवि० ७.७९

दरार, रा : सं०स्त्री० (सं० दर=रन्ध्र, सन्धि, छिद्र) । लम्बी फटन (जो वर्षा के बाद सूखी भूमि में गहरी बन जाती है) । 'अजहुं अवनि बिदरत दरार मिस ।' विन० २.१२.२ 'सुनि कायर उर जाहिं दरारा ।' मा० ६.४१.३

दरिद्र : (१) वि०पुं० (सं०) । दुर्गत, निर्धन, दुःख पीड़ित । मा० १.१४९.५ (२) सं०पुं० । दरिद्रता । 'सहि कि दरिद्र—जनित दुखु सोई ।' मा० १.१०८.३

दरिबे : भकृ०पुं० (सं० दर्तव्य>प्रा० दरिअव्वय) । विदीर्ण करने+दलने । 'दस मुख दुसह दरिद्र दरिबे को भयो ।' हनु० ८

दरिया : सं०पुं० (फा०) । नदी । 'दसरत्थ को दानि दया दरिया ।' कवि० ७.४६

दरेरो : सं०पुं०कए० (प्रा० दड़यड़ो) । दरेरा, कुचलने वाला कसाव, संघर्षण, संमर्द । 'ता पर सहि न जाइ करुनानिधि मन को दुसह दरेरो ।' विन० १४३.७

दर्प : सं०पुं० (सं०) । उद्दण्ड अहंकार; निरातङ्क व्यवहार की प्रवृत्ति । कवि० ७.१५०

दर्पा : भूकृ०पुं० (सं० दृप्त) । दर्पित । 'रन मद मत्त निसाचर दर्पा ।' मा० ६.६७.५

दर्पित : वि०पुं० (सं०) । दर्पयुक्त । 'रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु ।' मा० ६.९४ छं०

दर्भ : सं०पुं० (सं०) । कुश (तृणविशेष) । मा० ५.५१.७

दर्शनादेव : (सं०) दर्शन से ही । 'दर्शनादेव अपहरति पापं ।' विन० ५५.८
दर्शनारत : (सं० दर्शनार्त) दर्शन हेतु विकल । विन० ६०.८
दल : सं०पुं० (सं०) । (१) सेना, समूह, यूथ । 'नृप दल मद गंजन ।' मा० ५.२१.८ (२) पत्ती । 'लगे लेन दल फूल मुदित मन ।' मा० १.२२८.१ (३) फूल की पंखुड़ी । 'राजिव दल नयन ।' गी० ५.४७.१
✓**दल, दलइ** : (सं० दलति—दल विशरणे>प्रा० दलइ) आ०प्रए० । दलन करता है, छिन्न-भिन्न करता है, नष्ट करता है । 'जिमि करि निकर दलइ मृगराजू ।' मा० २.२३०.६
दलकति : वकृ०स्त्री० । दलक उठती, विशीर्ण होने-बिखरने लगती, पानी से द्रवीभूत होकर थलथलाती । 'महाबली बालि कें दबत दलकति भूमि ।' कवि० ६.१६
दलकन : (१) दलका+संब० । दलकों से, झटकों से लगने वाले हृदय पर आघातों से । 'मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे ।' विन० १८९.३ (२) दलकने की क्रिया, बिखराव ।
दलकि : पूकृ० । बिखर कर । 'दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू ।' मा० २.२७.४ (२) दलदला कर, द्रवीभूत होकर । 'तुलसी कुलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि दली ।' गी० २.१०.३ (उभयत्र दोनों अर्थ गुम्फित हैं ।)
दलत : वकृ०पुं० । छिन्न-भिन्न करता-करते, नष्ट करता-ते । 'दलत दयानिधि देखिऐ ।' दो० २३४
दलतो : क्रियाति०पुं०ए० । यदि…तो…उच्छिन्न कर डालता । 'जो हौं प्रभु आयसु लै चलतो । तौ यहि रिस तोहि सहित दसानन जातुधान दल दलतो ।' गी० ५.१३.१
दलन : (१) सं०पुं० (सं०) । विनाश । 'महामोह निसि दलन दिनेसू ।' मा० २.३२६.६ 'दुख दोष दलन छम ।' विन० २७५.१ (२) वि० । नष्ट करने वाला । 'दलन मोह तम सो सु प्रकासू ।' मा० १.१.६ (३) भकृ० अव्यय । नष्ट करने । 'चले दलन खल निसिचर अली ।' मा० २.१२६ छं०
दलनि : (१) वि०स्त्री० । दलने वाली, बिनाशिनी । 'दुसह दोष दुख दलनि, करु देबि दाया ।' विन० १५.१ (२) दलन्हि । पत्तों (से) । दो० ५२९
दलनिहार : वि०पुं० । विनाशकारी । विन० १५६.१
दलन्हि : दल+संब० । दलों, पत्तों (पर), पंखड़ियों (पर) । 'कमलदलन्हि बैठे जनु मोती ।' मा० १.१९९.२
दलमले : भूकृ०पुं०ब० (दल विशरणे+मल मर्दने) । छिन्न भिन्न कर कुचल डाले; रौंद दिये । 'रनमत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुजबल दलमले ।' मा० ६.९५ छं०

दला : भूकृ०पुं०ए० । नष्ट किया । 'दला दुकालु दयाल ।' रा०प्र० ५.७.३
दलि : पूकृ० । नष्ट करके । 'दलि दुख सजइ सकल कल्याना ।' मा० २.२५५.७
दलित : भूकृ० (सं०) । छिन्न भिन्न । 'दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू ।' मा० २.१६३.५
दलिबे : भकृ०पुं० । दलन करने, मिटाने । 'धरिबे को धरनि तरनि तम दलिबे को ।' हनु० ११
दलिमलि : पूकृ० (युग्म) । नष्ट कर तथा मर्दन कर=रौंद-खौंद कर । 'रिपुदल दलिमलि···आए जहँ भगवंत ।' मा० ६.४५
दलिहौं : आ०भ०उए० (सं० दलिष्यामि>प्रा० दलिहिमि>अ० दलिहिउँ) । उच्छिन्न कर दूंगा । 'धनु को दल्यौ, हौं दलिहौं बलु ताको ।' कवि० १.२०
दली : भूकृ०स्त्री० । (१) नष्ट की हुई । 'दुनी दुख दोष दरिद्र दली है ।' कवि० ७.८५ (२) बिखर गयी । 'तुलसी कुलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि दली ।' गी० २.१०.३
दलु : दल+कए० । समूह । 'बढ़त धरम दलु ।' मा० २.३२५.२
दले : भूकृ०पुं०ब० । नष्ट किये । 'निसिचर निकर दले रघुनंदन ।' मा० १.२४.८
दलैं : आ०प्रब० (सं० दलन्ति>अ० दलहिं) । नष्ट करते हैं । 'रावन दुरित दुख दलैं ।' गी० १.४२.४
दलै : दलइ । दलन करे; नष्ट कर सकता है । 'दीनता दारिद दलै को ।' विन० २१६.४
दलैया : वि०पुं० । दलनकारी, विनाशकर्त्ता । 'दलैया दससीस को ।' कवि० ६.२२
दलौं : आ०उए० । नष्ट करूँ, ध्वस्त कर सकता हूं । 'खेत में केहरि ज्यों गजराज दलौं दल ।' कवि० ६.१३
दल्यौ : भूकृ०पुं०कए० । दलित किया, उच्छिन्न किया, उच्छिन्न किया । 'जबहिं राम सिवधनु दल्यौ ।' कवि० १.११
दव : सं०पुं० (सं०) । दावानल, वनाग्नि । 'देखे लोग बिरह दव दाढ़े ।' मा० २.८०.१
दवन : दमन (अ० दवँण) । (१) वि०पुं० । नाशकारी । 'दवन बिषाद रघुपति गुन गना ।' मा० ५.६० छं० (२) विनाश । 'दास तुलसी दोष दवन हेतू ।' विन० ३८.५
दवरि : दौरि । दौड़ कर, धावा बोल कर । 'देव भूत पितर···मोहि पर दवरि दमानक सी दई है ।' हनु० ३८
दवा : दव । 'सहै तुलसी दुख दोष दवा से ।' हनु० १८
दवानल : सं०पुं० (सं०) । वनाग्नि । कवि० ७.२८

दवारि, दवारी : सं०स्त्री० (सं० दवाली)। दावानल। सर्वदाही अग्नि। मा० १.३२.८ 'एकइ उर बस दुसह दवारी।' मा० २.१८२.६

दस : संख्या (सं० दश>प्रा० दस)। मा० १.४.९ (२) दस इन्द्रिय। विन० २०३.११

दसइँ : वि०स्त्री० (सं० दशमी>प्रा० दसमी>अ० दसवीं=दसवि)। (१) दशमी तिथि (२) दसईं बात। विन० २०३.११

दसउ : दसों; सभी दस एक साथ। 'दसउ मुख तोरौं।' मा० ६.३४.२

दसकंठ : रावण। मा० ५.२३.७

दसकंध : रावण। मा० ६.१६ क

दसकंधर : रावण। मा० ३.२१ ख

दसकंधरु : दसकंधर+कए०। 'गयउ गवँहि दसकंधरु।' जा०मं० ९२

दसकंधु : दसकंध+कए०। 'चलन चहत दसकंधु।' रा०प्र० ५.१.६

दसगात : सं०पुं० (सं० दशगात्र)। पैतृक कर्म में एकादशाह से पूर्व दस पिण्डदानों की विधि। 'कीन्ह भरत दसगात बिधाना।' मा० २.१७७.६

दसगुन : वि० (सं० दशगुण)। दसगुना। रा०प्र० ३.३.६

दसगून : दसगुन (सं० दश—गुण्य>प्रा० दसगुण्ण)। दो० १०

दसचारि : चौदह (संख्या)। कवि० ६.१८

दसन : सं०पुं० (सं० दशन>प्रा० दसण)। दाँत। मा० १.१५६.७

दसनन, नि, न्हि : दसन+संब०। दाँतों (से)। 'दसनन्हि काटि नासिका काना।' मा० ६.५.८

दसभाल : रावण। कवि० ७.२

दसमुख : रावण। मा० ५.९.७

दसमौलि : रावण। मा० ६.२३ च

दसरत्थ : दसरथ। मा० १.२९५

दसरथ : सं०पुं० (सं० दशरथ) (१) दश दिशाओं में जिसके रथ की गति हो। (२) दस इन्द्रियों का नायक=चित्त या जीव। (३) राम के पिता। मा० १.१६.६

दसरथु : दसरथ+कए०। श्रेष्ठ दशरथ। 'समधी दसरथु जनकु पुनीता।' मा० १.३०४.२

दसीसीस : सं०पुं० (सं० दशशीर्ष>प्रा० दससीस)। रावण। मा० ३.२२.१२

दससीसा : दससीस। मा० ५.११.४

दससीसु : दससीस+कए०। एकमात्र रावण। 'जो दससीसु महीधर ईस को बीस भुजा खुलि खेलनिहारो।' कवि० ६.३८

दसहि : दशा को 'बरनौं किमि तिन की दसहि ।' गी० २.१७.३
दसहुं, हु, हूं : (१) दसउ । दसों इन्द्रियों । 'दसहु कर संजम ।' विन० २०३.११ (२) दसों । 'मंगल कलस दसहुं दिसि साजे ।' मा० १.६१.८; मा० १.२८.१
दसा : (१) सं०स्त्री० (सं० दशा) । अवस्था, स्थिति । 'सतीं सो दसा संभु कै देखी ।' मा० १.५०.५ (२) जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाएँ । 'प्रेम बिबस तन दसा बिसारीं ।' मा० १.३४५.८
दसानन : दसमुख । मा० १.१७६.५
दसाननु : दसानन+कए० । एकाकी रावण । 'उतहाँक दसाननु देत ।' कवि० ६.३६
दसि : पूकृ० । (सं० दष्ट्वा>प्रा० दसिअ>अ० दसि) । काटकर । 'अधर दसन दस भीजत हाथा ।' मा० ६.३१.६
दहँ : दसों । 'जनु दहँ दिसि दामिनी दमंकहिं ।' मा० ६.८७.३
√**दह दहइ, ई** : (१) (सं० दहति>प्रा० दहइ—जलाना) आ०प्रए० । जलाता है । 'दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू ।' मा० २.१२६.४ (२) (सं० दह्यते—जलना) । जलता है, दग्ध होता है । 'एहिं दुख दाहँ दहइ दिन छाती ।' मा० २.२१२.१
दहत : वकृ०पुं० (१) जलाता-ते । 'दारिद दहत अति नित तनु ।' कवि० ७.१२४ (२) जलता-ते । 'अहँकार की अगिनि में दहत सकल संसार ।' वैरा० ५३
दहते : क्रियाति०पुं०ब० । (यदि…तो) जला डालते । 'जौ सुत हित लिये नाम अजामिल के अघ अमित न दहते ।' विन० ९७.४
दहन : (१) सं०पुं० (सं०) । दग्ध होना, दग्ध करना । 'मदन दहन सुनि अति दुखु पावा ।' मा० १.९१.१ (२) अग्नि । 'नीच महिपावली दहन बिनु दही है ।' गी० १.८७.१ (३) वि०पुं० । जलाने वाला । 'सहसबाहु भुज गहन अपारा । दहन अनल सम जासु कुठारा ।' मा० ६.२६.२ (४) अग्नि+जलाने वाला । 'कालरूप खलबन दहन ।' मा० ६.४८ ख
दहनु : दहन+कए० । जलाना । 'मयन महनु पुर दहनु गहनु जानि ।' कवि० १.१०
दहपट : वि०क्रि०वि० । समतल, चौपट, ध्वस्त कर किया हुआ चौरस । 'मारि दहपट दियो जम की घानीं ।' कवि० ६.२०
दहसि : आ०मए० (सं०) । तू जलता-ती है । 'अंबु बर बहसि, दुख दहसि ।' विन० १८.१
दहहिं, हीं : आ०प्रब० (१) (सं० दहन्ति>प्रा० दहंति>अ० दहहिं) । जलाते हैं । 'जे जप जोग अनल तन दहहीं ।' मा० ७.८५.४ (२) (सं० दह्यन्ते) जल जाते हैं । 'ते नरेस बिनु पावक दहहीं ।' मा० २.१२६.३
दहा : भूकृ०पुं० । जल गया । 'सब बिनु दहन दहा है ।' गी० २.६४.२
दहि : पूकृ० । जलाकर । 'पुर दहि नाघेउ बहुरि पयोधी ।' मा० ७.६७.५

दहिउ : सं०पुं०कए० (सं० दधिकम्>प्रा० दहिअं>अ० दहिउ)। दही, दधि। 'यों कहि मागत दहिउ धर्‌यो है जो छीके।' कृ० १०

दहिन : वि०पुं० (सं० दक्षिण>प्रा० दहिण)। दायाँ। 'बाम दहिन दिसि चाप निषंगा।' मा० ६.११.५

दहिनि : दहिन+स्त्री०। दायीं। 'दहिनि आंखि नित फरकइ मोरी।' मा० २.२०.५

दहिबो : भकृ०पुं०कए०। जलना। 'मिटि जैहै सबको सोच दव दहिबो।' गी० ५.१४.४

दहिहैं : आ०भ०प्रब०। जल जायँगे। 'रावरे पुन्य प्रताप अनल महँ अलप दिननि रिपु दहिहैं।' गी० ३.१६.२

दहिहौं : आ०भ०उए०। जलूंगा। 'या बिनु परम पदहुं दुख दहिहौं।' विन० २३१.३

दही : भूकृ०स्त्री०। (१) जला दी। 'जेहिं पावक की कलुषाई दही है।' कवि० ७.६ (२) जल गई। 'नीच महिपावली दहन बिनु दही है।' गी० १.८७.१ (३) सं०पुं० (सं० दधि>प्रा० दहि)। 'सुखमा सुरभि सिंगार छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही री।' गी० १.१०६.३

दहुं, हूं : (१) धौं। मानों। रा०न० १२ (२) संख्या। दसों। लपट कराल ज्वाल जाल माल दहूं दिसि।' कवि० ५.१६

दहेंड़ि : सं०स्त्री० (सं० दधि-भाण्डी>प्रा० दहिहंडी)। दही की मटकी। 'अहिरिनि हाथ दहेंड़ि सगुन लेइ आवइ हो।' रा०न० ५

दहे : (१) भूकृ०पुं०ब० (सं० दग्ध>प्रा० दहिय)। दग्ध किये, जलाये। 'दारुन दुख दहे।' मा० ७.१३.१ (२) जले। 'ते सुख सकल सुभाय दहे री।' गी० ५.४६.२

दहेउ, ऊ : भूकृ०पुं०कए०। (१) जलाया। 'दुइ सुत मारे, दहेउ पुर।' मा० ३.३७ 'प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ।' मा० १.६३.५ (२) जल गया, जल उठा। 'उर दहेउ कहेउ कि धरहु धावहु।' मा० ३.१९ छं०

दहैं : दहहिं। जलते हैं। 'अहं अगिनि ते नहिं दहैं।' वैरा० ५४

दहै : दहइ। जलता-ती है; जलाता-ती है। 'दहै न दुख की आगि।' वैरा० ४२

दहैगो : आ०भ०पुं०प्रए०। जलेगा, जलायेगा। 'दुहूँ भाँति दीनबंधु दीन दुख दहैगो।' विन० २५९.१

दहो : दह्यो। 'तुलसी तिहुँ ताप दहो है।' कवि० ७.९१

दहौं : आ०उए०। जलता हूं। 'दुसह दाह दारुन दहौं।' विन० २२२.३

दहौंगो : आ०भ०पुं०उए० । जलूँगा । 'प्रभु की समतां बड़े दोष दहौंगो ।' कवि० ७.१४७

दह्यंति : आ०प्रब० (सं० दह्यन्ते) । जलते हैं । मा० ७.१३० श्लोक २

दह्यो : (१) दहेउ । जल गया । 'मरि बोइ मृतक दह्यो ।' गी० २.८४.२ (२) दहिउ । दधि । 'दूध दह्यो माखन ढारत हैं ।' कृ० ९

दाँत : दंत । विन० १३९.७

दाँवरी : सं०स्त्री० (सं० दामन्>प्रा० दाम>अ० दावँडी) । रस्सी, दौंरी । 'दुसह दाँवरी छोरि ।' कृ० १५

दाइ, ई : (समासान्त में) वि०पुं० (सं० दायिन्) । देने वाला । 'सकल सुमंगल दाई ।' गी० १.१९.२

दाइज : सं०पुं० (सं० दायाद्य>प्रा० दायज्ज) । विवाह में प्रदेय कन्या का भाग, चौतुक, जहेज । मा० १.३३३

दाउँ : दाउ । 'सूझत सबहि आपनो दाउँ ।' विन० १५३.२

दाउ : सं०पुं०कए० (सं० दायः>प्रा० दाओ>अ० दाउ) । पैंत, दाँव । 'देव दिखावत दाउ ।' विन० १००.३

दाऊ : (१) दाउ । 'सूझ जुआरिहि आपन दाऊ ।' मा० २.२५८ (२) सं०पुं० (सं० तातः>प्रा० ताओ>अ० ताउ) । ताऊ, श्रीकृष्ण के अग्रज—बलदाऊ । कृ० १२

दाग : सं०पुं० (फा० दाग) । (१) धब्बा (कलङ्क) । 'परै प्रेम पट दाग ।' दो० ३१४ (२) जलती सलाक आदि बना हुआ चिन्ह । 'बाम बिधि भालहू न करम दाग दागिहै ।' विन० ७०.३

दागिहै : दाग+भ०प्रए० । दाग लगाएगा । विन० ७०.३

दागी : दाग+भूकृ०स्त्री० । जलायी गई, जल गई । 'कलपलता दव दागी । गी० ३.१२.१ (इसका सम्बन्ध सं० दाघ=दाह से है ।)

दागे : भूकृ०पुं०ब० । दग्ध (जैसे, जलती सलाक से दाग लगाये हुए) । 'लोग बियोग बिषम दव दागे ।' मा० २.१८४.२

दाड़िम : सं०पुं० (सं०) । अनार । मा० ३.३०.११

दाढ़ोजार : वि०पुं० (एक प्रकार की गाली) । दाढ़ी के रोएँ जलाने वाला; इतना कष्ट देने वाला कि हृदय-ताप से दाढ़ी तक जल जाय; आततायी आत्मीयजन जो परिवार वालों के लिए कष्टकर हो । 'बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को ।' कवि० ५.१२

दाढ़े : भूकृ०पुं०ब० (सं० दग्ध>प्रा० दड्ढ) । जले हुए । 'देखे लोग बिरह दव दाढ़े ।' मा० २.८०.१

दातन्ह : दाँत+संब० । दाँतों (से) । 'दातन्ह काटहिं ।' मा० ६.५३.५ (यहाँ सं० दात्र>प्रा० दत्त>दात की व्युत्पत्ति से 'काटने का उपकरणविशेष' अर्थ लिया जा सकता है—दन्तरूपी दात्र अथवा दात्रतुल्य दाँत)

दाता : वि०पुं० (सं०) । देने वाला । मा० १.७.१२

दातार : दाता । 'अभिमत फल दातार ।' मा० १.३०३

दादि : सं०स्त्री० (सं० दाद=उपहार; सं० दाति>प्रा० शौरसेनी-दादि=उपहार; फा० दाद=न्याय, बख्शीश) । न्याय, उचित प्रदेय । 'देऊ तौ दयानिकेत देत दादि दीनन की ।' कवि० ७.१८

दादु : सं०पुं० (सं० दद्रु>प्रा० दद्दु) । एक स्थायी चर्मरोग । मा० ७.१२१.३३

दादुर : सं०पुं० (सं० दर्दुर>प्रा० दद्दुर) । मेंढक । मा० ४.१५.१

दान : (१) सं०पु० (सं०) । देना । मा० १.१०३.२ (२) राजनीति के चार उपायों में द्वितीय उपाय । 'साम दान भेद बिधि बेदहू लबेद सिधि ।' हनु० २८—दे० दंड

दानवँ : दानव ने । 'सो मय दानवँ बहुरि सँवारा ।' मा० १.१७८.६

दानव : दनुज । मा० १.६.६

दाना : दान । मा० १.१५५.६

दानि : (१) दानी । 'बरदायक बर दानि ।' मा० १.२५ (२) दायनी । 'रामकथा सुरधेनु सम सेवत सब सुखदानि ।' मा० १.११३

दान्तिहि : दानी को । दो० ३२७

दानी : वि०पुं० (सं० दानिन्) । दान करने वाला, देने वाला । मा० २.४४.८

दानु : दान+कए० । केवल दान । 'रुचै मागनेहि मागिबो तुलसी दानिहि दानु ।' दो० ३२७

दाप दापा : दर्प (प्रा० दप्प) । मा० ६.८१ 'हारे सकल भूप करि दापा ।' मा० १.२५६.३

दापु : दाप+कए० । अद्वितीय घमंड । 'भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा ।' मा० १.२८३.६

दाबि : पूकृ० । दबाकर, दबोचकर । 'हेठ दाबि कपि भालु निसाचर ।' मा० ६.७१.७

दाम : (१) सं०पुं० (सं० दामन्>प्रा० दाम) । रस्सी । 'ताहि ब्याल सम दाम ।' मा० १.१७५ (२) लड़ी (हार आदि) । 'बिच बिच मुकुता दाम सुहाए ।' मा० १.२८८.३ (३) (सं० द्रम्य>प्रा० दम्म>अ० दम्मडी) । एक प्रकार का छोटा सिक्का—दमड़ी । 'लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।' मा० ७.१३० ख (४) धन । 'बहु दाम सँवारहिं धाम जती ।' मा० ७.१०१.१ (५) सिक्का । 'तुलसी को खुलैगो खजानो खोटे दाम को ।' कवि० ७.७०

दामिनि : दामिनी । मा० १.२३५.६

दामिनीं : दामिनी+ब० । बिजलियाँ । 'जनु दहुँ दिसि दामिनीं दमंकहिं ।' मा० ६.८७.३

दामिनी : सं०स्त्री० (सं०) । विद्युत्, बिजली (जो मेघों में दमकती है) । मा० ३.३०.११

दामोदर : सं०पुं० (सं०—दाम उदरे यस्य स दामोदरः) । श्रीकृष्ण (यह नाम यशोदा द्वारा उदर में रस्सी से बाँधने के कारण पड़ा बताया जाता है+सम्पूर्ण माया-पाशों को उदर में रखने वाला प्रतीकार्थ भी है) । कृ० १७

दाय : (१) सं०पुं० (सं०) । दाँव । 'बिधि के सुढर होत सुढर सुदाय के ।' गी० १.६७.४ 'दैव दारुन दाय ।' गी० ७.३१.३ (२) (सं० दाव) दावानल । 'कोउ न मीत हित दुसह दाय ।' विन० ८३.५ (३) (सं० दाय) दुर्भाग्य ।

दायक : वि० (सं०) । देने वाला । मा० १.१५

दायकु : दायक+कए० । एकमात्र देने वाला । 'जो दायकु फल चारि ।' मा० २

दायनी : वि०स्त्री० (सं० दायिनी) । देने वाली । मा० ७.५२.५

दाया : दया । मा० १.४६.५

दार : सं० (सं०) । पत्नी । मा० ७.३९

✓**दार दारइ** : (सं० दारयति>प्रा० दारइ) आ०प्रए० । विदीर्ण करता है, करे, कर सकता है । 'अभिमत दातार कौन दुख दरिद्र दारै ।' विन० ८०.१

दारदी : दारिदी । 'साहिब सरोष दुनी दिन दिन दारिदी ।' कवि० ७.१८३

दारन : (१) सं०पुं० (सं० दारण) । विदारण (२) वि०पुं० । विदारण करने वाला । 'भव बारन दारन सिंह प्रभो ।' मा० ६.१११.१

दारय : आ०—प्रार्थना—मए० (सं०) । तू विदारण कर । 'मन संभव दारुन दुख दारय ।' मा० ७.३५.४

दारा : (१) दार । पत्नी । मा० ५.४८.४ (२) वि०पुं० (सं० दातृ>प्रा० दाआर) । दायक, देने वाला । 'जागे जगमंगल सुख दारा ।' मा० २.९४.२

दारि : सं०स्त्री० (सं० दालि) । दाल (खाद्यान्नविशेष) । 'चाहत अहारन पहार, दारि घूर ना ।' कवि० ७.१४८

दारिका : सं०स्त्री० (सं०) । लड़की, पुत्री । मा० १.३२६ छं० ३

दारिद : सं०पुं० (सं० दारिद्रय>प्रा० दारिद्द) । दरिद्रता, दुर्दशा, निर्धनता । मा० २.१०२.५

दारिदी : वि०पुं० । दरिद्रता से युक्त, निर्धनताग्रस्त । 'जे सुरतरु तर दारिदी, सुरसरि तीर मलीन ।' दो० ४१४

दारिदु : दारिद+कए० । 'दिन दिन दूनो देखि दारिदु दुकालु दुखु ।' कवि० ७.८१

दारु : सं०पुं० (सं०) । काष्ठ, लकड़ी । मा० १.२३.८

दारुन : वि०पुं० (सं० दारुण) । विदारक=अति कष्टप्रद । 'मनसंभव दारुन दुख दारय ।' मा० ७.३५.४

दारुनारि : (दारु+नारि) कठपुतली । मा० १.१०५.५

दारुनि : दारुन+स्त्री० । कठोर, विदारक । 'दारुनि हठ ठानी ।' मा० १.२५८.२

दारू : (१) सं०स्त्री० (फा० दारू=दवा) । शराब (जिसे पलीते में लगाकर तोप दागी जाती है । (२) बारूद (?) । 'काल तोपची तुपक महि दारू अनय कराल ।' दो० ५१५

दारे : भूकृ०पुं०ब० (सं० दारित>प्रा० दारिय) । विदीर्ण किये, नष्ट किये । 'भागे जंजाल बिपुल दुख कदंब दारे ।' गी० १.३८.५

दारै : दारइ ।

दालि : पूकृ० । दलित कर, भग्न कर । 'पिनाकु तोर्‌यो मंडलीक मंडली प्रताप दापु दालि री ।' कवि० १.१२

दावन : वि०पुं० (१) (सं० द्रावण>प्रा० दावण) । भगाने वाला । (२) (सं० दावन—दु उपतापे) सन्तप्त करने वाला । 'त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन ।' मा० १.३५.१० (३) सं०पुं० (सं० द्रावण) । भगदड़ । 'जातुधान दावन परावन को दुर्ग भयो ।' हनु० ७

दावनि, नी : दावन+स्त्री० । भगाने वाली, जलाने वाली । 'त्रिबिध ताप भव भय दावनी ।' मा० ७.१५.१

दावा : सं०पुं० (सं० दाव) । दावानल, वनाग्नि । 'मिटे दोष दुख दारिद दावा ।' मा० २.१०२.५

दावानल : (सं० दाव=वन+अनल=अग्नि) दावा=दवानल । कवि० ७.१६१

दाशरथि : (सं०) दशरथ के पुत्र=राम । विन० ३८.२

दास : सं०पुं० (सं०) । (१) परिचारक, सेवक । 'दासीं दास तुरग रथ नागा ।' मा० १.१०१.७ (२) दासभाव का भक्त । 'प्रभु सर्बग्य दास निज जानी ।' मा० १.१४५.५

दासनि, न्ह : दास+संब० । दासों (को) । 'संतत दासन्ह देहु बड़ाई ।' मा० ३.१३.१४

दासरथीं : (दे० दाशरथि) दशरथ पुत्र राम ने । 'पल में दल्यो दासरथीं दसकंधरु ।' कवि० ७.१

दासा : दास । मा० ३.१७.१३

दासिन्ह : दासी+संब० । दासियों (ने) । 'दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई ।' मा० २.१४८.३

दासीं : दासी+ब० । दासियाँ । मा० १.१०१.७

दासी : दास+स्त्री० (सं०) । सेविका, परिचारिका । मा० १.१०८.१

दासु : दास+कए० । एकमात्र सेवक, अकिंचन दास, अनन्य भक्त । 'नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह ।' मा० २.७१

दाहँ : दाह से, सन्ताप से । एहिं दुख दाहँ दहइ दिन छाती ।' मा० २.२१२ १

दाह : सं०पुं० (सं०) । (१) जलन, सन्ताप । मा० २.१६४.८ (२) त्रिताप । 'सो तहाँ तुलसी तिहुं दाह दहो है ।' कवि० ७.९१ (३) डाह, ईर्ष्या । 'पर गुन सुनत दाह ।' विन० १४३.४

√**दाह, दाहइ** : (सं० दाहयति>प्रा० दाहइ) आ०प्रए० । जलाता है, जला सकता है । 'अहं अगिन नहिं दाहै कोई ।' वैरा० ५२

दाहक : वि० (सं०) । (१) सन्तापकारी । 'सीतलि सिख दाहक भइ कैसें ।' मा० २.६४.२ (२) दग्धकारी । 'दोष दुरित दुख दारिद दाहक नाम ।' बर० ५८

दाहा : (१) दाह । सन्ताप । 'उर उपजा अति दारुन दाहा ।' मा० १ ५४.२ (२) भस्मीकरण । 'सोचेहुं कीस कीन्ह पुर दाहा ।' मा० ६.२३.७ (३) भूकृ०पुं० । जलाया । 'केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा ।' मा० ७.७०.८

दाहि : पूकृ० । जला कर, तपा कर । 'अनल दाहि पीटत घनहिं ।' मा० ७.३७

दाहिए : आ०कवा०प्रए० । जलाया जाय । 'नाम कें प्रताप न त्रिताप तन दाहिए ।' कवि० ७.७९

दाहिन : दहिन । (१) दायाँ । 'दाहिन काग सुखेत सुहावा ।' मा० १.३०३.३ (२) अनुकूल । 'दाहिन दइउ होइ जब सबही ।' मा० २.२८०.५ (३) दायां +अनुकूल । 'दाहिन बाम न जानउँ काऊ ।' मा० २.२०.८

दाहिनि, नी : दाहिन+स्त्री० । 'मृगमाला फिरि दाहिनि आई ।' मा० १.३०३.६ 'लखन दाहिनी ओर ।' वैरा० १

दाहिनेउ : दाहने भी=दायें+अनुकूल भी । 'लागे दुख दूषन से दाहिनेउ बामैं ।' गी० ५.२५.४

दाहिनेहु : दाहिनेउ । 'जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ ।' मा० १.४.१

दाहिनो : दाहिन+कए० । 'होइ बिधि दाहिनो ।' दो० ३६

दाहिबे : भकृ०पुं० । जलाने । 'ढाहिबे दाहिबे को कहरी है ।' कवि० ६.२९

दाहु, हू : दाह+कए० । (१) सन्ताप । 'जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू ।' मा० १.७१.६ (२) भस्मीकरण । 'कर तप कानन दाहु ।' मा० १.१६१ क (३) डाह, ईर्ष्या । 'कैकयसुता हृदयँ अति दाहू ।' मा० २.२४.७

दाहें : दाह से, तपाने से । 'कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहें ।' मा० २.२०५.५

दाहे : भूकृ०पुं०ब० । जला दिये । 'तहँ तिन्ह के दुख दाहे ।' विन० १४५.१

दाहैं : आ०प्रब० (सं० दाहयन्ति>प्रा० दाहंति>अ० दाहहिं)। जलाते हैं। 'निवासु जहाँ सब लै मरे दाहैं।' कवि० ७.१५५

दाहै : दाहइ।

दिअटि : सं०स्त्री०। दीपाधार। 'चित्त दिआ भरि धरै दृढ, समता दिअटि बनाइ।' मा० ७.११७ ख

दिआ : सं०पुं० (सं० दीपक>प्रा० दीअअ)। प्रदीप। 'नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती।' मा० ७.१२०.३ (२) दीप्ति, प्रकाश की चकाचौंध। 'मनहुं मृगी मृग देखि दिआ से।' मा० १.११६.३ (दे० दियरे, दीपिका)।

दिएँ : (१) देने से, देने पर। 'दिएँ उतरु फिरि पातकु लहऊँ।' मा० २.६५.८ (२) देकर। 'सुनु कान दिएँ।' कवि० ७.२६

दिए : भूकृ०पुं०ब०। प्रदान किये। 'तब मुनि आश्रम दिए सुहाए।' मा० २.१२५.४

दिकदाह : सं०पुं० (सं० दिग्दाह)। दिशाओं में आग लगना। आग की लपटों के समान दिशाओं की भीषण लाली (जो अपशकुन मानी गयी है)। 'ऊकपात दिकदाह दिन।' रा०प्र० ५.६.३

दिखरावहिंगे : आ०भ०पुं०प्रब०। दिखालाएँगे। 'राका ससि मुख दिखरावहिंगे।' गी० ५.१०.१

दिखाइ : देखाइ। दिखला (कर)। 'हेम हरिन कहँ दीन्हेउ प्रभुहि दिखाइ।' बर० २६

दिखाई : (१) दिखाइ। 'बिनु पूछें मगु देहिं दिखाई।' मा० ६.१८.१० (२) देखने की क्रिया (दर्शन)। 'सपनेहुं नहिं देत दिखाई।' विन० १६५.२ (३) भूकृ० स्त्री०। दिखलाई। 'तिन की गति प्रगट दिखाई।' गी० १.१.१२

दिखाउ : देखाउ। तू दिखला। कृ० ५२

दिखाए : देखाए। 'महारिस तें फिरि आँखि दिखाए।' कवि० १.२२

दिखाया : भूकृ०पुं०। दिखलाया, प्रकट किया। 'प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया।' मा० १.२३६.५

दिखायो : दिखाया+कए०। 'जन पर हेतु दिखायो।' गी० ५.४४.५

√**दिखाव, दिखावइ** : (देखावइ) (१) दिखाता है। 'ताहि दिखावइ निसिचर निज माया।' मा० ६.५१ (२) देखने में आता है (अपने-आपको दिखाता है)। 'घृत पूरन कराह अंतरगत रबि प्रतिबिंब दिखावै।' विन० ११५.२

दिखावत : देखावत। 'कानन भूमि बिभाग राम दिखावत जानकिहि।' रा०प्र० ६.१.६

दिखावहिं : देखावहिं। 'बुड़िहि लोभ दिखावहिं आई।' मा० ७.११८.७

दिखावै : दिखावइ। 'जो मारग श्रुति साधु दिखावै।' विन० १३६.१२

दिखावौं : देखावौं। 'सो बल मनहि देखावौं।' विन० १४२.१०

दिगंचल : सं०पुं० (१) (सं०)। दिशाविभाग। (२) (सं० दृगंचल) नेत्रफलक, पलकें। 'मनहुं सकुचि निमि तजे दिगंचल।' मा० १.२३०.४

दिगंबर : सं०+वि० (सं०)। जिसके वस्त्र दिशाएँ ही हों=निर्वसन, नग्न (शिवजी)। 'अकुल अगेह दिगंबर ब्याली।' मा० १.७९.६

दिगदंति : सं०पुं० (सं० दिग्दन्तिन्)। दिग्गज। गी० १.९०.५

दिगपाल, ला : सं०पुं० (सं० दिक्पाल)। दिशाओं के स्वामी=इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और ईशान (क्रमशः पूर्वादि दिशाओं के दिक्पाल हैं)। मा० ६.८.३

दिगपालन्ह : दिगपाल+संब०। दिग्पालों। 'दिगपालन्ह के लोक सुहाए।' मा० १.१८२.७

दिगपुर : किसी ग्राम या नगर का नाम जिसके और वारिपुर के बीच 'सीतामढ़ी' की स्थिति बतायी गयी है। कवि० ७.१३८

दिगबसन : दिग्बसन। कवि० ७.१५०

दिगसिंधुर : (सं० दिक्सिन्धुर) दिग्गज। मा० ६.७९.६

दिगीस : (सं० दिगीश) दिगपाल। विन० २५०.२

दिगीसनि : दिगीस+संब०। दिक्पालों। विन० २४६.३

दिग्गज : सं०पुं० (सं०)। आठ दिशाओं में पृथ्वी को रोकने वाले (पुराण-प्रसिद्ध) आठ हाथी। मा० १.२५४.१

दिग्बसन : दिगंबर। कवि० ७.१४९

दिच्छा : सं०स्त्री० (सं० दीक्षा)। मन्त्रदान की धार्मिक विधि। 'दिच्छा देउँ ग्यान जेहिं पावहु।' मा० ६.५७.८

दिच्छित : सं०+वि०पुं० (सं० दीक्षित)। दीक्षा प्राप्त; यज्ञ या मन्त्र की दीक्षा पाया हुआ। विन० २४०.२

दिढ़ाई : आ०प्रए० (सं० दृढायते>प्रा० दिढाइ)। दृढ़ होती है। 'प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई।' मा० ७.८९.८

दितिसुत : कश्यप-पत्नी दिति के पुत्र=दैत्य। मा० ६.६.७

दिन : सं०पुं० सं०। (१) (दिवस=६० घरी वाला दिन-रात का समय। 'सबहि सुलभ सब दिन सब देसा।' मा० १.२.१२ (२) सूर्योदय से सूर्यास्त तक का समय। 'सुख दुख पाप पुन्य दिन राती।' मा० १.६.५ (३) तिथि (दिनाङ्क)। 'जेहिं दिन राम जनम श्रुति गावहिं।' मा० १.३४.६ (४) प्रतिदिन। 'एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती।' मा० २.२१२.१ (५) रविवारादि सात दिन।

दिनकर : सं०पुं० (सं०)। सूर्य। मा० १.३२.१०

दिनदानी : प्रतिदिन दान करने वाला। 'प्रनवउँ दीनबंधु दिनदानी।' मा० १.१५.३

दिनन : दिन+संब० । दिनों (में, पर) । 'बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया ।' मा० १.१२८.६

दिननाथ : सूर्य । जा०मं०छं० ४

दिननायक : सूर्य । मा० ३.२९.२

दिनमनि : सं०पुं० (सं० दिनमणि) । सूर्य । मा० १.१९६.१

दिनराऊ : (दे० राऊ) । सूर्य । मा० १.३२१.६

दिनहिं, हीं : दिन में ही । मा० १.१६८; ६.३२.७

दिनहुंदिन : दिनोंदिन, उत्तरोत्तर प्रतिदिन । 'देह दिनहुंदिन दूबरि होई ।' मा० २.३२५.१

दिनु : दिन+कए० । 'निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका ।' मा० १.८५.५ (२) दिन भर । 'नाहित मौन रहब दिनु राती ।' मा० २.१६.४ (३) मुहूर्त का एक निश्चित दिन । 'गनक बोलि दिनु साधि ।' मा० २.३२३ (४) एक श्रेष्ठ दिन । 'निरुपम सो दिनु ।' जा०मं० १००

दिनेश : सं०पुं० (सं०) । सूर्य । मा० ३.४ छं०

दिनेस, सा : दिनेश । मा० ७.९ क; ७.३१.१

दिनेसु, सू : दिनेस+कए० । मा० २.२७४; २.३०५.७

दिबोई : दीबो+ई । देना ही, दान करना ही । 'दीन दयालु दिबोई भावै ।' विन० ४.१

दिव्य : वि० (सं० दिव्य) । स्वर्गसम्बन्धी, देवोचित, परमोत्तम । 'सिंघासनु अति दिव्य सुहावा ।' मा० १.१००.३

दिव्यतर : (दे० तर) अतिशय दिव्य । 'दिव्यतर दुकूल भव्य ।' गी० ७.४.५

दिव्यदृष्टि : देवोचित दृष्टि; पारदर्शिनी दृष्टि । 'सुमिरत दिव्यदृष्टि हियँ होती ।' मा० १.१.५

दिय : भूकृ० । दिया, प्रदान किया । गी० ७.१६.७

दियउ : दिय+कए० । दिया । 'नाथ मोहि आदरु दियउ ।' मा० ६.१७ ख

दियरे : (दे० दिआ) सं०पुं०ब० (सं० दीपक>प्रा० दीयअ>अ० दीयडय) दीपक, दीप्तियाँ । 'देखि नर नारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे ।' गी० १.४३.३

दियहु : आ०—भूकृ०+मब० । तुमने दिया, दी । 'ग्यान भवन तनु दियहु नाथ ।' विन० ११४.३

दिया : दिय । 'केहि अघ औगुन आपने कर डारि दिया रे ।' विन० ३३.३

दिये : दिए ।

दियो : दियउ। (१) दिया, प्रदान किया। 'तुम्हहू दियो निज धाम।' मा० ६.१०४ छं० (२) रखा। 'सोभा की दीयटि मानों रूप दीप दियो है।' गी० १.१०.३

दिरमानी : सं०पुं० (फा० दरमान्=दवा) दवा करने वाला, चिकित्सक, वैद्य। 'जस आमय भेषज न कीन्ह तस दोष कहा दिरमानी।' विन० १२२.१

दिवस : सं०पुं० (सं०)। दिन। (१) ६० घरी का समय। 'जुग सम दिवस सिराहिं।' मा० १.५८ (२) सूर्योदय से सूर्यास्त तक का समय। 'जैसें दिवस दीप छबि छूटे।' मा० १.२६३.५

दिवसु : दिवस+कए०। 'दिवसु रहा भरि जाम।' मा० १.२१७

दिवसेश : सं०पुं० (सं०)। दिनेश, सूर्य। विन० ५५.३

दिवाई : देवाई। दिलायी। 'सीस उघारि दिवाई धाहैं।' गी० ७ १३.६

दिवाए : भूकृ०पुं०ब०। दिलाये। 'तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास।' मा० ७.१४

दिवाकर : सं०पुं० (सं०)। सूर्य। मा० ६.१५.२

दिवान : सं०पुं० (फा० दीवान)। राजा का दर्बार। 'केहि दिवान दिन दीन को आदर।' विन० १९१.५

दिवारी : सं०स्त्री० (सं० दीपाली>प्रा० दीवाली)। दीपावली (पर्वविशेष)। 'जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो।' कवि० ७.१७९

दिवावत : वकृ०पुं०। दिलाता-दिलाते। 'देत दिवावत दाउ।' विन० १००.३

दिशि : दिखि। (सं०) दिशा में=ओर, पार्श्व में। 'दक्ष दिशि रुचिर वारीश कन्या।' विन० ६१.७

दिष्टि : दृष्टि। 'अचानक दिष्टि परी तिरछौंहैं।' कवि० २.२५

दिसां : दिशा में। 'जरठाइ दिसां रबि कालु उग्यो।' कवि० ७.३१

दिसा : सं०स्त्री० (सं० दिश्=दिशा>प्रा० दिसा)। पूर्व आदि। 'परम सुभग सब दिसा बिभागा।' मा० १.८६.७

दिसि : दिसा (प्रा०)। 'देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं।' मा० २.१४२.८ (२) पक्ष=ओर। 'मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा।' मा० १.५.१ (३) ओर=स्थानविभाग। 'जेहिं दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली।' मा० १.१३५.१ (४) पार्श्व। 'राम बाम दिसि सीता सोई।' मा० १.१४८.४

दिसिकुंजर : दिग्गज। मा० १.३३३.७

दिसिकुंजरहु : दिसिकुंजर+संबोधन ब०। हे दिग्गजो। 'दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि।' मा० १.२६०.१

दिसित्राता : दिक्पाल। मा० ७.८१.१

दिसिनाथ, था : दिक्पाल। मा० २.१७३.७

दिसिप : (दे० प) । दिक्पाल । मा० ५.२०.७
दिसिपति : दिक्पाल । मा० १.३२१.६
दिसिपाल, ला : दिक्पाल । मा० २.१३४.१
दिसिभ्रम : सं०पुं० (सं० दिग्भ्रम) । दिशाविषय भ्रान्ति । 'जब जेहिं दिसि-भ्रम होइ खगेसा । सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा ।' मा० ७.७३.४
दिसिराज, जा : दिक्पाल । मा० १.९२
दिसिहि : दिशा की ओर । 'उत्तर दिसिहि बिमान चलायो ।' मा० ६.११९.२
दिहल : दिया, दीन्ह (आधुनिक भोजपुरी में प्रचलित रूप) । 'हमहिं दिहल करि कुटिल करमचँद ।' विन० १८९.२
दी : दई । 'निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी ।' कवि० ७.१८३
दीख, खा : भूकृ०पुं० । देखा । 'लछिमन दीख उमा कृत बेषा ।' मा० १.५३.१ 'निज कर नयन काढ़ि चह दीखा ।' मा० २.४७.३
दीखि : दीख+स्त्री० । देखी । 'दीखि जाइ जग पावनि गंगा ।' मा० २.१९७.३
दीजहु : आ०मब० (१) प्रार्थना । तुम (कृपया) देना । 'उचित सिखावनु दीजहु मोही ।' मा० ४.३०.१० (२) आज्ञा । तुम देना । 'रावन कर दीजहु यह पाती ।' मा० ५.५२.८
दीजे : आ०कवा०प्रए० । दी जाय, दिया जाय । 'जनकसुता रघुनाथहि दीजे ।' मा० ५.५७.७
दीजै : दीजे । 'मोरे कहें जानकी दीजै ।' मा० ५.२२.१०
दीजो : दीजहु । 'उराहनो न दीजो मोहि ।' कवि० ७.१६५
दीठि : डीठि (सं० दृष्टि>प्रा० दिट्ठि) । दो० ४९
दीन : (१) वि० (सं०) । दयनीय । 'सकल जीव जग दीन दुखारी ।' मा० १.२३.७ (२) दीन्ह । दिया । 'मुदित मागि इक धनुही नृप हँसि दीन ।' बर० ८ (३) सं०पुं० (अरबी) । धर्म, धर्म-निष्ठा । 'सुर-साहेबु साहेबु दीन-दुनी को ।' कवि० ७.१४६
दीनता : सं०स्त्री० (सं०) । दैन्य, दयनीय दशा । मा० १.४३.१
दीनदयाल, ला, लु : (सं० दीनदयालु) । दीनों पर दया करने वाला । मा० १.१६; ५७.७; ५९.६
दीनन, न्ह : दीन+संब० । दीनों, दयनीय जनों । 'कोमल चित दीनन्ह पर दाया ।' मा० ७.३८.३
दीनबंधु : दीनजनों पर आत्मीय भाव रखने वाला । मा० १.२११
दीना : दीन । मा० १.११५.४
दीन्ह : भूकृ०पुं० (सं० दत्त>प्रा० दिण्ण) । दिया । 'जग जस अपजस दीन्ह ।' मा० १.७ ख

दीन्हा : दीन्ह। मा० १.३०.४

दीन्हि : दीन्ह+स्त्री०। दी। 'सुगति दीन्हि रघुनाथ।' मा० १.२४

दीन्हिउँ : दीन्हि+उए०। मैंने दी। 'प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही।' मा० २.१५.१

दीन्हिसि : दीन्हि+प्रए०। उसने दी। 'दीन्हिसि अचल बिपति कै नेईं।' मा० २.२९.६

दीन्हीं : दीन्ही+ब०। दीं। 'देवन्ह दीन्हीं दुंदुभीं।' मा० १.२८५

दीन्ही : दीन्हि। 'करि प्रनामु तिन्ह पाती दीन्ही।' मा० १.२९०.३

दीन्हें : (१) दिये हुए, देकर। 'जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हें।' मा० २.२१४.६ (२) देने पर। 'राम सपथ दीन्हें हम त्यागे।' मा० ५.५४.४

दीन्हे : दीन्हा+ब०। दिये। 'उचित बास हिम-भूधर दीन्हे।' मा० १.६५.८

दीन्हेउ : दीन्ह+कए०। दिया। 'दीन्हेउ कटकु चलाइ।' मा० २.२०२

दीन्हेहु : दीन्हे+मब०। तुमने दिया। 'होइ प्रसन्न दीन्हेहु सिव पद निज।' विन० ७.३

दीन्हो : दीन्हेउ। 'को न लोभ दृढ फंद बाँधि करि त्रासन दीन्हो।' कवि० ७.११७

दीप : सं०पुं० (सं०)। (१) दीपक। मा० १.२१ (२) (सं० द्वीप)। टापू, जल से घिरा भू-भाग, जम्बूद्वीप आदि पुराण प्रसिद्ध भू-भाग। 'दीप दीप के भूपति नाना।' मा० १.२५१.७ 'सात दीप नव खंड।' वैरा० ५०

दीपक : दीप (सं०)। 'भयो मिथिलेस मानो दीपक बिहान को।' गी० १.८८.४

दीपमालिका : सं०स्त्री० (सं०)। (१) दीपक-श्रेणी (२) दीपावली पर्व। 'खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं।' कवि० ७.१७१

दीप-सिखा : सं०स्त्री० (सं० दीपशिखा)। दीपक की लौ। मा० ७.२३०.७

दीपा : दीप। मा० ७.११८.८

दीपावलि, ली : सं०स्त्री० (सं०)। दीपक-श्रेणी। गी० १.५.१

दीपिका : सं०स्त्री० (सं०)। दीपक+दीप्ति समूह। 'रूप दीपिका निहारि मृग मृगी नर नारि बिथके।' गी० १.८४.६

दीबे : भकृ०पुं० (सं० दातव्य>प्रा० देअव्व)। देने। 'दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक।' कवि० ७.१६५

दीबो : भकृ०पुं०कए०। देना। 'समुझि सिखावन दीबो।' कृ० ३५

दीयटि : दिअटि। 'सोभा की दीयटि मानो रूप-दीप दियो है।' गी० १.१०.३

दीयो : सं०पुं०कए० (सं० दीपकम्>प्रा० दीययं>अ० दीयउ)। प्रदीप। 'जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो।' कवि० ७.१७९

दीरघ : वि० (सं० दीर्घ)। लम्बा (देश या काल में अधिक आयत)। 'दीरघ रोगी दारिदी।' दो० ४७७

दील : सं०पुं० (फा० दिल) । हृदय । 'भई आस सिथिल जगन्निवास दील की ।' कवि० ६.५२

दीसा : दीखा। (१) देखा गया । 'भरत सरीसा···सुना न दीसा ।' मा० २.२३१.८ (२) दिखाई पड़ा । 'बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा ।' मा० १.२४२.१

दुंद : द्वंद्व । 'हरन दुख दुंद गोबिंद आनंदघन ।' विन० ४७.१

दुंदुभि : (१) सं०स्त्री० (सं०) । वाद्यविशेष, नक्कारा । मा० १.३४७.५ (२) सं०पुं० (सं०) । एक दानव जिसे बाली ने मारा था । 'दुंदुभि अस्थि ताल देखराए ।' मा० ४.७.१२

दुंदुभीं : दुंदुभी+ब० । नक्कारे । 'देवन्ह दीन्हीं दुंदुभीं ।' मा० १.२८५

दुंदुभी : दुंदुभि । नक्कारा । मा० १.१९१.७

दु:कर : वि० (सं० दुष्कर) । करने में कठिन । विन० ५४.७

दु:ख : सं०पुं० (सं०) । क्लेश त्रिताप ।

दु:खत: : (सं०) दु:ख से । मा० २ श्लोक २

दु:खौघ : (दु:ख+ओघ) दु:ख रूपी अतल प्रवाह । मा० ७.१०८.६

दुअन : वि०पुं०+सं० (सं० दुर्जन>प्रा० दुअण) । दुष्ट, शत्रु । 'जय पवन सुअन दलि दुअन-दाप ।' गी० ५.१६.१०

दुआर : द्वार (प्रा०) । मा० ६.७२.९

दुआरा : दुआर । मा० ६.३९.२

दुआरें : द्वार पर, द्वार तक, द्वार की ओर । 'उर धरि धीरजु गयउ दुआरें ।' मा० २.३९.४

दुइ : संख्या (सं० द्वौ, द्वे>प्रा० दुइ) । दो । मा० १.२१.२

दुइचारी : दो चार । मा० १.६७.७

दुइज : सं०स्त्री० (सं० द्वितीया>प्रा० दुइज्जा) । द्वितीया तिथि । 'दुइज न चंदा देखिऐ ।' दो० ३४४

दुऔ : दोनों । 'लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई ।' मा० ४.४.५

दुकाल : सं०पुं० (सं० दुष्काल>प्रा० दुक्काल) । अकाल, अतिवृष्टि-अनावृष्टि आदि दैवी संकट, दुर्भिक्ष । 'कलि बारहिंबार दुकाल परै ।' मा० ७.१०१.१०

दुकालु : दुकाल+कए० । 'दला दुकालु दयाल ।' रा०प्र० ७.५.३

दुकूल : सं०पुं० (सं०) । उत्तम परिधान, परिधेय वस्त्र । मा० २.६५

दुक्ख : दु:ख (प्रा०) । 'कौन है दारुन दुक्ख दमैया ।' कवि० ७ ५३

दुख : दुक्ख । मा० १.७

दुखई : भूकृ०स्त्री० (सं० दु:खापिता>प्रा० दुक्खविआ) । दु:खित की । 'जातुधान तिय जानि बियोगिनि दुखई सीय सुनाइ कुचाहैं ।' गी० ७ १३.६

दुखउ : दु:ख भी । 'दुखउ दुखित मोहि हेरे ।' विन० २२७.३

दुखद : (दे० द) । दुख देने वाला, दु:खजनक । मा० ३.४३
दुखदाई : दुखद (सं० दु:खदायिन्>प्रा० दुक्खदाई) । मा० १.१७०.५
दुखदाता : (दे० दाता) दु:खद । मा० ६.६६.४
दुखप्रद : (दे० प्रद) दुखद । मा० १.५.३
दुखरूप, पा : दु:खाकार, मूर्त दु:ख । मा० ७.७३ क; ३.१५.५
दुखवत : वकृ०पुं० (सं० दु:खयत्>प्रा० दुक्खवंत) । दु:ख देता-देते । 'सुतहि दुखवत बिधि न बरज्यो ।' विन० २१६.२
दुखवहु : आ०मब० (सं० दु:खयत>प्रा० दुक्खवह>अ० दुक्खवहु) । दु:ख दो, दु:खित करो । 'दुखवहु मोरे दास जनि ।' गी० २.४७.१८
दुखहू : दु:ख को भी । 'सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा ।' मा० २.१५३.८
दुखारा : वि०पुं० (सं० दु:खिन्>प्रा० दुक्खाल) । दुखी । मा० ६.३५.१२
दुखारी : (१) वि०पुं०=दुखारा । दु:खी । 'जे न मित्र दुख होहिं दुखारी ।' मा० ४.७.१ (२) दुखारा+स्त्री० । दु:खिनी । 'दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी ।' मा० २.३०२.६
दुखारे : दुखारा+ब० । भेषु देखि भए निपट दुखारे ।' मा० २.२७०.५
दुखित : वि० (सं० दु:खित) । दु:खयुक्त । मा० १.६०.१
दुखी : वि० (सं० दु:खिन्>प्रा० दुक्खी) । दु:खयुक्त । मा० २.२१६
दुखु : दुख+कए० । एक विशेष दु:ख । 'नारि बिरहँ दुखु भयउ अपारा ।' मा० १.४६.८
दुगुन : वि० (सं० द्विगुण>प्रा० दुगुण=दुउण) । दूना । मा० ५.२.७
दुघरी : सं०स्त्री० (सं० द्विघटिका>प्रा० दुघड़िया>अ० दुघडी) । अनिवार्य यात्रा करनी हो तो किसी भी दिन दो घड़ी का शुभ मुहूर्त देख लेने की ज्यौतिष विधि है । प्रतिदिन ३२ मुहूर्त होते हैं—जो प्रायः दो घड़ी के ठहराये जाते हैं । उनमें ही शुभ मुहूर्त देखकर यात्रा की जा सकती है । 'दुघरी साधि चले ततकाला ।' मा० २.२७२.५
दुचित : वि०पुं० (सं० द्विचित्त>प्रा०दु-चित्त) । दो ओर लगे चित्त चित्त वाला (अनेकाग्रचित्त), द्विविधाग्रस्त । 'दुचित कतहुं परितोष न लहहीं ।' मा० २.३०२.७
दुचितई : सं०स्त्री० (सं० द्विचित्तता>प्रा० दुचित्तया) । दुबिधा, एकाग्र न होना । 'आयसु भो राम को सो मेरे दुचितई है ।' गी० १.८६.१
दुति : सं०स्त्री० (सं० द्युति) । आभा, कान्ति, दीप्ति । मा० १.१०६.७
दुतिकारी : वि० (सं० द्युतिकारिन्) । कान्ति बिखेरने वाला । 'तिलक ललाटपटल दुतिकारी ।' मा० १.१४७.४
दुतिहीन, ना : (सं० द्युतिहीन) । कान्ति रहित । मा० २.१९९.५

दुतीय : संख्यात्मक वि० (सं० द्वितीय) । दूसरा । कवि० ७.६५
दुत्त : वि० (सं० द्रुत) । फुर्तीला, तीव्र गति वाला । 'दुत्त मत्त मृग मराल ।' गी० २.४३.३
दुनिये : (दे० दुनी) दुनिया ही, विश्व-प्रपञ्च ही । 'बिरची बिरंचि सब देखियत दुनिये ।' हनु० ४४
दुनीं : दुनिया में । 'बिदित बात दुनीं सो ।' कवि० ७.७२
दुनी : सं०स्त्री० (फा० दुनिया) । संसार, पृथ्वीलोक । 'कबिबृंद उदार दुनी न सुनी ।' मा० ७.१०१.६
दुबिद : द्विबिद । मा० ६.४३.२
दुबिध : वि० (सं० द्विविध) । दो प्रकार का-की । दुबिधायुक्त, दुचित्त । दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी ।' मा० २.३०२.६
दुभाषी : वि० (सं० द्विभाषिक) । दो भाषाओं का ज्ञाता जो वक्ता की भाषा का अनुवाद श्रोता की भाषा में करता है तथा श्रोता की बात को वक्ता की भाषा में रखता है=दुभासिया । 'अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी । उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी ।' मा० १.२१.८
दुरंत : वि० (सं०) । जिसका अन्त कठिनाई से पाया जाय=दुष्पार । 'दुस्तर दुर्ग दुरंत······दुराधरष भगवंत ।' मा० ७.६१ ख
दुरइँ : दुरहिं । मा० २.१६३.१ (पाठान्तर) ।
दुरइ : आ०प्रए० । छिपता है । 'बैर प्रेम नहिं दुरइ दुराएँ ।' मा० २.२६४.२
दुरघट : दुर्घट । विन० ५६.६
दुरजन : दुर्जन । कृ० ६०
दुरत : वकृ०पुं० । छिपता-छिपते । 'प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा ।' मा० १.१५७.४
दुरतिक्रम : वि० (सं०) । जिसका अतिक्रमण कठिन (या असंभव) हो । 'कालु सदा दुरतिक्रम भारी ।' मा० ७.६४.८
दुर्दशा : सं०स्त्री० (सं० दुर्दशा) । दुरवस्था, दुर्गति, कष्टमयी । स्थिति । विन० १४६.३
दुरदिन : सं०पु० (सं० दुर्दित) । (१) मेघाच्छादित दिन (२) नैराश्यपूर्ण संकट का समय । 'दिन दुरदिन दिन दुरदसा दिन दुख दिन दूषन ।' विन० १४६.३
दुरनि : सं०स्त्री० । छिपने की क्रिया, गोपन । 'दुरनि त्यागि दामिनि जनु दमकति ।' गी० ७.१७.६
दुरबासना : दुर्बासना । कवि० ७.११६
दुरबासा : सं०पुं० (सं० दुर्वासस्—दुर्वासा:) एक मुनि का नाम जो क्रोधी प्रसिद्ध हैं । मा० २.२१८.६
दुरलभ : दुर्लभ । मा० ३.३६.८

दुरहिं : आ०प्रब० । छिपते हैं । 'बैर प्रीति नहिं दुरहिं दुराएँ ।' मा० १.३४६.४
दुराइ : पूकृ० । छिपाकर । 'सचिवँ चलायउ तुरत रथु, इत उत खोज दुराइ ।' मा० २.८५
दुराइँ : भूकृ०स्त्री०ब० । छिपायीं । 'कटुक कठोर कुबस्तु दुराइँ ।' मा० २.३११.५
दुराई : भूकृ०स्त्री० । (१) छिपायी, छिपा रखी । 'जानि कुअवसरु प्रीति दुराई ।' मा० १.६८.६ (२) छिपायी हुई । 'देहु तुरत निज नारि दुराई ।' मा० ३.१९.६
दुराउ, ऊ : सं०पुं०कए० । छिपाव, गोपन । 'प्रभु सन कवन दुराउ ।' मा० १.१४९ १.५३.५
दुराएँ : छिपाने से । 'बैर प्रीति नहिं दुरहिं दुराएँ ।' मा० १.३४६.४
दुराए : भूकृ०पुं०ब० । छिपाये । 'तेहिं इरिषा बन आनि दुराए ।' मा० २.१२०.६
दुराएहु : आ०भ०+आज्ञा+मब० । तुम छिपा रखना । 'चलेहुं प्रसंग दुराएहु तबहूं ।' मा० १.१२७.८
दुराजु : सं०पुं०कए० (सं० दूराज्यम्>प्रा० दुरज्जं>अ० दुरज्जु) । दुष्ट राज्य, दोषयुक्त शासन । 'दिन दिन दूनो दुखु दुरित दुराजु ।' कवि० ७.८१
दुराधरष : वि० (सं० दुराधर्ष) । जिसे तिरस्कृत करना कठिन (असंभव) हो । 'दुराधरष भगवंत ।' मा० ७.९१ ख
दुराप : वि० (सं०) । दुर्लभ, दुष्प्राप्य । विन० ५५.८
दुरायो : भूकृ०पुं०कए० । छिपाया । 'हृदय दुसह दुख दुरायो ।' गी० ५.१५.२
दूराराध्य : वि० (सं०) । कठिनता से आराधना-योग्य । मा० १.७०.४
दुराव : (१) दुराउ । गोपन । 'तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं ।' मा० ३.१३.१ (२) वि० (सं० दुराप>प्रा० दुराव) । दुर्लभ ।
दुरावउँ : आ०उए० । छिपाता-ती हूं । 'तातें नहिं कछु तुम्हहिं दुरावउँ ।' मा० ७.७४.४
दुरावहिं : आ०प्रब० । छिपाते हैं । 'गूढउ तत्त्व न साधु दुरावहिं !' मा० १.११०.२
दुरावा : (१) दुरावै । छिपाता है । 'जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा ।' मा० १.२.६ (२) भूकृ०पुं० । छिपाया, छिपा लिया । 'भूप रूप तब राम दुरावा ।' मा० ३.१०.१८
दुरावैं : दुरावहिं । 'प्रगटैं उपासना दुरावैं दुरबासनाहि ।' कवि० ७.११९
दुरावै : आ०प्रए० । छिपाता है । 'दुरावै मुखु सूखत सहमहीं ।' कवि० ६.८
दुरावौं : दुरावउँ । 'कीन्हे अघ, ते करि जतन दुरावौं ।' विन० १४२.७
दुरासा : सं०स्त्री० (सं० दुराशा>प्रा० दुरासा) । दूषित आशा, निरर्थक या कलुष विषयक आशा । मा० १.२४.५

दुरि : पूकृ० । छिप (कर) । 'कबहुंक प्रगट कबहुं दुरि जाई ।' मा० ६.७६.१२
दुरित : सं०पुं (सं०) । पातक । मा० १.४३.४
दुरितु : दुरित+कए० । कवि० ७.८१
दुरीदुरा : सं०पुं०+क्रि०वि० । लुकाछिपी; अज्ञात-अदृश्य रहकर । 'दुरीदुरा करि नेगु सुनात जनायउ ।' जा०मं० १४८
दुरे : भूकृ०पुं०ब० । छिपे, छिप गये । मा० १.८४ छं०
दुरेउ : भूकृ०पुं०कए० । छिप गया । मा० १.१५६.५ 'जनु निहार महुं दिनकर दुरेऊ ।' मा० ६.६३.४
दुरैगी : आ०भ०स्त्री०प्रए० । छिपेगी । 'क्यों दुरैगी बात ।' विन० २६३.३
दुर्ग : (१) वि० (सं०) । दुर्गम । 'दुस्तर दुर्ग दुरंत······भगवंत ।' मा० १.६१ ख (२) सं०पुं० (सं०) । गढ़, किला । 'दहेउ दुर्ग अति बंका ।' मा० ५.३३.५ (३) गुप्त स्थान, छिपने का दुर्गम स्थान । 'जातुधान दावन परावन को दुर्ग भयो ।' हनु० ७
दुर्गम : वि० (सं०) । दुष्प्राप्य, कठिनता से पहुंचने (पाने) योग्य । 'दुराधरष दुर्गम भगवाना ।' मा० १.८६.४
दुर्गा : सं०स्त्री० (सं०) । देवी महामाया जिन्होंने महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती रूपों से असुर-संहार किया । मा० ७.६१.७
दुर्घट : वि० (सं०) । जिसका घटित होना कठिन हो । (१) कठिनता से गढ़ा (बनाया) हुआ । 'कोपि कपिन्ह दुर्घट गढ़ु घेरा ।' मा० ६.४६.६ (२) कठिन; विषम, गहन । 'जहँ सब संकट दुर्घट सोचू ।' कवि० ७.५३ (३) दुष्कर । 'दुर्घट है तप ।' कवि० ७.८६
दुर्जन : सं०+वि० (सं०) । दुष्ट व्यक्ति । मा० ४.१७.४
दुर्जय : वि० (सं०) । जिसे जीत पाना कठिन हो=अजय्य । विन० ५८.५
दुर्दोष : दुष्ट कर्मों से जनित कुसंस्कार आदि दोष । विन० ५६.१
दुर्धर्ष : दुराधरष (सं०) । विन० ५०.३
दुर्बचन : सं०पुं० (सं० दुर्वचन) । दूषित वचन, कष्टकर कथन । 'मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे ।' मा० १.१३८.४
दुर्बल : वि० (सं०) । कृशकाय ।
दुर्बलता : सं०स्त्री० (सं०) । कृशता, क्षीणता । मा० ७.१२२.१०
दूर्वा : सं०स्त्री० (सं० दूर्वा) । दूब=एक प्रकार की घास जो मङ्गल कार्यों में उपयोगी मानी गयी है । मा० ७.३.५
दुर्बाद, दा : सं०पुं० (सं० दुर्वाद) । दुर्वचन, कटूक्ति, दूषित कथन । मा० ५.२०; ६.३३.६

दुर्बासना : सं०स्त्री० (सं० दुर्वासना) । कुसंस्कार, दूषित विषयों की वासना, कलुष इच्छा । मा० ३.४४.४

दुर्मद : वि० (सं०) । दुष्ट मद से युक्त, अहंकारी । 'कुंभकरन दुर्मद रन रंगा ।' मा० ६.६४.२

दुर्मुख : (१) वि० (सं०) । विकृत मुख वाला । (२) सं०पुं० । राक्षस विशेष का नाम । मा० ६.६२.११

दुर्लभ : वि० (सं०) । कठिनता से पाने योग्य । मा० १.६७.५

दुर्वासना : दुर्बासना । विन० ५६.१

दुर्विनीत : वि० (सं०) । अनुशासनहीन, अशिष्ट, असभ्य, दुष्ट । विन० ५६.६

दुर्व्यसन : सं०पुं० (सं०) । दूषित व्यसन (१) संकट की स्थिति (२) कलुष वासना तथा तत्सम्बन्धी प्रकृति । विन० ५४.७

दुलह : सं०पुं० (सं० दुर्लभ>प्रा० दुल्लह) । दूल्हा, वर । 'दुलह दुलहिनिन्ह देखि नारि नर हरषहिं ।' जा०मं० १४२

दुलहिनि : दुलह+स्त्री० । वधू । मा० १.६२.६

दुलहिनिन्ह : दुलहिनि+संब० । दुलहनों (को) । 'देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी ।' मा० १.३४८.८

दुलहियन : दुलहिया+संब० । दुलहनों (को) । 'पालागनि दुलहियन सिखावति ।' गी० १.११०.२

दुलहिया : दुलही । छोटी-प्यारी-सुन्दर दुलहन । कृ० १३

दुलही : दुलहिनि । 'रामु सो न बरु दुलही न सिय सारिखी ।' कवि० १.१५

दुलार : (१) सं०पुं० (सं० दुर्लाल>प्रा० दुल्लाल) । शिशुओं के प्रति प्यार, वात्सल्य । (२) बालहठ । 'राखा मोर दुलार गोसाईं ।' मा० २.३००.६

✓दुलार दुलारइ : (सं० दुर्लालयति>प्रा० दुल्लालइ—शिशु के प्रति वात्सल्य की क्रिया) आ०प्रए० । दुलारता-ती है । 'मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना ।' मा० १.१९८.८

दुलारत : वकृ०पुं० । दुलार करता-ते (पुचकारते) । 'जीति हारि चुचुकारि दुलारत ।' विन० १००.३

दुलारा : दुलार । 'बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा ।' मा० २.२६१.१

दुलारीं : भूकृ०स्त्री०ब० । दुलरायीं, वात्सल्यपूर्वक पुचकारीं, स्नेहसिक्त कीं । 'बार बार हियँ हरषि दुलारीं ।' मा० १.३५४.४

दुलारे : वि०पुं० (सं० दुर्लालित>प्रा० दुल्लालिय) । (१) प्यारे । 'पुर जन प्रिय, पितु मातु दुलारे ।' मा० २.२००.२ (२) पुत्र । 'दसरत्थ-दुलारे ।' कवि० ७.१२

दुलारो : वि०पुं०कए० । (१) प्यारा । 'राम को दुलारो दास ।' हनु० ९ (२) पुत्र । 'समीर-दुलारो ।' हनु० १९

दुवन : दुअन । हनु० ३

दुवार : दुआर । विन० १३९.१

दुवारे : द्वारे । द्वार पर । विन० १४५.१

दुष्ट : वि० (सं०) । (१) दोषयुक्त । 'एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा ।' मा० ३.१५.५ (२) हिंसक । 'दुष्ट जंतु ।' मा० २.५९ (३) पापी । 'रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही ।' मा० ३.२९.११ (४) प्रतिकूलाचारी, खल । 'दुष्ट संग जनि देइ बिधाता ।' मा० ५.४६.७ (५) शठ, शठतापूर्ण, असंगत । 'दुष्ट तर्क ।' मा० ७.४६.८

दुष्टता : सं०स्त्री० (सं०) । दुष्ट का भाव-कर्म । मा० ७.१२१.३४

दुष्टहृदय : वि० (सं०) । कलुषित हृदय वाला-वाली । मा० ५.४४.४; ३.१७.३

दुष्टाटवी : (अटवी=वन—सं०) दुष्टरूपी वन, दुष्ट जनों का वन, दुष्ट समूह । 'विभीषण बसत मध्य दुष्टाटवी ।' विन० ५८.६

दुष्पार : वि० (सं०) । जिसका पार पाना कठिन हो—अपार । विन० ५३.४

दुष्प्राप्य : वि० (सं०) । दुर्लभ । विन० ५३.४

दुष्प्रेक्ष्य : वि० (सं०) । दुर्दर्श=कठिनता से देखने योग्य । विन० ५३.४

दुसरें : दूसरे…ने । 'दुसरें सूत बिकल तेहिं जाना ।' मा० ६.४३.८

दुसरे : दूसरे । गी० १.४५.५

दुसह : वि० (सं० दुःसह) । सहने में कठिन, कष्ठ से सहने योग्य । 'जनमत मरत दुसह दुख होई ।' मा० ७.१०९.७

दुसही : वि०स्त्री० । दूसरे के शुभ को दुःसह मानने वाली, ईर्ष्यालु स्त्री० । 'असही दुसही मरहुं मनहि मन ।' गी० १.२.१०

दुसासन : सं०पुं० (सं० दुःशासन) । धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन का अनुज=कौरव-विशेष का नाम । कृ० ६०

दुस्तर : वि० (सं०) । जिसका पार पाना कठिन हो । 'अति अगाध दुस्तर सब भाँती ।' मा० ५.५०.६

दुस्तर्क्य : वि० (सं०) । तर्क द्वारा दुर्गम, अनिर्वचनीय, तर्कशक्ति से दुर्ज्ञेय ।' विन० ५३.४

दुस्त्यज : वि० (सं०) । जिसका त्याग कठिन हो । विन० ५०.५

दुहन : भकृ०अव्यय । दुहने, दोहन करने । 'आक दुहन तुम्ह कह्यो ।' कृ० ५१

दुहाई : (१) दोहाई । (२) भूकृ०स्त्री० । दोहन करायी । 'सबनि सुधेनु दुहाई ।' गी० १.१५.१

दुहाए : भूकृ०पुं०ब० । दुग्ध-दोहन कराए । 'गोबृंद दुहाए ।' गी० १.६.४

दुहि : पूकृ० । दुह कर, निचोड़ कर, दोहन करके । 'बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं ।' मा० २.१६८.१

दुहिन : सं०पुं० (सं० द्रुहिण) । ब्रह्मा । 'जेइँ चले हरि दुहिन सहित सुर भाइन्ह ।' पा०मं० १३९

दुहुं, हूं : दोनों । 'ग्राम नगर दुहुं । कूल ।' मा० १.३९

दुहु, हू : दुहुं । मा० १.२३७.३

दू : दुइ । 'कूर कौड़ी दू को हौं ।' हनु० ३४

दूक : दो का । 'सुदिन कुदिन दिन दूक ।' दो० ४४४

दूखा : दुख । 'सुनत बचन बिसरे सब दूखा ।' मा० ७.२.६

दूजा : वि०पुं० (सं० द्वितीय>प्रा० दुइज्ज) । दूसरा । 'मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा ।' मा० ३ १२.१२

दूजी : दूजा+स्त्री० । दूसरी । मा० २.१६.१

दूजें : (१) दूसरे ने । 'मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें ।' मा० २.३.६ (२) दूसरे में । ध्यानु प्रथम जुग मखबिधि दूजें ।' मा० १.२७.३

दूजो : दूजा+कए० । दूसरा कोई, एक भी दूसरा । 'तुलसी जग दूजो न देखियत ।' कृ० २७

दूत : सं०पुं० (सं०) । चर, बसीठ, सन्देशहर, गुप्तचर । मा० १.२८७.१

दूतन्ह : दूत+संब० । दूतों (को) । 'दूतन्ह देन निछावरि लागे ।' मा० १.२९३.७

दूता : दूत । मा० ४.१९.६

दूतिका : दूती । सन्देशहारिणी । 'मुक्ति की दूतिका ।' विन० ४८.४

दूतिन्ह : दूती+सं०ब० । दूतियों । 'दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी ।' मा० ५.३६.४

दूती : सं०स्त्री० (सं०) । (१) सन्देशहारिणी (२) गुप्तचरी (३) कुट्टनी । (४) वि०स्त्री० (सं० द्वितीया) । दूसरी । 'सुभ दूती उनचास भलि ।' रा०प्र० २.७.७

दूतु : दूत+कए० । एक दूत । 'अवसि दूतु मैं पठइब प्राता ।' मा० २.३१.७

दूध : सं०पुं० (सं० दुग्ध>प्रा० दुद्ध) क्षीर । मा० २.१९.७

दूधमुख : वि०पुं० । दुधमुहा, दूध पीता बच्चा । 'सूध दूधमुख करिअ न कोहू ।' मा० १.२७७.१

दून : वि०पुं० (सं० द्विगुण>प्रा० दुउण) दुगन । 'तासु दून कपि रूप देखावा ।' मा० ५.२.९

दूनउ : दोनों । 'भरत सत्रुहन दूनउ भाई ।' मा० १.१९८.४

दूना : दून । 'तुम्ह तें प्रेमु राम कें दूना ।' मा० ५ १४.१०

दूनी : दूना+स्त्री० दुगुनी । कवि० ७.८०

दूनो : दूना+कए० दुगुना । 'दुखु दूनो दसादुहुं देखि ।' कवि० ७.४६
दूब : दुर्वा (सं० दूर्वा>प्रा० दुव्वा>अ० दुव्व) । मा० १.२९६.८
दूबर : वि०पुं० (सं० दुर्बल>प्रा० दुब्बल) । कृश, दुबला ।
दूबरि : दूबर+स्त्री० । दुबली । 'देह दिनहुं दिन दूबरि होई ।' मा० २.३२५.१
दूबरे : दूबर का रूपान्तर । दुबले । 'मोसे दीन दूबरे को तकिया तिहारिये ।' हनु० २२
दूबरो : दूबर+कए० । दुबला । 'देखि दीन दूबरो करै न हाय हाय को ।' हनु० ४१
दूरति : वकृ०स्त्री० (सं० दूरयन्ती>प्रा० दूरंती) । दूर करती । '(मूरति) मयननि बहु छबि अंगनि दूरति ।' मा० ५.४७.१
दूरि : (१) क्रि०वि० (सं० दूरे>अ० दूरि) । दूर । मा० १.७७ (२) सं०स्त्री० । दूरी, विप्रकर्ष । 'बिलोके दूरि तें दोउ बीर ।' गी० २.६६.१
दूरिहि : दूर ही । 'दूरिहि तें देखे दोउ भ्राता ।' मा० ५.४५.२
दूरी : दूरि । मा० १.३४.१
दूलह : दुलह । दूल्हा । मा० १.९२.८
दूलहु : दूलह+कए० । अद्वितीय दूल्हा । मा० १.९४.१
दूषक : वि० (सं०) । दोष लगाने वाला, दूषित करने वाला । 'गुन दूषक व्रात न कोपि गुनी ।' मा० ७.१०१.६
दूषणापह : वि० (सं०) । (१) दोषनाशक (२) दूषण नामक राक्षस के नाशक । मा० ३.४ छं०
दूषन : सं०पुं० (सं० दूषण) । (१) दोष, त्रुटि, विकार । 'दूषन रहित सकल गुन रासी ।' मा० १.८०.३ (२) दोष लगाना, दोषारोपण । 'जे पर-दूषन भूषन धारी ।' मा० १.८.१० (३) अपराध । 'जदपि न दूषन तोर ।' मा० १.१७४ (४) वाणी के दोष (काव्यदोष) । 'बोले बचन बिगत सब दूषन ।' मा० २.४१.६ (५) एक राक्षस जो जन स्थान में रहता था=खर राक्षस का भाई । 'खर दूषन पहिं गई बिलपाता ।' मा० ३.१८.२
दूषनारि : (दूषन+अरि) (१) सभी दोषों के शत्रु (२) दूषण राक्षस के शत्रु= रामचन्द्र । मा० ६.११३ छं०
दूषनु : दूषन+कए० । (१) दोष । 'एक बिधातहि दूषनु देहीं ।' मा० २.४९.१ (२) दूषण-राक्षस । कवि० ६.४
दूषहिं : आ०प्रब० (सं० दूषयन्ति>प्रा० दूसंति>अ० दूसहिं) । दोष लगाते हैं, दूषित करते या बताते हैं । 'जे दूषहिं श्रुति करि तरका ।' मा० ७.१००.४
दूषा : भूकृ०पुं० । दूषित हुआ । 'गुर अवमान दोष नहिं दूषा ।' मा० २.२०९.५

दूसन : दूषन । गी० २.३.३

दूसर : वि०पुं० । द्वितीय, अन्य । मा० २.५०.४

दूसरि, री : दूसर+स्त्री० । 'जनि बात दूसरि चालही ।' मा० २.५० छं०

दूसरे : 'दूसर' का रूपान्तर । दो० ५४

दूसरो : दूसर+कए० । कृ० ३३

दृग : सं०स्त्री० (सं० दृश्—दृग्) । दृष्टि, नेत्र । मा० १.१

दृढ : वि० (सं०) । स्थिर, सारयुक्त । मा० १.१७८ क

दृढता : सं०स्त्री० (सं०) । स्थिरता, सारयुक्तता, सबलता । कवि० ७.८७

दृढ-ब्रत : वि० (सं० दृढ-व्रत) । स्थिर संकल्प वाला, दृढ प्रतिज्ञ, अविचल निष्ठा वाला । मा० २.८२.१

√दृढा, दृढाइ, ई : (सं० दृढायते>प्रा० दिढाइ>अ० दृढाइ) आ०प्रए० । दृढ होता-ती है । 'धीरन्ह कें मन बिरति दृढाई ।' मा० ३.३९.२

दृढाइ : पूकृ० । दृढ़ करके । 'जोरी प्रीति दृढाइ ।' मा० ४.४

दृढाई : (१) दृढाइ । स्थिर करके । 'चले साथ अस मंत्रु दृढाई ।' मा० २.८४.७ (२) भूकृ० स्त्री० । दृढ की, स्थिर की, निश्चित की । 'जय महेस भलि भगति दृढाई ।' मा० १.५७.४ (३) दे० √दृढा ।

दृढावा : भूकृ०पुं० (सं० द्रढित>प्रा० दढाविअ>अ० दृढाविअ) । स्थिर किया । 'लछिमन मन अस मंत्रु दृढ़ावा ।' मा० ६.७६.१४

दृढाहिं, हीं : आ०प्रब० । दृढ होते-ती हैं । 'श्रवनादिक नव भक्ति दृढाहीं ।' मा० ३.१६.८

दृश्य : वि० (सं०) । जो देखा जा सके, ऐन्द्रिय तत्त्व, दृष्टिगोचर, प्रमेय, ज्ञेय । 'सकल दृश्य दृष्ट ।' विन० ५३.७

दृष्टि : सं०स्त्री० (सं०) । नेत्र, देखने की क्रिया । मा० ४.२८

दे : आ०मए० (सं० देहि>प्रा० दे=देहि) । तू दे । (१) प्रार्थना । 'नृप नायक दे बरदानमिदं ।' मा० ६.१११.२२ (२) आज्ञा । 'डारि दे घरबसी लकुटी ।' कृ० १७

√दे, देइ, ई : (सं० ददाति>प्रा० देइ) आ०प्रए० । देता-ती है । 'देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ ।' मा० १.२.१३

देइ : (१) देता है । (२) पूकृ० । देकर । 'अरघ देइ मनि आसन बर बैठायउ ।' पा०मं० १२१

देइअ : आ०कवा०प्रए० । दीजिए, दिया जाय । 'आयसु देइअ हरषि हियँ ।' मा० २.४५

देइगो : आ०भ०पुं०प्रए० । देगा । 'सो कि कृपालुहि देइगो केवट-पालहि पीठि ।' दो० ४९

देइहहु : आ०भ०मब० । दोगे । 'मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं ।' मा० २.१७९.२

देइहि : आ०भ०प्रए० । देगा । 'सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू ।' मा० २.६३.५

देई : (१) देइ । देता-ती है । 'महि न बीचु बिधि मीचु न देई ।' मा० २.२५२ (२) देइ । देकर । 'बहु बिधि चेरिहि आदरु गेइ । कोप भवन गवनी कैकेई ।' मा० २.२३.३

देउँ, ऊँ : आ०उए० (सं० ददामि>प्रा० देमि>अ० देउँ) । दूं, देता हूं । 'दिच्छा देउँ ग्यान जेहिं पावहु ।' मा० ६.५०.८ 'भरतहि समर सिखावन देऊँ ।' मा० २.२३०.३

देउ, ऊ : (१) देव+कए० । स्वामी, आराध्य । 'छमिहि देउ अति आरति जानी ।' मा० २.३००.८ (२) आ०—प्रार्थना, कामना, संभावना—प्रए० । दे, देवे । 'अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई ।' मा० २.३१३.८ 'तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ ।' मा० २.१६८.८

देऊ : (१) देउ । देव (२) दाता, देने वाला । 'देऊ तौ कृपानिकेत देत दादि दीन की ।' कवि० ७.१८

देख : (१) देखइ । देखता है । 'जहँ-तहँ देख धरें धनुबाना ।' मा० २.१३१.७ (२) देखे, देख ले । 'जौं सखि इन्हहि देख नरनाहू ।' मा० १.२२२.२ (३) देखा । 'भोजन करत देख सुत जाई ।' मा० १.२०१.४

✓**देख, देखइ, ई** : (सं० पश्यति>प्रा० देक्खइ) आ०प्रए० । देखता-ती है । 'सकल धर्म देखइ बिपरीता ।' मा० १.१८४.६ 'मरम ठाहरु देखई ।' मा० २.२५ छं०

देखउँ : आ०उए० । देखता-ती हूं । 'हितू न देखउँ कोउ ।' मा० १.१६६

देखत : वकृ०पुं० । देखता-देखते । 'कौतुक देखत सैल बन ।' मा० १.१

देखन : भकृ० अव्यय । देखने । 'देखन बागु कुअँर दुइ आए ।' मा० १.२२९.१

देखनिहारे : वि०पुं०ब० । देखने वाले । 'सखि, सब कौतुक देखनिहारे ।' मा० १.२५६.१

देखब : भकृ०पुं० । देखना (होगा) । 'सो प्रभु मैं देखब भरि नयना ।' मा० १.२०६.८

देखराइ : पूकृ० । दिखला कर । 'देखराइ बनु फिरेहु ।' मा० २.८१

देखराई : भूकृ०स्त्री० । दिखलायी । 'भय अरु प्रीति नीति देखराई ।' मा० ४.१९.७

देखराए : भूकृ०पुं०ब० । दिखलाये । 'दुंदुभि अस्थि ताल देखराए ।' मा० ४.७.१२

देखरायो : भूकृ०पुं०कए० । दिखलाया । 'पछारि निज बल देखरायो ।' मा० ६.७४.८

देखरावा : भूकृ०पुं० । दिखलावा । 'ठाउँ देखरावा ।' मा० २.१३३.५

देखवैया : वि० । दर्शक । 'सोभा देखवैया बिनु बित्तहीं बिकैहैं ।' गी० २.३७.२

देखहिं, हीं : आ०प्रब० । देखते हैं । 'देखहिं दरसु नारि नर धाई ।' मा० २.१०९.७

देखहुं : आ०—आज्ञा—प्रब० । देखें । 'देखहुं कवि जननी की नाईं ।' मा० ६.१०८.१२

देखहु : आ०मब० । देखा, देखते हो । 'द्वंदजुद्ध देखहु ।' मा० ६.८९

देखा : (१) भूकृ०पुं । अवलोकन किया । मा० १.४९.८ (२) देखइ । मा० ७.७३.५

√देखा, देखाइ, ई : देखा+प्रए० । दिखाई पड़ता-ती है । 'कामिन्ह कै दीनता देखाई ।' मा० ३.३९.२

देखाइ : पूकृ० । दिखला कर । 'नगर देखाइ तुरत लै आवौं ।' मा० १.२१८.६

देखाइअत : वकृ०—कवा०—पुं० । दिखाया जाता (है) । 'कामु कोहु लाइ कै देखाइअत आँखि मोहि ।' कवि० ७.१००

देखाइहौं : आ०भ०उए । दिखाऊँगा । 'कटि लौं जल थाह देखाइहौं जू ।' कवि० २.६

देखाइहौ : आ०भ०मब० । दिखलाओगे । 'कबहिं देखाइहौ हरि चरन ।' विन० २१८.१

देखाई : (१) देखाइ । दीखता है । दे० √देखा । (२) देखाइ । दिखला कर । 'मातु तात कहँ देहि देखाई ।' मा० २.१६४.३ (३) भूकृ०स्त्री० । दिखलायी । 'पनु करि रघुपति भगति देखाई ।' मा० १.१०४.८

देखाउ, ऊ : आ०—प्रार्थना, आज्ञा—मए० । 'बेगि देखाउ मूढ़ ।' मा० १.२७०.४ 'रामु लखनु सिय आनि देखाऊ ।' मा० २.१५०.२

देखाउब : भकृ०पुं० । दिखना होगा (दिखाऊँगा, दिखाएँगे) । 'सर निरझर बन ठाउँ देखाउब ।' मा० २.१३६.७

देखाए, ये : भूकृ०पुं०ब० । दिखलाये । 'एहि बिधि मुनिबर भवन देखाए ।' मा० २.१३२.१

देखादेखी : सं०स्त्री० । परस्पर बार-बार देखने की क्रिया । 'देखादेखी दंभ तें कि संग तें भई भलाई ।' विन० २६१.३

देखायउँ : आ०—भूकृ०+उए० । मैंने दिखलाया । 'सो बल तात न तोहि देखायउँ ।' मा० ६.७२.८

देखायो : भूकृ०पुं०कए० । दिखलाया । 'सरनागत पर प्रेम देखायो ।' गी० ६.४.२

√देखाव, देखावइ : (√देख+प्रेरणा—प्रा० देक्खावइ—दिखलाना) आ०प्रए० । दिखलाता-ती है । 'सोइ-सोइ भाव देखावइ ।' मा० ७.७२ ख

देखावत : वकृ०पुं० । दिखलाता, दिखलाते । 'कपिन्ह देखावत नगर मनोहर ।' मा० ७.४.१

देखावतो : क्रियाति०पुं०ए० । दिखलाता । 'तौ क्यों बदन देखावतो ।' विन० ३३.५
देखावन : भकृ० अव्यय । दिखलाने । 'लै चले देखावन रंगभूमि ।' जा०मं०छं० ६
देखावसि : आ०मए० । तू दिखला । 'अब जनि नयन देखावसि मोही ।' मा० ६.४६.३
देखावहिं : आ०प्रब० । दिखलाते-ती हैं । 'चलउँ भागि तब पूप देखावहिं ।' मा० ७.७७.१०
देखावहु : आ०मब० । दिखलाते हो, दिखावो । 'भृगुबर परसु देखावहु मोही ।' मा० १.२७६.६
देखावा : भूकृ०पुं० । दिखलाया । 'लोवा फिरि-फिरि दरसु देखावा ।' मा० १.३०३.५
देखावौं : आ०उए० । दिखलाऊँ । 'तुम्हहि देखावौं ठाउँ ।' मा० २.१२७
देखावौंगी : आ०भ०स्त्री०उए० । दिखलाऊँगी । 'क्यों फिरि बदन देखावौंगी ।' गी० २.६.३
देखि : (१) पूकृ० । देखकर । 'देखि पूर बिधि बाढ़इ जोई ।' मा० १.८.१४
(२) आ०—आज्ञा, प्रार्थना—मए० । तू देख । 'देखि धौं बूझि बोलि बलदाऊ ।' कृ० १२
देखिअ : देखिए । 'देखिअ सपन अनेक प्रकारा ।' मा० २.९३.२
देखिअत : वकृ०—कवा०—पुं० । देखा जाता, देखे जाते । 'देखिअत प्रगट गगन अंगारा ।' मा० ५.१२.८
देखिअहिं : आ०कवा०प्रब० । देखे जाते हैं । 'सुनिआ सुधा देखिअहिं गरल ।' मा० २.२८१
देखिअहु : आ०—भ०+प्रार्थना+मब० । तुम देखना । 'कौतुक प्रात देखिअहु मोरा ।' मा० ६.४९.६
देखिऐ : (१) आ०कवा०प्रए० । देखा जाय, देखा जाता है, देखना चाहिए, देख लीजिए । 'मायाछन्न न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म ।' मा० ३.३९ क
(२) देखी+ऐ । देखी ही । 'बीरता बिदित ताको देखिऐ चहतु हौं ।' कवि० १.१८
देखिन्ह : आ०—भूकृ०+प्रब० । उन्होंने देखा-देखे । 'देखिन्ह जाइ कपिन्ह के ठट्टा ।' मा० ६.४१.४
देखिबी : भकृ०स्त्री० । देखनी (होगी) । 'अब देखिबी रिसानि ।' दो० ४०३
देखिबे : भकृ०पुं० । देखने (होंगे) । 'कबहिं देखिबे नयन भरि रामु लखनु दोउ भाइ ।' मा० १.३००
देखिबो : भकृ०पुं०कए० । देखना । 'देखिबो दास दूसरेहु चौथेहु बड़ो लाभ ।' कृ० ४८

देखिय : देखिअ।

देखियत : देखिअत। 'तुलसी जग दूजो न देखियत।' कृ० २७

देखियतु : देखियत+कए०। देखा जाता। 'पील उद्धरन सील सिंधु ढील देखियतु।' विन० २४८.४

देखिये : देखिऐ। 'आपुहि भवन मेरे देखिये जो न पतीजै।' कृ० ७

देखिहउँ : आ०भ०उए०। देखूंगा। 'आइ पाय पुनि देखिहउँ।' मा० २.५३

देखिहहिं : आ०भ०उए०। देखूंगा। 'आइ पाय पुनि देखिहउँ।' मा० २.५३

देखिहहिं : आ०भ०प्रब०। देखेंगे। 'जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे।' मा० २.१२०.८

देखिहि : आ०भ०प्रए०। देखेगा। 'देखिहि सो उमा बिबाहु।' मा० १.९५ छं०

देखिहैं : देखिहहिं। गी० १.८०.७

देखिहौं : देखिहउँ। 'सुतनि सहित दसरथहि देखिहौं।' गी० १.४८.२

देखीं : भूकृ०स्त्री०ब०। 'देखीं सासु आन अनुहारी।' मा० २.२२६.५

देखी : (१) भूकृ०स्त्री०। 'सपनेहुं संत सभा नहिं देखी।' मा० १.११५.२ (२) देखि। 'रीझिहि राजकुअँरि छबि देखी।' मा० १.१३४.४

देखु : आ०-आज्ञा, प्रार्थना-मए०। तू देख। 'लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा।' मा० ३.३७.३ 'आइ देखु गृह मेरे।' कृ० ३

देखुवार : (देखवार) वि०पुं०। देखने वाला-ले। वर देखने वाला, कन्या के लिए वर का खोजी (देखुवा)। 'ऐहैं सुत देखुवार कालि तेरे बै ब्याह की बात चलाई।' कृ० १३

देखें : देखने पर, देखने से, देखने की दशा में। 'थके नयन रघुपति छबि देखें।' मा० १.२३२.५

देखे : भूकृ०पुं०ब०। दर्शन किये। 'जे देखहिं देखहहिं जिन्ह देखे।' मा० २.१२०.८

देखेउँ : आ०—भूकृ०पुं०+उए०। मैने देखा-देखे। 'बड़ें भाग देखेउँ पद आई।' मा० १.१५९.६

देखेउ : भूकृ०पुं०कए०। देखा। 'भूप बागु बर देखेउ जाई।' मा० १.२२७.३

देखेन्हि : आ०भूकृ०पुं०+प्रब०। उन्होंने देखा-देखे। 'अनुपम बालक देखेन्हि जाई।' मा० १.१९३.८

देखेसि : आ०भूकृ०पुं०+प्रए०। उसने देखा-देखे। 'देखेसि आवत पबि सम बाना। मा० ६.७६.११

देखेहु : आ०—भ०+प्रार्थना+मब०। तुम देखना। 'देखेहु कालि मोरि मनुसाई।' मा० ६.७२.७

देखैं : देखहिं। 'प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई।' मा० ३.१०.१३

देखै : देखइ। देखे, देख सके। 'जेहिं उपाय पुनि पाय जनु देखै दीन दयाल।' मा० २.३१३

देखैहै : (देखाइहै) आ०भ०प्रए० । दिखलाएगा । 'कुसल कुसल बिधि अवध देखैहै ।' गी० ५.५०.५

देखौं : देखउँ । (१) देखूं, देख सकूं । 'एहूं मिस देखौं पद जाई ।' मा० १.२०६.७ (२) देखता हूं, देखती हूं । 'खेलत ही देखौं निज आँगन ।' कृ० ५

देखौंगी : आ०भ०स्त्री०उए० । देखूंगी । गी० ५.४७.१

देखौ : देखहु । 'देखौ देखौ लखन लरनि हनुमान की ।' कवि० ६.४०

देख्यो : देखेउ । कृ० २७

देत, ता : वकृ०पुं० । देता, देते । 'उतरु देत मोहि बधब अभागें ।' मा० ३.२६.६ 'नाथ न सकुचब आयसु देता ।' मा० २.१३६.८

देति : वकृ०स्त्री० । देती । 'देति मनहुं मधु ।' मा० २.२२.३

देते : क्रियाति०पुं०ब० (यदि·· तो) देते । 'तब तुम मोहू से सठनि को हठि गति न देते ।' विन० २४१.१

देतो : क्रियाति०पुं०ए० । देता । 'देतो पै देखाइ बल, फल पापमई है ।' गी० १.८५.२

देन : भकृ० अव्यय । देने (को) । 'देन कहेहु अब जनि बर देइ ।' मा० २.३०.५

देना : देन । (१) दान । 'झूठइ लेना झूठइ देना ।' मा० ७.३९.७ (२) देने (को) । 'सत्य सराहि कहेहु बर देना ।' मा० २.३०.६

देनी : दायनी । देने वाली । 'सुमिरत सकल सुमंगल देनी ।' मा० २.१०६.५

देब, बा : भकृ०पुं० (सं० दातव्य>प्रा० दे अव्व) । देना (होगा) । 'दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देब ।' मा० २.१९

देबा : देब । 'जोइ पूँछिहि तेहि ऊतरु देबा ।' मा० २.१४६.५

देबि : (१) देब+स्त्री० । देनी होगी । (२) देबी (सबोधन) । 'तदपि देबि मैं देबि असीसा ।' मा० २.१०३.८

देबी : देव+स्त्री० (सं० देवी) । (१) स्त्री देवता (२) स्वामिनी (३) रानी । 'तसि पुनीत कौसल्या देबी ।' मा० १.२९४.४

देबोई : देबा+कए०+ई । देना ही । 'देबोई पै जानिए ।' कवि० ७.१६१

देवँ : देव ने, स्वामी ने । 'देवँ दीन्ह सब मोहि अभारू ।' मा० २.२६९.३

देव : सं०पुं० (सं०) । (१) अमर जाति विशेष । मा० २.१२.२ (२) प्राकृतिक शक्ति—अग्नि, पर्जन्य (मेघ) आदि । 'देव न बरषहिं धरनीं ।' मा० ७.१०१ (३) सामान्य पुरुष । 'देव एक गुनु धनुष हमारें ।' मा० १.२८२.७

देवक : देव का । 'सपनेहुं आन भरोस न देवक ।' मा० ३.१०.२

देवकृत : देवों=प्राकृतिक शक्तियों से जनित । 'ब्याधि बिपति सब देवकृत ।' रा०प्र० ७.६.४

देवतन्ह, न्हि : देवता+संब० । देवताओं (ने आदि) । 'इहाँ देवतन्ह अस्तुति कीन्ही ।' मा० ६.८६.५

देवतरु : कल्पवृक्ष । मा० १.३२.११

देवता : देव । मा० १.२७६.७

देवधुनि, नी : सं०स्त्री० (सं० देवधुनी) । गङ्गा । मा० १.४०.३

देवनदी : गङ्गा । कवि० ७.१४५

देवन्ह, न्हि : देव+संब० । देवों (ने, को आदि) । 'देवन्ह दीन्हीं दुंदुभीं ।' मा० १.२८५

देवपति : इन्द्र । मा० २.२९९.३

देवबधू : अप्सरा । मा० १.२९२.४

देवमायाँ : देवों की माया से । 'देवमायाँ मति मोई ।' मा० २.८५.६

देवमाया : देवताओं की माया=व्यामोहक शक्तिपात । मा० २.३०२

देवर : सं०पुं० (सं०) । पति का अनुज । मा० २.९९.१

देवरिषि : (सं० देवर्षि=देव ऋषि) देवजातीय ऋषि (नारद) । मा० १.६८.४

देवल : सं०पुं० (सं० देवालय) । देव मन्दिर । 'तुलसी देवल देव को लागे लाख करोरि ।' दो० ३८४

देवसरि : देव नदी । गङ्गा । मा० २.८७.२

देवहूति : सं०स्त्री० (सं०) । ध्रुव के पितृव्य प्रियव्रत की पुत्री=कर्दम ऋषि की पत्नी=कपिल मुनि की माता । मा० १.१४२.५

देवा : देव । मा० १.३४.७

देवाइ : पूकृ० । दिला कर । 'भूपति गवने भवन तब दूतन्ह बासु देवाइ ।' मा० १.२९४

देवाई : (१) देवाइ । 'पूंछ रानि निज सपथ देवाई ।' मा० २.१९.१ (२) भूकृ०स्त्री० । दिलायी । 'सकुचि राम निज सपथ देवाई ।' मा० २.९९.५

देवान : दिवान । राजा का दर्बार । 'मारे बागबान ते पुकारत देवान गे ।' कवि० ५.३१

देवापगा : सं०स्त्री० (सं०—देव+आपगा=नदी) । गङ्गा । मा० २ श्लो० १

देवैया : वि० । देने वाला । 'नीकें देखे देवता देवैया बने गथके ।' कवि० ७.२४

देस : सं०पुं० (सं० देश) । स्थान, भूभाग । मा० १.१५३ (२) राज्य आदि ।

देसकाल : स्थानगत परिमाण=ऊँचाई, निचाई, मोटाई, परत्व, अपरत्व, दूरी समीपता आदि+कालगत परिमाण=छोटाई, बड़ाई, क्षण, घड़ी, वर्ष, मास, कल्प आदि । इन्हीं से विविध अवसरों तथा परिस्थितियों का निर्माण होता है जिन से सभी वस्तुएँ परिछिन्न रहती हैं । देश में ही 'दिशा' भी सम्मिलित है अतः 'दिक्काल' भी कहा जाता है । मुक्त दशा में आत्मा इन परिच्छेदों से छुटकारा

पाता है। परमात्मा सदा अपरिछिन्न है। 'सोक मोह भय हरष दिवस निसि देस काल तहँ नाहीं।' विन० १६७.५

देसा : देस। मा० १.२.१२

देसु, सू : देस+कए०। (१) स्थान। मा० २.१२२.६ (२) स्थानगत परिस्थिति। 'देसु कालु लखि।' मा० २.३०४.६ (३) राज्य का भूभाग। 'देसु कोसु परिजन परिवारू।' मा० २.३१५.७

देह, हा : सं०पुं०+स्त्री० (सं० देह)। (१) शरीर। मा० १.४ (२) विशिष्टाद्वैत दर्शन में जीवों को ब्रह्म का शरीर माना गया है। 'ते नर प्रगट राम की देहा।' वैरा० २८

देहउँ : अ०भ०उए० (सं० दास्यामि>प्रा० देहिमि>अ० देहिउँ)। दूँगा-गी। 'देहउँ उतरु कौनु मुहु लाई।' मा० २.१४६.७

देहदसा : स्थूल-शरीराभिमानी जीव दशा, देहाध्यास, देहाभिमान, जाग्रत् अवस्था जिसमें स्थूल शरीर से चैतन्य का एकत्व भासित होता है (शरीर की सुध-बुध)। 'नाचहिं पुर नर नारि प्रेम भरि देहदसा बिसराई।' गी० १.१.८

देहनि : देह+संब०। देहों। 'मालनि मानों है देहनि तें दुति पाई।' गी० १.३०.२

देहरीं : (१) देहरी+ब०। देहलियाँ। 'देहरीं बिद्रुम रची।' मा० ७.२७ छं० (२) देहली पर। 'राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।' मा० १.२१

देहरी : सं०स्त्री० (सं० देहली)। दरवाजे का निचला भाग=चौखट।

देहा : देह।

देहिं : आ०प्रब०। देते-ती हैं। 'मागें बारिद देहिं जल।' मा० ७.२७

देहि : दे (सं०, प्रा०)। 'मातु तात कहँ देहि देखाई।' मा० २.१६४.३

देहीं : देहिं। मा० ७.४४.२

देही : (१) देहि। (२) सं०पुं० (सं० देहिन्)। जीव, देहधारी। (३) देह। 'नर तन सम नहिं कवनिउ देही।' मा० ७.१२१.६

देहु, हू : आ०मब० (सं० दत्थ, दत्त>प्रा० देह>अ० देहु)। (१) दो। 'भरतहि अवसि देहु जुबराजू।' मा० २.५०.२ (२) देते हो। 'संतत दासन्ह देहु बड़ाई।' मा० ३.१३.१४

देहेसु : आ०—भ०+आज्ञा—मए०। तू देना। 'तिन्हहि देखाइ देहेसु तैं सीता।' मा० ४.२८.६

दै : (१) दे। 'उठि कह्यो, भोर भयो, झँगुली दै।' कृ० १३ (२) देइ। देकर। 'धाए कपि दै छूह।' मा० ६.६६

दैअँ : (१) दैव ने, भाग्य ने (सं० दैवेन>प्रा० दइएण>अ० दइएँ)। 'दैअँ दुसह दुखु दीन्ह।' मा० २.२० (२) दैव द्वारा। 'दैअँ बिगोई।' मा० २.५१.३

दैअहि : (१) दैव को। 'दैअहि दोषु देहिं मन माहीं।' मा० २.११९.१ (२) दैव के। 'दैअहि लागि कहौ तुलसी प्रभु।' कृ० ६

दैउ : दइउ। भाग्य, नियति। 'करै जौं दैउ सहाई।' मा० १.६९.१

दैत्य : कश्यप-पत्नी दिति के वंशधर। विन० ४५.३

दैन : (१) देन। 'उपमा चहत कबि दैन।' गी० १.३५.१ (२) देने वाला। 'निज भगतनि सुख-दैन।' गी० १.८९.११

दैनी : दायिनी, देने वाली। 'मूरति सब सुख दैनी।' गी० १.८१.२

दैबे : भकृ०पुं०। देने। 'लैबे को एक न दैबे को दोऊ।' कवि० ७.१०६

दैव : सं०पुं० (सं०)। अदृष्ट, भाग्य, नियति (प्रारब्ध कर्मों का भोग देने वाली ईश्वरीय शक्ति)। 'करिअ दैव जौं होइ सहाई।' मा० ५.५१.१

दैविक : वि० (सं० दैव-प्रदत्त या देवों द्वारा प्रदत्त (दुःख)—दे० तापत्रय। गाज गिरना, ओला पड़ना, पाला आदि संकट। 'दैहिक दैविक भौतिक तापा।' मा० ७.२१.१

दैहउँ : देहउँ। दूंगा। 'उतरु काह दैहउँ तेहि जाई।' मा० ६.६१.१६

दैहिक : वि० (सं०)। देहस्थ या देहजनित (दुःख)। आधि-व्याधि। सांख्य में 'आध्यात्मिक नाम देकर 'मानसिक' और 'दैहिक' दो भेद किये गये हैं—दे० तापत्रय। मा० ७.२१.१

दैहैं : आ०भ०प्रब०। देंगे। 'नेकु धका दैहैं ढैहैं ढेलन की ढेरी सी।' कवि० ६.१०

दैहै : आ०भ०प्रए०। देगा। 'को···काढ़ि कलेऊ दैहै।' गी० १.९९.२

दैहौं : दैहउँ। 'इहै सिखावन दैहौं।' विन० १०४.२

दो : दुइ (प्रा०)। दो० ४३४

दोइ : दोनों। 'सम सुगंध कर दोइ।' मा० १.३ क

दोउ, ऊ : (१) दोइ (सं० द्वौवपि>प्रा० दोवि)। दोनों। 'बरन बिराजत दोउ।' मा० १.२० 'आखर मधुर मनोहर दोऊ।' मा० १.२०.१ (२) दो। 'लैबे को एक न दैबे को दोऊ।' कवि० ७ १०६

दोनउ : दूनउ। दोनों। 'भरत सत्रुहन दोनउ भाई।' मा० ७.२६.४

दोना : सं०पुं० (सं० द्रोण=द्रोणक>प्रा० दोणअ)। पत्तों से बना पात्रविशेष। 'सुमन समेत बाम कर दोना।' मा० १.२३३.८

दोनी : सं०स्त्री० (सं० द्रोणी)। छोटा दोना। 'सोभा सुधा पिए करि अँखियाँ दोनी।' गी० २.२२.२

दोने : दोना+ब०। 'नयन मंजु मृदु दोने।' गी० २.२३.२

दोष : सं०पुं० (सं०)। (१) दूषण, विकार। 'मिटहि दोष दुख भव रजनी के।' मा० १.१.७ (२) अपराध, त्रुटि। 'दैअहि दोष देहिं मन माहीं।' मा० २.११९.१ दे० दूषन (३) (सं० द्वेष>प्रा० दोस)। वैर, विरोध। 'सो जन

जगत जहाज है जा के राग न दोष।' वैरा० १६ (४) (सं० दोष)। तापत्रय। 'त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन।' मा० १.३५.१०

दोषउ : दोष भी। 'दोषउ गुन सम कह सब कोई।' मा० १.६९.४

दोषमई : वि०स्त्री० (सं० दोषमयी)। दोषपूर्ण। 'गुन-दोषमई बिरची बिरंचि।' हनु० ४४

दोषमय : वि०पुं० (सं०)। दोषयुक्त, दोषरूप। 'जड़ चेतन गुन-दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।' मा० १ ६

दोषा : दोष। मा० १.४.८

दोषिबे : भकृ०पुं०। दूषित करने, बिगाड़ने। 'खल दुख दोषिब को जन परितोषिबे को।' हनु० ११

दोषु, दोषू : दोष+कए०। एक दोष=एक ही दोष+एक भी दोष। 'यह बड़ दोषु दूरि करि स्वामी।' मा० २.३१४.७ 'तुम्ह कहँ सुकृतु सुजसु नहिं दोषू।' मा० २.१७५.२

दोस : दोष (प्रा०)। मा० ७.४३

दोसक : दोष का। 'सपनेहुं दोसक लेसु न काहू।' मा० २.२६१.५

दोसा : दोषा। मा० २.१३१.३

दोसु, सू : दोषु। 'दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई।' मा० २.२६३.८; १.२७२.३

दोह : (समासान्त में) वि०पुं० (सं० द्रोह)। द्रोह करने वाला। 'साइँ-दोह मोहि कीन्ह कुमातां।' मा० २.२०१.६ (स्वामिने द्रुह्यति इति स्वामिद्रोहः)।

दोहा : सं०पुं० (सं० दोधक>प्रा० दोहअ)। छन्दविशेष जिसके प्रथम-तृतीय चरणों में १३-१३ तथा द्वितीय-चतुर्थ में ११-११ मात्राएँ होती हैं। मा० १.३७.५

दोहाईं : दोहाई से, द्रोहबुद्धि में, द्रोहशीलता में। 'स्वामि गोसाइँहि सरिस गोसाईं। मोहिसमान मैं साइँ- दोहाईं।' मा० २.२९८.४ (दे० दोह)

दोहाई : (१) दोह+भाववाचक सं० (सं० द्रोहता)। द्रोहशीलता। 'स्वामी की सेवक-हितता सब, कछु निज साइँ-दोहाई।' विन० १७.६ (२) सं०स्त्री० (सं० द्रोघ=विनाश, द्रोह=विरोध योजना>प्रा० दोह ?) शत्रुविनाश का आतङ्ककारी प्रभाव, धाक। 'फिरी दोहाई राम की गे कामादिक भाजि।' वैरा० ६१ (३) शपथ। 'तौ मारौं रन राम दोहाई।' मा० २.२३०.८ (४) (सं० द्विधाकृत>प्रा० दोहइअ) अपने ऊपर संकट आने पर कहा हुआ शब्द=शरणागति।

दौन : (१) भकृ०अव्यय। झुलसने (दु उपतापे—दवन)। 'कहा भलो भयो भरत को लगे तरुन तन दौन।' गी० २.८३.२ (२) वि०पुं०=दवन। दमनकारी+सन्तापकारी। 'ही तुम्ह आरत आरति दौन।' गी० ५.२०.४

दौरि : दवरि। दौड़कर। 'खोरि खोरि दौरि दौरि दीन्ही अति आगि है।' कवि० ५.१४

दौरें : क्रि०वि०। दौड़ते हुए। 'बिनु पूंछ बिषान फिरैं दिन दौरें।' कवि० ७.४९

दौरे : भूकृ०पुं०ब०। दौड़ कर चले। 'अनेक गिरे जे जे भीति में दौरे।' कवि० ६.१२

द्याइबी : भकृ०स्त्री०। दिलानी (चाहिए)। 'मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ।' विन० ४१.१

द्यायबी : द्याइबी।

द्युति : सं०स्त्री० (सं०)। दीप्ति, कान्ति, आभा, चमक। विन० ६०.२

द्रब्य : सं० (सं० द्रव्य)। वस्तु। 'मंगल द्रब्य लिएँ सब ठाढ़ीं।' मा० १.२८८.६

द्रव : (१) सं०पुं० (सं०)। पिघला हुआ द्रव्य। 'सोई भयो द्रवरूप सही।' कवि० ७.१४६ (२) द्रवइ। पिघलता-ती है। 'जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी।' मा० ३.१७.६

✓**द्रव द्रवइ** : (सं० द्रवति—द्रुगतौ>प्रा० दवइ>अ० द्रवइ) आ०प्रए०। (१) पिघलता है, पिघल कर बहता है। (२) कृपा करता है, दयार्द्र होता है। 'निज परिताप द्रवइ नवनीता।' मा० ७.१२५.८

द्रवउँ : आ०उए०। द्रवीभूत होता हूँ। 'जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई।' मा० ३.१६.२

द्रवउ : आ०—प्रार्थना—प्रए०। द्रवीभूत होवे, कृपा करे। 'द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी।' मा० १.११२.४

द्रवत : वकृ०पुं०। आर्द्र होते, पिघल जाते। 'औढर दानि द्रवत पुनि थोरें।' विन० ६.२

द्रवति : वकृ०स्त्री०। पिघल कर बह चलती, द्रवीभूत हो जाती। 'सिला द्रवति जल जोर।' दो० १७३

द्रवहिं : आ०प्रब०। द्रवीभूत हो चलते हैं। 'परदुख द्रवहिं संत सुपुनीता।' मा० ७.१२५.८

द्रवहु : आ०मब०। द्रवीभूत होते हो। 'कस न दीन पर द्रवहु उमावर।' विन० ७.१

द्रवै : द्रवइ। (१) द्रवित होता-ती है। 'जौलौं देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना।' कवि० ७.१४८ (२) द्रवित होता हो। 'बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं।' विन० १६२.१

द्रवौ : द्रवहु। 'यह जिय जानि द्रवौ नहीं।' विन० १०९.३

द्रष्टा : वि०पुं० (सं०)। देखने वाला, तत्त्वदर्शी, साक्षात्कर्ता, अन्तर्यामी रूप से सर्वज्ञ। 'सकल दृश्य द्रष्टा।' विन० ५३.७

द्रुपद : पञ्चालनरेश=द्रौपदी के पिता। कृ० ६१

द्रुम : सं०पुं० (सं०) । वृक्ष । मा० १.६५

द्रोणि, णी : सं०स्त्री० (सं०) । घाटी, दो पहाड़ों के बीच (दोनी के आकार का) भू-भाग, दर्रा । 'भूधर-द्रोणि-बिद्दरणि बहुनामिनी ।' विन० १८.२

द्रोन : सं०पुं० (सं० द्रोण) । (१) कौरवों (तथा पाण्डवों) के धनुर्विद्या-शिक्षक आचार्य । कृ० ६० (२) पर्वतविशेष जिसे संजीवनी के लिए हनुमान जी उठा लाये थे, जब लक्ष्मण के रावण की शक्ति लगी थी । हनु० ६

द्रोनाचल : (दे० द्रोन) गी० ६.६.४

द्रोहँ : द्रोह से । 'तासु द्रोहँ सुख चहसि अभागी ।' मा० ७.१०६.४

द्रोह : (१) सं०पुं० (सं०) । द्वेष, वैरभाव । मा० ३.२ (२) (समासान्त में) वि०पुं० (सं०) । द्रोह करने वाला । 'साईं-द्रोह ।' विन० ३३.६

द्रोहपर : वि० (सं०) । वैर में तत्पर । विन० १३६.७

द्रोहा : द्रोह । मा० २.१३०.१

द्रोहिहि : द्रोही को । मा० ७.१२७.१

द्रोही : वि०पुं० (सं० द्रोहिन्) । द्वेषी, वैर करने वाला । मा० १.२३८.२

द्रौपदी : सं०स्त्री० (सं०) । द्रुपद राजपुत्री=पाण्डवों की पत्नी । दो० १६९

द्वंद, द्वंद्व : सं०पुं० (सं०) । (१) युगल, द्वय (जोड़ा) । 'पदकंज द्वंद ।' मा० ७.१३ छं० ४ (२) परस्पर विरोधी तत्त्व—शीत-उष्ण, राग-द्वेष, हानि-लाभ, पाप-पुण्य, सुख-दुःख, दिन-रात्रि, जय-पराजय, अनुकूल-प्रतिकूल आदि जिनमें एक की प्रतीति से ही दूसरे की प्रतीति होती है । 'रघुनंद निकंदय द्वंद्व-घनं ।' मा० ७.१४.२० (३) द्वैत-बुद्धि जो उक्त द्वन्द्वात्मक बोध पर प्रतिष्ठित है जिससे जागतिक भेदों की प्रतीति होती है—मायिक प्रत्यय । मा० ६.१०३ छं० १

द्वंदजुद्ध : दो व्यक्तियों का परस्पर युद्ध । मा० ६.८९

द्वंद्वहर : वि० (सं०) । जागतिक द्वन्द्वों को दूर करने वाला । मा० ३.३२ छं०

द्वादस : संख्या (सं० द्वादश) । बारह । गी० ७.२५.१

द्वादस-अच्छर : (सं० द्वादशाक्षर) । एक विष्णुमन्त्र जिसमें बारह अक्षर होते हैं—'ओं नमो भगवते वासुदेवाय ।' मा० १.१४३

द्वादसि, सी : सं०+वि०स्त्री० (सं० द्वादशी) । (१) बारहवीं (२) पक्ष की बारहवीं तिथि । विन० २०२.१३

द्वापर : सं०पुं० (सं०) । (१) संशय, दुबिधा । (२) चतुर्युगी का तीसरा युग । 'बहुरज स्वल्प सत्त्व कछु तामस । द्वापर धर्म हरष-भय मानस ।' मा० १०४.४

द्वार, रा : सं०पुं० (सं० द्वार) । (१) बहिर्गमन-मार्ग, निकास, फाटक । 'सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा ।' मा० १.२१४.१ (२) रन्ध्र, छिद्र । 'इंद्री द्वार झरोखा नाना ।' मा० ७.११८.११ (३) साधन, उपाय, मार्ग—साधक और साध्य के

मध्य में आने वाला उपकरण आदि। 'साधनधाम मोच्छ कर द्वारा।' मा० ७.४३.८

द्वारपाल : सं०पुं० (सं०)। दौवारिक, द्वार-रक्षा में नियुक्त परिचारक। मा० १.१२२.४

द्वारें : द्वार पर। 'महाभीर भूपति के द्वारें।' मा० १.३०१.३

द्वारे : (१) द्वार+ब०। 'हाट बाट चौहट पुर द्वारे।' मा० १.३४४.४ (२) द्वारें (सं०)। द्वार पर। 'सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे।' मा० ७.९.१

द्वारेहिं : द्वार पर ही। 'द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई।' मा० २.१५९.३

द्विज : सं०पुं० (सं०)। (१) उपनयन संस्काररूप द्वितीय जन्म पाने वाला=त्रिवर्ण =ब्रह्म, क्षत्र, वैश्य। (२) ब्राह्मण। मा० १.१६६.५ (३) पक्षी जो अण्डे से दुबारा जन्म लेता है। (४) दाँत--जो टूट कर शैशव में पुनः जमते हैं। 'श्रवन अधर सुंदर द्विज छबि अनूप न्यारी।' गी० १.२५.४

द्विजन, न्ह : द्विज+संब०। द्विजों। 'सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा।' मा० ७.५.५

द्विजवर : श्रेष्ठ ब्राह्मण। मा० ७.१०५.७

द्विजामिष : (द्विज+आमिष) ब्राह्मण का मांस। मा० ६.४५.३

द्विजराज : सं०पुं० (सं०)। चन्द्रमा।

द्विजराजू : द्विजराज+कए०। 'गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू।' मा० २.२९४.४

द्विविद : एक वानर यूथप। मा० ५.५४

द्वेष : सं०पुं० (सं०)। वैरभाव, द्रोह। मा० ७.१०१ क

द्वेषु : द्वेष+कए०। 'मनहुं उडुगन निबह आए मिलन तम तजि द्वेषु।' विन० ७ ९.४

द्वै : (१) दोइ। दो। 'पाप-पुन्य द्वै बीज हैं।' वैरा० ५ (२) दोनों ही। 'फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला।' मा० ४.६.१४

द्वैत : सं०पुं० (सं०)। द्विता, जीव और ब्रह्म को पृथक् मानने की वृत्ति, संशय; जीव-ब्रह्म के तात्त्विक अभेद की अनुभूति का अभाव। 'द्वैत कि बिनु अग्यान।' मा० ७.१११ ख

द्वैतबुद्धि : द्वैत को तर्क से सिद्ध करने वाली बुद्धि। 'क्रोध कि द्वैत-बुद्धि बिनु।' मा० ७.१११ ख

द्वैतदरसन : (सं० द्वैत-दर्शन)। (१) द्वैतबुद्धि। (२) जीव-ब्रह्म को पृथक् देखने वाली संसारी प्रवृत्ति। (३) जीव-ब्रह्म का पार्थक्य मानने वाला दर्शनशास्त्र—अद्वैतविरोधी दर्शन। माध्व दर्शन को छोड़कर अन्य वैष्णव दर्शन भी अद्वैत मान्य करते हैं। रामानुज के विशिष्टाद्वैत में जीव ब्रह्म का अंश है अतः वह अंशी से भिन्न होकर भी अभिन्न है—इसी अभेद की प्रतीति मोक्ष है और वही

आनन्दरूपा भक्ति है। 'सपनेहुं नहीं सुख द्वैत-दरसन, बात कोटिक को कहै।' विन० १३६.१२

द्वौ : दोउ। दो या दोनों। 'ते द्वौ बंधु तेज बल सीवा।' मा० ४.७.२८

ध

धँसति : वकृ०स्त्री०। धँसती, प्रवेश करती। 'धँसति लसति हंस स्रेनि।' गी० ७.४.४

धँसनि : सं०स्त्री०। धँसने की क्रिया, गर्त आदि में प्रवेश। 'तुलसी भेंड़ी की धँसनि जड़ जनता सनमान।' दो० ४६५

धँसि : पूकृ०। निकल कर। 'सैल तें धँसि जनु जुग जमुना अवगाहैं।' गी० ७.१३.२

धंध : सं०पुं० (सं० धान्ध्य—द्वन्द्व)। मायाजाल, प्रपञ्च, छलना। 'धंध देखिअत जग, सोचु परिनाम को।' कवि० ७.८३

धंधक : धंध+क। धंधे की, द्वन्द्वमय। 'धींग धरमध्वज धंधक धोरी।' मा० १.१२.४

धकधकी : सं०स्त्री०। हृदय की तीव्र गति। 'सुरगन सभय धकधकी धरकी।' मा० २.२४१.७

धका : धक्का। 'नेकु धका देहैं, ढैहैं ढेलन की ढेरी-सी।' कवि० ६.१०

धकान : धका+संब०। धक्कों से। 'धरनीधर धौर धकान हले हैं।' कवि० ६.३३

धक्का : सं०पुं० (सं० धक्क नाशने)। वेगयुक्त ढेलने की क्रिया। 'दै दै धक्का जमघट थके, टारे न टर्‌यो हौं।' विन० २६७.२

धतूर : सं०पुं० (सं० धत्तूर, धुत्तूर)। एक पौधा जिसके बिसैले बीज भाँग में डालने से नशा अधिक होता है। 'भाँग धतूर अहार छार लपटावहिं।' पा०मं० ५१

धतूरे : धतूर। 'पात द्वै धतूरे के।' कवि० ७.१६२

धतूरो : धतूर+कए०। 'धाम धतूरो बिभूति को कूरो।' कवि० ७.१५५

धतूरोई : धतूरा ही। 'भौन में भाँग, धतूरोई आँगन।' कवि० ७.१५४

धन : सं०पुं० (सं०)। मा० १.४.५

धनद : सं०पुं० (सं०)। कुबेर। मा० १.२१३.३

धनदु : धनद+कए०। 'दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई।' मा० २.३२४.६

धनधारी : धन को धारण करने वाला=धनाधिप=कुबेर। 'रबि ससि पवन बरुन धनधारी।' मा० १.१८२.१०

धनमय : वि०पुं० (सं०)। धन से व्याप्त। विन० ८१.४

धनवान, ना : वि०पुं०। अधिक धन वाला, सम्पन्न। मा० ७.६२.७

धनवानु, नू : धनवान+कए०। 'सोचिअ बयसु कृपन धनवानू।' मा० २.१७२.५

धनवंत : धनवान (प्रा० धणवंत)। मा० ७.८७.२

धनहीं : धनुहीं। धनुष। 'भाथीं बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं।' मा० २.१९२.४

धनाधिप : सं०पुं० (सं०)। (१) अधिक धनवान् (२) कुबेर। 'धनाधिप सो धनु भो।' कवि० ७.४२

धनि : धन्य। 'हिमवानु धरनिधर धुर धनि।' पा०मं० ६

धनिक : वि०पुं० (सं०)। (१) धनवान्। मा० १.२१३.३ (२) ऋण देने वाला। 'रिनिया हौं, धनिक तूँ, पत्र लिखाउ।' विन० १००.७

धनिकु : धनिक+कए०। 'जाय धनिकु बिनु दान।' कवि० ७.११६

धनी : (१) धनिक। मा० १.४.५ (२) राजा। 'कोसलधनी।' जा०मं०छं० ३

धनु : (१) धन+कए०। 'दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई।' मा० २.३२४.६ (२) सं०पुं०(सं० धनुष्>प्रा० धणु) : 'राम चहहिं संकर धनु तोरा।' मा० १.२६०.२

धनुधर : वि०पुं० (सं० धनुर्धर)। धनुष धारण किये हुए। गी० २.२८.४

धनुपानि, नी : वि०पुं० (सं० धनुष्पाणि)। हाथ में धनुष लिये हुए। मा० १.१०५.४

धनुभंग : (सं० धनुर्भङ्ग) धनुष का टूटना। मा० १.२६२.७

धनुभख : (सं० धनुर्मख) धनुर्यज्ञ। मा० १.२२४.१

धनुभंगु : धनुभंग+कए०। 'धनुभंगु सुनें फरसालिएँ धाए।' कवि १.२२

धनुमख : (सं० धनुर्मख) जनक का धनुर्यज्ञ जिसमें शिव धनुष तोड़ने वाले को सीता का दान अभीष्ट था। मा० १.२२४.१

धनुष : सं०पुं० (सं० धनुष्)। मा० १.२०४.७

धनुषजग्य : सं० धनुर्यज्ञ) धनुमख मा० १.२१०.१०

धनुषबिद्या : (सं० धनुर्विद्या) बाणविद्या। मा० २.४१.३

धनुषभंग : धनुभंग। मा० १.२६२.७

धनुषमख : धनुमख। मा० १.२४०.४०

धनुषु : धनुष+कए०। मा० १.२४५.३

धनुहा : सं०पुं० (सं० धनुष>प्रा० धणुह)।

धनुहाई : सं०स्त्री० (सं० धानुष्कता)। धनुर्युद्ध, धनुर्धरता। 'जब धनुहाई ह्वै है मन अनुमानि कै।' कवि० ६.२६

धनुहिया : धनुही । गी० १.४४.१

धनुहीं : धनुही+ब० । 'बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं ।' मा० १.२७१.७

धनुही : धनुहा+स्त्री० । छोटा धनुष । 'धनुही सम त्रिपुरारि धनु ।' मा० १.२७१

धनेस, सा : वि०+सं०पुं० (सं० धनेश) । (१) धनाधीश, धनवान् (२) कुबेर । 'अघ अवगुन धन धनी धनेसा ।' मा० १.४.५

धनेसु : धनेस+कए० । कुबेर । कवि० ७.७८

धन्य : वि०पुं० (सं०) । उत्तम, श्रेष्ठ, भाग्य सम्पन्न, महामहिम, प्रशस्य । 'अहो धन्य तव जन्म मुनीसा ।' मा० १.१०४.४

धन्या : (१) धन्य+स्त्री० । 'मेकलसुता गोदावरि धन्या ।' मा० २.२३८.४ (२) धन्याः । विन० ६१.७

धन्याः : धन्य+कब० (सं०) । मा० ४ श्लो० २

धन्वी : वि०पुं० (सं० धन्विन्) । धनुर्धर । मा० ३.२२.६

धमधूसर : वि०पुं० (सं० धर्मधूसर ?) । गुणों (धर्म) में मलिन, स्वभाव से कलुष, मुस्तंड, मिट्टी के ढेर के समान मूढ़, पेटू, निठल्ला । 'कलिकाल बिचारु अचारु हरो, नहिं सूझै कछू धमधूसर को ।' कवि० ७ १६

धमधूसरो : धमधूसर भी । 'अपनायो तुलसी सो धींग धमधूसरो ।' कवि० ७.१६

धर : (१) वि०पुं० (सं०) । धारणकर्ता । 'कमठ सेस सम धर बसुधा के ।' मा० १.२०.७ (२) धरा, पृथ्वी । 'मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान ।' मा० ३.२६ (३) सं०पुं० । धड़, रुंड । 'धर तें भिन्न तासु सिर कीन्हा ।' मा० ६.७१.४

✓**धर धरइ, ई** : आ०प्रए० (१) (सं० धरति—धृञ् धारणे>प्रा० धरइ) । धारण करता है । 'तपबल सेषु धरइ महि भारा ।' मा० १.७३.४ (२) रखता है, स्थापित करता है । 'मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ ।' मा० १.२३१.५ (३) (सं० धरति—धृ ग्रहणे) पकड़ता है । (४) (सं० ध्रियते—धृङ् अवस्थाने) ठहरता है, रहता है ।

धरइँ : धरहिं । पकड़ते हैं । 'ललनागन जब जेहि धरइँ धाइ ।' गी० ७.२२.६

धरउँ, ऊँ : आ०उए० । धारण करता हूं । 'धरउँ देह नहिं आन निहोरें ।' मा० ५.४८.८

धरकत : वकृ०पुं० । कांपते, लड़खड़ाते । 'दास तुलसी परत धरनि धरकत ।' कवि० ६.४६

धरकी : भूकृ०स्त्री० । धड़क चली, (हृदय गति) तीव्र हो चली । 'सुरगन समय धकधकी धरकी ।' मा० २.२४१.७

धरत : वकृ०पुं० । (१) धारण करता-करते । मा० ५.२१.६ (२) रखता-रखते । 'अय इव जरत धरत पग धरनी ।' मा० १.२९८.५ (३) क्रियाति०पुं०ए० ।

तो धारण करता। 'जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं। पदरज सिर सिसु धरत गोसाईं।' मा० १.२८२.३

धरति : वकृ०स्त्री०। रखती (हुई)। 'धरति चरन मग चलति सभीता।' मा० २.१२३.५

धरन : (१) भकृ० अव्यय। धरने, पकड़ने (हेतु)। 'तिन्हहि धरन कहुं भुजा पसारी।' मा० ६.९८.७ (२) धारण करने (हेतु)। 'भार धरन सत कोटि अहीसा।' मा० ७.९२.८ (३) वि०पुं०। धारण कर्ता। 'धीर रघुबीर तूनीर सर धनु धरन।' गी० ५.४३.२

धरनहार : वि०पुं०। धारण कर्त्ता। 'धरनी धरनहार भंजन भुवन भार।' विन० ३७.२

धरना : धरन। पकड़ने। 'जानु पानि धाए मोहि धरना।' मा० ७.७९.६

धरनि : (१) वि०स्त्री०। धारण करने वाली। 'शूल सेल धनुष बाण धरणि।' विन० १६.२ (२) सं०स्त्री० (सं० धरणि)। पृथ्वी। 'संतत धरनि धरत सिर रेनू।' मा० १.१६७.८ (३) रखने की क्रिया। 'ठुमुक ठुमुक पग धरनि नटनि लरखरनि सुहाई।' गी० १.३०.३

धरनितल : धरणी मण्डल, पृथ्वी तल। मा० २.१४२.७

धरनिधर : सं०पुं० (सं० धरणीधर)। पर्वत। पा०मं० ६

धरनि सुतां : पृथ्वी-पुत्री=सीता ने। 'धरनि सुतां धीरजु धरेउ।' मा० २.२८६

धरनीं : (१) पृथ्वी पर। 'धरनीं ढनमनी।' मा० ५.४.४ (२) पृथ्वी ने। 'तज्यो धीरु धरनीं।' कवि० ६.१६

धरनी : धरनि। (१) पृथ्वी। मा० १.१८६ छं० (२) पकड़, आग्रह, लगन। 'हिएँ धरु चातक की धरनी।' कवि० ७.३२

धरनीधर : धरनिधर। (१) पर्वत। मा० २.३०६.२ (२) राजा। परमात्मा=राम (पृथ्वी रक्षक)। 'जड़ पंच मिलै जेहिं देह करी, करनी लखु धौं धरनी-धर की।' कवि० ७.२७

धरम : धर्म। (१) शास्त्रविहित आचरण, कर्त्तव्य कर्म। 'धरम धुरीन बिषय रस रूखे।' मा० २.५०.३ (२) चार पुरुषार्थों में अन्यतम। 'अरथ धरम कामादिक चारी।' मा० १.३७.९ (३) धर्मशास्त्र। 'ब्रह्म निरूपन धरम बिधि।' मा० १.४४ (४) समाज-धारणकारी तत्त्वसमूह। 'जब जब होइ धरम कै हानी।' मा० १.१२१.६ (५) वर्ण धर्म। 'भूप धरम जे बेद बखाने।' मा० १.१५५.५ (६) आश्रम-धर्म। (७) धृति, क्षमा आदि दस मानव धर्म। (८) युग धर्म (दे० धर्मा)।

धरमक : धर्म का। 'पितु आयसु सब धरमक टीका।' मा० २.५५.८

धरमध्वज : (सं० धर्मध्वज) धर्म का झंडा उठाये दम्भी=धर्म व्यवसायी। 'धींग धरमध्वज धंधक धोरी।' मा० १.१२.४

धरमब्रतु : सं०पुं०कए०। एकान्त धर्म निष्ठा। मा० २.१७१.६

धरममय : वि० (सं० धर्ममय)। धर्मयुक्त। मा० २.१७१.४

धरमसील : वि० (सं० धर्मशील)। धर्मात्मा। मा० १.१५५.२

धरमा : धरम। मा० १.२.११

धरमु, मू : धरम+कए०। एकमात्र धर्म। 'धरमु धरेउ सहि संकट नाना।' मा० २.९५.४, २.२०४.७

धरषा : भूकृ०पुं० (सं० धर्षित>प्रा० धरिसिअ)। आक्रान्त हुआ, दबाव में पड़ा। 'डोले धराधर धारि धराधरु धरषा।' कवि० ६.७

धरषि : पूकृ० (सं० धृष्ट्वा>प्रा० धरिसिअ>अ० धरिसि)। धर्षण करके, दलित करके, तिरस्कृत करके, आक्रान्त करके। 'रिपु बल धरषि हरषि कपि।' मा० ६.३५ क

धरहरि : सं०स्त्री०। प्रबोध देना (धैर्य बँधाना), सहलाना, पुचकारना। 'चिकुर··· करनि बिबरत···अहिसिसु···ससि सन लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी।' गी० ७.५.३

धरहिं, हीं : आ०प्रब०। (१) पकड़ते हैं। 'मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं।' मा० ६.८१.५ (२) धारण करते हैं। 'गिरि निज सिरन्हि सदा तृन धरहीं।' मा० १.१६७.७

धरहि : आ०—आज्ञा—मए०। तू धारण कर। 'धरनि धरहि मन धीर।' मा० १.१८४

धरहुं : आ०—आज्ञा, कामना—प्रब०। धारण करें। 'उर धरहुं जुबती जन बिलोकि तिलोक सोभा सार सो।' पा०मं० छं० १६

धरहु, हू : आ०मब०। (१) धारण करो। 'अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी।' मा० १.७५.२ (२) धारण करते हो। 'व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा।' मा० १.२७३.८ (३) पकड़ो। धरहु कपिहि धरि मारहु।' मा० ६.३२ ख (४) रखो। 'तुलसी जनि पग धरहु गंग महँ साच।' बर० २४

धरहुगे : आ०भ०पुं०मब०। रखोगे। 'अधम आचरन कछु हृदय नहिं धरहुगे।' विन० २११.२

धरा : (१) सं०स्त्री० (सं०)। पृथ्वी। 'धरा अकुलानी।' मा० १.१८४.४ (२) भूकृ०पुं०। धारण किया। 'कोपि कर धनु सर धरा।' मा० १.८४ छं० (३) पकड़ा। 'धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा।' मा० ६.२४.१५

धराइ : पूकृ० (सं० धारयित्वा>प्रा० धराविअ>अ० धरावि)। धरा कर, धारण करके। 'असि देह धराइ कै जायँ जियैं।' कवि० ७.३८

धराई : भूकृ०स्त्री० । स्थिर कराई, रखवाई । 'राम तिलक हित लगन धराई ।' मा० २.१८.६

धराधर : सं०पुं० (सं०) । पृथ्वी धरने वाला । (१) पर्वत (२) शेषनाग । 'डोले धराधर धारि, धराधरु धरषा ।' कवि० ६.७

धराधरु : धराधर+कए० । शेष । 'धराधरु धीर भारु सहि न सकतु है ।' कवि० ६.१६

धरायहु : आ०—भ०+आज्ञा—मब० । तुम स्थिर कराना, रखवाना । 'जौं मन मान तुम्हार तौ लगन धरायहु ।' पा०मं० ७८

धरासुर : भूसुर । ब्राह्मण (भृगु) । 'उर धरासुर पद लस्यो ।' मा० ६.८६ छं०

धरि : पूकृ० । (१) धारण करके । 'धरि धीरजु तब कहइ निषादू ।' मा० २.१४३.१ (२) पकड़ कर । 'धरहु कपिहि धरि मारहु ।' मा० ६ ३२ ख

धरिअ, ए : आ०कवा०प्रए० । रखिए, धारण कीजिए । 'धीरजु धरिअ नरेस ।' मा० २.२७६

धरित : भूकृ० (सं० धृत) । धारण किया । 'मृगराज बपु धरित ।' विन० ५२ ४

धरिबे : भकृ०पुं० (१) रखने, स्थापित करने । 'ज्ञान बिराग कालकृत करतब हमरेहि सिर धरिबे हो ।' कृ० ३९ (२) धारण करने । 'कठिन कुठार धार धरिबे को धीर ।' कवि० १.१८

धरिय, ये : धरिअ । 'सिय धीरज धरिये ।' गी० ५.५१.१

धरिहउँ : आ०भ०उए० । धारण करूँगा, ग्रहण करूंगा । 'तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा ।' मा० १.१८७.१

धरिहहिं : आ०भ०प्रब० । धारण करेंगे, ग्रहण करेंगे । 'धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ ।' मा० १.१३९.६

धरिही : आ०भ०प्रए० । धारण करेगा, ग्रहण करेगा । 'त्रेताँ बिष्नु मनुज तनु धरिही ।' मा० ४.२८.७

धरिहैं : धरिहहिं । रखेंगे । 'धरिहैं नाथ हाथ माथे ।' गी० ५.३०.३

धरिहौ : आ०भ०मब० । धरोगे, ग्रहण करोगे, रखोगे । 'जौ पै जिय धरिहौ अवगुन जन के ।' विन० ९६.१

धरी : (१) धरि । 'मसक समान रूप कपि धरी । लंकहि चलेउ ।' मा० ५.४.१ (२) भूकृ०स्त्री० । ग्रहण की, धारण की । 'कपि केहि हेतु धरी निठुराई ।' मा० ५.१४.४

धरु : आ०—आज्ञा, प्रार्थना—मए० । (१) तू धारण कर । 'जननी हृदयँ धीर धरु ।' मा० ५.१५ (२) पकड़ ले । 'मारु मारु धरु धरु धरु मारू ।' मा० ६.५३.६

धरें : क्रि०वि० । धारण किये (मुद्रा में) । 'मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान ।' मा० ३.२६

धरे : भूकृ०पुं० (ब०) । (१) रखे । 'आनि धरे प्रभु पास ।' मा० ६.३२ क (२) धारण किये हुए । 'हृदयँ आनि सिय राम धरे धनु भाथहि । पा०मं० १

धरेउँ : आ०—भूकृ०पुं०+उए० । मैंने धारण किये, ग्रहण किये । 'एहि बिधि धरेउँ बिबिध तनु ।' मा० ७.१०९ घ

धरेउ, ऊ : भूकृ०पुं०कए० । धारण किया, ग्रहण किया । 'राम धरेउ तनु भूप ।' मा० ७.७२ क

धरेन्हि : आ०—भूकृ०पुं०+प्रब० । उन्होंने पकड़े । तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई ।' मा० ६.७६.३

धरेसि : आ०—भूकृ०पुं०+प्रए० । उसने पकड़ा, पकड़े । 'कोपि कूदि द्वौ धरेसि बहोरी ।' मा० ६.९८.६

धरेहु : (१) आ०—भ०+आज्ञा+मब० । तुम रखना । 'संतत हृदयँ धरेहु मम काजू ।' मा० ४.१२.९ (२) आ०—भूकृ०पुं०+मब० । तुमने रखा । 'नर तनु धरेहु संत सुर काजा ।' मा० २.१२७.६

धरैं : धरहिं । रखते हैं । 'छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं ।' कवि० १.३

धरै : (१) धरइ । रखता है । 'मन संतोष धरै ।' विन० ९२.४ (२) रखे । 'चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ ।' मा० ७.११७ ख (३) भकृ० अव्यय । पकड़ने । 'ताहि धरै जननी हठि धावा ।' मा० १.२०३.८

धरैगो : आ०भ०पुं०प्रए० । धारण करेगा । 'सुत सिर छत्र धरैगो ।' गी० २.६०.३

धरो : धर्‌यो । (१) रखा हुआ । 'हरो धरो गाड़ो दियो धन ।' दो० ४५७ (२) पकड़ रखा । 'जोग सिधि साधन रोग बियोग धरो सो ।' विन० १७३.३

धरोइ : रखा ही (रख लिया सो रख लिया) । 'दीपक काजर सिर धर्‌यो, धर्‌यो सो धर्‌यो धरोइ ।' दो० १०६

धरौं : धरउँ । (१) धारण करूँ । 'कर न धरौं धनु माथ ।' मा० १.२५३ (२) रखूं, रखता हूं । 'धरौं सचि पचि सुकृत सिला बटोरि ।' विन० १५८.४

धरौ : धरहु । पकड़ो । 'कह्यो धरौ धरौ धाए बीर बलवान हैं ।' कवि० ५.७

धर्म : (दे० धरम) मा० १.७७.५

धर्मतरु : धर्मरूपी वृक्ष । मा० ३ श्लो० १

धर्मपरायन : धर्म में सदा तत्पर । मा० ७.१२७.२

धर्ममय : वि० (सं०) । धर्म रूप । 'परम धर्ममय पय दुहि भाई ।' मा० ७.११७.१३

धर्मरत : धर्म परायण । मा० ७.२१.७

धर्मसील : धरमसील ।

धर्मसीलता : धर्म परायणता। मा० ६.२२.५

धर्मसीलन्ह : धर्मसील+संब०। धर्मात्माओं। 'जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं।' मा० ३.३९ ख

धर्महीन : अधार्मिक। मा० ६.३८ क

धर्मा : धर्म। 'सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा।' मा० ७.१०४.३

धर्यो : धरेउ। रखा। 'दीपक काजर सिर धर्यो।' दो० १०६

धवल : वि० (सं०)। श्वेत, उज्ज्वल। मा० १.२१३

धवलधाम : सं०पुं० (सं०)। धवलगृह=धौरहर—चूने से पुते ऊँचे महल। मा० २.११९.८

धवलिहउँ : धवल+भ०उए०। श्वेत कर दूंगा। 'जस धवलिहउँ भुवन दस चारी।' मा० २.१९०.५

√**धस, धसइ** : (सं० ध्वंसते—ध्वंसु अवस्रंसने>प्रा० धंसइ, धसइ) आ०प्रए०। धँसता-ती है; अधोगति लेकर प्रवेश करता-ती है; धसकता-ती है। 'धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा।' मा० ६.७१.६

धसी : भूकृ०स्त्री०। (१) प्रवेश कर गई (२) निकली। 'जनु कलिंदजा सुनील सैल तें धसी समीप।' गी० ७.७.५

धांके : भूकृ०पुं०ब०। धाक में लिए. आतङ्कित किये। 'बीर बिरुदैत बर बैरि धांके।' कवि० ६.४५

धाइ : पूकृ० (सं० धावित्वा>प्रा० धाविअ>अ० धावि)। दौड़ कर। 'धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा।' मा० २.३८.४

धाइबो : भकृ०पुं०कए०। दौड़ना। 'तुलसी कबंध कैसो धाइबो बिचारु।' कवि० ७.८३

धाईं : भूकृ०स्त्री०ब०। दौड़ पड़ीं। 'जुबति बृंद रोवत उठि धाईं।' मा० ६.१०४.२

धाई : भूकृ०स्त्री०। दौड़ पड़ी। 'सुनि धाई रजनीचर धारी।' मा० ६.६७.७

धाएँ : दौड़ने से, पर। 'तुलसी जिन्ह धाएँ धुकै धरनी।' कवि० ६.३३

धाए : भूकृ०पुं०ब०। दौड़ पड़े। 'सुनि मुनि आयसु धावन धाए।' मा० २.१५७.४

धाता : सं०पुं० (सं०)। ब्रह्मा। मा० ७.१०६.३

धातु : सं०पुं० (सं०)। (१) सुवर्णादि खनिज। (२) गेरू आदि। 'सिय अँग लिखैं धातु राग।' गी० २.४४.४ (३) अङ्ग रचना के घटक तत्त्व। 'सब अँग धातु भवभय मोचनं।' कृ० २३ (४) शरीर के सप्तधातु—रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र। 'सातैं सप्त धातु निरमित तनु।' विन० २०३.८ (५) सात संख्या। 'मुनि गनि दिन गनि धातु गनि। रा०प्र० ७.७.२

धान : सं०पुं० (सं० धान्य>प्रा० धन्न)। शालि, व्रीहि (अन्न विशेष)। 'बए न जामहिं धान।' मा० ७.१०१ ख

धाम, मा : सं०पुं० (सं० धामन्) । (१) घर । 'लखनु कि रहिहहिं धाम ।' मा० २.४६ (२) लोक । 'रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम ।' मा० १.११०

धामदा : वि०स्त्री० (सं०) । लोक देने वाली । 'मम धामदा पुरी ।' मा० ७.४.७

धामिनी : वि०स्त्री० । धाम वाली, आवास करने वाली । (गङ्गा…) त्रिपुरारि सिर धामिनी ।' विन० १८.२

धामु, मू : धाम+कए० । मा० २.९२ ७

धाय : धाइ ।

धायउँ : आ०—भूकृ०पुं०+उए० । मैं दौड़ा । 'निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउँ ।' मा० ७.८२.३

धायउ : भूकृ०पुं०कए० । दौड़ा । 'धायउ परम क्रुद्ध दसकंधर ।' मा० ६.८२.१

धायल : धायउ (भोजपुरी में प्रचलित) । 'कोपि गगन पर धायल ।' मा० ६.९७.६

धाये : धाए ।

धायो : धायउ । 'देखि बिकल सुर अंगद धायो ।' मा० ६.९७.८

धार : सं०स्त्री० (सं० धारा) । (१) प्रवाह । 'सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनी ।' मा० २ १३२.६ (२) तलवार आदि का पैना भाग । 'मूठि कुबुद्धि धार निठुराई ।' मा० २.३१.२ (३) (जमधार) कृपाण । 'जम कर धार किधौं बरिआता ।' मा० १.९५.७

धरना : सं०स्त्री० (सं० धारणा) । अष्टाङ्ग योग में चित्त को एकाग्र (निरुद्ध) करने का छठा अङ्ग जिसमें किसी विषय पर चित्त को बार-बार टिकाया जाता है । यही धारण सध जाने पर ध्यान का रूप लेती है जब विषय पर चित्त की धारा एकतान हो जाती है । धारणा, ध्यान और समाधि को एक साथ संयम कहा जाता है । 'ध्यान धारना समाधि साधन प्रबीनता ।' कवि० ७.६२

धारमिक : वि० (सं० धार्मिक) । धर्मशील, धर्मात्मा । हनु० १०

धारा : धार । (१) प्रवाह । 'सुरसरिधारा ।' मा० १.२.८ (२) खड्ग आदि का तीक्ष्ण भाग । 'सीतल निसित बहसि बर धारा ।' मा० ५.१०.६ (३) दोनों का श्लेश ।' 'जासु परसु सागर खर धारा ।' मा० ६.२६.३ (४) निरन्तर श्रेणी । 'चतुरंगिनीं अनी बहु धारा ।' मा० ६.७९.१ (५) भूकृ०पुं० (सं० धारित> प्रा० धारिअ) । रखा । 'निज पुर पगु धारा ।' मा० १.२५.५

धारि : सं०स्त्री० (सं० धारा) । (१) अविच्छिन्न श्रेणी, समूह । 'बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी ।' मा० २.३१७.३ (२) (सं० धाटि>प्रा० धाडि) आक्रामक यूथ । 'प्रबल मोह कै धारि ।' मा० ३.४३ (३) पूकृ० । धारण करके । 'अब जनि धावै धनु धारि ।' गी० १.२२.१४

धारिअ, य : धारिए । 'भयउ समउ अब धारिअ पाऊ ।' मा० १.३१३.७

धारिए, ये : आ०—कवा०—प्रए० । रखिए । 'पाउ धारिए ।' गी० ५.३५.२

धारिनि : (समासान्त में) वि०स्त्री० (सं० धारिणी)। धारण करने वाली। 'निज इच्छा लीला बपु धारिनि।' मा० १.६८.४

धारी : (१) धारि। आक्रामक सेना। 'रचनीचर धारी।' मा० ६.६७.७ (२) समूह, श्रेणी। मा० ३.१६.१ (३) पूकृ० धारण करके। 'राम भगतहित नर तनु धारी···किए साधु सुखारी।' मा० १.२४.१ (४) भूकृ०स्त्री०। रखी। 'सिय पगु धारी।' मा० १.२४८.४ (५) (समासान्त में) वि०पुं० (सं० धारिन्) धारण करने वाला। 'धनधारी।' 'तनुधारी'। मा० १.१८२.१०-१२

धारें : धरें। 'मुनिपट धारें उर फूलनि के हार हैं।' कवि० २.१४

धारे : भूकृ०पुं०ब०। रखे। 'जहँ रनिवासु तहाँ पगु धारे।' मा० १.३५४.२

धारेउ : भूकृ०पुं०कए०। रखा। 'भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ।' मा० २.१६०.२

धारैं : (१) धार+ब०। धाराएँ। 'धारैं बान, कूल धनु, भूषन जलचर।' गी० ७.१३.३ (२) आ०प्रब०। धारण करते हैं। 'जिन्ह को पुनीत बारि धारैं सिर पै पुरारि।' कवि० २.६

धाव : (१) धावइ। दौडता है। 'धर धाव प्रचंडा।' मा० ६.७१.६ (२) टूट पड़ता है, धावा बोल देता है। 'चपरि चहूं दिसि धाव।' दो० ५२०

/धाव धावइ : (सं० धावति—धावु गतौ>प्रा० धावइ) आ०प्रए०। दौड़ पड़ता है, धावा बोल देता है। 'आपुनु उठि धावइ।' मा० १.१८३ छं०

धावत : वकृ०पुं०। दौड़ता, दौड़ते। 'धरहु धरहु धावत सुभट।' मा० ३.१८

धावन : सं०पुं० (सं०)। दूत, हरकारा। मा० २.१५७.४

धावनि : सं०स्त्री०। दौड़ने की क्रिया। 'धावनि नवनि बिलोकनि बिथकनि।' गी० ३.३.४

धावहिं, हीं : आ०प्रब०। दौड़ते हैं, दौड़ पड़ते हैं, धावा बोल देते हैं। 'देखत जग्य निसाचर धावहिं।' मा० १.२०६.४

धावहिंगे : आ०भ०पुं०प्रब०। दौड़ेंगे। 'लोचन बहु प्रकार धावहिंगे।' गी० ५.१०.२

धावहि : आ०मए०। तू दौड़ता-ती है। 'कत रबिकर जल कहँ धावहि।' विन० २३७.२

धावहु : आ०मब०। दौड़ पड़ो। धावहु मरकट बिकट बरूथा।' मा० ६.१.६

धावा : (१) धावइ। दौड़ता-ती है। 'ताहि धरै जननी हठि धावा।' मा० १.२०३.८ (२) भूकृ०पुं०। दौड़ा। 'प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा।' मा० ३.२.१

धावै : धावइ। दौड़ पड़े, धावा करे। 'अब जनि धावै धनु धारि।' गी० १.२२.१४

धावौं : आ०उए०। दौड़ जाऊँ, दौड़ सकता हूं। 'जो जन सत प्रमान लै धावौं।' मा० १.२५३.८

धावौंगी : आ०भ०स्त्री०उए० । दौड़ूंगी । 'सुनि सँदेस······उठि धावौंगी ।' गी० २.५५.३

धावौ : धावहु । दौड़ो, भागो । 'धावौ धावौ लागि आगि रे ।' कवि० ५.६

धाहैं : सं०स्त्री०ब० । धाड़ें, चिल्लाहटें (विलाप की पुकारें) । 'जिन्ह रिपु मारि सुरारि नारि तेइ सीस उघारि दिवाई धाहैं ।' गी० ७.१३.६

धिक : अव्यय (सं० धिक्, धिग्) । छिः छिः, धिक्कार है । 'जे न ठगे धिक से ।' कवि० १.१

धिग : धिक । मा० २.८६.५

धींग : वि०+क्रि०वि० । धींगा मुश्ती वाला, नितान्त छलनापूर्ण, उत्कट । 'धींग धरमध्वज धंधक धोरी ।' मा० १.१२.४ 'अपनायो तुलसी सो धींग धमधूसरो ।' कवि० ७.१६

धीय : सं०स्त्री० (सं० धीता, धीदा, दुहिता>प्रा० धीया) । कन्या, पुत्री । 'धीय को नमाय, बाप पूत न सँभारहीं ।' कवि० ५.१५

धीर : (१) वि० (सं०) । धैर्यशाली । 'धरमधुरंधर धीर सयाने ।' मा० २.७८.२ (२) सं०पु० (सं० धैर्य>प्रा० धीर) । 'धरमधुरंधर धीर धरि ।' मा० २.३०

धीरज : धीर । धैर्य । मा० १.८४.७

धीरजु : धीरज+कए० । 'धरनि सुताँ धीरजु धरेउ ।' मा० २.२८६

धीरतर : वि० (सं०) । अतिशय धैर्यशाली । कृ० ३१

धीरता : सं०स्त्री० (सं०) । धैर्य । मा० १.३३८.५

धीरधुर : वि० (सं० धीरधुर्य, धैर्यधुर्य—दे० धुर) । धैर्यधारी, धीरशिरोमणि । 'धीरधुर रघुबीर ।' गी० ५.४.२

धीरन्ह : धीर+संब० । धैर्यशालियों । 'धीरन्ह कें मन बिरति दृढाई ।' मा० ३.३९.२

धीरा : धीर । (१) धैर्यशाली । 'सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ।' मा० १.५१.८ (२) धैर्य । 'बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा ।' मा० १.२५८.५

धीरु : धीर+कए० । धैर्य । 'तज्यो धीरु धरनीं ।' कवि० ६.१६

धीरै : धैर्य को । 'धीर न सकत धीरौ धीरै ।' गी० ६.१५.३

धीरौ : धैर्य भी । गी० ६.१५.३

धुंद : सं०पु० (सं० धुन्धुमार=धुआँ) । अँधेरा । 'छूटे बार बसन उघारे धूम धुंद अंध ।' कवि० ५.१५

धुआँ : सं०पु० (सं० धूम>अ० धूवँ) । (१) आग का धूम । 'धुआँ कैसो धौरहर देखि तू न भूलि रे ।' विन० ६६.४ (२) (सं० धूम=उल्कापात) विध्वंससूचक अपशकुन, विनाश । 'धुआँ देखि खर दूषन केरा । जाइ सुपनखाँ रावन टेरा ।'

मा० ३.२१.५ (जिस प्रकार उल्कापात राजा के विनाश का सूचक होता है उसी प्रकार खरदूषन-विनाश रावण के विध्वंस का सूचक था।)

धुकि : पूकृ० (सं० ध्रु गतिस्थैर्ययोः)। (१) झुककर, घुमँड़न के साथ नत होकर। 'जलद घन घटा धुकि धाई है।' हनु० ३५ (२) स्थिर हो-झुककर-चलकर। 'सुनि कल बेनु धेनु धुकि धैया।' कृ० १९

धुकै : आ०प्रए०। रुक-रुक चलती है, धकधकती है, काँप-काँप जाती है। 'तुलसी जिन्ह धाएँ धुकै धरनी।' कवि० ६.३३

धुज : ध्वज।

धुजा : ध्वजा। 'कदलि ताल बर धुजा पताका।' मा० ३.३८.२

✓**धुन धुनइ** : (सं० धुनाति, धूनोति—धू कम्पने) आ०प्रए०। झिटकता है, झकझोरता है, कँपाता है (रुई के समान धुनकता है) 'जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई।' मा० २.४६.८

धुनत : वकृ०पुं०। (१) कँपाते। 'करनि धुनत धनु तीर।' गी० २.६९.२ (२) झिटकते, ताल ठोंक झकझोरते। 'बाजे बाजे बीर बाहु धुनत समाज के।' कवि० १.८

धुनहिं : आ०प्रब०। धुनते हैं (झिटकते हैं)। 'धुनहिं सीस पछिताहिं।' मा० २.९९

धुना : भूकृ०पुं०। झिटका (पीट लिया)। 'पुनि कालनेमि सिरु धुना।' मा० ६.५६.३

धुनि : (१) पूकृ०। धुनकर, झिटक कर (पीट कर)। 'परेउ धरनि धुनि माथ।' मा० २.३४ (२) सं०स्त्री० (सं० ध्वनि)। नाद, शब्द, गूंज, घोष (दे० पंचधुनि)। 'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।' मा० १.२३०.१ (३) नदी। दे० देवधुनि।

धुनिए : आ०कवा०प्रए०। झिटकिए (चाहे पीट डालिए)। 'बरज्यो न करत कितो सिर धुनिए।' कृ० ३७

धुने : भूकृ०पुं०ब०। झिटक डाले (पीट लिये)। 'बारिद बचन सुनि धुने सीस सचिवन्ह।' कवि० ५.२०

धुनेउ, ऊ : भूकृ०पुं०कए०। धुना, धुनका, झिटकारा (पीट लिया)। 'नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु।' मा० २.७३

धुन्यो : धुनेउ। 'पर्‌यो धरनि ब्याकु सिर धुन्यो।' मा० ६.६५.७

धुर : (१) सं०स्त्री० (सं० धुर्>प्रा० धुरा)। भार, बोझ। 'सकल धरम धुर धरनि धरत को।' मा० २.२३३.१ (२) वि०पुं० (सं० धुर्य)। धुरीण (भार धारण करने में समर्थ) श्रेष्ठ। 'हिमवानु धरनि-धर धुर धनि।' पा०मं० ६

धुरंधर : (१) वि०पुं० (सं०)। भार धारण-समर्थ, धुरीण। 'धरम धुरंधर नृप-रिषि जानी।' मा० १.१४३.६ (२) श्रेष्ठ।

धुरंधरु : धुरंधर+कए० । एक भी धुरीण, समर्थ । 'को अवनीतल इन सम बीर धुरंधरु ।' जा०मं० ६२

धुरधारी : धुरीण, धुरंधर । 'नरबर धीर धरम-धुर-धारी ।' मा० २.७२.२

धुरीन : वि०पुं० (सं० धुरीण) । धुर्=भार उठाने में समर्थ, धुरंधर । 'धरम धुरीन बिषय रस रूखे ।' मा० २.५०.३

धुरीना : धुरीन । 'तात भरत तुम्ह धरम धुरीना ।' मा० २.३०४.८

धुव : ध्रुव । नक्षत्रविशेष । 'बंदन बंदि ग्रंथिबिधि करि धुव देखेउ ।' पा०मं० १३२

धुवाँ : धुआँ ।

धूत : वि०पुं० (सं० धूर्त>प्रा० धुत्त) । वञ्चक, कपटी, ठग । 'छलमलीन खल धूत ।' रा०प्र० ५.२.१

धूति : पूकृ० । धूर्तता में डाल कर, छल कर । 'गई गिरा मति धूति ।' मा० २.२०६

धूप : सं०पुं०+स्त्री० (सं०) । एक प्रकार का सुगन्धित काष्ठ ।' मा० १.१९५.५

धूम : (१) सं०पुं० (सं०) । धुआँ । 'धूम अनलसंभव सुनु भाई ।' मा० ७.१०६.१० (२) सं०स्त्री० (सं० धूम्या=धूम समूह, कुहासा) । विजय आदि का आतङ्क जो दूसरों को धूमिल कर दे, धाक । 'भरि भुवन सकल कल्यान धूम ।' गी० ५.१६.६

धूमउ : धुआँ भी । 'धूमउ तजइ सहज करु आई ।' मा० १.१०.६

धूमकेतु : सं०पुं० (सं०) । (१) राक्षस-यूथप, विशेष का नाम । मा० १.१८० (२) पुच्छल तारा, टूट कर गिरने वाला नक्षत्र । 'धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत ।' मा० ७.९१ ख (यहाँ 'अग्नि' अर्थ अधिक संगत है) । (३) धूमध्वज=अग्नि । 'कंस बंसाटबी धूमकेतू ।' विन० ५२.७

धूमधुज : धूमध्वज । 'दनुज बन धूमधुज ।' विन० ४८.३

धूमध्वज : सं०पुं० (सं०) । जिसका ध्वज धूम है=अग्नि । 'शत्रु वन दहन इव धूमध्वज ।' विन० १०.४

धूरि : सं०स्त्री० (सं० धूलि) । धूल, रज: कण । मा० १.१७५

धूरिधानी : सं०स्त्री० (सं० धूलि+धानी=स्थान) । धूलि का प्रदेश, धूलधक्कड़, रजोमय, चूरचूर । 'जातुधाम धारि धूरिधानी करि डारी है ।' हनु० २७

धूरी : धूरि (सं० धूली) । मा० १.३४.१

धूलि : धूरि (सं०) । गी० ५.२.२

धूसर : वि०पुं० (सं०) । मटमैले रंग का । 'धूसर धूरि भरे तन आए ।' मा० १.२०३.६

धूसरित : वि० (सं०) । धूसर किया हुआ । 'धूरि धूसरित अंग ।' रा०प्र० ४.३.१

धृत : भूकृ०पुं० (सं०) । धारण किये हुए । 'धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि ।' मा० ७.३०.४

धृति : सं०स्त्री० (सं०) । धैर्य, मानसिक स्थिरता । मा० ७.११७.१४ (इस की गणना दस मानव धर्मों में प्रथम है) ।

धेइ : पूकृ० । ध्यान करके । 'सेइ न धेइ न सुमिरि कै पद प्रीति सुधारी ।' विन० १४८.४

धेनु : सं०स्त्री० (सं०) । दूध देने वाली गाय । 'निरखि बच्छ जिमि धेनु लवाई ।' मा० ७.६.६ (गोस्वामी जीने धेनुधूरि, धेनुमति आदि में इसे केवल गो-पर्याय माना है) ।

धेनुधूरि : सं०स्त्री० (सं० गोधूलि) । सन्ध्या का झुटपुटा, जब चर कर लौटी हुई गायों के खुर की धूल आकाश में छा जाती है । मा० १.३१२

धेनुपद : गोपद । गाय के खुर का चिन्ह । 'नाथ कृपा भवसिंधु धेनुपद सम जो जानि सिरावौं ।' विन० १४२.११

धेनुमति : सं०स्त्री० (सं० गोमती) । लखनऊ होकर बहने वाली एक नदी । मा० १.१४३.५

धेनू : धेनु । मा० १.१४६.१

धैया : धाई (सं० धाविता>प्रा० धाविया=धाइया) । दौड़ पड़ी । सुनि कल बेनु धेनु धुकि धैया ।' कृ० १६

धैहै : आ०भ०प्रए० । दौड़ेगा । 'बिबुध समाज बिलोकन धैहै ।' गी० ५.५०.२

धैहौ : आ०भ०मब० । दौड़ोगे । 'ठुमुक ठुमुक कब धैहौ ।' गी० १.८.३

धोइ : पूकृ० । धो कर, प्रक्षालित कर । 'कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं ।' मा० ७.१३० छं० २

धोएँ : क्रि०वि० । धोए हुए । 'बिना पग धोएँ नाथ नाव ना चढ़ाइहौं ।' कवि० २.८

धोए : (१) भूकृ०पुं०ब० । प्रक्षालित किये । 'जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए ।' मा० १.४३.७ (२) धोएँ । धोने से । ह्वै है कीच कोठिला धोए ।' कृ० ११

धोख : सं०पुं० । धोखा, छल, भूल, भ्रम । 'भाइहु लावहु धोख जनि ।' मा० २.१६१ (खेत में पशुओं से रक्षा हेतु बनायी हुई मानवाकृति को भी धोख' कहते हैं) ।

धोखें : क्रि०वि० । धोखे से, भ्रमवश । 'जिमि धोखें मदपान करि ।' मा० २.१४४

धोखे : धोख+ब० । तृण-मानव (दे० धोख) । 'जहाँ तहाँ भे अचेत खेत के से धोखे हैं ।' गी० १.९५.३

धोखेउ : धोखे से भी, अनजान में भी । 'धोखेउ निकसत राम ।' वैरा० ३७

धोखेहु : धोखेउ । 'सो धोखेहु न बिचार्यो ।' विन० २०२.१

घोखो : घोख+कए० । धोखा, भूल भटक, चूक । 'तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं ।' गी० ३.१३.४

धोती : सं०स्त्री० । धौत वस्त्र, स्वच्छ अधोवस्त्र, जो कटि से नीचे पहना जाता है। श्वेत परिधान विशेष । मा० १.३२७.३

धोबी : सं०पुं० (सं० धावक) । रजक । 'धोबी कैसो कूकरु न घर को न घाट को ।' कवि० ७.६६

धोये : धोए ।

धोयो : भूकृ०पुं०कए० । प्रक्षालित किया । 'चाहत कुटिल मलहि मल धोयो ।' विन० २४५.३

धोरी : (१) सं०स्त्री० (सं० धोरणी) । लगातार श्रेणी, अखण्ड पाँत । 'धींग धरमध्वज धंधक धोरी ।' मा० १.१२.४ (दे० द्वितीय अर्थ) । (२) वि०पुं० (सं० धौरेय) । धुरीण, भारधारी । 'चलत भगति बल धीरज धोरी ।' मा० २.२३४ ५

✓**धोव, धोवइ** : (सं० धावति—धावु शुद्धौ>प्रा० धोवइ) आ०प्रए० । धोता है, प्रक्षालित करती है । रा०न० १४

धोवनि : सं०स्त्री० । धोने की क्रिया (मुखप्रक्षाल आदि) । 'रोवनि धोवनि अनखानि अनरसनि ।' गी० १.२१.२

धोवावइँ : आ०प्रब० । धुलाते हैं । 'जो पगु नाउनि धोवइ राम धोवावइँ हो ।' रा०न० १४

धौं : अव्यय (सं० ध्रुवम्>प्रा० धुवं) । (१) निश्चय ही । 'समुझि धौं जिय भामिनी ।' मा० २.५० छं० (२) भला । (प्रश्न) । 'काहे को करति रोष, देहि धौं कौने को दोष ।' कृ० ३७ (३) संभावना । 'ईसु काहि धौं देइ बड़ाई ।' मा० १.२४०.१ (४) अथवा । 'की धौं स्रवन सुनेहि नहिं मोही ।' मा० ५.२१.२

धौंज : सं०स्त्री० (सं० धृञ्ज—ध्रृजि गतौ) । दौड़, धावन क्रिया । 'एक करैं धौंज, एक कहैं काढ़ौ सौंज ।' कवि० ५.८

धौर : वि०पुं० (सं० धौरेय) । बड़े, भारी भरकम, भारधारी । 'धरनीधर धौर धकान हले हैं ।' कवि० ६.३३

धौरहर : सं०पुं० (सं० धवलगृह>प्रा० धवलहर) । चूने से पुता हुआ विशाल प्रासाद । 'चढ़ि धौरहर बिलोकि दखिन दिसि ।' गी० ६.१७.१

धौरि : धोरी । श्रेणी । गी० ७.१८.१

धौल : धवल । श्वेत । 'बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे ।' कवि० ७.१४४

ध्याइबे : भकृ०पुं० । ध्यान करने । 'ध्याइबे को गाइबे को सेइबे सुमिरिबे को।' गी० २.३३.३

ध्यान : सं०पुं० (सं०) । चित्त की अविच्छिन्न एकाग्रता । मा० १.३४ (२) योग के आठ अङ्गों में सातवाँ साधन—दे० धारणा ।

ध्यानरस : आराध्य में एकाग्र निरुद्ध चित्त की वह दशा जिसमें भक्ति के आनन्द का योग हो और उसी आनन्द में चेतना आराध्य से अखण्ड एकाकार हो जाय। 'मगन ध्यानरस दंड जुग ।' मा० १.१११

ध्याना : ध्यान । मा० ७.११३.७

ध्यानु : ध्यान+कए० । एकमात्र ध्यान साधना । 'ध्यानु प्रथम जुग मखबिधि दूजें ।' मा० १.२७.३

√ध्याव, ध्यावइ : (सं० ध्यायति>प्रा० धिआयइ) आ०प्रए० । ध्यान करता है। 'कोउ ब्रह्म निरगुन ध्याव ।' मा० ७.११३.७

ध्यावहिं, हीं : आ०प्रब० । ध्यान में लाते हैं। 'जोगी···बिमल मन जेहि ध्यावहीं।' मा० १ ५१ छं०

ध्रुवँ : ध्रुव ने । 'ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ ।' मा० १.२६.५

ध्रुव : सं०पुं० (सं०) । उत्तानपाद की बड़ी रानी सुनीति का पुत्र, जिसने विमाता के कहने से पिता द्वारा अपमानित होकर बाल्यकाल में तप किया था । मा० १.८४.४ (२) पुराणों के अनुसार उन्हीं ध्रुव को अचल नक्षत्र के रूप में प्रतिष्ठा मिली ।

ध्रू : ध्रुव । 'सुनी न कथा प्रहलाद न ध्रू की ।' कवि० ७.८८

ध्वज : सं०पुं० (सं०) । बड़ा झण्डा । मा० १.१९४.१

ध्वजा : ध्वज । मा० ६.८०.५

ध्वान्त : सं०पुं० (सं०) । अन्धकार । मा० ३ श्लो० १

ध्वान्तचर : निशाचर । 'ध्वान्तचर सलभ संहार कारी ।' विन० २७.१

ध्वैहौं : आ०भ०उए० (सं० धाविष्यामि>प्रा० धोइहिमि>अ० धोइहिउँ)। धोऊँगा। 'तौ जननी जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं ।' गी० २.६२.१

न

न : (१) निषेधार्थक अव्यय । (२) 'नाहिन' में निश्चयार्थक अव्यय ।

नंचहिं, हीं : नाचहिं । मा० ६.८८.७; ३.२० छं० २

नंद : सं०पुं० (सं०) (१) गोपमुख्य जिनके कृष्ण पालित पुत्र थे। कृ० २१ (२) पुत्र । 'रघुनंद' । मा० ७.१४ छं० १०

नंदन : सं०पुं० (सं०) । आनन्द देने वाला (१) पुत्र । 'अंजनी को नंदन प्रताप भूरि भानु सो ।' हनु० ८ (२) सन्तति (गोत्रापत्य) । 'निसिचर निकर दले रघुनंदन ।' मा० १.२४.८

नंदनु : नंदन+कए० । अद्वितीय पुत्र । 'दसरत्थ को नंदनु बंदि कटैया ।' कवि० ७.५१

नंदलला : कृष्ण । कृ० १२

नंदलाल : कृष्ण । कृ० ३४

नंदिगांव : नंदिग्राम । मा० २.३२४.२

नंदिग्राम : सं०पुं० (सं०) । अयोध्या के समीप एक गाँव । गी० २.७९.१

नंदिनि : (सं० नन्दिनी) । पुत्री (के अर्थ में प्रयुक्त) । मा० १.३९.१३

नंदीमुख : सं०पुं० (सं० नान्दीमुख) । शुभ कर्मों में प्रथम कर्त्तव्य श्राद्धविशेष । मा० १.१९३

नः : सर्वनाम (सं०) । हमारा-री-रे । हमको । मा० ४ श्लो० १

नइ : (१) नई । नवीना । 'यह नइ रीति न राउरि होई ।' मा० २.२६७.६ (२) पूकृ० (सं० नत्वा>प्रा० नविअ>अ० नवि) । झुक कर, नम्र होकर । 'खैंचि लेइ नइ नीचु ।' दो० ४७९

नईं : नई···पर । 'नईं नाव सब मातु चढ़ाईं ।' मा० २.२०२.८

नई : (१) वि०स्त्री० (सं० नवा>प्रा० नई) । नवीना । 'विस्व कल कीरति नई ।' मा० १.३२४ छं० ४ (२) भूकृ०स्त्री० (सं० नता>प्रा० नई) । झुकी । 'सोहत सकोच सील नेह नारि नई है ।' गी० १.८५.३ (जिस प्रकार 'नई नारि=नववधू संकोचादि से शोभा पाती है, उसी प्रकार झुकी हुई ग्रीवा 'नारि', सुशोभित हुई) ।

नउनिया : नाउनि । रा०न० ८

नए : (१) वि०पुं०ब० । नवीन । 'सींचत बिरह उर अंकुर नए ।' मा० २.१७६ छं० (२) अपूर्व । 'निमिष निमिष उपजत सुख नए ।' मा० ७.८.९ (३) भूकृ०पुं०ब० । झुके, नत हुए । 'सानुज भरत सप्रेम राम पायन्ह नए ।' जा०मं० ३०

नकबानी : सं०स्त्री० । नाक से बोलने या पानी पीने की क्रिया जब कण्ठरोध की स्थिति होती है । (मुहावरा) संकट दशा (नाक चना), विकट उलझन । 'तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयों नकबानी ।' विन० ५.३

नकीब : सं०पुं० (अरबी—नकीब) । सेना का अग्रणी जो सावधान एवं शूर-वीर होने के साथ (स्वराष्ट्र तथा परराष्ट्र) के लोगों की पूरी जानकारी रखता हो । 'बोलत पिक नकीब ।' कृ० ३२

नकुल : सं०पुं० (सं०) । नेवला । मा० १.३०३.३

नक्र : सं०पुं० (सं०) । मगर (जलजन्तु विशेष) । मा० ६.४.५

नख : सं०पुं० (सं०) । नाखून । मा० १.१०६.७

नखत : सं०पुं० (सं० नक्षत्र>प्रा० नक्खत्त) । तारागण । मा० १.२३९.१ (२) ज्योतिष गणना में चन्द्रमा के सत्ताईस नक्षत्र=अश्विनी आदि ।

नखतु : नखत+कए० । सत्ताईस में से उपयुक्त शुभ नक्षत्र । 'ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू ।' मा० १.३१२.६

नखन्हि : नख+संब० । नखों (से) । 'नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ ।' मा० ६.९८.६

नखसिख : क्रि०वि० (सं० आनख-शिखम्) । नखों से शिखा पर्यन्त=सर्वाङ्ग प्रत्यङ्ग (देवों के लिए नीचे के अङ्ग=चरण से आरम्भ करके वर्णन शिखा तक चलता है—इस क्रम के आधार पर यह शब्द बना है) । 'नखसिख निरखि राम कै सोभा ।' मा० १.२३४.४

नग : सं०पुं० (सं०) । हीरा, रत्न । 'सोभा सिंधु संभव से नीके नीके नग हैं ।' गी० २.२७.२ (२) मुक्ता । 'निज गुन घटत न नाग—नग परखि परिहरत कोल ।' दो० ३८५

नगन : वि० (सं० नग्न) । निर्वसन । मा० ५.११ ४

नगफँग : (दे० फँग) छली लुच्चे का फन्दा । धूर्त-जाल (सं० नग्न=निर्लज्ज, धूर्त, क्षपणक>प्रा० नग्ग>नग+फंग) । कठिन फँसाव । 'हौ भले नगफँग परे गढ़ोवै ।' कृ० ११ (इसे 'नाग' का फन्दा भी माना जा सकता है—अजगर आदि का बन्धन ।)

नगफनियाँ : सं०स्त्री०ब० । सर्प-फणाकार (या ताम्बूलाकार) कर्णाभरण । 'काननि नगफनियाँ ।' गी० १.३४.४

नगर : सं०पुं० (सं०) । पुर, शहर । मा० १.३९

नगरबासिन्ह : नगरबासी+संब० । पुर-वासियों (को) । 'सकल नगर-बासिन्ह सुख दीन्हा ।' मा० १.२००.७

नगरी : सं०स्त्री० (सं०) । नगर । कवि० ७.१६९

नगरु : नगर+कए० । 'जाइ देखि आवहु नगरु । मा० १.२१८

नघुषु : नहुष>नघुष+कए० । राजा नहुष । 'ससि गुरतिय गामी, नघुषु चढ़ेउ भूमि सुजान ।' मा० २.२२८

नचत : नाचत । 'किलकि सखा सब नचत मोर ज्यों ।' कृ० १९

नचहिं : नाचहिं । 'नचहिं मोर ।' गी० २ ४७ १३

नचाइ : पूकृ० (सं० नर्त्तयित्वा>प्रा० नच्चाविअ>अ० नच्चावि)। नचाकर, नाच करवा कर। 'छाड़हिं नचाइ हाहा कराइ।' गी० ७.२२.७

नचाइहि : आ०भ०प्रए० (सं० नर्तयिष्यति>प्रा० नच्चाविहिइ)। नचाएगा-गी। 'निगानँग करि नितहिं नचाइहि नाच।' बर० २४

नचायो : नचावा+कए०। नचाया। 'ग्वाल जुबतिन्ह सोइ नाच नचायो।' विन० ९८.३

नचाव : नचावइ। 'जनु बर बरहि नचाव।' मा० १.३१६

✓**नचाव नचावइ** : (सं० नर्तयति>प्रा० नच्चावइ) आ०प्रए०। नचाता-ती है। 'भृकुटि बिलास नचावइ ताही।' मा० १.२००.५

नचावत : वकृ०पुं०। नचाता, नचाते। 'जात नचावत चपल तुरंगा।' मा० १.३१६.५

नचावति, ती : वकृ०स्त्री०। नचाती। 'चुटकी बजावती नचावती कौसल्या माता।' गी० १.३३.४

नचावनिहारे : वि०पुं०ब०। नचाने वाले (गति देने वाले)। 'बिधि हरि संभु नचावनिहारे।' मा० २.१२७.१

नचावहिं : आ०प्रब० (सं० नर्तयन्ति>प्रा० नच्चावंति>अ० नच्चावहिं)। नचाते हैं। 'तुरग नचावहिं कुअँर बर।' मा० १.३०२

नचावा : (१) नचावइ। 'जो माया सब जगहि नचावा।' मा० ७.७२.१ (२) भूकृ०पुं०। नचाया, स्वाँग कराया। 'जेहिं बहुबार नचावा मोही।' मा० ७ ५९.६

नट : सं०पुं० (सं०)। (१) नर्तक, अभिनेता, स्वाँग करने वाला। 'नाऊ बारी भाट नट।' मा० १.३१९ (२) संगीत में रागविशेष। 'गावत गोपाल लाल नीके राग नट हैं।' कृ० २०

नटत : वकृ०पुं० (सं० नटत्)। नृत्य करता-करते। 'कूजत बिहग नटत कल मोरा।' मा० १.२२७.६

नटनागर : नाट्य-कुशल=श्रीकृष्ण। 'जो बरी नटनागर हेरि हलाकी।' कवि० ७.१३४

नटनि : सं०स्त्री०। नृत्यक्रिया, नर्तन। 'किलकनि नटनि चलनि चितवनि।' गी० १.९.३

नटीं : दे० नाक नटीं।

नटी : सं०स्त्री० (सं०)। अभिनेत्री, नर्तकी। मा० ७.७२.२

नटु : नट+कए०। नर्तक। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा।' मा० २.२४१.४

नटैया : सं०स्त्री०। नट्टी, गला। 'लै चलिहैं भट बाँधि नटैया।' कवि० ७.५१

नत : (१) (न+त) नहीं तो। 'सीता देइ मिलहु नत आवा कालु तुम्हार।' मा० ५.५२ (२) वि०पुं० (सं०)। विनत, प्रणत, शरणागत। 'बहुतै नत पाले।' हनु० १७

नतग्रीव : वि० (सं०)। गर्दन झुकाये हुए। विन० २७.२

नतपाल : वि०पुं० (सं०)। शरणागतों का पालनकर्ता। 'बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है।' हनु० २६

नतपालक : नतपाल। 'नतपालक पावन पनी।' गी० ५.३६.४

नतपालु : नतपाल+कए०। एकमात्र प्रणत-रक्षक। 'समरथ कृपालु नतपालु।' विन० १६३.७

नतमात्र : वि० (सं०)। केवल नमन किये हुए। विन० ४४.६

नतरु : अव्यय। नहीं तो, अन्यथा। 'नतरु जनम जग जायँ।' मा० २.७०

नति : सं०स्त्री० (सं०)। प्रणति, नमन। 'पितु पद गहि कहि कोटि नति।' मा० १.६५

नतु : नत (सं०)। नहीं तो। 'न तु लै मिलु सीय चहै सुखु जो रे।' कवि० ६.१२

नथुनियाँ : सं०स्त्री०। नथ, नथूनी, नासाभरण। गी० १.३४.३

नद : सं०पुं० (सं०)। बड़ी नदी। मा० २.६२.७

नदिहि : नदी को। 'नदिहि सिरु नावा। मा० २.२२१.४

नदीं : नदी+ब०। नदियाँ। 'सब सर सिंधु नदीं नद नाना।' मा० २.१३८.५

नदी : सं०स्त्री० (सं०)। सरिता। मा० १.३५.२

नदीस : सं०पुं० (सं० नदीश)। समुद्र। मा० ६.५

ननिअउरें : (सं० नानिकापुरे>प्रा० नाणिअउरेण) ननिहाल में। 'पठए भरतु भूप ननिअउरें।' मा० २.१८.२

नपुंसक : सं०पुं० (सं०)। स्त्रीत्व तथा पुंस्त्व दोनों से रहित व्यक्ति। मा० ७.८७ क

नफीरि : सं०स्त्री० (अरबी-नफीर)। बड़ी बाँसुरी, करनाय नाम का बाजा। 'बाजहिं भेरि नफीरि अपारा।' मा० ६.४१.३

नबीन, ना : वि० (सं० नवीव)। नूतन। मा० २.१६८; १.१२६.४

नबीने : नबीन+ब०। नये। 'काटतहीं पुनि भए नबीने।' मा० ६.६२.११

नभ : सं०पुं० (सं० नभस्)। आकाश। मा० १.८.१

नभग : सं०पुं० (सं० नभोग)। आकाशगामी=पक्षी। मा० ७.७०.१

नभगामी : नभग। मा० ७.६४.१

नभ-गिरा : आकाशवाणी। मा० ७.११४.७

नभगेस : (नभग+सं० ईश>प्रा० ईस)। पक्षिराज=गरुड़। मा० ७.२१

नभचर : नभगामी । (सं० नभश्चर) । पक्षी । मा० १.३.४

नभतल : सं०पुं० (सं० नभस्तल) । आकाश भाग, व्योम मण्डल । 'फलँग फलाँगहू तें घाटि नभतल भो ।' हनु० ५

नभबानी : आकाशवाणी । मा० १.१७४.६

नभु : नभ+कए० । 'धूप धूम नभु मेचक भयऊ ।' मा० १.३४७.१

नमत : (१) वकृ०पुं० (सं० नमत्>प्रा० नमंत) । प्रणत होता-होते । 'जे न नमत हरि गुर पदमूला ।' मा० १.११३.४ (२) प्रणाम करते ही । 'नमत नर्मद भुक्ति-मुक्ति-दाता ।' विन० ४०.४

नमामहे : आ०उब० (सं० नमामः) । हम प्रणाम करते हैं । मा० ७.१३ छं० १-२-५

नमामि, मी : आ०उए० (सं० नमामि) । प्रणाम करता हूँ । 'राम नमामि नमामि नमामी ।' मा० ७.१२४.७

नमि : पूकृ० । झुकर कर, नत होकर । 'फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ ।' मा० ३.४०

नमित : भूकृ०पुं० (सं०) । झुकाया हुआ, झुकाये हुए । 'बैठि नमित मुख सोचति सीता ।' मा० २.५८.२

नमिहै : आ०भ०प्रए० । झुकेगा । 'नाम के प्रसाद भारु मेरी ओर नमिहै ।' कवि० ७ ७१

नम्र : वि० (सं०) । विनत, प्रणत (झुका हुआ), नमनशील । 'बाहिज नम्र देखि मोहि साईं । बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं ।' मा० ७.१०५.६

नय : (क) सं०पु० (सं०) । (१) पद्धति, रीति, व्यवहार (२) उचित आचार (३) दूरदर्शिता, विवेक (४) नीति, राजनीति (५) योजना (६) सिद्धान्त (७) मत, सम्मत, प्रस्थान, सम्प्रदाय (८) दार्शनिक मतवाद (९) न्याय । 'बोले बचनु राम नय नागर ।' मा० २.७०.७ (ख) वि० (सं० नव) । नवीन । 'नय नगर बसाए ।' गी० २.४९.२

नयऊ : नय+कए० । नया, नवीन । 'हर गिरिजा बिहार नित नयऊ ।' मा० १.१०३.६

नयन : सं०पुं० (सं०) । नेत्र । मा० १.२.१

नयनन, नि नयनन्ह, न्हि : नयन+संब० । नेत्रों । 'निज नयनन्हि देखा चहहिं ।' मा० १ ८८

नयनफलु : नेत्रों का परम प्रयोजन, आँख पाने की सार्थकता । 'पाइ नयन-फलु होहिं सुखारी ।' मा० २.११४.३

नयनवंत : वि० (सं० नयनवत्>प्रा० नयणवंत) । नेत्रधारी । मा० २.१३९.१

नयना : नयन । मा० ३.११.२०

नयनानंद : नेत्रसुख, दर्शन लाभ का आनन्द । मा० ५.४५.२

नयनी : (समासान्त में) वि०स्त्री० । नेत्रों वाली । 'मृग नयनी ।' मा० २.११७.४ (मृग तुल्य नेत्रों वाली)

नयपाल : वि०पुं० (सं०) । नीति-रक्षक । दो० ४४२

नयवान : वि०पुं० । नीतिशाली । रा०प्र० ७.७.३

नयसाली : वि० (सं० नयशालिन्) । नीतिपूर्ण । मा० २.२९७.८

नयसील, ला : (दे० नय) वि० (सं० नयशील) । नय निभाने वाला । 'जामवंत मारुति नयसीला ।' मा० ६.१०६.२

नये : नए ।

नयो : (१) नयऊ । नवीन । 'जसु तुम्हरो नित नयो ।' मा० ६.१०६ छं० (२) भूकृ०पुं०कए० (सं० नतः>प्रा० नओ>अ० नयउ) । झुका, प्रणत हुआ । बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो ।' मा० ६.८४ छं०

नर : सं०पुं० (सं०) । (१) पुरुष । मा० १.३४३.८ (२) विष्णु के अवतार 'नर' जो नारायण के सहोदर कहे गये हैं । 'नर नारायण की तुम्ह दोऊ ।' मा० ४.१.८ (३) नारायण के बन्धु नर के अवतार अर्जुन—दे० नर नारि ।

नरक : सं०पुं० (सं०) । यमलोक के कुम्भीपाक, रौख आदि निरय । मा० १.६.६

नरका : नरक । मा० ७.१००.४

नरकु : नरक+कए० । 'सरगु नरकु अपबरगु समाना ।' मा० २.१३१.७

नरकेसरी : सं०+वि०पुं० (सं०) । (१) मनुष्यों में सिंहवत् सर्वोपरि; वीरोत्तम । (२) नृसिंह भगवान् । 'राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल ।' मा० १.२७

नरकेहरि : नरकेसरी । 'प्रगटे नरकेहरि खंभ महाँ ।' कवि० ७.८

नरदेव : राजा । गी० १.६.२२

नरनाथ : राजा । मा० १.२८६ ७

नरनायक : राजा ।

नरनायकु : नरनायक+कए० । मा० २.४२.५

नरनारि : नरनारी । (१) स्त्री-पुरुष । 'प्रनवउँ पुर नर-नारि बहोरी ।' मा० १.१६.२ (२) (दे० नर) नरावतार अर्जुन की पत्नी=द्रौपदी । 'नर-नारि उघारि सभा महुँ होति ।' कवि० ७.६

नरनारी : (१) पुरुष तथा स्त्री । 'नृपहि सराहत सब नरनारी ।' मा० १.२८.७ (२) द्रौपदी । 'भूपसदसि सब नृप बिलोकि, प्रभु राखु, कह्यो नर-नारी ।' विन० ९३.४

नरनाहँ : राजा ने। 'तब नरनाहँ बसिष्ठु बोलाए।' मा० २.९.१

नरनाह, हा : नरनाथ (प्रा०)। राजा। मा० १.२४८.७

नरनाहु, हू : नरनाह+कए०। मा० २.१५२.२ 'जद्यपि नीति-निपुन नरनाहू।' मा० २.२७.७

नरपति : राजा। मा० २.२५.२

नरपसु : (सं० नरः पशुरिव=नरपशुः)। पशु तुल्य मूढ पुरुष। 'करहु कृतारथ जन्म, होहु कत नरपसु।' जा०मं० ६२

नरपाल : राजा। मा० २.२९१

नरपालू : नरपाल+कए०। 'बिबरन भयउ निपट नरपालू।' मा० २.२९.६

नरबर : श्रेष्ठ पुरुष। मा० २.७२.२

नरभूषन : पुरुषों में अलंकरण के समान प्रथम। श्रेष्ठ पुरुष। मा० १.२४१.८

नरम : वि० (फा० नर्म)। कोमल, मुलायम। 'करिबे कहँ कटु कठोर सुनत मधुर नरम।' विन० १३१.२

नरराज : मनुष्यों का राजा। मा० २.१२६ छं०

नरलीला : मनुष्य रूप में अवतीर्ण भगवान् की लीला। मा० ३.२४.१

नरलोक : मर्त्यलोक, पृथ्वीलोक। 'नाक नरलोक पाताल।' कवि० ६.४५

नरवइ : नरपति (प्रा०)। राजा। 'भयउ न, होइहि, है न जनक सम नरवइ।' जा०मं० ७

नरहरि : सं०पुं० (सं०)। नृसिंह भगवान्। मा० १.१२२.८

नरहरी : नरहरि। मा० ५.४.१

नराणां : (सं० पद) मनुष्यों का-की-के। मा० ७.१०८.१३

नरादरेण : (नर+आदरेण) मनुष्य आदर से। मा० ३.४ छं०

नरु : नर+कए०। कोई मनुष्य। 'सबकी सुधरै जो करै न पूजो।' कवि० ७.५

नरेषु : (सं० पद) मनुष्यों में। 'मतिमंद सकल-नरेषु।' गी० ७.९.६

नरेस, सा : सं०पुं० (सं० नरेश)। राजा। मा० १.१६७; १६४.१

नरेसु, सू : नरेस+कए०। 'संकट परेउ नरेसु।' मा० २.४०; १.१५३.२

नरों : परसों के बाद का दिन=नरसों। 'आजु कि कालि परों कि नरों।' कवि० ७.१७९

नरो : नर+कए० (सं० नरः>प्रा० नरो)। विन० २२६.४

नर्तक : सं०पुं० (सं०)। (१) नट, नचनिया, नृत्यकला-कुशल। (२) भाँड़ जाति जो वेश्या और धोबी का संकरवर्ण है। 'नर्तक नृत्यसमाज।' मा० ७.२२ (नृत्य कुशल ही नर्तक थे, रामराज्य में संकर जाति के नर्तक न थे)।

नर्तकी : सं०स्त्री० (सं०)। नटी, नृत्य करने वाली (अभिनेत्री)। 'माया खलु नर्तकी बिचारी।' मा० ७.११६.४

नर्म : सं०पुं० (सं० नर्मन्) । विनोद, विहार, सुख, रञ्जन ।

नर्मद : वि०पुं० (सं०) । सुखद, रञ्जक, आनन्दप्रद । धर्म कर्म नर्मद गुणग्रामः ।' मा० ३.११.१६

नल : सं०पुं० (सं०) । (१) एक वानरयूथप । मा० ५.६०.१ (२) निषध देश महाभारत-प्रसिद्ध राजा का नाम ।

नलिन : सं०पुं० (सं०) । कमल । 'नलिन नयन भरि बारि ।' मा० ६.११४ ख

नलिनी : सं०स्त्री० (सं०) । कमलिनी, कमल वृक्ष या कमल पुष्प । 'कबहुं कि नलिनी करइ बिकासा ।' मा० ५.६.७

नलु : नल+कए० । (१) वानरयूथप विशेष । कवि० ५.२६ (२) राजा नल । 'बिगत बिषाद भए पारथ नलु ।' विन० २४.३

नव : (१) संख्या (सं० नवन्) । नौ । 'सात दीप नव खंड लौं ।' वैरा० ५० (२) वि० (सं०) । नवीन । 'नव पल्लव फल सुमन सुहाए । मा० १.२२७.५ (३) नवइ । झुकता है, नम्र पड़ता है । 'डाटेहिं पै नव नीच ।' मा० ५.५८

√**नव नवइ** : (सं० नमति>प्रा० नमइ=नवइ) आ०प्रए० । प्रणत होता है, झुकता है । 'नवै नाथ नाक को ।' हनु० १२

नवगुन : (१) यज्ञोपवीत के ३×३=९ सूत्र (गुण) (२) ब्राह्मण के नव-धर्म:—शम, दम, तप, शौच, क्षमा, ऋजुता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता । (गी० १८.४२) । 'नाथ एक गुन धनुष हमारें । नवगुन परम पुनीत तुम्हारें । मा० १.२८२.७

नवद्वार : नौ छिद्रों (द्वारों) वाला । 'नवमी नवद्वार पुर बसि जेहिं न आपु भल कीन्ह ।' विन० २०३.१० (अथर्व० में शरीर को नव द्वारों की अयोध्यापुरी कहा गया है—'अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।' और गीता में भी—'नवद्वारे पुरे देही' आता है । नाक, कान, नेत्र, मुख, मूत्राङ्ग तथा मलत्यागाङ्ग के नव छिद्र ही इस नगर के नव द्वार हैं) ।

नवधा : वि०स्त्री० (सं०) । नौ प्रकार की (भक्ति) । नवधा भक्ति के नौ अङ्ग हैं—सत्संग, कथाश्रवण, गुरुसेवा, गुणकीर्तन, जप, विषय-विराग, समदर्शिता, सन्तोष और निश्छल समर्पण । मा० ३.३५-३६

नवनि : सं०स्त्री० । नति, नम्रता, झुकने की क्रिया । 'नवनि नीच कै अति दुखदाई ।' मा० ३.२४.७

नवनिद्ध : नवनिधि ।

नवनिधि : (सं०—महापद्मश्च पद्मश्च शङ्खो मकर-कच्छपौ । मुकुन्द-कुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव ।) 'हरषे जनु नवनिधि घर आई ।' मा० २.१३५.१ (यहाँ

दो अर्थ हैं—(१) अपूर्व निधि या अद्भुत धनागार (२) नवसंख्यक निधियाँ—महापद्म, पद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व।)

नवनीत : सं०पुं० (सं०)। मक्खन। नैनू। 'संत हृदय नवनीत समाना।' मा० ७.१२५.७

नवनीता : नवनीत। मा० ७.१२५.८

नवम : वि०पुं० (सं०)। नौवाँ। मा० ३.३६.५

नवमी : वि०+सं०स्त्री० (सं०)। (१) नवीं बात (२) पाख की नवीं तिथि। विन० २०३.१०

नवरत्न : मुक्ता, माणिक्य, बिल्लौर, गोमेद, हीरा, विद्रुम (लाल मूंगा), पद्मराग, मरकत और नीलम ये क्रमश: मूल्यवान् रत्न हैं। 'मुक्ता-माणिक्य-वैदूर्य-गोमेदा वज्र-विद्रुमौ। पद्मरागो मरकतं नीलश्चेति यथाक्रमम्।' मा० ७.२३.९

नवरस : श्रृंङ्गार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, बीभत्स, रौद्र और शान्त। 'तौ षटरस नवरस रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे।' विन० १६९.१

नवल : वि० (सं०)। अत्यन्त नवीन, सद्यस्क। मा० १.२४८.२

नवला : वि०स्त्री० (सं०)। नवयुवती, नबेली। 'का घूँघट मुख मूदहु नवला नारि। बर० १७

नवग्रह : सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु—ग्रह। विन० ६२.७

नवसत : नवसप्त। 'नवसत सँवारि सुंदरि चलीं।' गी० ७.१८.४

नवसप्त : संख्या (सं०)। सोलह (षोडश श्रृंङ्गार)। मा० १.२२२ छं०

नवसात : नवसप्त। 'राजति बिन भूषन नवसात।' गी० २.१५.३

नवँहि : (१) नौ से। 'नवँहि बिरोधें नहिं कल्याना।' मा० ३.२६.३ (२) आ०प्रब०। झुकते हैं, नत होते हैं। 'पर उपकारी पुरुष जिमि नवँहि सुसंपति पाइ।' मा० ३.४०

नवहीं : नवँहि। नत होते हैं। 'मुनि रघुबीर परसपर नवहीं।' मा० २.१०८.४

नवावँहि : आ०प्रब० (सं० नमयन्ति>प्रा० नवावंति>अ० नवावँहि)। झुकाते हैं। 'प्रभु कर जोरें सीस नवावँहि।' मा० ७.३३.४

नवावौं : आ०उए०। झुका दूँ, झुका सकता हूं। 'का बापुरो पिनाक, मेलि गुन मंदर मेरु नवावौं।' गी० १.८९.८

नवै : नवइ।

नस : सं०स्त्री० (सं० स्नसा>प्रा० नसा>अ० नस)। स्नायु, नाड़ी। 'अस्थि सैल, सरिता नस जारा।' मा० ६.१५.७

✓**नसा नसाइ, ई** : (सं० नश्यति>प्रा० नासइ) आ०प्रए०। (१) मिटता है। 'सुनि कलि कलुष नसाइ।' मा० १.२९ ग (२) अदृश्य होता-ती है। कहत

नसाइ होइ हियँ नीकी।' मा० १.२९.४ (३) बिकार ग्रस्त हो जाता है, दूषित होता है। 'को न कुसंगति पाइ नसाई।' मा० २.२४.८ (४) नष्ट हो, दूर हो। 'जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई।' मा० २.५०.८

नसाइए, ये : आ०कवा०प्रए०। (सं० नाश्यते>प्रा० नसावीअइ)। नष्ट किया जाय, मिटाया जाय। 'पाप रासि नसाइये।' विन० १३६.१०

नसाइहि : आ०भ०प्रए० (सं० नंक्ष्यति>प्रा० नासिहिइ)। नष्ट होगा, बिगड़ जायगा। 'काजु नसाइहि होत प्रभाता।' मा० ६.६०.५

नसाइहौं : आ०भ०उए० (सं० नाशयिष्यामि>प्रा० नसाविहिमि>अ० नसाविहिउँ)। मिटाऊँगा-गी। 'डिढि मुठि निठुर नसाइहौं।' गी० १.२१.२

नसाई : (१) नसाइ। (२) पूकृ०। नष्ट होकर। 'जाइ लोकु परलोकु नसाई।' मा० २.२६३.७ (३) भूकृ०स्त्री०। नष्ट कर दी। 'निकाई सो नसाई है।' कवि० ७ १८१

नसाउ, ऊ : आ०—संभावना—प्रए० (सं० नश्यतु>प्रा० नासउ)। चाहे नष्ट हो जाय। 'सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। 'तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ।' मा० २.७९.४

नसाए : भूकृ०पुं०ब०। (सं० नाशित>प्रा० नसाविय)। नष्ट किये। 'सिय निदंक अघ ओघ नसाए।' मा० १.१६.३

नसातो : क्रियाति०पुं०ए० (सं०) अनंक्ष्यत्>प्रा० नासंतो)। (यदि तो) नष्ट हो जाता। 'तुलसी राम प्रसाद सों तिहुं ताप नसातो।' विन० १५१.९

नसाना : भूकृ०पुं०ए०। नष्ट हो गया। 'स्वरथ रत परलोक नसाना।' मा० ७.४१.४

नसानी : भूकृ०स्त्री०। (१) नष्ट हुई। 'प्रथम अबिद्या निसा नसानी।' मा० ७.३१.३ (२) बिगड़ी। 'सुधरै सबै नसानी।' कृ० ४९

नसायो : भूकृ०पुं०कए० (सं० नाशितम्>प्रा० नसावियं>अ० नसावियउ)। नष्ट किया। 'दुखु···तुम्हहुँ नसायो।' मा० ६.११०.८

√**नसाव नसावइ** : (सं० नाशयति>प्रा० नसावइ) आ०प्रए०। (१) मिटाता है। 'पाप ताप सब सूल नसावै।' वैरा० २२ (२) अपने को मिटा है=मिट ा है (नसाइ)। 'न बिपति नसावै।' विन० १२३.३

नसावन : वि०पुं०। नाशक, उच्छेपनशील। 'नाम अखिल अघपूग नसावन।' मा० ७.९२.२

नसावनि : वि०स्त्री०। नष्ट करने वाली। 'भगति······भवदाप नसावनि।' मा० ७ ३५.१

नसावहिं, हीं : आ०भ० प्रब० (सं० नाशयन्ति>प्रा० नसावंति>अ० नसावहिं)। नष्ट करते हैं। 'उभय लोक निज हाथ नसावहिं।' मा० ७.१००.७

नसावहि : आ०मए० । तू नष्ट कर ! 'करन कलंक नसावहि ।' विन० २३७.३

नसावा : (१) नसावइ । 'ममता केहि कर जस न नसावा ।' मा० ७.७१.२ (२) भूकृ०पुं० (सं० नाशित>प्रा० नसाविअ) नष्ट किया, बिगाड़ा । 'आह दइअ मैं काह नसावा ।' मा० २.१६३.६

नसावै : नसावइ । चाहे मिटा दे, मिटा सके । 'अंधकारु बरु रबिहि नसावै ।' मा० ७.१२२.१८

नसावौं : आ०उए० (सं० नाशयामि>प्रा० नसावमि>अ० नसावउँ) । नष्ट करता हूं, मिटा रहा हूं । 'भेक ज्यों रटि रटि जनम नसावौं ।' विन० १४२.४

नसाहिं, हीं : आ०प्रब० (सं० नश्यन्ति>प्रा० नासंति>अ० नासहिं) । नष्ट होते हैं, मिट जाते हैं । 'पर संपदा बिनासि नसाहीं ।' मा० ७.१२१.१६

नसैहैं : आ०भ०प्रब । मिटेंगे । 'सकल परिताप नसैहैं ।' गी० ५.५१.५

नसैहौं : नसाइहों । नष्ट करूँगा, मिटने दूँगा । 'अब लौं नसानी अब न नसैहौं ।' विन० १०५.१

नस्वर : वि० (सं० नश्वर) । विनाश-शील । 'नस्वर रूप जगत सब ।' मा० ६.७७

नह : नख (प्रा०) ।

नहछू : सं०पुं० (सं० नखक्षुर, नखच्क्षुर>प्रा० नहच्छुर) । नाखून काटने की क्रिया, प्रथम बार बालक के नख काटने के मुहूर्त का उत्सव । दे०रा०न० ।

नहत : वकृ०पुं० (सं० नह्यत्>प्रा० नहंत) । जोतता, माची या हल में बाँधता । 'पसु लौं पसुपाल ईस बाँधत छोरत नहत ।' विन० १३३.३

नहते : क्रियाति०पुं०ब० (सं० अनक्ष्यन्>प्रा० नहंत=नहंतय) । जोतते, हल या जुए में लगाते । 'तौ जमघट साँसति हर हमसे बृषभ खोजि-खोजि नहते ।' विन० ६७.४

नहरनी : सं०स्त्री० (सं० नखहरणी>प्रा० नह-हरणी) । नाखून काटने का उपकरण, नख-कर्तनी, नाखुनगीर । रा०न० १०

✓**नहा नहाइ, ई :** (सं० स्नाति>प्रा० न्हाइ) आ०प्रए० । नहाता है, स्नान करता है । 'बिमल ग्यान जल जब सो नहाई ।' मा० ७.१२२.११

नहाइ : (१) नहाता है । (२) पूकृ० (अ० न्हाइ) । नहाकर, स्नान करके । 'प्रात नहाइ चले रघुराई ।' मा० २.१२४.४ (३) नहाने (को) । 'जो नहाइ चह एहिं सर भाई ।' मा० १.३६.८

नहाई : (१) नहाइ । नहाता है । (२) नहाइ । नहाकर । मा० २.२७६.६

नहाए : भूकृ०पुं०ब० । स्नान से निवृत्त हुए (स्नान किया) । 'आइ नहाए सरित बर ।' मा० २.१३२

नहात : वकृ०पुं० । स्नान करता-ते । 'जाना मरमु नहात प्रयागा ।' मा० २.२०८.५

नहान : भकृ० अव्यय। स्नान करने। 'प्रात नहान लाग सबु कोऊ।' मा० २.२७३.३

नहाना : नहान। 'पाइ रजायसु चले नहाना। मा० २.२७८.८

नहानीं : भूकृ०स्त्री०ब०। स्नान-निवृत्त हुईं। 'मातु नहानीं।' मा० २.१६७

नहाने : भूकृ०पुं०ब०। स्नान निवृत्त हुए। 'सबिधि सितासित नीर नहाने।' मा० २.२०४.४

नहारू : नाहरू। 'मारसि गाय नहारू लागी।' मा० २.३६.८

नहावा : भूकृ०पुं०। स्नान किया। 'सफल सौच करि राम नहावा।' मा० २.९४.३

नहाहीं : आ०प्रब० (सं० स्नान्ति>प्रा० ण्हंति>अ० ण्हाहिं)। स्नान करते हैं। 'एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं।' मा० १.४५.१

नहाहू : न्हाहु। 'तात जाउँ बलि बेगि नहाहू।' मा० २.५३.१

नहिं, हीं : निषेधार्थक अव्यय (सं० नहि)। नहीं। मा० १.३.२

नहि : (१) नहिं (सं०)। 'जात नहि कछु कही।' गी० ७.६.१ (२) पूकृ० (सं० नद्ध्वा>प्रा० नहिअ>अ० नहि)। नह कर, हल आदि में जोत कर। 'न तु और सबै बिष बीज बए, हर हाटक कामदुहा नहि कै।' कवि० ७.३३

नहुष : सं०पुं० (सं०)। एक पुराण प्रसिद्ध राजा जो कुछ समय के लिए इन्द्र पद पर रहा और इन्द्राणी को पाने की इच्छा से ब्राह्मणों को जोत कर पालकी पर चढ़ा और शाप-भागी बना। मा० २.६१

नहे : भूकृ०पुं०ब० (सं० नद्ध>प्रा० नहिय)। जोते, जुए आदि में बाँधे हुए। 'रहँट नयन नित रहत नहे री।' गी० ५.४९.२

नह्यो : भूकृ०पुं०कए०। नहाया, स्नान किया। 'जूठनि को लालची, चहौं न दूध नह्यो हौं।' विन० २६०.३

नाँक : नाक। स्वर्ग। 'नवै नाथ नाँक को।' हनु० १२

नाँघी : नाघी। गी० ३.७.२

नाँय : नाम। 'लज्जित लागत नाँय।' गी० ६.१४.४

ना : न (सं०)। 'उदित सदा अथइहि कबहू ना।' मा० २.२०९.२

नाइ : पूकृ०। नवा कर, झुका कर। 'कहिहउँ नाइ राम पद माथा।' मा० १.१३.९

नाइअ : आ०कवा०प्रए०। झुकाइए, नत किया जाय। 'ताहि बयरु तजि नाइअ माथा।' मा० ५.३९.५

नाइन्हि : आ०—भूकृ०+प्रब०। उन्होंने झुकाया। 'सिव सुमिरे मुनि सात आइ सिर नाइन्हि।' पा०मं० ७५

नाइहि : आ०भ०प्रए०। झुकाएगा। 'कालउ तुअ पद नाइहि सीसा।' मा० १.१६५.२

नाइहै : (१) नाइहि । (२) मए० । तू झुकाएगा । 'भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो माथो नाइहै ।' विन० १३५.५

नाईं : क्रि०वि० (सं० न्यायेन>प्रा० नाएण>अ० नाइं) । समान । (१) जैसे । 'तन मिल्यो जलपय की नाईं ।' कृ० २५ 'सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं ।' मा० १.२०८.५ (२) मानों । 'मुनि कहँ चले बिकल की नाईं ।' मा० १.१३६.५

नाई : (१) नाइ । झुका कर । 'सिंघासन बैठेउ सिर नाई ।' मा० ६.३५.५ (२) भूकृ०स्त्री० । झुकायी, उँडेल दी । 'मानो मदन मोहनी मूड़ नाई हैं ।' गी० १.७१.३ (३) नाईं । समानता । 'असि मन्मथ महेस की नाई ।' मा० १.९०.८

नाउँ : सं०पुं०कए० (सं० नाम>प्रा० नामं>अ० नावँ) । 'नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं ।' मा० २.११०.३

नाउ : (१) नाव । नौका । दो० ३५८ (२) आ०—आज्ञा—मए० । तू झुका । 'परिहरि प्रपंच सब नाउ राम पद कमल माथ ।' विन० ८४.४

नाउनि : सं०स्त्री० (सं० नापिती) । नाऊ जाति की स्त्री । रा०न० १०

नाऊँ : नाउँ । 'मयसुत मायाबी तेहि नाऊँ ।' मा० ४.६.२

नाऊ : सं०पुं० (सं० नापित>प्रा० नाविअ) । नाई, केशकर्तक जाति विशेष । 'नाऊ बारी भाट नट ।' मा० १.३१९

नाएँ : क्रि०वि० । (१) झुकाये हुए (मुद्रा में) । 'मन मुसुकाहिं रामु सिर नाएँ ।' मा० २.२८१.४ (२) झुकाने से । 'कपीसु निसिचरु अपनाए नाएँ माथ जू ।' कवि० ७ १९ (३) अवमानित किये हुए । 'निज सुंदरताँ रति को मदु नाएँ ।' कवि० ७.४५

नाए : भूकृ०पुं०ब० । झुकाये । 'आइ सबन्हि सादर सिर नाए ।' मा० १.२८७.३

नाएसि : आ०—भूकृ०पुं०+प्रए० । उसने झुकाया (या झुकाये) । 'जाइ कमल पद नाएसि माथा ।' मा० ४.२५.७

नाक : (१) सं०पुं० (सं०) । स्वर्ग । 'महि पाताल नाक जसु ब्यापा ।' मा० १.२६५.५ (२) सं०स्त्री० (सं० नक्रा>प्रा० नक्का>अ० नक्क) । नासिका । 'नाक कान बिनु भइ बिकरारा ।' मा० ३.१८ १

नाकचना : (मुहावरा) ऐसा कठिन कार्य (संकट) जैसे नाक से चने चबाना । 'दसमुख बिबस तिलोक लोकपति बिकल बिनाए नाकचना हैं ।' गी० ७.१३.७

नाकनटीं : नाकनटी=स्वर्गनटी+ब० । स्वर्ग की नर्तकियां, अप्सराएँ । 'नाकनटीं नाचहिं करि गाना ।' मा० १.३०९.४

नाकप : नाकपति (सं०) । इन्द्र । 'राँकनि नाकप रीझि करै । कवि० ७.१५३

नाकपति : स्वर्ग-राज, इन्द्र । 'रंक नाकपति होइ ।' मा० २.९२

नाकपाल : नाकपति। कवि० ७.२३

नाकेस : (सं० नाकेश) इन्द्र। गी० ७.१९.१

नाग : सं०पुं० (सं०)। (१) सर्प। 'खगपति सब धरि खाए नाना नाग बरूथ।' मा० ६.७४ क (२) हाथी। 'सजहु तुरग रथ नाग।' मा० २.६ (३) पाताल-वासी जातिविशेष जिसका सिर (पुराणों में) सर्प का कहा गया है। 'देव दनुज नर नाग खग।' मा० १.७ घ

नागपास : (सं० नागपाश)। सर्प-बन्धन, मायिक सर्पबाणों का जाल। 'नागपाल बाँधेसि लै गयऊ।' मा० ५.२०.२

नागमनि : (१) सर्प की मणि (२) गजमुक्ता। 'उर अति रुचिर नागमनि माला।' मा० १.२१९.५

नागर : वि०पुं० (सं०)। (१) नगरनिवासी। 'गनी गरीब ग्राम-नर नागर।' मा० १.२८.६ (२) शिष्ट, सुसंस्कृत, सभ्य। 'गुनसागर नागर बर बीरा।' मा० १.२४१.२ (३) कलाकुशल। 'नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बँधान।' मा० १.३०२ (४) दक्ष, निपुण, विवेकशील। 'बोले बचनु राम नय नागर।' मा० २.७०.७ (५) तीव्र, क्षिप्रकारी। 'अतिनागर भवसागर सेतुः।' मा० ३.११.१४ (६) काव्य की या कथन की कोमल गुणों से सम्पन्न रीति में निपुण। 'जयति बचन रचना अति नागर।' मा० १ २८५.३

नागरमनि : नागरों में श्रेष्ठ। 'नटनागरमनि नंदललाऊ।' कृ० १२

नागराज : गजराज। विन० ६३.२

नागरि : नागरी। 'ग्वालिनि अति नागरि।' कृ० १२

नागरिपु : (१) सर्प शत्रु=गरुड़। (२) गजशत्रु=सिंह। 'निज कर डासि नागरिपु छाला।' मा० १.१०६.५

नागरीं : नागरी+ब०। नगर की कुशल सुन्दरियाँ। 'लोचन लाह लूटति नागरीं।' जा०मं० १९

नागरी : नागर+स्त्री० (सं०)।

नागा : नाग। (१) हाथी। मा० १.१०१.७ (२) सर्प। 'जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा।' मा० ६.५०.५ (३) पाताल की जाति। मा० १.१८२.११

नागे : वि०पुं० (सं० नग्नक>प्रा० नग्गय)। दिगम्बर, निर्वसन (शिव)। 'नागे के आगे हैं मागने बाढ़े।' कवि० ७.१५४

नागेन्द्र : (सं०)। गजराज, हस्तियूथप। विन० ४६.४

नागो : वि०पुं०कए० (सं० नग्नः>प्रा० नग्गो)। दिगम्बर, वस्त्रहीन। 'नागो फिरै, कहै मागनो देखि, न खागो कछू।' कवि० ७.१५३

√नाघ, नाघइ : (सं० लङ्घयति>प्रा० लंघइ; सं० नाखयति—नख गतौ>अ० नाघइ) आ०प्रए०। कूद जाता है, लाँघ जाता है, फाँद सकता है। 'जो नाघइ सत जोजन सागर।' मा० ४.२९.१

नाघउँ : आ०उए०। लाँघ सकता हूं, फलाँग जाता हूं। 'लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा।' मा० ४.३०.८

नाघत : वकृ०पुं०। लाँघता, लाँघते। 'नाघत भयउ पयोधि अपारा।' मा० ७.६७.३

नाघहिं : आ०प्रब०। लाँघ जाते हैं। 'नाघहिं खग अनेक बारीसा।' ६.२८.२

नाघि : पूकृ०। लांघकर। 'नाघि सिंधु एहि पारहि आवा।' मा० ५.२८.२

नाघी : भूकृ०स्त्री०। लाँघी। 'कहे कटु बचन रेख नाघी मैं।' गी० ३.७.२

नाघेउ : भूकृ०पुं०कए०। लाँघ गया। 'पुर दहि नाघेउ बहुरि पयोधी।' मा० ७.६७.५

नाघेहु : आ०—भूकृ०पुं०+मब०। तुमने लाँघा। 'सोउ नहिं नाघेउ असि मनुसाई।' मा० ६.३६.२

नाच : (१) सं०पुं० (सं० नृत्य>प्रा० नच्च)। 'घेरि सकल बहु नाच नचावहिं।' मा० ६.५.७ (२) नाचइ। 'नाच नटीइव।' मा० ७.७२.२

√नाच, नाचइ : (सं० नृत्यति>प्रा० नच्चइ) आ०प्रए०। नाचता-ती है। 'जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा।' मा० ६.२४.१

नाचत : वकृ०पुं० (सं० नृत्यत्>प्रा० नच्चंत)। नाचता, नाचते। 'मोरगन नाचत बारिद पेखि।' मा० ४.१३

नाचति : वकृ०स्त्री०। नाचती, नाच रही। 'रुचिर मोर जोरी जनु नाचति।' गी० ७.१७.१४

नाचहिं : आ०प्रब० (सं० नृत्यन्ति>प्रा० नच्चंति>अ० नच्चहिं)। नाचते-ती हैं। 'नाकनटीं नाचहिं करि गाना।' मा० १.३०९.४

नाचा : (१) नाच। नृत्य। 'जस काछिअ तस चाहिअ नाचा।' मा० २.१२७.८ (२) नाचइ। नाचता है। 'अनुहरि तालगतिहि नटु नाचा।' मा० २.२४१.४ (३) भूकृ०पुं०। नाच उठा, नृत्य कर चला। 'सिर-भुजहीन रुंड महि नाचा।' मा० ६.१०३.२

नाचि : पूकृ०। नाच कर। 'नाचि कूदि करि लोग रिझाई।' मा० ६.२४.२

नाची : (१) नाचि। 'मारु काटु धुनि बोलहिं नाची।' मा० ६.५२.२ (२) भूकृ०स्त्री०। नृत्य कर चली। 'तिय मिस मीचु सीस पर नाची।' मा० २.३४.५

नाचे : भूकृ०पुं०ब० । नृत्य कर उठे । 'सगुन सब नाचे ।' मा० १.३०४.३

नाचैं : नाचहिं । नाच रहे हैं । 'रुंडन के झुंड झूमि झूमि झुकरे से नाचैं ।' कवि० ६.३१

नाचो : नाच्यो । 'फिरि बहु नाच न नाच्यो ।' विन० १६३.१

नाच्यो : भूकृ०पुं०कए० (सं० नृत्त:>प्रा० नच्चिओ । नाच उठा, नृत्य किया । 'अब तव कालु सीस पर नाच्यो ।' मा० ६.९४.७

नाज : अनाज । 'सौंघे जग जल नाज ।' दो० १४९

नाजु : नाज+कए० । खाद्य पदार्थ । 'कंद मूल फल अमिय नाजू ।' गी० २.७.२

नाठी : भूकृ०स्त्री० (सं० नष्टा>प्रा० नट्ठा=नट्ठी) । नष्ट हो गयी । 'मुनि अति बिकल मोहँ मति नाठी ।' मा० १.१३५.५

नाठे : भूकृ०पुं० (सं० नष्ट>प्रा० नट्ठ=नट्ठय) । दुष्ट, विकृत । 'जूझिबे जोगु न ठाहरु नाठे ।' कवि० ६.२८

नात : सं०पुं० (सं० ज्ञातित्व>प्रा० णाइत्त) । सम्बन्ध, सगापा । 'होइ नात यह ओर निबाहू ।' मा० २.२४.६

नाता : नात । 'मानउँ एक भगति कर नाता ।' मा० ३.३५.४

नाती : सं०पुं० (सं० नप्तृ=नप्तृक>प्रा० नत्तिअ) । पुत्र अथवा पुत्री का पुत्र; पौत्र या दौहित्र । 'उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती ।' मा० ६.२०.३

नातें : नाते से, सम्बन्ध से । केहि नातें मानिऐ मिताई ।' मा० ६.२१.२

नाते : नाता+ब० । 'जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते ।' मा० २.६५.३

नातो : नाता+कए० । एक सम्बन्ध । 'नातो नेह जानियत ।' कवि० ७.१६६

नात्र : (सं० न+अत्र) इसमें नहीं । 'नात्र संशयं ।' मा० ३.४.२४

नाथ : सं०पुं० (सं०) । (१) स्वामी (२) पति । मा० २.६५.३

नाथा : नाथ । मा० १.२१०.१०

नाथु, थू : नाथ+कए० । एकमात्र स्वामी । 'चलन चहत बन जीवन नाथू ।' मा० २.५८.३

नाद : सं०पुं० (सं०) । शब्द, ध्वनि, रव, घोष । मा० २.६२.८

नादा : नाद । मा० २.१६०.३

नादू : नाद+कए० । 'सुनि न जाइ पुर आरत नादू ।' मा० २.८१.३

नाना : अव्यय (सं०) । अनेक, बहुत, विविध । 'जलचर थलचर नभचर नाना ।' मा० १.३.४

नानाकार, रा : वि० । विविध आकारों वाले । नानाकार सिलीमुख धाए ।' मा० ६.९१.२ 'नाना आयुध नानाकारा ।' मा० ३.१८.५

नानायुध : विविध आयुध । मा० ६.४०

नान्ह : वि०पुं० (सं० श्लक्षण>प्रा० लण्ह=नन्ह) । सूक्ष्म, महीन । 'करषि कातिबो नान्ह ।' दो० ४६२

नाप : सं०स्त्री० । परिमाण, माप । 'नाप के भाजन भरि जलनिधि जल भो ।' हनु० ७

नापे : भूकृ०पुं०ब० । परिमित किये । 'बल इनके पिनाक नीके नापे-जोखे हैं ।' गी० १.६५.२

नाभि, भी : सं०स्त्री० (सं०) । उदरस्थ गर्तविशेष । मा० १.१४७; ७.७६

नाभिकुंड : रावण की नाभि जिसके लिए प्रसिद्ध है कि भीतर अमृतकुण्ड था अतः वह मरता न था । मा० ६.१०२.५

नाम : सं०पुं० (सं० नामन्) । (१) संज्ञा—जातिवाचक, गुणवाचक, क्रियावाचक और द्रव्यवाचक शब्द । 'सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें ।' मा० १.२१.६ (२) व्यक्तिवाचक शब्द । 'समुझत सरिस नाम अरु नामी ।' मा० १.२१.१ (३) अर्थबोधक आन्तरिक शब्द=स्फोट । 'नाम रूप दुइ ईस उपाधी ।' मा० १.२१.२ (४) मन्त्र शब्द । 'नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी ।' मा० १.२२.१ (५) सूक्ष्म शब्द या शब्दतन्मात्र जिस पर चित्त एकाग्र कर योगी मधुमती भूमिका प्राप्त करता है । 'साधक नाम जपहिं लय लाएँ ! होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ।' मा० १.२२.४

नामकरन : सं०पुं० (सं० नामकरण) । बालक के नाम रखने का संस्कार जो जन्म से दस दिन पर होता है । मा० १.१९७.२

नामन्ह : नाम+संब० नामों । 'राम सकल नामन्ह तें अधिका ।' मा० ३.४२.८

नामा : (१) नाम । 'रामचरितमानस एहि नामा ।' मा० १.३५.७ (२) (समासान्त में) वि० । नाम वाला । 'भूप अनुज अरिमर्दननामा ।' मा० १.१७६.३ (३) नाम वाली । 'मय तनुजा मंदोदरि नामा ।' मा० १.१७८.२

नामानी : नाम+कब० (सं० नामानि) । बहुत नाम । मा० ७.५२.३

नामिनी : वि०स्त्री० । नाम वाली, नाम धारिणी । 'बहुनामिनी ।' विन० १८.२

नामी : वि०पुं० । नामवाला, नामधारी, संज्ञी । 'समुझत सरिस नाम अरु नामी ।' मा० १.२१.१

नामु, नामू : नाम+कए० । एकमात्र नाम । 'जपहिं नामु जन आरत भारी ।' मा० १.२२.५

नामैं : नाम को, नाम ही को । 'हर से हर निहार जपैं जाके नामैं ।' गी० ५.२५.२

नायउँ : आ०—भूकृ०+उए० । मैंने झुकाया । 'देखि चरन सिरु नायउँ ।' मा० ७.११० ख

नायउ : भूकृ०पुं०कए० । झुकाया । 'पुनि सिरु नायउ आइ ।' मा० ७.१० ख

नायक : सं०पुं० (सं०) । (१) मुख्य । 'गननायक'—१.२५७.७ (२) पदाधिकारी=प्रधान । 'दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक ।' मा० १.६०.६ (३) नेता, बड़ा, सम्मान्य । 'बिहग नायक गरुड़ ।' मा० १.१२० ख (४) संचालक, निर्देश, यूथप । 'पठइअ किमि सबही कर नायक ।' मा० ४.३०.२ (५) स्वामी, प्रभु । 'चराचर नायक ।' मा० ६.१०२.४ (६) प्रेमी (शृङ्गार रस का आलम्बन) । 'ऐसे तौ सोचहिं न्याय-निठुर नायक-रत सलभ खग कुरंग कमल मीन ।' गी० ५.८.२

नायका : नायक । मा० ३.२० छं० ३

नाये : नाए । झुकाए=तिरस्कृत किये । 'राजत नयन मीन मद नाये ।' गी० १.३२.४

नायो : नायउ । (१) झुकाया । 'आइ बिभीषन पुनि सिरु नायो ।' मा० ६.१०६.७ (२) उँडेल दिया । 'पावक जरत मनहुं घृत नायो ।' गी० ६.२.५

नारकी : वि०पुं० (सं० नारकिन्, नारकीय, नारकिक) । नरक-सम्बन्धी, नरक निवासी । मा० ६.२.८; १.३३५.६

नारद : सं०पुं० (सं०) । देवर्षि विशेष । मा० १.३.३

नारदी : सं०स्त्री० (सं०) । नारद का कर्म (नारदत्व); ज्ञानदायकत्वकर्म (नारं ज्ञानं ददातीति नारदः) । 'लखि नारद नारदी उमहि सुखु भा उर ।' पा०मं० १७

नारा : सं०पुं० (सं० नाल) । नाला, नदी के आकार का सोता । 'चहुं दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ।' मा० २.१३३.२

नाराच : सं०पुं० (सं०) । लोह-बाण । मा० ३.२० छं०

नाराचा : नाराचा । मा० ६.६८.४

नारायन : सं०पुं० (सं० नारायण) । (१) त्रिदेव-सृष्टिकर्ता परमात्मा विष्णु । (२) विष्णु के अवतारविशेष जो नर के भाई थे और वदरिकाश्रम में तप किया था—दे० नर । 'नर नारायन सरिस सुभ्राता ।' मा० १.२०.५

नारि : नारी । (१) स्त्री । मा० १.१६.२ (२) जन्मपत्री में स्त्री का सातवाँ स्थान । 'दारुन बैरी मीचु के बीच बिराजति नारि ।' दो० २६८ (३) ग्रीवा । 'जिअत न नाईं नारि चातक घन तजि दूसरहि ।' दो० ३०५ (४) स्त्री+ग्रीवा । 'नेह नारि नई है ।' गी० १.८५.३

नारिऊ : स्त्री भी । 'नर नारिऊ अ-रे ।' कवि० ७.१७४

नारिचरित : स्त्री का चरित्र जिसमें मौनधारण, रोदन, दैव को दोष लगाना, अपने को ही दोषी बताना, मिथ्योक्ति आदि सम्मिलित हैं+आठ अवगुण भी उसी में

आते हैं—साहस, मिथ्या, चपलता, माया, भय, अविवेक, अशौन और निर्दयता (मा० ६.१६.३)। 'नारि-चरित करि ढारइ आँसू।' मा० २.२७.७

नारिधरमु : (दे० धरमु)। एकमात्र स्त्री का धर्म=पातिव्रत। 'नारि धरमु कुलरीति सिखाई।' मा० १.३३६.१

नारिधर्म : स्त्री का धर्म=पातिव्रत। 'नारिधर्म पति देव न दूजा।' मा० ३.५.४

नारिन्ह : नारि+संब०। स्त्रियों (ने)। 'नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें।' मा० १.२४६.१

नारिमय : वि० (सं० नारीमय)। स्त्री-पूर्ण, स्त्रियों से परिव्याप्त। 'देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे।' मा० १.८५ छं०

नारियरु : सं०पुं०कए० (सं० नारिकेलम्>प्रा० नालिएरं>अ० नालिएरु)। नारियल का फल। 'टकटोरि कपि ज्यों नारियरु सिरु नाइ सब बैठत भए।' जा०मं०छं० ११

नारीं : नारी+ब०। स्त्रियाँ। 'मुदित असीस देहिं गुर नारीं।' मा० १.१९५.४

नारी : सं०स्त्री० (सं०)। (१) मानवी। 'सोह न बसन बिना बर नारी। मा० १.१०.४ (२) पत्नी। 'खोजइ सो कि अग्य इव नारी।' मा० १.५१.२ (३) (फा० नारी=दोजखी)=नारकी। पापी। 'ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी।' मा० ५.५९.६ (यहाँ स्त्री वाला अर्थ प्रसङ्ग-प्राप्त नहीं है)। (४) दे० नारि।

नारे : नारा+ब०। नाले, सोते। 'कंदर खोह नदीं नद नारे।' मा० २.६२.७

नाल : सं०पुं० (सं०)। डंठल, डांड़ी। 'कमल नाल।' मा० १.२५३.८

नावँ : (१) नाव में। 'तेल नावँ भरि नृप तनु राखा।' मा० २.१५७.१ (२) नाव पर। 'गुरहि सुनावँ चढ़ाइ बहोरि।' मा० २.२०२.८

नाव : सं०स्त्री० (सं० नौ>प्रा० नावा>अ० नाव)। नौका। मा० २.१००.३

√**नाव नावइ** : (सं० नमयति>प्रा० नावइ) आ०प्रए०। झुकाता है, नत करता है। 'बार-बार नावइ पद सीसा।' मा० ४.७.१४

नावउँ : आ०उए०। झुकाता हूं। 'आश्रम जाइ जाइ सिरु नावउँ।' मा० ७.११०.१०

नावत : वकृ०पुं०। (१) झुकाता, झुकाते। 'सुर नर मुनि सब नावत सीसा।' मा० १.५०.६ (२) उँडेलते, ढरकाते। 'बिगरत मन संन्यास लेत, जल नावत आम घरो सो।' विन० १७३.४

नावरि : सं०स्त्री० (सं० नौटिका>प्रा० नावडिआ>अ० नावडी=नावडि)। छोटी नाव, क्रीडा-नौका। 'जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं। मा० ६.८८.६

नावहिं : आ०प्रब० (अ०)। झुकाते हैं। 'बार-बार सिर नावहिं।' मा० ६.१०६

नावा : (१) नाव । 'भवसागर···दृढ नावा । मा० ७.५३.३ (२) भूकृ०पुं० । झुकाया । 'मैं सप्रेम मुनिपद सिरु नावा ।' मा० ७.११३.१४

नावैं : नावहिं । 'दुखी दिन दूरिहि तें सिर नावैं ।' कवि० ७.२

नावौं : नावउँ । (१) नत करता हूं । 'हाथ जोरि करि बिनय सबहि सिर नावौं ।' जा०मं० २ (२) उँड़ेल दूँ । 'आनि सुधा सिर नावौं ।' गी० ६.८.१

नास : (१) सं०पुं० (सं० नाश>प्रा० नास) । मृत्यु । 'तासु नास कल्पांत न होई ।' मा० ७.५७.१ (२) निवारण, लोप । 'ब्याधि नास ।' मा० ७.७४ क (३) नासइ—दे०√नास । (४) आ०—प्रार्थना—मए० । तू नष्ट कर । 'आपु न नास आपने पोषे ।' गी० ५.१२.२ (५) (समासान्त में) नाशकर्ता । 'सत्य संकल्प सुरत्रास-नासं ।' विन० ५१.४

√नास नासइ : (१) (सं० नाशयति>प्रा० नासइ) आ०प्रए० । नष्ट करता-ती है । 'जोग-सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास ।' मा० २.२९ (२) (सं० नश्यति>प्रा० नासइ) नष्ट होता है ।

नासहिं : आ०प्रब० (अ०) । नष्ट होते हैं । 'राम कृपाँ नासहिं सब रोगा ।' मा० ७.१२२.५

नासहि : आ०—आज्ञा—मए० (सं० नाशय>प्रा० नासहि) । तू नष्ट कर । 'जनि जल्पना करि सुजसु नासहि ।' मा० ६.९० छं०

नासा : (१) नास । 'जौं लगि करौं निसाचर नासा ।' मा० ३.२४.२ (२) सं०स्त्री० (सं०) । नासिका । 'केइँ तव नासा कान निपाता ।' मा० ३.२२.२ (३) नासइ । नष्ट करता है । 'जिमि रबि निसि नासा ।' मा० १.२४.५ (४) भूकृ०पुं० । नष्ट हो गया । 'उयउ भानु बिनु श्रम तम नासा ।' मा० १.२३९.४ (५) नष्ट कर दिया । 'पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा ।' मा० २.१६१.६

नासिक : नासिका ।

नासिका : (१) सं०स्त्री० (सं०) । नाक=अङ्गविशेष । मा० ५.५४.४ (२) घ्राणेन्द्रिय । 'बास नासिका बिनु लहै ।' वैरा० ३

नासिबे : भकृ०पुं० । नष्ट करने । 'जैसे तम नासिबे को चित्र के तरनि ।' विन० १८४.१

नासी : भूकृ०स्त्री० । नष्ट हुई, मिटी । 'जनित बियोग बिपति सब नासी ।' मा० ७.६.३

नासू : नास+कए० । विनाश, अन्त । 'नाथ न होइ मोर अब नासू ।' मा० १.१६५.७

नासै : नासइ । मिट सकता है । 'दुख बिनु हरि कृपा न नासै ।' विन० ८१.४

नाह् : नाथ (प्रा०) । स्वामी, पति । मा० २.१४०.३

नाहर : सं०पुं० (फा०) । सिंह, चीता, व्याघ्र ।

नाहरनि : नाहर+संब० । व्याघ्रों । 'देखिहैं हनुमान गोमुख नाहरनि के न्याय ।' विन० २२०.७

नाहरु : नाहर+कए० । अद्वितीय सिंह । कृ० १८

नाहरू : सं०पुं० (सं० स्नायु-रुज्>प्रा० ण्हारुअ) । नसों में होने वाला रोग-विशेष जिसमें से रक्त धारा समय-समय पर बह चलती है और उस अङ्ग की नस लम्बी बढ़ती जाती है । गोरोचन से रक्तधारा का शमन होता है (और गोरोचन गाय के पेट से निकलता है) । 'मारसि गाय नाहरू लागी ।' मा० २.३६.८ कुछ विद्वान् 'नाहरू' का सम्बन्ध 'नाहर' से मानकर पालित सिंह के लिए गाय मारने का भी अर्थ लेते हैं; परन्तु अधिकतर पाठ 'नहारू' मिलता है जो प्रा० 'ण्हारू' के समीप है तथा 'नेहरुआ' का प्रयोग भी गोस्वामी जी ने इसी अर्थ में किया है । वस्तुतः सं० स्नायुरूप>प्रा० ण्हाउरूअ>ण्हारू>नहारू=नाहरू से संगति अधिक योग्य है । अब नाहरू का तात्पर्य ताँत से है जो बकरे आदि के मारने से सुलभ है, तदर्थ गोवध करना जघन्य है—अल्प कार्य हेतु गोहत्या महापातक है ।

नाहा : नाह । मा० ६.८.८

नाहिं : नहिं । मा० १.९५

नाहिन नाहिन : नहीं ही, कभी नहीं, कथमपि नहीं, निश्चय ही नहीं । 'नाहिन रामु राज के भूखे ।' मा० २.५०.३ (इसका अन्तिम घटक 'न' निश्चयार्थक है जो 'जाओ न, कहो न' आदि में प्रयुक्त मिलता है) ।

नाहिनै नाहिनै : नाहिन । 'ज्ञान गाहक नाहिनै ब्रज मधुप अनत सिधारि ।' कृ० ५३

नाहीं : नाहिं । मा० १.८.४

नाहु, हू : नाह+कए० (अ०) । स्वामी, पति । मा० २.१४५; १.९७.७

✓निंद निंदइ : (सं० निन्दति>प्रा० निंदइ) आ०प्रए० । तिरस्कृत करता है । 'सरद सुधा सदन छबिहि निंदै बदन ।' गी० १.८२.२

निंदक : (१) वि०पुं० (सं०) । निन्दा करने वाला-वाले, अपवादकर्ता । 'सिय निंदक अघ ओघ नसाए ।' मा० १.१६.३ (२) तिरस्कार करने वाला-वाले । 'सरद चंद निंदक मुख नीके ।' मा० १.२४३.२

निंदकु : निंदक+कए० । अद्वितीय निन्दाकर्ता । 'सिव साधु निंदकु मंदमति ।' पा०मं०छं० ८

निंदत : वकृ०पुं० । निन्दा करता-करते, अभिभूत करता-करते । 'कलस मनहुं रबि ससि दुति निंदत ।' मा० ७.२७.७

निंदति : वकृ०स्त्री० । निन्दा करती, दोष देती । 'निसिहि ससिहि निंदति बहु भांती ।' मा० ६.१००.३

निंदरी : निदरि । निरादर करके, अवहेलना करके । 'चलेसि मोहि निंदरी ।' मा० ५.४.२

निंदहिं : आ०प्रब० । (सं० निन्दन्ति>अ० निंदहिं) । निन्दा करते हैं । 'निंदहिं जोग बिरति मुनि ग्यानी ।' मा० २.२७४.१

निंदा : सं०स्त्री० (सं०) । गर्हा, अपवाद, तिरस्कार । मा० १.३९.४

निंदित : वि०भूकृ० (सं०) । निन्दापात्र । 'जो निंदत निंदित भयो बिदित बुद्ध अवतार ।' दो० ४६४

निंदैं : निंदहिं । 'निंदैं सब साधु ।' कवि० ७.१२१

निंदै : निंदइ ।

निंद्य : वि० (सं०) । निन्दनीय, निन्दा योग्य । विन० ५२.८

निःकंप : वि० (सं० निष्कम्प) । अचल, स्थिर । विन० ५६.५

निःकाज : क्रि०वि० (सं० निष्कार्य) । निष्प्रयोजन, व्यर्थ । 'निःकाज राज बिहाय नृप इव सपन कारागृह पर्‌यो ।' विन० १३६.२

निःकाम : वि० (सं० निष्काम) । कामनारहित, फलेच्छारहित । 'भजनु करहिं निःकाम ।' मा० ३.१६

निःप्राप्य : अप्राप्य । विन० ५७.२

निःशुंभ : (सं० निशुम्भ) । शुम्भ असुर का अनुज जिसे दुर्गा ने मारा था । विन० १५.४

निःसंक : निसंक । हनु० १

निःसरित : भूकृ० (सं० निःसृत) । उद्‌भूत, आविर्भूत । 'चरित सुरसरित कबि मुख्य गिरि निःसरित ।' विन० ४४.७

निःसीम : वि० (सं०) । सीमातीत, भेदरहित । विन० ५६.५

√निअरा निअराइ, ई : (सं० निकटायते>प्रा० निअडाइ) आ०प्रए० । निकट आता है-आती है । 'तेहि कि मोह ममता निअराई ।' मा० २.२७७.२

निअराइ : पूकृ० । निकट आकर । 'रहे भूमि निअराइ ।' मा० ३.४०

निअराइन्हि : आ०—भूकृ०+प्रब० । वे निकट जा पहुंचे । 'सिय नैहर जनकौर नगर निअराइन्हि ।' जा०मं० १२०

निअराई : (१) निअराइ । निकट पहुंचता है । 'एहि बिधि भरत नगर निअराई ।' मा० २.१५८.३ (२) निअरानी । 'तुरतहिं पंचबटी निअराई ।' मा० ३.१२.८

निअराएँ : क्रि०वि० । निकट पहुंचे हुए (स्थिति में) । 'बरषहिं जलद भूमि निअराएँ । मा० ४.१४.३

निअरान, ना : भूकृ०पुं० । निकट आ पहुंचा । 'ताहि कालु निअराना ।' मा० ६.३५.६

निअरानि, नी : भूकृ०स्त्री० । निकट पहुंची । 'जाइ नगर निअरानि बरात बजावत ।' पा०मं० १०१

निअरानु : निअरान+कए० । 'आइ कालु निअरानु ।' रा०प्र० ५.६.६

निअराने : भूकृ०पुं०ब० । निकट पहुंचे । 'आश्रम निकट जाइ निअराने ।' मा० २.२३५.१

निअराया : निअराना । निकट आ गया । 'रिष्यमूक परबत निअराया ।' मा० ४.१.१

निअरावा : निअराया । निकट पहुंच गया । 'मैं अभिमानी रबि निअरावा ।' मा० ४.२८.३

निआउ : न्याउ । 'होइहि धरम निआउ ।' रा०प्र० ६.६.२

निकंद : सं०पुं० । निर्मूलन, विनाश । 'खल बृंद निकंद महाकुसलं ।' मा० ६.१११.१०

निकंदन : वि०पुं० । निर्मूलनकर्ता, विनाशक । 'नामु सकल कलि कलुष निकंदन ।' मा० १.२४.८

निकंदय : आ०—प्रार्थना—मए० (सं०) । तू निर्मूल कर । 'रघुनंद निकंदय द्वंद्वघनं ।' मा० ७.१४.२०

निकंदिनि, नी : वि०स्त्री० । निर्मूल-कारिणी । 'असुर सेन सम नरक निकंदिनि ।' मा० १.३१.६

निकट : (१) क्रि०वि० (सं०) । समीप में । 'एहि सर निकट न आव आभागा ।' मा० १.३८.३ (२) वि० । समीपस्थ ।

निकर : सं०पुं (सं०) । समूह । मा० १.२४.८

निकरन्हि : निकर+संब० । समूहों (ने) । 'राम-सर-निकरन्हि हए ।' मा० ६.८८ छं०

निकर्‌यो : भूकृ०पुं०कए० । निकला । 'नरक निदरि निकर्‌यो हौं ।' विन० २६७.२

निकसत : वकृ०पुं० (सं० निष्कसत्>प्रा० निक्कसंत) । (१) निकलता-ते । 'धोखेउ निकसत राम ।' वैरा० ३७ (२) निकलते ही । 'सबै सुमन बिकसत रबि निकसत ।' गी० १.१.१०

निकसहिं : आ०प्रब० (सं० निष्कसन्ति>प्रा० निक्कसंति>अ० निक्कसहिं) । निकलते हैं । 'गाँव निकट जब निकसहिं जाई ।' मा० २.११४.१

निकसि : पूकृ० । निकल कर । 'निकसि बसिष्ठ द्वार भये ठाढ़े ।' मा० २.८०.१

निकसे : भूकृ०पुं०ब० । निकले, प्रकट हुए । 'निकसे जनु जुग बिमल बिधु ।' मा० १.२३२

निकाईं : निकाई से, भलाई में । 'राम निकाईं रावरी है सबही को नीक ।' मा० १.२९ ख

निकाई : (दे० नीक) सं०स्त्री० । स्वच्छता, पवित्रता, मनोहरता । 'बनइ न बरनत नगर निकाई ।' मा० १.२१३.१ (२) भलाई, अच्छाई । 'भलो कियो खल को, निकाई सो नसाई है ।' कवि० ७.१८१

निकाज : वि० (सं० निष्कार्य>प्रा० निक्कज्ज) । निकम्मा, व्यर्थ (तुच्छ) । 'निरबल निपट निकाज ।' दो० ५४४

निकाम, मा : क्रि०वि० (सं० निकामम्) । (१) अत्यधिक, पर्याप्त । 'निकाम स्याम सुंदरं ।' मा० ३.४ छं० २ (२) यथेष्ट । 'देहिं केकइहि खोरि निकामा ।' मा० २.२०२.३

निकाय : सं०पुं० (सं०) । समूह, बहुत, झुंड के झुंड । 'ऐसे नर निकाय जग अहहीं ।' मा० ६.६.८

निकाया : निकाय । मा० १.१८३.४

निकारहिं : आ०प्रब० । निकाल देते हैं । 'कुलवंति निकारहिं नारि सती ।' मा० ७.१०१.३

निकारि : पूकृ० । निकाल कर । मा० ६.८५ छं०

✓**निकास निकासइ** : (सं० निष्कासयति>प्रा० निक्कासइ) आ०प्रए० । निकालता है । 'तेहि बहु बिधि भासइ देस निकासइ ।' मा० १.१८३ छं०

निकासौं : आ०उए० । निकालूं । 'कहु केहि नृपहि निकासौं देसू ।' मा० २.२६.२

निकिष्ट : वि० (सं० निकृष्ट) । अधम, नीच (उत्कृष्ट का विलोम) । मा० ३.५.१४

निकेत : सं०पुं० (सं०) । (१) घर, आवास । मा० २.३२० (२) शरीर=जीव का भोगायतन । (३) चिन्ह, उपस्थ इन्द्रिय । 'परसै बिना निकेत ।' वैरा० ३

निकेता : निकेत । मा० ४.१४.९

निकेतु : निकेत+कए० । घर । 'जरत निकेतु, धावौ धावौ ।' कवि० ५.६

निकैया : निकाई । सुन्दरता । 'नखसिख निरखि निकैया ।' गी० १.९.२

निखंग : निषंग । गी० १.५३.२

निगड़ : सं०पुं० (सं०) । लोहे का कड़ा या शृंखला जो कैदी को पहनाते हैं=बेड़ी । 'बांध्यो हौं करम जड़ गरब गूढ़ निगड़ ।' विन० ७६.२

निगदित : भूकृ०पुं० (सं०) । पठित, पाठ में आया, कहा या पढ़ा गया । 'रामायणे निगदित ।' मा० १ श्लोक ७

निगम : सं०पुं० (सं०)। वेद तथा वैदिक परम्परा के ग्रन्थ:—संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद्, आरण्यक तथा वेदाङ्ग (ज्योतिष, कल्प, छन्द:, निरुक्त, व्याकरण और शिक्षा)। मा० १.१२

निगमनि : निगम+संब०। निगमों (ने)। 'साखि निगमनि भने।' विन० ५६०.२

निगमागम : निगम+आगम। मा० १.६.६

निगमादि : निगम तथा पुराण एवं दर्शनशास्त्र। मा० ७.८६.१

निगमु : निगम+कए०। एकमात्र वेदप्रमाण। 'महिमा निगमु नेति कहि कहई।' मा० १.३४१.८

निगानाँग : वि० (सं० नग्नाङ्ग ?)। दिगम्बर, पूर्णतया निर्वसन। 'निगानाँग करि नितहिं नाचइहि नाच।' बर० २४

निगूढ़ा : वि०स्त्री० (सं०)। गुप्त, रहस्यपूर्ण (दुरूह)। 'समुझी नहिं हरि गिरा निगूढा।' मा० १.१३३.३

निगोड़ी : वि०स्त्री०। गवाँर, असभ्य, नीच। 'छलिन की छोड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति-पाँति।' कवि० ७.१८

निग्रह : सं०पुं० (सं०)। निरोध, दण्ड। 'सागर निग्रह कथा सुनाई।' मा० ७.६७.८ वैष्णव दर्शन में निग्रह अथवा निरोध प्रतीक है। जीव संसारोन्मुख चित्तवृत्तियों का निरोध करे, एतदर्थ भगवान् अवतार-लीलाओं द्वारा निग्रह का उपदेश करते हैं। निग्रह ही लीलाओं का प्रयोजन है। सागर-निग्रह से संसार-निरोध का प्रतीकार्थ आता है जिससे अविद्यारूप रावण के विनाश का मार्ग प्रशस्त होता है।

निघटत : (१) घटत, चुकता, क्षीण होता। 'जिमि जलु निघटत सरदप्रकासे। मा० २.३२५.३ (२) घटते ही। 'निघटत नीर मीन गन जैसें।' मा० २.१४७.८

निघटि : पूकृ०। क्षीण या अल्प हो (कर)। 'निघटि गये सुभट, सतु सब को छूट्यो।' कवि० ६.४६

निचाइहि : निचाई=नीचता में ही, अधमाचरण से ही। 'लहइ निचाइहि नीचु।' मा० १.५

निचाई : सं०स्त्री० (सं० नीचता>प्रा० निच्चया)। अधमता, दुष्टता। 'नीच निचाई नहिं तजै।' दो० ३३७

निचोइ : पूकृ० (सं० निश्चोत्य>प्रा० निच्चोइअ>अ० निच्चोइ)। निचोड़ कर, सार निकाल कर। 'कहे बचन बिनीत प्रीति प्रतीति नीति निचोइ।' गी० ५.५.५

निचोयो : भूकृ०पुं०कए०। निचोड़ा, रस निकालने का प्रयास किया। 'फिर फिरि बिकल अकास निचोयो।' विन० २४५.३

निचोर : सं०पुं० (सं० निश्चोत>प्रा० निच्चोड) । निचोड़, सार, निष्कर्ष । 'घन दामिनि बरन तनु रूप के निचोर हैं ।' गी० १.७३.२

निचोरि : पूकृ० । निचोड़ कर, सार निकाल कर । 'बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि ।' मा० १.१०९

निचोल : सं०पुं० (सं०) । परिधान । 'नील निचोल छाल भइ ।' पा०मं० ११२

निछावरि : नेवछावरि । मा० १.२९२

निज : वि० (सं०) । स्वकीय, अपना । मा० १.२.११ (२) स्व, स्वयम् ।

निजतंत्र : स्वतन्त्र । (जिसे अपने बाहर किसी की अपेक्षा न हो) । 'निजतंत्र श्री रघुकुलमनी ।' मा० १.५१ छं०

निजात्मक : (दे० क) अपनी आत्मा के । 'ते जड़ जीव निजात्मक घाती ।' मा० ७.५३.६

निजानंद : आत्मानन्द, आत्मसाक्षात्कार-सुख । मा० १.१४४.५

निजु : निज+कए० । स्वयम् । 'प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ।' मा० २.७२.५

निजै : अपना ही । 'करत सुभाउ निजै ।' विन० ८९.१

निठुर : वि० (सं० निष्ठुर>प्रा० निट्ठुर) । कठोर, निर्दय, क्रूर । मा० २.६८.६

निठुरता : सं०स्त्री० (सं० निष्ठुरता) । कठोरता, क्रूरता, निर्दय व्यवहार । मा० २.२४

निठुराई : निठुरता । मा० २.४१.४

निडर : वि० (सं० निर्दर>प्रा० निडर) । निर्भय । मा० १.९५

नित : क्रि०वि० (सं० नित्य) । सदा, निरन्तर । मा० १.५९.१

नितहिं, हीं : नित्य ही । 'अति दीन मलीन दुखी नितहीं ।' मा० ७.१४.११

निति : (१) नीति (प्रा० निति) । 'बिरह बिबेक धरम निति सानी ।' मा० ६.१०९.३ (२) (नीति से, नियमतः) के लिए । 'मीन जिअन निति बारि उलीचा ।' मा० २.१९१.८; १.२०९.४; ७.१२१.१९

नितु : नित+कए० । सदा । 'राम सों सामु किएँ नितु है हितु ।' कवि० ६.२८

नितै : नित्य ही । 'नाम द्वै राम के लेत नितै हीं ।' कवि० ७.१०२

नित्य : (१) क्रि०वि० । सदैव । 'राम रमेस नित्य भजामहे ।' मा० ७.१३ छं० ४ (२) शाश्वत, अविनाशी । 'जीव नित्य ।' मा० ४.११.५ (३) सं०पुं० । शौच, स्नानदि=दैनिक कार्य । 'नित्य निबहि गुरहि सिर नाए ।' मा० १.२२७.१

नित्यकरम : सं०पुं० (सं० नित्यकर्म) । अनिवार्य दैनिक क्रिया—स्नान, सन्ध्योपासन आदि; नैमित्तिक एवं काम्य कर्मों के अतिरिक्त वे कर्म जिनका उल्लङ्घन अविहित है । मा० २.२७४.२

नित्यक्रिया : सं०स्त्री० (सं०) नित्यकरम। 'नित्यक्रिया करि गुरु पहिं आए।' मा० १.२३९.८

√**निदर, निदरइ** : (निरादर करना, उपेक्षा या अवहेला करना) आ०प्रए०। अनादर करता-ती है। 'सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाइ।' मा० २.२८८.८

निदरत : (१) वकृ०पुं०। अनादर करता-ते। (२) क्रियाति०पुं०ए०। 'अघ औगुन निदरत को।' गी० ६.१२.१-२

निदरति : वकृ०स्त्री०। अनादर करती, आदर नहीं करती। 'सुचि सुषमा…… सोमदुति निदरति।' गी० ७.१७.११

निदरहिं : आ०प्रब०। अनादर करते हैं, कम करके मानते हैं। 'नर नारि निदरहिं नेहु निज।' मा० २.२५१ छं०

निदरहुं : आ०—संभावना—प्रए०। चाहे अनादर करें। 'कै निदरहुं कै आदरहुं सिंघहि स्वान सिआर।' दो० ३८१

निदरि : पूकृ०। उपेक्षित कर, तृणवत् समझकर। 'सानुज निदरि निपातउँ खेता।' मा० २.२३०.७

निदरे : भूकृ०पुं०ब०। अनाहत किये, पिछाड़ दिये। 'निदरे कोटि कुलिस एहिं छाती।' मा० २.२००.४

निदरेसि : आ०—भूकृ०पुं०+प्रए०। उसने अनादर किया। 'जग जय मद निदरेसि हरु।' पा०मं० २६

निदरौं : आ०उए०। अनादर करता हूं। 'गुन गिरिसमरत तें निदरौं।' विन० १४१.४

निदान, ना : सं०पुं० (सं० निदान)। (१) मूल कारण। (२) अन्त, फल, परिणाम। 'बवै सो लवै निदान।' वैरा० ५ 'जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।' मा० ५.४०.६ (३) नाश (अन्त)। 'देहि अगिनि जनि करहि निदाना।' मा० ५.१२.११

निदानु, नू : निदान+कए०। (१) मूल कारण। 'तात सुनावहु मोहि निदानू।' मा० २.५४.८ (२) अन्त, नाश। काहे करसि निदानु।' मा० २.३६

निदेस, सा : सं०पुं० (सं० निदेश, निर्देश)। आज्ञा, संकेत। 'सोइ करेहु जेहि होइ निदेसा।' मा० ७.५९.८

निदेसू : निदेस+कए०। निर्देश, आदेश। मा० २.३०६.२

निद्रा : सं०स्त्री० (सं०)। सुषुप्ति। मा० १.१७०.२

निधन : सं०पुं० (सं०)। मरण। 'बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा।' मा० ५.१९.३

निधरक : वि०+क्रि०वि०। बेरोकटोक, निःशङ्क, निरातङ्क, निर्भय, बेधड़क। 'निधरक बैठि कहइ कटु बानी।' मा० २.४१.१

निधान : सं०पुं० (सं०) । (१) आकर, खानि । 'भूतल भूरि निधान ।' मा० १.१ (२) कोष, धनागार । 'अगुन अनूपम गुन निधान सो ।' मा० १.१९.२

निधाना : निधान । मा० १.४४.२

निधानु : निधान+कए० । एकमात्र आकर या कोष । मा० २.५८; १.२७८

निधि : सं०स्त्री० (सं०पुं०) । (१) आकर, कोष, खानि=निधान । मा० ७.९७ ख (२) आश्रय—जैसे, जलनिधि आदि (३) समुद्र । 'भव निधि तर नर बिनहिं प्रयासा ।' मा० ७.५५.९ (४) दे० नवनिधि । 'बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने ।' मा० २.११८.७

निनारी : वि०स्त्री० । पृथक् विशिष्ट, विलक्षण । 'अवधपुरी प्रतिभुवन निनारी ।' मा० ७.८१.६

निनारे : वि०पुं०ब० । विलक्षण, अलग, असम्पृक्त, विभक्त । 'उर बिहरत छिन छिन होत निनारे ।' कृ० ५६

निपट : क्रि०वि० । नितान्त, सीमान्त तक, अत्यन्त । 'बिबरन भयउ निपट नरपालू ।' मा० २.२९.७

निपटहिं, हि : नितान्त ही, केवल । 'निपटहिं द्विज करि जानहि मोही ।' मा० १.२८३.१ 'निपटहि डाँटति निठुर ज्यों ।' कृ० १४

निपात : सं०पुं० (सं०) । पतन, विनाश । 'मन जात किरात निपात किए ।' मा० ७.१४.७

निपातउँ : आ०उए० । मार गिराता हूं । 'सानुज निदरि निपातउँ खेता ।' मा० २.२३०.७

निपातत : वकृ०पुं० । ढहाता-ते । 'रूख निपातत खात फल ।' रा०प्र० ५.५.१

निपाता : भूकृ०पुं० । (१) मार गिराया । 'रथ तुरंग सारथी निपाता ।' मा० ६.९५.२ (२) काट डाला । 'जिन्ह कर नासा कान निपाता ।' मा० ६.५.९

निपाति : पूकृ० । ढहाकर, ध्वस्त करके । 'ताहि निपाति महाधुनि गर्जा ।' मा० ५.१८.८

निपाते : भूकृ०पुं०ब० । ढहा दिये, मार गिराये । 'जातुधान जूथप निपाते बात-जात हैं ।' कवि० ६.४१

निपुन : वि० (सं० निपुण) । (१) दक्ष, कुशल । 'परुसन लागे निपुन सुआरा ।' मा० १.९९.७ (२) विवेकशील, अवसरोचित कार्य-कुशल । 'बुद्धि बल निपुन कपि ।' मा० ५.१७ (३) सतर्क, सावधान । 'नयन निपुन रखवारे ।' कृ० ५६ (४) सार ग्राही, द्रष्टा । 'तत्त्वबिचार निपुन भगवाना ।' मा० १.१४२.७ (५) तात्त्विक, तीव्र एवं यथार्थ । 'नेम पेम निज निपुन नबीना ।' मा०

२.२३४.३ (६) लोक-शास्त्र आदि के निरीक्षण से उचितानुचित का ज्ञाता। 'नीति निपुन सोइ परम सयाना।' मा० ७.१२७.३

निपुनता : सं०स्त्री० (सं० निपुणता)। कौशल, दक्षता, मर्मज्ञता आदि। 'निपुनता न परै कही।' मा० १.६४ छं०

निपुनाई : निपुनता। मा० ६.२४.२

निफन : वि० (सं० निष्पन्न>प्रा० निष्फन्न)। सम्पन्न (क्रि०वि०—सम्पन्न रीति से=पूर्णत:)। 'जोते बिनु बए बिनु निफन निराए बिनु, सुकृत सुखेत सुख सालि फूलि फरि गे।' गी० २.३२.२

निफल : वि० (सं० निष्फल>प्रा० निष्फल)। व्यर्थ, बेकार। 'निफल होहिं रावन सर कैसें।' मा० ६.६१.६

निबरत : वकृ०पुं० (सं० निर्वृण्वत्>प्रा० निव्वरंत)। निर्वृत होता, शान्ति पाता। 'काल कला कासीनाथ कहें निबरत हों।' कवि० ७.१६५

निबर्‍यो : भूकृ० पुंकए० (सं० निर्वृत:>प्रा० निव्वरिओ)। निर्वृत हुआ, शान्ति-लाभ किया। 'प्रभु सों गुदरि निबर्‍यो हौं।' विन० २६६.४

निबल : वि० (सं० निर्बल>प्रा० निब्बल)। बलहीन। 'प्रभु समीप छोटे बड़े रहत निबल बलवान।' दो० ५२७

निबह : सं०पुं० (सं० निवह)। समूह, श्रेणी। 'मनहुं उडुगन-निबह आए मिलन तम तजि द्वेषु।' गी० ७.६.४

√**निबह, निबहइ** : (सं० निर्वहति>प्रा० निव्वहइ—निभना, यथावत् परिणाम तक पहुंचना, सफलता तक जाना, सम्पन्न होना, पूरा पड़ना) आ०प्रए०। निभता है, पूरा पड़ता है, सम्पन्न हो पाता है। 'सखा धरम निबहइ केहि भांती।' मा० ५.४६.५

निबहति : वकृ०स्त्री०। निभती, बात बन जाती, पूर्ति होती। 'रावरे निबाहे सबही की निबहति।' विन० २४६.१

निबहते : क्रियाति०पुं०ब०। तो निभ जाते।' लक्ष्य पा जाते। 'तौ···हम केहि भांति निबहते।' विन० ६७.३

निबहहिंगे : आ०भ०पुं०प्रब०। निभेंगे, लक्ष्य या गन्तव्य तक पहुंचेंगे। 'मेरे बालक कैसे धौं मग निबहहिंगे।' गी० १.६६.१

निबहा : भूकृ०पुं०। निभ गया, पूरा-खरा उतर गया। 'प्रेम नेम निबहा है।' गी० २.६४.५

निबही : भूकृ०स्त्री०। निभ गई, पूरी पड़ गयी। 'राम रुख लखि सबकी निबही।' गी० ७.३७.२

निबहे : भूकृ०पुं०ब०। निभे, पूर्ति पा गये। 'कैसे निबहे हैं, निबहैंगे।' गी० २.३४.३

निबहैंगे : निबहहिंगे। गी० २.३४.३

निबहै : निबहइ। निभ जाय। 'निबहै सब भाँति सनेह सगाई।' कवि० ७.५८

निबहैगे : आ०भ०पुं०प्रए०। निभेगा, लक्ष्य प्राप्त करेगा। 'तुलसी पै नाथ के निबाहेई निबहैगो।' विन० २५६.४

निबहौंगो : आ०भ०पुं०उए०। निभ जाऊँगा, पार पा जाऊँगा, अन्त तक पहुंच जाऊंगा। 'अवधि लौं बचन पालि निबहौंगो।' गी० २.७७.३

निबह्यो : भूकृ०पुं०कए०। निभ गया, पूरा पड़ा। 'कछु न काज निबह्यो है।' गी० ४.२.२

निबाह : सं०पुं० (सं० निर्वाह>प्रा० निव्वाह)। निभाव, परिणाम पर्यन्त कार्य की निष्पत्ति। 'बिधि बस होइ निबाह।' रा०प्र० ३.७.४ (२) योगक्षेम, गुजारा। (३) दे० निबाहु।

/निबाह निबाहइ : (सं० निर्वाहयति>प्रा० निव्वाहइ=√निबह+प्रेरणा)। आ०प्रए०। सम्पन्न करता है, परिणाम तक पहुंचता है। पूरा करता है।

निबाहत : वकृ०पुं०। निर्वाह करता-ते; पूर्णता देता-ते। 'स्वातिहू निदरि निबाहत नेम।' दो० २८६

निबाहनिहारा : वि०पुं०। निभाने वाला, छोर तक यथावत पहुंचाने वाला। 'सीलु सनेहु निबाहनिहारा।' मा० २.२४.२

निबाहब : भूकृ०पुं०। निभाना, परिणाम तक पहुंचाना। 'नेह निबाहब नीका।' दो०४ ६६

निबाहा : भूकृ०पुं० (सं० निर्वाहित>प्रा० निव्वाहिअ)। निभाया, अन्त तक उचित रीति से पहुंचाया। 'जेहिं तनु परिहरि प्रेमु निबाहा।' मा० २.१७१.६

निबाहि : पूकृ० (सं० निर्वाह्य>प्रा० निव्वाहिअ>अ० निव्वाहि)। पूरा करके, सम्पन्न करके। 'नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए।' मा० १.२२७.१

निबाहिए : आ०कवा०प्रए०। निभाया जाए, अन्त तक पूर्ण किया जाए। 'तेहि नातें नेह नेमु निज ओर तें निबाहिए।' कवि० ७.७६

निबाहिब : भकृ०पुं० (सं० निर्वाहयितव्य>प्रा० निव्वाहिअव्व)। निर्वाह करना। 'तहँ तहँ राम निबाहिब नाथ सनेहु।' बर० ६६

निबाहिबे : निबाहिब (का रूपान्तर) (प्रा० निव्वाहिअव्वय)। निर्वाह करने, पूर्ति देने। 'अपनी निबाहिबे, नृप की निरबही है।' गी० २.४१.३

निबाहीं : भूकृ०स्त्री०ब०। निभा दीं, पूर्ण कर दीं। 'प्रभु प्रसाद सिवँ सबइ निबाहीं।' मा० २.४.४

निबाही : (१) भूकृ०स्त्री०। पूर्ण की। 'नाम के प्रताप बाप आजु लौं निबाही नीकें।' कवि० ७.८० (२) निबाहि। चुकता करके, पूरा कर। 'आजु बयरु सब लेउँ निबाही।' मा० ६.६०.७

निबाहु, हू : (क) निबाह+कए० । (१) सफलता, कार्य की पूर्ति । 'हठि कि न होइ निबाहु ।' मा० १.१५६ (२) पहुंच, गति । 'जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू ।' मा० १.१५७.५ (३) निस्तार, सत्परिणाम तक पहुंच । 'उघरहिं अन्त न होइ निबाहू ।' मा० १.७.६ (४) परिणाम तक यथावत् चलना । 'होइ नात यह ओर निबाहू ।' मा० २.२४.६ (ख) आ०—आज्ञा—मए० । तू निभा । 'राम नाम पर तुलसी नेम निबाहु ।' बर० ५७

निबाहें : निभाने से, परिणाम पर्यन्त पूर्णता देने से । 'कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहें । तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें ।' मा० २.२०५.५

निबाहे : निबाहें । 'प्रेम नेम के निबाहे चातक सराहिए ।' विन० १७८.२ (२) भूकृ०पुं०ब० । निर्वाह किए । 'रावरे निबाहे सबही की निबहति ।' विन० २४६.१

निबाहेई : निभाने से ही । 'तुलसी पै नाथ के निबाहेई निबहैगो ।' विन० २५९.४

निबाहेउ : भूकृ०पुं०कए० । पूरा कर दिया । 'कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू ।' मा० २.२०२.५

निबाहेहु : आ०—भ०+आशा+मब० । तुम पूरा करना । 'ओर निबाहेहु भायप भाई ।' मा० २.१५२.५

निबाहैं : (१) आ०प्रब० । निभाते हैं, पूर्ति देते हैं । 'भरत······बुधिबल बचन निबाहैं ।' गी० २.७३.१ (२) निबाहें । 'तुलसी हित अपनो अपनी दिसि अबिचल नेम निबाहैं ।' विन० ६५.५

निबहै : निबाहइ । पूरा कर दे । 'जौं बिधि कुसल निबाहै काजू ।' मा० २.१०.३

निबाह्यो : निबाहेउ । 'सिला साप समन निबाह्यो नेहु कोल को ।' कवि० ७.१५

निबिड़ : वि० (सं०) । सघन, गहन, निश्छिद्र । 'कबहुं दिवस महुं निबड़ तम ।' मा० ४.१५ ख

निबुकि : पूकृ० । उछल कर, फलाँग लगा कर । 'निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं ।' मा० ५.२५.६

निबृत्त : भूकृ०वि० (सं० निवृत्त) । समाप्त । 'तम निबृत्त नहिं होई ।' विन० १२३.२

निबृत्ति : सं०स्त्री० (सं० निवृत्ति) । विषय-वैराग्य, निग्रह, त्याग । मा० ७.११७.१२

निबेदित : भूकृ०वि० (सं० निवेदित) । नैवेद्य रूप में अर्पित । मा० २.१२९.२

निबेरि, री : पूकृ० । समाप्त कर, हटा कर । 'गृह आनहिं चेरि निबेरि गती ।' मा० ७.१०१.३

निबेरीं : भूकृ०स्त्री०ब० । पूर्ण कीं । 'नेग सहित सब रीति बेनिरीं ।' मा० १.३२५.७

निबेरी : निबेरि। मा० २.६४.८

निबेरें : निवृत्त करने से। 'तुलसिदास यह बिपति बागुरो तुम्हहि सो बनै निबेरें।' विन० १८७.५

निबेरो : भूकृ०पुं०कए०। (१) समाप्त कर दिया। 'एकहि बार आजु बिधि मेरो सील सनेह निबेरो।' गी० २.७३.२ (२) निबटाया। 'स्वान को प्रभु न्याव निबेरो।' विन० १४६.५

निबेही : वि० (सं० निर्वेधित>प्रा० निव्वेहिअ)। अनाविद्ध=बिना छेद किया हुआ; अछूता, असंपृक्त। 'कोउ न मान मद तजेउ निबेही।' मा० ७.७१.१

निभ : वि० (सं०)। तुल्य, सदृश। 'हिमगिरि निभ तनु।' मा० ६ ५३.१

निमज्जत : वकृ०पुं०। (१) डुबकी लेता। मा० २.३१०.८ (२) डूबता हुआ। 'सोक समुद्र निमज्जत···कपीसु।' कवि० ७.४

निमज्जन : सं०पुं० (सं०)। डुबकी (स्नान)। मा० २.३१२.६

निमज्जनु : निमज्जन+कए०। 'कीन्ह निमज्जनु तीरथ राजा।' मा० २.२१६.१

निमज्जहिं : आ०प्रब० (अ०)। डुबकी लेते हैं। मा० २.२२४.२

निमि : सीता-पिता के पूर्वज का नाम जिनकी मृत्यु वसिष्ठ के शाप से हुई। देवताओं ने उन्हें पलकों पर निवास का वरदान दिया था अतएव उनको पलकों के झपकने का कारण माना गया है—देवों की पलकों पर निमि का निवास नहीं है। अत: एकटक नेत्रों के लिए उत्पेक्षा की जाती है कि निमि ने आसन छोड़ दिया—दूर चले गये। 'भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुं सकुचि निमि तजे दिगंचल।' मा० १.२३०.४ 'निरखहिं नारि निकर बिदेहपुर निमि नृप कै मरजाद मिटाई।' गी० १.१०८.६

निमिराज : निमिवंशज राजा=जनकराज। कवि० १.८

निमिराजु : निमिराज+कए०। जनकराज=सीरध्वज=सीताजी के पिता। मा० २.२७७

निमिष : सं०पुं० (सं०)। (१) आँखों का झपकना, पलकों के उठने-गिरने की क्रिया=निमेष। (२) पलक झपकाने का समय भाग=पल (जिसमें चार क्षण होते हैं)। 'निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं।' मा० १.३३०.१ 'निमिष बिहात कलप सम तेही।' मा० १.२६१.१

निमेष : निमिष (सं०)। (१) पलक झपकने की क्रिया। 'सनमुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि।' मा० ६.११८ ग (२) पल का समय। 'अरध निमेष कलप सम जाहीं।' मा० १.२७०.८ (३) पलक।

निमेषनि : निमेष+संब०। पलकों। 'नयन निमेषनि ज्यों जोगवैं।' गी०१.६६.३

निमेषें, षैं : निमेष+ब०। झपकियाँ। 'पलकन्हिहूं परिहरीं निमेषें।' मा० १.२३२.५

नियंता : वि०पुं० (सं० नियन्तृ) । नियमन करने वाला, संचालक (सारथी), नियति का प्रेरक । विन० ५५.६

नियत : वि० (सं०) । (१) नियमानुसार निश्चित, अवश्य (२) नियति द्वारा निर्धारित । 'तहँ तहँ तू बिषय सुखहि चहत लहत नियत ।' विन० १३२.२

नियम : सं०पुं० (सं०) । (१) नियमन, नियन्त्रण, (२) प्रतिबन्ध, निषेध (३) सीमा, मर्यादा; (४) विधान (५) निश्चय (६)आत्म नियन्त्रण, व्रत, निष्ठा । 'जप तप नियम जोग निज धर्मा ।' मा० ७.४९.१ (७) अष्टाङ्गयोग का द्वितीय साधन जिसमें शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान की गणना है । 'सम दम संजम नियम उपासा ।' मा० २.३२५.४

नियराइन्हि : निअराइन्हि ।

नियरानु : निअरानु ।

नियरे : क्रि०वि० (सं० निकटे>प्रा० नियड़े) । समीप में । 'मनु रहै नित नियरे ।' गी० १.४३.१

नियोग : सं०पुं० (सं०) । (१) विधि, विधान । 'निगम नियोग तें सो केलि ही छरो सो है ।' कवि० ७.८४ (२) आदेश, अनुज्ञा, नियुक्ति ।

नियोगा : नियोग । 'मागि मातु गुर सचिव नियोगा ।' मा० २.२३३.५

नियोगू : नियोग+कए० । 'पुरजन पाइ मुनीस नियोगू ।' मा० २.२४५.८

निरंकुस : वि० (सं० निरंकुश) । मर्यादाहीन, स्वेच्छाचारी (अङ्कुशरहित मत्त हाथी के समान स्वच्छन्द), मनचाहा करने वाला । मा० २.११९.३

निरंजन : वि० (सं०) । अञ्जनरहित । (१) निष्कलुष, निष्कलङ्क । (२) माया हीन, सत्य स्वरूप, निरुपेक्ष (ब्रह्म) । मा० १.१९८

निरंतर : वि०+क्रि०वि० (सं०) । अन्तर-रहित, अखण्ड, अविरत, सन्तत, धारा प्रवाहतुल्य । 'उर अभिलाष निरंतर होई ।' मा० १.१४४.३

निरंबु : वि० (सं०) । निर्जल (जलरहित उपवास) । 'ब्रतु निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा ।' मा० २.२४७.८

निरखंति : आ०प्रब० (सं० निरीक्षन्ते>प्रा० निरिक्खंति) । देखते हैं । मा० ७.१२ छं० २

✓**निरख, निरखइ** : (सं० निरीक्षते>प्रा० निरिक्खइ—भली प्रकार देखना, ताकना, निहारना) आ०प्रए० । देखता है । 'राम चरित जे निरख मुनि ते मन लेहिं चोराइ ।' मा० ७.२७

निरखत : वकृ०पुं० । देखता, देखते; निहारता-ते । 'चलेउ निरखत भुज बीसा ।' मा० ६.१०.६

निरखति : वकृ०स्त्री० । देखती, बार-बार निहारती । 'जननी निरखति बान धनुहियाँ ।' गी० २.५२.१

निरखनिहारु : वि०पुं०कए०। देखने वाला। 'सुख लहत निरखनिहारु।' गी० ७.८.५

निरखहिं : आ०प्रब० (सं० निरीक्षन्ते>प्रा० निरिक्खंति>अ० निरिक्खहिं)। देखते-ती हैं। 'निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी।' मा० १.१९८.५

निरखहु : आ०मब०। देखो। 'निरखहु तजि पलक।' गी० ७.७.६

निरखि : (१) पूकृ०। देख कर। 'बिगसत भईं निरखि राम राकेस।' मा० ७.९ क (२) आ०—आज्ञा—मए०। तू देख। 'सखि नीके कै निरखि कोऊ सुठि सुन्दर बटोही।' गी० २.१९.१

निरखिहनुं : आ०भ०उए०। देखूंगा। 'हरषि निरखिहनुँ गात।' मा० २.६८

निरखु : आ०—आज्ञा—मए०। तू देख ले। 'हर-गिरि मथन निरखु मम बाहू।' मा० ६.२८.८

निरखे : भूकृ०पुं०ब०। देखे। 'निरखे नहीं अघाइ।' मा० २.२०९

निरगुन : निर्गुन। (१) मायागुण रहित। मा० १.२३ (२) उत्तम विशेषताओं से हीन। 'निलज नीच निरधन निरगुन।' विन० १५३.१

निरगुनी : निरगुन। कौशल आदि से रहित। 'पंगु अंध निरगुनी निसंबल।' गी० ५.४२.२

निरच्छर : वि० (सं० निरक्षर)। अक्षर-ज्ञान-रहित, अशिक्षित। 'बिप्र निरच्छर लोलुप कामी।' मा० ७.१००.८

निरजोसु : संपुं० (सं० निर्यूष) कए०। (१) निष्कर्ष, निचोड़, सार, स्वरस (तात्पर्य)। 'यह निरजोसु, दोसु बिधि बामहि।' मा० २.२०१.८ (२) परिणाम। 'मोदमंगल मूल अति अनुकूल निज निरजोसु।' विन० १५९.५

निरझर : निर्झर। मा० २.१३६.७

निरत : वि० (सं०)। तत्पर, तल्लीन, परायण (नितान्त रत)। 'धर्म निरत पंडित बिग्यानी।' मा० ७.१२४.३

निरदय : निर्दय। मा० २.१७३.३

निरदहन : वि०पुं० (सं० निर्दहन)। पूर्णतः जला डालने वाला। 'गहन दहन निरदहन लंक।' हनु० १

निरदह्यो : भूकृ०पुं०कए०। सर्वथा जला डाला। 'कोन क्रोध निरदह्यो।' कवि० ७.११७

निरधन : निर्धन। विन० ३७.४

निरनउ : निरनय (निर्नय)+कए०। एक निश्चित मत। 'चलत प्रात लखि निरनउ नीके।' मा० २.१८५.२

निरपने : (१) (अपने का विलोम) । अनात्मीय । 'ठाउँ न समाउँ कहाँ, सकल निरपने ।' कवि० ७.७८ (२) सम्बन्धहीन । 'हरि निर्गुन निर्लेप निरपने ।' कृ० ३८

निरपेक्ष : वि० (सं०) । अपेक्षा-रहित; उदासीन; जिसका बोध सापेक्षता में न हो=स्वसंवेदनसिद्ध; अन्यावलम्बरहित, स्वतन्त्र, पूर्ण । विन० ५७.४

निरबल : निबल (सं० निर्बल) । दो० ५४४

निरबहनि : सं०स्त्री० । निबहने की क्रिया=निबाह । 'दिन दिन पन प्रेम नेम निरुपधि निरबहनि ।' गी० २.८१.२

निरबहा : भूकृ०पुं० । (१) निभ गया, परिणाम तक सम्पन्न हुआ । (२) समाप्त हो गया, निकल गया । 'कहतेउँ तोहि, समय निरबहा ।' मा० ६.६३.६

निरबही : निब ही । 'प्रीति परमिति निरबही है ।' कृ० ४२

निरबहौं : आ०उए० । निभ रहा हूं, निर्वाह करता चलता हूं, काम चला रहा हूं । 'राम निबाहे निरबहौं ।' विन० २२२.५

निरबह्यो : भूकृ०पुं०कए० । निभ गया, निर्वाह कर ले गया । 'अपनो सो नाथहू सों कहि निरबह्यो हौं ।' विन० २६०.४

निरबान : निर्वाण । मोक्ष । 'गति न चहउँ निरबान ।' मा० २.२०४

निरबाहा : निबाहा । 'तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा ।' मा० १.७६.६

निरबाहु : निबाहु । (१) गुजरबसर, योगक्षेम की पूर्ति । 'समय सरिस निरबाहु ।' रा०प्र० ७.५.१ (२) निष्पत्ति, कार्यपूर्ति । 'प्रीति रीति निरबाहु ।' विन० १६३.५

निरबिकार : निर्बिकार । विन० १३६.२

निरभय : निर्भय । दो० ४६७

निरमई : भूकृ०स्त्री० । निर्मित की, रची, बनायी ।' 'कन्या, फल कीरति बिजय··· निरमई है ।' गी० १.८६.४

निरमत्सर : वि० (सं० निर्मत्सर) । मत्सर-हीन, ईर्ष्यारहित । विन० ११८.४

निरमयउ, ऊ : भूकृ०पुं०कए० । रचा, बनाया । 'रामायन जेहिं निरमयउ ।' मा० १.१४ घ 'नज मायाँ बसंतु निरमयऊ ।' मा० १.१२६.१

निरमये : भूकृ०पुं०ब० । रचे, बनाये । 'जानियत आयु भरि येई निरमये हैं ।' गी० १.११.३

निरमल : निर्मल । (१) निष्कलुष । 'निरमल मति पावउँ ।' मा० १.१८.८ (२) धूलि आदि से रहित । 'निरमल नीरा ।' मा० १.१४३.५

निरमानु : सं०पुं० (सं० निर्माण)+कए० । रचना । 'बिरंचि बुद्धि को बिलासु लंक निरमानु भो ।' कवि० ५.३२

निरमित : निर्मित । गी० ७.७.२

निरमूल : निर्मूल । विन० १२२.५

निरमूलिनी : वि०स्त्री० (सं० निर्मूलिनी) । मूलहीन करने वाली, उखाड़ बहाने वाली, विनाशकारिणी । 'आरती राम की········ ···निरमूलिनी काम की ।' विन० ४८.१

निरमोह, हा : वि० (सं० निर्मोह) । मोहरहित, अज्ञानमुक्त । 'निर्मम निराकार निरमोहा ।' मा० ७.७२.६

निरमोहियन : (सं० निर्मोहिनाम्) । मोहममता-रहितों, निर्ममों । 'ऊधो प्रीति करि निरमोहियन सों को न भयो दुख-दीन ।' कृ० ५५

निरय : सं०पुं० (सं०) । नरक (दुर्गति) । 'जा ते निरय निकाय निरंतर ।' विन० १६६.३

निरलज्ज : निलज । विन० २७६.४

निरलेप : निर्लेप । मा० २.३१७.८

निरवधि : वि० (सं०) । अवधि रहित । (१) असंख्य, अनन्त । 'निरवधि गुन निरुपम पुरुषु ।' मा० २.२८८ (२) असीम, अमित । निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ।' मा० ७.६२.८

निरस : वि० (सं० नीरस) । रसहीन । (१) शुष्क (वासनाहीन) । 'साधु चरित सुभ चरित कपासू । निरस बिसद गुनमय फल जासू ।' मा० १.२.५ (२) वासनाहीन । 'जिति पवन, मन गो निरस करि ।' मा० ४.१० छं० १

निरस्य : पूकृ० (सं०) । परिहार करके, निवारण करके, परे हटाकर । मा० ३.४.१६

निराइ : पूकृ० । सस्य को तृणहीन करके (प्रतिकूल तत्त्वों को हटाकर) । 'सुख सस सुर सींचत देत निराइ कै ।' गी० ५.२८.६

निराए : भूकृ०पुं० । तृणहीन किये (घास हटाये) । 'जोते बिनु बोए बिनु निफन निराए बिनु ।' गी० २.३२.२

निराकार : वि० (सं०) । आकारहीन, रूपहीन, अमूर्त । मा० ७.७२.६

निराचार : वि० (सं०) । आचार धर्म से हीन, अनाचारी । 'निराचार सठ बृषली-स्वामी ।' मा० ७.१००.८

निरादर : (१) सं०पुं० (सं०) । अनादर, अवज्ञा, उपेक्षा । 'भवदंघ्रि निरादर के फल ए ।' मा० ७.१४.६ (२) वि० (सं०) । उपेक्षित । 'रज मग परी निरादर रहई ।' मा० ७.१०६.११

निरादरु : निरादर+कए० । अपमान । 'उचित न तासु निरादरु कीन्हे ।' मा० २.४३.६

निराधार : वि० (सं०) । आश्रयहीन, आधारहीन, बेसहारा । विन० ६६.४
निरापने : निरपने । पराये । 'सब दुख आपने, निरापने सकल सुख ।' कवि० ७.१२४
निरामय : वि० (सं०) । आमय=व्याधि से रहित, निर्विकार, अपरिणामी । 'नमामि ब्रह्म निरामयं ।' मा० ६.१०४ छं०
निरामिष : वि० (सं०) । मांस भोजनरहित । 'होहिं निरामिष कबहुं कि कागा ।' मा० १.५.२
निरारी : वि०स्त्री० । निराली, अनोखी । 'तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी ।' विन० ३४.५
निरावहिं : (१) आ०प्रब० । निराते हैं, सस्य को तृणहीन करते हैं । 'कृषी निरावहिं चतुर किसाना ।' मा० ४.१५.८ (२) उखाड़ फेंकते हैं । 'नीच निरावहिं निरस तरु ।' दो० ३७७
निरास : (१) वि० (सं० निराश) । आशाहीन, हताश । 'भा निरास उपजी मन त्रासा ।' मा० ३.२.३ (२) सं०पुं० (नैराश्य) । आशाहीनता । 'बसि कुसंग यह सुजनता ताकी आस निरास ।' दो० ३६२
निरासा : निरास । 'भे सुर सुरपति निपट निरासा ।' मा० २.२६५.४
निरीस : वि० (सं० निरीश) । ईश्वर को न मानने वाला, किसी को स्वामी न मानने वाला । 'नीच निसील निरीस निसंकी ।' मा० २.२६९.२
निरीह : वि० (सं०) । ईहा=इच्छा से रहित, निरपेक्ष, उदासीन । 'ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ।' मा० ७.७२.७
निरुअरई : आ०प्रए० । खुलती है, सुलझती है । 'तबहुं कदाचित सो निरुअरई ।' मा० ७.११७.८
√**निरुआर निरुआरइ** : आ०प्रए० । खोलता है, सुलझाता है ।
निरुआरा : निरुआरइ । 'तब सोइ बुद्धि···ग्रंथि निरुआरा ।' मा० ७.११८.४
निरुआरे : भूकृ०पुं०ब० । सुलझाए । 'निज कर जटा राम निरुआरे ।' मा० ७.११.४
निरुज : वि० (सं० नीरुज) । नीरोग, स्वस्थ । कवि० ७.१६६
निरुत्तर : वि० (सं०) । जिसके पास उत्तर न हो; जो उत्तर न दे सके । दो० १५७
निरुपधि : वि० (सं०) । आवरणहीन, निर्व्याज, अहेतुक, निश्छल । 'हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के ।' मा० १.१५.४
निरुपम : वि० (सं०) । उपमा-रहित, अतुलनीय, अनुपम, अप्रतिम । मा० २.२८८
निरुपाधि, धी : वि० (सं०) । उपाधिरहित । (१) निर्विशेष, अनवच्छिन्न, जगत् की विविधताओं में अनुस्यूत रहकर भी अखण्ड, असीम । 'राम भगति निरुपम निरुपाधी ।' मा० ७.११६.६ (२) निर्व्याज, निश्छल । 'दीनबंधु दया कीन्ही

निरुपाधि न्यारिये।' हनु० २१ (३) निर्विघ्न। 'राम नाम जपु तुलसी नित निरुपाधि।' बर० ४८

निरूपउँ : आ०उए०। निरूपण करता हूं, व्याख्यापूर्वक स्वरूप का प्रतिपादन करता हूँ, विवेचन करता हूं। 'सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी।' मा० ७.१११.१३

निरूपन : सं०पुं० (सं० निरूपण)। स्वरूप-विवेचन, प्रतिपादन, व्याख्यात्मक विवरण। 'ब्रह्म-निरूपन।' मा० १.४४ 'नाम निरूपन नाम जतन तें।' मा० १.२३.८

निरूपम : निरुपम। गी० १.६.२६

निरूपहिं : आ०प्रब०। स्वरूप विवेचन करते हैं। 'कहि नित नेति निरूपहिं बेदा।' मा० २.९३.८

निरूपा : (१) निरूपइ। निरूपित करता है। 'नेति नेति जेहि बेद निरूपा।' मा० १.१४४.५ (२) भूकृ०पुं०। निरूपित किया। व्याख्या द्वारा स्पष्ट किया। 'खंडि सगुन मत अगुन निरूपा।' मा० ७.१११.२

निरोध : सं०पुं० (सं०)। नियमन, निग्रह, नियन्त्रित करना, वृत्तियों का शमन। 'मन को निरोध।' दो० २७४

निर्गता : भूकृ०स्त्री० (सं०)। निकली हुई। 'नख निर्गता········सुरसरी।' मा० ७.१३ छं० ४

निर्गमहिं : आ०प्रब०। निकलते हैं। 'एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं।' मा० २.२३

निर्गुन, ण : वि० (सं० निर्गुण)। गुणहीन। (१) सभी गुणों से हीन। 'निर्गुन निलज कुबेष कपाली।' मा० १.७९.६ (२) माया गुणों से मुक्त, त्रिगुणातीत। 'निर्गुन ब्रह्म सगुन बपुधारी।' मा० १.११०.४ (यहाँ निर्गुण से 'निराकार' का तात्पर्य भी है—मायागुणों को स्वेच्छा से ग्रहण कर ब्रह्म सगुण-साकार बनता है, क्योंकि उसमें सत्य-संकल्पता का गुण विद्यमान है अत: संकल्पमात्र से वह सगुण बनता है।

निर्गुनमत : वेदान्त-मनीषियों का वह सम्प्रदाय जो ब्रह्म में किसी प्रकार के गुण की सत्ता मान्य नहीं करता जबकि वैष्णव मत में ब्रह्म का निर्गुणत्व इतना ही है कि वह माया-गुणों से परे है—अन्यथा वह सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्व, सत्यकामत्व, सत्यसंकल्पत्व, अजरामरत्व, क्षुधपिपासाहीनता आदि कल्याण गुणों से सम्पन्न है तथा स्वेच्छा से माया गुणों को ग्रहण कर अवतीर्ण होता एवम् आकार ग्रहण करता है। 'तब मैं निर्गुनमत करि दूरी। सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी।' मा० ७.१११.१३

निर्झर : सं०पुं० (सं०)। झरना, प्रपात। मा० २.३०८.३

निर्दंभ : वि० (सं०)। दम्भहीन, निश्छल। मा० ७.२१.७

निर्दय : वि० (सं०)। दयाहीन, क्रूर। मा० ७.३९.५

निर्दलन : सं०पुं० (सं०) । उन्मूलन, विनाश, पूर्ण ध्वंस । विन० ५७.७

निर्धन : वि० (सं०) । धनहीन, दरिद्र, अकिंचन । मा० १.१६०

निर्धौत : भूकृ० (सं०) । दूरीकृत, विनष्ट, प्रक्षालित (सं० निर्धौत) । 'साधु पद सलिल निधूंत कल्मष सकल ।' विन० ५७.३

निर्नय : सं०पुं० (सं० निर्णय) । दृढ निश्चय, पुष्ट मत, निर्विवाद तथ्य । मा० ७.४१.२

निर्बहई : निबहइ । 'जौं निबिघ्न पंथ निर्बहई ।' मा० ७.११९.२

निर्बहिहौं : आ०भ०उए० । निभाऊँगा, पूरा करूँगा । 'तुलसी को पन निर्बहिहौं ।' विन० २३१.४

निर्बहे : भूकृ०पुं०ब० । निभ गए, पार पा गए । 'त्रिबिध दुख तें निर्बहे ।' मा० ७.१३ छं० २

निर्बान : निर्वाण । मा० ३.२० क

निर्बानप्रद : वि० । मोक्षदायक । मा० ७.१३० छं० ३

निर्बिकार : वि० (सं० निर्विकार) । विकार-रहित, जिसमें किसी प्रकार का रूप-परिवर्तन न हो, यथावत् रहने वाला, एक रस । 'निर्बिकार निरवधि सुख-रासी ।' मा० ७.१११.५ (वैष्णवमत अविकृत-परिणामवादी है—तदनुसार ब्रह्म विविध जागतिक रूप लेता हुआ भी विकृत नहीं होता; स्वरूपस्थ रहकर ही परिणाम लेता है) ।

निर्बिघ्न : वि०+क्रि०वि० (सं० निर्विघ्न) । बाधारहित । मा० ७.११९.२

निर्भय : वि० (सं०) । भयहीन, निरातङ्क । मा० १.१८७.७

निर्भयकारी : वि० (सं०) । (दूसरों को) भयमुक्त करने वाला, अभय देने वाला । 'मारि असुर द्विज निर्भयकारी ।' मा० १.२१०.६

निर्भर : वि० (सं०) । पूर्ण, प्रचुर, नि:शेषरूप से भरा-पुरा, अतिशय । 'सब कें उर निर्भर हरषु । मा० १.३००

निर्भरा : वि०स्त्री० (सं०) । निर्भर । मा० ५ श्लोक २

निर्मथन : सं०पुं० (सं०) । पूर्ण मन्थन, सर्वाङ्ग आलोडन । 'वेद पय सिंधु…… मुनि बृंद निर्मथन-कर्ता ।' विन० ५७.६

निर्मम : वि० (सं०) । ममत्वहीन, किसी के प्रति ममता से रहित, जिसका अपना कोई न हो, अपनेपन की आसक्ति से परे । 'निर्मम निराकार निरमोहा ।' मा० ७.७२.६

निर्मल : वि० (सं०) । (१) निष्कलुष, निश्छल, निष्पाप । 'निर्मल मन जन सो मोहि भावा ।' मा० ५.४४.५ (२) आवरण रहित । 'बिनु घन निर्मल सोह अकासा ।' मा० ४.१६.९ (३) निर्दोष+धूलि—पङ्क-रहित । 'संत हृदय

जस निर्मल बारी ।' मा० ३.३६.७ (४) माया-गुणों से रहित, वासनाहीन । 'जो अगम सुगम सुभाव निर्मल ।' मा० ३.३२ छं० ४

निर्मली : निर्मल+स्त्री० (सं० निर्मला) । मा० ६.१०६ छं० १

निर्मान : वि० (सं०) । मान-रहित=प्रमाणरहित+परिमाणरहित, अप्रमेय तथा असीम । विन० ५३.६

निर्मित : भूकृ० (सं०) । रचित । 'निज इच्छाँ निर्मित तनु । मा० १.१९२

निर्मुक्त : वि० (सं०) । पूर्णतया मुक्त, सर्वथा बन्धनहीन । विन० ५५.९

निर्मूलन : वि० । निर्मूल करने वाला, उन्मूलन-कर्ता । मा० ७.१०८ छं० १०

निर्मूला : वि० (सं० निर्मल) । मूल रहित, जड़ से उखड़ा हुआ, पूर्णत: नष्ट । 'जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला ।' मा० १.१८३.५

निर्मूलिन् : वि०पुं० (सं०) । उन्मूलनकर्ता, नाशक । विन० १२.४

निर्मोह : वि० (सं०) । मोहरहित, तमोगुणी विकारों से परे । विन० ५६.५

निर्लेप : वि० (सं०) । लेपरहित । (१) प्रभावमुक्त (२) माया, कर्म आदि की वासनाओं से परे । 'हरिनिर्गुन निर्लेप निरपने ।' कृ० ३८

निर्वंश : वि० (सं०) । वंशहीन, जिसके कुल में कोई न बचा हो । विन० ४९.६

निर्वाण : सं०पुं० (सं०) । (१) शान्ति, तापशमन, मोक्ष । मा० ५ श्लोक १ (२) वि०पुं० (सं०) । शान्त, मुक्त । 'निजानन्द निर्वाण निर्वाणदाता ।' विन० ५६.५

निर्वाप : सं०पुं० (सं०) । शमन, बुझाना; ताप नाश । 'अर्वागपर गर्व निर्वाप-कर्ता ।' विन० ५४.७

निर्विकल्प : वि० (सं०) । विकल्पों से परे—शब्दमात्र में स्थित वस्तुशून्य तत्त्व विकल्प है, उससे रहित । गुण आदि विशेषणों से विशिष्ट ज्ञान सविकल्प है, उससे भिन्न प्रत्यय वाला=निरपेक्ष । विकल्पस्वरूप संसार से परे । मा० ७.१०८.३

निर्व्यलीक : वि०(सं०) । व्यलीक-रहित; मिथ्या-माया से परे, निष्कलुष । विन० २०४.३

निलज : निलज्ज । 'रन ते निलज भागि गृह आवा ।' मा० ६.८५.७

निलजई : निलजता (प्रा० निलज्जया) । 'रीझिबे लायक तुलसी की निलजई ।' विन० २५२.५

निलजता : सं०स्त्री०(सं० निर्लज्जता) । विन० १५८.६

निलज्ज : वि० (सं० निर्लज्ज>प्रा० निलज्ज) । लज्जा रहित । मा० ५.९.९

निलय : सं०पुं० (सं०) । आवास, आलय । (२) लय, तल्लीनता । 'यस्यांघ्रि-प्राथोज······मुनिवृंद अलि निलयकारी ।' विन० ६१.१

निवछावरि : नेवछावरि । रा०न० १६

निवसत : वकृ०पुं० (सं० निवसत् > प्रा० निवसंत) । निवास करता-करते । 'निवसत जहँ नित कृपालु । गी० २.४४.३

निवसीं : भूकृ०स्त्री०ब० । बस गयीं, बसी हुईं । 'मृदु मूरति द्वै निवसीं मन मोहैं ।' कवि० २.२५

निवसे : भूकृ०पुं०ब० । बसे, रहे । तेहिं आश्रम निवसे कछु काला ।' मा० १.१५२.७

निवाज : वि० (फा० नवाज) । कृपा करने वाला, शरण देने वाला । 'गरीब निवाज ।' हनु० १७

निवाजा : भूकृ०पुं० । शरण में लिया, पालित किया । 'नमत पद रावणानुज निवाजा ।' विन० ४३.७

निवाजि : पूकृ० । शरण देकर । 'बिबुध समाज निवाजि······बिरद कहायो ।' गी० ६.२१.३

निवाजिबौ : भकृ०पुं०कए० । शरण में लेना, कृपा करना । 'ता ठाकुर को रीझि निवाजिबौ कह्यो क्यों परत मो पाहीं ।' विन० ४.२

निवाजिहैं : आ०भ०प्रब । शरण देंगे । 'राम गरीब-निबाज निवाजिहैं ।' गी० ५.३०.२

निवाजु : निवाज+कए० । शरणदाता । 'राम गरीब-निवाजु ।' गी० ३.१७.२

निवाजे : भूकृ०पुं०ब० । शरण पाए हुए, कृपाश्रित किए हुए । जैसे होत आये हनुमान के निवाजे हैं ।' हनु० १५ (२) शरण देने पर । 'तेरे निवाजे गरीब-निवाज बिराजत बैरिन के उर साले ।' हनु० १७

निबाजो, निवाज्यो : भूकृ०पुं०कए० । शरण में लिया । 'हनुमान को निवाज्यो जन ।' हनु० २०

✓**निवार निवारइ** : (सं० निवारयति > प्रा० निवारइ—निषेध या परिहार करना, हटाना, दूर करना) आ०प्रए० । हटाता है । 'बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारै ।' मा० ६.९१.५

निवारक : वि० (सं०) । दूर करने वाला, निरस्त करने वाला । 'आस त्रास इरिषादि निवारक ।' मा० ७.३५.५

निवारन : (१) सं०पुं० (सं० निवारण) । निरसन, बचाव (हटाना), दूरीकरण । 'करिअ जतन जेहिं होइ निवारन ।' मा० २.७०.५ (२) वि०पुं० । 'प्रहलाद बिषाद निवारन, बारन तारन, मीत अकारन को ।' कवि० ७.६ (३) भकृ० अव्यय । दूर करने, निरस्त करने । 'रच्छक कोपि निवारन धाए ।' मा० ६.१०८.१०

निवारा : भूकृ०पुं० (सं० निवरित > प्रा० निवारिअ) । रोका । 'बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा ।' मा० २.२९७.२

निवारि : पूकृ० (सं० निवार्य>प्रा० निवारिअ>अ० निवारि)। रोककर, हटा कर। 'कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।' मा० ४.७.४

निवारिऐ : आ०कवा०प्रए० (सं० निवार्यते>प्रा० निवारीअइ)। दूर कीजिए। 'तासों रारि निवारिऐ।' दो० ४३२

निवारिबे : भकृ०पुं० (सं० निवारयितव्य>प्रा० निवारिअव्वय)। निवारण करने। 'आरत की बिपति निवारिबे को ·।' हनु० ११

निवारिये : निवारिऐ। 'बाँह पीर महाबीर बेगिही निवारिये।' हनु० २०

निवारी : भूकृ०स्त्री०। हटायी 'जब हरि माया दूरि निवारी।' मा० १.१३८.१

निवारे : (१) भूकृ०पुं०ब०। हटाये, निरस्त किये। 'तिल प्रवान करि काटि निवारे।' मा० ६.८३.४ (२) निवारइ। दूर करे, हटा सकता है। 'दुसह बिपति ब्रजनाथ निवारे।' कृ० ५६

निवारै : निवारइ। निवारण कर सकता है। 'और काहि मागिए को मागिबो निवारै।' विन० ८०.१

निवार्‌यो : भूकृ०पुं०कए०। रोका। 'घोर जमालय जात निवार्‌यो।' विन० १४४.२

निवास : सं०पुं० (सं०)। (१) आवास स्थान। 'सिय निवास सुंदर सदन।' मा० १.२१३ (२) आवास करना, रहना। 'कन्ह निवास रमापति जब तें।' मा० ४.१३.५

निवासा : निवास। मा० ५.६.१

निवासिनि : वि०स्त्री० (सं० निवासिनी)। वास करने वाली। मा० १.९८.३

निवासी : वि०पुं० (सं० निवासिन्)। निवास करने वाला। मा० १.८०.३

निवासु, सू : निवास+कए०। एकमात्र निवास। 'नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।' मा० १.२६

निशिचर : सं०पुं० (सं०)। राक्षस। मा० ३.११.६

निशेश : सं०पुं० (सं०)। रात्रि का स्वामी=चन्द्रमा। मा० ३.११.७

निश्चित : वि० (सं०)। निर्धारित, प्रमाणित, स्थिर मत। विन० ५७.६

निषंग, गा : सं०पुं० (सं० निषङ्ग)। तूणीर, तरकस। मा० १.१४७.८

निषाद : सं०पुं० (सं०)। मृगया तथा मछली मारने का व्यवसाय करने वाली एक जंगली जाति। मा० २.८८.१

निषादनाथ : निषादों का राजा=गुह। मा० २.१९२.३

निषादनाथु : निषादनाथ+कए०। मा० २.२३३.६

निषादपति : निषादनाथ। मा० २.८९.४

निषादा : निषाद। मा० ७.२०.१

निषादु, दू : निषाद+कए० । 'सुनि गुनि कहत निषादु ।' मा० २.२३४]
निषिद्ध : वि० (सं०) । शास्त्रों द्वारा वर्जित, अविहित, अपवित्र, त्याज्य । 'पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग जानी ।' कृ० ४८
निषेध : (१) सं०पुं० (सं०) । निवारण, वर्जन । (२) धार्मिक वर्जना, अविहित कर्म । 'बिधि निषेद कह बेद ।' दो० ३५०
निषेधमय : वि० (सं०) । निषेधपूर्ण, धार्मिक वजनाओं से युक्त । 'बिधि निषेधमय कलिमल हरनी । करमकथा ।' मा० १.२.६
निष्काम : अकाम (सं०) । कामनारहित । विन० ६४.८
निष्केवल : वि० (सं०) । विशुद्ध, निर्मल, सर्वथा मिश्रण-रहित । 'निष्केवल प्रेम ।' मा० ६.११७ ख
निष्पापा : वि०स्त्री० (सं०) । पापरहित, पापमुक्त । 'कपि तब दरस भइउँ निष्पापा ।' मा० ६.५८.१
निसंक, का : वि० (सं० निःशङ्क>प्रा० नीसंक) । निर्भय, शङ्कारहित, निरातङ्क ।' मा० ७.११२.२
निसंकी : निसंक । धर्म आदि के उल्लङ्घन की शङ्का से मुक्त, स्वैराचारी । 'नीच निसील निरीस निसंकी ।' मा० २.२६६.२
निसंकू : निसंक+कए० । 'निपट निरंकुस निठुर निसंकू ।' मा० २.११६.३
निसंबल : वि० (सं० निःसम्बल) । पाथेय-रहित, साधनहीन । 'संबल निसंबल को सखा असहाय को ।' विन० ६६.१
निसठ : सं०पुं० (सं० निशठ) । एक वानर का नाम । मा० ५.५४
निसरत : वकृ०पुं० (सं० निःसरत्>प्रा० नीसरंत) । निकलता-ते; निकलते हुए । 'निसरत प्रान करहिं हठि बाधा ।' मा० ५.३१.६
निसरि : पूकृ० । निकलकर । 'निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा ।' मा० ६ ६७.४
निसरी : भूकृ०स्त्री० । निकली । 'निसरी रुधिरधार तहँ भारी ।' मा० ४.६.७
निसाँ : रात में । 'मोह निसाँ सब सोवनिहारा ।' मा० २.९३.२
निसा : सं०स्त्री० (सं० निश्=निशा>प्रा० निसा) । रात्रि । मा० १.१९५
निसाकर : सं०पुं० (सं० निशाकर) । चन्द्रमा । बर० १४
निसागम : सं०पुं० (सं० निशागम) । रात्रि का आरम्भ, सन्ध्याकाल । 'सकुचे निसागम नलिन से ।' मा० २.३०१ छं०
निसाचर : सं०पुं० (सं० निशाचर) । राक्षस । मा० १.१८.१
निसाचरपति : रावण । मा० ६.४४.३
निसाचरु : निसाचर+कए० । एक भी निशाचर । 'चित्रहू के कपि सों निसाचरु न लागिहै ।' कवि० ५.१४

निसान, न : सं०पुं० (सं० निःस्वान>प्रा० नीसाण)। (१) बाजा, बाद्य। 'राजत बाजत बिपुल निसाना।' मा० १.२६७.५ (२) दुन्दुभि। 'मुनि गहगहे निसान।' मा० १.३०४ (३) ध्वनि, नाद। 'हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना।' मा० १.२६६.२

निसानहिं : नक्कारे पर। 'परा निसानहिं घाऊ।' मा० १.३१३.७

निसि : (१) सं०स्त्री० (सं० निश्>प्रा० निसि)। रात्रि। 'दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा।' मा० १.२४.५ (२) रात में (सं० निशि)। 'निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी।' मा० ५.१२.६

निसिचर : सं०पुं० (सं० निशिचर)। राक्षस। मा० १.२४.८

निसिचरन्हि : निसिचर+संब०। राक्षसों (ने)। 'परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे।' मा० ६.११४.१

निसिचरि, री : सं०स्त्री० (सं० निशिचरी)। राक्षसी। मा० ५.३.२

निसिचरिन्ह : निसिचरि+संब०। राक्षसियों (को)। 'कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई।' मा० ५.१०.८

निसिचरीं : निसिचरी+ब०। राक्षसियाँ। 'सेवहिं सब निसिचरीं बिनीता।' मा० ६.१०८.५

निसिचरु : निसिचर+कए०। एक राक्षस-विभीषण। 'कपीसु निसिचरु अपनाए नाएँ माथ जू।' कवि० ७.१६

निसित : वि० (सं० निशित)। तीक्ष्ण, तीखी धार वाला-ले; पैना। 'चले बिसिख निसित निकाम।' मा० ३.२०.२

निसिहि : रात को। 'निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँती।' मा० ६.१००.३

निसील : वि० (सं० निःशील)। शीलहीन। विनय, सदाचार आदि से विमुख। 'नीच निसील निरीस निसंकी।' मा० २.२६६.२

निसेनिका : निसेनी (सं० निःश्रेणिका)। 'नाभी सर त्रिबली निसेनिका।' गी० ७.१७.६

निसेनी : सं०स्त्री० (सं० निःश्रेणी>प्रा० निसेणी)। नसेनी, सीढ़ी। 'हरनि सोक हरिलोक निसेनी।' मा० ६.१२०.८

निसोच : वि० (सं० निःशोच्य>प्रा० नीसोच्च)। निश्चिन्त, शोकरहित। 'भे निसोच उर अपडर बीता।' मा० २.२४२.६

निसोती : वि०स्त्री० (अरबी—निसोह=साफ, खालिस)। शुद्ध, अमिश्रित। 'निसि बासर सहते बिपति निसोती।' विन० १६८.१

निसोतें : अमिश्रित······से, नितान्त निश्छल···से। 'रीझहिं राम सनेह निसोतें।' मा० १.२८.११

निसोतो : वि०पुं०कए०। नितान्त शुद्ध, स्वच्छ, अमिश्रित। 'कहौं सो साच निसोतो।' विन० १६१.२

√**निस्तर निस्तरइ** : (सं० निस्तरित>प्रा० मागधी-निस्तरइ) आ०प्रए०। पार पा जाता है, छुटकारा पाता है। 'नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा।' मा० ४.३.२

निस्तरिए, ये : आ०भावा०। पार पाया जाय, मुक्त हुआ जा सके। 'द्रवहु तौ निस्तरिये।' विन० १८६.६

निस्तार : सं०पुं० (सं०)। पार पाना, छुटकारा। 'बिनु प्रयास निस्तार।' मा० ७.१०२ क

निस्तारा : निसार। मा० ६.७७.४

निहकाम : निःकाम। मा० ३.११

निहार : (१) सं०पुं० (सं० नीहार)। पाला, कुहरा, ओस का धुंध। 'जनु निहार महुं दिनकर दुरेऊ।' मा० ६.९३.४ (२) आ०—आज्ञा—मए०। तू देख। 'बिषय मुद निहार भार-सिर काँधे ज्यों बहत।' विन० १३३.४

√**निहार निहारइ, ई** : (सं० निभालयति>प्रा० निहालइ—घूर कर ताकना, भली भाँति देखना, निहारना) आ०प्रए०। देखता-ती है, निहारता-ती है। 'रूप रासि जेहि ओर सुभायँ निहारइ।' जा०मं० ८२ 'मानहुं सरोष भुअंग-भामिनि बिषम भाँति निहारई।' मा० २.२५ छं०

निहारत : वकृ०पुं०। देखता-देखते। गी० २.१४.२

निहारति : वकृ०स्त्री०। देखती। 'राम को रूपु निहारति जानकी।' कवि० १.१७

निहारहिं : आ०प्रब० (सं० निभालयन्ति>प्रा० निहालंति>अ० निहालहिं)। देखते हैं, निरखते हैं। 'बार बार प्रभु गात निहारहिं।' मा० ७.७.४

निहारहि : आ०—आज्ञा—मए० (सं० निभालय>प्रा० निहालहि)। तू देख। 'मन; माधव को नेकु निहारहि।' विन० ८५.१

निहारा : (१) भूकृ०पुं०। देखा। 'जिअत राम बिधु बदनु निहारा।' मा० २.१५६.२ (२) निहारइ। निरीक्षण करता है, देखता है। 'सहस नयन पर दोष निहारा।' मा० १.४.११

निहारि : (१) निहारु। तू देख। 'ललित लालन निहारि।' कृ० १७ (२) पूकृ०। देखकर। 'लता निहारि नवहिं तरु साखा।' मा० १.८५.१

निहारिए, ये : आ०कवा०प्रए०। देखा जाय, दीखता है, देखिए। 'तो से समरथ चख चारिहूँ निहारिये।' हनु० २४

निहारी : (१) निहारि। देखकर। 'हियँ हरषे सुर सेन निहारी।' मा० १.९५.३ (२) भूकृ०स्त्री० देखी। 'जेहिं तेरहुति तेहिं समय निहारी।' मा० १.२८९.७

निहारु : (१) आ०—आज्ञा—मए० । तू देख । 'हरि को ललित बदन निहारु।' कृ० १४ (२) निहार+कए० । कुहरा, तुषार । 'चारु चंदन मनहुँ मरकत सिखर लसत निहारु ।' गी० ७.८.२

निहारें : निहारने से, देखते हुए । 'नाथ सकल सुख साथ हमारें। सरद बिमल बिधुबदन निहारें ।' मा० २.६५.८

निहारे : (१) भूकृ०पुं०ब० । देखे । 'चरन परत नृप रामु निहारे ।' मा० २.४४.२ (२) निहारइ । 'नित निज पद कमल निहारे ।' गी० ५.१८.२

निहारेउ : भूकृ०पुं०कए० । देखा । 'सखी मुख गौरी निहारेउ ।' पा०मं० ४८

निहाल : वि० (फा०) । तृप्त प्रमुदित, पूर्ण सन्तुष्ट । 'निरखि निहाल निमिष महँ कीन्हे ।' विन० ६.४

निहालु : निहाल+कए० । 'चोट बिनु मोट पाइ भयो न निहालु को ।' कवि० ७.१७

निहोर : सं०पुं० । (१) मनुहार, अनुनय-विनय । 'पुनि पुनि करउँ निहोर ।' मा० १.१४ ख (२) आभार, उपकार (अहसान) । 'राखा राम निहोर न ओही ।' मा० ४.२६.५

✓**निहोर, निहोरइ** : आ०प्रए० । अभ्यर्थना करता है—करे, अनुनय करे । 'केहि केहि दीन निहोरै ।' विन० १०२.५

निहोरउँ : आ०उए० । अनुनय करता हूं । 'सखा निहोरउँ तोहि ।' मा० ६.११६ ख

निहोरत : वकृ०पुं० । अनुनय करते, समझाते-बुझाते । 'सब गौरिहि निहोरत धाम को ।' पा०मं०छं० ४

निहोरहिं : आ०प्रब० । अनुनय करते-ती हैं । 'बार बार रघुनाथहि निरखि निहोरहिं ।' जा०मं० १६७

निहोरा : (१) निहोर । आभार । 'बोले रामहि देइ निहोरा ।' मा० १.२७८.७ (२) भूकृ०पुं० । अनुरोध किया । 'सो कृपालु केवटहि निहोरा ।' मा० २.१०१.४

निहोरि : पूकृ० । अनुनय करके, अपने ऊपर आभार लेकर । 'निगम सेष सारद निहोरि जो अपने दोष कहावौं ।' विन० १४२.६

निहोरिहौं : आ०भ०उए० । अनुनय करूँगा । 'दुहू ओर की बिचारि अब न निहोरिहौं ।' विन० २५८.४

निहोरी : निहोरि । 'सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी ।' मा० २.४४.७

निहोरें : क्रि०वि० । अनुनय के लिए, उपकार हेतु । 'तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें ।' मा० २.१९०.६

निहोरे : भूकृ०पुं०ब० । मनाये, प्रार्थित किये । 'राम राउ गुर साधु निहोरे ।' मा० २.२९७.५

निहोरैं : निहोरइ । 'सपने पर बस परैं, जागि देखत केहि जाइ निहोरैं ।' विन० ११६.४

निहोरो : निहोरा+कए० । (१) अनुरोध, मनुहार । 'किए निहोरो हँसत खिझे तें डाटत नयन तरेरे ।' कृ० ३ (२) उपकार, आभार । 'नाहिं पिनाकिहि नेकु निहोरो ।' कवि० ७.१५३

नींद : नीद । मा० २.३८

नींब : सं०पुं० (सं० निम्ब) । वृक्षविशेष । 'काम भुजंग डसत जब जाही । बिषय नींब कटु लगत ताही ।' विन० १२७.३

नीक, का : वि०पुं० (सं० निक्त=विशुद्ध>प्रा० निक्क) । (१) निर्मल, स्वच्छ, पवित्र, निर्दोष । 'दंपति धरम आचरन नीका ।' मा० १.१४२.२ (२) सुन्दर, मनोहर । 'हम तुम्ह कहुं बरु नीक बिचारा ।' मा० १.८०.१ (३) उत्तम, श्रेष्ठ । 'राम निकाईं रावरी है सबही को नीक ।' मा० १.२९ ख (४) अनुकूल, अभीष्ट, स्वीकार्य । 'जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ।' मा० १.५.९ (५) संगत, उचित । 'कहेहु नीक, मोरेहुं मन भावा ।' मा० १.६२.१

नीकि : नीकी । 'नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई ।' मा० १.१३४.३

नीकियैं : अच्छी ही । 'भूपति बिदेह कही नीकियैं जो भई है ।' गी० १.८५.१

नीकी : नीक+स्त्री० । अच्छी, शुद्ध, उत्तम, संगत । मा० १.९.५

नीकें : क्रि०वि० । भली भाँति । 'मोर मनोरथु जानहु नीकें ।' मा० १.२३६.३

नीके : (१) नीकें । 'हम नीके देखा सब लोई ।' वैरा० ४० (२) वि०पुं०ब० (दे० नीक) । भले । 'कुंभकरन सोवत नीके ।' मा० १.४.६

नीको : नीका+कए० । भला, अच्छा । 'तौ नीको तुलसीक ।' मा० १.२९ ख

नीच : वि०पुं० (सं०) । अधम, अवर । मा० १.७.९

नीचउ : नीच भी । 'भगतिवंत अति नीचउ प्रानी ।' मा० ७.८६.१०

नीचन, न्ह : नीच+संब० । 'प्रीतम पुनीत कृत नीचन निदरि सो ।' विन० २६४.५

नीचहु : नीचउ । 'अति नीचहु सन प्रीति ।' मा० ७.९३ क

नीचा : नीच । मा० ३.२४.६

नीचि, ची : नीच+स्त्री० । मा० २.१२.६

नीचियौ : नीची भी । 'नीचियौ कहत सोभा ।' विन० २५७.३

नीचु, चू : नीच+कए० । 'लहइ निचाइहि नीचु ।' मा० १.५

नीचो : (१) नीचु । 'ऊँचो मनु ऊँची रुचि, भागु नीचो ।' कवि० ७.६७ (२) नीचउ । नीच भी । 'पाथ माथे चढ़ै तृन तुलसी ज्यों नीचो ।' विन० ७२.४

नीड़ : सं०पुं० (सं०) । घोंसला, कुलाय । मा० १.३४६.६

नीति : सं०स्त्री० (सं०) । (१) समुदाचार, विनयोपदेश । 'संत कहहिं असि नीति ।' मा० १.४५ (२) व्यवहार=राजनीतिक न्याय । 'रूप तेज बल नीति

निवासा।' मा० १.१३०.३ (अनीति का विलोम) (३) दक्षता, सतर्क आचरण। 'सुनु महीस असि नीति जहँ तहँ नाम न कहँहि नृप।' मा० १.१६३ (४) धार्मिक व्यवस्था। 'निगम नीति कुलरीति करि।' मा० १.३४६ (५) कूटचातुरी। 'जद्यपि नीति निपुन नरनाहू।' मा० २.२७.७

नीती : नीति। मा० २.६.६

नीद : सं०स्त्री० (सं० निद्रा>प्रा० निद्दा>अ० निद्द)। सुषुप्ति, विश्रामहेतुक अचेतनावस्था। मा० १.३५७

नीदउँ : निद्रावस्था में भी। 'नीदउँ बदन सोह सुठि लोना।' मा० १.३५८.१

नीदरी : नींद (अ० निद्दडी)। गी० १.१६.४

नीर : सं०पुं० (सं०)। जल। मा० १.३४

नीरचारी : जलचर। कवि० ६.४६

नीरज : जलज, कमल। मा० १.२४३.२

नीरद : जलद। मेघ। कृ० ३६

नीरधर : जलधर, मेघ। मा० १.१४६

नीरनिधि : जलनिधि, समुद्र। मा० ६.५

नीरा : नीर। मा० ७.३.१०

नीराजन, ना : सं०पुं०+स्त्री० (सं०)। दीपकमाला से आरती। विन० ४७.४

नीरु, रू : नीर+कए०। 'नयन नीरु हटि मंगल जानी।' मा० १.३१६.१

नीरै : नीर की, जल की। 'उपमा राम लखन की प्रीति की क्यों दीजै खीरै नीरै।' गी० ६.१५.३

नील : (१) वि०पुं० (सं०)। नीलवर्ण, श्याम। 'नील पीत जलजाभ सरीरा।' मा० १.२३३.१ (२) सं०पुं० (सं०)। वानर विशेष का नाम। मा० ५.६०.१

नीलकंठ : सं०पुं० (सं०)। (१) शिव जी। मा० ७.१०८ छं० (२) चाष पक्षी। 'नीलकंठ कलकंठ सुक।' मा० २.१३७

नीलगिरि : सं०पुं० (सं०)। कज्जल पर्वत, नीला पर्वतविशेष। (जो हिमालय के उत्तर है)। मा० ६.१०३ छं०

नीलमनि : सं०स्त्री० (सं० नीलमणि)। राम-विशेष (दे० नवरत्न)। मा० १.२८८

नीला : नील। मा० ६.२३.५

नीलु : नील+कए०। नील वानर। कवि० ५.२६

नीलोत्पल : सं०पुं० (सं०)। नील कमल। मा० ४.३० ख

नीसान : निसान। 'नीसान गान प्रसून झरि।' पा०मं०छं० १५

नुत : भूकृ०पुं० (सं०)। स्तुत, प्रार्थित। मा० ४ श्लोक १

नूतन : वि० (सं०) । नवीन । मा० १.६६.४
नूपुर : सं०पुं० (सं०) । पादभूषण-विशेष (पादाङ्गुलिभूषण) । मा० १.१९९.३
नृ : सं०पुं० (सं०) । नर, मनुष्य । 'व्याल नृ-कपाल-माला बिराजै ।' विन० १०.२
नृकेहरि : नरकेहरि । कवि० ७.१२८
नृग : सं०पुं० (सं०) । इक्ष्वाकुवंश का एक राजा, जो ब्राह्मणों के शाप से गिरगिट हो गया था और कृष्ण ने उसका उद्धार किया था । मा० २४०.२
नृत्य : सं०पुं० (सं०) । लयतालयुक्त अङ्गविशेष (जिसमें अभिनय सम्मिलित हो) । मा० ३.१०.१२
नृत्यपर : वि०पुं० (सं०) । नृत्य में तत्पर, नृत्यलीन । विन० १०.५
नृप : सं०पुं० (सं०) । नरपालक, राजा । मा० २.५०.४
नृपति : नृप (सं०) । मा० १.१५८
नृपती : नृपति । मा० ७.४०.३
नृपनय : राजनीति । मा० २.२५८
नृपनीति : राजनीति । मा० २.३१
नृपन्ह, न्हि नृपन, नि : नृप+संब० । राजाओं । 'नृपन्ह केरि आसा निसि नासी ।' मा० १.२५५.१
नृपरिषि : राजरिषि । राजर्षि, जो राजा होते हुए ऋषि हो । मा० १.१४३.६
नृपाल, ला : नृप । राजा । मा० १.२८.८
नृपु : नृप+कए० । राजा । 'नृपु कि जिइहि बिनु राम ।' मा० २.४९
नेइँ : सं०स्त्री० (सं० नीम, नेमि) । नीवँ, आधारशिला, कुएँ के नीचे रखा जाने वाला दारुचक्र जिस पर ईंटें जोड़ी जाती हैं । 'दीन्हेसि अचल बिपति कै नेइँ ।' मा० २.२९.८
नेकु : क्रि०वि० । थोड़ा-सा । 'नेकु नयन मन प्रान जुड़ाऊ ।' मा० २.१९८.६
नेग : सं०पुं० । किसी मङ्गल अवसर पर किसी का विशेष माङ्गलिक कार्य तथा उस कार्य के बदले मिलने वाला द्रव्यादि । 'नेगी नेग जोग सब लेहीं ।' मा० १.३५३.६
नेगचार : नेग देने का आचार । 'नेगचार कहँ नागरि गहरु न लावहिं ।' जा०मं० १३५
नेगी : वि०पुं० । नेग करने वाला । (१) माङ्गलिक कार्य में नेग पाने का अधिकारी । मा० १.३५३.६ (२) कर्तव्य कर्म का अधिकारी । 'लछिमन होहु धरम के नेगी ।' मा० ६.१०९.२
नेगु : नेग+कए० । 'नेगु मागि मुनिनायक लीन्हा ।' मा० १.३५३.२
नेति : अव्यय (सं०—न+इति) यह नहीं । एक प्रकार की अपोहन विधि जिससे ज्ञात वस्तुओं का निषेध कर अज्ञात वस्तु जानी जाती हैं । जागतिक तत्त्वों का

अपोह (वर्जन) करते-करते ब्रह्म साक्षात्कार की विधि—क्योंकि वह इन्द्रियों से ज्ञेय (प्रमेय नहीं है। सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान। 'नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गन।' मा० १.१२

नेब : सं०पुं० (सं० नीव्र>प्रा० निव्व=नेव्व)। (१) छप्पर आदि की धरन, आधारकाष्ठ। (२) पहिये को घेरने वाला लोह-मण्डल जो उसे घिसने से बचाता है। (३) रक्षक, आश्रय, सहायक। 'लखनु राम के नेब।' मा० २.१९ (४) अरबी—नायब=मातहत)। अधीन।

नेम, **मा** : नियम। मा० १.१७.३

नेमु : नेम+कए०। एकनिष्ठा। 'नेमु पेमु संकर कर देखा।' मा० १.७६.४

नेरी : वि०स्त्री० (सं० निकटा>प्रा० निअडी)। समीपस्थ। 'जाहि मृत्यु आई अति नेरी।' मा० ५.५३.४

नेरें : क्रि०वि०। (सं० निकटेन>प्रा० निअडेण>अ० निअडें)। समीप में। 'सुत मातु पिता हित बंधु न नेरें।' कवि० ७.५०

नेरे : नेरें (सं० निकटे>प्रा० निअडे)। 'जिवन अवधि अति नेरे।' विन० २७

नेरो : वि०पुं०कए०। समीपस्थ। 'जाउँ सुमारग नेरो।' विन० १४३.६

नेवछावरि : सं०स्त्री०। मङ्गलकार्यों में वर-कन्या, शिशु आदि पर उतारकर दिया जाने वाला द्रव्य अथवा उस द्रव्य के उतारने की क्रिया। 'करि आरति नेवछावरि करहीं।' मा० १.१९४.५ प्राकृत में 'नेवच्छ' धातु उतारने के अर्थ में है जिसका सम्बन्ध संस्कृत 'नेपथ्य' (परिधान) से जुड़ता है। मुद्रा के स्थान पर वस्त्रों को उतारकर देने की पहले प्रथा रही होगी (सं० नेपथ्याबलि>प्रा० नेवच्छावलि)।

नेवत : सं०पुं० (सं० नैमन्त्रणक=नैमन्त्र>प्रा० नेमंत>अ० नेवंत)। निमन्त्रण, न्योता, निमन्त्रण पत्र। 'यह अनुचित नहिं नेवत पठावा।' मा० १.६२.१

नेवता : भूकृ०पुं०। निमन्त्रित किया। 'पाहुन बड़ नेवता।' मा० २.२१३.७

नेवति : पूकृ०। निमन्त्रित करके। 'पोथी नेवति पूजि प्रभात सप्रेम।' रा०प्र० ७.७

नेवते : (१) भूकृ०पुं०ब०। निमन्त्रित किए। 'नेवते सादर सकलसुर।' मा० १.६० (२) सं०पुं०ब० निमन्त्रण। 'नेवते दिये।' गी० १.५.५

नेवाज : निवाज (फा० नवाजिश=मेहरबानी)। कृपालु, शरण देने वाला।

नेवाजा : निवाजा। 'राम कृपाल निषाद नेवाजा।' मा० २.२५०.८

नेवाजि : निवाजि। 'बिभीषनु नेवाजि सेत सागर तरन भो। कवि० ६.५६

नेवाजिए : आ०कवा०प्रए०। शरण दिया जाता है। 'रीति महाराज की नेवाजिए जो माँगनो सो।' कवि० ७.२५

नेवाजिहैं : निवाजिहैं। 'राजु दै नेवाजिहैं बजाइ कै बिभीषनै।' कवि० ६.२

नेवाजी : नेवाजि। शरण में लेकर। मा० २.२९९.५

नेवाजू : निवाजु । 'गईबहोर गरीब नेवाजू ।' मा० १.१३.७
नेवाजे : निवाजे । शरण में लिये । 'नाम गरीब अनेक नेवाजे ।' मा० १.२५.२
नेवाजो : निवाजो । 'काकीं सेवाँ रीझि कै नेवाजो रघुनाथ जू ।' कवि० ७.१६
नेवारई : निवारइ । 'परसत पानि पतिहि नेवारई ।' मा० २.२५ छं०
नेवारिहै : आ०भ०प्रए० । दूर करेगा । 'बिप्रन के भय को निवारिहै ।' कवि० ७.१४२
नेवारे : निवारे । रोके । 'सयनहिं रघुपति लखनु नेवारो ।' मा० १.२५४.४
नेवारेउ : निवार्‌यो । रोका, हटाया । 'सोक नेवारेउ सबहि कर ।' मा० २.१५६
नेवासी : निवासी । मा० २.२७०.२
नेह : सनेह (प्रा०) । प्रेम । मा० २.२६०.३
नेहरुआ : (दे० नाहरू) सं०पुं० (सं० स्नायुरुजा>प्रा० न्हारुआ) । एक प्रकार का नसों में होने वाला रोग जिसमें रुधिर बहता है और नस बढ़ती जाती है । मा० ७.१२१.३५
नेहा : नेह । मा० ४.७.६
नेही : वि०पुं० (सं० स्नेहिन्>प्रा० नेही) । प्रेमी, स्निग्ध । 'जोगवत नेही नेह मन ।' दो० ३०७
नेहु, हू : नेह+कए । अनन्य प्रेम । 'जौं मोपर निज नेहु ।' मा० १.७६
नैंया : नाइँ । सदृश । 'कूदत कपि कुरंग की नैंया ।' कृ० १६
नै : नइ । नई, नवीन । 'नित नै होइ राम पद प्रीती ।' मा० १.७६.३
नैन, ना : नयन । मा० १.२२८
नैनन, नि : नयनन्हि । नेत्रों (से, ने) । 'जब नैनन प्रीति ठई ठग स्याय सों ।' कवि० ७.१३३
नैनी : नयनी । 'जहँ बिलोक मृग सावक नैनी ।' मा० १.२३२.२
नैबेद : नैबेद । मा० १.३५०.३
नैबेद्य : सं०पुं० (सं० नैवेद्य) । देवार्पित भोज्य पदार्थ । 'करि पूजा नैबेद्य चढ़ावा ।' मा० १.२०१.३
नैमिष : सं०पुं० (सं०) । तीर्थ विशेष जो उत्तर प्रदेश के सीतापुर जिले में है । मा० १.१४३.२
नैहर : सं०पुं० (सं० मातृघर>प्रा० माइहर) । मैका, स्त्री के माता-पिता का घर । मा० २.२१.१
नैहौं : आ०भ०उए० । झुकाऊँगा । 'सीस ईस ही नैहौं ।' विन० १०४.३
नो : नः । हमारा-री-रे । हमको । 'त्रातु सदा नो भव खग बाजः ।' मा० ३.११.६
नोइ : सं०स्त्री० । नोवन, दुहते समय गाय की पिछली टाँगें बाँधने की रस्सी । मा० ७.११७.१

नौ : नव । (१) संख्या । कवि० १.७ (२) नवीन । 'ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहैं ।' कवि० २.१३

नौका : सं०स्त्री० (सं०) । नाव । विन० ६२.३

नौकारूढ : वि० (सं०) । नाव पर चढ़ा हुआ । 'नौकारूढ चलत जग देखा ।' मा० ७.७३.५

नौमि : आ०उए० (सं०) । प्रणाम करता हूँ । 'नौमि निरंतर श्रीरघुबीरं ।' मा० ३.११.४

नौमी : नवमी । 'नौमी तिथि मधुमास पुनीता ।' मा० १.१९१.१

न्याउ : न्याय+कए० । (१) औचित्य । 'मोर न्याउ मैं पूछा साईं ।' मा० ४.२.८ (२) वैध निर्णय । 'स्वान खग जति न्याउ देख्यो ।' विन० ७.२४.२

न्यामक : वि० (सं० नियामक) नियंता । नियति का स्वामी, नियमित करने वाला । विन० ५५.६

न्याय : सं०पुं० (सं०) । (१) रीति, आचार, औचित्य । 'हौं न्याय नाथ बिसरायो ।' गी० २.५६.४ (२) उचित निर्णय, कानून, विधि । 'ऐसे तौ सोचहिं न्याय-निठुर ।' गी० ५.८.२ (३) समानता, यथा, नाईं । 'देखिहैं हनुमान गोमुख नाहरनि के न्याय ।' विन० २२०.७ (४) सादृश्यमूलक मुहावरा । 'होइ घुनाच्छर न्याय जौं ।' मा० ७.११८ ख (५) उचित शासन-व्यवस्था (६) तर्क-शास्त्र (७) अनुमान (८) नीति ।

न्यारियै : न्यारी ही, अनोखी ही । 'दया कीन्ही निरुपाधि न्यारियै ।' हनु० २१

न्यारी : वि०स्त्री० । (१) अनोखी, विलक्षण, निराली । 'द्विज छबि अनूप न्यारी ।' गी० १.२५.४ (२) पृथक्, वर्जित । 'लोक बेद तें न्यारी ।' विन० १६६.६

न्यारे : क्रि०वि० । अलग । 'तुलसी न्यारे ह्वै रहै ।' वैरा० ४२

न्यारो : वि०पुं०कए० । अलग, पृथक् । 'प्रान त्यागि तनु न्यारो ।' कृ० ३४

न्याव : न्याउ, निर्णय । 'स्वान को प्रभु न्याव निबेरो ।' विन० १४६.५

न्हाइ : नहाइ । स्नान करके । 'न्हाइ रहे जल पानु करि ।' मा० २.१५०

न्हाहु : आ०मब० (सं० स्नात>प्रा० ण्हाह>अ० ण्हाहु) । नहाओ, स्नान करो । 'उबटौं न्हाहु गुहौं चोटिया बलि ।' कृ० १३

पण्डित बच्चूलाल अवस्थी
व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य,
एम.ए., पी-एच डी., डी० लिट्.
जन्म—श्रावण शुक्ल २ गुरुवार सं० १९७५
दिनाङ्क ८।८।१८ ई०

सारस्वत साधना के एकनिष्ठ साधक। व्याकरण, साहित्य और दर्शन के मूर्धन्य विद्वान्। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी भाषा एवं साहित्य पर विलक्षण अधिकार, उर्दू और आंग्ल भाषा व साहित्य का भी विशद अध्ययन।

काव्य में रहस्यवाद, काव्याङ्गदीपिका, हिन्दी-रचना प्रबोध, ध्वनिसिद्धान्त तथा तुलनीय-साहित्य-चिन्तन, भारतीय काव्य-समीक्षा में ध्वनि-सिद्धान्त आदि बहुचर्चित ग्रन्थों के रचयिता।

दीर्घ परिश्रम और साधना से 'भारतीय दर्शन-बृहत्कोश' और 'हिन्दीव्युत्पत्तिकोश' का निर्माण।

प्रतिष्ठित समीक्षक, विवेचक और तत्त्ववेत्ता होने के साथ ही गहरी अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न। हिन्दी और विशेषतः संस्कृत में काव्य-प्रणयन।

लखीमपुर-खीरी (उ.प्र.) के महाविद्यालय और हिन्दी विभाग, साग॰ में प्राध्यापन के अनन्तर सम्प्रति कालिदास अकादमी, उज्जैन के आचार्यकुल में वरिष्ठ आचार्य के रूप में नाट्य-शास्त्र के सम्पादन की महत्वाकांक्षी योजना तथा पारम्परिक भारतीय विधा के बिशिष्ट अध्यापन के प्रति समर्पित।

सम्पर्क—कालिदास अकादमी, उज्जैन (म.प्र.)

Books N' Books
77, Tagore Park, DELHI-110009 (INDIA)